The Department of Public Instruction, Bombay.

# ATHARVAVEDASAMHITÂ

WITH THE

## COMMENTARY OF SÂYAṆÂCHÂRYA.

EDITED BY

SHANKAR PÂṆDURANG PANDIT M. A.

*Registered for Copy-right under Act XXV of 1867.*

Vol. II.

Bombay:

GOVERNMENT CENTRAL BOOK DEPÔT.

1895.

**All rights reserved.**

*Price* 10 *Rupees.*

BOMBAY

PRINTED AT JAVAJI DADAJI'S "NIRNAYA-SAGAR" PRESS.

# अथर्ववेदसंहिता

## सायणाचार्यविरचितेन भाष्येण सहिता.

पण्डितोपाभिधेन पाण्डुरङ्गसूनुना शंकरेण

संशोधिता.

सा च

मुंबय्यां

जावजी दादाजी

इत्येतेषां "निर्णयसागराख्य" मुद्रणयन्त्रालये मुद्रिता.

---

गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो.

---

अस्य च ग्रन्थस्य स्वामित्वं (१८६७) सप्तषष्ट्युत्तराष्टादशशतस्य पञ्चविंशं स्वनियममनुसृत्य संगृहीतम्।

---

१८९५.

---

मूल्यं १० रूप्यकाः

# INTRODUCTION.

The enumeration of Sûktas in the sixth Kâṇḍa requires to be noticed. In the work called Bṛihatsarvânukramaṇikâ of Atharvaveda, it is stated that most of the Sûktas in the sixth Kâṇḍa consist of three Ṛiks. Sâyaṇa says, however, that notwithstanding this statement, he has followed the prevalent practice of the reciters of Atharvaveda of uniting two Sûktas into one and has written the introduction to each two together. We have retained the ordinal given by Sâyaṇa on this principle at the beginning of each Ṛik, but have followed the statement of the Bṛihatsarvânukramaṇikâ in giving the number at the end of each Ṛik. Our number of Sûktas thus differs from that of Sâyaṇa. We have given the number of the Anuvâk and Sûkta of the Kâṇḍa at the top of each alternate page with the number of the Sûkta from the beginning, outside the brackets.

For the division and numbering of the Sûktas in the Seventh Kâṇḍa, we refer the reader to the Introduction of the first volume.

The Sûktas contained in the Kâṇḍas VIII to XI, both inclusive, are stated to be either Paryâyasûktas or Arthasûktas by the Bṛihatsarvânukramaṇikâ. Out of these all Paryâyasûktas are enumerated in the Introduction of the first volume. The rest are termed Arthasûktas. Sâyaṇa follows the practice of most of the reciters of this Veda and subdivides these Sûktas, giving introductory remarks at the beginning of each subdivision and numbering the Ṛiks of each subdivision separately. This numbering of Ṛiks in Bhâshya is retained in this edition but at the end of each Ṛik of the Arthasûkta is given a figure showing the number as it would be according to the Bṛihatsarvânukramaṇikâ. Where each of these subdivisions of Paryâyasûktas and Arthasûktas ends, the number of that subdivision is shown by a numerical figure in small type.

Lastly, it remains to be mentioned that in this volume, as elsewhere, where it was impossible to procure a copy of Bhâshya, remarks have been given at the beginning of each Sûkta, based on Kaus'ika Sûtra, Kes'avî Tîkâ and other authorities, on the model of those which are to be seen in Bhâshya.

# ABBREVIATIONS.

V1. The old Kaus'ika Sûtra Manuscript obtained from Venilâl of Bhavnagar.

V2. The new Kaus'ika Sûtra Manuscript obtained from Venilâl of Bhavnagar.

# CORRECTIONS Vol. II.

| पृष्ठ. | पङ्क्ति. | अशुद्धम्. | शुद्धम्. |
|---|---|---|---|
| २ | १३ | °भावः । | °भावः । |
| ,, | १७ | १४] । | १४] । |
| ३ | १२ | °न्तितम् । | °न्तितम् |
| ७ | १ | Read after सुप्तोत्थितस्य (सुप्तोत्थितः following the Bhâshya in 1:26) as proposed correction. | |
| १२ | १ | तृचाभ्या | तृचाभ्यां |
| १५ | ५ | अयति ॥ | अयति ॥ |
| १६ | २४ | लुङ् | लुक् |
| २२ | १ | भूताना | भूतानां |
| २४ | २० | एवम् हंसात् | एवम् । हंसात् |
| २६ | २५ | इति सूक्तेन | इत्येताभ्यां[3] सूक्ताभ्यां |
| ,, | २७ | Add "3.S' इति सूक्तेन." | |
| ३० | १८ | शला° | शला |
| ,, | २७ | Add "2. Mss. of Kaus'ika Sûtra read शिला°." | |
| ५० | १ | °निवर्तकाना | °निवर्तकानां |
| ५७ | २२ | पौनसिल | पौनसिलं |
| ,, | २७ | Add "See vol. 1 p. 160." | |
| ५८ | १ | °शमके ना° | °शमकेना° |
| ७१ | २० | वृङ्ङि | वृङ्ङि |
| ,, | २२ | वृङ्ङि । | वृङ्ङि । |
| ७२ | २ | वृङ्ङि | वृङ्ङि |
| १०४ | १ | धर्मा | धर्मा |
| १०५ | १८ | रक्षा° | रक्षां° |
| १०६ | ८ | °शालाया | °शालायां |
| ११७ | २१ | ६ | ३ |
| १२२ | १९ | वैर्चस्कामः | व्यचस्कामः |
| ,, | २६ | 2 s' व्यचस्कामः | |

| पृष्ठे. | पङ्क्तौ. | अशुद्धम्. | शुद्धम्. |
|---|---|---|---|
| १२६ | ८ | १. २. १३ | १. ४. ६ |
| १३५ | १५ | ६६. २ | ६. ६६. २ |
| १५४ | १ | मनासि | मनांसि |
| १६० | २१ | भूतेन | भूतेनेति |
| १६५ | १ | धान्याना | धान्यानां |
| १७१ | १८ | °मालाया | °मालायां |
| १७७ | १७ | सर्वेषा | सर्वेषां |
| १८० | २१ | आनयिषम् | आनयिषम् (आनैषम्?) |
| २१२ | २३ | मनस्कैतैः | मनस्कैतैः |
| २१८ | ४ | मा मा | मा मां |
| २२५ | १० | ६ | ३ |
| २३५ | ८ | २३ | २० |
| २३७ | १ | स्वभावस्था | स्वभावस्था |
| २४६ | ६ | प्राणिना | प्राणिनां |
| २४७ | ८ | मा मा | मा मां |
| २५७ | २५ | अनु° | अनु° |
| ,, | ,, | जानीत | जानीत |
| २६४ | ६ | परकीयानि | परकीयानि (णि?) |
| ,, | ७ | परकीयाणि | परकीयानि (णि?) |
| ,, | २५ | PJ. | PJ. |
| २७२ | १६ | ६. ३९ | ६. १३९ |
| ,, | १७ | ७. ३८ | ७. ३९ |
| २८० | ६ | दीक्षाया | दीक्षायां |
| २८३ | १६ | शत्रूणा | शत्रूणां |
| २८५ | १ | आभ्या | आभ्यां |
| २८७ | १६ | °हंहणन° | °हंहणन°(°हंहण°?) |
| २९१ | १५ | °भूत | °भूते |
| २९३ | २७ | अमूं | अमूं |
| २९४ | ५ | टित्वा° | टित्वा° |
| ,, | १५ | मुखं शुष्यति | मुखम् [अप]शुष्यति |

| पृष्ठे. | पङ्क्ती. | अशुद्धम्. | शुद्धम्. |
|---|---|---|---|
| २९८ | ७ | गुत्तिज° | गुत्तिज्° |
| ३०८ | २ | गो० | गो० ब्रा० |
| ,, | ११ | १०] | १०] [बृ० आ० १. १. २] |
| ३१३ | १३ | १०. २. २. ४ | १०. २. २. ३ |
| ३१९ | ५ | °यति । दूरा° | °यति दूरा° |
| ३२० | १९ | कौ० | वै० |
| ३२२ | १७ | सुऽप्रणीतिम् । | सुऽप्रनीतिम् । |
| ,, | २१ | षित्वात् | षित्त्वात् |
| ,, | २२ | °गन्तव्या | °गन्तव्या |
| ३२४ | १ | तेषा | तेषां |
| ३३३ | १० | °परा | °परां |
| ३३५ | २ | १२. १२ | १२. १३ |
| ३४५ | १७ | °रूपा | °रूपां |
| ३५४ | १४ | °ख्याया | °ख्यायां |
| ३५६ | २ | ४१. ९ | ४. १९ |
| ३५८ | २४ | भूम्या | भूम्यां |
| ३६९ | १ | °लाभ्या | °लाभ्यां |
| ३७७ | ११ | हविर्धानं | हविर्धानं |
| ,, | २८ | Add "a Vaitâna Sûtra reads हविर्धाने." | |
| ३८० | ८ | दाश्वांसं | दाश्वांसं |
| ३८१ | १७ | स । | सः । |
| ३९२ | १७ | धनाना | धनानां |
| ३९४ | १ | कामयन्ता | कामयन्तां |
| ,, | १८ | ५८ | ६० |
| ४०५ | ६ | अमुञ्चः । | अमुञ्चः । |
| ४१३ | ८ | वीरुत | वीरुत् |
| ४२३ | ९ | [१. १२७. १] | [ऋ०१.१२७.१][२०.६७.- |
| ४३० | २० | °यते बृह° | °यते । बृह° ३] |
| ४३८ | ६ | ११. ६ | ११. ८ |
| ४४४ | २१ | त्वा त्वा | त्वा त्वां |

| पृष्ठे. | पङ्क्तौ. | अशुद्धम्. | शुद्धम्. |
|---|---|---|---|
| ४४५ | ७ | द्वाभ्या | द्वाभ्यां |
| ४५९ | ६ | °णीया | °णीयां |
| ४६५ | २५ | सातपनाः | सांतपनाः |
| ४६६ | १२ | ७. ८३ | ७. ८३. २ |
| ४६८ | १ | °नाना | °नानां |
| ४७६ | २ | न०क० | शा०क० |
| ९४७ | १ | रात्री णाम् | रात्रीणाम् |
| ४९० | १ | दुहता | दुहतां |
| ४९२ | ११ | षाष्टिकम् | षाष्टिकम् |
| ४९५ | १९ | दिव्याः" | दिव्याः |
| ५०६ | २ | पुडागमः | पुगागमः |
| ५०७ | १५ | इन्द्र सु° | इन्द्रः सु° |
| ५२१ | ८ | स्तृणीहि । | स्तृणीहि । |
| ५२६ | २४ | बृहता | बृहतां |
| ५३५ | ५ | आदीवनं | आदी(दे?)वनं |
| ५४२ | १२ | सूत्राभ्या | सूत्राभ्यां |
| ,, | १४ | त्युमू | त्यमू |
| ५५१ | ७ | °न छाद° | °न च्छाद° |
| ५६१ | ११ | ८. २ | ८. २. ११–२१ |
| ५६४ | १९ | आह्वयाम | आह्वयाम (मः?) |
| ५६७ | १९ | ११. ४ | ११. ६ |
| ५६८ | ३ | पूति° | पूति° |
| ,, | २६ | Add before 3 "a Kaus'ika has" | पूतदारुं. |
| ५७१ | १ | त्वा त्वा | त्वा त्वां |
| ५७६ | ११ | स्ताम्" इति | स्ताम् इति |
| ५७७ | २४ | ते । | ते । |
| ५८९ | ७ | का° | कौ० |
| ,, | ११ | स्वस्ति वा थ | स्वस्तिवाच्यथ |
| ६१७ | ९ | स्वकीया | स्वकीयां |
| ६२२ | २४ | °ख्याया | °ख्यायां |
| ६४१ | १६ | परि° | परि° |

| पृष्ठे. | पङ्क्ति. | अशुद्धम्. | शुद्धम्. |
|---|---|---|---|
| ६४५ | १ | येषा | येषां |
| ६४६ | ७ | उपेर्ष° | उपेर्ष° |
| ६४८ | १४ | Add after **विनियोगः ॥ तत्र प्रथमा ॥** | in a separate line. |
| ६५१ | १ | जायमाना | जायमानां |
| ६५३ | ५ | ५. २० | ५. २. |
| ६६२ | १ | सेनाम् । | सेनाम् । |
| ६६५ | १ | मातली | मातली |
| ६७२ | १७ | सा । | °सा । |
| ६८२ | १८ | स्तनयित्नु° | स्तनयित्नु° |
| ६८५ | १७ | नमन्ता | नमन्तां |
| ६८६ | २५ | °मुदु | °मुदु |
| ७०० | १६ | १३ | १२ |
| ७०३ | २२ | अनड्वाहम् । | अनड्वाहम् । |
| ७०४ | ५ | अनित्रीम् । | जनित्रीम् । |
| ७०८ | २३ | अश्नन्ति | अश्नन्ति |
| ,, | २६ | Add "४. P अश्नन्ति" | |
| ७११ | २५ | स्तनयन् | स्तनयन् |
| ७१३ | १३ | उपऽहूतः । | उपऽहूतः । |
| ७१६ | ३ | पीवः । | पीवः । |
| ७४१ | ४ | देवाँ | देवाँ |
| ७४७ | ३० | Read ? | Read अथमो ? |
| ७५२ | २१ | अंह | अहं |
| ७५७ | ६ | अपरि प्र° | अप रिप्र° |
| ७६३ | १२ | इवःइवो | इवःइवो |
| ,, | २५ | Accents | Accents from °मामुष्यायण in verse 44 of the previous Sûkta. |
| ७७९ | २५ | Cs P प्र° | Cs प्र° |
| ७८६ | १०° | संपातवर्ती | संपातवर्ती |

श्रीगणेशाय नमः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ।
निर्ममे तम अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥ १ ॥

षष्ठे[1] काण्डे त्रयोदशानुवाकाः । तत्र प्रथमेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "दोषो गाय" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन नवशालायां पुष्टिकामो घृतं मधुमिश्रं जुहुयात् । तथा च सूत्रम् । "यजूंषि यज्ञे[ ५. २ ६ ] इति नवशालायां सर्पिर्मधुमिश्रं जुहोति दोषो गाय[ ६. १ ] इति "द्वितीयां युक्ताभ्यां तृतीयाम्" इति [कौ० ३. ६ ] ॥

तथा तेनैव तृचेन स्वस्त्ययनकामः आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । तथा च सूत्रम् । "दोषो गाय[ ६. १ ] पातं नः[ ६. ३ ] इति पञ्च" इत्यादि "भवाशर्वौ[ ११. २ ] इत्युपदधीत" इत्यन्तम [कौ० ७. १ ] ॥

तथा अनेन तृचेन सर्वलोकाधिपत्यकामः अथर्वाणं यजत उपतिष्ठते वा ॥

तथा अनेनैवं समावर्तनानन्तरं भक्तं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । "दोषो गायेत्यथर्वाणं समावृत्याश्नाति" इति [कौ० ७. १० ] ॥

तथा सोमयागे प्रातःसवने बहिष्पवमानस्तोत्रसमये ब्रह्मा "दोषो गाय" इत्येतज्जपन् उद्गातारम् ईक्षेत । तद् उक्तं वैताने । "चात्वालाद् दक्षिणत उपविशन्ति । दोषो गायेति जपन्नुद्गातारम् ईक्षते" इति [वै० ३. ७ ] ॥

"इन्द्राय सोमम् ऋत्विजः" इति तृचेन सोमयागे द्रोणकलशस्थं सोमं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "इन्द्राय सोमम् ऋत्विज इति द्रोणकलशस्थम् अनुमन्त्रयते" इति वैतानसूत्रात् [वै० ३. ६ ] ॥

---

1 S' षष्ठ°. 2 S' °विश्यति.

अत्र "आ यं विशन्ति" [६.२.२] इत्यनया ऋचा राक्षसकृतपीडापरिहारार्थं पक्षिनीडकाष्ठपकं क्षीरौदनं संपाद्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् । सूत्रितं हि । "आ यं विशन्तीति वयोनिवेशनशृतं क्षीरौदनम् अश्नाति" इति [कौ० ४. ५] ॥

यद्यपि अस्मिन् काण्डे प्रायेण सर्वाणि सूक्तानि तृचात्मकान्येव तथापि अध्यापकसंप्रदायानुरोधेन तृचद्वयम् एकीकृत्य सूक्तत्वेन व्यवहियते ॥

तत्र प्रथमा ॥

दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेहि ।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥ १ ॥

दोषो इति । गाय । बृहत् । गाय । द्युमत् । धेहि ।
आथर्वण । स्तुहि । देवम् । सवितारम् ॥ १ ॥

हे आथर्वण अथर्वणः पुत्र । ✕"तस्यापत्यम्" इति अणि "अन्" इति प्रकृतिभावात् टिलोपाभावः । स च अथर्वणः पुत्रो दध्यङ् नाम महर्षिः । तथा च तैत्तिरीयकम् । "प्रजापतिर्वा अथर्वा अग्निरेव दध्यङ्ङाथर्वणः" इति [तै० सं० ५. ६. ६. ३] । निगमश्च भवति । "तम् उ त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः" इति [ऋ० ६. १६. १४] ✕ । हे तादृश आथर्वण महर्षे दोषो । दोषाशब्दो रात्रिवाची । स च अधिकरणप्रधानः । उशब्दः अप्यर्थे । दोषा रात्रौ । अपिशब्दाद् अहनि । अहोरात्रोपलक्षिते सर्वस्मिन्नपि काले गाय स्तुत्युपयोगीनि सामानि उच्चारय । "बृहत्साम तथा साम्नाम्" इति [भ० गी० १०. ३५] यद् भगवतोक्तं बृहत्साम्नः प्राधान्यं तत् ख्यापयितुं विशेषतो निर्दिशति बृहद् गायेति । "वाम् इद्धि हवामहे" [ऋ० ६. ४६. १] इत्यस्याम् ऋचि उत्पन्नं साम बृहत् । तद्धि सर्वसोमयागानां प्रकृतिभूते प्रथमप्रयोज्येऽग्निष्टोमे माध्यंदिनसवने पृष्ठस्तोत्रेषु विकल्पेन प्रथमं प्रयुज्यते ।

१ So we divide with all our Vaidikas and MSS. and with the text as given in Sâyana's commentary. See Rw. २ P $\hat{P}$ J K C$^{p}$ आथर्वणः.

1 S$^{i}$ क्षीरोद°.

तद् उक्तम् । "रथन्तरसाम्ना बृहत्साम्नोभयसाम्ना वा प्रथमं यजेत" इति । तद् बृहत् साम हे स्तोतः गाय । ‡कै गै शब्दे इति धातुः‡ । तेन च गानेन द्युमत् दीप्तिमद् धनं धेहि अस्मासु धारय । ‡डुधाञ् धारणपोषणयोः । "ध्वसोरेद्धौ०" इति एत्त्वाभ्यासलोपौ‡ । तस्य च गीयमानस्य साम्नः उक्तफलसाधनत्वं स्तोत्रनिष्पादनद्वारेत्याह स्तुहीति । देवम् दानादिगुणयुक्तं सवितारम् अन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरकं सूर्यं स्तुहि प्रशंस । गुणिनिष्ठगुणाभिधानं हि स्तुतिः । सा च यज्ञे द्विविधा प्रगीताप्रगीतमन्त्रभेदात् । तत्र प्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः स्तोत्रम् । तच्च "आज्यैः स्तुवते" "पृष्ठैः स्तुवते" इत्यादिवाक्यैर्विहितम् । अप्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः शस्त्रम् । तदपि "आज्यं शंसति" "प्रउगं शंसति" इत्यादिशंसतिचोदनाविहितम् । तयोश्च याज्यानुवाक्योक्तिवत् संस्कारकर्मत्वम् आशङ्क्य प्रधानकर्मत्वं राद्धान्तितम् । "स्तुतशस्त्रयोस्तु संस्कारो याज्यावद् देवताभिधानत्वात्" इत्यधिकरणे [जै० २. १. १३] । एतद् उक्तं भवति । गीयमानेन बृहता साम्ना फलसाधनपरमापूर्वजननार्थं पृष्ठस्तोत्राख्यं प्रधानकर्म निष्पादयेद् इति ॥ ‡आथर्वण इत्यामन्त्रितस्य "आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्" इति अविद्यमानवद्भावात् स्तुहीत्यस्य पादादित्वाद् "०अपादादौ" इति पर्युदस्तत्वात् "तिङ्तिङः" इति निघाताभावः‡ ॥

द्वितीया ॥

तमु॑ ष्टुहि॒ यो अ॒न्तः सिन्धौ॑ सू॒नुः ।
स॒त्यस्य॒ युवा॑न॒मद्रो॑घवाचं सु॒शेव॑म् ॥ २ ॥

तम् । ऊं॒ इति॑ । स्तु॒हि॒ । यः । अ॒न्तः । सिन्धौ॑ । सू॒नुः ।
स॒त्यस्य॑ । युवा॑नम् । अद्रो॑घऽवाचम् । सु॒ऽशेव॑म् ॥ २ ॥

हे स्तोतः तमु तमेव देवं स्तुहि स्तुत्या प्रीणय । यो देवः सविता सत्यस्य परब्रह्मणः सूनुः प्रथमजः पुत्रः । तथा च जगत्कारणं परमा-

* १ So we divide with all our MSS. and Vaidikas. See Rw.

त्मानं प्रकृत्य वाजसनेयकम् । "स त्रेधात्मानं व्यकुरुत अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयम् आदित्यं तृतीयम्" इति [बृ० आ० १. २. ३] । एतेन इतरदेवेभ्यः प्राशस्त्यम् अस्योक्तं भवति । ईदृशो यः सविता सिन्धौ स्यन्दनशीले समुद्रे अन्तः मध्ये । उद्यन् दृश्यत इति शेषः । तं युवानम् नित्यतरुणं नैशस्य तमसो यावयितारं पृथक्कर्तारं वा अद्रोघवाचम् अहिंसकवाक्ययुक्तम् । शोभनवाचम् इत्यर्थः । सुशेवम् सुसुखम् । स्तुहीत्यन्वयः ॥

तृतीया ॥

स घा नो देवः सविता साविषदमृतानि भूरि ।
उभे सुष्टुती सुगातवे ॥ ३ ॥

सः । घ । नः । देवः । सविता । साविषत् । अमृतानि । भूरि ।
उभे इति । सुस्तुती इति सुऽस्तुती । सुऽगातवे ॥ ३ ॥

स घ स एव देवः सविता नः अस्माकम् अमृतानि अमृतत्वसाधनानि भूरि भूरीणि बहूनि हविःप्रदानादीनि कर्माणि साविषत् प्रेरयतु देवान् प्रापयतु । यद्वा अमृतानि अमरणहेतुभूतानि बलानि भूरि बहुलं नः अस्मभ्यं साविषत् प्रेरयतु । ☒ षू प्रेरणे । अस्मात् लेटि अडागमः । "सिब्बहुलं णिद् वक्तव्यः" इति वचनाद् वृद्ध्यावादेशौ । घश्वस्य "ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम्" इति सांहितिको दीर्घः ☒ । किमर्थम् इत्यत आह उभे इति । उभयविधे सुष्टुती शोभनस्तुतिसाधने बृहद्रथंतरे सामनी सुगातवे सुष्ठु गातुम् । यद्वा उभे सुष्टुती स्तुतशस्त्रात्मिके शोभने स्तुती सुगातवे सुष्ठु प्रयोक्तुम् । ☒ गायतेस्तुमर्थे तवेप्रत्ययः ☒ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत ।
स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे ॥ १ ॥

इन्द्राय । सोमम् । ऋत्विजः । सुनोत । आ । च । धावत ।
स्तोतुः । यः । वचः । शृणवत् । हवम् । च । मे ॥ १ ॥

हे ऋत्विजः अध्वर्युप्रमुखाः इन्द्राय इंन्द्रार्थं सोमं सुनोत अभिषुणुत। ॥ "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तशब्दस्य तबादेशः। तस्य पित्त्वेन ङित्त्वाभावात् "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इति गुणः ॥ तथा तं सोमम् आ धावत च। आधावनं नाम अदाभ्यग्रहार्थं गृहीतस्य वसतीवरीजलस्य "वसवस्त्वा" [तै० सं० ३. ३. ३. १] इत्यादिमन्त्रगृहीतैस्त्रिभिः सोमांशुभिः "मांदासु ते" [तै० सं० ३. ३. ३. १] इत्यादिभिर्मन्त्रैश्चालनम्। यद् आह आपस्तम्बः। "अंशुम् अदाभ्यं वा प्रथमं गृह्णाति।" इति प्रक्रम्य "उपनद्धस्य राज्ञस्त्रीन् अंशून् प्रवृहति। वसवस्त्वा प्रवृहन्तु गायत्रे-"ण छन्दसेत्येतैः प्रतिमन्त्रम्। तैरेनं चतुराधूनोति। पञ्चकृत्वः सप्तकृत्वो वा। "मांदासु त इत्येतान् प्रतिविभज्य" इति [आप० १२. ८. २]। ॥ धूञ् कम्पने इत्यस्मात् ण्यन्तात् लोटि "छन्दस्युभयथा" इति शप आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ॥। यद्वा। ॥ धावु गतिशुद्ध्योः ॥। तम् अभिषुतं सोमम् आ धावत दशापवित्रेण सर्वतः शोधयत। [य] इन्द्रः स्तोतुः मे मम वचः स्तुतिलक्षणं वाक्यं हवम् आह्वानं च शृणवत् शृणुयात् आदरेण जानीयात् तस्मा इन्द्रायेति संबन्धः। ॥ शृणवत् इति। श्रु श्रवणे। अस्मात् लेटि अडागमः। "श्रुवः शृ च" इति श्नुप्रत्ययः शृभावश्च। हवम् इति। "भावेनुपसर्गस्य" इति अप् संप्रसारणं च ॥

पञ्चमी ॥

आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः।
विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः ॥ २ ॥

आ। यम्। विशन्ति। इन्दवः। वयः। न। वृक्षम्। अन्धसः।
विऽरप्शिन्। वि। मृधः। जहि। रक्षस्विनीः ॥ २ ॥

इन्दवः सोमाः अन्धसः। अन्ननामैतत्। ॥ अदेर्नुम् धश्च [उ० ४. २०५] इति असुनि व्युत्पादितम ॥। अन्नभूताः सन्तः यम् इन्द्रम् आ विशन्ति, प्रविशन्ति। तत्र दृष्टान्तः वय इति। नशब्दः उपमार्थे।

वयः पक्षिणो यथा निलयभूतं वृक्षं शीघ्रं स्वेच्छया प्राप्नुवन्ति तथा इन्द्रार्थम् अभिषुताः सोमाः तत्प्राशनाय तच्छरीरं स्वयमेव प्रविशन्तीत्यर्थः । [स त्वं] हे विरप्शिन् महन्नामैतत् । हे महन्निन्द्र सोमपानेन दृप्तः सन् रक्षस्विनीः रक्षोभिर्बाधकैरुपेता मृधः युध्यमानाः शत्रुसेना वि जहि विबाधस्व । ‡हनोर्जः" इति जादेशः । तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वाद् "अतो हेः" इति लुगभावः ‡ ॥

षष्ठी ॥

सुनोता सोमपात्रे सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
युवा जेतेशानः स पुरुष्टुतः ॥ ३ ॥

सुनोत । सोमऽपात्रे । सोमम् । इन्द्राय । वज्रिणे ।
युवा । जेता । ईशानः । सः । पुरुऽस्तुतः ॥ ३ ॥

हे अध्वर्यवः सोमपात्रे सोमस्य पात्रे सोमपानोत्सुकाय । ‡"आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च" इति वनिप् ‡ । वज्रिणे वज्रहस्ताय शत्रुनिरसनक्षमाय इन्द्राय सोमं सुनोत अभिषुणुत । स खलु इन्द्रो युवा नित्यतरुणः शत्रूणां यावयिता वा अत एव जेता जयशीलः ईशानः सर्वस्य जगत ईशिता स्वामी । ‡ईश ऐश्वर्ये इत्यस्मात् लटः शानच् । अदादित्वात् शपो लुक् । अनुदात्तेत्त्वात् लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरेण आद्युदात्तः ‡ । पुरुष्टुतः पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैः स्वस्वाभिलषितसिद्धये स्तुतः प्रशंसितः । य इत्थं सर्वोत्कृष्ट इन्द्रः तत्प्रीत्यर्थं सोमम् अभिषुणुतेति संबन्धः ॥

[इति] षष्ठे काण्डे प्रथमं सूक्तम् ॥

"पातं नः" इति तृचेन विजयस्वस्त्ययनकर्मणि आज्यं हुत्वा खड्गादि शस्त्रं संपात्य अभिमन्त्र्य योधकाय प्रयच्छेत् ॥

तथैव स्वस्त्ययनकामो रात्रौ शयनकाले एतं तृचं जपन् प्रादेशेन मुखं प्रमाय स्वप्यात् ॥

---

1 S' Kd तन्मीशानाय for तत्प्राशनाय. 2 S' षष्ठ°.

तथैव सुप्तोत्थितस्य अनेन तृचेन स्वस्त्ययनार्थं त्रीणि पदानि तिस्रो दिष्टीर्वा प्रमाय उत्तिष्ठेत् ॥

सूत्रितं हि । "पातं नः[६.३] य एनं परिषीदन्ति [६.७६] य-"दायुधं दण्डेन व्याख्यातं दिष्ट्या मुखं विमाय संविशति त्रीणि पदानि "प्रमायोत्तिष्ठति तिस्रो दिष्टीः" इति [कौ०७.१] ॥

तथा "पातं नः" इति पञ्चभिर्ऋग्भिः स्वस्त्ययनकामः आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । "पातं नः[६.३] इति पञ्च अनडुह्यः"[६.५९] इत्यादि "भवाशर्वौ"[११.२] "इत्युपदधीत" इत्यन्तं सूत्रम् [कौ०७.१] ॥

"त्वष्टा मे" इति तृचेन दायादविभागकर्मणि पुष्ट्यर्थं सरूपवत्साया गोर्दुग्धे पक्वम् ओदनं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन धनुर्ज्यां संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि दण्डं संपात्य अभिमन्त्र्य विमृज्य धारयेत् ॥

आह च कौशिकः । "त्वष्टा म इति प्रातर्विभक्ष्यमाणोश्नाति । ज्यां बध्नाति । दण्डं संपातवन्तं विमृज्य धारयति" इति [कौ०३.६] ॥

तथा पुष्ट्यर्थचित्राकर्मणि अनेन तृचेन वृक्षशाखादिसंभारान् संपातयेत् । "त्वष्टा म इति प्रातर्विभक्ष्यमाणः" इति प्रक्रम्य "युक्तयोश्चित्राकर्म । निशायां संभारान् संपातवतः करोति" इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ०३.६] ॥

तथा च कुमारस्य कुमार्या वा मूर्ध्नि आवर्तद्वयजनने तच्छान्त्यर्थम् अनेन तृचेन आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "कुमारस्य कुमार्या वा द्वावावर्तौ मूर्धन्यौ भवतः" इति प्रक्रम्य होमार्थं कांश्चन मन्त्रान् पठित्वा सूत्रितम् "त्वष्टा मे दैव्यं वचः" इति [कौ०१३.३२] ॥

तत्र प्रथमा ॥

पातं नं इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः ।

1 S' सारूप°. 2 Our MSS. of *Kauśika* विभुंक्ष°. Dârila; श्वो विभागं करिष्यन्. 3 *Kauśika* and Dârila ज्यायुं (= ज्याम्). The *Kesavâ*: ज्यां. 4 S' °चित्राकर्माणिशालायां for कर्म। निशायां which we with *Kauśika*, Dârila and Keśava.

अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः ॥ १ ॥

पातम् । नः । इन्द्रापूषणा । अदितिः । पान्तु । मरुतः ।
अपाम् । नपात् । सिन्धवः । सप्त । पातन । पातु । नः । विष्णुः । उत । द्यौः॥१॥

हे इन्द्रापूषणा । इन्द्रश्च पूषा च इन्द्रापूषणौ । ऋ"देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः । "सुपां सुलुक्०" इति विभक्तेराकारः । इन्हन्पूषार्यम्णां शावेव सर्वनामस्थाने इति नियमाद् उपधादीर्घाभावः ऋ । हे इन्द्रापूषणौ नः अस्मान् पातम रक्षतम् ॥ अदितिः अदीना देवमाता । सा अस्मान् पातु इति विपरिणामेन संबन्धः ॥ मरुतः एकोनपञ्चाशत्संख्याकाः सप्तगणात्मकास्तत्पुत्रा देवाः । ते च अस्मान् पान्तु रक्षन्तु ॥ अपां नपात् एतत्संज्ञः अबिन्धनोग्निः और्ववैद्युतलक्षणः । सप्त सिन्धवः सप्त समुद्राश्च यूयम् अस्मान् पातन पात रक्षत ॥ उत अपिच विष्णुर्व्यापनशीलो देवः द्यौः द्युलोकश्च नः अस्मान् पातु रक्षतु ॥

द्वितीया ॥

पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः ।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः ॥ २ ॥

पाताम् । नः । द्यावापृथिवी इति । अभिष्टये । पातु । ग्रावा । पातु । सोमः । नः । अंहसः ।
पातु । नः । देवी । सुऽभगा । सरस्वती । पातु । अग्निः । शिवाः । ये ।
अस्य । पायवः ॥ २ ॥

द्यावापृथिवी । द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ । ऋ"दिवो द्यावा" इति द्यावादेशः । "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ऋ । ते नः अस्मान् पाताम् रक्षताम् । किमर्थम् । अभिष्टये अभ्येषणाय अभिमतफलप्राप्तये ॥ तथा ग्रावा अभिषवहेतुरश्मा पातु रक्षतु । अभिषुतश्च सोमो नः अस्मान् अंहसः पापात् पातु रक्षतु ॥ सुभगा सौभाग्ययुक्ता देवी दानादिगुणयुक्ता सरस्वती च मन्त्रात्मिका नः अस्मान्

पातु रक्षतु ॥ अग्निः आहवनीयादिरूपेण अवस्थितश्च पातु रक्षतु । अस्य अग्नेः शिवाः कल्याणाः सुखकराः पायवः राक्षसादिकृताद् दुःखात् पातारो ये रश्मयः सन्ति तेपि अस्मान् । रक्षन्त्विति शेषः । "ये पायवो मामतेयं ते अग्ने" [ऋ० १. १४७. ३] इत्यादि मन्त्रान्तरम् । ऽपा रक्षणे इत्यस्मात् कृवापाजि० [उ० १. १] इति उण् प्रत्ययः । "आतो युक् चिण्कृतोः" इति युक् ऽ ॥

तृतीया ॥

पातां नो देवाश्विना शुभस्पती उषासानक्तोत न उरुष्यताम् ।
अपां नपादभिहुती गयस्य चिद् देव त्वष्टर्वर्धय सर्वतातये ॥ ३ ॥

पाताम् । नः । देवा । अश्विना । शुभः । पती इति । उषासानक्ता । उत । नः । उरुष्यताम् ।
अपाम् । नपात् । अभिहुती इत्यभिऽहुती । गयस्य । चित् । देव । त्वष्टः । वर्धय । सर्वऽतातये ॥ ३ ॥

हे [देवा] देवौ दानादिगुणयुक्तौ शुभस्पती शोभमानस्य दीप्यमानस्य तेजसः अलंकारस्य वा स्वामिनौ । ऽशुभ शुम्भ दीप्तौ । अस्मात् क्विबन्तात् षष्ठी । "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् ऽ । यद्वा शुभः शोभमानायाः सूर्यायाः पती भर्तारौ ईदृशौ हे अश्विना अश्विनौ नः अस्मान् पातम् रक्षतम् ॥ उत अपि च उषासानक्ता । उषाश्च नक्तं च उषासानक्ता । ऽ"उषासोषसः" इति उषासा आदेशः ऽ । एतच्छब्दवाच्ये अहोरात्रदेवते नः अस्मान् उरुष्यताम् रक्षताम् । ऽउरुष्यती रक्षाकर्मा इति यास्कः [नि० ५. २३] ऽ ॥ अपां नपात् मेघस्थानाम् अपां न पातयिता संवर्धकः एतत्संज्ञोग्निः कंयश्चित् । ऽवर्णोपजनश्छान्दसः ऽ । कस्यचिदपि राक्षसादेः अभिह्रुती अभिह्रुतौ अभिह्वरणे अभितः सर्वतो हिंसने प्राप्ते । अस्मान्

१ P P J K C देवाश्विना ।
1 S रक्षसा°

रक्षतु इति शेषः । ✕ ह्रृ कौटिल्ये इत्यस्मात् क्तिन्नन्तात् सप्तम्या ईकारः । "ईदूतौ च सप्तम्यर्थे" इति प्रगृह्यत्वम् ✕ ॥ हे त्वष्टर्देव सर्वतातये सर्वस्मै फलाय अस्मान् वर्धय । ✕ "सर्वदेवात् तातिल्" इति स्वार्थिकस्तातिल् प्रत्ययः ✕ ॥

चतुर्थी ॥

त्वष्टा मे दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रायमाणं सहः ॥ १ ॥

त्वष्टा । मे । दैव्यम् । वचः । पर्जन्यः । ब्रह्मणः । पतिः ।
पुत्रैः । भ्रातृभिः । अदितिः । नु । पातु । नः । दुस्तरम् । त्रायमाणम् ।
सहः ॥ १ ॥

त्वष्टा देवः मे मदीयं दैव्यम् देवार्हं स्तुतिलक्षणं वचः शृणोतु । ✕ "देवाद् यञञौ" इति देवशब्दात् प्राग्दीव्यतीयो यञ् ✕ ॥ तथा पर्जन्यः वृष्टिकरो देवः । ब्रह्मणस्पतिः मन्त्रस्याधिपतिर्देवः । तावुभौ मदीयं स्तुतिवचनं शृणुताम् इत्यर्थः ॥ तथा अदितिः स्वकीयैः पुत्रैः भ्रातृभिश्च सह नः अस्माकं त्रायमाणम् रक्षकं दुष्टरम् अन्यैस्तरीतुम् अशक्यम् अनतिक्रमणीयं सहः बलं नु क्षिप्रं पातु नियमेन रक्षतु ॥

पञ्चमी ॥

अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमादितिः पान्तु मरुतः ।
अप तस्य द्वेषो गमेदभिहुतो यावयच्छत्रुमन्तितम् ॥ २ ॥

अंशः । भगः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । अदितिः । पान्तु । मरुतः ।
अप । तस्य । द्वेषः । गमेत् । अभिऽहुतः । यवयत् । शत्रुम् । अन्तितम् ॥ २ ॥

अंशादयः अदितेः पुत्राः । "तस्या अंशश्च भगश्चाजायेताम्" [तै० ब्रा० १. १. ९. २] इति श्रुत्यन्तरप्रसिद्धाः । ते च अदितिश्च मरुतः म-

१ So we with all our MSS. and Vaidikas. Sâyana differs, but see VIII 5. 11.
२ P P² अतितम् I. We with J K C.

1 S' भाग°.

रुद्रणाश्च पान्तु अस्मान् रक्षन्तु ॥ यस्माच्छत्रुजाताद् रक्षणं प्रार्थ्यते तस्य द्वेषः तत्कर्तृकम् अनिष्टाचरणम् अप गमेत् अस्मत्तः अपगच्छतु। ✕"लिङ्याशिष्यङ् इति गमेर्लिङि अङ् प्रत्ययः✕। कीदृशो द्वेष इति विशिनष्टि। अभिह्रुतः अभितो हिंसकः। ✕ह्रु कौटिल्ये इत्यस्मात् कर्तरि निष्ठा✕। स च अस्मत्तः अपगतो द्वेषः तमेव शत्रुम् अन्ति अन्तिकात्। ✕"कादिलोपो बहुलम्" इति वचनात् कादेर्लोपः✕। अस्मत्समीपाद् यवयत् पृथक्करोतु। ✕यु मिश्रणामिश्रणयोः। अस्मात् ण्यन्तात् लेटि अडागमः✕ ॥

षष्ठी ॥

धिये सम॑श्विना प्रा॑वतं न उरु॒ष्या ण॑ उरुज्म॒न्नप्र॑युच्छन्।
द्यौ३॒ष्पि॑तर्य॒वय॑ दुच्छु॒ना या ॥ ३ ॥

धि॒ये। सम्। अ॒श्वि॒ना। प्र। अ॒व॒त॒म्। नः॒। उ॒रु॒ष्य। नः॒। उ॒रु॒ऽज्म॒न्। अप्र॑ऽयुच्छन्।
द्यौः॒। पि॒तः॒। य॒वय॑। दु॒च्छु॒ना॑। या ॥ ३ ॥

हे अश्विना अश्विनौ व्यापनशीलौ देवौ नः अस्मान् धिये। धीरिति कर्मनाम। अग्निहोत्रादिलक्षणाय सत्कर्मणे सद्बुद्धये वा सम्यक् प्रावतम् प्रकर्षेण रक्षतम्। यथा अस्माकं सत्कर्मविषया बुद्धिर्भवति तथा कुरुतम् इत्यर्थः ॥ हे उरुज्मन् विस्तीर्णगमन वायो अप्रयुच्छन् अप्रमाद्यन् त्वं नः अस्मान् उरुष्य रक्ष ॥ हे द्यौः हे पितः वृष्टिद्वारा सर्वस्य प्राणिजातस्य जनक द्युलोक दुच्छुना या दुष्टं शुनं सुखम् अस्याम् इति वा श्वेव दुष्टेति वा दुच्छुना अनिष्टकारिणी पापदेवता। ✕पृषोदरादित्वाद् रूपसिद्धिः✕। तां यवय अस्मत्तः अपगमय ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

---

१ BK न. २ K$^{m}$ B$^{m}$. V$^{h}$ B१. ADR$^{m}$SCs have no kampa. ३ PJ द्यौः. We with P$^{h}$KC$^{p}$.

"उदेनम् उत्तरं नय" "योस्मान् ब्रह्मणस्पते" इति तृचाभ्या ग्रामकामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा ॥

तथा आभ्यां तृचाभ्याम् उदुम्बरपलाशकर्कन्धूतक्षणाधानम् सभोपस्तरणतृणाधानम् अभिमन्त्रितान्नासवप्रदानं वा कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "उदेनम् उत्तरं नय[६.५] योस्मान्[६.६] इन्द्रः सुत्रामा[७.९६] इति ग्रामकामो ग्रामसांपदानाम् अप्ययः" इति [कौ० ७.१०]॥

तथा दर्शपूर्णमासयोः आग्नेयचरुम् "उदेनम् उत्तरं नय" इत्याद्याभिस्तिसृभिर्ऋग्भिर्जुहुयात् । सूत्रितं हि । "उदेनम् उत्तरं नयेति पुरस्ताद्धोम-"संहतां पूर्वाम् एवं पूर्वापूर्वा संहतां जुहोति स्वाहान्ताभिः प्रत्यृचं हो-"माः" इति [कौ० १.४] ॥

तथा अग्निचयने षोडशगृहीतवैश्वकर्मणहोमानन्तरम् "उदेनम् उत्तरं नय" इत्यनेन आधीयमानाः समिधो ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "उदेनम् उत्तरं नयेति समिध आधीयमानाः" इति वैतानसूत्रात् [वै० ५.२]॥

दर्शपूर्णमासयोः "इन्द्रेमं प्रतरं कृधि" [२] इत्यनया ऐन्द्रम् आधारं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत ॥

तथा अनयैव ऐन्द्रं सांनाय्ययागम् अनुमन्त्रयेत ॥

"इन्द्रेमम् इत्यैन्द्रम् आधारम्" इति [वै० १.२] "सांनाय्यस्यैन्द्रं माहेन्द्रं वेन्द्रेमम[२] त्वम् इन्द्रस्त्वं महेन्द्रः[१७.१८]" इति च वैतानं सूत्रम् [वै० १.३] ॥

अद्भुतमहाशान्तौ इन्द्रयजने "इन्द्रेमं प्रतरं कृधि" [२] इत्येषा ऋग् विनियुक्ता । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "अथातोऽद्भुतमहाशान्तौ दिशो यजते" इति प्रक्रम्य "इन्द्रेमं प्रतरं कृधीतीन्द्रस्य" इति [न० क० १४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत ।
समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ १ ॥

1 S' °हितां. We with *Kauśika*.

उत् । एनम् । उत्ऽतरम् । नय । अग्ने । घृतेन । आऽहुत ।
सम् । एनम् । वर्चसा । सृज । प्रऽजया । च । बहुम् । कृधि ॥ १ ॥

हे घृतेनाहुत आज्येन आहूयमान । "सुबामन्त्रिते०" इति तृतीयान्तस्य पराङ्गवद्भावात् पदद्वयस्य आष्टमिकम् आमन्त्रितानुदात्तत्वम् । ईदृश हे अग्ने एनं यजमानम् उत्तरम् उत्कृष्टतरं स्थानम् उन्नय उत्कर्षेण ऊर्ध्वं वा प्रापय । यद्वा । उत्तरम् इति उत्कर्षार्थवृत्तिन उच्छब्दात् तरप् । "अमु च च्छन्दसि" इति अमुप्रत्ययः । अनेन च उन्नयनक्रियायाः प्रकर्षो द्योत्यते । एक उच्छब्दः अनुवादः । उत्कर्षप्रापणानन्तरम् एनं यजमानं वर्चसा तेजसा शरीरकान्त्या सं सृज संयोजय । प्रजया पुत्रपौत्रादिलक्षणया च बहुम् बहुलं कृधि कुरु । "श्रुशृणुपृकृवृभ्यः०" इति हेर्धिरादेशः ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी ।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय ॥ २ ॥
इन्द्र । इमम् । प्रऽतरम् । कृधि । सऽजातानाम् । असत् । वशी ।
रायः । पोषेण । सम् । सृज । जीवातवे । जरसे । नय ॥ २ ॥

हे इन्द्र इमं यजमानं प्रतरम् प्रवृद्धतरं कृधि कुरु ॥ सजातानाम् समानजन्मनां भ्रातृणां मध्ये वशी वशयिता स्वतन्त्रः अधिष्ठाता असत् त्वत्प्रसादाद् भवतु ॥ अपि च एनं रायस्पोषेण धनसमूहेन सं सृज संयोजय । "ऊडिदंपदादि०" इति रायो विभक्तिरुदात्ता । "षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् । तदा एतत् सर्वं सति जीवने इत्याशयेनाह जीवातव इति । जीवातुर्जीवनौषधम् । जीव प्राणधारणे इत्यस्मात् जीवेरातुः [उ० १. ७९] इति आतुप्रत्ययः । चिरजीवननिमित्ताय जरसे जरायै इमं यजमानं नय प्रापय । "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । जरापर्यन्तम् अखण्डितं दीर्घम् आयुषो दैर्घ्यं प्रापयेत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥

यस्य । कृण्मः । हविः । गृहे । तम् । अग्ने । वर्धय । त्वम् ।
तस्मै । सोमः । अधि । ब्रवत् । अयम् । च । ब्रह्मणः । पतिः ॥ ३ ॥

यस्य यजमानस्य गृहे चरुपुरोडाशादिलक्षणं हविः देवार्थं कृण्मः कुर्मः । ☒कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः । "लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः" इति उकारलोपः☒ । हे अग्ने त्वं तं यजमानं वर्धय समृद्धं कुरु । तस्मै यजमानाय सोमो देवः [अधि] ब्रवत् अधिब्रवीतु । अधिवचनं पक्षपातेन वचनम् । अस्मदीयोयम् इत्यनुगृह्णातु इत्यर्थः । अयं च ब्रह्मणस्पतिः वेदस्याधिष्ठाता एतत्संज्ञो देवः अधिब्रवीतु ॥

चतुर्थी ॥

यो३ऽस्मान् ब्रह्मणस्पतेदेवो अभिमन्यते ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ १ ॥

यः । अस्मान् । ब्रह्मणः । पते । अदेवः । अभिऽमन्यते ।
सर्वम् । तम् । रन्धयासि । मे । यजमानाय । सुन्वते ॥ १ ॥

हे ब्रह्मणस्पते अदेवः निर्देवो यः शत्रुः अस्मान् अभिमन्यते अभिहन्तव्यान् जानाति । अभिपूर्वो मन्यतिर्हिंसार्थे । यथा । "न तत्र रुद्रः पशून् अभिमन्यते" इति [तै० सं० ३. १. ९. ६] । तं सर्वं शत्रुं सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते मे मह्यं यजमानाय मदीयाय वा रन्धयासि रन्धय वशीकुरु । ☒रध्यतिर्वशगमने इति यास्कः [नि० १०. ४०] । रध हिंसासंराद्ध्योः । अस्मात् ण्यन्तात् लेटि आडागमः । "रधिजभोरचि" इति नुम् । "शतुरनुमः०" इति सुन्वच्छब्दात् परा विभक्तिरुदात्ता☒ ॥

१ B V १ for ३. २ P सुन्वते. We with P J K Cp.

1 S' देवस्याधि°.

पञ्चमी ॥

यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति ।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति ॥ २ ॥

यः । नः । सोम । सुऽशंसिनः । दुःऽशंसः । आऽदिदेशति ।
वज्रेण । अस्य । मुखे । जहि । सः । सम्ऽपिष्टः । अप । अयति ॥ २ ॥

हे सोम यो दुःशंसः दुष्टाभिशंसनः दुष्टाभिप्रायः शत्रुः सुशंसिनः शोभनाशंसान् नः अस्मान् आदिदेशति आदिशति निष्ठुरभाषणेन न्यक्करोति । आङ्पूर्वाद् दिशेः परस्य विकरणस्य व्यत्ययेन श्लुः । पुनश्च शप् । अस्य शत्रोर्मुखे वज्रेण वर्जकेन आयुधेन जहि ताडय । स शत्रुः संपिष्टः वज्राघातेन चूर्णीभूतः सन् अपायति अपगच्छतु ॥

॥

यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ॥ ३ ॥

यः । नः । सोम । अभिऽदासति । सऽनाभिः । यः । च । निष्ट्यः ।
अप । तस्य । बलम् । तिर । महीऽइव । द्यौः । वधत्मना ॥ ३ ॥

हे सोम यः शत्रुः सनाभिः समानजन्मा दायादः नः अस्मान् अभिदासति उपक्षपयति । यश्च निष्ट्यः निकृष्टः शत्रुः अस्मान् बाधते । तस्य बलम् अप तिर अपजहि । तत्र दृष्टान्तः महीवेति । यथा मही महती द्यौः वधत्मना वधः हन्यन्ते अनेन जना इति अशनिर्वधः । "हनश्च वधः" इति अप् तत्संनियोगेन वधादेशश्च । "मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः" इति आत्मन आकारलोपः । वधात्मना अशनिरूपेण आयुधेन निहन्ति । तथा वज्रेण तस्य बलं वृश्चेन्नर्थः ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

१ All our MSS. and Vaidikas: सुसंशिनो. We with Sâyana. २ So P P J K Cp.

1 S' वधा हन्यंते for वधः हन्यन्ते.

"येन सोम" इति तृचेन यागविघ्नशमनार्थं सरूपवत्साया गोः क्षीरे पक्वं पायसं संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

तथा अयाज्ययाजनदोषशमनार्थं च यागसमाप्त्यनन्तरं चरुणा सोमं यजेत ॥

सूत्रितं हि । "येन सोमेति याजयिष्यन् सारूपवत्सम् अश्नाति निधने यजते" इति [कौ० ५. १०] ॥

"यथा वृक्षं लिबुजा" इति तृचेन स्त्रीवशीकरणकर्मणि वृक्षत्वक्शरखण्डतगराञ्जनकुष्ठादिद्रव्याणि पेषयित्वा आज्येन आलोड्य स्त्रिया अङ्गम् अनुलिम्पेत् । सूत्रितं हि । "यथा वृक्षम्[६. ८] वाज्छ मे[६. ९] "यथायं वाहः[६. १०२] इति संस्पृष्टयोर्वृक्षलिबुजयोः शकलावन्तरेणेषु-"तगराञ्जन[कुष्ठ]मधुघ[रेष्म]मथिततृणम् आज्येन संनीय संस्पृशति" इति [कौ० ४. ११] ॥

तत्र प्रथमा ॥

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः ।
तेना नोवसा गहि ॥ १ ॥

येन । सोम । अदितिः । पथा । मित्राः । वा । यन्ति । अद्रुहः ।
तेन । नः । अवसा । आ । गहि ॥ १ ॥

हे सोम येन पथा मार्गेण देवयानाख्येन अदितिः अखण्डनीया एतत्संज्ञा देवमाता मित्रा वा । वाशब्दः चार्थे । बहुवचनाद् आद्यर्थलाभः । मित्राद्याश्च तत्पुत्रा द्वादशादित्याः यन्ति संचरन्ति । कुतो हेतोः संचरन्ति तत्राह । यतस्ते अद्रुहः अद्रोग्धारः अनुग्रहशीलाः । तस्माज्जगदनुग्रहार्थं तेषां पर्यटनं युक्तम् इत्यर्थः । तेन मार्गेण नः अस्मान् अवसा रक्षणेन सह आ गहि आगच्छ । गमेर्लोटि शपो लुक् । "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः । तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वाद् "अतो हेः" इति लुङ् न भवति ॥

१ K[m]K[h]BV तेना. We with A[h]BDR[m]SC[m]s.

1 S' सारूप°.

द्वितीया ॥

येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः ।
तेना नो अधि वोचत ॥ २ ॥

येन । सोम । साहन्त्य । असुरान् । रन्धयासि । नः ।
तेन । नः । अधि । वोचत ॥ २ ॥

हे सोम साहन्त्य । ‡षह अभिभवे इत्यस्माद् औणादिको ञिच् प्रत्ययः‡ । सहन्तिः सोढा अभिभविता । तत्र भवः साहन्त्यः । ‡“पाथोनदीभ्यां ड्यण्” इति बाहुलकाद् अस्मादपि द्रष्टव्यः‡ । ईदृश हे सोम येन बलेन नः अस्मदर्थम् असुरान् रन्धयासि वशीकरोषि । अभिभवसीत्यर्थः । तेन बलेन नः अस्मभ्यम् अधि वोचत । अधिवचनं पक्षपातेन वचनम् । ‡“अस्यतिवक्ति०” इत्यादिना ह्लेः अङ् आदेशः । “वच उम्” इति उम् आगमः‡ ॥

तृतीया ॥

येन देवा असुराणामोजांस्यवृणीध्वम् ।
तेना नः शर्म यच्छत ॥ ३ ॥

येन । देवाः । असुराणाम् । ओजांसि । अवृणीध्वम् ।
तेन । नः । शर्म । यच्छत ॥ ३ ॥

हे देवाः येन आत्मीयेन बलेन असुराणाम् सुरविरोधिनां क्षेपणशीलानां वा शत्रूणाम् ओजांसि बलानि अवृणीध्वम् ततः पृथक्कृत्य यूयं संभक्तवन्तः तेन बलेन नः अस्मभ्यं शर्म सुखं यच्छत प्रयच्छत । ‡दाण् दाने । शपि “पाघ्रा०” इत्यादिना यच्छादेशः‡ ॥

चतुर्थी ॥

यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।
एवा परि ष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ १ ॥

यथा । वृक्षम् । लिबुजा । समन्तम् । परिऽसस्वजे ।

एव । परि । स्वजस्व । माम् । यथा । माम् । कामिनी । असः । यथा ।
मत् । न । अपऽगाः । असः ॥ १ ॥

[लिबुजा] । ॥ लिबुजा व्रततिर्भवतीति यास्कः [नि० ६.२८] ॥ । यथा ताम्बूलादिवल्ली स्वाश्रयं वृक्षं समन्तम् सर्वतः परिषस्वजे आश्लिष्यति । ॥ ष्वञ्ज परिष्वङ्गे । अस्मात् छान्दसो लिट् । "अन्थिग्रन्थिदम्भिस्वञ्जीनाम् इति वक्तव्यम्" इति लिटः कित्त्वाद् अनुनासिकलोपः ॥ । हे जाये एव एवं मां परि ष्वजस्व आश्लिष्य । यथा येन प्रकारेण मां कामिनी कामयमाना असः भवेः यथा च मत् सकाशाद् अपगाः अपगन्त्री च. नासः न भवसि । तथाहं त्वाम् अनेन प्रयोगेण वशीकरोमीत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

यथा सुपर्णः प्रपतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम् ।
एवा नि हन्मि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ २ ॥

यथा । सुऽपर्णः । प्रऽपतन् । पक्षौ । निऽहन्ति । भूम्याम् ।
एव । नि । हन्मि । ते । मनः । यथा । माम् । कामिनी । असः । यथा ।
मत् । न । अपऽगाः । असः ॥ २ ॥

यथा सुपर्णः गरुत्मान् प्रपतन् स्वावासस्थानाद् उत्तिष्ठन् भूम्यां स्वकीयौ पक्षौ निहन्ति वीजनवेगेन ताडयति हे योषित् एवं एवमेव ते त्वदीयं मनः हृदयं नि हन्मि नितरां पीडयामि । अस्मद्वशं करोमीत्यर्थः । यथा माम् इत्यादि पूर्ववद् वाक्यशेषस्य योजना ॥

षष्ठी ॥

यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः ।
एवा पर्येमि ते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥ ३ ॥

---

१ P P̂ J C$^{p}$ °गा for °गाः. We with Sâyaṇa whom K follows. २ P पृथ्यौ. J पृक्षौ. P̂ पृक्षो. ३ K K$^{m}$ B$^{h}$ V पर्येति. We with A D R S C$^{m}$s.

यथा । इमे इति । द्यावापृथिवी इति । सद्यः । परिऽएति । सूर्यः ।
एव । परि । एमि । ते । मनः । यथा । माम् । कामिनी । असः । यथा ।
मत् । न । अपऽगाः । असः ॥ ३ ॥

इमे परिदृश्यमाने द्यावापृथिवी दिवं च पृथिवीं च [यथा] सूर्यः सर्वस्य प्रेरको भास्करः सद्यः शीघ्रं पर्येति परितो व्याप्नोति एव एवं हे योषित् ते त्वदीयं मनः अहं पर्येमि परितः प्राप्नोमि । यथा माम् इत्यादि व्याख्यातम् ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

"वाञ्छ मे" इति तृचस्य "यथा वृक्षं लिबुजा" इति तृचवद् विनियोगो द्रष्टव्यः । सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

["पृथिव्यै श्रोत्राय" इति तृचेन सर्वसंपत्कर्मसु आज्यं जुहुयात् ।] "पृथिव्यै श्रोत्रायेति जुहोति" इति [कौ० २. ३] सूत्रितत्वात् ॥

तत्र प्रथमा ॥

वाञ्छ मे तन्वं[1] पादौ वाञ्छाक्ष्यौ[2] वाञ्छ सक्थ्यौ[3] ।
अक्ष्यौ[3] वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु[4] ॥ १ ॥
वाञ्छ । मे । तन्वम् । पादौ । वाञ्छ । अक्ष्यौ[3] । वाञ्छ । सक्थ्यौ[3] ।
अक्ष्यौ[3] । वृषण्यन्त्याः । केशाः । माम् । ते । कामेन । शुष्यन्तु[4] ॥ १ ॥

हे कामिनि मे मम तन्वम् शरीरं वाञ्छ कामयस्व । ॥ वाञ्छि इच्छायाम् इति धातुः ॥ । तथा मदीयौ पादौ वाञ्छ इच्छ । अक्ष्यौ मदीये अक्षिणी सक्थ्यौ सक्थिनी च वाञ्छ कामयस्व । मत्परतन्त्रा भवेत्यर्थः । ॥ "ई च द्विवचने" इति ईकारः ॥ । तत्परतन्त्र्यम् आत्मनः आविष्करोति अक्ष्याविति । वृषण्यन्त्याः वृषाणं सेचनसमर्थं युवानम् आत्मन इच्छन्त्याः कामिन्यास्ते तव अक्ष्यौ अक्षि-

१ See note १ on the previous page. २ A B $^{b}$B ३ for १. We with D K $^{m}$K R $^{m}$S V.
३ A R $^{m}$S १ for ३. We with B $^{b}$B D K $^{m}$K V. ४ P शुष्यतु.

णी केशाश्च लावण्यातिशयेन कामेन चित्तविकारेण मां शुष्यन्तु शोषयन्ति । परितापयन्तीत्यर्थः । अतो वाञ्छेति संबन्धः ॥

द्वितीया ॥

मम त्वा दोषणिश्रिषं कृणोमि हृदयश्रिषम् ।
यथा मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥

मम । त्वा । दोषणिऽश्रिषम् । कृणोमि । हृदयऽश्रिषम् ।
यथा । मम । क्रतौ । असः । मम । चित्तम् । उपऽआयसि ॥ २ ॥

हे कामिनि त्वा त्वां [मम] दोषणिश्रिषम् बाहौ आसक्तां हृदयश्रिषम् हृदयासक्तां च कृणोमि करोमि । श्रिष आलिङ्गने इत्यस्मात् कर्तरि क्विप् । "पद्दन्०" इत्यादिना दोःशब्दस्य दोषन्नादेशः । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति सप्तम्या अलुक् । यथा येन प्रकारेण मम क्रतौ मदीये संकल्पे असः तत्परतन्त्रा भवसि यथा च [मम] मदीयं चित्तम् उपायसि उपगच्छसि । मदधीना भवसीत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् ।
गावो घृतस्य मातरोमूं सं वनयन्तु मे ॥ ३ ॥

यासाम् । नाभिः । आऽरेहणम् । हृदि । सम्ऽवननम् । कृतम् ।
गावः । घृतस्य । मातरः । अमूम् । सम् । वनयन्तु । मे ॥ ३ ॥

यासां स्त्रीणां नाभिः नाभ्युपलक्षितम् अङ्गम् आरेहणम् आलेहनम् आस्वादनीयं भवति यासां च हृदि हृदये संवननम् संभजननिमित्तं वशीकरणं कृतम् विधात्रा निर्मितम् ता अमूः परिदृश्यमानाः स्त्रीः [घृतस्य] घृतोपलक्षितस्नेहद्रव्यस्य मातरः निर्मात्र्यो गावः मे मह्यं सं वनयन्तु वशीकुर्वन्तु ॥

चतुर्थी ॥

पृथिव्यै श्रोत्राय वनस्पतिभ्योन्नयेधिपतये स्वाहा ॥ १ ॥

---

१ P. °श्रियम्.

पृथिव्यै । श्रोत्राय । वनस्पतिभ्यः । अग्नये । अधिपतये । स्वाहा ॥ १ ॥

पृथिव्यै पृथिवीदेवतायै श्रोत्राय शब्दग्रहणसाधनभूताय इन्द्रियाय । "दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्" [ऐ० आ० २. ४. २] इति श्रुतेस्तस्य दिगात्मकत्वाद् दिशां च पृथिव्येकदेशसंयोगित्वात् पृथिवीश्रोत्रयोर्मिथः संबन्धः । वनस्पतिभ्यः पृथिव्याम् अवस्थितेभ्यो वृक्षेभ्यः तदधिष्ठातृदेवताभ्यः ईदृश्याः पृथिव्या योऽग्निरधिपतिः तस्मै [च] स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु ॥

पञ्चमी ॥

प्राणायान्तरिक्षाय वयोभ्यो वायवेधिपतये स्वाहा ॥ २ ॥

प्राणाय । अन्तरिक्षाय । वयःऽभ्यः । वायवे । अधिऽपतये । स्वाहा ॥ २ ॥

मुखनासिकाभ्यां संचरन् वायुः प्राणः । तत्सहचरं गन्धग्राहकम् इन्द्रियं तदाश्रयभूता नासिका च प्राणशब्देन विवक्ष्यते । "वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्" इति हि श्रुतम् [ऐ० आ० २. ४. २] । तस्मै प्राणाय तत्संबन्धिने अन्तरिक्षाय तत्र ये संचरन्ति वयांसि पक्षिणस्तेभ्यो वयोभ्यः तस्यान्तरिक्षस्य अधिपतये अधिष्ठात्रे वायवे च इदं हविः स्वाहा स्वाहुतम् अस्तु ॥

दिवे चक्षुषे नक्षत्रेभ्यः सूर्यायाधिपतये स्वाहा ॥ ३ ॥

दिवे । चक्षुषे । नक्षत्रेभ्यः । सूर्याय । अधिऽपतये । स्वाहा ॥ ३ ॥

दिवे द्युलोकाय चक्षुषे । रूपग्रहणसाधनम् इन्द्रियं चक्षुः तद्गोलकं च तस्मै । "आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्" [ऐ० आ० २. ४. २] इति श्रुतेः । तस्य आदित्यात्मकत्वात् द्युलोकस्य च तत्संचारस्थानत्वात् अनयोः संबन्धः । नक्षत्रेभ्यः द्युलोकस्थेभ्यः ईदृश्या दिवः अधिपतये स्वामिने सूर्याय प्राणात्मना सर्वप्राणिनां प्रेरकाय दिवाकराय स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु । ※"राजसूयसूर्य०" इत्यादिना सुवतेः क्यपि निपातनाद् रूपसिद्धिः※ । तस्य च जगत्प्राणरूपता अन्यत्र श्रूयते ।

"योसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूताना प्राणान् आदाय उदेति" इति [तै० आ० १. १४. १] ॥

पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे षष्ठकाण्डे प्रथमोनुवाकः ॥

द्वितीयेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "शमीम् अश्वत्थः" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन पुंसवनकर्मणि शमीगर्भाश्वत्थाग्निं मधुमन्थे प्रक्षिप्य अभिमन्त्र्य स्त्रियं पाययेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि तथाविधमेवाग्निं कृष्णोर्णया वेष्टयित्वा अनेन तृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य स्त्रिया बध्नीयात् ॥

आह च कौशिकः । "शमीम् अश्वत्थ इति मन्त्रोक्ते अग्निं मथि- "त्वा [पुंष्याः] सर्पिषि पैङ्गमिव मधुमन्थे पाययति कृष्णोर्णाभिः परि- "वेष्ट्य[3] बध्नाति" इति [कौ० ४. ११] ॥

"परि द्यामिव" इति तृचेन सर्पविषभैषज्यकर्मणि मधुक्रीडम् अभिमन्त्र्य विषावृतं पाययेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन तृचेन "ब्राह्मणो जज्ञे" [४. ६] इति सूक्तोक्तजपाचमनादीनि कर्माणि कुर्यात् ॥

"परि द्याम् इवेति मधुशीभं[4] पाययति जपादींश्च" इति कौशिकसूत्रम् [कौ० ४. ५] ॥

तत्र प्रथमा ॥

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम् ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वा भरामसि ॥ १ ॥

शमीम् । अश्वत्थः । आऽरूढः । तत्र । पुमऽसुवनम् । कृतम् ।
तत् । वै । पुत्रस्य । वेदनम् । तत् । स्त्रीषु । आ । भरामसि ॥ १ ॥

१ B °सुवनं corrected into °सवनं. K K[m] V °सवनं. We with A B B[p] D R S[m] P P[a] J C[s] C[p].

1 S' कृष्णौ°. 2 So S'. *Kausika* has पैङ्गमि°. 3 S' °वेष्टं. We with *Kausika*. 4 S' °शीवं. We with *Kausika*.

शमीम् एतत्संज्ञं वृक्षम् [अश्वत्थः] अश्वत्थाख्यो वृक्ष आरूढः अधिरूढः । अग्निदाहशमनहेतुर्वृक्षः शमी । "प्रजापतिरग्निम् असृजत । सोबिभेत् प्र मा धक्ष्यतीति । तं शम्याशमयत् । तच्छम्यै शमित्वम्" इति [तै०ब्रा०१.१.३.११] । स च अग्निः अश्वो भूत्वा यस्मिन् वृक्षे पुरा[1] संवत्सरम् अवात्सीत् स वृक्षः अश्वत्थः । "सुपि स्थः" इति अश्वशब्दोपपदात् तिष्ठतेः कप्रत्ययः । पृषोदरादिः । श्रूयते हि । "अग्निर्देवेभ्यो निलायत । अश्वो रूपं कृत्वा । सोऽश्वत्थे संवत्सरम् अतिष्ठत् । तद् अश्वत्थस्याश्वत्थत्वम्" इति [तै०ब्रा०१.१.३.९] ॥ तद् अयम् अर्थः । शमी स्त्री । अश्वत्थः पुमान् । स च अग्निलक्षणं पुत्रम् उत्पादयितुं ताम् अधिरूढः । तस्या उपरि उत्पन्न इत्यर्थः । ईदृशाद् अश्वत्थाद् अग्निमन्थनार्थम् अरण्योराहरणम् । तथा च श्रुतम् । "श-
"मीगर्भाद् अग्निं मन्थति । एषा वा अग्नेर्यज्ञिया तनूः । तामेवास्मै ज-
"नयति" इति [तै०ब्रा०१.१.९.१] । तत्र तादृशे अश्वत्थे पुंसवनम् पुमान् सूयते येन कर्मणा तत् पुंसवनम् तत् कृतम् अनुष्ठितम् । तद् वै तत् खलु पुत्रस्य वेदनम् लम्भकं तत् पुत्रजननिमित्तं कर्म स्त्रीषु आभरामसि आहरामः संपादयामः । "इदन्तो मसिः" ॥

द्वितीया ॥

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनु षिच्यते ।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रवीत् ॥ २ ॥

पुंसि । वै । रेतः । भवति । तत् । स्त्रियाम् । अनु । सिच्यते ।
तत् । वै । पुत्रस्य । वेदनम् । तत् । प्रजापतिः । अब्रवीत् ॥ २ ॥

पुंसि वै पुरुषे खलु प्रथमं बीजभूतं रेतः आश्रितं भवति । तत् गर्भाधानकर्मणा स्त्रियाम् अनु सिच्यते गर्भाशये प्रक्षिप्यते । तत् खलु निषिक्तं रेतः पुत्रस्य वेदनम् उत्पत्स्यमानस्य पुत्रस्य लम्भकम् । "पुरुषे ह वा अयम् आदितो गर्भो भवति" [ऐ०आ०२.५.१] इत्यादिकम् ऐतरेयकम् अत्र द्रष्टव्यम् । तद् एतत् पुंसवनं कर्म प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा अब्रवीत् । पुत्रजननोपायत्वेन लोके प्रकाशितवान् इत्यर्थः ॥

1 S' पुराग्निः. for पुरा.

तृतीया ॥

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीकॢपत् ।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत् पुमांसमु दधदिह ॥ ३ ॥
प्रजाऽपतिः । अनुऽमतिः । सिनीवाली । अचीक्लृपत् ।
स्त्रैसूयम् । अन्यत्र । दधत् । पुमांसम् । ऊं इति । दधत् । इह ॥ ३ ॥

प्रजापतिः संवत्सरात्मकः अनुमतिः पौर्णमासीदेवता सिनीवाली अमावास्यादेवता च निषिक्तं गर्भाशयस्थं रेतः अचीकॢपत् हस्तपादाद्यवयवकल्पनया समर्थम् अकार्षीत् । ‘कृपू सामर्थ्ये इत्यस्मात् लुङि चङि रूपम्’ । किं कुर्वन् । स्त्रैसूयम् स्त्रीप्रसवसंबन्धि निमित्तम् अन्यत्र अस्मत्तो व्यतिरिक्ते स्थाने दधत् स्थापयन् इह अस्मासु पुमांसमु पुमपत्यमेव दधत् कुर्वन् । संवत्सरकालावसाने समर्थम् अकार्षीद् इत्यर्थः ॥

चतुर्थी ॥

परि द्यामिव सूर्योहीनां जनिमागमम् ।
रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् ॥ १ ॥
परि । द्याम्ऽइव । सूर्यः । अहीनाम् । जनिम । अगमम् ।
रात्री । जगत्ऽइव । अन्यत् । हंसात् । तेन । ते । वारये । विषम् ॥ १ ॥

सूर्यो द्यामिव अन्तरिक्षमिव अहीनाम् सर्पाणां जनिम कृत्स्नं जन्म सर्पकुलम् अहं पर्यागमम् परिप्राप्तवान् अस्मि रात्री जगदिव । ‘“रात्रेश्चाजसौ” इति ङीप्’ । यथा रात्रिः स्वकीयेन तमसा कृत्स्नं जगद् व्याप्नोति एवम् हंसात् हन्ति गच्छति व्याप्नोतीति हंस आत्मा तस्माद् अन्यत् कृत्स्नं शरीरं यद् विषं व्याप्नोति हे विषग्रस्त ते त्वदीयं तद् विषं तेन प्रसिद्धेन भैषज्येन वारये निवारयामि ॥

पञ्चमी ॥

यद् ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा ।

१ D °त्र.

यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् ॥ २ ॥

यत्। ब्रह्मऽभिः। यत्। ऋषिऽभिः। यत्। देवैः। विदितम्। पुरा।
यत्। भूतम्। भव्यम्। आसन्ऽवत्। तेन। ते। वारये। विषम् ॥ २ ॥

यद् भैषज्यं ब्रह्मभिः मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्वा साध्यं यच्च ऋषिभिः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिः अगस्त्यवसिष्ठप्रमुखैः परिज्ञातं यच्च भैषज्यं पुरा पुरातनकाले देवैः इन्द्रादिभिः विदितम् ज्ञातं यच्च भूतम् भूतकालावच्छिन्नं भव्यम् भावि भविष्यकालावच्छिन्नम् आसन्वत् आस्ययुक्तम्। तेनोच्चार्यमाणमन्त्रसहितम् इत्यर्थः। ‡ "पदन्०" इत्यादिना आस्यशब्दस्य मतौ आसन् आदेशः ‡। तेन सर्वेण भैषज्येन ते त्वच्छरीरस्थं विषं वारये निवारयामि ॥

षष्ठी ॥

मध्वा पृञ्चे नद्यः[1] पर्वता गिरयो मधु।
मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥ ३ ॥

मध्वा। पृञ्चे। नद्यः। पर्वताः। गिरयः। मधु।
मधु। परुष्णी। शीपाला। शम्। आस्ने। अस्तु। शम्। हृदे ॥ ३ ॥

मधु मधुरं विषहरम् अमृतम् आ पृञ्चे आसमन्तात् त्वच्छरीरे संपृक्तं करोमि। ‡ पृची संपर्के ‡ ॥ नद्यः गङ्गाद्याः पर्वताः हिमवदाद्या महाशैलाः गिरयः पर्यन्तपर्वताश्च विषहरं मधु त्वच्छरीरे आसिञ्चन्तु [इति] विशेषतो विषहरत्वात् प्रार्थ्यते। परुष्णी नाम नदी शीपाला शीपालः शैवालम् तद्युक्ता। ‡ मत्वर्थीयः अकारः ‡। ईदृशी परुष्णी नाम नदी मधु आसिञ्चतु। ईदृशं मधु विषहरम् अमृतम् आस्ने आस्याय शम् सुखकरम् अस्तु। ‡ पूर्ववद् आस्यशब्दस्य

---

१ So all our MSS. and Vaidikas, none reading or reciting मध्वा पृ°. २ KS[m] ३ for १. K[m] नद्यां १. We with A B B[h] D R V Cs. ३ B K K[m] R P P[2] J °स्ते. We with A B[h] D S[m] V' Cs Cr.

1 S' शापाला.

आसन् आदेशः ✕ । हृदे हृदयाय च शम् सुखकरम् अस्तु ॥

[इति] षष्ठकाण्डे द्वितीयानुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"नमो देववधेभ्यः" इति तृचेन जयकामः स्वसेनां परितः प्रतिदिशम् उपस्थानं कुर्यात् । "नमो देववधेभ्य इत्युपतिष्ठते" इति हि सूत्रम् [कौ० २. ५] ॥

तथा वैश्यस्य संग्रामजयार्थं प्रहरणोद्यतान् शत्रून् पश्यन् एनं तृचं जपेत् ॥

तथा अनेनैव तृचेन आज्यहोमम् सक्तुहोमम् धनुरिध्मेऽग्नौ धनुःसमिदाधानम् शरेध्मे शरसमिदाधानम् संपातितांभिमन्त्रितधनुःप्रदानं च कुर्यात् ॥

"नमो देववधेभ्य इत्यन्वाह वैश्याय प्रदानान्तानि" इति हि सूत्रम् [कौ० २. ६] ॥

तथा अनेनैव तृचेन सर्पवृश्चिकादिभयनिवृत्तिकामः "येस्यां स्थ" [३. २६] इत्यत्रोक्तानि अभिमन्त्रितसिकताप्रक्षेपणादीनि गुडूचीहोमान्तानि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रं च तत्रैव उदाहृतम् ॥

तथा आवसथ्याधाने ऋव्याच्छमनानन्तरं गृहम् आगत्य अनेन तृचेन आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "ये अग्नयः [३. २१] नमो देववधेभ्यः [६. १३] अग्नेभ्यावर्तिन्" इत्यादि [कौ० ९. ४] ॥

तथा अनेन तृचेन ब्राह्मणायुधधारणदेवताप्रतिमानर्तनहसनाद्यद्भुतेषु तच्छान्त्यर्थम् आज्यहोमं कुर्यात् । सूत्रितं हि । "अथ यत्रैतद् ब्राह्मणा आयुधिनो भवन्ति" इति प्रक्रम्य "मा नो विदन् [१. १९] नमो देववधेभ्यः [६. १३]" इति [कौ० १३. १२, १३] ॥

तथा यज्ञे वशापुरोडाशादिहविःषु काकोलूकश्वादिभिर्दूषितेषु सत्सु तत्प्रायश्चित्तार्थम् अनेन तृचेन आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अथ य-
"त्रैतद् वपां वा हवींषि वा वयांसि द्विपदं चतुष्पदं वाभिमृश्य गच्छे-
"युर्ये अग्नयः [३. २१] नमो देववधेभ्यः [६. १३] इति सूक्तेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः" इति [कौ० १३. ३१] ॥

1 This is a sautra mantra. 2 So S'. *Kausika*: अवगच्छे°.

"अस्थिसंसम्" इति तृचेन श्लेष्मभैषज्यकर्मणि संपातितामभिमन्त्रितवृक्षशकलेन सह व्याधितम् अवसिञ्चेद् मार्जयेद् आचामयेच्च । "अस्थिसंसम् इति शकलेन अप्सु संपातवतावसिञ्चति" इति [कौ० ४. ५] ॥

तत्र प्रथमा ॥

नमो॑ देव॒वधे॑भ्यो॒ नमो॑ राज॒वधे॑भ्यः ।
अथो॒ ये विश्या॑नां॒ व॒धास्तेभ्यो॑ मृत्यो॒ नमो॑स्तु ते ॥ १ ॥

नमः॑ । दे॒व॒ऽव॒धेभ्यः॑ । नमः॑ । रा॒ज॒ऽव॒धेभ्यः॑ ।
अथो॒ इति॑ । ये । विश्या॑नाम् । व॒धाः । तेभ्यः॑ । मृ॒त्यो॒ इति॑ । नमः॑ । अ॒स्तु॒ । ते॒ ॥ १ ॥

देववधेभ्यः देवानाम् इन्द्रादीनां वधाः हननसाधनानि आयुधानि । तेभ्यो नमोस्तु । यथा तेऽस्मान् परिहरन्ति तथा तांस्तोषयाम इत्यर्थः । ✕"नमःस्वस्ति०" इति चतुर्थी✕ । यद्वा हे मृत्यो तुभ्यं नमोस्तु । कस्माद्धेतोः । देववधेभ्यः देवकृतहननेभ्यो रक्षणात् । ✕"भीत्रार्थानाम्०" इति पञ्चमी । "हनश्च वधः" इति करणे भावे वा अप् प्रत्ययः तत्संनियोगेन वधादेशश्च । तस्य च अन्तोदात्तत्वाद् उदात्तनिवृत्तिस्वरेण अप. उदात्तत्वम्✕ ॥ तथा राजवधेभ्यः राज्ञः संबन्धिभ्य आयुधेभ्यो नमोस्तु ॥ अथो अपि च विश्यानां वैश्यजातीयानां ये वधास्तेभ्यश्च हे मृत्यो ते तुभ्यं च नमोस्तु । देववधादीन् अस्मत्तः परिहरेत्यर्थः ॥

द्वितीया ॥

नम॑स्ते अधिवा॒काय॑ परावा॒काय॑ ते॒ नमः॑ ।
सुम॒त्यै मृ॑त्यो ते॒ नमो॑ दुर्म॒त्यै त॑ इ॒दं नमः॑ ॥ २ ॥

नमः॑ । ते॒ । अधि॑ऽवा॒काय॑ । परा॑ऽवा॒काय॑ । ते॒ । नमः॑ ।
सु॒ऽम॒त्यै । मृ॒त्यो॒ इति॑ । ते॒ । नमः॑ । दुः॒ऽम॒त्यै । ते॒ । इ॒दम् । नमः॑ ॥ २ ॥

हे मृत्यो ते तव संबन्धिने अधिवाकाय अधिवचनं पक्षपातेन वच-

१ A B विश्यांणां. २ P मृत्यो इति.

नम् तत् कुर्वते शोभनाय दूताय नमः । तथा ते त्वदीयाय परावाकाय पराभवस्य वक्त्रे पराभववचनायैव वा नमोस्तु । हे मृत्यो ते तव सुमत्यै शोभनायै अनुग्रहात्मिकायै बुद्ध्यै नमोस्तु । ते तव संबन्धिन्यै दुर्मत्यै निग्रहबुद्ध्यै इदं क्रियमाणं नमोस्तु ॥

तृतीया ॥

नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः ।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नमः ॥ ३ ॥

नमः । ते । यातुऽधानेभ्यः । नमः । ते । भेषजेभ्यः ।
नमः । ते । मृत्यो इति । मूलेभ्यः । ब्राह्मणेभ्यः । इदम् । नमः ॥ ३ ॥

हे मृत्यो ते तव संबन्धिभ्यो यातुधानेभ्यः पीडाकरेभ्यो नमोस्तु ॥ ते तव संबन्धिभ्यो भेषजेभ्यः रक्षाकरेभ्यश्च नमः ॥ हे मृत्यो ते तव संबन्धिभ्यो मूलेभ्यः मूलबलभूतेभ्यः पुरुषेभ्यो नमोस्तु ॥ तथा ब्राह्मणेभ्यः शापानुग्रहसमर्थेभ्यो वेदविद्भ्यः इदं नमोस्तु ॥

चतुर्थी ॥

अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम् ।
बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु ॥ १ ॥

अस्थिऽस्रंसम् । परुःऽस्रंसम् । आऽस्थितम् । हृदयऽआमयम् ।
बलासम् । सर्वम् । नाशय । अङ्गेऽस्थाः । यः । च । पर्वऽसु ॥ १ ॥

अस्थिस्रंसम् श्लेष्मरोगेण अस्थ्नां स्रंसनम् । परुस्रंसम् परुषां पर्वणां शरीरावयवसंधीनां स्रंसनम् । आस्थितम् संमन्तात् शरीरं व्याप्य स्थितं हृदयामयम् श्लेष्मकृतं हृद्रोगम् । ईदृशं सर्वम् बलासम् बलम् अस्यति क्षिपतीति बलासः कासश्वासात्मकश्लेष्मरोगः तं नाशय । अनुष्ठेयार्थः संबोध्यते । यश्च बलासः अङ्गेष्ठाः हस्तपादाद्यङ्गेऽवस्थितः । यश्च पर्वसु तत्संधिषु आश्रितः । तं बलासम् इति संबन्धः ॥

१ All our Saṁhitā MSS. and Vaidikas omit the visarga after °रु, except **A**. Sāyaṇa's text too omits the visarga.

पञ्चमी ॥

निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा ।
छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वा इव ॥ २ ॥

निः । बलासम् । बलासिनः । क्षिणोमि । मुष्करम् । यथा ।
छिनद्मि । अस्य । बन्धनम् । मूलम् । उर्वार्वाःऽइव ॥ २ ॥

बलासिनः श्लेष्मरोगिणः पुरुषस्य बलासम् श्लेष्मरोगं निःशेषेण क्षिणोमि क्षयं प्रापयामि । तत्र दृष्टान्तः पुष्करम् इति । महाह्रदे प्ररूढं पुष्करं यथा समूलम् उच्छिद्यते तथा व्याधितशरीरात् तं रोगं समूलम् उन्मूलयामीत्यर्थः । एतदेव विवियते । अस्य रोगस्य बन्धनम् शरीरसंश्लेषनिमित्तं मूलं छिनद्मि । यथा उर्वार्वाः कर्कट्याः फलस्य परिपक्वस्य वृन्तं स्वयमेव विश्लिष्टं भवति तद्वत् । रोगनिदानम् अनायासेन विश्लेषयामीत्यर्थः । "उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय" इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ०७. ५९. १२] ॥

षष्ठी ॥

निर्बलासेतः प्र पताशुंगः शिशुको यथा ।
अथो इष्ट इव हायनोप द्राह्यवीरहा ॥ ३ ॥

निः । बलास । इतः । प्र । पत । आशुंगः । शिशुकः । यथा ।
अथो इति । इष्टःऽइव । हायनः । अप । द्राहि । अवीरऽहा ॥ ३ ॥

हे बलास इतः अस्मात् शरीराद् निष्प्र पत निष्क्रम्य प्रकर्षेण दूरं गच्छ । यथा येन प्रकारेण आशुंगः आशुगामी शुंशुकः एतत्संज्ञो मृगो दूरं धावति तद्वद् गच्छ ॥ अथो अपि च इष्टः इव हायनः गतः संवत्सरो यथा न पुनरावर्तते तथा अवीरहा अस्मदीयानां वीराणाम् अहन्ता सन् अप द्राहि अपक्रम्य कुत्सितां गतिं गच्छ । ⧗ द्रा कुत्सितायां गताविति धातुः ⧗ ॥

[इति] षष्ठकाण्डे द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

---

1 S' उत्सिद्य°. 2 S' कर्कर्याः.

"उत्तमो असि" इति तृचेन पुष्टिकामः पालाशमणिं वासितं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । "उत्तमो असि[६.१५] इति मन्त्रोक्तम् अक्षितास्ते[६.१४२.३] इति यवमणिम्" इति कौशिकसूत्रम् [कौ० ३.२]॥

"आवँयो अनावँयो" इति चतुर्ऋचेन अक्षिरोगभैषज्ये सार्षपतैलेन संपातितं सर्षपकाण्डमणिम् अभिमन्त्र्य रोगार्तस्य बध्नीयात् ॥

तथा अनेन चतुर्ऋचेन आज्यं हुत्वा सर्षपकाण्डं संपात्य सार्षपतैलेन अभ्यज्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा अनेन चतुर्ऋचेन सार्षपतैलेन भृष्टं सर्षपपत्रशाकं चक्षूरोगग्रस्ताय प्रयच्छेत् ॥

तथा चत्वारि शाकवृक्षफलानि अभिमन्त्र्य व्याधिताय प्रयच्छेत् ॥

तथा मूलक्षीरम् अभिमन्त्र्य व्याधितस्य अक्षिणी अञ्ज्यात् ॥

तथा अनेन चतुर्ऋचेन मूलक्षीरं संपात्य अभिमन्त्र्य भक्षयेत् ॥

सूत्रितं हि । "आवयो इति सार्षपतैलसंपातं बध्नाति । काण्डं प्रलिप्य "पृक्तं शाकं प्रयच्छति । चत्वारि शाकफलानि प्रयच्छति । क्षीरलेपम् "अङ्क्ते क्ष्णाति" इति [कौ० ४. ६] ॥

अत्र "अलसाला"[४] इत्यनया ऋचा अन्नस्वस्त्ययनकामः तिस्रः सस्यवल्लीरभिमन्त्र्य क्षेत्रमध्ये निखनेत् । सूत्रितं हि । "अलसालेत्यन्नभेषजं त्रीणि शलाञ्जालाग्राण्युर्वरामध्ये निखनति" इति [कौ० ७. २] ॥

तत्र प्रथमा ॥

उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सो३ऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥ १ ॥

उत्ऽतमः । असि । ओषधीनाम् । तव । वृक्षाः । उपऽस्तयः ।
उपऽस्तिः । अस्तु । सः । अस्माकम् । यः । अस्मान् । अभिऽदासति ॥ १ ॥

हे पलाशवृक्ष मण्युपादानभूत त्वम् ओषधीनाम् । ओषः पाकः एषु धीयते इति ओषधिशब्देन स्थावरमात्रं विवक्षितम् । स्थावराणाम् ओष-

१ DKKSVCs १ for ३. AR have ० kampa. We with B.

1 S' आवयोरनावयो.

धिवनस्पतीनाम् उत्तमः उत्कृष्टः असि सोमपर्णोद्भवत्वात्। "तृतीयस्याम् इतो दिवि सोम आसीत्" इति प्रक्रम्य तैत्तिरीयके समाम्नातम्। "तस्य पर्णम् अच्छिद्यत। तत् पर्णोभवत्। तत् पर्णस्य पर्णत्वम्" इति [तै० ब्रा० १.१.३.१०]। हे पलाश वृक्ष अन्ये वृक्षास्तव उपस्तयः उपासकाः। न्यग्भूता इत्यर्थः। त्वत्प्रसादाद् अस्माकं स तादृशः शत्रुः उपस्तिरस्तु उपासकः उपक्षीणो भवतु। यः शत्रुः अस्मान् अभिदासति उपक्षपयति॥

द्वितीया॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति।
तेषां सा वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः॥ २॥

सऽबन्धुः। च। असबन्धुः। च। यः। अस्मान्। अभिऽदासति।
तेषाम्। सा। वृक्षाणामऽइव। अहम्। भूयासम्। उत्ऽतमः॥ २॥

सबन्धुः समानबन्धनः समानजन्मा दायादः। असबन्धुः असमानजन्मा असगोत्रजः। य एवमात्मक उभयविधः शत्रुः अस्मान् अभिदासति उपक्षपयति तेषां शत्रूणां मध्ये अहम् उत्तमः उत्कृष्टतमः भूयासम्। तत्र दृष्टान्तः। यथा सा पलाशात्मिका ओषधिः वृक्षाणाम् उत्तमा भवति तद्वद् अहम् उत्तमो भूयासम् इति॥

तृतीया॥

यथा सोम ओषधीनामुत्तमो हविषां कृतः।
तलाशां वृक्षाणामिवाहं भूयासमुत्तमः॥ ३॥

यथा। सोमः। ओषधीनाम्। उत्ऽतमः। हविषाम्। कृतः।
तलाशा। वृक्षाणामऽइव। अहम्। भूयासम्। उत्ऽतमः॥ ३॥

यथा येन प्रकारेण ओषधीनाम् अन्यासां लतानां मध्ये लतात्मकः सोमः उत्तमः उत्कृष्टः हविषाम् चरुपुरोडाशादीनां मध्ये कृतः विधात्रा निर्मितः तथा वृक्षाणां मध्ये पलाश इव च अहं सजातानाम् उत्तमो भूयासम्॥

चतुर्थी ॥

आवयो अनावयो रसस्त उग्र आवयो ।
आ ते करम्भमद्मसि ॥ १ ॥

आवयो इति । अनावयो इति । रसः । ते । उग्रः । आवयो इति ।
आ । ते । करम्भम् । अद्मसि ॥ १ ॥

आवयतिः अत्तिकर्मा । तस्माद् औणादिकः कर्मणि उप्रत्ययः । हे आवयो रोगनिवृत्त्यर्थम् अद्यमान सर्षप अनावयो अभक्ष्यमाण सर्षपकाण्ड ते तव रसः तैलात्मकः उग्रः उद्भूर्णबलः । व्याधिनिवर्तनक्षम इत्यर्थः । हे आवयो ते त्वदीयं करम्भम् सार्षपतैलमिश्रभृष्टं तत्पत्रशाकम् आ अद्मसि मन्त्राभिमन्त्रितम् आदाय भक्षयामः । "इदन्तो मसिः" ॥

पञ्चमी ॥

विहल्हो नाम ते पिता मदावती नाम ते माता ।
स हिन त्वमसि यस्त्वमात्मानमावयः ॥ २ ॥

विऽहल्हः । नाम । ते । पिता । मदऽवती । नाम । ते । माता ।
सः । हिन । त्वम् । असि । यः । त्वम् । आत्मानम् । आवयः ॥ २ ॥

हे सर्षपशाक ते तव विहलाख्यः कश्चित् पिता जनकः । नामशब्दः प्रसिद्धौ । मदावती नाम ते तव माता जननी । स हि स खलु त्वं नासि न भवसि । यस्त्वम् आत्मानम् आत्मीयं स्वरूपं पत्रादिकम् आवयः पुरुषेण भक्षितम् अकरोः । प्रशस्तमातापितृजन्यत्वाद् आत्मनो हानिं प्राप्यापि परोपकारपरो भवसीत्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

तौविलिकेवेलयाबायमैलब ऐलयीत् ।
बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल ॥ ३ ॥

---

१ So A B B$^{b}$ B D K R S V C$^{a}$. K सहिनस्त्वमसि! P P J K C$^{p}$ सः । हिन । त्वम् । असि । २ So all our authorities.

तौविलिके। अव। ईलय। अव। अयम्। ऐलबः। ऐलयीत्।
बभ्रुः। च। बभ्रुऽकर्णः। च। अप। इहि। निः। आल ॥ ३ ॥

हे तौविलिके एतन्नामिके रोगनिदानभूते पिशाचि अवेलय अवाङ्मुखम् अस्मद्रोगं प्रेरय। ✕इल प्रेरणे इति धातुः✕। अयम् ऐलबः एतत्संज्ञः तत्कृतश्चक्षुर्गतो रोगविशेषः अवैलयीत् अवस्ताद् गच्छतु। ✕तस्मादेव धातोश्छान्दसो लुङ्। "नोनयतिध्वनयति०" इत्यादिना चङः प्रतिषेधः। "ह्यन्तक्षण०" इत्यादिना सिचि वृद्धिनिषेधः✕॥ बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च एतत्संज्ञावुभावपि रोगहेतू तस्माद् रोगिणः पुंसो निर्गच्छताम्। हे निराल एतत्संज्ञ रोग त्वमपि अपैहि अपगच्छ ॥

सप्तमी ॥

अलसालासि पूर्वा सिलाञ्जालास्युत्तरा।
नीलागलसाला ॥ ४ ॥

अलसाला। असि। पूर्वा। सिलाञ्जाला। असि। उत्तरा।
नीलागलसाला ॥ ४ ॥

अलसालेत्याद्यास्तिस्रः संज्ञास्तिसृणां सस्यवल्लीनाम्। तत्र अलसाला नाम काचित् सस्यविशेषस्य मञ्जरी। सा प्रथमम् उपादीयमानत्वात् पूर्वा। शिलाञ्जालाख्या तु सस्यमञ्जरी उत्तरा अपरा पश्चाद् उपादीयमानत्वात्। नीलागलसालाख्या तु तृतीया तयोर्मध्यवर्तिनी ॥

[इति] द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

"यथेयं पृथिवी मही" इति तृचेन गर्भदंहणकर्मणि धनुर्ज्यां त्रिरुद्ग्रथ्य स्त्रियं बभीयात्[1] ॥

तथा अनेन तृचेन क्षेत्रमृत्तिकाम् अभिमन्त्र्य प्रत्यृचं गर्भिणीं प्राशयेत्। कृष्णसिकता अभिमन्त्र्य गर्भिण्याः शयनं परिकिरेद् वा ॥

---

१ P[2] एलबः. २ So P P[2] J K C[1]. ३ P नीलागलसालेति नीलागलसाला

1 S' °मुखी°. 2 Sâyaṇa's text too: शला°. 3 S' स्त्रिबभी°.

तथा जम्भग्रहणेपि तच्छान्त्यर्थम् अनेन तृचेन धनुर्ज्याबन्धनादीनि कर्माणि कुर्यात् ॥

यद् आह कौशिकः । "ऋधङ्मन्त्रः [५.१.१] इत्येका यथेयं पृथिवी [६.१७] 'अच्युता' इति गर्भहंहणानि । जम्भगृहीताय प्रथमावर्जै[1] ज्यां त्रिरुद्ग्र्य बध्नाति । लोष्टान् अन्वृचं प्राशयति । श्यामसिकताभिः शयनं परिकिरति" इति [कौ० ४.११] ॥

"ईर्ष्याया ध्राजिम" इति तृचेन स्त्रीविषयेर्ष्यानिवृत्त्यर्थम् ईर्ष्योपेतं दृष्ट्वा जपेत् । तस्यैव भिक्षां वा प्रयच्छेत्[2] स्पृष्ट्वा वा जपेत् । सूत्रितं हि । "ईर्ष्याया ध्राजिम [६.१८] जनाद् विश्वजनीनात [७.४६] त्वाष्ट्रेणाहम [७.७८.३] इति प्रतिजापप्रदानाभिमर्शनानि" इति [कौ० ४.१२] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ १ ॥

यथा । इयम् । पृथिवी । मही । भूतानाम् । गर्भम् । आऽदधे ।
एव । ते । ध्रियताम् । गर्भः । अनु । सूतुम् । सवितवे ॥ १ ॥

[यथा] मही महती इयं परिदृश्यमाना पृथिवी भूतानाम् भूतजातानां प्राणिनां गर्भम् आदधे धारयति । पार्थिवशरीरोपादानभूतं गर्भं दशमासावधि बिभर्तीत्यर्थः । हे नारि ते तव गर्भः एव एवं ध्रियताम् गर्भाशये धृतः स्थिरो भवतु । कियत्पर्यन्तम् इत्याह अनुसूतवे[3] इति । दशमासभरणेन अनुसूतवे अनुप्राप्तप्रसवं तं गर्भं सवितवे प्रसवितुं प्रजनयितुम् । ✕षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । अस्मात् तुमर्थे तवेप्रत्ययः✕ ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ २ ॥

यथा । इयम् । पृथिवी । मही । दाधार । इमान् । वनस्पतीन् ।
एव । ते । ध्रियताम् । गर्भः । अनु । सूतुम् । सवितवे ॥ २ ॥

---

1 Dârila: अच्युतेति शाखान्तरीयसूक्तम्. The *Kesavi*: अच्युता द्यौरिति सूक्तम्. 2 S' प्रथमावर्जैर्ज्यां. 3 So S'.

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ३ ॥

यथा। इयम्। पृथिवी। मही। दाधार। पर्वतान्। गिरीन्।
एव। ते। ध्रियताम्। गर्भः। अनु। सूतुम्। सवितवे ॥ ३ ॥

द्वितीया ॥ मही महती पृथिवी इमान् परिदृश्यमानान् वनस्पतीन् वृक्षान् दाधार स्थिरं धारयति। तथा पर्वतान् महाशैलान् गिरीन्। गिरयस्तत्पर्यन्तवर्तिनः शिलोच्चयाः। तान् सर्वान् दाधार स्थिरं धारयति। यथा एतद् उक्तं सर्वं पृथिव्या स्थिरं धार्यते एव एवम् हे नारि ते त्वदीयो गर्भः ध्रियताम् इत्यादि पूर्ववद् योजना ॥

तृतीया ॥

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥ ४ ॥

यथा। इयम्। पृथिवी। मही। दाधार। विऽस्थितम्। जगत्।
एव। ते। ध्रियताम्। गर्भः। अनु। सूतुम्। सवितवे ॥ ४ ॥

*मही महती इयं पृथिवी विष्ठितम् विविधम् अवस्थितं चराचरात्मकं जगद् यथा येन प्रकारेण दाधार स्वात्मनि धारयति। • ✕तुजादित्वाद् अभ्यासदीर्घत्वम् ✕। अन्यद् व्याख्यातम् ॥

चतुर्थी ॥

ईर्ष्याया भाजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम्।
अग्निं हृद्य्यं१ शोकं तं ते निर्वापयामसि ॥ १ ॥

ईर्ष्यायाः। भाजिम्। प्रथमाम्। प्रथमस्याः। उत। अपराम्।
अग्निम्। हृद्य्यम्। शोकम्। तम्। ते। निः। वापयामसि ॥ १ ॥

ईर्ष्यायाः। स्त्रीविषया अक्षमा अत्र ईर्ष्या मैनाम् अन्यो द्राक्षीत् इत्ये-

---

१ A हृद्यं १. K हृदयं. २ BB$^{h}$S$^{m}$ ३ for १. We with DKRVCs.

वंरूपा । तस्या ईर्ष्यायाः भ्राजिम । ॠभ्रज गतौ इत्यस्माद् वसिवपीत्यादिना [उ० ४. १२४] भावे इञ् प्रत्ययः ॠ । वेगयुक्तां गतिं प्रथमाम् प्रथमोत्पन्नाम् निर्वापयामसीत्युत्तरत्र संबन्धः । [उत] तस्याः प्रथमस्याः प्रथमभाविन्या अपराम् अनन्तरोत्पन्नामपि तां निर्वापयामः शमयामः । हृदय्यम् हृदयदाहकं तत्र भवं कोपाग्निं शोकं च तज्जनितम् ईदृशं तम् हे ईर्ष्यायुक्त पुरुष ते तव सकाशाद् निर्वापयामसि निर्वापयामः शमयामः । ॠ"इदन्तो मसिः"ॠ ॥

पञ्चमी ॥

यथा भूमिर्मृतमनां मृतान्मृतमनस्तरा ।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ॥ २ ॥

यथा । भूमिः । मृतऽमनाः । मृतात् । मृतमनःऽतरा ।
यथा । उत । मम्रुषः । मनः । एव । ईर्ष्योः । मृतम् । मनः ॥ २ ॥

भूमिः सर्वप्राणिभिरधिष्ठिता पृथिवी मृतमनाः अपगतमनस्का सती यथा ईर्ष्यां न करोति । यथा च मृतात् त्यक्तप्राणात् शवशरीरादपि मृतमनस्तरा अतिशयेन मृतमनाः पृथिवी भवति । एतेन सर्वक्लेशसहत्वम् अस्या आविष्कृतं भवति । उत अपि च मम्रुषः मृतवतः पुरुषस्य मनः तच्छरीराद् अपगतं सत् यथा नेर्ष्याजनकम् [एव] एवमेव ईर्ष्योः ईर्ष्यायुक्तस्य स्त्रीविषयकोपयु[क्तस्य] पुरुषस्य मनः मृतम् विनष्टम् अस्तु । ईर्ष्याग्रस्तं न भवत्वित्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं हरेरिव ॥ ३ ॥

अदः । यत् । ते । हृदि । श्रितम् । मनःऽकम् । पतयिष्णुकम् ।

---

१ A B S[m] °स्तरां. C[r] °तरम्. K K V[m] °स्तर. We with B B[h] D R P P[2] J C[s]. २ See note १ on the next page.

ततः। ते। ईर्ष्याम्। मुञ्चामि। निः। ऊष्माणम्। हृतेःऽइव ॥ ३ ॥

हे ईर्ष्याग्रस्त पुरुष ते तव हृदि हृदये श्रितम् अवस्थितम् अदः प्रसिद्धं यत् मनः पतयिष्णु अञ्चिष्णु इतस्ततः पतनशीलम्। कम् इति पदद्वयं पदपूरणार्थम्। ततः तस्माद् मनसः ते तव ईर्ष्याम् स्त्रीविषयं कोपं निःशेषेण मुञ्चामि अपगमयामि। तत्र दृष्टान्तः ऊष्माणम् इति। यथा हृतेः चर्ममय्या भस्त्रिकायाः सकाशात् तन्मध्यवर्तिनम् ऊष्माणम् श्वासवद् अन्तःपूरितं वायुं तन्मुखान्निःसारयति कर्मकरस्तद्वद् इत्यर्थः ॥

[इति] द्वितीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

"पुनन्तु मा" इत्यस्य तृचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकामः मरुद्भ्यो मान्त्रवर्णिकीभ्यो वा देवताभ्यः क्षीरौदनहोमः आज्यहोमः काशदिविधुवकवेतसाख्या ओषधीरेकस्मिन् पात्रे कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य जलमध्ये अधोमुखं निनयनम् तासामेव काशादीनां संपातिताभिमन्त्रितानाम् अप्सु स्नावनम् स्वशिरसो मेषशिरसश्च अभिमन्त्रितस्य अप्सु प्रक्षेपणम् मानुषकेशजरदुपानहां वंशाग्रे बन्धनम् तुषसहितम् आमपात्रम् अभिमन्त्रितोदकेन संप्रोक्ष्य त्रिपदे शिक्ये निधाय अप्सु प्रक्षेपणं च इत्येतानि अभिवर्षणकर्माणि संप्रातिताभिमन्त्रितघटोदकेन आस्नावनम् अवसेचनं च अनेन तृचेन कुर्यात्। "अर्थम् उत्थास्यन्" इति प्रक्रम्य "अम्बयो यन्ति[१.४] शंभुमयोभूः[१.५,६] हिरण्यवर्णाः[१.३३] यददः[३.१३] पुनन्तु मा[६.१९]" इत्यादि "अभिवर्षणावसेचनानाम्" इत्येतदन्तं सूत्रम् अत्र द्रष्टव्यम् [कौ०५.५] ॥

तथा सवयज्ञेषु अनेन तृचेन यजमानपत्नी पुत्रान् प्रोक्षेत्। "पवित्रैः संप्रोक्षति" इति हि सूत्रम् [कौ०८.२]। अत्र पवित्रशब्देनँ पुनन्तु मा[६.१९] वायोः पूतः[६.५१] वैश्वानरो रश्मिभिः[६.६२] इति सूक्तानि विवक्षितानि ॥

१ All our MSS. and Vaidikas नृतेः. We with Sâyaṇa.

1 S' after बन्धनम् adds कृत्वाभिमंत्र्याधोधनुं which seems to belong to some other passage. 2 S' °शब्दे for °शब्देन. 3 S' पूतोति. We with *Kauśika*.

तथा पवित्रसवे अनेन [तृचेन] निरुप्तहविरभिमर्शनसंपातादीनि कर्माणि कुर्यात् । "पुनन्तु मा देवजना इति पवित्रं कृसरम्" इति हि सूत्रम् [कौ० ८. ७] ॥

तथा दीक्षायाः दर्भपिञ्जूलैः पूयमानो यजमानः एतं तृचं जपेत् । "पुनन्तु मेति पाव्यमानः" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. १] ॥

सौत्रामण्यां "पुनन्तु मा" इत्ययं तृचः आसिच्यमानशतातृण्णानुमन्त्रणे विनियुक्तः । "पुनन्तु मा[६. १९] गिरावरगराटेषु[६. ६९] यज्ञिरिषु[९. १. १८] इति शतातृण्णाम् आसिच्यमानाम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ५. ३] ॥

"अग्नेरिवास्य दहतः" इति तृचेन पित्तज्वरभैषज्ये दावाग्नौ ताम्रस्रुवेण आज्यं हुत्वा व्याधितस्य मूर्ध्नि संपातान् आनयेत् । "अग्नेरिवेत्युक्तं दावे" इति हि सूत्रम् [कौ० ४. ६] ॥

तत्र प्रथमा ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनवो धिया ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा ॥ १ ॥
पुनन्तु । मा । देवऽजनाः । पुनन्तु । मनवः । धिया ।
पुनन्तु । विश्वा । भूतानि । पवमानः । पुनातु । मा ॥ १ ॥

देवजनाः देवजातीया मा मां पुनन्तु शोधयन्तु ॥ तथा मनवः मनुष्यजातीयाः धिया बुद्ध्या कर्मणा वा मां पुनन्तु ॥ विश्वा विश्वानि सर्वाणि भूतानि मां पुनन्तु ॥ यश्च अन्तरिक्षे पवमानः गच्छन् वायुः सोपि मां पुनातु । यद्वा दशापवित्रेण शोध्यमानः सोमः पवमानः । स च स्वात्मानमिव अस्मान् शोधयतु ॥

द्वितीया ॥

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये ॥ २ ॥

1 S' पवित्रकृसर°. We with *Kaus'ika*. 2 So S'. 3 S' °तृणा°.

पवमानः। पुनातु। मा। ऋते। दक्षाय। जीवसे।
अथो इति। अरिष्टऽतातये ॥ २ ॥

पवमानः सोमः मा मां पुनातु शोधयतु पापविनिर्मुक्तं करोतु। किमर्थम्। ऋते ऋतवे कर्मणे दक्षाय बलाय। यद्वा ऋतुदक्षशब्दाभ्यां प्राणापानौ विवक्षितौ। "प्राणो वै दक्षः अपानः ऋतुः" इति श्रुतेः [तै० सं०२.५.२.४]। तयोः प्राणापानयोः शरीरे अवस्थानार्थं जीवसे तद्धेतुकजीवनार्थं च पुनातीति संबन्धः। अथो अपि च अरिष्टतातये। रिष्टं हिंसा तदभावः अरिष्टम् तस्य करणाय। "शिवशमरिष्टस्य करे" इति करणेर्थे तातिल् प्रत्ययः ॥

तृतीया ॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
अस्मान् पुनीहि चक्षसे ॥ ३ ॥

उभाभ्याम्। देव। सवितः। पवित्रेण। सवेन। च।
अस्मान्। पुनीहि। चक्षसे ॥ ३ ॥

हे सवितः सर्वस्य प्रेरक हे देव पवित्रेण पवनसाधनेन त्वदीयेन तेजसा सवेन प्रसवेन त्वत्प्रेरणेन च आभ्याम् उभाभ्याम् अस्मान् पुनीहि शुद्धान् कुरु। किमर्थम्। चक्षसे। चष्टिः पश्यतिकर्मा। दर्शनाय। ऐहिकामुष्मिकसकलसुखसाक्षात्कारार्थम् इत्यर्थः ॥

चतुर्थी ॥

अग्नेरिवास्य दहत एति शुष्मिणः उतेव मत्तो विलपन्नपायति।
अन्यमस्मदिच्छतु कं चिदव्रतस्तपुर्वधाय नमो अस्तु तक्मने ॥ १ ॥

अग्नेःऽइव। अस्य। दहतः। एति। शुष्मिणः। उतऽइव। मत्तः। विऽलपन्। अप। अयति।
अन्यम्। अस्मत्। इच्छतु। कम्। चित्। अव्रतः। तपुःऽवधाय। नमः। अस्तु। तक्मने ॥ १ ॥

आर्द्रम् अनार्द्रं च सर्वं दहतः दावात्मकस्य अग्नेरिव कृत्स्नम् अङ्गं दहतः शुष्मिणः शोषकबलयुक्तस्य अस्य ज्वरस्य दाहः एति कृत्स्नम् अङ्गं व्याप्नोति । उत अपि च मत्त इव उन्मत्त इव आत्मानं विस्मृत्य विलपन् विविधं प्रलापं कुर्वन् तेन ज्वरेण अपायति अपगच्छति अस्माल्लोकात् प्रैति । ईदृशः प्रबलः पित्तज्वरः अस्मत् अस्मत्तः अन्यं कंचित् कमपि अव्रतः अव्रतं सदाचारहीनं पुरुषम् इच्छतु प्राप्नोतु । उक्तं हि ।

व्रतोपवासैर्यैर्विष्णुर्नान्यजन्मनि तोषितः
ते नरा मुनिशार्दूल ग्रहरोगादिभागिनः ।

इति । तपुर्वधाय तपुस्ताप एव वधः हननसाधनम् आयुधं यस्य स तथोक्तः तस्मै तक्मने कृच्छ्रजीवननिमित्ताय ज्वराभिमानिदेवाय नमोस्तु नमस्कारो भवतु । अनेन नमस्कारेण तुष्टः सन् अन्यत्र अपसर्पतित्यर्थः । [1]तकि कृच्छ्रजीवे । अस्माद् औणादिको मनिन्[1] ॥

पञ्चमी ॥

नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ।
नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ॥ २ ॥

नमः । रुद्राय । नमः । अस्तु । तक्मने । नमः । राज्ञे । वरुणाय । त्विषिऽमते ।
नमः । दिवे । नमः । पृथिव्यै । नमः । ओषधीभ्यः ॥ २ ॥

रुद्राय रोदयति उपतापेन अश्रूणि मोचयतीति रुद्रो ज्वराभिमानी देवः । [1]"रोदेर्णिलुक् च" [उ०२.२२] इति रक् प्रत्ययः[1] । तस्मै रुद्राय प्रथमं नमोस्तु तक्मने ज्वराय च नमोस्तु । त्विषीमते दीप्तिमते राज्ञे स्वामिने तत्तत्प्राणिकृतपापानुरोधेन निग्रहकारिणे वरुणाय नमोस्तु । तथा दिवे द्युलोकाय नमः पृथिव्यै च नमः । द्यावापृथिव्यौ हि कृत्स्नस्य भूतजातस्य मातापितरौ तस्मात् तयोर्नमस्कारः कृतः । ओ-

1 S' वधाय for वधः.

षधीभ्यः पृथिव्याम् उत्पन्नाभ्यो व्रीह्यादिभ्यो नमोस्तु । औषधसेवया पथ्यक्रमेण च आरोग्यम् उपजायत इत्योषधीनां नमस्कारः ॥

षष्ठी ॥

अयं यो अभिशोचयिष्णुर्विश्वा रूपाणि हरिता कृणोषि ।
तस्मै तेरुणाय बभ्रवे नमः कृणोमि वन्याय तक्मने ॥ ३ ॥

अयम् । यः । अभिऽशोचयिष्णुः । विश्वा । रूपाणि । हरिता । कृणोषि । तस्मै । ते । अरुणाय । बभ्रवे । नमः । कृणोमि । वन्याय । तक्मने ॥३॥

अयम् आपरोक्ष्येण अनुभूयमानः अभिशोचयिष्णुः अभितः सर्वतः कृत्स्नम् अङ्गं सर्वेषु अङ्गेषु शोचयन् शोकम् उत्पादयन् । [1]शुच शोके । "णेश्छन्दसि" इति इष्णुच् प्रत्ययः[1] । ईदृशो यः पित्तज्वरः विश्वा विश्वानि सर्वाणि रूपाणि हरिता हरितानि रक्तदूषणेन हरिद्रावर्णानि कृणोषि करोति । [1]पुरुषव्यत्ययः[1] । तस्मै अरुणाय अरुणवर्णाय बभ्रवे पीतवर्णाय च [वन्याय] संसेव्याय तक्मने ते तुभ्यं ज्वराय नमः कृणोमि करोमि ॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे षष्ठकाण्डे द्वितीयोनुवाकः ॥

तृतीयेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "इमा यास्तिस्रः" इति आद्यं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन केशवृद्धिकामं वृक्षभूमिजातौषधिभिः अवज्वालितोदकेन वा विभीतककाथोदकेन वा हरिद्राकाथोदकेन वा अभिमन्त्रितेन उषःकाले अवसिञ्चेत् । सूत्रितं हि । "इमायास्तिस्र इति वृक्षभूमौ जाताज्वालेनावनक्षत्रेवसिञ्चति" इत्यादि [कौ० ४. ६] ॥

"कृष्णं नियानम्" इति तृचेन उदरतुन्दादिभैषज्यार्थं चित्तिप्रायश्चित्त्याद्योषधिसहितम् उदकम् अभिमन्त्र्य तेनोदकेन व्याधितम् अवसिञ्चेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव भैषज्यकर्मणि मरुद्भ्यो मान्तवर्णिकीभ्यो वा देवताभ्यः क्षीरौदनहोमम् आज्यहोमम् चित्त्याद्यौषधीरेकस्मिन् पात्रे कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य जलमध्ये अधोमुखं निनयनम् चित्त्यादीनां संपातिताभिम-

1 S' omit °षध°. 2 Sâyaṇa's text, however, has विज्ञाय. 3 S' °द्यौष°.

न्त्रितानाम् अप्सु स्रावनम् [ श्वशिरसो ] मेषशिरसश्चाभिमन्त्रितस्य उदके प्रक्षेपणम् मानुषकेशजरदुपानहां वंशाग्रे बन्धनम् तुषसहितम् आमपात्रम् अभिमन्त्रितोदकेन संप्रोक्ष्य त्रिपदे शिक्ये निधाय अप्सु प्रक्षेपणं च इत्येतान्यभिवर्षणकर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "कृष्णं नियानम् [ ६. २२ ] सस्वुषीः [ ६. २३ ] इत्योषध्याभिश्चयोतयति । मारुतानाम् अप्ययः" इति [ कौ० ४. ६ ] ॥

अस्य तृचस्य अपां सूक्तेषु पाठाद् आस्रावनादौ विनियोगः ॥

तत्र प्रथमा ॥

इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा ।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥ १ ॥

इमाः । याः । तिस्रः । पृथिवीः । तासाम् । ह । भूमिः । उत्ऽतमा । तासाम् । अधि । त्वचः । अहम् । भेषजम् । सम् । ऊं इति । जग्रभम् ॥ १ ॥

इमाः परिदृश्यमानाः तिस्रः त्रित्वसंख्योपेता याः पृथिवीः पृथिव्यः । उपलक्षणम् एतत् । पृथिव्याद्यास्त्रयो लोकाः सन्ति यद्वा । पृथिव्यादयस्त्रयो लोकाः प्रत्येकं त्रिधा भिन्नाः । "तिस्रो भूमीर्धारयन्" [ ऋ० २. २७. ८ ] "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" [ ऐ० ब्रा० २. १७ ] इत्यादिश्रुतेः । तासां पृथिव्युपलक्षितानां लोकानां मध्ये इयम् अ[स्माभि]रधिष्ठिता भूमिः खलु उत्तमा उत्कृष्टतमा ऐहिकफलभोगनिमित्तत्वात् स्वर्गादिफलसाधनयागहोमाद्यनुष्ठानहेतुत्वाच्च । तासां पृथिवीनां त्वचः त्वगिव उपरिवर्तमाना या भूमिः तस्या अधि उपरि प्ररूढं भेषजम् व्याधिनिवर्तकम् औषधम् अहं समु जग्रभम् संगृह्णामि । ग्रहेः स्वार्थण्यन्तात् छान्दसे लुङि चङि रूपम् ॥

द्वितीया ॥

श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् ।
सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥ २ ॥

1 S' adds after बन्धनम् as follows: कृत्वाभिमंत्र्य योधनं. 2 S' °ताभिवर्षण°.

श्रेष्ठम्। असि। भेषजानाम्। वसिष्ठम्। वीरुधानाम्।
सोमः। भगःऽइव। यामेषु। देवेषु। वरुणः। यथा ॥ २ ॥

हे हरिद्रादिरूप भेषज अन्येषां भेषजानां श्रेष्ठम् प्रशस्यतमम् असि अमोघवीर्यत्वात्। तथा वीरुधानाम् अन्यासां वीरुधां वसिष्ठम् वसुमत्तमं मुख्यम् असि। ‡वीरुच्छब्दात् टाप्। "टापं चापि हलन्तानाम्" इति स्मरणात्‡। तत्र श्रैष्ठ्ये दृष्टान्तः सोम इति। यामेषु अहोरात्रभागेषु साध्येषु यथा सोमश्चन्द्रमाः भगः सूर्यश्च कालावच्छेदहेतुत्वेन प्रशस्तौ तद्वत् श्रेष्ठम् असीत्यर्थः। वसिष्ठत्वे दृष्टान्तः देवेष्विति। यथा देवेषु मध्ये वरुणः वसुमत्तमो मुख्यः तद्वद् इत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ।
उत स्थ केशदंहणीरथो ह केशवर्धनीः ॥ ३ ॥

रेवतीः। अनाधृषः। सिसासवः। सिसासथ।
उत। स्थ। केशऽदंहणीः। अथो इति। ह। केशऽवर्धनीः ॥ ३ ॥

हे रेवतीः रेवत्यः रयिमत्यो धनवत्य उक्ता ओषधयः। ‡"रयेर्मतौ बहुलम्" इति संप्रसारणम्‡। अनाधृषः अनाधृषाः केनचिदपि अहिंसिताः सिषासवः सनितुम् आरोग्यं दातुम् इच्छन्त्यः यूयं सिषासथ आरोग्यं दातुम् इच्छथ। ‡षणु दाने। अस्मात् सनि "°भरज्ञपिसनाम्" इति इटो विकल्पनाद् अभावपक्षे "जनसनखनां सञ्झलोः" इति आत्वम्‡ ॥ उत अपि च केशदंहणीः केशानां दार्ढ्यकारिण्यः स्थ भवथ ॥ अथो ह अपि च खलु केशवर्धनीः केशसमृद्धिकारिण्यो भवथ। ‡दंहणीर्वर्धनीरिति। दृहेर्वृधेश्च करणे ल्युडन्ताद् ङीपि रूपम्‡ ॥

---

१ B रेवती°. २ P स्थ. We with P J Cr.

1 S' omit °वत्य, 2 S' इच्छतः. ३ S' दंहिणीः though Sâyaṇa's text is with us.

चतुर्थी ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यूदुः ॥ १ ॥

कृष्णम् । नियानम् । हरयः । सुऽपर्णाः । अपः । वसानाः । दिवम् ।
उत् । पतन्ति ।
ते । आ । अववृत्रन् । सदनात् । ऋतस्य । आत् । इत् । घृतेन । पृथिवीम् ।
वि । ऊदुः ॥ १ ॥

कृष्णम् कृष्णवर्णं नियानम् । नियमेन याति गच्छति अत्र ज्योतिश्चक्रम इति नियानम् अन्तरिक्षम् । तत् प्राप्य हरयः हरणशीलाः पार्थिवं कृत्स्नं रसं हरन्तः सुपर्णाः शोभनपतना आदित्यरश्मयः अपो वसानाः उदकम् आच्छादयन्तः उदकेन आत्मानम् आवृण्वन्तः दिवम् द्योतमानम् आदित्यमण्डलम् उत् पतन्ति उद्गमनेन प्राप्नुवन्ति । यद्वा कृष्णं नियानम् इति दक्षिणायनाभिप्रायम् । तद्धि ।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् [भ० गी० ८.२५]
इति कृष्णपक्षसंबन्धात् कृष्णं नियानं यागहोमादिनियमयुक्तैः पुरुषैः प्राप्तव्यम् ईदृशं दक्षिणायनं प्रति उत्तरायणे समाहृतरसास्ते सूर्यरश्मयः ऋतस्य उदकस्य सदनात् आदित्यमण्डलाद् आववृत्रन् आवर्तन्ते वृष्ट्यर्थम् आगच्छन्ति । ✕वृतेर्लुङि "ह्युत्र्यो लुङि" इति परस्मैपदम् । छान्दसश्लेश्चङ् आदेशः । "बहुलं छन्दसि" इति रुडागमः✕ ॥ आदित् अनन्तरमेव घृतेन उदकेन ते सूर्यरश्मयः पृथिवीं व्यूदुः विशेषेण उन्दन्ति आर्द्रीकुर्वन्ति । श्रूयते हि । "यदा खलु वा असावादित्यो न्यङ् रश्मिभिः पर्यावर्ततेऽथ वर्षति" इति [तै० सं० २. ४. १०. २] । ✕उन्दी क्लेदने इत्यस्मात् छान्दसे लिटि छान्दस उपधालोपः✕ ॥

पञ्चमी ॥

पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।

S' उदंति.

ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु ॥ २ ॥

पयस्वतीः। कृणुथ। अपः। ओषधीः। शिवाः। यत्। एजथ। मरुतः। रुक्मऽवक्षसः।

ऊर्जम्। च। तत्र। सुऽमतिम्। च। पिन्वत। यत्र। नरः। मरुतः। सिञ्चथ। मधु ॥ २ ॥

हे मरुतः रुक्मवक्षसः रुक्माः स्वर्णमयम् आभरणं वक्षःस्थले येषां तादृशाः सन्तो यूयं यत् यदा एजथ प्रचलथ। ✕एजृ कम्पने✕। तदानीं पयस्वतीः रसवतीः अपः उदकानि ओषधीश्च शिवाः सुखकरीः कृणुथ कुरुथ ॥ [नरः नेतारः] हे मरुतः यूयं यत्र मधु मधुररसं वृष्ट्युदकं सिञ्चथ वर्षयथ तत्र तस्मिन् देशे ऊर्जं [च] बलकरम् अन्नं सुमतिं [च] शोभनबुद्धियुक्तां प्रजां पिन्वथ उदकसेचनेन पोषयथ ॥

षष्ठी ॥

उदप्रुतो मरुतस्ताँ इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति।

एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नैरुं तुन्दाना पत्येव जाया ॥ ३ ॥

उदऽप्रुतः। मरुतः। तान्। इयर्त। वृष्टिः। या। विश्वाः। निऽवतः। पृणाति।

एजाति। ग्लहा। कन्याऽइव। तुन्ना। एरुम्। तुन्दाना। पत्याऽइव। जाया ॥ ३ ॥

हे मरुतः उदप्रुतः उदकस्य प्रेरकान् तान् मेघान् इयर्त प्रेरयत। ✕प्लुङ् प्लुङ् गतौ। अस्मात् कर्तरि क्विप्। "उदकस्योदः संज्ञायाम्" इति उदकशब्दस्य उदभावः। इयर्तेति। ऋ गतौ इत्यस्मात् लोट्। "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तबादेशः। जुहोत्यादित्वात् शपः

---

१ A सिंचता. २ A B D K P V C$_s$ C$_r$ °प्लु°. We with K$^m$ R S$^m$ P$^2$ J. ३ Such is the accent of all our Vaidikas and MSS. ४ K$^m$ P$^2$ तुदाना. ५ K C$_r$ °प्लु°. P °प्लु°. We with P$^2$ J. ६ P P$^2$ J K C$_r$ याः. We with Sâyana. ७ P P$^2$ J गल्हा. We with C$_r$. ८ P K कन्याऽइव. ९ P$^2$ तन्वना. We with P J K C$_r$.

स्तुः । "अर्तिपिपर्त्योश्च" इति अभ्यासस्य इत्त्वम् । के पुनस्ते मेघा इति विशिनष्टि । या यदीया येषां मेघानां संबन्धिनी वृष्टिः विश्वाँ विश्वानि व्रीहियवादिसस्यानि निवतः निम्नगामिनीर्नदीश्च पृणाति पूरयति । आप्याययतीत्यर्थः । "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति गमेरर्थे वतिः । यद्वा तान् । वर्णव्यत्ययः । या वृष्टिः उक्तविधा तां वृष्टिं प्रेरयतेत्यर्थः ॥ अपि च गँह्वा । गर्ह गह्ह कुत्सायाम् । गह्वयति कुत्सयति भीतिम् उत्पादयतीति गह्वा स्तनयित्नुरूपा माध्यमिका वाक् । सा एजाति एजतु वृष्ट्यर्थं मेघान् कम्पयतु । एजृ कम्पने । अस्मात् लेटि आडागमः । तत्र दृष्टान्तः कन्येवेति । यथा तुन्ना दारिद्र्यादिभिः पीडिता कन्या मातापित्रादीन् कम्पयति तद्वद् इत्यर्थः । सा वाग् विशेष्यते । एरुम् गन्तारं मेघं प्राप्य तुञ्जाना आभाषमाणा ध्वनन्ती । तुजि आभाषणे । चौरादिकः । यद्वा । तुञ्जतिर्दानकर्मा । "तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे" [ऋ० १.७.७] इति हि निगमः । एरुम् गमनशीलम् उदकं तुञ्जाना प्रयच्छन्ती । तत्र दृष्टान्तः पत्येवेति । पत्या सहिता जायेव सा यथा आभाषते यथा वा दित्सितम् अन्नादिकं प्रयच्छति तद्वद् वृष्ट्युदकस्य प्रदात्रीत्यर्थः ॥

[इति तृतीयेनुवाके] प्रथमं सूक्तम् ॥

"सस्रुषीः" "हिमवतः प्र स्रवन्ति" इति तृचयोः "पुनन्तु मा[६.१९] सस्रुषीः[६.२३] हिमवतः प्र स्रवन्ति[६.२४] वायोः पूतः पवित्रेण" [६.५१] इति बृहद्गणे [कौ० १.९] पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगः ॥

अनयोः अपां सूक्तेषु पाठात् आप्लावनादौ विनियोगः । सूत्रितं हि । "अवभृथाय व्रजन्त्यपां सूक्तैरासुत्य" इति [कौ० ८.९] ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकामः आभ्यां तृचाभ्याम् "पुनन्तु मा" इत्यत्रोक्तानि क्षीरौदनहवनादीनि कर्माणि कुर्यात् । "अर्थम् उत्थास्यन्" इति प्रक्रम्य "पुनन्तु मा[६.१९] सस्रुषीः[६.२३] हिमवतः प्र स्रवन्ति[६.२४] वायोः पूतः पवित्रेण"[६.५१] इत्यादि "अ-

"भिवर्षणावसेचनानाम्" इत्येतदन्तं सूत्रम् [कौ० ५. ५] अत्र द्रष्टव्यम् ॥

तथा "सस्रुषीः" इत्येकेन तृचेन उदरतुन्दादिभैषज्ये कृष्णं नियानम् [६. २२] इति तृचोक्तानि कर्माणि कुर्यात्। सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

तथा दर्शपूर्णमासयोः प्रणीताः प्रमुच्यमाना अनेन तृचेन ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "प्रणीता विमुच्यमानाः सस्रुषीरित्यनुमन्त्रयते" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० १. ४] ॥

"हिमवतः प्र स्रवन्ति" इति तृचस्य शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ आस्रावनादौ अर्थोत्थापनकर्मसु च पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा हृदयदोषजलोदरकामलरोगशान्त्यर्थं नद्युदकं प्रवाहानुगुणम् आहृत्य तत्र वलीकतृणानि प्रक्षिप्य अनेन तृचेन अवसिंच्य व्याधितम् अवसिञ्चेत् मार्जयेत् आचामयेद् वा। सूत्रितं हि। "हिमवत इति स्यन्दमाना अन्वीपम् आहार्यं वलीकैः" इति [कौ० ४. ६] ॥

तत्र प्रथमा ॥

सस्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्रुषीः।
वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये ॥ १ ॥

सस्रुषीः। तत्। अपसः। दिवा। नक्तम्। च। सस्रुषीः।
वरेण्यऽक्रतुः। अहम्। अपः। देवीः। उप। ह्वये ॥ १ ॥

तत् प्रसिद्धं सर्वप्राणिजीवनात्मकं रूपं सस्रुषीः प्राप्नवतीः अपसः अपस्वतीः। ✕मत्वर्थीयस्य लुक्✕। अपसा जगद्रक्षणकर्मणा युक्ताः दिवा नक्तं च अहोरात्रोपलक्षितं कृत्स्नं कालम् अविच्छेदेन सस्रुषीः सरणशीलाः प्रवहणशीलाः। ✕सृ गतौ। अस्माच्छान्दसस्य लिटः क्वसुः। "उगितश्च" इति ङीप्। वसोः संप्रसारणे यण्✕। ईदृशीः देवीरपः वरेण्यक्रतुः प्रशस्तकर्मा अहम् उप ह्वये समीपे आह्वयामि। यद्वा उपह्वयः अनुज्ञा। तां याचामहे इत्यर्थः ॥

1 S' दृश्यदोषं for हृदयदोष°. We with *Kausika*. 2 S' अवसिंच. 3 S' शुंभमाना. 4 S' अवछेदेन.

द्वितीया ॥

ओता आपः कर्मण्याः मुञ्चन्त्वितः प्रणीतये ।
सद्यः कृण्वन्त्वेतवे ॥ २ ॥

आऽउताः । आपः । कर्मण्याः । मुञ्चन्तु । इतः । प्रऽनीतये ।
सद्यः । कृण्वन्तु । एतवे ॥ २ ॥

ऊँताः संतताः अविच्छेदेन प्रवहन्त्यः । ऊयी तन्तुसंताने । "श्वीदितो निष्ठायाम्" इति इट्प्रतिषेधः । कर्मण्याः लौकिकेषु वैदिकेषु च कर्मसु साधवः । "तत्र साधुः" इति यत् । "ये चाभावकर्मणोः" इति प्रकृतिभावः । ईदृश्य आपः इतः अस्मात् सर्वानर्थनिदानात् पापाद् अस्मान् मुञ्चन्तु । किमर्थम् । प्रणीतये प्रकर्षेण प्राप्याय फलाय । "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । तादृक् फलं सद्यः शीघ्रम् एतवे प्राप्तुं कृण्वन्तु उदीरितलक्षणा अब्देवता अस्मांस्तदर्हान् कुर्वन्तु । प्रणीतये इति । प्रपूर्वान्नयतेः कर्मणि क्तिन् । एतवे इति । इण् गतौ । "तुमर्थे सेसेन्" इति तवे प्रत्ययः ॥

तृतीया ॥

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।
शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ॥ ३ ॥

देवस्य । सवितुः । सवे । कर्म । कृण्वन्तु । मानुषाः ।
शम् । नः । भवन्तु । अपः । ओषधीः । शिवाः ॥ ३ ॥

देवस्य द्योतमानस्य सवितुः सर्वप्रेरकस्य सूर्यस्य सवे प्रेरणे सति मानुषाः मनोरपत्यभूता जनाः कर्म कृण्वन्तु लौकिकं वैदिकं च कृत्स्नं कर्मजातम् अनुतिष्ठन्तु । "मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च" इति मनुशब्दाद् अञ् षुगागमश्च । "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" इति आद्युदात्तत्वम् ॥ शि-

1 S' उर्यी for ऊयी.

वाः कल्याणकारिण्यः ओषधीः ओषधयः अपः तद्वृद्धिहेतव आपश्च नः अस्माकं शं भवन्तु दुरितशमनहेतवो भवन्तु ॥

चतुर्थी ॥

हिमवंतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः।
आपो ह मह्यं तद् देवीर्ददन् हृद्द्योतभेषजम् ॥ १ ॥

हिमऽवंतः। प्र। स्रवन्ति। सिन्धौ। समह। समऽगमः।
आपः। ह। मह्यम्। तत्। देवीः। ददन्। हृद्द्योतऽभेषजम् ॥ १ ॥

गङ्गादिनदीरूपाः पापक्षयहेतव आपः हिमवतः हिमवत्पर्वतात् प्र स्रवन्ति प्रवहन्ति। तासां सर्वासां सिन्धौ समुद्रे [समह] समानं संगमः संसर्गो भवति। ईदृश्यो देवीः देव्य आपः तत् प्रसिद्धं हृद्द्योतभेषजम् हृदयदाहनिवर्तकम् औषधं मह्यं ददन् प्रयच्छन्तु ॥

पञ्चमी ॥

यन्मे अक्ष्योरादिद्योत पाण्र्योः प्रपदोश्च यत्।
आपस्तत् सर्वं निष्करन् भिषजां सुभिषक्तमाः ॥ २ ॥

यत्। मे। अक्ष्योः। आऽदिद्योत। पाण्र्योः। प्रऽपदोः। च। यत्।
आपः। तत्। सर्वम्। निः। करन्। भिषजाम्। सुभिषक्ऽतमाः ॥ २ ॥

यद् रोगजातं मे मम अक्ष्योः अक्ष्णोः आदिद्योत आदीपयति व्यथयति। ✕"ई च द्विवचने" इति अक्षिशब्दस्य ईकारान्तादेशः। द्युत दीप्तौ इत्यस्माच्छान्दसो वर्तमाने लिट्। "द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम्" इति अभ्यासस्य संप्रसारणम्✕। तथा पाण्र्योः। पादयोरपरभागौ पार्ष्णी। पुरोभागौ प्रपदौ। उभयविधयोस्तयोश्च यद् रोगजातम् आश्रित्य वर्तते तत् सर्वम् आपः देवतारूपाः निष्करन् निष्कुर्वन्तु निर्गतं कुर्वन्तु। ✕करोतेश्छान्दसो लुङ्। "कृमृदरुहिभ्यः०" इति

---

१ A B निःक°. २ B K S P V निष्करद्भि°. We with A D K R P J Cs Cr. ३ P अक्ष्योः. We with P J K Cr. ४ P करत. We with P J Cr.

ङेः अङ् आदेशः ॥ । कीदृश्यस्ताः । भिषजाम् व्याधिनिवर्तकाना मध्ये सुभिषक्तमाः अतिशयेन चिकित्साकुशलाः ॥

षष्ठी ॥

सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्यः१ स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजामहै ॥ ३ ॥

सिन्धुऽपत्नीः । सिन्धुऽराज्ञीः । सर्वाः । याः । नद्यः । स्थन ।
दत्त । नः । तस्य । भेषजम् । तेन । वः । भुनजामहै ॥ ३ ॥

सिन्धुपत्नीः सिन्धुपत्न्यः सिन्धुः समुद्रः पतिर्यासां तास्तथोक्ताः । ॥"विभाषा सपूर्वस्य" इति ङीम्नकारौ ॥ । सिन्धुराज्ञीः सिन्धोः समुद्रराजस्य दाराः । ॥उभयत्र "वा छन्दसि" इति जसि पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ । एवंभूताः सर्वा या यूयं नद्यः स्तन नदीरूपा भवत । ॥अस्तेर्लोटि "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनादेशः ॥ । ईदृश्यो यूयं नः अस्माकं तस्य रोगस्य भेषजम् निवर्तकम् औषधं दत्त प्रयच्छत । तेन औषधेन वः युष्माकं संबन्धिनो वयं भुनजामहै । निवृत्तरोगाः सन्तः अन्नपानादि बलकरं वस्तु उपजीवाम । ॥भुज पालनाभ्यवहारयोः । "भुजोऽनवने" इति आत्मनेपदम् ॥ ॥

[इति तृतीयेनुवाके] द्वितीयं सूक्तम् ॥

"पञ्च च याः" इति तृचेन गण्डमालानिवृत्त्यर्थं पञ्चाधिकपञ्चाशत्संख्याकैः सूत्रोक्तकाष्ठैः प्रज्वालनम् इत्येवमादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "पञ्च च या इति पञ्चपञ्चाशतं परशूपर्णान् काष्ठैरादीपयति कपाले प्रशृतं काष्ठेनालिम्पयति" इत्यादि [कौ० ४. ६] ॥

"अव मा पाप्मन्" इति [तृचेन] सर्वरोगभैषज्यकर्मणि सूत्रोक्तप्रकारेण तन्त्रं कृत्वा अपरेद्युस्त्रींस्त्रीन् पुरोडाशसंवर्तांश्चतुष्पथे अवचरेत् । सूत्रितं

---

१ BBDSCs ३ for १. We with AKKV.

1 S' प्लारोगस्य. 2 S' नवो for वः. 3 S' कर्पूपर्णान्. We with *Kausika*. 4 S' काष्टेनादी°. We with *Kausika*. 5 S' कांपीलैः. 6 S' प्रसृति.

हि। "अव मा पाप्मन्निति तितउनि पूल्यान्यवसिच्य अपविध्यापरेद्युस्त्रीं-स्त्रीन् पुरोडाशसंवर्तीश्चतुष्पथेप्यवचरति" इति [कौ० ४. ६]॥

महाशान्त्यादौ क्रियमाणे नैर्ऋतकर्मणि एतं तृचं जपन् नदीतीरं गच्छेत्। "अव मा पाप्मन्निति जपन्नुदकम् अभिगच्छेत्" इति हि नक्षत्रकल्पः [न० क० १५]॥

तत्र प्रथमा॥

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव॥ १॥

पञ्च। च। याः। पञ्चाशत्। च। सम्ऽयन्ति। मन्याः। अभि।
इतः। ताः। सर्वाः। नश्यन्तु। वाकाः। अपचितामऽइव॥ १॥

पञ्च च पञ्चाशच्च पञ्चाधिकपञ्चाशत्संख्याका या गण्डमालाः मन्याः गलस्योर्ध्वभागे स्थिता धमनीर्मन्याशब्दवाच्या अभि संयन्ति सर्वतो व्याप्नुवन्ति इतः अस्मात् प्रयोगात् ताः तत्संख्याकाः सर्वा गण्डमाला नश्यन्तु विनष्टा भवन्तु। वाकाः वचनीया दोषाः अपचितामिव पूजितां पतिव्रतां स्त्रियं प्राप्य यथा पराहता नश्यन्ति तथेत्यर्थः॥

द्वितीया॥

सप्त च याः सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव॥ २॥

सप्त। च। याः। सप्ततिः। च। सम्ऽयन्ति। ग्रैव्याः। अभि।
इतः। ताः। सर्वाः। नश्यन्तु। वाकाः। अपचितामऽइव॥ २॥

सप्ताधिकसप्ततिसंख्याका या गण्डमालाः ग्रैव्याः ग्रीवासु भवा नाडीः अभि संयन्ति अभितो व्याप्नुवन्ति। अन्यद् व्याख्यातम्॥

---

१ P मन्याः. २ A D R $\overset{m}{S}$ P J C- C$^{r}$ सप्त. We with B $\overset{h}{B}$ K $\overset{m}{K}$ $\overset{2}{P}$ V. ३ P J सप्त. We with $\overset{2}{P}$ K.

1 S' पल्पुनि for पूल्यानि. 2 So S'. *Kaus'ika*: °द्युः सहस्राक्षायाप्सु बलीस्त्रीन्पुरोडाशसंवर्तीश्चतुष्पथे च(*sic*, व?)क्षिप्यावकिरति. 3 S' धमनी for ध्रमनीः.

तृतीया ॥

नवं च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि ।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ॥ ३ ॥

नवं । च । याः । नवतिः । च । सम्ऽयन्ति । स्कन्ध्याः । अभि ।
इतः । ताः । सर्वाः । नश्यन्तु । वाकाः । अपचितामऽइव ॥ ३ ॥

नवोत्तरनवतिसंख्याका या गण्डमालाः स्कन्ध्याः । ग्रीवाभ्योऽधःप्रदेशः स्कन्धः । तत्र भवा धमनीः अभि संयन्ति अभितो व्याप्नुवन्ति । शेषम् उक्तार्थम् ॥

चतुर्थी ॥

अवं मा पाप्मन्त्सृज वशी सन् मृडयासि नः ।
आ मा भद्रस्य लोके पाप्मन् धेह्यविहुतम् ॥ १ ॥

अवं । मा । पाप्मन् । सृज । वशी । सन् । मृडयासि । नः ।
आ । मा । भद्रस्य । लोके । पाप्मन् । धेहि । अविऽहुतम् ॥ १ ॥

हे पाप्मन् पापाभिमानिदेव [मा] माम् अव सृज त्वत्सकाशाद् विमोचय ॥ वशी सर्वस्य वशयिता त्वं नः अस्मान् सं मृळयासि सम्यङ् मृडय सुखय । ✕मृड सुखने । अस्मात् लेटि आडागमः✕ ॥ हे पाप्मन् अविहुतम् अपीडितं मा मां भद्रस्य भन्दनीयस्य सुकृतस्य फलभूते लोके स्वर्गादौ आ धेहि स्थापय । ✕अविहुतम् इति । ह्वृ कौटिल्ये । "हु ह्वरेश्छन्दसि" इति निष्ठायां हुभावः✕ ॥

पञ्चमी ॥

यो नः पाप्मन् न जहासि तमु त्वा जहिमो वयम् ।
पथामनु व्यावर्तनेन्यं पाप्मानु पद्यताम् ॥ २ ॥

१ A B D K K R S V-C$^{s}$ पाप्म° clearly. P J C$^{r}$ पाप्मन्, P पाप्मन्.

1 S' भजनीयस्य.

यः। नः। पाप्मन्। न। जहासि। तम्। ऊं इति। त्वा। जहिमः। वयम्। पथाम्। अनु। विऽआवर्तने। अन्यम्। पाप्मा। अनु। पद्यताम् ॥ २ ॥

हे पाप्मन् यस्त्वं नः अस्मान् न जहासि न परित्यजसि। ओहाक् त्यागे इति धातुः। तमु तमेव त्वा त्वां पथाम् चतसृभ्यो दिग्भ्य आगतानां मार्गाणाम् अनुव्यावर्तने यस्मिन् प्रदेशे चतुष्पथलक्षणे अनुप्राप्ताः परस्परं व्यावर्तन्ते तत्र देशे वयं जहिमः। अनेन अनुष्ठितेन कर्मणा बलात् परित्यजामः। "जहातेश्च" इति इत्वम्। पथाम्" इति। "भस्य टेर्लोपः" इति टिलोपे उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्तेरुदात्तत्वम्। अनुव्यावर्तन्तेऽस्मिन्निति अनुव्यावर्तनो देशः। अधिकरणे ल्युट्। तत्र त्यक्तः पाप्मा अन्यम् अस्मद्द्वेष्यम् अनु पद्यताम् अनुप्रविशतु ॥

षष्ठी ॥

अन्यत्रास्मन्युच्यतु सहस्राक्षो अमर्त्यः।
यं द्वेषाम तमृच्छतु यमु द्विष्मस्तमिज्जहि ॥ ३ ॥

अन्यत्र। अस्मत्। नि। उच्यतु। सहस्रऽअक्षः। अमर्त्यः।
यम्। द्वेषाम। तम्। ऋच्छतु। यम्। ऊं इति। द्विष्मः। तम्। इत्। जहि ॥३॥

अस्मत् अस्मत्तः अन्यत्र सहस्राक्षः इन्द्रवत् प्रसह्यकारी अमर्त्यः अमरणधर्मा देवतारूपः पाप्मा न्युच्यतु नितरां गच्छतु। उच समवाये। एतदेव विवियते। यं शत्रुं वयं द्वेषाम द्विष्मः तम् ऋच्छतु पापं गच्छतु। ऋ गतौ। शपि "पाघ्रा०" इत्यादिना ऋच्छादेशः। पुनरपि यमेव वयं द्विष्मः तमित् तमेव जहि नाशय। द्वेषामेति। द्विषेर्लोटि "आडुत्तमस्य पिच्च" इति आडागमः। पिद्वद्भावेन ङित्त्वाभावात् लघूपधगुणः ॥

[इति तृतीयेनुवाके] तृतीयं सूक्तम् ॥

---

१ P J पाप्मन्. २ P द्वेषाम्. We with P J K Cp.

गृहादिषु कपोतोलूकप्रवेशशान्त्यर्थं शान्त्युदकाभिमन्त्रणे विनियुक्तमहाशान्तिगणे "देवाः कपोतः"[६.२७] "ऋचा कपोतम्"[६.२८] "अमून् हेतिः"[६.२९] इति त्रयस्तृचा आवपनीयाः। तद् उक्तं कौशिकेन। "पतत्रिभ्यो देवाः कपोतः ऋचा कपोतम् अमून् हेतिरिति महाशान्तिम् आवपते" इति [कौ०५.१०]॥

"ऋचा कपोतम्" इति तृचस्य पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः॥

अत्र "परीमे अग्निम्"[२] इत्यनया ऋचा कपोतोलूकप्रवेशशान्त्यर्थमेव गाम् अग्निम् आनीय शालां कपोतप्रवेशस्थलं वा त्रिः परिभ्रामयेत्। सूत्रितं हि। "परीमे अग्निम् इत्यग्निं गाम् आदाय निशि कारयमाणस्त्रिः शालां परिणयति" इति [कौ०५.१०]॥

तत्र प्रथमा॥

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥१॥

देवाः। कपोतः। इषितः। यत्। इच्छन्। दूतः। निःऽऋत्याः। इदम्।
आऽजगाम।
तस्मै। अर्चाम। कृणवाम। निःऽकृतिम्। शम्। नः। अस्तु। द्विऽपदे।
शम्। चतुःऽपदे॥१॥

हे देवाः निर्ऋत्याः पापदेवताया दूतः कर्मकरः इषितः प्रेषितः [कपोतः] कपोताख्यः पक्षी यद् बाधनम् इच्छन् इदम् अस्मदीयं गृहम् आजगाम आगतवान् तस्मै तन्निवृत्त्यर्थम् अर्चाम युष्मान् हविषा पूजयाम॥ निष्कृतिम् तद्दोषशान्तिं कृणवाम करवाम। नः अस्माकं द्विपदे पादद्वयोपेताय पुत्रभृत्यादये [शम्] चतुष्पदे पादचतुष्टयोपेताय गवाश्वादये च शम् रोगादीनां शमनं कपोतप्रवेशजनितदोषशान्तिश्च अस्तु भवतु॥

द्वितीया॥

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहं नः।

---

१ ADS[m] निःकृ°. C[s] द्विकृ°. We with K K[m] R V.

अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥ २ ॥

शिवः। कपोतः। इषितः। नः। अस्तु। अनागाः। देवाः। शकुनः। गृहम्। नः।

अग्निः। हि। विप्रः। जुषताम्। हविः। नः। परि। हेतिः। पक्षिणी। नः। वृणक्तु ॥ २ ॥

हे देवाः इषितः निर्ऋतिदेवतया प्रेषितः कपोतः [नः] शिवः सुखकरः अस्तु भवतु ॥ अनागाः अनपराधकः शकुनः पक्षी नः अस्माकं गृहं न पीडयतु ॥ हि यस्माद् एवं तस्माद् विप्रो मेधावी अग्निः नः अस्मदीयं हविर्जुषताम् सेवताम् ॥ तत्प्रसादात् पक्षिणी पक्षोपेता कपोताख्या हेतिः हननसाधनम् आयुधं नः अस्मान् परि वृणक्तु परिवर्जयतु ॥

तृतीया ॥

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने।
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः ॥ ३ ॥

हेतिः। पक्षिणी। न। दभाति। अस्मान्। आष्ट्री इति। पदम्। कृणुते। अग्निऽधाने।

शिवः। गोभ्यः। उत। पुरुषेभ्यः। नः। अस्तु। मा। नः। देवाः। इह। हिंसीत्। कपोतः ॥ ३ ॥

पक्षिणी पक्षाभ्यां युक्ता हेतिः हननसाधनम् अस्मान् न दभाति न हिनस्तु। सा च आष्ट्री आष्ट्र्यां व्याप्तायाम् अरण्यान्याम् अग्निधाने दावाग्निसंचारस्थाने पदं कृणुते पादप्रसारं करोतु। अस्मत्तो विनिर्गच्छतित्यर्थः। यद्वा अश्नन्ति अस्यां जना इति आष्ट्री पचनशाला तस्याम् अग्निधाने अग्निनिधानस्थाने इति योज्यम् ॥ तथा गोभ्यः पुरुषेभ्यश्च नः अस्माकं संबन्धिभ्यः शिवः सुखकरः अस्तु भवतु ॥ हे देवाः इह अस्मिन्

१ P देवाः. We with P J Cp.

1 S' स for सा. 2 S' अरण्यानाम्. 3 S' अस्मिन् for अस्यां.

गृहे युष्मदनुग्रहाद् अयं कपोतः पक्षी नः अस्मान् मा हिंसीत् मा बाधिष्ट ॥

चतुर्थी ॥

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयामः ।
संलोभयन्तो दुरिता पदानि हित्वा न ऊर्जं प्र पदात् पथिष्ठः ॥ १ ॥

ऋचा । कपोतम् । नुदत । प्रऽनोदम् । इषम् । मदन्तः । परि । गाम् । नयामः ।
सम्ऽलोभयन्तः । दुःऽइता । पदानि । हित्वा । नः । ऊर्जम् । प्र । पदात् ।
पथिष्ठः ॥ १ ॥

हे देवाः ऋचा अनेन मन्त्रेण [कपोतम्] कपोताख्यं पक्षिणं प्रनोदम् प्रकर्षेण नोदनीयं प्रेरणीयं नुदत अस्मद्गृहात् प्रेरयत । वयं च इषम् अन्नं प्राप्य मदन्तः तृप्ताः सन्तः गां परि नयामः परितः सर्वतः संचारयामः । गोसंचारणेन शान्तिं कुर्म इत्यर्थः । किं कुर्वन्तः । दुरिता दुरितानि दुर्गतिनिमित्तानि पदानि कपोतस्य पादनिधानस्थानानि संलोभयन्तः सम्यक् प्रमार्जयन्तः ॥ स च नः अस्माकम् ऊर्जम् बलकरं पचनशालास्थम् अन्नं हित्वा त्यक्त्वा पतिष्ठः पततां पक्षिणां श्रेष्ठः सन् प्र पतात् प्रपतेत् प्रगच्छतु । पत्लृ गतौ । अस्मात् लेटि आडागमः । पतिष्ठ इति । अस्मादेव तृजन्ताद् आतिशायनिक इष्ठन् । "तुरिष्ठेमेयस्सु" इति तृलोपः ॥

पञ्चमी ॥

परीमेऽग्निमर्षत परीमे गामनेषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥ २ ॥

परि । इमे । अग्निम् । अर्षत । परि । इमे । गाम् । अनेषत ।
देवेषु । अक्रत । श्रवः । कः । इमान् । आ । दधर्षति ॥ २ ॥

इमे ऋत्विजः कपोतप्रवेशशान्त्यर्थम् अग्निं पर्यषत । परितो होमार्थं

१ C$^{s}$ प्रथिष्टः (*sic*). २ So P P$^{2}$ J K C$^{p}$, and not पथिऽस्थः. Does the absence of the avagraha, like the accent, suggest पतिष्टः as the original reading? ३ D K S$^{m}$ V$^{1}$ for ३. We with A B$^{h}$ K$^{m}$ R C$^{s}$. ४ A D R S$^{m}$ C$^{s}$ °मरिषत. C$^{p}$ अरिषत. We with B$^{h}$ K$^{m}$ K P P$^{2}$ J V.

गृहे प्रापयन्नित्यर्थः ॥ तथा इमे गां पर्यनेषत परितो गृहम् अगमयन् ॥ तथा देवेषु अभ्यादिषु श्रवः हविर्लक्षणम् अन्नम् अक्रत अकृषत । एवं शान्तौ कृतायाम् इमान् अस्मदीयान् पुरुषान् को नाम हिंसकः आ दधर्षति आधृष्टान् बाधितान् करोति ॥

षष्ठी ॥

यः प्रथमः प्रवतमाससाद बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानः ।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ ३ ॥

यः । प्रथमः । प्रऽवतम् । आऽससाद । बहुऽभ्यः । पन्थाम् । अनुऽपस्पशानः ।
यः । अस्य । ईशे । द्विऽपदः । यः । चतुःऽपदः । तस्मै । यमाय । नमः ।
अस्तु । मृत्यवे ॥ ३ ॥

यो यमो बहुभ्यः अन्येभ्यो देवेभ्यः प्रथमः प्रथमभावी मुख्यः सन् प्रवतम् प्रवणवन्तं पन्थाम् पन्थानं मार्गम् आससाद प्राप । किं कुर्वन् । अनुपस्पशानः अनुक्रमेण सर्वान् प्राणिनः स्पृशन् परिगणयन् । अयम् अद्य मारयितव्यः अयं श्वः अयं परश्वः इत्येवम् आकलयन्नित्यर्थः । यो यमः अस्य द्विपदः पादद्वयोपेतस्य मनुष्यादेः प्राणिजातस्य ईशे ईष्टे यश्चास्य चतुष्पदः गवादेरीष्टे तस्मै यमाय मृत्यवे मृतिकारिणे देवाय नमो अस्तु नमस्कारो भवतु ॥

[इति तृतीयेनुवाके] चतुर्थं सूक्तम् ॥

"अमून् हेतिः" इति तृचस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः । सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

"देवा इमम्" इत्यृचा पौनसिरसवे मधुमन्थाभिमर्शनादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "देवा इमं मधुना संजितं यवम् इति पौनसिलं मधुमन्थं सहिरण्यं संपातवन्तम्" इति [कौ० ८. ७] ॥

"यस्ते मदः" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां शमीलवनपापलक्षणशान्त्यर्थं शमीवल्शेन शिरस्युद्वापयेत् । सूत्रितं हि । "यस्ते मद इति शमीलून-

१ DKSV १ for ३. We with ABKRCs. २ P द्विपदः. We with PJCr.

"पापलक्षणयोः शमीशमके नाभ्युद्य वापयत्यधिशिरः" इति [कौ० ४. ७] ॥

"आयं गौः" इति तृचेन पृश्निसवे गोरभिमर्शनसंपातादीनि कर्माणि कुर्यात् । "आयं गौः पृश्निः[६. ३१] अयं सहस्रम्[७. २३] इति पृश्निं गाम" इति [कौ० ८. ७] कौशिकसूत्रात् ॥

तथा आधाने आहितस्य आहवनीयाग्नेः अनेन तृचेन उपस्थानं कुर्यात् । "आहितम् आहवनीयम् आयं गौरित्युपतिष्ठते" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० २. २] ॥

द्वादशाहे अविवाक्येहनि मानसस्तोत्रम् अनेन तृचेन अनुमन्त्रयेत । "आयं गौरिति चानुमन्त्रयते" इति वैतानं सूत्रम् [वै० ६. ३] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अमून् हेतिः पतत्रिणी न्येतु यदुलूको वदति मोघमेतत् ।
यद् वा कपोतः पदमग्नौ कृणोति ॥ १ ॥

अमून् । हेतिः । पतत्रिणी । नि । एतु । यत् । उलूकः । वदति । मोघम् । एतत् ।
यत् । वा । कपोतः । पदम् । अग्नौ । कृणोति ॥ १ ॥

अमून् दूरे दृश्यमानान् अस्मदीयान् शत्रून् पतत्रिणी पक्ष्यात्मिका हेतिः नि एतु नितरां गच्छतु । उलूकः घूको यत् अशोभनं वदति एतद् मोघम् निर्वीर्यं भवतु । वाशब्दः [अप्यर्थे । कपोतः] कपोताख्यः पक्षी अशुभसूचनाय यत् पदम् अग्नौ पचनाग्निसमीपे कृणोति करोति । तदपि निर्वीर्यं भवत्वित्यर्थः ॥

द्वितीया ॥

यौ ते दूतौ निर्ऋत इदमेतोप्रहितौ प्रहितौ वा गृहं नः ।
कपोतोलूकाभ्यामपदं तदस्तु ॥ २ ॥

यौ । ते । दूतौ । निःऽऋते । इदम् । आऽइतः । अप्रऽहितौ । प्रऽहितौ ।
वा । गृहम् । नः ।
कपोतऽउलूकाभ्याम् । अपदम् । तत् । अस्तु ॥ २ ॥

1 S' °नाभ्युवापयत्यधि°. 2 S' आक्षित°.

हे निर्ऋते पापदेवते ते त्वदीयौ कपोतोलूकात्मकौ यौ दूतौ अप्रहितौ त्वया अप्रेषितौ प्रहितौ वा प्रेषितौ वा नः अस्माकम् इदं गृहम् एतौ आगतौ तद् गृहं ताभ्यां कपोतोलूकाभ्याम् अपदम् अनाश्रयभूतम् अस्तु भवतु ॥

तृतीया ॥

अवैरहत्यायेदमा पपत्यात् सुवीरतायाइदमा ससद्यात्।
पराङेव परा वद् पराचीमनु संवतम्।
यथा यमस्य त्वा गृहेरसं प्रतिचाकशानाभूकं प्रतिचाकशान् ॥ ३ ॥

अवैरऽहत्यायं। इदम्। आ। पपत्यात्। सुऽवीरतायै। इदम्। आ। ससद्यात्। पराङ्। एव। परा। वद्। पराचीम्। अनु। सम्ऽवतम्। यथा। यमस्य। त्वा। गृहे। अरसम्। प्रतिऽचाकशान्। आभूकम्। प्रतिऽचाकशान् ॥ ३ ॥

इदं कपोतोलूकजनितं दुर्निमित्तम् अवीरहत्यायै अवीरहननाय अस्मदीयानां वीराणाम् अहिंसनाय आ पपद्यात् आपद्यताम्। अवकल्पताम् इत्यर्थः ॥ तथा अस्माकं सुवीरतायै शोभनवीरसद्भावाय इदं दुर्निमित्तं परामेव परावतम्। परावत् इति दूरनाम। अत्यन्तदूरदेशम् पराचीम् पराङ्मुखम् अपरावृत्तं संवतम् संप्राप्तम् अनुलक्ष्य आ ससद्यात् आसीदतु प्राप्नोतु ॥ हे कपोतात्मक दूत यमस्य स्वामिनो गृहे त्वा त्वां यथा येन प्रकारेण अरसम् निःसारं प्रतिचाकशान् प्रतिपश्येयुः तत्रत्या जनाः तथा आभूकम् आगतवन्तमेव केवलं त्वां प्रतिचाकशान् प्रतिपश्येयुः ॥

चतुर्थी ॥

देवा इमं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः।
इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥ १ ॥

देवाः। इमम्। मधुना। सम्ऽयुतम्। यवम्। सरस्वत्याम्। अधि। मणौ। अचर्कृषुः।

---

१ K K[m] V गृहे°. We with A B[b] D R S[m] C.

इन्द्रः । आसीत् । सीरऽपतिः । शतऽक्रतुः । कीनाशाः । आसन् । मरुतः ।
सुऽदानवः ॥ १ ॥

मधुना मधुररसेन क्षौद्रेण वा संजितम् संप्राप्तं यवम् दीर्घशूकम् इमं धान्यविशेषं सरस्वत्याम् अधि सरस्वत्याख्याया नद्याः समीपे मणौ मनुष्यजातौ देवाः अचर्कृषुः कृतवन्तः । तदानीं कर्षणेन भूमौ तद् धान्यम् उत्पादयितुं शतक्रतुः इन्द्रः सीरपतिः हलस्याधिष्ठाता स्वामी आसीत् । सुदानवः शोभनदाना मरुतः कीनाशाः कर्षका आसन् ॥

पञ्चमी ॥

यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि ।
आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥ २ ॥
यः । ते । मदः । अवऽकेशः । विऽकेशः । येन । अभिऽहस्यम । पुरुषम ।
कृणोषि ।
आरात् । त्वत् । अन्या । वनानि । वृक्षि । त्वम । शमि । शतऽवल्शा । वि ।
रोह ॥ २ ॥

हे शमि ते तव संबन्धी [यो] मदः हर्षः अवकेशः अवमतकेशोत्पादकः विकेशः केशविगमनहेतुश्च भवति । येन मदेन अभिहस्यम् अभितो हसनीयं पुरुषं कृणोषि करोषि ॥ अहमपि त्वत्तः अन्या अन्यानि त्वद्व्यतिरिक्तानि आरात् दूरवर्तीनि वनानि वृक्षि वृश्चामि । हे शमि त्वं शतवल्शा शतशाखा सती वि रोह विविधं प्ररूढा भव ॥

षष्ठी ॥

बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि ।
मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥ ३ ॥
बृहतऽपलाशे । सुऽभगे । वर्षऽवृद्धे । ऋतऽवरि ।
माताऽइव । पुत्रेभ्यः । मृड । केशेभ्यः । शमि ॥ ३ ॥

१ A D S P °वल्शा. २ J °पाला°. We with P P Cr.

1 So S'.

हे बृहत्पलाशे। बृहन्ति महान्ति समधिकानि पलाशानि पर्णानि यस्याः सा बृहत्पलाशा। हे सुभगे सौभाग्यकारिणि हे वर्षवृद्धे वर्षेणैव वृद्धे। अपुरुषप्रयत्नसिद्धे इत्यर्थः। हे ऋतावरि। ऋतम् उदकं सत्यं यज्ञो वा तद्वति। ※ऋतशब्दात् "छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीयो वनिप्। "वनो र च" इति ङीब्रेफौ※। एवंभूते हे शमि पुत्रेभ्यो मातेव केशेभ्यो मूलं मृडय। यथा माता पुत्रान् अभिवर्धयति तथा केशान् वर्धयेत्यर्थः॥

सप्तमी॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥ १॥

आ। अयम्। गौः। पृश्निः। अक्रमीत्। असदत्। मातरम्। पुरः।
पितरम्। च। प्रऽयन्। स्वः॥ १॥

गौः गमनशीलः पृश्निः प्राप्तवर्णो व्याप्ततेजा अयं सूर्यः आ अक्रमीत् आक्रान्तवान्। उदयाद्रिशिखरम् इति शेषः। आक्रम्य च पुरः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि परिदृश्यमानः मातरम् सर्वस्य भूतजातस्य जननीं भूमिम् असदत् स्वरश्मिभिर्व्याप्नोत्। ※षदॢ विशरणगत्यवसादनेषु। अस्मात् लुङि लृदित्वात् च्लेः अङ् आदेशः※। ततः पितरम् वृष्टिलक्षणस्य रेतसो निषेकेण सर्वस्य जगत उत्पादकं स्वः स्वर्लोकम् चकारात् अन्तरिक्षं च प्रयन् प्रगच्छन्। पश्चाद् व्याप्नोतीत्यर्थः। स एव वृष्ट्युदकलक्षणस्य अमृतस्य दोहनाद् गौरित्युच्यते॥

अष्टमी॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः।
व्यख्यन्महिषः स्वः॥ २॥

अन्तः। चरति। रोचना। अस्य। प्राणात्। अपानतः।
वि। अख्यत्। महिषः। स्वः॥ २॥

---

१ So all our Vaidikas and MSS. See Rw. २ In K सुवः

प्राणात् प्राणनव्यापाराद् अनन्तरम् अपानतः अपाननव्यापारं कुर्वतः अस्य प्राणिजातस्य शरीरमध्ये मुख्यप्राणात्मना रोचना रोचमाना सूर्यप्रभा अन्तः मध्ये चरति वर्तते । महिषः । महन्नामैतत् । महान् अधिभूतं वर्तमानः स्वः स्वर्गोपलक्षितम् उपरितनं समस्तं लोकं व्यख्यत् विचष्टे प्रकाशयति । ॥ चष्टिः पश्यतिकर्मा । छान्दसो लुङ् । "अस्यतिवक्ति०" इति च्लेः अङ् आदेशः ॥ ॥

नवमी ॥

त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ३ ॥

त्रिंशत् । धाम । वि । राजति । वाक् । पतङ्गः । अशिश्रियत् ।
प्रति । वस्तोः । अहः । द्युऽभिः ॥ ३ ॥

वस्तोः वासरस्य अहोरात्रस्य अवयवभूतानि त्रिंशन्मुहूर्तात्मकानि धाम धामानि स्थानानि । अँहशब्दः अवधारणे । तस्यैव सूर्यस्य द्युभिः दीप्तिभिः प्रति वि राजति विराजन्ते प्रतिक्षणं विशेषेण दीप्यन्ते । ॥ व्यत्ययेन एकवचनम् ॥ ॥ तथा वाक् त्रयीरूपा पतङ्गः । ॥ विभक्तिव्यत्ययः ॥ । पतङ्गं पतनशीलं पक्षिवच्छीघ्रगामिनं सूर्यम् अशिश्रियत् आश्रित्य वर्तते । ॥ "णिश्रिद्रुस्रुभ्यः०" इति च्लेश्चङ् आदेशः ॥ । "ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः । सामवेदेनास्तमये महीयते" इति तैत्तिरीयकम् [तै० ब्रा० ३.१२.९.१] ॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे षष्ठकाण्डे तृतीयोनुवाकः ॥

चतुर्थेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "अन्तर्दावे" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन पिशाचरक्षोजनितभयनिवृत्तये सूत्रोक्तप्रकारेण अग्निं त्रिः प्रदक्षिणं कृत्वा पुरोडाशं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अन्तर्दाव इति समन्तम् अग्नेर्जपंस्त्रिः परिक्रम्य पुरोडाशं जुहोति" इति [कौ० ४.७] ॥

१ K $\overset{m}{K}$ V °म. We with A $\overset{h}{B}$ D R $\overset{m}{S}$ C°.

1 S′ तस्यै for तस्यैव. 2 S′ वाक्. 3 So S′. *Kausika*: अग्नेः कर्ष्वामुष्णपूर्णायां जप°.

"यस्येदमा रजः" इति तृचेन कृषिकर्मणि क्षेत्रं गत्वा युगलाङ्गलं बध्नाति। अनेनैव तृचेन दक्षिणम् अनड्वाहं युगे युनक्ति। ततः कर्ता इमं तृचं जपन् प्राचीनं कृषन् तृचसमाप्त्यनन्तरं हालिकाय हलं प्रयच्छेत्। तेन तिसृषु सीतासु कृष्टासु उत्तरसीतान्ते अग्निम् उपसमाधाय पुरोडाशेन इन्द्रं स्थालीपाकेन अश्विनौ च अनेन तृचेन यजन् तस्यामेव सीतायां संपातान् आनयेत्। सूत्रितं हि। "यस्येदमा रज इत्यायोजनानाम् अप्ययः" इति [कौ० ३. ६] ॥

तथा सर्वफलकामः अनेन तृचेन इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा। "यस्येदमा रजः[ ६. ३३ ] अथर्वाणम्[ ७. २ ] अदितिर्द्यौरदितिः"[ ७. ६ ] इत्यादि सूत्रम् [कौ० ७. १०] ॥

तथा भूमिकर्षणे लाङ्गलसंश्लेषलक्षणोत्पाते तच्छान्त्यर्थं क्रियमाणे शान्त्युदके एतं तृचम् आवपेत्। "अथ यत्रैतल्लाङ्गले संसृजतः" इति प्रक्रम्य "अत्र शुनासीराण्यनुयोजयेद्" इति सूत्रितम् [कौ० १३. १४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अन्तर्दावे जुहुता[1] सु[2] एतद् यातुधानक्षयणं घृतेन।
आराद् रक्षांसि प्रति दह त्वमग्ने न नो गृहाणामुप तीतपासि ॥ १ ॥

अन्तःऽदावे। जुहुत। सु। एतत्। यातुधानऽक्षयणम्। घृतेन।
आरात्। रक्षांसि। प्रति। दह। त्वम्। अग्ने। न। नः। गृहाणाम्। उप। तीतपासि ॥ १ ॥

हे ऋत्विजः यातुधानक्षयणम् रक्षोनिबर्हणम् एतत् हविः घृतेन सह दावे दावाग्नौ अन्तः मध्ये [सु] सुष्ठु जुहुत ॥ हे अग्ने आहुत्याधारभूतस्त्वं रक्षांसि अस्मदुपद्रवकारिणो राक्षसान् आरात् दूरे प्रति दह भस्मसात् कुरु ॥ नः अस्माकं गृहाणां नोप तीतपासि उपतापकरो मा भूः ॥

---

१ A B B[1] D K K[1] R S[2] P J V. जुहुता. We with C[2] P. २ D K K[1] R V १ for ३. ३ P J जुहुत. C[2] जुहुत. We with P.

1 S' इत्यायोजना°. We with *Kausika*.

द्वितीया ॥

रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत् पिशाचाः पृष्टीर्वोपि शृणातु यातुधानाः ।
वीरुद् वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥ २ ॥

रुद्रः । वः । ग्रीवाः । अशरैत् । पिशाचाः । पृष्टीः । वः । अपि । शृणातु । यातुऽधानाः ।
वीरुत् । वः । विश्वतःऽवीर्या । यमेन । सम् । अजीगमत् ॥ २ ॥

हे पिशाचाः पिशिताशनाः वः युष्माकं ग्रीवाः गलावयवान् रुद्रः संहर्ता देवः [अशरैत्] छिनत्तु ॥ हे यातुधानाः वः युष्माकं पृष्टीः पार्श्वास्थीनि स एव रुद्रः अपि शृणातु हिनस्तु ॥ विश्वतोवीर्या सर्वतः प्राप्तवीर्या वीरुत् ओषधिश्च वः युष्मान् यातुधानान् यमेन मृत्युना सम् अजीगमत् संगमयतु ॥

तृतीया ॥

अभयं मित्रावरुणाविहास्तु नोर्चिषात्त्रिणो नुदतं प्रतीचः ।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ ३ ॥

अभयम् । मित्रावरुणौ । इह । अस्तु । नः । अर्चिषा । अत्त्रिणः । नुदतम् । प्रतीचः ।
मा । ज्ञातारम् । मा । प्रतिऽस्थाम् । विदन्त । मिथः । विऽघ्नानाः । उप । यन्तु । मृत्युम् ॥ ३ ॥

हे मित्रावरुणौ नः अस्माकम् इह अस्मिन् देशे अभयम् भयराहित्यम् अस्तु ॥ अर्चिषा तेजसा अत्त्रिणः अदनशीलान् राक्षसान् प्रतीचः प्रत्यङ्मुखान् अस्मत्तः पराङ्मुखान् नुदतम् निरस्यतम् ॥ ते च निरस्ताः ज्ञातारम् अभिज्ञं स्वामिनं मा विदन्त मा लभन्ताम् । तथा प्रतिष्ठाम् आवासभूमिं मा लभन्ताम् । निराश्रया भवन्त्वित्यर्थः ॥ ते च मिथः परस्परं विघ्नानाः विहन्यमानाः मृत्युम् मरणम् उप यन्तु उपगच्छन्तु ॥

१ B K V अशरीत. We with A B B1 D R S P P2 J V C5 CP. २ J K पृष्टीः. We with P P2 CP. ३ P °धानाः. We with P P2 CP. ४ P P2 J CP °वीर्याः. We with Sâyana.

चतुर्थी ॥

यस्येदमा रजो युजस्तुजे जना वनं स्वः ।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ १ ॥

यस्य । इदम् । आ । रजः । युजः । तुजे । जनाः । वनम् । स्वः ।
इन्द्रस्य । रन्त्यम् । बृहत् ॥ १ ॥

यस्येन्द्रस्य इदं रजः रञ्जकं ज्योतिः तुजे तोजनाय शत्रूणां हिंसनाय आ युजः आयोजयति आयुक्तं संनद्धं करोति तस्य इन्द्रस्य रन्त्यम् रमणीयं बृहत् परिवृढं वनम् वननीयं स्वः सुष्ठु प्राप्तव्यं निरतिशयसुखसाधनं वा तेजः हे जनाः । यूयं भजध्वम् इति शेषः । रज इति । रञ्ज रागे इत्यस्माद् असुनि "रजकरजनरजःसूपसंख्यानम्" इति उपधालोपः । युज इति । युजिर् योगे । अस्माच्छान्दसे लुङि च्लेः अङ् आदेशः । तुजे इति । तुज हिंसायाम् । अस्मात् संपदादिलक्षणो भावे क्विप् । स्वरिति । सुपूर्वाद् अर्तेर्विच् । रन्त्यम् इति । रमु क्रीडायाम् । अस्मात् "क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम्" इति क्तिच् । "न क्तिचि दीर्घश्च" इति अनुनासिकलोपदीर्घयोरभावः । अत एव अन्यत्राम्नातम् । "रन्तिर्नामासि दिव्यो गन्धर्वः" इति [तै० आ० ४. ११. ५] । तत्रभवं ज्योतिः रन्त्यम् ॥

पञ्चमी ॥

नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः ।
पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः ॥ २ ॥

न । आऽधृषे । आ । दधृषते । धृषाणः । धृषितः । शवः ।
पुरा । यथा । व्यथिः । श्रवः । इन्द्रस्य । न । आऽधृषे । शवः ॥ २ ॥

स च इन्द्रः नाधृषे नाधृष्यते अन्यैर्नाभिभूयते । स च धृषाणः धृष्टः सन् [धृषितः] । धृषित इति कर्तरि निष्ठा लिङ्गव्यत्ययः । धर्षकं [शवः] बलम् आ दधृषते आधर्षयति अभिभवति । पुरा वृत्रासु-

1 S' आदधर्षयति.

रवधकाले व्यथिं व्यथाकारि श्रवः श्रूयमाणम् इन्द्रस्य शवः बलं यथा नाधृषे अन्यैर्नाधृष्यते । तथेदानीमपीति संबन्धः ॥

षष्ठी ॥

स नो ददातु तां रयिमुरुं पिशङ्गसंदृशम् ।
इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ॥ ३ ॥

सः । नः । ददातु । ताम् । रयिम् । उरुम् । पिशङ्गऽसंदृशम् ।
इन्द्रः । पतिः । तुविऽतमः । जनेषु । आ ॥ ३ ॥

स इन्द्रः नः अस्मभ्यं तं रयिम् धनं दधातु प्रयच्छतु । कीदृशम् । उरुम् प्रभूतं पिशङ्गसंदृशम् पीतवर्णाभं वर्णप्रकर्षयुक्तम् । उत्कृष्टं काञ्चनम् इत्यर्थः । कस्माद् एवम् उच्यते इति तत्राह इन्द्रः पतिरिति । स इन्द्रो जनेष्वा । ✕आकारः समुच्चये✕ । सर्वेषु च जनेषु देवमनुष्यादिषु पतिः अधिपतिः इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः कर्ता । तुविंतमः बहुतमः प्रभूततमः । सर्वप्रकारोत्कर्षवान् इत्यर्थः ॥

[इति] षष्ठकाण्डे चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"प्राग्नये वाचम्" इति पञ्चर्चेन रक्षोग्रहजनितपीडानिवृत्तये समिदाज्यशष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । सूत्रितं हि । "प्राग्नये[६. ३४] प्रेतः[७. ११९. २] इत्युपदधीत" इति [कौ० ४. ७] ॥

"वैश्वानरो न ऊतये"[६. ३५] "ऋतावानं वैश्वानरम्"[६. ३६] इति तृचाभ्यां सर्वभैषज्यकर्मणि उदकहरिद्रासर्पिरादिकपायनद्रव्याणि अभिमन्त्र्य पाययेत् । "वैश्वानरीयाभ्यां पायनम्" इति हि सूत्रम्[कौ० ४. ७] ॥

अग्निचयने "वैश्वानरो न ऊतये" इति तृचेन पुरीषाच्छन्नां चितिं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "वैश्वानरो न ऊतय इति [चितिंचितिं] पुरीषाच्छन्नाम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ५. २] ॥

---

१ B °वित्तमो. So Sâyaṇa's text also २ So P P J. C° तुविऽतमः.

---

1 S' अवं. 2 S' °धृष्यते. 3 S' पुरीषछिन्ना°.

तत्र प्रथमा ॥

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ १ ॥
प्र । अग्नये । वाचम् । ईरय । वृषभाय । क्षितीनाम् ।
सः । नः । पर्षत् । अति । द्विषः ॥ १ ॥

हे स्तोतः अग्नये रक्षसां हन्त्रे देवाय स्तुतिलक्षणां वाचं प्रेरय प्रकर्षेण उच्चारय । कीदृशाय । क्षितीनां मनुष्याणां वृषभाय कामाभिवर्षकाय । सः अग्निः नः अस्मान् द्विषः शत्रून् रक्षःपिशाचादीन् अति पर्षत् अतिपारयतु । ✠पॄ पालनपूरणयोः अस्मात् लेटि अडागमः । "सिब्बहुलम्०" इति सिप् ✠ ॥

द्वितीया ॥

यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ २ ॥
यः । रक्षांसि । निऽजूर्वति । अग्निः । तिग्मेन । शोचिषा ।
सः । नः । पर्षत् । अति । द्विषः ॥ २ ॥

योग्निः तिग्मेन तीक्ष्णेन शोचिषा तेजसा रक्षांसि निजूर्वति निहिनस्ति । स न इत्यादि गतम् ॥

तृतीया ॥

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ ३ ॥
यः । परस्याः । पराऽवतः । तिरः । धन्व । अतिऽरोचते ।
सः । नः । पर्षत् । अति । द्विषः ॥ ३ ॥

योग्निः परस्याः परावतः अत्यन्तदूरदेशाद् धन्व मरुभूमिं जलवर्जितं

१ R निर्जूर्व°.

1 S' क्षतीनां. So too Sâyaṇa's text.

देशं तिरः अन्तर्धाय अतिरोचते अतिशयेन दीप्यते । स न इत्यादि [गतम्] ॥

चतुर्थी ॥

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ ४ ॥

यः । विश्वा । अभि । विऽपश्यति । भुवना । सम् । च । पश्यति ।
सः । नः । पर्षत् । अति । द्विषः ॥ ४ ॥

योग्निः विश्वा भुवना विश्वानि भुवनानि अभि विपश्यति अभितः सर्वतो जाठररूपेण प्रदीपादिरूपेण वा विविधं पश्यति सं पश्यति च ऐकरूप्येण सूर्यात्मना प्रकाशयति । स न इत्यादि गतम् ॥

पञ्चमी ॥

यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ ५ ॥

यः । अस्य । पारे । रजसः । शुक्रः । अग्निः । अजायत ।
सः । नः । पर्षत् । अति । द्विषः ॥ ५ ॥

अस्य रजसः पार्थिवस्य लोकस्य पारे अवसाने पर्यवसानभूमौ अन्तरिक्षे यः शुक्रः निर्मलः सूर्यात्मकः अग्निरजायत उदपद्यत । स न इत्यादि गतम् ॥

षष्ठी ॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ १ ॥

वैश्वानरः । नः । ऊतये । आ । प्र । यातु । पराऽवतः ।
अग्निः । नः । सुऽस्तुतीः । उप ॥ १ ॥

वैश्वानरः विश्वनरहितः अग्निः नः अस्माकम् ऊतये रक्षणाय परा-

---

१ A B K R Š P J Cs °रजा°. We with B D K P V. २ P J अजायत. Cp अजायत corrected into अजायत. We with P K.

वतः दूरदेशाद् आ प्र यातु अभिमुखं प्रगच्छतु। गत्वा च सोग्निः नः अस्माकं सुष्टुतीः शोभनस्तुतीः उप यातु उपगच्छतु ॥

सप्तमी ॥

वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप।
अग्निरुक्थेष्वंहसु ॥ २ ॥

वैश्वानरः। नः। आ। अगमत्। इमम्। यज्ञम्। सऽजूः। उप।
अग्निः। उक्थेषु। अंहऽसु ॥ २ ॥

वैश्वानरोग्निः नः अस्मान् आगमत् आगच्छतु। आगत्य च अंहसु अभिगन्तव्येषु उक्थेषु अस्माभिः क्रियमाणेषु स्तुतशस्त्रेषु सजूः समानप्रीतिः सन् अस्मदीयम् इमं यज्ञम् उप गच्छतु ॥

अष्टमी ॥

वैश्वानरोङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाकृपत्।
एषु द्युम्नं स्वर्यमत् ॥ ३ ॥

वैश्वानरः। अङ्गिरसाम्। स्तोमम्। उक्थम्। च। चक्रृपत्।
आ। एषु। द्युम्नम्। स्वः। यमत् ॥ ३ ॥

वैश्वानरोग्निः अङ्गिरसाम् महर्षीणां तत्कर्तृकं स्तोमम् स्तोत्रम् उक्थम् शस्त्रं च चक्रृपत् कृप्तं समर्थम् अकार्षीत्। एषु अङ्गिरःसु द्युम्नम् द्योतमानं यशः अन्नं वा स्वः सुष्ठु अरणीयं प्राप्तव्यम् आ यमत् आगमयत्। यद्वा द्युम्नम् द्योतमानं स्वः कर्मफलभूतं स्वर्गसुखं प्रापयद् इत्यर्थः ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

"ऋतावानं वैश्वानरम्" इति तृचस्य सर्वरोगभैषज्यकर्मणि पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः। सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

"उप प्रागात् सहस्राक्षः" इति तृचेन अभिचारजनितदोषनिवृत्तये अभिमन्त्रितायाः श्वेतमृत्तिकायाः शुने प्रदानम् संपादिताभिमन्त्रितपालाश-

1 S' दत्वा for गत्वा.

मणिप्रदानम् इङ्गिडहोमं समिदाधानं वा कुर्यात् ॥ [कौ० ६.२] ॥
"यो नः शपात्" इत्यनया अभिचारकर्मणि विद्युद्धतवृक्षजा एकादश समिध आदध्यात् ॥ [कौ० ६.२] ॥

तत्र प्रथमा ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १ ॥

ऋतऽवानम् । वैश्वानरम् । ऋतस्य । ज्योतिषः । पतिम् ।
अजस्रम् । घर्मम् । ईमहे ॥ १ ॥

[ऋतावानम्] । ऋतम् इति सत्यस्य उदकस्य यज्ञस्य वा नामधेयम् । तद्वन्तम् । ✕"छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीयो वनिप्✕ । तथा ऋतस्य यज्ञात्मकस्य ज्योतिषः तेजसः पतिम् स्वामिनम् अजस्रम् अनुपरतं संततं घर्मम् दीप्यमानम् एवंभूतं वैश्वानरम् अग्निम् ईमहे ईयामहे उपसीदामः । उपास्महे इत्यर्थः । ✕ईङ् गतौ । दैवादिकः । व्यत्ययेन श्यनो लुक्✕ । यद्वा । ✕ईमहे इति याञ्चाकर्मसु पठितम्✕ । अभिलषितं फलं याचामह इत्यर्थः ॥

द्वितीया ॥

स विश्वा प्रति चाकॢप ऋतूंरुत सृजते वशी ।
यज्ञस्य वयं उत्तिरन् ॥ २ ॥

सः । विश्वा । प्रति । चक्लृपे । ऋतून् । उत । सृजते । वशी ।
यज्ञस्य । वयः । उतऽतिरन् ॥ २ ॥

सः वैश्वानरोग्निः विश्वाः सर्वाः प्रजाः प्रति चक्लृपे तत्तत् फलं प्रापयितुं समर्थो भवति । ✕कृपू सामर्थ्ये । अस्माच्छान्दसो लिट्✕ । स च वशी वशयिता स्वतन्त्रः सूर्यात्मना ऋतून् वसन्ताद्यान् कालावयवान् उत सृजते उन्नतान् निर्मिमीते । किं कुर्वन् । यज्ञस्य संबन्धि वयः अन्नं हविर्लक्षणम् उत्तिरन् ऊर्ध्वं देवान् प्रापयन् ॥

---

१ BDKRSVCs Cp विश्वाः. We with APPJ.

तृतीया ॥

अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

अग्निः । परेषु । धामऽसु । कामः । भूतस्य । भव्यस्य ।
सम्ऽराट् । एकः । वि । राजति ॥ ३ ॥

परेषु उत्कृष्टेषु धामसु स्थानेषु अग्निः एक एव सम्राट् सम्यग् राजमानः भूतस्य उत्पन्नस्य भव्यस्य उत्पत्स्यमानस्य च कामः कामयिता कामप्रदो वा भूत्वा वि राजति विशेषेण दीप्यते ॥

चतुर्थी ॥

उप प्रागात् सहस्राक्षो युक्ता शपथो रथम् ।
शप्तारमन्विच्छन् मम वृक इवाविमतो गृहम् ॥ १ ॥

उप । प्र । अगात् । सहस्रऽअक्षः । युक्ता । शपथः । रथम् ।
शप्तारम् । अनुऽइच्छन् । मम । वृकःऽइव । अविऽमतः । गृहम् ॥ १ ॥

सहस्राक्षः इन्द्रः शपथः शापक्रियायाः कर्ता सन् रथं युक्ता अश्वाभ्यां संयोज्य उप अस्मत्समीपं प्रागात् । आगत्य च मम मदीयं शप्तारम् शापकारिणं शत्रुं जिघांसतु । तत्र दृष्टान्तः । अविमतः अवीनां स्वामिनः पुरुषस्य गृहं वृक इव । यथा वृकः आगत्य तदीयान् अवीन् हन्ति तद्वद् इत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

परि णो वृङ्धि शपथ हृदमग्निरिवा दहन् ।
शप्तारमत्र नो जहि द्विवो वृक्षमिवाशनिः ॥ २ ॥

परि । नः । वृङ्धि । शपथ । हृदम् । अग्निःऽइव । दहन् ।

१ So we with BD. Cs हृद° corrected into हृद. AKKRSPPJVCp हृदम्. The reading इदम् for हृदम्, explained by Sâyana, may have arisen from a misreading of the letter हृ° for इ°.

1 So S'. Sâyan. 's text in S' reads अन्विच्छ.

शप्तारम् । अत्र । नः । जहि । दिवः । वृक्षमऽइव । अशनिः ॥ २ ॥

हे शपथ नः अस्मान् परि वृङ्धि परिहर मा बाधिष्ठाः । इदम् शत्रुकुलम् अग्निरिव दहन् । भस्मसात् कुर्वन्नित्यर्थः । एवं च अत्र अस्मिन् देशे नः अस्माकं शप्तारम् शापकारिणं शत्रुमेव जहि नाशय । दिवः सकाशात् पतितोशनिः यथा वृक्षं निहन्ति तद्वद् इत्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे ॥ ३ ॥

यः । नः । शपात् । अशपतः । शपतः । यः । च । नः । शपात् ।
शुने । पेष्ट्रमऽइव । अवऽक्षामम् । तम् । प्रति । अस्यामि । मृत्यवे ॥ ३ ॥

यः शत्रुः अशपतः अशापकारिणो नः अस्मान् शपात् परुषभाषणेन शपेत् । यश्च [शपतः] शापकारिणो नः अस्मान् शपात् शपेत् । तम् उभयविधं शत्रुं शुने कौलेयकाय पेष्टम् पिष्टमयं खाद्यमिव अवक्षामम् अवदग्धं कृत्वा मृत्यवे यमाय प्रत्यस्यामि प्रतिक्षिपामि । ⁂अवपूर्वात् क्षायतेः "क्षायो मः" इति निष्ठातकारस्य मकारः⁂ ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

"सिंहे व्याघ्रे[६.३८] यशो हविः[६.३९]" इति तृचाभ्यां वर्चस्कामः स्नातकसिंहव्याघ्रादीनां सूत्रोक्तानां सप्तानाम् अन्यतमस्य नाभिलोममणिं लाक्षाहिरण्याभ्यां वेष्टयित्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा आभ्यामेव तृचाभ्यां पालाशादिदशशान्तवृक्षशकलनिर्मितमणिं लाक्षाहिरण्यवेष्टितं संपात्य अभिमन्त्र्य वर्चस्कामो बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । "लोमानि जतुना संनह्य जातरूपेणापिधाप्य सिंहे व्याघ्रे "यशो हविरिति स्नातकसिंहव्याघ्रवस्तवृष्णिवृषभराज्ञां नाभिलोमानि द-"शानां शान्तवृक्षाणां शकलान् । एतयोः" इति [कौ०२.४] ॥

१ So all our Vaidikas and manuscripts.

1 S' परितो°.

तथा उत्सर्जनाख्ये कर्मणि आभ्यां तृचाभ्याम् आज्यं हुत्वा रसेषु संपातान् आनयेत्। सूत्रितं हि। "फल्गुनीषु द्वयान् रसान् उपसादयति" इति प्रक्रम्य "सिंहे व्याघ्रे[६.३८] यशो हविः[६.३९] यशसं मेन्द्रः [६.५८]" इत्यादि "अग्नौ हुत्वा रसेषु संपातान् आनीय" इत्यन्तम् [कौ० १४.३] ॥

तत्र प्रथमा ॥

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ १ ॥

सिंहे। व्याघ्रे। उत। या। पृदाकौ। त्विषिः। अग्नौ। ब्राह्मणे। सूर्ये। या। इन्द्रम्। या। देवी। सुऽभगा। जजान। सा। नः। आ। एतु। वर्चसा। सम्ऽविदाना ॥ १ ॥

सिंहे सहनशीले मृगेन्द्रे व्याघ्रे शार्दूले च या त्विषिः दीप्तिरस्ति उत अपि च पृदाकौ सर्पे अग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये च या दीप्तिरस्ति। त्विष्यात्मिका सुभगा सौभाग्ययुक्ता या देवी इन्द्रं जजान जनयामास। अत्र सिंहादिषु त्रिषु आक्रमणशक्तिरूपा त्विषिर्विवक्षिता अग्न्यादिषु त्रिषु दाहशापंतापात्मिका। सा त्विष्यात्मिका देवी वर्चसा अस्मदभीप्सितेन तेजसा संविदाना संजानाना ऐकमत्यं गता नः अस्मान् ऐतु आगच्छतु ॥

द्वितीया ॥

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ २ ॥

या। हस्तिनि। द्वीपिनि। या। हिरण्ये। त्विषिः। अप्ऽसु। गोषु। या। पुरुषेषु। इन्द्रम्। या। देवी। सुऽभगा। जजान। सा। नः। आ। एतु। वर्चसा। सम्ऽविदाना ॥ २ ॥

---

१ P P̈ J हिरण्यै. We with Cr.

1 S' फल्गुनेषु. We with *Kausika*.

या त्विषिः हस्तिनि गजेन्द्रे द्वीपिनि तरक्षौ हिरण्ये च या त्विषिरस्ति । गजेन्द्रे तावद् बलोत्कर्षरूपा त्विषिः द्वीपिनि हिंसनरूपा हिरण्ये आह्लादविषयता वर्णोत्कर्षः । अप्सु उदकेषु गोषु पुरुषेषु मनुष्येषु च या तत्तदसाधारणरूपा त्विषिरस्ति । या च देवी [सुभगा] सौभाग्ययुक्ता त्विष्यात्मिका देवी इन्द्रं जजानेत्यादि पूर्ववद् योजना । ✕ अप्स्विति । "ऊडिदम्०" इति विभक्त्युदात्तत्वम् । गोष्विति । "सावेकाचः०" इति प्राप्तस्य विभक्त्युदात्तत्वस्य "न गोश्वन्सावर्वर्ण०" इति प्रतिषेधः ✕ ॥

तृतीया ॥

रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे वाते पर्जन्ये वरुणस्य शुष्मे ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ ३ ॥

रथे । अक्षेषु । ऋषभस्य । वाजे । वाते । पर्जन्ये । वरुणस्य । शुष्मे ।
इन्द्रम् । या । देवी । सुऽभगा । जजान । सा । नः । आ । एतु । वर्चसा । सम्ऽविदाना ॥ ३ ॥

गमनसाधने रथे अक्षेषु च तदीयेषु वृषभस्य सेचनसमर्थस्य पुंगवस्य वाजे वेगगमने वाते वायौ पर्जन्ये वृष्टिप्रदे मेघे वरुणस्य तदधिष्ठातुर्देवस्य शुष्मे शोषके बले च या प्रतिनियतस्वभावा त्विषिरस्ति । अन्यत् पूर्ववत् ॥

चतुर्थी ॥

राजन्ये दुन्दुभावायतायामश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ ४ ॥

राजन्ये । दुन्दुभौ । आऽयतायाम् । अश्वस्य । वाजे । पुरुषस्य । मायौ ।
इन्द्रम् । या । देवी । सुऽभगा । जजान । सा । नः । आ । एतु । वर्चसा ।
सम्ऽविदाना ॥ ४ ॥

राजन्ये राज्ञोऽभिषिक्तस्य पुत्रो राजन्यः । ✕ "राजश्वशुराद् यत्" । "ये चाभावकर्मणोः" इति प्रकृतिभावः । "तित् स्वरितः" इति

1 So S'.

स्वरितत्वम्॥। तस्मिन् राजकुमारे आयतायाम् आयम्यमानायाम् आताड्यमानायां दुन्दुभौ च या विषिरस्ति। अश्वस्य वाजे शीघ्रगमने पुरुषस्य मायौ शब्दे उच्चैर्घोषलक्षणे या विषिरस्ति। या च विष्यात्मिका देवी सुभगा सौभाग्ययुक्ता इन्द्रं देवं जजान जनयामास सा नः अस्मान् [वर्चसा] तेजसा [संविदाना] संजानाना ऐतु आगच्छतु। ॥संविदानेति। "समो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम्॥॥

पञ्चमी॥

यशो॑ ह॒विर्वर्धता॒मिन्द्र॑जूतं स॒हस्र॑वीर्यं सु॒भृ॑तं सह॑स्कृतम्।
प्र॒सर्स्रा॑णमनु॑ दी॒र्घाय॒ चक्ष॑से ह॒विष्म॑न्तं मा वर्धय ज्ये॒ष्ठता॑तये॥ १॥

यशः। ह॒विः। वर्ध॒ताम्। इन्द्र॑ऽजूतम्। स॒हस्र॑ऽवीर्यम्। सु॒ऽभृ॑तम्। स॒ह॑ः॑ऽकृतम्।

प्र॒ऽसर्स्रा॑णम्। अनु॑। दी॒र्घाय॑। चक्ष॑से। ह॒विष्म॑न्तम्। मा॒। वर्ध॑य। ज्ये॒ष्ठऽता॑तये॥ १॥

यशः व्यापकम्। ॥अशू व्याप्तौ इत्यस्माद् अशेर्युट् च [उ० ४. १९०] इति असुनि युडागमः॥। यद्वा फलभूतस्य यशसो हेतुत्वात् तत्कारणं हविरपि यशः। तद् वर्धताम् समृध्यताम्। कथंभूतम्। इन्द्रजूतम् इन्द्रम् उद्दिश्य अस्माभिः प्रेरितं दत्तं सहस्रवीर्यम् अपरिमितसामर्थ्ययुक्तं सुवृतम् सुष्ठु वर्तमानं परिवर्तमानं सहस्कृतम् सहसः पराभिभवनक्षमस्य बलस्य कारकं प्रसर्स्राणम् प्रसरणशीलम्। ॥सृ गतौ इत्यस्माद् यङ्लुगन्तात् ताच्छीलिकश्चानश्॥। उद्दिश्यमाना देवता यादृक्परिमाणयुक्तं हविः कामयते तावत्पर्यन्तं मन्त्रसामर्थ्येन अभिवर्धमानम् इत्यर्थः। तथा च तैत्तिरीयकम्। "धान्यम् असि। धिनुहि देवान्। "इत्याह। एतस्य यजुषो वीर्येण यावद् एका देवता कामयते यावद् एका "तावद् आहुतिः प्रथते" इति [तै० ब्रा० ३. २. ६. ४]। अनु ईदृशस्य हविषो वर्णनानन्तरं हविष्मन्तम् तेन हविषा युक्तं मा मां यजमानं दीर्घाय चक्षसे चिरकालभाविने दर्शनाय ज्येष्ठतातये सर्वश्रैष्ठ्याय च हे

इन्द्र वर्धय समृद्धं कुरु । ⁂"वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि" इति तातिल् प्रत्ययः⁂ । दीर्घाय चक्षसे प्रसर्त्तणम् इति वा संबन्धः ॥

अच्छा न इन्द्रं यशसं यशोभिर्यशस्विनं नमसाना विधेम ।
स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम ॥ २ ॥

अच्छ । नः । इन्द्रम । यशसम । यशःऽभिः । यशस्विनम । नमसानाः । विधेम ।
सः । नः । रास्व । राष्ट्रम । इन्द्रऽजूतम । तस्य । ते । रातौ । यशसः ।
स्याम ॥ २ ॥

नः अस्माकम् अच्छ आभिमुख्येन वर्तमानम् इन्द्रं यशसम् यशोरूपं यशसः प्रदातारम् । ⁂यशःशब्दात् क्यजन्तात् क्विपि अतोलोपयलोपौ । "चितः" इति अन्तोदात्तत्वम⁂ । यशोभिः कीर्तिभिः यशस्विनम् प्रभूतयशस्कम् एवंभूतम् इन्द्रं नमसानाः नमस्यन्तः नमस्कारादिभिः पूजयन्तो वयं विधेम परिचरेम ॥ हे इन्द्र स त्वं नः अस्मभ्यम् इन्द्रजूतम् इन्द्रेण त्वया प्रेरितं राष्ट्रम् राज्यं रास्व देहि । ⁂रासृ दाने⁂ । तस्य ते तव रातौ दाने यशसः यशस्विनो वयं स्याम भवेम ॥

सप्तमी ॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥ ३ ॥

यशाः । इन्द्रः । यशाः । अग्निः । यशाः । सोमः । अजायत ।
यशाः । विश्वस्य । भूतस्य । अहम । अस्मि । यशःऽतमः ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवो यशाः यश आत्मन इच्छन् वर्तते । ⁂पूर्ववद् यशस्यतेः क्विपि रूपम⁂ । तथा अग्निरपि यशाः यशस्कामो भवति । तथा सोमश्च यशाः यश इच्छन् अजायत । यथैवम् इन्द्रादयो यशस्विनो

जाताः एवं यशाः यशस्कामः अहमपि विश्वस्य भूतस्य सर्वस्य भूतजातस्य देवमनुष्यादेः सकाशाद् यशस्तमः अतिशयेन यशस्वी अस्मि भवामि ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

"अभयं द्यावापृथिवी" इति तृचेन ग्रामाद्यभयकामः तस्यैव प्रतिदिशं सप्तर्षीन् यजते उपतिष्ठते वा। सूत्रितं हि। "अभयं द्यावापृथिवी[६.४०] श्येनोसि[६.४८] इति प्रतिदिशं सप्तर्षीन् अभयकामः" इति [कौ० ७.१०] ॥

तथा सेनाभयनिवृत्त्यर्थं तस्याः प्रतिदिशं सप्तर्षीणां यागम् उपस्थानं वा कुर्यात्। "अभयानाम् अप्ययः" [कौ० २.७] इति सूत्रात् ॥

तथा अनेन तृचेन उपाकर्मणि आज्यं जुहुयात्। "अभिजिति शिष्यान् उपनीय" इति प्रक्रम्य सूत्रितम्। "अभयैरपराजितैराज्यं जुहुयात्" इति [कौ० १४.३] ॥

"मनसे चेतसे धिये" इति तृचेन गोदानाख्ये संस्कारकर्मणि महाव्रीहिमयं स्थालीपाकं शान्त्युदकेन अभ्युक्ष्य अभिमन्त्र्य आयुष्कामं माणवकं प्राशयेत्। सूत्रितं हि। "यथा द्यौः[२.१५] मनसे चेतसे धिये "[६.४१] इति महाव्रीहीणां स्थालीपाकं श्रपयित्वा शान्त्युदकेन उप-"सिच्याभिमन्त्र्य प्राशयति" इति [कौ० ७.५] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोस्तूवन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु ॥ १ ॥

अभयम्। द्यावापृथिवी इति। इह। अस्तु। नः। अभयम्। सोमः। सविता। नः। कृणोतु।

अभयम्। नः। अस्तु। उरु। अन्तरिक्षम्। सप्तऽऋषीणाम्। च। हविषा। अभयम्। नः। अस्तु ॥ १ ॥

१ B B ३ for १. २ B सप्तर्षी°. ३ P °ऋषीणाम्. We with P J Cp.

1 S° °व्रीहियवं. We with the *Kesava*.

हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ युवयोः प्रसादाद् इह अस्मिन् देशे नः अस्माकम् अभयम् भयराहित्यम् अस्तु । चोरव्याघ्रादिजनितस्य भयस्य निवृत्तिर्भूयाद् इत्यर्थः । तथा सोमश्चन्द्रः सविता सूर्यश्च नः अस्माकम् अभयं कृणोतु करोतु । तथा द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमानम् उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षं नः अस्माकम् अभयम् अस्तु । तत्रत्याद् निमित्ताद् भयं मा भूद् इत्यर्थः । [सप्तर्षीणाम्]

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोथ गौतमः ।
अत्रिर्वसिष्ठः कश्यपः [आश्व० प० १]

इत्येवं प्रसिद्धा ये सप्त ऋषयः सन्ति तेषां संबन्धिना हविषा अस्माभिर्दीयमानेन नः अस्माकम् अभयम् अस्तु । ✕सप्तर्षीणाम् इति । सप्त च ते ऋषय इति विगृह्य "दिक्संख्ये संज्ञायाम्" इति समासः ✕ ॥

द्वितीया ॥

अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति संविता नः कृणोतु ।
अशत्रिन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः ॥ २ ॥

अस्मै । ग्रामाय । प्रऽदिशः । चतस्रः । ऊर्जम् । सुऽभूतम् । स्वस्ति । सविता । नः । कृणोतु ।

अशत्रु । इन्द्रः । अभयम् । नः । कृणोतु । अन्यत्र । राज्ञाम् । अभि । यातु । मन्युः ॥ २ ॥

अस्मै ग्रामाय । ✕षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ✕ । अस्य ग्रामस्य अस्मदावासभूतस्य प्रदिशश्चतस्रः प्रकृष्टाः प्राच्याद्याश्चतस्रो दिशः । ✕"०अत्यन्तसंयोगे" द्वितीया ✕ । प्रागादिसर्वदिक्षु ऊर्जम् अन्नं सुभूतम् सुष्ठु उत्पन्नं स्वस्ति । अविनाशिनामैतत् । अविनाशोपलक्षितं क्षेमम् एतत् सर्वं नः अस्माकं सविता सर्वस्य प्रेरको देवः सूर्यः कृणोतु करो-

१ B D K अशत्रिन्द्रो. K अशत्रिरिन्द्रो, which may be intended for अशत्रुरिन्द्रो of Sâyaṇa. We with A B R S P P J V C$_1$ C$_2$. २ So P P J C$_2$. K uncertain.

1 S' हविषानः for हविषा.

नु । तथा अशत्रुः अनुपजातविरोधी इन्द्रो देवः नः अस्माकम् अभयम् शत्रुनिमित्तभयराहित्यं कृणोतु करोतु । तत्प्रसादाद् राज्ञां मन्युः क्रोधः अस्मत्तः अन्यत्र अभि यातु अभिगच्छतु ॥

तृतीया ॥

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात् ।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि ॥ ३ ॥

अनमित्रम् । नः । अधरात् । अनमित्रम् । नः । उत्तरात् ।
इन्द्र । अनमित्रम् । नः । पश्चात् । अनमित्रम् । पुरः । कृधि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र नः अस्माकम् अधरात् । अधरशब्दो दक्षिणदिग्वाची । दक्षिणस्या दिशः अनमित्रम् अमित्राः शत्रवः तद्राहित्यं कुरु । तथा उत्तरात् उत्तरस्या दिशः सकाशाद् नः अस्माकम् अनमित्रम् शत्रुराहित्यं कुरु । ‘‘उत्तराधरदक्षिणाद् आतिः’’ इति आतिप्रत्ययः । हे इन्द्र नः अस्माकं पश्चात् पश्चिमदिग्भागात् अनमित्रम् अमित्रराहित्यं कुरु । पुरः पुरस्तात् पूर्वस्या दिशः अनमित्रम् अमित्रराहित्यं कृधि कुरु । ‘‘श्रुशृणुपृकृवृभ्यः०’’ इति हेर्धिरादेशः ॥

चतुर्थी ॥

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥

मनसे । चेतसे । धिये । आऽकूतये । उत । चित्तये ।
मत्यै । श्रुताय । चक्षसे । विधेम । हविषा । वयम् ॥ १ ॥

मनसे मननसाधनाय सुखाद्यापरोक्ष्यनिमित्ताय इन्द्रियाय । चेतसे । चेतस इत्यादिभिस्तस्यैवावस्थाविशेषा उच्यन्ते । चेतसे सम्यग्ज्ञानसाधनाय । ‘चिती संज्ञाने इत्यस्मात् करणे असुन्’ । धिये ध्यानसाधनाय । आकूतये संकल्पाय । उत अपि च चित्तये यत्संबन्धात् पुरुषश्चेतन उच्यते सा चित्तिः अतीतादिविषयस्मृतिहेतुः । मत्यै आगामि-

विषयज्ञानजनन्यै । श्रुताय श्रवणजनितज्ञानाय चक्षसे दर्शनाय चाक्षुषज्ञानाय । ⁂सर्वत्र तादर्थ्ये चतुर्थी⁂ । मनआदिसिद्ध्यर्थं वयं हविषा आज्यादिना विधेम परिचरेम ॥

पञ्चमी ॥

अपानाय व्यानाय प्राणाय भूरिधायसे ।
सरस्वत्या उरुव्यचे विधेम हविषा वयम् ॥ २ ॥

अपानाय । विऽआनाय । प्राणाय । भूरिऽधायसे ।
सरस्वत्यै । उरुऽव्यचे । विधेम । हविषा । वयम् ॥ २ ॥

अपानाय अपानवायवे । मुखनासिकाभ्यां बहिर्विनिर्गतस्य समीरणस्य पुनरन्तःप्रवेशः अपाननव्यापारः । व्यानाय विविधम् अननम् ऊर्ध्वाधोवृत्तिपरित्यागेन तस्य समीरणस्य अवस्थानं व्यानः । "अथ यः प्राणापानयोः संधिः स व्यानः" इति हि श्रुतिः [छा० उ० १. ३. ३] । प्राणाय । शरीरस्थस्य प्राणवायोर्मुखनासिकाभ्यां बहिर्विनिर्गमनं प्राणनव्यापारः प्राणः । तस्मै । एवं प्राणापानव्यानवृत्तिभेदेन त्रैधम् अवस्थिताय मुख्यप्राणाय भूरिधायसे भूरि बहुलं धारयित्रे । ⁂वहिहाधाभ्यश्छन्दसि [उ० ४. २२०] इति असुन् । तस्य णिद्वद्भावाद् "आतो युक् चिण्कृतोः" इति युगागमः⁂ । तथा उरुव्यचे । ⁂व्यचतिर्व्याप्तिकर्मा । अस्मात् कर्तरि विच्⁂ । बहुलं व्याप्नुवत्यै सरस्वत्यै वाग्देवतायै । ⁂"क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी⁂ । उदीरितलक्षणं प्राणं सरस्वतीं च हविषा आज्यादिना वयं विधेम परिचरेम ॥

षष्ठी ॥

मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः ।
अमर्त्या मर्त्याँ अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥ ३ ॥

---

१ S मर्त्यं. C- मर्त्या corrected to मर्त्यं.

1 S' अवधि° for अव°.

मा। नः। हासिषुः। ऋषयः। दैव्याः। ये। तनूऽपाः। ये। नः। तन्वः। तनूऽजाः।
अमर्त्याः। मर्त्यान्। अभि। नः। सचध्वम्। आयुः। धत्त। प्रऽतरम्। जीवसे। नः॥ ३॥

दैव्याः देवेषु भवा ऋषयः अतीन्द्रियार्थदर्शिनः प्राणाधिदेवताः सप्त ऋषयः नः अस्मान् मा हासिषुः मा परित्यजन्तु। ये ऋषयस्तनूपाः तन्वाः शरीरस्य पातारः ये च नः अस्माकं तन्वः शरीरात् तनूजाः शरीरसंबन्धितयैव इन्द्रियात्मना उत्पन्नाः। ते ऋषयः मा हासिषुरिति संबन्धः॥ हे अमर्त्याः अमरणधर्माणो देवाः मर्त्यान् मरणधर्मकान् नः अस्मान् अभि सचध्वम् अभितः प्रामुत। नः अस्माकं जीवसे जीवनाय प्रतरम् प्रकृष्टतरम् आयुः जीवनं धत्त प्रयच्छत। ✕डुधाञ् दानधारणयोः✕॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे
षष्ठकाण्डे चतुर्थोनुवाकः॥

पञ्चमेनुवाके पञ्च सूक्तानि। तत्र "अव ज्यामिव" इति आद्यं सूक्तम्। तत्र आद्येन तृचेन स्त्रीपुरुषयोः स्त्रीविषये पुरुषस्य मन्युविनाशार्थं कुपितं पुरुषं पश्यन् अश्मानम् अभिमन्त्र्य हस्तेन गृहीत्वा "सखायाविव" इति द्वितीयाम् ऋचं जपन् अश्मानं भूमौ प्रक्षिप्य "अभि तिष्ठामि" इति तृतीयाम् ऋचं जपन् तस्याश्मन उपरि निष्ठीवेत्॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि कुपितस्य पुरुषस्य च्छायायाम् अनेन तृचेन धनुरभिमन्त्र्य सज्यं कुर्यात्। एवं पुरुषविषये स्त्रिया मन्युविनाशार्थम् उक्तं कर्म कुर्यात्॥

सूत्रितं हि। "अव ज्यामिवेति दृष्ट्वाश्मानम् आदत्ते। द्वितीययाभिनिदधाति। तृतीययाभिनिष्ठीवति। छायायां सज्यं करोति" इति [कौ० ४.१२]॥

तथा दीक्षायां यजमानः क्रोधे प्राप्ते एतं तृचं जपेत्। "अव ज्यामिव" इति वैतानं सूत्रम् [वै० ३.२]॥

1 S' inserts अध्यात्मं after च.

सर्वविषयमन्युविनाशार्थम् "अयं दर्भः" इति तृचेन दर्भमूलम् ओषधिवत् खात्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । "अयं दर्भ इत्योषधिवत्" इति [कौ° ४. १२] सूत्रात् ॥

तत्र प्रथमा ॥

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ॥ १ ॥

अव । ज्याम्ऽइव । धन्वनः । मन्युम् । तनोमि । ते । हृदः ।
यथा । सम्ऽमनसौ । भूत्वा । सखायौऽइव । सचावहै ॥ १ ॥

धन्वनः धनुर्दण्डात् ज्यामिव यथा आरोपितां ज्यां धानुष्कोऽवरोपयति तथा हे पुरुष ते तव हृदः हृदयाद् मन्युम् क्रोधम् अव तनोमि अवरोपयामि । अपनयामीत्यर्थः । यथा येन प्रकारेण आवां संमनसौ समानमनस्कौ परस्परानुरागयुक्तौ भूत्वा सखायाविव समानख्यानौ सुहृदाविव सचावहै समवेतौ संगतौ एककार्यकारिणौ भवाव । तथा त्वदीयं क्रोधम् अपनयामीत्यर्थः । [K षच समवाये इति धातुः K] ॥

द्वितीया ॥

सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ॥ २ ॥

सखायौऽइव । सचावहै । अव । मन्युम् । तनोमि । ते ।
अधः । ते । अश्मनः । मन्युम । उप । अस्यामसि । यः । गुरुः ॥ २ ॥

सखायाविवेत्यादि उक्तार्थम् । हे क्रुद्ध पुरुष ते त्वदीयं मन्युम् क्रोधं यो गुरुः गौरवोपेतश्चालयितुम् अशक्यः अश्मास्ति तस्य अश्मनः अधस्ताद् उपास्यामसि उपक्षिपामः । [K "इदन्तो मसिः" K] ॥

तृतीया ॥

अभि तिष्ठामि ते मन्युं पाण्ण्र्या प्रपदेन च ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

१ K सौ° for सं°.

अभि। तिष्ठामि। ते। मन्युम्। पाष्र्यां। प्रऽपदेन। च।
यथा। अवशः। न। वादिषः। मम। चित्तम्। उपऽआयसि ॥ ३ ॥

हे क्रुद्ध पुरुष ते तव मन्युम् क्रोधं पाष्र्यां पादापरभागेन प्रपदेन पादाग्रेण च अभि तिष्ठामि उपरि तिष्ठामि। पादस्य पूर्वापरभागाभ्यां निष्पीडयामीत्यर्थः। यथा येन प्रकारेण अवशः परवशः सन् न वादिषः न ब्रूयाः प्रतिवचनसमर्थो न भवेः। येन च प्रकारेण मम चित्तम् मदीयं मनः उपायसि उपगच्छसि। तथा अभितिष्ठामीति संबन्धः। वादिष इति। वदेर्लेटि अडागमः। "सिब्बहुलम्०" इति सिप्। "स च णिद्वत्कर्तव्यः" इति स्मरणाद् उपधावृद्धिः ॥

चतुर्थी ॥

अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च।
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ॥ १ ॥

अयम्। दर्भः। विऽमन्युकः। स्वाय। च। अरणाय। च।
मन्योः। विऽमन्युकस्य। अयम्। मन्युऽशमनः। उच्यते ॥ १ ॥

अयं पुरोवस्थितो दर्भः स्वाय ज्ञातये आत्मसंबन्धिने अरणाय अरातये च विमन्युकः मन्युविगमनस्य क्रोधापनयनस्य हेतुः। इष्टजनविषयम् अनिष्टजनविषयं तत्कर्तृकं वा क्रोधं शमयतीत्यर्थः। स्वाय चारणाय चेति परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ। "स्वम् अज्ञातिधनाख्यायाम्" इति गणसूत्रेण ज्ञातिवाचिनः स्वशब्दस्य सर्वनामसंज्ञायाः पर्युदासात् तत्कार्याभावः। "यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति" [ऋ० ६. ७५. १९.] इति हि निगमः। उक्त एवार्थो विव्रियते मन्योरिति। लुप्तनिर्दिष्टोत्र मत्वर्थप्रत्ययो द्रष्टव्यः। मन्योः मन्युमतः पुरुषस्य शत्रोः विमन्युकस्य परमार्थतो मन्युरहितस्य आपाततः क्रोधाविष्टस्य आत्मीयस्य च अयं प्रयोगो मन्युशमनः क्रोधनिवारणोपाय उच्यते विधानज्ञैरभिधीयते ॥

1 S' पदस्य. - 3' °समर्थो.

पञ्चमी ॥

अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ॥ २ ॥

अयम् । यः । भूरिऽमूलः । समुद्रम् । अवऽतिष्ठति ।
दर्भः । पृथिव्याः । उत्थितः । मन्युऽशमनः । उच्यते ॥ २ ॥

योयं पुरोवर्ती भूरिमूलः बहुभिर्मूलैरुपेतः [दर्भः] समुद्रम् । समुद्रवन्त्यस्माद् आप इति उदकभूयिष्ठो देशः समुद्रः । तम् अवतिष्ठति अवक्रम्य स्थितो भवति । यद्वा समुद्रम् इति अन्तरिक्षनाम । ✕सैव व्युत्पत्तिः✕ । अन्तरिक्षम् आक्रम्य अवस्थित इत्यर्थः । पृथिव्याः सकाशाद् उत्थितः उत्पन्नः स दर्भः काशकुशाद्यात्मकः मन्युशमन उच्यते । क्रोधविनाशनस्य हेतुरभिधीयते इत्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

वि ते हनव्यां शरणिं वि ते मुख्यां नयामसि ।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि ॥ ३ ॥

वि । ते । हनव्याम् । शरणिम् । वि । ते । मुख्याम् । नयामसि ।
यथा । अवशः । न । वादिषः । मम । चित्तम् । उपऽआयसि ॥ ३ ॥

हे क्रोधाविष्ट पुरुष ते तव हनव्याम् हनुसंबन्धिनीं शरणिम् हिंसाहेतुभूतां क्रोधाभिव्यञ्जिकां धमनिं वि नयामसि विनयामः । तथा ते तव मुख्याम् मुखे भवां क्रोधवशोत्पन्नाम् अन्याम् अपि धमनिं विनयामः क्रोधशमनेन अपगमयामः । उत्तरोर्धर्चो व्याख्यातः । ✕हनव्याम् इति । हनुशब्दात् "शरीरावयवाच्च" इति यत् । ओर्गुणे "वान्तो यि प्रत्यये" इति अव् आदेशः । मुख्याम् इति । पूर्ववद् यत्✕ ॥

[इति] पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

---

१ A B D K R Ś C[m] मुख्यान्नया°. P P̆ C[r] मुख्यान् । नया°. V मुख्यात् । नया°. We with Sâyaṇa.

"अस्याद् द्यौः" इति तृचेन अपवादभैषज्यकर्मणि स्वयं पतितं गोशृङ्गं संपात्य तद् उदके निधाय अभिमन्त्र्य तद् उदकम् आचामयेत् प्रोक्षेच्च । सूत्रितं हि । "अस्याद् द्यौरित्यपवातायाः स्वयं [illegible] गोशृङ्गेण संपातवता जपन्" इति [कौ० ४. ७] ॥

"परोपेहि" इति तृचेन दुःस्वप्नदर्शननिमित्तदोषनिर्हरणार्थम् उत्थाय मुखं प्रक्षालयेत् ॥

तथा अतिघोरदुःस्वप्नदोषनिर्हरणकर्मणि व्रीहियवगोधूमादिमिश्रधान्यमयं पुरोडाशद्वयं कृत्वा एकम् अनेन तृचेन अग्नौ जुहुयात् । अपरं शत्रुक्षेत्रे निदध्यात् ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "परोपेहि [६. ४५] यो न जीवः [६. ४६] "इति स्वप्नं दृष्ट्वा मुखं निमार्ष्टि । अतिघोरं दृष्ट्वा मैश्रधान्यं पुरोडाशम् "अन्याशायां वा निदधाति" [कौ० ५. १०] इति ॥

तत्र प्रथमा ॥

अस्याद् द्यौरस्यात् पृथिव्यस्याद् विश्वमिदं जगत् ।
अस्युर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नास्तिष्ठाद् रोगो अयं तव ॥ १ ॥

अस्यात् । द्यौः । अस्यात् । पृथिवी । अस्यात् । विश्वम् । इदम् । जगत् ।
अस्युः । वृक्षाः । ऊर्ध्वऽस्वप्नाः । तिष्ठात् । रोगः । अयम् । तव ॥ १ ॥

द्यौः द्युलोको ग्रहनक्षत्रमण्डलोपेतः यथा अस्यात् तिष्ठति नाधः पतति । स्थातेश्छान्दसो लुङ् । "गातिस्था०" इति सिचो लुक् । यथा च पृथिवी अस्यात् सर्वाधारभूता तिष्ठति । यथा च तत्राश्रितं विश्वम् सर्वम् इदं परिदृश्यमानं जगत् जङ्गमप्राणिजातम् अस्यात् तिष्ठति । यथा च वृक्षाः पादपाः ऊर्ध्वस्वप्नाः । ऊर्ध्वम् अवस्थिता एव स्वापम् अनुभवन्ति न तु शयाना इति ऊर्ध्वस्वप्नाः । एवंभूताः सन्तः [अस्युः] तिष्ठन्ति । हे व्याधित तव त्वदीयः अयं रोगः रुधिरस्रावात्मकस्तथा तिष्ठात् तिष्ठतु न स्रवतु । निर्वर्तताम् इत्यर्थः ॥

1 S' उदकं. 2 S' omit च. 3 S' परोपीहि.

द्वितीया ॥

शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च ।
श्रेष्ठमास्रावभेषजं वसिष्ठं रोगनाशनम् ॥ २ ॥

शतम् । या । भेषजानि । ते । सहस्रम् । समऽगतानि । च ।
श्रेष्ठम् । आस्रावऽभेषजम् । वसिष्ठम् । रोगऽनाशनम् ॥ २ ॥

हे व्याधित ते तव या यानि शतम् शतसंख्याकानि भेषजानि रोगशमनहेतुभूतान्यौषधानि सन्ति तथा संगतानि संप्राप्तानि सहस्रम् सहस्रसंख्याकानि च औषधानि सन्ति तेषां मध्ये श्रेष्ठम् प्रशस्ततमम् आस्रावभेषजम् रक्तस्रावस्य निवर्तकम् एतत् क्रियमाणं कर्म अत एव वसिष्ठम् वासयितृतमं रोगनाशनम् । ‡रोगो नश्यत्यनेनेति करणे ल्युट्‡ ॥

तृतीया ॥

रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः ।
विषाणका नाम वा असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृतनाशनी ॥ ३ ॥

रुद्रस्य । मूत्रम् । असि । अमृतस्य । नाभिः ।
विऽसानका । नाम । वै । असि । पितॄणाम् । मूलात् । उत्थिता । वातीकृतऽनाशनी ॥ ३ ॥

रुद्रस्य । रोदयति सर्वम् अन्तकाले इति रुद्रः जगत्संहर्ता ईश्वरः । हे गोशृङ्गोदक तस्य संहर्तुरीश्वरस्य मूत्रम् तदीयालिङ्गनाद् विनिर्गतं जलम् असि । अतो रोगं संहरेत्यर्थः । तथा अमृतस्य अमरणस्य चिरकालजीवनस्य नाभिः बन्धकं स्थापकम् असि । ‡नहो भश्च [उ० ४.१२५] इति इञ् प्रत्ययः‡ । रसशास्त्रोक्तप्रकारेण ईश्वरवीर्यस्य रसस्य आसेवनेन हि सिद्धा अजरामरत्वं लभन्त इति तदभिप्रायेणोक्तं रुद्रस्य मूत्रम् असीति । हे गोशृङ्ग त्वं विषाणका [नाम वै] विशेषेण रोगनिवर्तनस्य संभक्त्री एतत्संज्ञा खलु असि भवसि । पुनः सा विशेष्यते । पितॄणाम् पितृदेवतानां मूलात् उपादानकारणाद् उत्थिता उ-

त्पन्ना वाँती आस्रावस्य रोगस्य शोषयित्री कृंतनाशनी । कृतं रोगस्य निदानभूतं दुष्कर्म । तस्य नाशयित्री । भवेत्यर्थः ॥

चतुर्थी ॥

परोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥ १ ॥

परः । अप । इहि । मनःऽपाप । किम् । अशस्तानि । शंससि ।
परा । इहि । न । त्वा । कामये । वृक्षान् । वनानि । सम् । चर । गृहेषु । गोषु । मे । मनः ॥ १ ॥

हे पाप पापासक्त हे मनः स्वप्ननिमित्तभूत परः परस्ताद् अस्मत्तो दूरदेशे अपेहि अपगच्छ । दुःस्वप्नान् न दर्शयेत्यर्थः । तददर्शनेन किं कारणम् । अशस्तानि अशोभनानि शंसति प्रकाशयसि । अतो हेतोः परेहि परागच्छ । त्वा त्वाम् अहं न कामये अभिलष्यामि । ‡कमेर्णिङ्‡ । परागत्य च [वृक्षांवनानि] वृक्षभूयिष्ठानि वनानि प्रविश्य तत्रैव सं चर वर्तस्व । मास्मान् । मा बाधिष्ठा इत्यर्थः । एवं दुःस्वप्ननिमित्तस्य पापस्य मनसोपगमनं प्रार्थितम् । शोभनस्य मनसोवस्थानम् आशास्ते । मे मदीयं शोभनं मनः गृहेषु स्त्रीपुत्रादिषु गृहाश्रयस्थितेषु अनुकूलजनेषु गोषु च । अवतिष्ठताम् इत्यर्थः । ‡गोष्विति । "सावेकाचः०" इति प्राप्तस्य विभक्त्युदात्तस्य "न गोश्वन्त्साववर्ण०" इति प्रतिषेधः‡ ॥

पञ्चमी ॥

अवशसा निःशसा यत् पराशसोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद् दधातु ॥ २ ॥

अवऽशसा । निःऽशसा । यत् । पराऽशसा । उपऽआरिम । जाग्रतः ।
यत् । स्वपन्तः ।

---

१ KR कामये. २ B वृक्षं. DSC वृक्षान्. We with ABKKRV. ३ So PP JKCp.

1 So too Sâyaṇa's text in S'. 2 The text in S' has: वृक्षंवनानि.

अग्निः । विश्वानि । अप । दुःऽकृतानि । अजुष्टानि । आरे । अस्मत् । दु-
धातु ॥ २ ॥

[ अवशसा ] । अवाद्युपपदात् शसु हिंसायाम् इत्यस्मात् क्विप् । अवशसा अवशसनेन अवस्तात् हिंसनेन निःशसा निःशेषेण नितरां वा हिंसनेन पराशसा पराशसनेन पराङ्मुखहिंसनेन च जाग्रतः जाग्रदवस्थापन्ना वयं यत् येन दुःस्वप्नेन उपारिम उपार्ताः पीडिता भवेम । अर्तेश्छान्दसो लिट् । जागृ निद्राक्षये इत्यस्मात् लटः शत्रादेशः । "जक्षित्यादयः षट्" इति अभ्यस्तसंज्ञाविधानाद् "नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुमप्रतिषेधः । तथा स्वपन्तः निद्रावस्थां प्राप्ता वयं यत् येन दुःस्वप्नदर्शनेन हेतुना अवशसनादिभिः पीडिताः तानि विश्वानि सर्वाणि अजुष्टानि अशोभनानि दुष्कृतानि दुःस्वप्ननिमित्तानि पापानि अग्निर्देवः अस्मत् अस्मत्तः आरे दूरे अप दधातु अपनिदधातु अपकृष्य स्थापयतु ॥

षष्ठी ॥

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेपि मृषा चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो दुरितात् पातंहसः ॥ ३ ॥

यत् । इन्द्र । ब्रह्मणः । पते । अपि । मृषा । चरामसि ।
प्रऽचेताः । नः । आङ्गिरसः । दुःऽइतात् । पातु । अंहसः ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मणस्पते मन्त्रस्याधिपते हे इन्द्र यत् येन दुःस्वप्ननिमित्तेन पापेन अपि मृषा चरामसि । अपिशब्दः कस्यचित्पदस्यार्थे गर्हायां वा वर्तते । "अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु" इति कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । अपि बहुलं गर्हितं वा स्वप्ने मिथ्या चरामः । "इदन्नो मसिः" । तस्माद् दुरितात् दुःखप्रापकाद् अंहसः पापाद् आङ्गिरसः अङ्गिरसां मन्त्राणां संबन्धी प्रचेताः प्रकृष्टज्ञानोपेतः एतत्संज्ञो वरुणः नः अस्मान् पातु रक्षतु ॥

[ इति ] पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"यो न जीवः" इति तृचेन दुःस्वप्नजनितदोषनिवृत्तिकामः "परोपेहि"[४५] इति तृचोक्तानि कर्माणि कुर्यात्। सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम ॥

"विश्न ते स्वप्न" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां घोरदुःस्वप्नदर्शने मुखविमार्जनम् मैश्रधान्यपुरोडाशस्य होमम् शत्रुक्षेत्रे प्रक्षेपणम् पार्श्वयोः पर्यावर्तनम् अन्नभक्षणस्वप्नदर्शने अन्ननिरीक्षणं च कुर्यात्। "विश्न ते स्वप्नेति सर्वेषाम् अप्ययः" इति हि सूत्रम् [कौ० ५. १०] ॥

"अग्निः प्रातःसवने" इति तिसृभिर्ऋग्भिर्यथाक्रमं प्रातरादित्रिषु[3] सवनेषु सवनसमाप्निहोमान् जुहुयात्। उक्तं वैताने। "अग्निः प्रातःसवने[६. ४७] श्येनोसि[६. ४८] यथा सोमः प्रातःसवने[९. १. ११] "इति यथासवनम् आज्यं जुहोति संस्थितहोमान्" इति [वै० ३. ११] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यो न जीवोसि न मृतो देवानाममृतगर्भोसि स्वप्न।
वरुणानी ते माता यमः पितारुर्नामासि ॥ १ ॥

यः। न। जीवः। असि। न। मृतः। देवानाम्। अमृतऽगर्भः। असि। स्वप्न।
वरुणानी। ते। माता। यमः। पिता। अररुः। नाम। असि ॥ १ ॥

हे स्वप्न यस्त्वं जीवः प्राणधारको नासि न भवसि। किं तर्हि. मृतः नेत्याह। मृतः त्यक्तप्राणोपि न भवसि। मिथ्यापरिकल्पितस्वभावत्वात् स्वप्नस्य जीवनमरणयोः प्राणिधर्मयोरसंभव इत्यर्थः। किंरूपस्तर्हि स्वप्न इति तत्राह। देवानाम् अग्न्यादीनाम् इन्द्रियाधिष्ठातृणाम् [अमृतगर्भः] अमृतमयगर्भस्त्वम् असि। स्वप्नस्य जाग्रदनुभवजनितवासनामयत्वात् वासनायाश्च स्थायित्वाद् इति भावः ॥ देवगर्भत्वम् एव प्रतिपादयति। हे स्वप्न ते तव वरुणानी वरुणस्य पत्नी माता। ✕"इन्द्रवरुण०" इति ङीषानुकौ ✕। [यमः] यच्छति नियच्छति प्राणिनो दुष्कृतिनो

१ K K R V गर्भोसि. We with A B B S Cs. २ B K पितारु°. We with A B D K R S P P J V Cs ३ P J असि. P too, though it once read असि. We with Cp. ४ So we with P P J K Cp.

1 S' परोपीहीत. 2 S' स्वप्नन for स्वप्नेति. 3 S' °तिसृषु..

निगृह्णातीति यमो वरुणः । स पिता जनयिता उत्पादयिता । हे स्वप्न त्वम् अररुर्नाम [अररुः] आर्तिकरोसुरः । स एवासि भवसि । नामशब्दः श्रुत्यन्तरप्रसिद्धिं द्योतयति । श्रूयते हि तैत्तिरीयके । "अररुर्वै नामासुर आसीत्" इति [तै० ब्रा० ३.२.९.४] ॥

द्वितीया ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोसि मृत्युरसि ।
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥ २ ॥

विद्म । ते । स्वप्न । जनित्रम् । देवऽजामीनाम् । पुत्रः । असि । यमस्य । करणः ।
अन्तकः । असि । मृत्युः । असि ।
तम् । त्वा । स्वप्न । तथा । सम् । विद्म । सः । नः । स्वप्न । दुःऽस्वप्न्यात् ।
पाहि ॥ २ ॥

हे [स्वप्न] स्वप्नाभिमानिन् देव ते तव जनित्रम् जन्म विद्म जानीमः । ॒जनेः औणादिक इत्रप्रत्ययः॒ । उक्त एवार्थो विवियते । देवजामीनाम् देवस्त्रीणां वरुणानीप्रभृतीनां पुत्रः तनयः असि । ताभिरुत्पाद्यमानत्वात् । देवस्त्रियो हि मायारूपाः पुरुषस्य शुभाशुभात्मकं भाविफलं सूचयितुं स्वप्नम् उत्पादयन्तीति प्रसिद्धिः । स्वप्नस्य शुभाशुभफलसूचकत्वं श्रुतिर्दर्शयति । "यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति । समृद्धिं तत्र जानीयात्" इति । "अथ स्वप्नाः । पुरुषं कृष्णं कृष्णदन्तं पश्यति स एनं हन्ति" [ऐ० आ० ३.२.४] इत्यादि च । अतो यमस्य करणः । यमशब्दः प्राणापहरणलक्षणं तद्व्यापारं लक्षयति । तस्य कर्ता भवसि । अत एव अन्तकः अन्तकरः जीवनावसानस्य कर्ता असि भवसि । मृत्युरसि प्राणत्यागस्य कारयिता भवसि । हे स्वप्न तं तादृशं [त्वा] त्वां तथा प्रागुक्तप्रकारेण सं विद्म सम्यग् जानीमः । हे स्वप्न [स त्वं] नः अस्मान् दुःस्वप्न्यात् दुःस्वप्नजनिताद् भयात् पाहि रक्ष ॥

1 S' °णाम. The text in S' also °णाम. 2 S' जानीम.

तृतीया ॥

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति ।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वं द्विषते सं नयामसि ॥ ३ ॥

यथा । कलाम् । यथा । शफम् । यथा । ऋणम् । सम्ऽनयन्ति ।
एव । दुःऽस्वप्न्यम् । सर्वम् । द्विषते । सम् । नयामसि ॥ ३ ॥

गोरवयवैकदेशः कला । शफः खुरः । दोषदूषितं कलादिकम् अङ्गं यथा छेदनादिना अपगमयन्ति । यथा वा ऋणम् अधमर्णाः पुरुषाः संनयन्ति संप्रदानेन गमयन्ति । एव एवं सर्वं दुष्वप्न्यम् दुःस्वप्नजनितं भयं द्विषते द्वेष्ट्रे जनाय सं नयामसि सम्यक् प्रापयामः ॥

चतुर्थी ॥

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥ १ ॥

अग्निः । प्रातःऽसवने । पातु । अस्मान् । वैश्वानरः । विश्वऽकृत् । विश्वऽशंभूः ।
सः । नः । पावकः । द्रविणे । दधातु । आयुष्मन्तः । सहऽभक्षाः । स्याम ॥ १ ॥

[अग्निः] । सवनत्रयात्मको हि सोमयागः । तानि च सवनानि गायत्रं त्रैष्टुभं जागतम् इति क्रमेण नियतच्छन्दस्कानि । "अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वा" [ऋ० १०. १३०. ४] इति श्रुतेः अग्निर्गायत्र्या अधिदेवतेति तन्निर्वर्त्यस्य प्रातःसवनाख्यस्य कर्मणः स एवाधिदेवता । [प्रातःसवने] प्रातःसवनाख्ये कर्मणि अस्मान् ऋत्विग्यजमानान् पातु संभवद्वैकल्यपरिहारेण सवनसंपूर्त्या रक्षतु । कीदृशः सोग्निः । वैश्वानरः विश्वनरात्मको विराड्रूपः सर्वप्राणिहितकरो वा । अत एव विश्वकृत् विश्वस्य कृत्स्नस्य जगतः कर्ता । विश्वशंभूः विश्वस्मिन् सर्वस्मिन् जगति दुःखशमनेन सुखस्य भावयिता । स तादृग्गुणविशिष्टः पावकः शोधकोग्निः नः अस्मान् द्रविणे यागफलात्मके धने दधातु स्थापयतु । वयमपि तत्प्रसादाद् आयुष्मन्तः दीर्घा-

१ A B दुःष्व°. We with B D K K R S V C.

युषा युक्ताः सहभक्षाः समानसोमपानाः पुत्रपौत्रादिभिः सहभोजना वा स्याम भवेम ॥

पञ्चमी ॥

विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मानस्मिन् द्वितीये सवने न जह्युः ।
आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ २ ॥

विश्वे । देवाः । मरुतः । इन्द्रः । अस्मान् । अस्मिन् । द्वितीये । सवने । न । जह्युः । आयुष्मन्तः । प्रियम् । एषाम् । वदन्तः । वयम् । देवानाम् । सुऽमतौ । स्याम ॥ २ ॥

विश्वे सर्वे देवाः दानादिगुणयुक्ता मरुतः एतत्संज्ञका एकोनपञ्चाशत्संख्याकाः सप्तगणात्मका देवाः इन्द्रश्च तेषाम् अधिपतिः । एते हि माध्यंदिनसवनस्य अधिपतयः । "इन्द्रो मरुत्वान्त्सोमस्य पिबतु । मरुत्स्तोत्रो मरुद्गणः" [निवि० २] इत्येवमादिनिविन्मन्त्रैः प्रतिपाद्याः । एते अस्मिन् परिसमाप्यमाने द्वितीये सवने अस्मान् ऋत्विग्यजमानान् न जह्युः न जहतु न परित्यजन्तु । अस्माभिर्दत्तं हविः स्वीकृत्य अस्मदीया इमे अभिमतफलप्रदानेन रक्षणीया इत्येवम् अनुग्रहबुद्ध्या युक्ता भवन्त्वित्यर्थः । एषां देवानाम् मरुताम् इन्द्रस्य च प्रियम् प्रीतिकरं स्तुतशस्त्रात्मकं वाक्यं वदन्तः उच्चारयन्तो वयं तत्प्रसादाद् आयुष्मन्तः शतसंवत्सरपरिमितेन आयुषा युक्ताः सन्तः तेषां देवानां सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहात्मिकायां बुद्धौ स्याम भवेम ॥

षष्ठी ॥

इदं तृतीयं सवनं कवीनामृतेन ये चमसमैरयन्त ।
ते सौधन्वनाः स्वरानशानाः स्विष्टिं नो अभि वस्यो नयन्तु ॥ ३ ॥

इदम् । तृतीयम् । सवनम् । कवीनाम् । ऋतेन । ये । चमसम् । ऐरयन्त । ते । सौधन्वनाः । स्वः । आनशानाः । सुऽइष्टिम् । नः । अभि । वस्यः । नयन्तु ॥ ३ ॥

१ P °इष्टम.

S' प्रतिपाद्याः चेतास्मिन् परि°.

इदं परिसमाप्यमानं तृतीयम् त्रित्वसंख्यापूरकं सवनम् सोमाभिषवोपलक्षितं तृतीयसवनाख्यं कर्म कवीनाम् क्रान्तदर्शनानाम् ऋभूणां स्वभूतम्। त एव हि इन्द्रादिभिः सहितास्तस्य सवनस्य अधिदेवताः। तथा च तत्रत्यो मन्त्रवर्णः। "इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितम्" [ऋ० ३. ६०. ५] "समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः" [ऋ० ४. ३५. ७] "ऋभवो देवाः सोमस्य मत्सन्" इति [निवि० ६] च। ये ऋभवो देवाः ऋतेन सत्येन अवितथेन आत्मीयेन शिल्पकर्मणा चमसम् सोमभक्षणपात्रम् एकम् ऐरयन्त प्रैरयन्त। चतुर्धा विभागेन चतुरश्चमसान् अकुर्वन्। "प्रैतु होतुश्चमसः प्र ब्रह्मणः प्रोद्गातुः प्र यजमानस्य" [आप० १२. २३. १३] इत्येवं निर्दिष्टा मध्यतःकारिणां ये प्रधानभूताश्चमसास्तदभिप्रायम् एतत्। ननु मैत्रावरुणादीनामपि षण्णां होत्रकाणां पृथक्पृथक् चमसाः सन्ति। अत एव "होतृचमसमुख्यान् दश चमसान् उन्नयति" इति सूत्रकारा आहुः [आप० १२. २१. १४]। मैवम्। मैत्रावरुणादीनां वषट्कर्तृत्वेन होतृकार्यापन्नत्वाद् "वषट्कर्तुः प्रथमभक्षः" इति वषट्कारनिमित्तभक्षणसाधनचमसपात्रम् एकम् एवेति न चतुष्ट्वभङ्गः। तथा च दाशतय्याम् आर्भवसूक्तेषु देवत्वप्राप्तये चमसचतुष्टयनिर्माणं तत्रतत्र आम्नातम्। "एकं चमसं चतुरः कृणोतन" [ऋ० १. १६१. २] "व्यकृणोत चमसं चतुर्धा" [ऋ० ४. ३५. ३] "यदावाख्यच्चमसां चतुरः कृतान्" [ऋ० १. १६१. ४] इत्यादि। ते महानुभावाः सौधन्वनाः सुधन्वन आङ्गिरसस्य पुत्राः। तद् उक्तं यास्केन। सुधन्वन आङ्गिरसस्य त्रयः पुत्रा बभूवुः। ऋभुर्विभ्वा वाज इति। प्रथमोत्तमाभ्यां बहुवचनिगमा भवन्ति न मध्यमेनेति [नि० ११. १६]। ते च मनुष्या एव सन्तो रथनिर्माणादिशिल्पकरणेन देवांस्तोषयित्वा तत्प्रसादेन देवत्वं प्राप्ताः। श्रूयते हि। "तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू" [ऋ० १. १११. १] इत्यादि। तद् इदम् उच्यते स्वरानशाना इति। रथचमसादिनिर्माणेन स्वर्गवासोपलक्षितं देवत्वं प्राप्नुवन्तस्तृतीयसवनस्य अधिपतय ऋभवः वस्यः वसीयः। ईयस आदिवर्णलोपश्छान्दसः। वसीय इ-

त्येव तैत्तिरीयका अधीयते ॥ । वसीयः वसुमत्तमं वासयितृतमं वा प्रशस्तं फलम् अभिलक्ष्य नः अस्मान् स्विष्टिम् शोभनाम् इष्टिं यजनं नयन्तु अविकलं प्रापयन्तु ॥

[ इति ] तृतीयं सूक्तम् ॥

"श्येनोसि" इति तृचेन उपनीतस्य माणवकस्य आचार्यो दण्डम् अभिमन्त्र्य दद्यात् । सोपि माणवकः एतं तृचं जपन् प्रतिगृह्णीयात् । "उपनयनम्" [कौ० ७. ६] प्रक्रम्य सूत्रितम् । "पालाशदण्डं प्रयच्छति" इति [कौ० ७. ८] "अवक्रोविधुरो भूयासम् इति प्रतिगृह्णाति श्येनोसीति च" इति [कौ० ७. ७] ॥

तथा अभयकामः अनेन तृचेन सप्तर्षीन् यजते उपतिष्ठते वा । "श्येनोसीति प्रतिदिशं सप्तर्षीन् अभयकामः" इति हि सूत्रम् [कौ० ७.१०] ॥

"श्येनोसि" "वृषासि" "ऋभुरसि" इति तिस्र ऋचः सवनत्रये क्रियमाणेषु बहिष्पवमानमाध्यंदिनार्भवपवमानेषु स्तुतेषु यजमानं ब्रह्मा यथाक्रमं वाचयेत् । उक्तं वैताने । "स्तुते बहिष्पवमाने वाचयति श्येनोसीति वृषासीति माध्यंदिने ऋभुरसीत्यार्भवे" इति [वै० ३. ७] ॥

तथा "श्येनोसि इत्याद्याभिर्ऋग्भिः यथाक्रमं सवनसमाप्तिहोमान् जुहुयात् । उक्तं वैताने । "श्येनोसि [६. ४८] यथा सोमः प्रातःसवने [९. १. ११] इति यथासवनम् आज्यं जुहोति संस्थितहोमान्" इति [वै० ३. ११] ॥

"नहि ते अग्ने" इति तृचेन मृताचार्यदहनाग्नौ श्रेयस्कामो ब्रह्मचारी सूत्रोक्तप्रकारेण पुरोडाशं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "नहि ते अग्ने तन्वः "[६. ४९] इति ब्रह्मचार्याचार्यस्यादहन उपसमाधाय त्रिः परिक्रम्य पुरोडाशं जुहोति" इति [कौ० ५. १०] ॥

तत्र प्रथमा ॥

श्येनो॑सि गाय॒त्रच्छ॑न्दा अनु॒ त्वा र॑भे ।
स्व॒स्ति मा॒ सं व॑हा॒स्य य॒ज्ञस्योद॑चि॒ स्वाहा॑ ॥ १ ॥

1 S' °चार्यस्य दहनमुप°. We with *Kausika*. Dârila : आदहनं दहनदेशस्तत्र.

श्येनः। असि। गायत्रऽछन्दाः। अनु। त्वा। आ। रभे।
स्वस्ति। मा। सम्। वह। अस्य। यज्ञस्य। उत्ऽऋचि। स्वाहा॥ १॥

हे प्रातःसवनात्मक यज्ञ त्वं श्येनः शंसनीयगतिः पक्षिविशेषः तद्वत् शीघ्रगमनः असि। कीदृशस्त्वम्। गायत्रच्छन्दाः। गायत्र्येव गायत्रम्। "छन्दसः प्रत्ययविधाने नपुंसके स्वार्थे उपसंख्यानम्" इति स्वार्थिकः अण् प्रत्ययः। स्तुतशस्त्रादिषु गायत्रम् एव छन्दो यस्मिन् सवने स तथोक्तः। अल्पाक्षराया अपि गायत्र्याः प्रथमं यज्ञसंबन्धः सोमाहरणनिमित्तकः। तथा च तैत्तिरीयकम्। "ब्रह्मवादिनो वदन्ति। कस्मात् सत्याद् गायत्री कनिष्ठा छन्दसां सती यज्ञमुखं परीयायेति। यदेवा-दः सोमम् आहरत् तस्माद् यज्ञमुखं पर्यैत्" इति [तै० सं० ६. १. ६. ४]। यद्वा श्येनाकारेण चीयमानोऽग्निः श्येनः। श्रूयते हि। "श्येनचितं चिन्वीत सुवर्गकामः। श्येनो वै वयसां पतिष्ठः" इति [तै० सं० ५. ४. ११. १]। स चाग्निः गायत्रच्छन्दाः। गायत्र्यास्तस्य च प्रजापतिमुखात् सहोत्पत्तेः। ईदृशं त्वा त्वाम् अन्वा रभे दण्डवद् आधारत्वेन परिगृह्णामि। अतः अस्य अनुष्ठीयमानस्य [यज्ञस्य] उदृचि। उत्तमा अवसानवर्तिनी ऋक् उदृक्। तद्वाचिना अनेन शब्देन यागसमाप्तिर्लक्ष्यते। समाप्तौ स्वस्ति क्षेमेण मा मां सं वह सम्यक् प्रापय। स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु। यद्वा स्वैव वाक् एवम् आहेति स्वाहाशब्दस्यार्थः। तथा च यास्कः। स्वा वाग् आहेति वा स्वं प्राहेति वेति [नि० ८. २०]। तन्मूलभूता श्रुतिरेवम् आम्नायते। "स्वैव ते वाग् इत्यब्रवीत्। सोजुहोत् स्वाहेति" इति [तै० ब्रा० २. १. २. ३]॥

द्वितीया॥

ऋभुरसि जगच्छन्दा अनु त्वा रभे।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा॥ २॥

ऋभुः। असि। जगत्ऽछन्दाः। अनु। त्वा। आ। रभे।
स्वस्ति। मा। सम्। वह। अस्य। यज्ञस्य। उत्ऽऋचि। स्वाहा॥२॥

हे तृतीयसवनात्मक यज्ञ जगच्छन्दाः । जगच्छब्दो जगतीपर्यायः । "जागतं तृतीयसवनम्" इति [तै० ब्रा० ३. ८. १२. २] श्रुतेः । तृतीयसवनगतस्तुतशस्त्रादिषु जगतीछन्दस्का एव मन्त्राः प्रायेण भवन्ति । अतो जगच्छन्दस्त्वम् । ऋभुरसि । ऋभुर्नाम सौधन्वन आङ्गिरसः क्रियाविशेषेण लब्धदेवभाव इत्युक्तम् । तत्प्रीतिकरत्वात् तदात्मकोसीत्यर्थः । अनु त्वा रभे इत्यादि पूर्ववत् ॥

तृतीया ॥

वृषासि त्रिष्टुप्छन्दा अनु त्वा रभे ।
स्वस्ति मा सं वहास्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा ॥ ३ ॥

वृषा । असि । त्रिस्तुप्ऽछन्दाः । अनु । त्वा । आ । रभे ।
स्वस्ति । मा । सम् । वह । अस्य । यज्ञस्य । उत्ऽऋचि । स्वाहा ॥ ३ ॥

हे माध्यंदिनसवन त्वं वृषा सेचनसमर्थ इन्द्रः स एवासि भवसि तत्प्रीतिकरत्वात् । स खलु माध्यंदिनसवनस्याधिपतिः । श्रूयते हि । "प्रातः सुतम् अपिबो हर्यश्व माध्यंदिनं सवनं केवलं ते" [ऋ० ४. ३५. ७] इति । स त्वं त्रिष्टुप्छन्दाः त्रिष्टुप्छन्दस्कमन्त्रसाध्यस्तुतशस्त्रोपेतत्वात् । "त्रैष्टुभं माध्यंदिनं सवनम्" इति हि ब्राह्मणम् [तै० ब्रा० ३. ८. १२. १] । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

चतुर्थी ॥

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः ।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव ॥ १ ॥

नहि । ते । अग्ने । तन्वः । क्रूरम् । आनंश । मर्त्यः ।
कपिः । बभस्ति । तेजनम् । स्वम् । जरायु । गौःऽइव ॥ १ ॥

हे अग्ने ते तव तन्वः शरीरस्य ज्वालात्मकस्य क्रूरम् तैक्ष्ण्यं मर्त्यः मरणधर्मा पुरुषः नहि आनंश न खलु प्राप्तुं शक्नोति । ‡अग्नोर्व्यत्ययेन परस्मैपदम्‡ । अपि च कपिः कम् उदकं शरीरगतं

१ J गोः°.

1 S° °शास्त्रा°.

रसं पिबतीति कपिः। यद्वा कपिवद् इतस्ततश्चङ्क्रमणशीलस्त्वदीयो ज्वालासमूहः तेजनम् अन्तर्निःसारं वेणुमिव स्थितं शरीरं बिभर्त्ति दीप्यति भस्मीकरोति। ‡भस भर्त्सनदीप्त्योः। जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः‡। यद्वा। ‡बभस्तिरत्तिकर्मा इति यास्कः [नि० ५. १२]‡। भक्षयतीत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः स्वम् इत्यादि। गौरिव यथा प्रसूता गौः स्वम् स्वकीयं जरायु गर्भवेष्टनं प्रसवानन्तरं भूमौ पतितं भक्षयति तद्वत् पुरुषशरीरं भक्षयतीत्यर्थः॥

पञ्चमी॥

मेष इव वै सं च वि चोर्व्यच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः।
शीर्ष्णा शिरोप्तसाप्सो अर्दयन्नंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः॥ २॥

मेषःऽइव। वै। सम्। च। वि। च। उरु। अच्यसे। यत्। उत्तरऽद्रौ। उपरः। च। खादतः।
शीर्ष्णा। शिरः। अप्ऽसा। अप्सः। अर्दयन्। अंशून्। बभस्ति। हरितेभिः। आसऽभिः॥ २॥

हे अग्ने त्वं पुरुषशरीरं दाह्यं प्राप्य उरु बहुलं सम् उच्यसे। प्रथमं तावत् तत्तदवयवेन समवैषि संगच्छसे। ‡उच समवाये इति धातुः‡। पश्चाद् व्युच्यसे च कृत्स्नशरीरं विविधं व्याप्नोषि। दग्धम् अङ्गं विसृज्य अन्यत्र गच्छसि। तत्र दृष्टान्तः मेष इव वा इति। मेषो यथा भक्षणार्थं तृणभूयिष्ठं देशं प्राप्य भक्ष्येण तृणादिना प्रथमं संयुज्यते [ततो] भक्षणेन तत्रत्यं तृणजातं सर्वं व्याप्नोति तद्वद् इत्यर्थः। यत् यदा उत्तरद्रौ उपर्यवस्थितकाष्ठयुक्ते दाह्यशरीरे अपरः। चकारात् पूर्वश्च। उभावग्नी खादतः भक्षयतः। यद्वा उत्तरद्रौ उत्कृष्टतरद्रुमे महावृक्षभूयिष्ठे वने संचरन् अपरः दावाग्निः शावाग्निश्च उभौ खादतः भक्षयतः। दाह्यं दहत इत्यर्थः। तदा शीर्ष्णा शिरसा ज्वालाग्रेण तत्रत्यस्य शरीरस्य वृ-

१ DKR चोर्व्यच्यसे. We with ABKSPPJVC-Cr. २ So PPJKCr. ३ P शिरः.

1 The text too in S' बिभस्ति.

क्षादेर्वा शिरः अर्दयन् हिंसन् तथा अप्तसा । रूपनामैतत् । स्वकीयेन भास्वररूपेण कृत्स्नशरीरेण अप्सः दाह्यशरीरस्य यद्वा महीरुहादेः स्वरूपम् अर्दयन् हिंसन् अयम् अग्निः हरितेभिः हरितैर्बभ्रुवर्णैः आसभिः आस्यैः अंशून् सोमलतादिकान् बिभस्ति भक्षयति ॥

षष्ठी ॥

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
नि यन्नियन्त्युपरस्य निष्कृतिं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्रितः ॥ ३ ॥

सुऽपर्णाः । वाचम् । अक्रत । उप । द्यवि । आऽखरे । कृष्णाः । इषिराः । अनर्तिषुः ।

नि । यत् । निऽयन्ति । उपरस्य । निःऽकृतिम् । पुरु । रेतः । दधिरे । सूर्यऽश्रितः ॥ ३ ॥

हे अग्ने सुपर्णाः शोभनपतनाः श्येनवत् शीघ्रव्यापनशीलास्त्वदीया ज्वालाः वाचम् अक्रत दाहजन्यं ध्वनिविशेषम् अकृषत । [1]करोतेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्[1] । आखरे । [आखरः] आवासस्थानम् । [1]"डरो वक्तव्यः" इति आङ्पूर्वात् खनेर्डरप्रत्ययः[1] । आखरे आवासस्थाने कृष्णाः । लुप्तोपमम् एतत् । कृष्णमृगा इव दिवि आकाशे इषिराः गमनशीला दीप्तयः उपेत्य अनर्तिषुः नृत्यन्ति स्म । [1]नृती गात्रविनामे[1] । ताश्च ज्वाला बहुलधूमोत्पादनेन उपरस्य मेघस्य । [1]उपर उपलो मेघो भवतीति निरुक्तम् [नि० २, २१][1] । निष्कृतिम् निर्माणं नितरां यत् यस्माद् नियन्ति निर्गच्छन्ति तस्मात् हे अग्ने त्वदीया एव दीप्तयः सूर्यश्रितः आदित्यमण्डलं प्राप्ताः सत्यः पुरु बहुलं रेतः सर्वप्राण्युपादानभूतं वृष्ट्युदकं दधिरे जगदुत्पादनार्थं धारयन्ति ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

---

१ So all our Vaidikas and MSS. See Sâyana. २ **A** निःकृं°. ३ **K V** पुरु. We with **A B B D K R Ś C**.

1 The text too in **S'** बिभस्ति. 2 **S'** उरु.

"हतं तर्दम्" इति तृचेन मूषकपतङ्गशलभटिट्टिभकीटहरिणशल्यकगोधादीनां सस्यभक्षकाणां निवृत्तये लोहमयं सीसं घर्षन् एतं तृचं जपन् मूषकादियुक्तं क्षेत्रम् अभिक्रामेत् ॥

तथा अनेन तृचेन शर्करा अभिमन्त्र्य मूषकादिस्थाने परिकिरेत् ॥

तथा मूषकादिमुखं केशेन बद्ध्वा अनेन तृचेन क्षेत्रमध्ये निखनेत् ॥

तथा सरूपवत्साया गोर्दुग्धे शृतं चरुम् अनेन तृचेन अग्निभ्यां जुहुयात् ॥

तद् उक्तं संहिताविधौ। "हतं तर्दम् इत्ययःसीसं घर्षन् उर्वरां परिक्रामति तस्मिन्नवकिरति" इत्यादि [कौ० ७. २] ॥

"वायोः पूतः" इति तृचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगोनुसंधेयः ॥

तथा सर्वरोगभैषज्ये अनेन तृचेन आज्यहोमं पलाशादिशान्तवृक्षसमिदाधानं च [कुर्यात्] ॥

तथा सोमवमनपानादिनिमित्तव्याधिशमनार्थं सोमरसमिश्रिताः पलाशादिसमिध आदध्यात् ॥

सूत्रितं हि। "अम्बयो यन्ति[१. ४] वायोः पूतः[६. ५१] इति च शान्ता उत्तरस्य ससोमाः" इति [कौ० ४. १] ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकामः अनेन तृचेन "पुनन्तु मा"[६. १९] इत्यत्रोक्तानि क्षीरौदनहवनादिकर्माणि कुर्यात्। "अर्थम् उत्थास्यन्" इति प्रक्रम्य "पुनन्तु मा[६. १९] सप्तऋषीः[६. २३] हिमवतः प्र स्रवन्ति[६. २४] वायोः पूतः पवित्रेण"[६. ५१] इत्यादि "अभिवर्षणावसेचनानाम्" इत्येतदन्तं सूत्रम् [कौ० ५. ५] अत्र द्रष्टव्यम् ॥

तथा अस्य तृचस्य अपां सूक्तेषु पाठाद् आत्मावनादौ विनियोगः। "अवभृथाय व्रजन्त्यपां सूक्तैरात्मुत्य" इति [कौ० ८. ९] सूत्रितम् ॥

सोमातिपूतकर्तृकायां सौत्रामण्यां "वायोः पूतः" इति तृचेन दशापवित्रेण पाव्यमानां सुराम् अनुमन्त्रयेत। "अग्निचित् सोमातिपूतः सोमवामी सौत्रामण्याभिषिच्यते" इति प्रक्रम्य "या बभ्रवः[८. ७] इ-

1 S' °कानां. 2 S' सारूप°. 3 S' च सो°. We with *Kausika*. 4 S' तस्य. 5 S आप्लु°.

"त्योषधिभिः सुरां संधीयमानां वायोः पूतः[ ६. ५१ ] इति सोमातिपूतस्य "पाव्यसानाम्" इति हि वैतानसूत्रम् [वै० ५. ३] ॥

तत्र प्रथमा ॥

हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्नं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् ।
यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय ॥ १ ॥

हतम् । तर्दम् । समऽअङ्कम् । आखुम् । अश्विना । छिन्नम् । शिरः । अपि । पृष्टीः । शृणीतम् ।
यवान् । न । इत् । अदान् । अपि । नह्यतम् । मुखम् । अथ । अभयम् । कृणुतम् । धान्याय ॥ १ ॥

हे अश्विना अश्विनौ एतत्संज्ञौ देवौ तर्दम् हिं[सकम्] । तर्द हिंसायाम् इत्यस्मात् पचाद्यच् । समङ्कम् समञ्चनं बिलं संप्रविश्य गच्छन्तम् । संपूर्वाद् अञ्चतेः "पुंसि संज्ञायाम्०" इति घः । "चजोः कु घिण्ण्यतोः" इति कुत्वम् । एवंभूतम् आखुं हतम् नाशयतम् । हन्तेर्लोटि अदादित्वात् शपो लुकि "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः । आ समन्तात् खनतीति आखुः । खनु अवदारणे । आङ्पूर्वाद् अस्माद् "आङ्परयोः खनिशृभ्यां डिच्च" [उ० १. ३३] इति उ प्रत्ययः टिलोपश्च ॥ हननप्रकारः प्रतिपाद्यते छिन्नम् इ[त्यादिना] । तस्याखोः शिरश्छिन्नम् द्विधा कुरुतम् । छिदिर् द्वैधीकरणे । लोण्मध्यमपुरुषद्विवचने "श्नसोरल्लोपः" इति अकारलोपः । पृष्टीः पार्श्वास्थीन्य[पि त]त्संबन्धीनि शृणीतम् हिंस्तं चूर्णीकुरुतम् । शॄ हिंसायाम् । प्वादित्वाद् ह्रस्वः । स च आखुः नेत् अदात् नैव भक्षयेत् अस्मदीयं व्रीह्यादिकम् इत्यभिप्रेत्य हे अश्विनौ युवां तदीयं मुखम् आस्यम् अपि नह्यतम् अपिनद्धं पिहितं कुरुतम् । एवं कृत्वा अथ अनन्तरम् अस्मदीयाय धान्याय व्रीहियवादिरूपाय अभयम् तत्कृतभयराहित्यं कृणुतम् कुरुतम् ॥

---

१ Such is the accent of all our Vaidikas and MSS. २ K V छित्तं. K[m] P छिन्नं. We with A B[h] D R S[m] P[2] J Cs Cr. ३ P K छिन्न°. ४ K Cr पृष्टीः. ५ P मुखम्.

द्वितीया ॥

तर्द हे पतङ्ग हे जभ्य हा उपकस ।

ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित ॥ २ ॥

तर्द । हे । पतङ्ग । हे । जभ्य । हे । उपऽकस ।

ब्रह्मऽइव । असंमऽस्थितम । हविः । अनदन्तः । इमान् । यवान् । अहिंसन्तः । अपऽउदित ॥ २ ॥

हेशब्दः हेशब्दवद् आभिमुख्यकरणे । हे तर्द हिंसक आखो हे पतङ्ग शलभ हे जभ्य उपद्रवकारित्वाद् अस्माभिर्हिंस्य युष्माकं हननाय इदम् अस्मदीयम् अश्विभ्यां होतव्यं हविः ब्रह्मेव असंस्थितम् "महद् भयं वज्रम् उद्यतम्" [क० व० ६. २] इत्याद्युपनिषत्प्रसिद्धं जगत्कारणं ब्रह्म अपरिसमाप्तं दुष्प्रधर्षं भवति एवम् इदं हविर्वर्तत इत्यर्थः । अतः अस्य हविषो होमात् प्रागेव अपकसः अदग्धाः सन्तः इमान् अस्मदीयान् यवान् सस्यविशेषान् अनुदन्तः अप्रेरयन्तः अहिंसन्तः अविनाशयन्तो यूयम् अपोदित अस्मात् स्थानाद् अपगता भवत ॥

तृतीया ॥

तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।

य आरण्या व्यड्वरा ये के च स्य व्यड्वरास्तान्त्सर्वान् जम्भयामसि ॥ ३ ॥

तर्दऽपते । वघाऽपते । तृष्टऽजम्भाः । आ । शृणोत । मे ।

ये । आरण्याः । विऽअड्वराः । ये । के । च । स्य । विऽअड्वराः । तान् । सर्वान् । जम्भयामसि ॥ ३ ॥

हे तर्दपते तर्दानां हिंसकानाम् आखूनां स्वामिन् हे वघापते । अवघ्नन्ति अवबाधन्त इति वघाः पतङ्गादयः । अवपूर्वात् हन्तेः "डो-

१ Cs जभ्य, but Cr has जभ्यं in the padas. २ B उपकसु. Sâyana अपकसः. We with A B$^{r}$ B$^{h}$ D K K$^{m}$ R S$^{m}$ P P$^{2}$ J V C$^{s}$ C$^{r}$. ३ Such is the accent of all our Vaidikas and MSS. ४ So we with A B B$^{h}$ D K K$^{m}$ R S$^{m}$ P P$^{2}$ J V C$^{s}$. ५ D K$^{m}$ सर्वां ज°. We with A B B$^{h}$ K R S$^{m}$ V. ६ C$^{r}$ °अध्वराः.

न्यत्रापि दृश्यते" इति डप्रत्ययः । "वष्टि भागुरिरल्लोपम्" इति अवशब्दस्य आदिलोपः । पृषोदरादित्वाद् घत्वम् ✕ । वघानां पतङ्गादीनाम् अधिपते तृष्टजम्भाः तीक्ष्णदंष्ट्रा यूयं मे मदीयम् इदं वचनम् आ शृणोत आभिमुख्येन शृणुत । ✕"तप्तनप्तनथनाश्च" इति तशब्दस्य तबादेशः ✕ । ये यूयम् आरण्याः अरण्ये भवा व्यद्वराः विविधम् अदनशीलाः स्थ भवथ । अन्येपि ये के च ग्रामवर्तिनो यूयं व्यद्वराः विविधम् अदनशीला भवथ तान् सर्वान् युष्मान् जम्भयामसि जम्भयामः अनेन कर्मणा नाशयामः । ✕जभि नाशने इति धातुः ✕ ॥

चतुर्थी ॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अति द्रुतः ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १ ॥

वायोः । पूतः । पवित्रेण । प्रत्यङ् । सोमः । अति । द्रुतः ।
इन्द्रस्य । युज्यः । सखा ॥ १ ॥

वायोः संबन्धिना पवित्रेण पवनसाधनेन दशापवित्रेण पूतः शोधितः । यद्वा वायोः सकाशात् पूतः शोधनेन रसवत्तां प्रापितः । सोमरसं प्रस्तुत्य तैत्तिरीयके समाम्नातम् । "तम् एभ्यो वायुरेवास्वदयत् । तस्माद् यत् पूयति तत् प्रवाते विषजन्ति । वायुर्हि तस्य पवयिता स्वदयिता" इति [तै० सं० ६. ४. ७. २] । ईदृशः सोमः प्रत्यङ् प्रतिमुखम् अञ्चन् अतिद्रुतः नाभिदेशम् अतिक्रम्य गतः । तदतिक्रमणं हि सम्यग्जरणपर्यन्तम् अनभिमतम् । तथा च मन्त्रवर्णः । "शिवो मे सप्तऋषीन् उपतिष्ठस्व मा मेवाङ् नाभिम् अति गाः" इति [तै० सं० ३. २. ५. ३] । स च इन्द्रस्य युज्यः योग्यः सखा मित्रभूतः ॥

पञ्चमी ॥

आपो अस्मान् मातरः सूदयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥ २ ॥

१ B प्रत्यक्. २ So all our authorities

आपः। अस्मान्। मातरः। सूदयन्तु। घृतेन। नः। घृतऽप्वः। पुनन्तु।
विश्वम्। हि। रिप्रम्। प्रऽवहन्ति। देवीः। उत्। इत्। आभ्यः। शुचिः।
आ। पूतः। एमि ॥ २ ॥

मातरः विश्वस्य जगतो जनन्य आपः अब्देवता अस्मान् सूदयन्तु क्षालयन्तु पापरहितान् शुद्धान् कुर्वन्तु। ※सूद क्षरणे※। तथा घृतप्वः क्षरणस्वभाव आत्मीयो रसो घृतम् तेन कृत्स्नं जगत् पुनन्तीति घृतप्वः। तादृश्य आपः घृतेन क्षरणशीलेन सारेण नः अस्मान् पुनन्तु शुद्धान् कुर्वन्तु। ※पूञ् पवने। "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम※। कस्माद् एवं प्रार्थ्यत इति तत्राह विश्वं हीति। हि यस्माद् देवीः देव्यः देवतारूपा आपः विश्वम् सर्वं रिप्रम्। पापनामैतत्। ※रपो रिप्रम् इति पापनामनी भवतः इति यास्कवचनात् [नि० ४. २१]※। स्नानाचमनप्रोक्षणादिकारिणां जनानां कृत्स्नं पापं प्रवहन्ति प्रक्षालयन्ति। प्रकर्षेण अपगमयन्तीत्यर्थः। ईदृशीषु अप्सु स्नातोहं शुचिः शुद्धो भूत्वा आभ्य अद्भ्यः सकाशात् पूतः कर्मयोग्यः सन् उदैमि उदागच्छामि। ※इत् इति अवधारणे※ ॥

षष्ठी ॥

यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरन्ति।
अचित्त्या चेत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ३ ॥

यत्। किम्। च। इदम्। वरुण। दैव्ये। जने। अभिऽद्रोहम्। मनुष्याः।
चरन्ति।
अचित्त्या। च। इत्। तव। धर्म। युयोपिम। मा। नः। तस्मात्। एनसः।
देव। रीरिषः ॥ ३ ॥

हे वरुण स्वभावानाम् अपाम् अधिपते दैव्ये देवसंबन्धिनि जने प्राणिजाते विषये. यत्किमपि इदम् अभिद्रोहम् अपराधजनितम् एनः मनुष्याश्चरन्ति अनुतिष्ठन्ति। तस्माद् एनस इत्युत्तरत्र संबन्धः। वयमपि

1 S' स्वभावा°.

मनुष्यान्तःपातित्वाद् अचित्त्या अज्ञानेन चेत् हे वरुण तव धर्मा त्वत्संबन्धीनि धर्माणि कर्माणि युयोपिम व्यामोहयामः । विपर्यस्तानि कुर्म इत्यर्थः । ‡युप विमोहने‡ । तस्मात् अज्ञानजनिताद् एनसः पापात् हेतोः हे देव स्वामिन् वरुण नः अस्मान् मा रीरिषः मा हिंसीः । ‡रिष रुष हिंसायाम् । अस्मात् ण्यन्ताद् माङि लुङि चङि रूपम‡ ॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे षष्ठकाण्डे पञ्चमोनुवाकः ॥

षष्ठेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "उत् सूर्यः" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्येन तृचेन रक्षोग्रहभैषज्यार्थं चित्त्याद्योषधिसहितं पूर्णघटम् अभिमन्त्र्य व्याधितम् अवसिञ्चेत् ॥

तथा शमीसहितोदकेन वा शमीबिम्बसहितोदकेन वा शीर्णपर्णसहितोदकेन वा अनेन तृचेन अभिमन्त्रितेन व्याधितम् अवसिञ्चेत् ॥

सूत्रितं हि । "उत् सूर्य इति शमीबिम्बशीर्णपर्णावधि" इति [कौ० ४.७] ॥

"द्यौश्च मे" इति तृचेन दुष्टगण्डव्रणभैषज्यार्थं तैलम् अभिमन्त्र्य तेन व्रणम् अवमृज्यात्[2] ॥

तथा एतं तृचं जपन् व्रणदेशं हस्तेन अवमृज्यात् ॥

तथा अनेन तृचेन स्थूणायां व्रणदेशं घर्षयेत् ॥

सूत्रितं हि । "द्यौश्च म इत्यभ्यज्य अवमार्ष्टि । स्थूणायां निकषति" इति [कौ० ४.७] ॥

तथा द्रव्यादिविनाशे प्राप्ते तन्निवृत्त्यर्थम् अनेन तृचेन द्यावापृथिव्यौ यजत उपतिष्ठते वा । सूत्रितं हि । "द्यौश्च म इति द्यावापृथिव्यौ वरिष्यन्" इति [कौ० ७.१०] ॥

तथा सवयज्ञेषु "द्यौश्च मे" इति तृचेन मन्त्रोक्तानि इन्द्रियाण्यनुमन्त्रयेत । सूत्रितं हि । "बृहता द्यौश्च[5] [६.५३] पुनर्मैत्विन्द्रियम् [७.६९] इति प्रतिमन्त्रयते" इति [कौ० ८.७] ॥

---

1 So S'. 2 So S'. 3 S' °सृज्यात्. 4 S' विलिप्यतीति. We with *Kausika*. 5 Kes'ava remarks: बृहता मन इत्यृचा. Where is the *ṛich*?

तथा मेधाजननकर्मणि "द्यौश्च मे" इत्यनया ऋचा क्षीरौदनं पुरोडाशं रसान् वा संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

तथा अनयैव ऋचा मेधाकाम आदित्यम् उपतिष्ठेत ॥

सूत्रितं हि । "पूर्वस्य मेधाजननानि" इति प्रक्रम्य "त्वं नो मेधे [६. १०८] द्यौश्च मे [६. ५३] इति भक्षयति । आदित्यम् उपतिष्ठते" [कौ० २. १] [इति] ॥

गोदानकर्मणि "पुनः प्राणः" इत्यनया क्षुरं मार्जयित्वा नापिताय प्रयच्छेत् । "पुनः प्राणः [६. ५३. २] पुनर्मैत्विन्द्रियम् [७. ६९] इति त्रिर्निमृज्य त्वयि महिमानं सादयामि" इति कौशिकसूत्रात् [कौ० ७. ५] ॥

उपनयनकर्मणि "सं वर्चसा" इत्यनया उदपात्रम् अभिमन्त्र्य ब्रह्मचारिणम् अवेक्षयेत् । सूत्रितं हि । "उदपात्रं समवेक्षयेत् सम् इन्द्रं णः [७. १०२. २] सं वर्चसा [६. ५३. ३] इति द्वाभ्याम्" इति [कौ० ७. ६] ॥

तत्र प्रथमा ॥

उत् सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्[1] ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ १ ॥

उत् । सूर्यः । दिवः । एति । पुरः । रक्षांसि । निऽजूर्वन् ।
आदित्यः । पर्वतेभ्यः । विश्वऽदृष्टः । अदृष्टऽहा ॥ १ ॥

सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः पुरः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि रक्षासि । रक्षो रक्षितव्यम् अस्मात् इति यास्कः [नि० ४. १८] । अस्मदुपद्रवकारिणो रक्षःपिशाचादीन् निजूर्वन् नितरां हिंसन् । जुर्वी हिंसायाम् । हेतौ शतृप्रत्ययः । हिंसितुम् इत्यर्थः । दिवः अन्तरिक्षप्रदेशाद् उदेति उन्नच्छति । रात्रौ हि रक्षसां संचारः इदानीं तु उद्यन्नेव सूर्यस्तानि विनाशयतीति भावः । स च आदित्यः विश्वदृष्टः सर्वप्राणिभिः साक्षात्क्रियमाणः अदृष्टहा अदृष्टानाम् अस्माभिरदृश्यमानानामपि रक्षःपिशाचादीनां हन्ता पर्वतेभ्यः उदयाचलप्रदेशेभ्यः । उदेतीति

१ All our Vaidikas and MSS. °जूर्वत्. We with Sâyana.

1 So S'. *Kauśika*: निर्मृज्य. 2 S' समिद्रिणः for समिन्द्र णः.

संबन्धः । ॥ आदित्यः अदितेः पुत्रः । "दित्यदित्यादित्य०" इति ण्यप्रत्ययः ॥ ॥

द्वितीया ॥

नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
न्यूर्मयो नदीनां न्यहष्टा अलिप्सत ॥ २ ॥

नि । गावः । गोऽस्थे । असदन् । नि । मृगासः । अविक्षत ।
नि । ऊर्मयः । नदीनाम् । नि । अहष्टाः । अलिप्सत ॥ २ ॥

उद्यता सूर्येण रक्षसां हननाद् इदानीं गावो गोष्ठे गोशालाया न्यसदन् भयराहित्येन अस्मदीया गावो निषण्णा अभूवन् । ॥ षदॢ विशरणगत्यवसादनेषु । लृदित्त्वात् च्लेः अङ् आदेशः ॥ ॥ तथा मृगासः मृगाः आरण्याः पशवः न्यविक्षत स्वस्वस्थाने निर्भयं निविष्टा अभूवन् । ॥ "नेर्विशः" इति आत्मनेपदम् । "शल इगुपधाद् अनिटः क्सः" इति क्सः प्रत्ययः ॥ ॥ तथा नदीनाम् सरिताम् ऊर्मयः तरङ्गाः सुखेन निविष्टाः ॥ अहष्टाः रात्रौ अनुपलब्धाः प्रजाः सूर्यप्रकाशेन न्यलिप्सत नितरां लब्धुम् ऐच्छन् । ॥ लभेः सनि "सनि मीमाघुरभलभ०" इति अचः स्थाने इस् आदेशः ॥ । यद्वा अनुक्रान्तान् गवादीन् सर्वे जनाः सूर्यप्रकाशात् लब्धवन्तः । ॥ लभेर्लुङि च्लेः सिच् । वर्णव्यत्ययः ॥ ॥

तृतीया ॥

आयुर्ददे विपश्चितः श्रुतां कण्वस्य वीरुधम् ।
आभारिषं विश्वभेषजीमस्याहष्टान् नि शमयत् ॥ ३ ॥

आयुःऽददम् । विपःऽचितम् । श्रुताम् । कण्वस्य । वीरुधम् ।
आ । अभारिषम् । विश्वऽभेषजीम् । अस्य । अहष्टान् । नि । शमयत् ॥ ३ ॥

आयुर्ददम् आयुषः शतसंवत्सरपरिमितस्य जीवनस्य दात्रीम् । ॥ दद

१ R १ for ३. A K S have no kaṇḍa. We with B D K Cs. २ K V °भार्षं with Sâyaṇa. We with A B Bp D K R S P P J Cs Cp.

1 S' ऐच्छत्.

दाने। "किप् च" इति किप्। विपश्चितम् रोगशमनोपायं विदुषीं श्रुताम् विश्रुतां प्रसिद्धां कण्वस्य महर्षेः संबन्धिनीं विश्वभेषजीम् सर्वस्य रोगजातस्य शमनीम्। "०सुमङ्गलभेषजाच्च" इति ङीप्। ईदृशीम् एवंगुणविशिष्टां वीरुधम् चित्तिः प्रायश्चित्तिरित्येवं कौशिकेनोक्तां शान्तौषधीं शमीं वा अस्य व्याधितस्य रोगनिवृत्तये आभार्षम् आहार्षम् आहरामि। "हृग्रहोर्भः" इति भत्वम्। सा च आहृत्य प्रयुज्यमाना अस्य रोगिणः अदृष्टान् द्रष्टुम् अशक्यान् शरीरमध्यवर्तिनो रोगान् रक्षःपिशाचादिकृतान् नि शमयत् निशमयतु। शम उपशमने। अस्मात् ण्यन्तात् लेटि अडागमः। "इतश्च लोपः०" इति इकारलोपः॥

चतुर्थी॥

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्निर्वायुर्नः पातु सविता भगश्च॥ १॥

द्यौः। च। मे। इदम्। पृथिवी। च। प्रऽचेतसौ। शुक्रः। बृहन्। दक्षिणया। पिपर्तु।
अनु। स्वधा। चिकिताम्। सोमः। अग्निः। वायुः। नः। पातु। सविता। भगः। च॥ १॥

द्यौश्च पृथिवी च एते देवते मे मह्यं प्रचेतसौ प्रकृष्टज्ञाने अनुग्रहबुद्धियुक्ते इदम् अभिलषितफलम्। [प्रयच्छ]ताम् इति शेषः॥ तथा बृहन् महान् शुक्रः शोचमानो दीप्यमानः सूर्यः दक्षिणया दिशा पिपर्तु पालयतु। यमाधिष्ठिताया दक्षिणस्या दिशो रक्षितित्यर्थः। यद्वा दक्षयति पुरुषं वर्धयतीति दक्षिणा। दक्ष वृद्धौ। दुदक्षिभ्याम् इनन् [उ० २. ५०]। [तया] वासोहिरण्यादिरूपया दक्षिणया पिपर्तु पूरयतु। पॄ पालनपूरणयोः। जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः। "अर्तिपिपर्त्योश्च" इति अभ्यासस्य इत्त्वम्। स्वधा पितॄणां संबन्धिनी स्व-

1 S' °षधं.

धाकाराभिमानिनी देवता अनु चिकिताम् अनुजानातु । ‡कित ज्ञाने । जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः‡ । यद्वा स्वधेत्यन्ननाम । यथा अस्माकम् अन्नं भवति तथा सोमः अग्निश्च अनु चिकिताम् । नः अस्मान् वायुः पातु रक्षतु । निगदसिद्धम् अन्यत् ॥

पञ्चमी ॥

पुनः प्राणः पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु ।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरितानि विश्वा ॥ २ ॥

पुनः । प्राणः । पुनः । आत्मा । नः । आ । एतु । पुनः । चक्षुः । पुनः । असुः । नः । आ । एतु ।
वैश्वानरः । नः । अदब्धः । तनूऽपाः । अन्तः । तिष्ठाति । दुःऽइतानि । विश्वा ॥ २ ॥

प्राणः मुखनासिकाभ्यां संचरन् प्राणवायुः जीवावस्थितिहेतुः नः अस्मान् पुनः ऐतु आगच्छतु । तथा आत्मा जीवः पुनरागच्छतु । चक्षुः दर्शनसाधनम् इन्द्रियं पुनरागच्छतु । असुः प्राणः पुनरैतु । प्राधान्यख्यापनाय पुनरभिधानम् । यद्वा पुनः प्राण इति पूर्वं प्राणापानादिवृत्तिमतोऽभिधानम् असुरिति वृत्तिविशेषस्य इति अपौनरुक्त्यम् । व्रणरोगेण गतप्रायत्वात् प्राणादीनां पुनरागमनं प्रार्थ्यत इति बोद्धव्यम् ॥ अपि च वैश्वानरः विश्वनरहितः अदब्धः रोगादिभिः अहिंसितः तनूपाः शरीरस्य पालकः सन् नः अस्माकम् अन्तः शरीरमध्ये तिष्ठाति तिष्ठतु । ‡लेटि आडागमः‡ । विश्वा विश्वानि सर्वाणि दुरितानि रोगनिदानभूतानि पापानि । विनाशयन् इति शेषः ॥

षष्ठी ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद् विरिष्टम् ॥ ३ ॥

सम् । वर्चसा । पयसा । सम् । तनूभिः । अगन्महि । मनसा । सम् । शिवेन ।

1 S' °मताभिमानम्.

त्वष्टा। नः। अत्र। वरीयः। कृणोतु। अनु। नः। मार्ष्टु। तन्वः। यत्। विऽरिष्टम् ॥ ३ ॥

वर्चसा दीप्त्या शरीरगतया पयसा देहावस्थितिनिमित्तेन पयोवत् सारभूतेन रसेन सम् अगन्महि संगता भवेम। ✕"तमो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम्। छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्। "म्वोश्च" इति मकारस्य नकारः✕। तनूभिः शरीरावयवैर्हस्तपादादिभिः संगता भवेम। तथा शिवेन शोभनेन मनसा अन्तःकरणेन संगता भवेम। त्वष्टा देवः नः अस्माकं वरीयः उरुतमम् अतिप्रभूतम् अत्र अस्मिन् शरीरे कृणोतु करोतु। ✕उरुशब्दाद् ईयसुनि "प्रियस्थिर०" इत्यादिना वर् आदेशः। कृवि हिंसाकरणयोश्च। "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः✕। नः अस्माकं तन्वः शरीरस्य यद् विरिष्टम् रोगार्तम् अङ्गं तद् अनु मार्ष्टु हस्तेन शोधयतु। ✕मृजूष् शुद्धौ। अदादित्वात् शपो लुक्। "मृजेर्वृद्धिः" इति वृद्धिः✕ ॥

[इति] षष्ठेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"इदं तद् युजे" इति तृचेन अभिचारकर्मणि पलाशमध्यमपर्णेन फलीकरणान् जुहुयात् [कौ० ६. २] ॥

"अस्मै क्षत्रम्" इत्यनया पौर्णमासयागे अग्नीषोमीयं चरुं जुहुयात्। सूत्रितं हि। "अस्मै क्षत्रम् [२] इति अग्नीषोमाविति अग्नीषोमीयस्य" इति [कौ० १. ४] ॥

"ये पन्थानः". इति तृचेन देशान्तरं गच्छतः पुरुषस्य स्वस्त्ययनकामः समिदाज्यपुरोडाशादित्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् ॥

तथा अनेन तृचेन स्वस्त्ययनार्थं मन्थौदनौ दद्यात् ॥

सूत्रितं हि। "ये पन्थान इति परीत्योपदधीत प्रयच्छति" इति [कौ० ७. ३] ॥

"ग्रीष्मो हेमन्तः" इत्यनया ब्रह्मा प्रयाजान् अनुमन्त्रयेत। "ग्रीष्मो हेमन्त इति प्रयाजान्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० १. २] ॥

1 *Rig.* I. 93. 9, 5, 3. See *Kausika*, I. 5.

आभिचारिके[1] कर्मणि व्रतविसर्जनार्थम् "इदावत्सराय" इत्यनया आज्यं जुहुयात् समिधश्च आदध्यात् ॥

तत्र प्रथमा ॥

इदं तद् युज उत्तरमिन्द्रं शुम्भाम्यष्टये ।
अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् ॥ १ ॥

इदम् । तत् । युजे । उत्ऽतरम् । इन्द्रम् । शुम्भामि । अष्टये ।
अस्य । क्षत्रम् । श्रियम् । महीम् । वृष्टिःऽइव । वर्धय । तृणम् ॥ १ ॥

यत् कर्म अभिचारदोषनिर्हरणक्षमं तद् इदम् उत्तरम् उत्कृष्टतरं कर्म युजे योजयामि । कर्म किं पुनस्तद् इत्याह । यद्वा उत्तरम् इत्येतद् इन्द्रविशेषणम् । उत्तरम् उत्कृष्टतरं सर्वेषु देवेषु श्रेष्ठम् इन्द्रं शुम्भामि अलंकरोमि । स्तुत्यादिभिः प्रीणयामीत्यर्थः । ⁂शुभ शुम्भ शोभार्थे⁂ । किमर्थम् । अष्टये अभिमतफलप्राप्तये । ⁂अशू व्याप्तौ इत्यस्माद् भावे क्तिन्⁂ ॥ परोर्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । हे इन्द्र त्वम् अस्य अभिचर्यमाणस्य पुरुषस्य क्षत्रम् बलं महीम् महतीं श्रियम् पुत्रपौत्रधनादिसंपदं वर्धय समृद्धां कुरु । तत्र दृष्टान्तः वृष्टिरिवेति । यथा महती वृष्टिः तृणम् सस्यजातं वर्धयति तद्वद् इत्यर्थः । ⁂वर्धयेत्यस्य "अन्येषामपि दृश्यते" इति सांहितिको दीर्घः⁂ ॥

द्वितीया ॥

अस्मै क्षत्रमग्नीषोमावस्मै धारयतं रयिम् ।
इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् ॥ २ ॥

अस्मै । क्षत्रम् । अग्नीषोमौ । अस्मै । धारयतम् । रयिम् ।
इमम् । राष्ट्रस्य । अभिऽवर्गे । कृणुतम् । युजे । उत्ऽतरम् ॥ २ ॥

हे अग्नीषोमौ । ⁂"ईदग्नेः सोमवरुणयोः" इति पूर्वपदस्य दी-

1 So S'. *Kausika* VI which treats of आभिचारिककर्म does not prescribe the application. But Kesava on *Kausika* VII. 8 says: अथ व्रतविसर्जनमुच्यते । ..... इदावत्सरायेति व्रतविसर्जनम् आज्यं जुहुयात्.

र्धः ॥ । अस्मै यजमानाय क्षत्रम् बलं धारयतम् स्थापयतम् । प्रयच्छतम् इति यावत् । तथा रयिम् धनम् अस्मै प्रयच्छतम् । तथा इमं यजमानं राष्ट्रस्य जनपदस्य अभीवर्गे आभिमुख्येनावर्जने कृणुतम् कुरुतम् । ॥ अभिपूर्वाद् वृजेर्भावे घञ् । "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः । कृणुतम् इति । कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः तत्संनियोगेन अकारान्तादेशश्च । तस्य "अतो लोपः" इति लोपे स्थानिवद्भावात् लघूपधगुणाभावः ॥ । अहमपि अस्य यजमानस्य उक्तफलसिद्धये उत्तरम् उत्कृष्टतरं कर्म युजे योजयामि । करोमीत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति ।
सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

सऽबन्धुः । च । असबन्धुः । च । यः । अस्मान् । अभिऽदासति ।
सर्वम् । तम् । रन्धयासि । मे । यजमानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥

सबन्धुः समानबन्धुः । समानजन्मगोत्रज इत्यर्थः । असबन्धुः तद्विपरीतः । अन्य इत्यर्थः । परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ । उभयविधो यः शत्रुः अस्मान् अभिदासति उपक्षपयति । ॥ दसु उपक्षये । अस्मात् ण्यन्तात् लटि "छन्दस्युभयथा" इति शप आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ॥ । सर्वं तम् उभयविधं शत्रुं सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते मे मह्यं यजमानाय हे इन्द्र त्वं रन्धयासि रन्धय वशीकुरु । ॥ रध्यतिर्वशगमने इति हि यास्कः [नि० ६. ३२] । "रधिजभोरचि" इति नुम् । लेटि आडागमः । "शतुरनुमः०" इति सुन्वच्छब्दाद् विभक्तिरुदात्ता ॥ ॥

चतुर्थी ॥

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
तेषामज्यानिं यतमो वहाति तस्मै मा देवाः परि धत्तेह सर्वे ॥ १ ॥

ये । पन्थानः । बहवः । देवऽयानाः । अन्तरा । द्यावापृथिवी इति । सम्ऽचरन्ति ।

तेषाम् । अज्यानिम् । यतमः । वहाति । तस्मै । मा । देवाः । परि । धत्त । इह । सर्वे ॥ १ ॥

देवयानाः देवा एव यैः पथिभिर्गच्छन्ति ते तथोक्ताः । ऽयातेः करणे ल्युट् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ऽ । ईदृशा ये पन्थानः मार्गा बहवः कर्मणां वैचित्र्यात् तत्तल्लोकप्राप्त्युपायतया नानाविधाः सन्तः द्यावापृथिवी अन्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्ये संचरन्ति वर्तन्ते । संचरणसाधनत्वात् तद्व्यपदेशः । तेषां मध्ये यतमः यज्जातीयः पन्थाः अज्यानिम् ज्यानिर्हानिः तद्विपरीतां समृद्धिं वहाति वहेत् प्रापयेत् । ऽयतम इति । "वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने०" इति यच्छब्दात् डतमच् । वहातीति । वहेर्लेटि आडागमः ऽ । तस्मै मार्गाय हे देवाः सर्वे यूयम् इह अस्मिन् देशे मा मां परि दत्त । रक्षणार्थं दानं परिदानम् । रक्षणाय प्रयच्छतेत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः स्विते नो दधात ।
आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद् वः शरणे स्याम ॥ २ ॥

ग्रीष्मः । हेमन्तः । शिशिरः । वसन्तः । शरत् । वर्षाः । सुऽइते । नः । दधात ।

आ । नः । गोषु । भजत । आ । प्रऽजायाम् । निऽवाते । इत् । वः । शरणे । स्याम ॥ २ ॥

ग्रीष्माद्याः षड्ऋतवः प्रसिद्धाः । तदभिमानिनो देवाः स्विते सुष्ठु प्राप्तव्ये धने नः अस्मान् दधात दधतु स्थापयन्तु ॥ हे ऋतवः यूयं नः अस्मान् गोषु आ भजत आभक्तान् भागयुक्तान् कुरुत । प्रजायाम् पुत्रपौत्रादिरूपायामपि आ भजत । किं बहुना । निवाते वायुसंस्पर्शेना-

१ A B B D K S C. °गा स्विते. We with K R V.

पि रहिते। इच्छब्दः अवधारणे। वायूपलक्षितसमस्तदुःखकारणरहिते एव वः युष्माकं संबन्धिनि शरणे गृहे स्थाने स्याम भवेम ॥

षष्ठी ॥

इदावत्सरायं परिवत्सरायं संवत्सरायं कृणुता बृहन्नमः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ३ ॥

इदावत्सरायं। परिवत्सरायं। संवत्सरायं। कृणुत। बृहत्। नमः।
तेषाम्। वयम्। सुमतौ। यज्ञियानाम्। अपि। भद्रे। सौमनसे। स्याम ॥३॥

प्रभवादिषु पञ्चके पञ्चके क्रमेण एताः संज्ञा भवन्ति। तत्र प्रथमस्य संवत्सर इति संज्ञा। द्वितीयादीनां परिवत्सरः इदावत्सरः अनुवत्सरः इद्वत्सरः इति यथाक्रमं संज्ञा भवति। तद् उक्तम् आचार्यैः।

चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चके पञ्चके युगे।
संपरीदान्विदित्येतच्छब्दपूर्वास्तु वत्सराः ॥

इति। तदभिमानिदेवाश्च तैत्तिरीये समाम्नाताः। "अग्निर्वाव संवत्सरः। आदित्यः परिवत्सरः। चन्द्रमा इदावत्सरः। वायुरनुवत्सरः" इति [तै० ब्रा० १. ४. १०. १]। हे जनाः तस्मा इदावत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय च बृहत् प्रभूतं नमः कृणुत कुरुत नमस्कारेण तान् प्रीणयत। ✕"नमःस्वस्ति०" इति चतुर्थी✕। तेषाम् इदावत्सरादीनां यज्ञियानाम् यज्ञार्हाणाम्। ✕"यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ" इति घप्रत्ययः✕। सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहात्मिकायां बुद्धौ वयं स्याम भवेम। अनन्तरं भद्रे शोभने सौमनसे सौमनस्ये शोभनबुद्धिजन्ये फलेपि स्याम भवेम। अपिशब्दः संभावनायाम् ॥

[इति] षष्ठेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"मा नो देवाः" इति तृचेन सर्पवृश्चिकादिभयनिवृत्तये गृहक्षेत्रादिषु सिकता अभिमन्त्र्य परितः परिकिरेत् ॥

तथा अनेन तृणमालां संपात्य गृहनगरादिद्वारे बध्नीयात् ॥

तथा अनेन तृचेन गोमयम् अभिमन्त्र्य गृहे विसर्जनं द्वारि निखननम् अग्नौ होमं वा कुर्यात् ॥

तथा अनेन अपामार्गमञ्जरीं गुडूचीं वा अभिमन्त्र्य पूर्ववद् गृहादिषु विसर्जनादिकं कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "युक्तयोः[३.२६,२७] मा नो देवाः[६.५६] यस्ते सर्पः[१२.१.४६] इति शयनशालोर्वराः परिकिरति" इत्यादि [कौ०७.१] ॥

तथा उपाकर्मणि अनेन तृचेन आज्यं हुत्वा दधिसक्तुषु संपातान् आनयेत् । सूत्रितं हि । "अभिजिति शिष्यान् उपनीय" इति प्रक्रम्य "आज्यं जुहुयान्मा नो देवा अहिर्वधीत्" इत्यादि [कौ०१४.३] ॥

"इदमिद् वा उ भेषजम्" इति तृचेन मुखरहितव्रणभैषज्यार्थं गोमूत्रेण व्रणं मर्दयेत् ॥

तथा अनेन दन्तमलम् अभिमन्त्र्य प्रलिम्पेत् ॥

तथा अनेन फेनम् अभिमन्त्र्य व्रणं प्रलिम्पेत् ॥

सूत्रितं हि । "इदमिद् वा उ इत्यच्छिन्नं मूत्रफेनेनोद्धिद्य प्रलिम्पति प्रक्षालयति दन्तरजसा" इति [कौ०४.७] ॥

"शं च नो मयश्च नः" इत्येषा बृहद्गणे पठिता शान्त्युदकादौ विनियुक्ता ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनार्थम् अनया क्षीरौदनहोमादीनि "वायोः पूतः"[६.५१] इत्यत्रोक्तानि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रं च तत्रैव द्रष्टव्यम् ॥

तत्र प्रथमा ॥

मा नो देवा अहिर्वधीत् सतोकान्त्सहपूरुषान् ।
संयतं न वि स्परद् व्यातं न सं यमन्नमो देवजनेभ्यः ॥ १ ॥

मा । नः । देवाः । अहिः । वधीत् । सऽतोकान् । सहऽपुरुषान् ।
समऽयतम् । न । वि । स्परत् । विऽआतम् । न । सम् । यमत् । नमः ।
देवऽजनेभ्यः ॥ १ ॥

हे देवाः विषप्रतीकारकुशला अहिः सर्पः नः अस्मान् मा वधीत् मा हिंसीत् । ✕हन्तेर्माङि लुङि "हनो वध लिङि" "लुङि

---

१ B K R V पूरुषान्. We with A D S P P J Cs. २ So we with A B Bp B D K R S V Cs. ३ P K सहऽपुरु°. We with P J Cp. ४ P स्फरत्. We with P J Cp.

च" इति वधादेशः। तस्य च अदन्तत्वाद् अतो लोपे स्थानिवद्भावाद् "अतो हलादेर्लघोः" इति वृद्ध्यभावः ॥ कीदृशान्। सतोकान्। तोकम् इति अपत्यनाम। पुत्रपौत्राद्यपत्यसहितान्। ॥ "वोपसर्जनस्य" इति सहशब्दस्य सभावः ॥ सहपूरुषान् भृत्यादिपुरुषसहितान्॥ अपि च संयतम् संश्लिष्टम् अहेरास्यं न विस्फुरत्। दंशनार्थं विष्फारितं विश्लिष्टं न भवतु। ॥ स्फुर संचरणे इत्यस्माद् विपूर्वात् लेटि अडागमः ॥ तथा व्यात्तम् विवृतं तद् आस्यं न संयमत् संयतं संश्लिष्टं न भवतु। मन्त्रसामर्थ्येन प्रतिबद्धं सत् वर्तताम् इत्यर्थः। ॥ व्यात्तम् इति। व्याङ्पूर्वाद् दाञो निष्ठायाम् "अच उपसर्गात् तः" इति तकारः ॥ [देवजनेभ्यः] ये सर्पादिविषनिर्हरणसमर्था देवजनास्तेभ्यो नमोस्तु॥

द्वितीया॥

नमोस्त्वसिताय नमस्तिरश्चिराजये।
स्वजाय बभ्रवे नमो नमो देवजनेभ्यः॥ २॥

नमः। अस्तु। असिताय। नमः। तिरश्चिराजये।
स्वजाय। बभ्रवे। नमः। नमः। देवजनेभ्यः॥ २॥

असिताय कृष्णवर्णाय एतन्नाम्ने सर्पाधिपतये नमोस्तु॥ तथा तिरश्चिराजये तिरश्चीनास्तिर्यग् अवस्थिता राजयः वलयो यस्य स तिरश्चिराजिः। एतत्संज्ञाय सर्पमुख्याय नमोस्तु॥ बभ्रवे बभ्रुवर्णाय स्वजाय स्वयमेव जायते कारणांन्तरनैरपेक्ष्येण उत्पद्यते इति स्वजः। तस्मै एतन्नाम्ने सर्पाय नमोस्तु॥ एतेषां सर्पाणां नियन्तृभ्यो देवजनेभ्यश्च नमोस्तु। असितादिशब्दानां सर्पविशेषनामत्वं तैत्तिरीयके "समीची नामासि" [तै० सं० ५. ५. १०. १] इत्यादिसर्पाहुतिमन्त्रेषु प्रसिद्धं द्रष्टव्यम्॥

तृतीया॥

सं ते हन्मि दता दतः समु ते हन्वा हनू।
सं ते जिह्वया जिह्वां सम्वास्त्राहं आस्यम्॥ ३॥

सम् । ते । हन्मि । दता । दतः । सम् । ऊं इति । ते । हन्वा । हनू इति ।
सम् । ते । जिह्वया । जिह्वाम् । सम् । ऊं इति । आस्ना । अहे । आ-
स्यम् ॥ ३ ॥

हे अहे सर्प ते तव दता उपरिपङ्क्तिवर्तिदन्तेन दतः अधःपङ्क्तिस्थान् दन्तान् सं हन्मि संहतान् संश्लिष्टान् करोमि ॥ तथा ते तव हन्वा हनू सं हन्मि । हनुद्वयमपि परस्परसंश्लिष्टं करोमीत्यर्थः ॥ ते त्वदीयया जिह्वया जिह्वामपि संहतां करोमि । सर्पस्य हि द्वे जिह्वे । ते अपि परस्परप्रतिबद्धे करोमीत्यर्थः ॥ तथा आस्ना आस्येन आस्यम् त्वदीयं मुखं संहतं करोमि । आस्यस्य उत्तराधरभागावपि संश्लिष्टौ करोमीत्यर्थः । यद्वा सर्पाधिपानां बहुशिरस्कत्वात् तदास्यानि अन्योन्यप्रतिबद्धानि करोमीत्यर्थः । ‘‘पदन्०’’ इत्यादिना दन्तशब्दस्य दद्भावः । आस्यशब्दस्य च आसन् आदेशः । उशब्दः पूरणः ॥

चतुर्थी ॥

इदमिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् ।
येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥ १ ॥

इदम् । इत् । वै । ऊं इति । भेषजम् । इदम् । रुद्रस्य । भेषजम् ।
येन । इषुम् । एकऽतेजनाम् । शतऽशल्याम् । अपऽब्रवत् ॥ १ ॥

इदम इद् वै इदमेव खलु करिष्यमाणं भेषजम् अस्य व्रणरोगस्य निवर्तकम् औषधम् । इदमेव रुद्रस्य भेषजम् । रोदयति सर्वम् अन्तकाले इति रुद्रः । तस्य देवस्य संबन्धि औषधम् । रोदेर्णिलुक् च [उ० २. २२] इति रक् प्रत्ययः । किं पुनरिदंतया निर्दिष्टम् इति तद् आह येनेति । येन भेषजेन महादेवस्त्रिपुरसंहृतिसमये एकतेजनाम् एकस्तेजनो वेणुकाण्डो यस्याः सा तथोक्ता । शतशल्याम् शतसंख्याकानि शल्यानि अयोमयानि तीक्ष्णानि प्रोतानि यस्याम् ईदृशीम् इषुम् उप-

१ P हन्वा. We with P J Cp.

1 S' °जना. 2 S' प्रोता°.

ब्रुवत्। वेध्यसमीपं प्राप्य प्रायुङ्क्त। तद् इदम् इति पूर्वत्र संबन्धः॥

पञ्चमी॥

जालाषेणाभि षिञ्चत जालाषेणोप सिञ्चत।
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे॥ २॥

जालाषेण। अभि। सिञ्चत। जालाषेण। उप। सिञ्चत।
जालाषम्। उग्रम्। भेषजम्। तेन। नः। मृड। जीवसे॥ २॥

जलाषम् इति उदकनामसु पठितम्। अत्र च विनियोगानुसारेण गोमूत्रफेनलक्षणम्। हे परिचारकाः तेन जलाषेण अभि षिञ्चत व्रणम् अभितः प्रक्षालयत। षिच क्षरणे। "तुदादिभ्यः शः"। "शे मुचादीनाम्" इति नुम्। "उपसर्गात् सुनोति०" इति षत्वम्॥ तथा तेनैव जलाषेण उप सिञ्चत व्रणसमीपं प्रक्षालयत। तद्धि जलाषम् उग्रम् तीक्ष्णं भेषजम् रोगनिवर्तकम्। हे रुद्र तेन जलाषेण नः अस्मान् मृळ सुखय जीवसे जीवनार्थम्। जलाषस्य रुद्रसंबन्धिभेषजत्वं दाशतय्यामपि आम्नातम्। "गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्" इति [ऋ० १. ४३. ४]॥

षष्ठी॥

शं च नो मयश्च नो मा च नः किं चनाममत्।
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम्॥ ३॥

शम्। च। नः। मयः। च। नः। मा। च। नः। किम्। चन। आममत्।
क्षमा। रपः। विश्वम्। नः। अस्तु। भेषजम्। सर्वम्। नः। अस्तु। भेषजम्॥ ६॥

हे देव नः अस्माकम् शं च रोगस्य शमनं च भवतु। रोगजनितं दुःखं निवर्तताम् इत्यर्थः। मयश्च। मय इति सुखनाम। सुखं च नः अस्माकं भवतु। अपि च नः अस्माकं संबन्धि किं चन किमपि प्र-

१ K सिञ्चतम्. २ So all our Vaidikas and MSS.

जापश्वादिकं मा आममत् रोगग्रस्तं मा भूत् । ऋमम रोगे । अस्मात् ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम् । रप इति पापनाम । रपो रिप्रम् इति पापनामनी भवतः इति हि यास्कः [नि० ४. २१] । "सुपां सुलुक्०" इति षष्ठ्या लुक् ऋ । रपः रपसो रोगनिदानभूतस्य पापस्य क्षमा क्षान्तिः उपशमो भवतु । ऋक्षमूष् सहने । "षिद्भिदादिभ्यः०" इति भावे अङ् ऋ । विश्वम् समस्तं स्थावरजङ्गमात्मकं नः अस्माकं भेषजम् औषधम् अस्तु । एतदेव आदरार्थं पुनरुच्यते सर्वं न इति । सर्वम् कृत्स्नं कर्म नः अस्माकं भेषजम् अस्तु ॥

[इति] षष्ठेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

"यशसं मेन्द्रः" इति तृचेन यशस्कामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा । "यशसं मेन्द्र इति यशस्कामः" इति हि सूत्रम् [कौ० ७. १०] ॥

तथा उत्सर्जनकर्मणि अनेन तृचेन आज्यं हुत्वा रसेषु संपातान् आनयेत् । उत्सर्जनं प्रक्रम्य सूत्रितम् । "यशसं मेन्द्रः[६. ५८] गिरावरगराटेषु[६. ६९]" इत्यादि "अग्नौ हुत्वा रसेषु संपातान् आनीय" इति [कौ० १४. ३.] ॥

"अनडुच्यस्त्वं प्रथमम" इति तृचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगः ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि "वायोः पूतः" [६. ५१] इति तृचोक्तानि क्षीरौदनहवनादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "शं च "नो मयश्च नः[६. ५७. ३] अनडुच्यस्त्वं प्रथमम[६. ५९] मह्यम आपः "[६. ६१] वैश्वानरो रश्मिभिः[६. ६२] इत्यभिवर्षणावसेचनानाम" इति [कौ० ५. ५] ॥

तथा स्वस्त्ययनकर्मणि अनेन तृचेन आज्यसमित्पुरोडाशादीनि शप्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । सूत्रितं हि । "पातं नः[६. "३] इति पञ्च अनडुच्यः[६. ५९] यमो मृत्युः[६. ९३] विश्वजित्[६. "१०७] शकधूमम्[६. १२८] भवाशर्वौ[११. २] इत्युपदधीत" इति [कौ० ७. १] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम ॥ १ ॥

यशसम् । मा । इन्द्रः । मघऽवान् । कृणोतु । यशसम् । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । इमे इति ।
यशसम् । मा । देवः । सविता । कृणोतु । प्रियः । दातुः । दक्षिणायाः । इह । स्याम ॥ १ ॥

मघवान् । मघम् इति धननाम । तद्वान् इन्द्रः मा मां यशसम् यशस्विनं कीर्तियुक्तं कृणोतु करोतु । यशःशब्दाद् मत्वर्थीयस्य "लुगकारेकाररेफाश्च वक्तव्याः" इति लुक् । तद्धितान्तत्वेन प्रातिपदिकसंज्ञायाम् फिषोन्त उदात्तः [फि० १. १] इति अन्तोदात्तत्वम् । इमे परिदृश्यमाने उभे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ [मा] मां यशसम् यशस्विनं कृणुताम् । देवः दानादिगुणयुक्तः सविता सर्वप्रेरको देवः मा मां यशसम् यशस्विनं कृणोतु करोतु । एवम् उदीरितरीत्या यशस्वी भूत्वा दक्षिणायाः वासोहिरण्यादिरूपाया इह अस्मिन् ग्रामनगरादौ दातुः दातुः प्रियः स्याम् भवेयम् ॥

द्वितीया ॥

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः ।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सवेषु यशसः स्याम ॥ २ ॥

यथा । इन्द्रः । द्यावापृथिव्योः । यशस्वान् । यथा । आपः । ओषधीषु । यशस्वतीः ।
एव । विश्वेषु । देवेषु । वयम् । सवेषु । यशसः । स्याम ॥ २ ॥

यथा येन प्रकारेण द्यावापृथिव्योः द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ । "दिवो द्यावा" इति द्यावा आदेशः । "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् । "उदात्तयणो हल्पूर्वात्" इति विभक्तेरुदा-

त्तत्वम् । द्यावापृथिव्योः अनयोर्लोकयोर्मध्ये इन्द्रो यशस्वान् वृष्टिप्रदानादिकर्मभिः कीर्तिमान् । यथा च आपः ओषधीषु यशस्वतीः यशस्वत्यः । "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः । "तसौ मत्वर्थे" इति भसंज्ञया पदसंज्ञाया निवर्तनात् रुत्वाभावः । व्रीहियवादिसस्यवृद्धिहेतुत्वेन लोके प्रख्याता इत्यर्थः । एव एवं विश्वेषु सर्वेषु देवेषु तदुपलक्षितेषु सर्वेषु मनुष्येषु च वयं यशसः यशस्विनः स्याम भवेम ॥

तृतीया ॥

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः ॥ ३ ॥

यशाः । इन्द्रः । यशाः । अग्निः । यशाः । सोमः । अजायत ।
यशाः । विश्वस्य । भूतस्य । अहम् । अस्मि । यशःऽतमः ॥ ३ ॥

"यशा इन्द्रः" इत्येषा तृतीया पूर्ववद् अत्र व्याख्येया । ६. ३९. ३ ॥

चतुर्थी ॥

अनडुच्यस्त्वं प्रथमं धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति ।
अधेनवे वयसे शर्म यच्छ चतुष्पदे ॥ १ ॥

अनडुत्ऽभ्यः । त्वम् । प्रथमम् । धेनुऽभ्यः । त्वम् । अरुन्धति ।
अधेनवे । वयसे । शर्म । यच्छ । चतुःऽपदे ॥ १ ॥

हे अरुन्धति अरोधनशीले सहदेव्याख्यौषधे शान्त्युदकादौ प्रयुज्यमाना त्वं प्रथमम् पूर्वम् अनडुच्यः अनसः शकटस्य वाहकेभ्यो बलीवर्देभ्यः शर्म सुखं प्रयच्छ । "वसुस्रन्सुध्वन्स्वनडुहां दः" इति दत्वम् । तथा धेनुभ्यः दोग्ध्रीभ्यो गोभ्यः शर्म यच्छ । अधेनवे धेनुव्यतिरिक्ताय वयसे पञ्चवर्षाद् अर्वाचीनाय गवाश्वादिजातीयाय चतुष्पदे चतुष्पान्मात्राय शर्म सुखं प्रयच्छ । वयःशब्दस्य उक्तार्थपरता भगवता आपस्तम्बेन द-

१ P अनडुत्ऽभ्यः.

1 S' °ख्योषधे. 2 S' अर्वाचीने °जातीये and °मात्रे for अर्वाचीनाय, °जातीयाय °मात्राय respectively.

र्शिता । "एकहायनप्रभृत्या पञ्चहायनेभ्यो वयांसि" इति । ‡चतुष्पद इति । चत्वारः पादा अस्य । "संख्यासुपूर्वस्य" इति पादशब्दस्य अन्त्यलोपः । "पादः पत्" इति पद्भावः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ‡ ॥

पञ्चमी ॥

शर्म॑ यच्छ॒त्वोष॑धिः स॒ह दे॒वीर॑रुन्ध॒ती ।
कर॒त् पय॑स्वन्तं गो॒ष्ठमय॑क्ष्मा॒ँ उ॒त पू॒रु॒षान् ॥ २ ॥

शर्म॑ । य॒च्छ॒तु॒ । ओष॑धिः । स॒ह । दे॒वीः । अ॒रु॒न्ध॒ती ।
कर॑त् । पय॑स्वन्तम् । गो॒ऽस्थम् । अय॑क्ष्मान् । उ॒त । पु॒रु॒षान् ॥ २ ॥

[सहदेवी] सहदेव्याख्या अरुन्धती अभिलषितफलस्य अवारयित्री ओषधिः शर्म सुखं यच्छतु प्रयच्छतु ॥ अस्मदीयं गोष्ठम् गोनिवासदेशं पयस्वन्तम् प्रभूतपयसा युक्तं करत् करोतु ॥ उत अपि च पूरुषान् पुरुषान् पुत्रभृत्यादीन् अस्मदीयान् अयक्ष्मान् अरोगान् करोतु ॥

विश्व॑रूपां सुभगा॒मच्छा॑वदामि जीव॒लाम् ।
सा नो॑ रु॒द्रस्या॑स्तां हे॒तिं दूरं॑ नयतु गो॒भ्यः॑ ॥ ३ ॥

वि॒श्व॑ऽरूपाम् । सु॒ऽभगा॑म् । अ॒च्छ॒ऽआ॑वदामि । जी॒व॒लाम् ।
सा । नः॒ । रु॒द्रस्य॑ । अ॒स्ता॒म् । हे॒ति॑म् । दूर॑म् । न॒य॒तु॒ । गो॒भ्यः॑ ॥ ३ ॥

विश्वरूपाम् नानारूपां विश्वस्य कृत्स्नस्य फलस्य निरूपयित्रीं वा सुभगाम् सौभाग्यवतीं जीवलाम् जीवो जीवनं प्राणधारणं तद्धेतुत्वेन तद्वतीम् । ‡"सिध्मादिभ्यश्च" इति मत्वर्थीयो लः‡ । यद्वा । ‡ला दाने‡ । जीवं जीवनं लाति ददातीति जीवला । ‡"आतोनुपसर्गे कः"‡ । ईदृशीं सहदेव्याख्याम् ओषधिम् अच्छ॑ आभि-

१ B$^{b}$B D K$^{m}$C$^{s}$ °यक्ष्मां. We with K. २ A °रूपं.

1 Sâyaṇa's text: सहदेवी अरुं°. 2 S' पुत्रप्रभृत्यादीन्.

मुख्येन वदामि इष्टफलं प्रार्थये । सा तादृशी ओषधिः रुद्रस्य हिंसकस्य देवस्य अस्ताम् अस्मदभिमुखं क्षिप्तां हेतिम् आयुधं नः अस्माकं संबन्धिभ्यो गोभ्यः सकाशाद् दूरम् दूरदेशं नयतु प्रापयतु । अस्ताम् इति । असु क्षेपणे । निष्ठायां "यस्य विभाषा" इति इट्प्रतिषेधः । हेतिम् इति । हन्तेः करणे क्तिनि "ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च" इति निपातितः । गोभ्य इति । "सावेकाचः०" इति प्राप्तस्य विभक्त्युदात्तत्वस्य "न गोश्वन्सावर्वर्ण०" इति प्रतिषेधः ॥

[इति] षष्ठेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

"अयम् आ याति" इति तृचेन पतिलाभकर्मणि काकसंचारात् पूर्वम् आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अयम् आ यातीति पुरा काकसंपातात्" इति [कौ० ४. १०] ॥

"मह्यम् आपः" इति तृचस्य बृहच्छणे पाठात् शान्त्युदकादौ विनियोगोनुसंधेयः ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि क्षीरौदनहवनादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "अनडुद्भ्यस्त्वं प्रथमम्[६. ५९] मह्यम् आपः[६. ६१] वैश्वानरो रश्मिभिः[६. ६२] इत्यभिवर्षणावसेचनानाम्" इति [कौ० ५. ५]॥

तथा वापीकूपतटाकादिषु जलागमनकामः अनेन तृचेन इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा । सूत्रितं हि । "यशसं मेन्द्रः[६. ५८] इति यशस्कामो मह्यम् आपः[६. ६१] इति वर्चस्कामः" इति [कौ० ७. १०] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अयमा यात्यर्यमा पुरस्ताद् विषितस्तुपः ।
अस्या इच्छन्नग्नुवै पतिमुत जायामजानये ॥ १ ॥

अयम् । आ । याति । अर्यमा । पुरस्तात् । विसितऽस्तुपः ।
अस्यै । इच्छन् । अग्नुवै । पतिम् । उत । जायाम् । अजानये ॥ १ ॥

---

१ S[m] °स्नुपः. A °ष्णुपः. D R P[2] °स्नुपः. We with B K K[m] P J V C[s] C[p]. २ P अस्यै.

1 S' °भिमर्ष°. 2 S' व्यचस्काम°.

पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि विषितस्तुपः विशेषेण सितो बद्धः स्तुपो रश्मीनां समुच्छ्रायो यस्य स तथोक्तः। ईदृशोयम् अर्यमा आदित्यः आ याति आगच्छति। किं कुर्वन्। अस्यै अग्रुवै कन्यायै पतिम् इच्छन्। ‡"लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति हेतौ शतृप्रत्ययः‡। पत्यन्वेषणाङ्गेतोरित्यर्थः। ‡"इषुगमियमां छः" इति छत्वम्‡॥ उत अपि च अजानये जायारहिताय जायाम् भार्याम्। दातुम् इच्छन् इत्यर्थः। ‡न विद्यते जाया यस्येति विगृह्य "जायाया निङ्" इति निङ् आदेशः‡। अर्यम्णो विवाहाधिदेवतात्वम् "अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निम् अयक्षत" [आश्व० गृ० १. ७. १३] इति मन्त्रलिङ्गाद् अवगन्तव्यम्॥

द्वितीया॥

अश्रमदियमर्यमन्नन्यासां समनं यती।
अङ्गो न्वर्यमन्नस्या अन्याः समनमायति॥ २॥

अश्रमत्। इयम्। अर्यमन्। अन्यासाम्। समनम्। यती।
अङ्गो इति। नु। अर्यमन्। अस्याः। अन्याः। समनम्। आऽअयति॥ २॥

हे अर्यमन् देव इयम् पतिलाभार्थिनी कन्या अश्रमत् श्रान्ता अभिलषितस्य पत्युरलाभेन खिन्ना। ‡श्रमु तपसि खेदे च‡। किं कुर्वती। अन्यासां पतिव्रतानां स्त्रीणां शमनम् पत्युरावर्जनोपायभूतां शान्तिं यती प्राप्नुवती। अङ्ग उ अङ्गो। उशब्दः चार्थे। अङ्गेत्याभिमुख्यकरणे। अङ्ग हे अर्यमन् अन्याश्च स्त्रियः अस्याः पतिकामायाः अनु पश्चात् शमनम् पतिविषयां शान्तिम् आयति प्राप्नुवन्ति। ‡व्यत्ययेन एकवचनम्‡॥

तृतीया॥

धाता दाधार पृथिवीं धाता द्यामुत सूर्यम्।
धातास्यां अग्रुवै पतिं ददातु प्रतिकाम्यम्॥ ३॥

---

१ R धातास्यां.

धाता । दाधार । पृथिवीम् । धाता । द्याम् । उत । सूर्यम् ।
धाता । अस्यै । अग्रुवै । पतिम् । दधातु । प्रतिऽकाम्यम् ॥ ३ ॥

धाता सर्वस्य जगतो धारयिता विधाता देवः पृथिवीम् भूमिं दाधार धृतवान् । स्वस्थाने स्थापितवान् इत्यर्थः । तुजादित्वाद् अभ्यासदीर्घः ॥ तथा स एव धाता द्याम् द्युलोकम् । उतशब्दः चार्थे । सूर्यम् सर्वप्रेरकम् आदित्यं च स्वकीये स्थाने धारितवान् ॥ एवं सर्वस्य जगतो नियन्तृत्वात् धातैव अस्या अग्रुवै पतिकामायै कन्यायै प्रतिकाम्यम् आभिमुख्येन कामयितव्यं पतिम् भर्तारं दधातु विदधातु करोतु प्रयच्छतु वा । डुधाञ् दानधारणयोः ॥

चतुर्थी ॥

मह्यमापो मधुमदेरयन्तां मह्यं सूरो अभरज्ज्योतिषे कम् ।
मह्यं देवा उत विश्वे तपोजा मह्यं देवः सविता व्यचो धात् ॥ १ ॥

मह्यम् । आपः । मधुऽमत् । आ । ईरयन्ताम् । मह्यम् । सूरः । अभरत् ।
ज्योतिषे । कम् ।
मह्यम् । देवाः । उत । विश्वे । तपःऽजाः । मह्यम् । देवः । सविता । व्यचः । धात् ॥ १ ॥

आपः उदकानि तदभिमानिदेवताः मधुमत् माधुर्योपेतम् आत्मीयं रसं मह्यं मदर्थं एरयन्ताम् आगमयन्तु ॥ तथा सूरः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः मह्यं मदर्थं कम् सुखकरम् आत्मीयं तेजः ज्योतिषे विषयप्रकाशनाय अभरत् अहरत् । उत्पादितवान् इत्यर्थः । यद्वा । "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वात् ज्योति[षे इति] कर्मणि चतुर्थी । ज्योतिः आत्मीयं प्रकाशम् अहरत् । प्रापयतीत्यर्थः । अस्मिन् पक्षे कम् इति पदपूरणः । तद् उक्तं यास्केन । पदपूरणास्ते मिताक्षरेष्वनर्थकाः कमीमिद्धिति [नि० १. ९] ॥ उत अपि च तपोजाः ब्रह्मणस्तपसो जाताः विश्वे सर्वे देवाः मह्यम् । इष्टफलं प्रयच्छन्तु इति

1 S' तदभिमानो देवा .

शेषः। ‡ तपसो जायन्ते इति तपोजाः। "जनसनखनक्रमगमो विट्"। "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति आत्वम् ‡। सविता सर्वस्य प्रेरको देवः व्यचः व्यापनम् इष्टफलप्रापणं मह्यं धात् दधातु विदधातु करोतु प्रयच्छतु वा। ‡ दधातेश्छान्दसे लुङि "गातिस्था०" इति सिचो लुक् ‡ ॥

पञ्चमी ॥

अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम्।
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परि वाचं विशश्च ॥ २ ॥

अहम्। विवेच। पृथिवीम्। उत। द्याम्। अहम्। ऋतून्। अजनयम्। सप्त। साकम्।
अहम्। सत्यम्। अनृतम्। यत्। वदामि। अहम्। दैवीम्। परि। वाचम्। विशः। च ॥ २ ॥

मन्त्रद्रष्टा स्वात्मनः सर्वगतब्रह्मात्मभावम् अनुसंदधानः सर्वकर्तृत्वम् आविष्करोति। पृथिवीं द्यां च अहं विवेच। परस्परविविक्ते असंकीर्णरूपे कृतवान् अस्मि ॥ तथा अहमेव सप्तसंख्याकान्। वसन्ताद्याः षट् संसर्पोहस्पतिसंज्ञकाधिमासाख्यः सप्तमः। एतान् सप्तसंख्याकान् ऋतून् साकं सह परस्परसंहतान् अजनयम् उत्पादितवान् अस्मि ॥ सत्यम् यथार्थम्। अनृतम् अयथार्थम्। सत्यानृतभेदेन यत् लोके प्रसिद्धं वाक्यजातं तद् अहमेव वदामि उच्चारयामि ॥ तथा दैवीम् देवसंबन्धिनीं वाचम् अहमेव परि विशम् परिप्राप्तवान् अस्मि ॥

षष्ठी ॥

अहं जजान पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त सिन्धून्।
अहं सत्यमनृतं यद् वदामि यो अग्नीषोमावजुषे सखाया ॥ ३ ॥

अहम्। जजान। पृथिवीम्। उत। द्याम्। अहम्। ऋतून्। अजनयम्। सप्त। सिन्धून्।

१ P P̈ J अजनयन्. We with C[c].

अहम् । सत्यम् । अनृतम् । यत् । वदामि । यः । अग्नीषोमौ । अजुषे । सखाया ॥ ३ ॥

पूर्ववद् योजना । इयांस्तु विशेषः । जजान उत्पादितवान् अस्मि । सिन्धून् सिन्धवः स्यन्दनशीला गङ्गाद्याः सप्त नद्यः सप्त समुद्रा वा । तानपि अहम् उत्पादितवान् अस्मि । स्वात्मनस्तादृक्सामर्थ्यप्राप्तिम् उपपादयति यो अग्नीषोमाविति । अग्नीषोमात्मकं हीदं सर्वं जगत् । श्रूयते हि । "एतावद् वा इदम् अन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नम् अग्निरन्नादः" इति [बृ० आ० १. २. १३] । एवं भोक्तृभोग्यात्मकस्य अखिलजगतः कारणभूतौ अग्नीषोमौ योहं ब्रह्मात्मभावेन सखाया सखायौ समानख्यानौ जगन्निर्माणे सहायभूतौ अजुषे सेवितवान् अस्मि । तादृशस्य मम द्यावापृथिव्यादिसर्जनम् उपपन्नम् इत्यर्थः । अजुषे इति । जुषी प्रीतिसेवनयोः । अस्मात् लङि उत्तमैकवचने रूपम् । सखाया । "सुपां सुलुक्०" इति विभक्तेराकारः ॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे षष्ठकाण्डे षष्ठोनुवाकः ।

सप्तमेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "वैश्वानरो रश्मिभिः" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्यस्य तृचस्य बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणे विनियोगः ॥

तथा अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि अनेन तृचेन क्षीरौदनहवनादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "मह्यम आपः [६. ६१] वैश्वानरो रश्मिभिः [६. ६२] इत्यभिवर्षणावसेचनानाम्" इति [कौ० ५. ५] ॥

तथा अस्य तृचस्य पवित्रगणे पाठात् संवयज्ञेषु प्रोक्षणे विनियोगः । "पवित्रैः संप्रोक्षति" इति [कौ० ८. २] सूत्रात् ॥

अवकीर्णिप्रायश्चित्तार्थं तमेव ब्रह्मचारिणं दर्भरज्ज्वा कण्ठे बद्ध्वा "यत् ते देवी" इत्यनेन तृचेन व्रीहीन् यवान् तिलान् वा जुहुयात् ॥

तथा अनेन तृचेन उदपात्रं संपात्य दर्भरज्ज्वा अवकीर्णिनं संप्रोक्ष्य दर्भरज्जुं विसृजेत् ॥

ब्रह्मचारिणं प्रक्रम्य सूत्रितम्। "यत् ते देवीत्यावपत्येवं संपातवतोदपात्रेणावसिच्य मन्त्रोक्तं शान्त्युदकेन संप्रोक्ष्य" इति [कौ० ५. १०] ॥

तथा अग्निचयने "यत् ते देवी" इति नैर्ऋतेष्टकोपधानानन्तरं रुक्मपाशसहितां प्रास्ताम् आसन्दीम् अनुमन्त्रयेत। तद् उक्तं वैताने। "यत् ते देवीत्यासन्दीं रुक्मपाशां नैर्ऋत्यां प्रास्ताम्" इति [वै० ५. १.] ॥

तथा "नमोस्तु ते" इति नैर्ऋतीम् इष्टकाम् उपधीयमानाम् अनुमन्त्रयते। "नमोस्तु ते निर्ऋते" इति हि वैतानम् [वै० ५. १] ॥

तत्रैव अग्निचयने "सं समित्" इत्यनया आनुष्टुभीरिष्टका उपधीयमाना ब्रह्मा अनुमन्त्रयते ॥

तत्र प्रथमा ॥

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नभोभिः।
द्यावापृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी यज्ञिये नः पुनीताम् ॥ १ ॥

वैश्वानरः। रश्मिऽभिः। नः। पुनातु। वातः। प्राणेन। इषिरः। नभःऽभिः। द्यावापृथिवी इति। पयसा। पयस्वती इति। ऋतवरी इत्यृतऽवरी। यज्ञिये इति। नः। पुनीताम् ॥ १ ॥

वैश्वानरः विश्वनरसंबन्धी सर्वप्राणिषु जाठरात्मना वर्तमानोग्निः रश्मिभिः स्वकीयैः किरणैः नः अस्मान् पुनातु शोधयतु। यद्वा "वैश्वानरो यतते सूर्येण" [ऋ० १. ९८. १] इति लिङ्गात् सूर्योपि वैश्वानर इत्युच्यते। सोपि स्वरश्मिभिः अस्मान् पुनात्वित्यर्थः ॥ तथा वातः वायुः देहमध्ये संचरन् प्राणेन प्राणनव्यापारेण श्वासोच्छ्वासादिरूपेण अस्मान् पुनातु ॥ तथा इषिरः गमनशीलः अन्तरिक्षे संचरन् स एव नभोभिः नभःप्रदेशैरन्तरिक्षप्रदेशैः अस्मान् शोधयतु। ※इषिर इति। इष गतौ इत्यस्माद् औणादिकः किरच् प्रत्ययः※। द्यावापृथिवी द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ। ※"दिवो द्यावा" इति द्यावा आदेशः। "वा

१ A B B D K K R S P J V C: °पृथिवी. We with P. २ P J K °पृथिवी इति. C: °पृथिवी° changed to °पृथ्वी°. We with P.

1 S' omits °म्. 2 S' अनश्वक्ष.

छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः । "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् । "°अपृथिवीरुद्रपूषमन्थिषु" इति पर्युदस्तत्वाद् "नोत्तरपदेनुदात्तादौ°" इति निषेधाभावः ॥ । कीदृश्यौ द्यावापृथिव्यौ । पयसा सारभूतेन रसेन पयस्वती पयस्वत्यौ सारवत्यौ । ऋतावरी ऋतम् इत्युदकस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा नामधेयम् तद्वत्यौ । ॥ "छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीयो वनिप् "वनो र च" इति ङीब्रेफौ । पूर्ववत् पूर्वसवर्णदीर्घः ॥ । यज्ञिये यज्ञार्हे यज्ञनिष्पादनसमर्थे । ॥ "यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ" इति घप्रत्ययः ॥ ॥ एवंगुणविशिष्टे द्यावापृथिव्यौ नः अस्मान् पुनीताम् शोधयताम् । ॥ पूञ् पवने । ऋयादित्वात् श्नाप्रत्ययः । "ई हल्यघोः" इति ईत्वम् ॥ ॥

द्वितीया ॥

वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वं यस्या आशास्तन्वो॑ वीतपृष्ठाः ।
तया गृणन्तः सधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २ ॥

वैश्वानरीम् । सूनृताम् । आ । रभध्वम् । यस्याः । आशाः । तन्वः । वीतऽपृष्ठाः ।
तया । गृणन्तः । सधऽमादेषु । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥ २ ॥

वैश्वानरीम् वैश्वानराग्निसंबन्धिनीं सूनृताम् प्रियसत्यात्मिकां वाचं स्तुतिरूपाम् हे जनाः आ रभध्वम् उपक्रमध्वम् । वीतपृष्ठाः विस्तीर्णोपरिभागा आशाः दिशो यस्याः वैश्वानर्या वाचः तन्वः शरीरभूताः । तया वाचा गृणन्तः तं वैश्वानरम् अग्निं स्तुवन्तो वयम् । ॥ गृ शब्दे । प्वादित्वात् ह्रस्वः ॥ । सधमादेषु । सह माद्यन्ति हृष्यन्ति एषु इति सधमादाः संग्रामाः । ॥ अधिकरणे घञ् । "सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः ॥ । तेषु सधमादेषु रयीणाम् धनानां पतयः स्याम वैश्वानरप्रसादात् स्वामिनो भवेम ॥

तृतीया ॥

वैश्वानरीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।

1 S' अस्मिन् for एषु.

इहेडया सधमादं मदन्तो ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ ३ ॥

वैश्वानरीम्। वर्चसे। आ। रभध्वम्। शुद्धाः। भवन्तः। शुचयः। पावकाः।१

इह। इडया। सधऽमादम्। मदन्तः। ज्योक्। पश्येम। सूर्यम्। उतऽचरन्तम्॥३॥

वैश्वानरीम् वैश्वानराग्निसंबन्धिनीं स्तुतिरूपां वाचम् हे जनाः आ रभध्वम्। किमर्थम्। वर्चसे तेजसे। ब्रह्मवर्चसादितेजःप्राप्तय इत्यर्थः। ततो वैश्वानराग्निप्रसादाद् वयं शुद्धा भवन्तः निष्कल्मषाः सन्तः शुचयः ब्रह्मवर्चसेन दीप्यमानाः कर्महीः पावकाः अन्यस्यापि शुद्धिहेतवः इळेया। अन्ननामैतत्। अन्नेन सधमादं मदन्तः परस्परसाहित्येन मदन्तः माद्यन्तः इह अस्मिन् भूलोके अवस्थाय उच्चरन्तम् उद्गच्छन्तं सूर्यं ज्योक् चिरकालं पश्येम। दीर्घायुषो भवेमेत्यर्थः। ॥ अत्र सधमादम् इति णमुलन्तः। तस्यैव धातोरनुप्रयोगश्च ॥ ॥

चतुर्थी ॥

यत् ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दामग्रीवास्वविमोक्यं यत्।

तत् ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥ १ ॥

यत्। ते। देवी। निःऽऋतिः। आऽबबन्ध। दाम। ग्रीवासु। अविऽमोक्यम्। यत्।

तत्। ते। वि। स्यामि। आयुषे। वर्चसे। बलाय। अदोमदम्। अन्नम्। अद्धि। प्रऽसूतः ॥ १ ॥

देवी द्योतमाना निर्ऋतिः अनिष्टकारिणी देवता हे पुरुष ते तव यद् दाम सर्वेषु अङ्गेषु आबबन्ध पापरूपं पाशम् आबद्धवती तथा ग्रीवासु कण्ठगतासु धमनीषु अविमोक्यम् विमोक्तुं विस्रष्टुम् अशक्यं यद् दाम आबद्धम् ते तव सर्वस्मात् शरीरात् तत् तादृशं दाम पापरूपं निर्ऋतिपाशं वि ष्यामि विमुञ्चामि। ष अन्तकर्मणि। अत्र उपसर्गवशाद् विमोचनम् अर्थः। स्यतिरुपसृष्टो विमोचने इति हि यास्कः [नि० १. १७]। "श्नाभ्यस्तयोः श्यनि" इति ओकारलोपः ॥ । किम-

१ P °मोक्यम्. २ So P P J Cr. K is not sure.

र्थम् । आयुषे चिरकालजीवनाय वर्चसे तेजसे बलाय च । एवं निर्ऋति-पाशाद् विमुक्तः प्रसूतः अस्माभिरनुज्ञातः सन् अदः विप्रकृष्टकाल-व्यापि मदम् मदकरं तृप्तिकरम् अन्नम् अद्धि भुङ्क्ष्व । अद भक्षणे । "हुझल्भ्यो हेर्धिः" ॥

पञ्चमी ॥

नमोस्तु ते निर्ऋते तिग्मतेजोयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥ २ ॥

नमः । अस्तु । ते । निःऽऋते । तिग्मऽतेजः । अयस्मयान् । वि । चृत । बन्धऽपाशान् ।
यमः । मह्यम् । पुनः । इत् । त्वाम् । ददाति । तस्मै । यमाय । नमः । अस्तु । मृत्यवे ॥ २ ॥

हे तिग्मतेजः तीक्ष्णदीप्ते हे निर्ऋते अनिष्टकारिणि देवते ते तुभ्यं नमोस्तु अस्माभिः कृतो नमस्कारो भवतु । तेन प्रीता त्वम् अयस्मयान् अयोमयान् अतिदृढान् बन्धपाशान् बन्धनरज्जुविशेषान् वि चृत विमुञ्च । चृती हिंसाग्रन्थनयोः । तुदादित्वात् शः ॥ हे साधक पुरुष त्वां निर्ऋतिपाशविमोके सति मह्यं यमः पुनरेव ददाति । निर्ऋतिपाशेन पूर्वं मृतप्रायोभूः इदानीं तद्विमोकेन लब्धजीवनत्वाद् यम एव त्वां पुनर्दत्तवान् इत्यर्थः । तस्मै यमाय मृत्यवे प्राणापहारिणे नमोस्तु ॥

षष्ठी ॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्रम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ३ ॥

अयस्मये । द्रुऽपदे । बेधिषे । इह । अभिऽहितः । मृत्युऽभिः । ये । सहस्रम् । यमेन । त्वम् । पितृऽभिः । सम्ऽविदानः । उत्ऽतमम् । नाकम् । अधि । रोहय । इमम् ॥ ३ ॥

---

१ A S P वृता. \ e with B B K K R P J Cs Cr.

अयस्मये अयोविकारे शृङ्खलादौ द्रुपदे दारुनिर्मिते पादबन्धने हे निर्ऋते त्वं यदा बेधिषे पुरुषं यदा बध्नासि तदा इह अस्मिन् लोके स पुरुषः मृत्युभिः मृत्युपाशैः अभिहितः बद्धो भवति । ॥ अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने वर्तते ॥ । मृत्यवो विशेष्यन्ते । ये प्रसिद्धाः ज्वरादिरोगाः रक्षःपिशाचादयश्च [सहस्रम्] सहस्रसंख्याका मरणहेतुभूताः सन्ति । तैर्मृत्युभिरिति संबन्धः ॥ हे निर्ऋते त्वं यमेन त्वदधिष्ठात्रा पितृभिः पितृदेवताभिश्च संविदानां ऐकमत्यं गता उत्तमम् उत्कृष्टतमं नाकम् दुःखसंस्पर्शशून्यं सुखम् इमं पुरुषम् अधि रोहय प्रापय । ॥ संविदान इति । संपूर्वाद् विदेः "समो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम् ॥ ॥

सप्तमी ॥

संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ ४ ॥

समऽसम् । इत् । युवसे । वृषन् । अग्ने । विश्वानि । अर्यः । आ ।
इडः । पदे । सम् । इध्यसे । सः । नः । वसूनि । आ । भर ॥ ४ ॥

हे वृषन् कामानां वर्षितः अग्ने अर्यः स्वामी त्वम् आ समन्ताद् विश्वानि सर्वाणि धनानि संसम् इद् युवसे संयुवस एव सर्वथा सम्यक् प्रापयसि । ॥ "प्रसमुपोदः पादपूरणे" इति समो द्विर्वचनम् । युमिश्रणे इति धातुः । "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" इति निपातितः अर्यशब्दः । "अर्यस्य स्वाम्याख्या चेत्" [फि० १. १८] इति अन्तोदात्तत्वम् ॥ । स त्वम् इडस्पदे इळाया भूम्याः पदे स्थाने उत्तरवेदिलक्षणे । "एतद् वा इळायास्पदं यद् उत्तरवेदीनाभिः" इति ऐतरेयकम् [ऐ० ब्रा० १. २८] । तत्र समिध्यसे संदीप्यसे । ॥ "आतो धा-

1 S' inserts the word अध्यात्मादिषु before ज्वरादि°. But doubtless the word belongs to some other passage, and has been misplaced here through a mistake of the copyist. 2 S' omits च. 3 So S'. The text in S' has also संविदान उ°. 4 S' अर्यः.

तोः" इत्यत्र आत इति योगविभागाद् इडाशब्दस्य आल्लोपः । "इडाया वा" इति विसर्जनीयस्य सत्वम् । स तादृशस्त्वम् । नः अस्मभ्यं वसूनि धनानि आ भर आहर प्रयच्छ ॥

[इति] सप्तमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"सं जानीध्वम्" इति तृचेन सांमनस्यकर्मणि उदकुम्भं सुराकुम्भं वा संपात्य अभिमन्त्र्य सूत्रोक्तप्रकारेण ग्राममध्ये निनयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि त्रिवर्षदेशीयाया वत्सतर्या मांसविशेषम् अनेन तृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य आशयेत् ॥

तथा भक्तम् अनेन संपात्य अभिमन्त्र्य प्राशयेत् ॥

तथा सुरां प्रपोदकं वा अनेन संपात्य अभिमन्त्र्य पाययेत् ॥

सूत्रितं हि । "सहृदयम्[३.३०] तदू षु[५.१.५] सं जानीध्वम्[६.६४] एह यातु[६.७३] सं वः पृच्यन्ताम्"[६.७४] इति प्रक्रम्य "उदकुलिजं संपातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयति । एवं सुराकुलिजं त्रिहायण्या वत्सतर्याः शुक्त्यानि पिशितानि आशयति" इत्यादि [कौ० २.३] ॥

"अव मन्युः" इति तृचेन संग्रामजयकर्माणि कुर्यात् । तानि च आज्यहोमः सक्तुहोमः धनुरिध्मेध्मौ धनुःसमिदाधानम् शरेध्मेध्मौ शरसमिदाधानम् संपातिताभिमन्त्रितधनुःप्रदानं च प्रत्येतव्यानि । एतेषु कर्मसु अनुष्ठितेषु संग्रामे दृष्टमात्रेण शत्रवः पलायन्ते । तद् उक्तं संहिताविधौ । "अदारसृत्[१.२०] स्वस्तिदाः[१.२१] अव मन्युः[६.६५]" इति प्रक्रम्य "आज्यसक्तून् जुहोति" इत्यादि [कौ०२.५] ॥

तथा अस्य तृचस्य अपराजितगणे पाठाद् "अभयैरपराजितैराज्यं जुहुयात्" इत्यादिषु [कौ०१४.३] गणप्रयुक्तो विनियोग उन्नेयः ॥

तत्र प्रथमा ॥

सं जानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

---

1 S' वत्सतर्योः शुक्त्यानि. The last word may read as शुक्कानि. We read वत्सतर्याः शुक्त्यानि with *Kauśika*. Keśava (1, 3) explains शुक्त्यानि by आम्लेन रसेन सिक्तानि. Dârila's MS: आपूतरसे कृत्वा. May he mean आम्लरसे?

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १ ॥

सम्। जानीध्वम्। सम्। पृच्यध्वम्। सम्। वः। मनांसि। जानताम्
देवाः। भागम्। यथा। पूर्वे। सम्ऽजानानाः। उपऽआसते ॥ १ ॥

हे सांमनस्यकामा जनाः यूयं सं जानीध्वम् समानज्ञानयुक्ता भवत। ज्ञानस्य सर्वव्यवहारमूलत्वात् तद्विगानाभावः प्रथमं प्रार्थ्यते। ज्ञा अवबोधने। "संप्रतिभ्याम् अनाध्याने" इति आत्मनेपदम्। "ज्ञाजनोर्जा" इति जा आदेशः। एवं समानज्ञानाः सन्तस्ततः सं पृच्यध्वम् संपृक्ताः संसृष्टकार्या भवत। पृची संपर्के। समानज्ञानत्वसिद्धये तत्करणस्यापि एकविषयतां प्रार्थयते। वः युष्माकं मनांसि ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तानि अन्तःकरणानि सं जानताम् समानम् एकविधम् अर्थं जानन्तु। परस्परविरुद्धज्ञानजनकानि मा भूवन्नित्यर्थः। उक्तम् अर्थं दृष्टान्तेन द्रढयति देवा भागम् इति। यथा खलु पुरा देवा इन्द्रादयः संजानानाः समानकार्यज्ञानाः सन्तः पूर्वे असुरेभ्यः पूर्वभाविनः भागम् यजमानैः परिकल्पितं हविर्भागम् उपासते प्राप्नुवन्ति। अतो यूयमपि तद्वत् परस्परविद्वेषपरिहारेण संजानाना इष्टफलं भजतेति भावः। तच्च देवानां सांमनस्यं तैत्तिरीयके "देवासुराः संयत्ता आसन्। ते देवा मिथो विप्रिया आसन्" [तै० सं० ६. २. २. १] इत्यादिप्रतिपादिताख्यायिकया अवगन्तव्यम् ॥

द्वितीया ॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम् ॥ २ ॥

समानः। मन्त्रः। समऽइतिः। समानी। समानम्। व्रतम्। सह। चित्तम्। एषाम्।
समानेन। वः। हविषा। जुहोमि। समानम्। चेतः। अभिऽसंविशध्वम् ॥ २ ॥

---

1 S' जानतु.

मन्त्रः गुप्तभाषणं कार्याकार्यपर्यालोचनात्मकम् तदपि समानः एकरूपो भवतु । ※मत्रि गुप्तभाषणे । अस्माद् भावे घञ् । "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" इति आदिरुदात्तः※ ॥ तथा समितिः संगतिः कार्येषु प्रवृत्तिः । सापि समानी एकरूपा भवतु । ※"केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्य०" इति ङीप् । उदात्तनिवृत्तिस्वरेण ङीप उदात्तत्वम्※ ॥ तथा व्रतम् । कर्मनामैतत् । कर्मापि समानम् एकरूपं भवतु । चित्तम् अन्तःकरणम् तदपि एषां सह एकविधं भवतु । उक्तस्य फलस्य सिद्धये समानेन साधारणेन ऐक्यजनकेन वः युष्माकं संबन्धिना हविषा आज्यादिना जुहोमि । आज्यम् अग्नौ मन्त्रेण प्रक्षिपामीत्यर्थः । ※"तृतीया च होश्छन्दसि" इति कर्मणि तृतीया※ । यस्माद् एवं तस्मात् समानम् एकरूपं चेतः चित्तम् अभिसंविशध्वम् आभिमुख्येन संप्राप्नुत ॥

तृतीया ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ३ ॥

समानी । वः । आऽकूतिः । समाना । हृदयानि । वः ।
समानम् । अस्तु । वः । मनः । यथा । वः । सुऽसह । असति ॥ ३ ॥

हे सांमनस्यकामाः वः युष्माकम् आकूतिः संकल्पः समानी एकरूपा भवतु ॥ तथा वः युष्मदीयानि हृदयानि संकल्पजनकानि हृत्पुण्डरीकमध्यवर्तीनि अन्तःकरणानि समाना समानानि एकरूपाणि भवन्तु । ※"शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः※ ॥ तथा वः युष्माकं मनः एतत्संज्ञकं सुखाद्यापरोक्ष्यजनकम् इन्द्रियं समानम् एकरूपम् अस्तु । यथा येन प्रकारेण वः युष्माकं सर्वं कार्यं सुष्ठु सह असति भवति । तथा सांमनस्यं करोमीत्यर्थः । ※"बहुलं छन्दसि." इति अस्तेः परस्य शपो लुगभावः※ ॥

1 S' सुख्याद्यापरा°.

## चतुर्थी ॥

अव॑ मन्युरवायतावं॑ बाहू॒ मनो॑युजा ।
परा॑शर॒ त्वं तेषां॑ परा॑ञ्चं शुष्मम॑र्दयाधा॑ नो र॒यिमा कृ॑धि ॥ १ ॥

अव॑ । म॒न्युः । अव॑ । आऽय॑ता । अव॑ । बा॒हू इति॑ । मन॒ऽयु॑जा । परा॑ऽशर । त्वम् । तेषा॑म् । परा॑ञ्चम् । शुष्म॑म् । अ॒र्द॒य॒ । अध॑ । नः॒ । र॒यिम् । आ । कृ॒धि॒ ॥ १ ॥

शत्रुसंबन्धी मन्युः क्रोधः । "अव मन्युं तनोमि ते" [६. ४२. २] इति अन्यत्राम्नानात् तत इति सं[बध्यते] । अवततः शत्रुपातितस्तिरस्कृतो विनष्टो भवतु ॥ तथा आयता आयतानि आयम्यमानानि धनुःप्रभृतीनि आयुधानि अवततानि स्वस्वकार्यासमर्थानि भवन्तु । आङ्पूर्वाद् यमेः कर्मणि निष्ठा । "अनुदात्तोपदेश०" इति अनुनासिकलोपः । "शे-श्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः ॥ तथा बाहू शत्रुसंबन्धिनौ मनोयुजा मनोयुजौ मनःसहितौ अव अवाचीनौ आयुधोद्यमनाशक्तौ । भवताम इत्यर्थः । हे पराशर परागत्य शृणाति हिनस्ति शत्रून् इति पराशर इन्द्रः । "इन्द्रो वोद्य पराशरीत्" [६६. २] इत्य[त्र] समा-म्नानात् । °पराशर इति निगमो भवतीति [नि० ६. ३०] यास्कवचना-च्च । शृ हिंसायाम् । अस्मात् पचाद्यच् । हे तादृश । त्वं तेषां शत्रूणां शुष्मम् । बलनामैतत् । शोषकं बलं पराञ्चम् पराङ्मु-खम् अस्मदनभिमुखं यथा भवति तथा अर्दय बाधस्व । अर्द हिंसायाम् ॥ अथ अनन्तरं रयिम् धनं शत्रूणां स्वभूतं नः अ-स्माकम् आ कृधि आभिमुख्येन कुरु । प्रयच्छेत्यर्थः । करोतेरु-त्तरस्य विकरणस्य "बहुलं छन्दसि" इति लुक् । "श्रुशृणुपृकृवृभ्यः०" इति हेर्धिरादेशः ॥

1 S' अवतः. 2 S' अवमतानि. 3 S' शृणोति. 4 S' is confused here, transposing a part of one sentence to another. Thus: इंद्रो वोद्य पराशरीदित्यसमाम्नानात् शृ हिंसायां अस्मात् पचाद्यच् हे तादृशेशर इति निगमो भवतीति यास्कवचनाच्च त्वं तेषाम् &c.

पञ्चमी ॥

निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तं यं देवाः शरुमस्यथ ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ॥ २ ॥

निःऽहस्तेभ्यः । नैःऽहस्तम् । यम् । देवाः । शरुम् । अस्यथ ।
वृश्चामि । शत्रूणाम् । बाहून् । अनेन । हविषा । अहम् ॥ २ ॥

हे देवाः निर्हस्तेभ्यः निर्गता हस्ता येभ्यस्ते निर्हस्ताः । निर्गतहस्तसामर्थ्या इत्यर्थः । ※तादर्थ्ये चतुर्थी※ । असुराणां निर्हस्तत्वप्राप्तय इत्यर्थः । नैर्हस्तम् निर्हस्तत्वप्रापकं यं शरुम् हिंसकं बाणाद्यायुधम् अस्यथ क्षिपथ । ※शृ हिंसायाम् । शृस्वृस्निहीत्यादिना [उ० १. १०] उप्रत्ययः※ । अनेन शरादिरूपेण हविषा हूयमानेन देवसंबन्धिनैव आयुधेन शत्रूणां बाहून् आयुधग्रहणार्थान् अहं वृश्चामि छिनद्मि । ※ओव्रश्चू छेदने । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम※ ॥

॥

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः ।
जयन्तु सत्वानो मम स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना ॥ ३ ॥

इन्द्रः । चकार । प्रथमम् । नैःऽहस्तम् । असुरेभ्यः ।
जयन्तु । सत्वानः । मम । स्थिरेण । इन्द्रेण । मेदिना ॥ ३ ॥

इन्द्रः देवानाम् अधिपतिः प्रथमम् पूर्वम् असुरेभ्यः शत्रुभ्यो नैर्हस्तम् निर्हस्तत्वं हस्तसामर्थ्यवैकल्यं चकार कृतवान् । तादृशेन इन्द्रेण स्थिरेण युद्धकर्मणि दृढेन मेदिना स्निग्धेन सहायभूतेन मम मदीयाः सत्वानः सादयन्ति विशरणं प्रापयन्तीति योद्धृजनाः सत्वानः । ※सदेरन्तर्भावितण्यर्थात् क्वनिप्※ । जयन्तु शत्रून् पराजितान् कुर्वन्तु । ※मेदिनेति । ञिमिदा स्नेहने । "शमित्यष्टाभ्यः०" इति घिनुण् प्रत्ययः अ-

१ P नैःऽहस्त.

1 S' has the words योद्धृ &c. up to क्वनिप् in the preface to the following hymn, and not here.

स्मादपि द्रष्टव्यः । यद्वा "नन्दिग्रहिपचादिभ्यः०" इति ग्रह्यादेराकृतिगणत्वात् णिनिः ॥

इति सप्तमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"निर्हस्तः" इति तृचस्य "अव मन्युः"[६. ६५] इति तृचवत् संग्रामजयकर्मणि विनियोगो द्रष्टव्यः । सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम् ॥

"परि वर्त्मानि" इति तृचस्य "निर्हस्तः" [६. ६६] इति तृचवत् संग्रामजयकर्मणि विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा अनेन तृचेन परसेनाया विद्वेषणत्रासनकामो राजा सेनां त्रिः परिगच्छेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन संपातिताभिमन्त्रितसोममणिं चर्मवेष्टितं कृत्वा राज्ञे बध्नीयात् । सूत्रितं हि । "परि वर्त्मानि[६. ६७] "इन्द्रो जयाति[६. ९८] इति राजा त्रिः सेनां परियाति । उक्तः पूर्वस्य "सोमांशुः" इति [कौ० २. ७] ॥

अनयोस्तृचयोः अपराजितगणे पाठाद् "अभयैरपराजितैराज्यं जुहुयात्" [कौ० १४. ३] इत्यादिषु गणप्रयुक्तो विनियोगोनुसंधेयः ॥

तत्र प्रथमा ॥

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रातैषामघहारो विविद्धः ॥ १ ॥

निःऽहस्तः । शत्रुः । अभिऽदासन् । अस्तु । ये । सेनाभिः । युधम् । आऽयन्ति । अस्मान् ।
सम् । अर्पय । इन्द्र । महता । वधेन । द्रातुं । एषाम् । अघऽहारः । विऽविद्धः ॥ १ ॥

अभिदासन् उपक्षपयन् अस्माकं पीडां कुर्वन् शत्रुः निर्हस्तोस्तु निर्गतहस्तसामर्थ्यो भवतु । शत्रुरिति जातावेकवचनम् । ये शत्रवः सेनाभिः स्वकीयाभिः युधम् योद्धुम् अस्मान् आयन्ति अभिगच्छन्ति

१ B समर्पु°. २ A विविधः. ३ P एषाम्.

हे इन्द्र तान् शत्रून् महता प्रौढेन वधेन हननसाधनेन आयुधेन वज्रेण समर्पय संयोजय । एषां शत्रूणां मध्ये यः शूरो भटः अघहारः अघस्य मरणलक्षणस्य दुःखस्य प्रापयिता असौ विविद्धः विशेषेण ताडितः सन् द्रातु कुत्सितां गतिं प्राप्नोतु । ✕द्रा कुत्सितायां गतौ । अघहार इति । अघशब्दोपपदात् हरतेर्ण्यन्तात् "कर्मण्यण्" इति अण् प्रत्ययः । विविद्ध इति । व्यध ताडने । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् ✕ ॥

द्वितीया ॥

आतन्वाना आयच्छन्तोस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रो वोद्य पराशरीत् ॥ २ ॥

आऽतन्वानाः । आऽयच्छन्तः । अस्यन्तः । ये । च । धावथ ।
निःऽहस्ताः । शत्रवः । स्थन । इन्द्रः । वः । अद्य । परा । अशरीत् ॥ २ ॥

आतन्वानाः धनूंषि आततज्यानि कुर्वाणाः आयच्छन्तः शरसंधानेन धनूंषि आकर्षन्तः अस्यन्तः शरान् क्षिपन्तः धनुःसकाशाद् नुदन्तो ये शत्रवः ये च यूयं धावथ अस्मदभिमुखं शीघ्रं गच्छथ । ✕"पाघ्रा०" इत्यादिना "सर्तेर्वेगितायां गतौ" इति धावादेशः ✕ । ते यूयं शत्रवः निर्हस्ताः निर्वीर्यहस्ताः स्थन भवत । ✕अस्तेर्लोटि "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनादेशः ✕ । अद्य इदानीं वः युष्मान् इन्द्रः पराशरीत् पराहतान् अकार्षीत् । ✕शॄ हिंसायाम् । लुङि रूपम् ✕ ॥

तृतीया ॥

निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ॥ ३ ॥

---

१ K आय°. २ B D Ś C- °त्रव स्थ°. We with A B K K̃ R. ३ B °रीन्. We with A B D K K̃ R Ś P P̃ J V C- Cr. ४ P स्थन. ५ A B D K K̃ R Ś J V C- सन्तु. Cr शत्रवः changed to शत्रवः in the padas. We with B P P̃.

1 S' हे for ये.

निःऽहस्ताः। सन्तु। शत्रवः। अङ्गा। एषाम्। म्लापयामसि।
अथ। एषाम्। इन्द्र। वेदांसि। शतऽशः। वि। भजामहै॥ ३॥

अस्मदीयाः शत्रवः निर्हस्ताः सन्तु भवन्तु। एषां शत्रूणाम् अङ्गा अङ्गानि हस्तपादाद्यवयवान् म्लापयामसि म्लापयामः। क्षीणहर्षान् कुर्मः। ॐ म्लै म्लै हर्षक्षये। णौ आत्वे "अर्तिह्री०" इत्यादिना पुगागमः। "इदन्तो मसिः"[1]॥ अथ अनन्तरम् हे इन्द्र त्वत्प्रसादाद् एषां शत्रूणां वेदांसि। धननामैतत्। धनानि शतशः बहुधा वि भजामहै विभज्य प्राप्नुयाम॥

चतुर्थी॥

परि वर्मांनि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम्॥ १॥

परि। वर्मांनि। सर्वतः। इन्द्रः। पूषा। च। सस्रतुः।
मुह्यन्तु। अद्य। अमूः। सेनाः। अमित्राणाम्। परःऽतराम्॥ १॥

इन्द्रः पूषा च इमौ देवौ सर्वतः सर्वासु दिक्षु वर्मानि संचरणमार्गान् परि सस्रतुः परितो निरुध्य गच्छताम्। ॐ सृ गतौ। अस्मात् छान्दसो लिट्। "असंयोगाल्लिट् कित्" इति किद्वद्भावाद् गुणाभावे यण्॥ अद्य इदानीम् अमूः दूरे दृश्यमाना अमित्राणाम् शत्रूणां सेनाः रथतुरगपदातयः परस्तराम् अतिशयेन मुह्यन्तु। व्यामूढचित्ताः कार्याकार्यज्ञानशून्या भवन्तु। ॐ परःशब्दाद् अतिशयार्थवाचिनः पुनः प्रकर्षविवक्षायां [तरपि] "किमेत्तिङव्ययघात्०" इति आमु प्रत्ययः॥

पञ्चमी॥

मूढा अमित्राश्चरताशीर्षाणं इवाहयः।
तेषां वो अग्निमूढानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम्॥ २॥

मूढाः। अमित्राः। चरत। अशीर्षाणःऽइव। अहयः।
तेषाम्। वः। अग्निऽमूढानाम्। इन्द्रः। हन्तु। वरम्ऽवरम्॥ २॥

[1] So we with all our Vaidikas and MSS.

हे अमित्राः शत्रवः मूढाः जयोपायज्ञानशून्याः चरत युद्धभूमौ संचरत । तत्र दृष्टान्तः । अशीर्षाण इवाहयः । अशिरस्काश्छिन्नशिरसः सर्पाः केवलं चेष्टन्त एव न तु किंचित् कार्यं कर्तुं शक्नुवन्ति तथा भवतेत्यर्थः । तेषां तादृशानाम् अग्निमूढानाम् अस्मदाहुतितृप्तेन अग्निना व्यामोहं प्रापितानां वः युष्माकं मध्ये वरंवरम् श्रेष्ठंश्रेष्ठं नायकम् इन्द्रो देवो हन्तु मारयतु ॥

षष्ठी ॥

ऐषु॑ नह्य॒ वृषा॒जिनै॑ हरि॒णस्या॒ भिये॑ कृधि ।
परा॑ङमित्र॒ एष॑त्वर्वा॒ची गौरुपे॑षतु ॥ ३ ॥

आ । ए॒षु॒ । न॒ह्य॒ । वृषा॑ । अ॒जिन॑म् । ह॒रि॒णस्य॑ । भिय॑म् । कृ॒धि॒ ।
परा॑ङ् । अ॒मित्रः॑ । एष॑तु । अ॒र्वाची॑ । गौः । उप॑ । एष॑तु ॥ ३ ॥

हे इन्द्र वृषा कामानां वर्षिता त्वं हरिणस्य कृष्णमृगस्य अजिनम् त्वचं सोममणिवेष्टनम् एषु अस्मदीयेषु भटेषु आ नह्य आबद्धं कुरु । ततः शत्रूणां भियम् भीतिं कृधि कुरु उत्पादय । अमित्रः शत्रुः पराङ् युद्धपराङ्मुखः सन् एषतु गच्छतु । पलायताम् इत्यर्थः । इष गतौ । ततः शत्रुसंबन्धिनी गौः अर्वाची अस्मदभिमुखा उपेषतु उपगच्छतु । शत्रुसंबन्धि गवादि धनम् अस्मान् प्राप्नोतित्यर्थः ॥

[इति] सप्तमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

"आयमगन्त्सविता क्षुरेण" इति तृचेन गोदानचूडाकरणयोः क्षौरार्थोदकुम्भाभिमन्त्रणं कुर्यात् । अत्र "अदितिः श्मश्रु"[२] इति ऋचा क्षौरार्थम् अभिमन्त्रितोदकेन माणवकस्य शिरः क्लेदयेत् । "येनावपत्" [३] इत्यृचा वपनं कुर्यात् । तद् उक्तं संहिताविधौ "गोदानम्" प्रक्रम्य "आयमगन्त्सविता क्षुरेण[१] इत्युदपात्रम् अनुमन्त्रयते । अदितिः श्मश्रु[२] इत्युन्दति" इत्यादि [कौ० ७. ४] ॥

तथा उपनयनकर्मणि अस्यैव तृचस्य क्षौरार्थोदकाभिमन्त्रणे विनियो-

1 S' उपैषतु.

'गः । तत्रैव कर्मणि "आयमगन्" इति पादेन क्षुरं मार्जयेत् । "उष्णेन वायो" इति पादेन उदकम् अनुमन्त्रयते । "आदित्या रुद्राः" इति पादेन माणवकस्य शिरःक्लेदनं कुर्यात् । "सोमस्य राज्ञः" इति पादेन "येनावपत्" इत्यृचा च वपनं कुर्यात् । सूत्रितं हि । "उपनयनम् आयमगन्निति मन्त्रोक्तं यत् क्षुरेण[८.२.१७] इत्युक्तम्" इत्यादि [कौ० ७. ६] ॥

"गिरावरगराटेषु" इति तृचेन मेधाजननकामः सुप्तोत्थितः मुखं प्रक्षालयेत् । "प्रातरग्निम[३.१६] गिरावरगराटेषु[६.६९] दिवस्पृथिव्याः [९.१] इति संहाय मुखं विमार्ष्टि" इति [कौ०२.१] सूत्रात् ॥

तथा कुमारीवर्चस्यकर्मणि दधि मधु एकत्र कृत्वा अनेन तृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य कुमारीं प्राशयेत् ॥

तथा क्षत्रियवर्चस्यकर्मणि दधिमधुमिश्रम् ओदनम् अनेन तृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य क्षत्रियं प्राशयेत् ॥

तथा वैश्यशूद्रादिवर्चस्यकर्मणि अनेन तृचेन ओदनं संपात्य अभिमन्त्र्य वर्चस्कामं वैश्यादिं प्राशयेत् ॥

सूत्रितं हि । "प्रातरग्निम[३.१६] गिरावरगराटेषु[६.६९] दिव-"स्पृथिव्याः[९.१] इति दधि मध्वाशयति कीलालमिश्रं क्षत्रियं कीलालम् "इतरान्" इति [कौ०२.३] ॥

तथा क्षत्रियादिवर्चस्यकर्मणि स्नातकसिंहव्याघ्रवस्तवृष्णिवृषभराज्ञां सूत्रोक्तानां सप्तानाम् अन्यतमस्य मर्म स्थालीपाके प्रक्षिप्य अनेन तृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य बभ्रीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन जलं संपात्य अभिमन्त्र्य आप्लावयेत् अवसिञ्चेद् वा ॥

तद् उक्तं संहिताविधौ । "प्रातरग्निम[३.१६] गिरावरगराटेषु[६. "६९] दिवस्पृथिव्याः[९.१] इति सप्त मर्माणि स्थालीपाके पृक्तान्यश्ना-"ति । अकुशलं यो ब्राह्मणो लोहितम् अश्नीयाद् इति गार्ग्यः । उक्तो "लोमभणिः । सर्वैराप्लावयति । अवसिञ्चति" इति [कौ०२.४] ॥

तथा उत्सर्जनाख्ये कर्मणि अनेन तृचेन आज्यं हुत्वा रसेषु संपातान्

आनयेत् । सूत्रितं हि । "यशसं मेन्द्रः[६. ५८] गिरावरगराटेषु[६. ६९] यथा सोमः प्रातःसवने"[९. १. ११] इत्यादि [कौ० १४. ३] ॥

तथा अग्निचयने स्वयम् आतृण्णाम् आसिच्यमानां ब्रह्मा अनेन अनुमन्त्रयेत । "पुनन्तु मा[६. १९] गिरावरगराटेषु[६. ६९] यद् गिरिषु [९. १. १८] इति शतातृण्णाम् आसिच्यमानाम्" इति वैतानं सूत्रम् [वै० ५. ३] ॥

स्वर्गौदनब्रह्मौदनयोस्तन्त्रसंनिपाते तण्डुलानाम् अवसेकप्रायश्चित्तार्थं "मयि वर्चो अथो यशः" [६९. ३] इति ऋचं ब्रह्मा यजमानं वाचयेत् । सूत्रितं हि । "स्वर्गब्रह्मौदने तन्त्रसंनिपाते ब्रह्मौदनमितम् उदकम् आसेच- "येद् विभागं यावन्तस्तण्डुलाः स्युर्नावसिञ्चेन्न प्रतिषिञ्चेत् । यद्यवसिञ्चेन्म- "यि वर्चो अथो यश इति ब्रह्मा यजमानं वाचयति" इति [कौ० ८. ९] ॥

तत्र प्रथमा ॥

आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदकेनेहि ।
आदित्या रुद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः ॥१॥

आ । अयम् । अगन् । सविता । क्षुरेण । उष्णेन । वायो इति । उदकेन ।
आ । इहि ।
आदित्याः । रुद्राः । वसवः । उन्दन्तु । सऽचेतसः । सोमस्य । राज्ञः ।
वपत । प्रऽचेतसः ॥ १

अयं नभसि दृश्यमानः सविता सर्वस्य प्रेरको देवः क्षुरेण वपनसाधनेन शस्त्रेण सह आगन् आगमत् आगतवान् । ॠगमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "मो नो धातोः" इति नत्वम् । हे वायो उन्दनार्थम् उष्णेन उदकेन सह त्वमपि एहि आगच्छ । आदित्याः द्वादशसंख्याकाः एकादश रुद्राः अष्टौ वसवः इत्येते देवगणाः सचेतसः समानज्ञानाः सन्तः तेन उदकेन माणवकस्य शिर उन्दन्तु आर्द्रीकुर्वन्तु । ॠउन्दी क्लेदने ॠ । हे परिचारकाः प्रचेतसः प्र-

१ P वायो°.

क्लृप्तज्ञानाः सन्तः। यद्वा प्रचेतसः वरुणस्य सोमस्य राज्ञश्च संबन्धिना क्षुरेण वपत छिन्नान् केशान् वपनेन वर्जयत ॥

द्वितीया ॥

अदितिः श्मश्रु वपतापः उन्दन्तु वर्चसा।
चिकित्सतु प्रजापतिर्दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥ २ ॥

अदितिः। श्मश्रु। वपतु। आपः। उन्दन्तु। वर्चसा।
चिकित्सतु। प्रजाऽपतिः। दीर्घायुऽत्वाय। चक्षसे ॥ २ ॥

अदितिः अदीना देवमाता। सा अस्य पुरुषस्य श्मश्रु वपतु। मुखस्य परितो वर्तमानानि रोमाणि श्मश्रूणि। तानि वपतु वर्जयतु ॥ आपः अब्देवता वर्चसा तेजसा स्वकीयेन उन्दन्तु क्लेदयन्तु ॥ तथा [प्रजापतिः] प्रजानां देवमनुष्यादीनां पतिः स्रष्टा चिकित्सतु भिषज्यतु। अस्मिन् संभवद्रोगादिकम् इति शेषः। ※कित ज्ञाने। "गुन्निज्किद्भ्यः सन्" । "निन्दाक्षमाव्याधिप्रतीकारेषु सन्निष्यते" इति स्मरणात्※। किमर्थम्। दीर्घायुत्वाय। दीर्घम् आयुश्चिरकालजीवनम् अस्य यथा स्याद् इत्येवमर्थम्। चक्षसे दर्शनाय। अविशेषात् सर्वस्य श्रेयसे इति शेषः। ※चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि। "असनयोश्च प्रतिषेधः" इति स्मरणात् ख्याञादेशाभावः※ ॥

तृतीया ॥

येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्।
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्वानयमस्तु प्रजावान् ॥ ३ ॥

येन। अवपत्। सविता। क्षुरेण। सोमस्य। राज्ञः। वरुणस्य। विद्वान्।
तेन। ब्रह्माणः। वपत। इदम्। अस्य। गोऽमान्। अश्वऽवान्। अयम्।
अस्तु। प्रजाऽवान् ॥ ३ ॥

सविता देवः विद्वान् जानन् सोमस्य राज्ञो वरुणस्य च संबन्धिना

१ P स्मश्रु.

येन क्षुरेण अवपत् वपनं कृतवान् । ✕यद्वा कर्मणि षष्ठी✕ । सोमं राजानं वरुणं च येन क्षुरेण अवपद् इत्यर्थः । हे ब्रह्माणः ब्राह्मणाः तेन तादृशेन क्षुरेण अस्य पुरुषस्य इदं केशश्मश्रु वपत । तेन विशिष्ट-वपनसंस्कारेण अयं पुरुषः गोमान् बह्वीभिर्गोभिर्युक्तः अश्ववान् अश्वैर्युक्तः प्रजावान् पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तश्च अस्तु भवतु ॥

चतुर्थी ॥

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥ १

गिरौ । अरगराटेषु । हिरण्ये । गोषु । यत् । यशः ।
सुरायाम् । सिच्यमानायाम् । कीलाले । मधु । तत् । मयि ॥ १ ॥

गिरौ पर्वते हिमवदादौ यद् यशः कीर्तिरस्ति । तथा अरगराटेषु रथचक्रावयवाः कीलका अराः । तान् गिरति आत्मना संश्लेषयतीति अरगरो रथः । तेन अटन्ति संचरन्तीति अरगराटाः रथिनो यशस्विनो राजानः । यद्वा अराः अरयः तान् गच्छन्तीति अरगाः वीरा भटाः तेषां राटाः जयघोषाः । ✕रट परिभाषणे । भावे घञ् । व्युत्पत्त्यनवधारणाद् नावगृह्यते✕ । तेषु अरगराटेषु यद् यशोस्ति हिरण्ये सुवर्णे गोषु वहनदोहनसमर्थेषु च यद् यशोस्ति तन्मयि । भवत्वित्यर्थः । अपि च सिच्यमानायां पात्रेषु आसिच्यमानायां सुरायां कीलाले अन्ने च यद् मधु मदकरं माधुर्योपेतं रसं जनाः प्रशंसन्ति तन्मयि भवतु ॥

पञ्चमी ॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्गं शुभस्पती ।
यथा भगंस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥ २ ॥

अश्विना । सारघेण । मा । मधुना । अङ्गम् । शुभः । पती इति ।
यथा । भगंस्वतीम् । वाचम् । आऽवदानि । जनान् । अनु ॥ २ ॥

हे अश्विना अश्विनौ शुभस्पती शोभमानायाः सूर्यायाः शोभाहेतोरलंकारस्य वा पती भर्तारौ मा मां सारघेण सरघा मधुमक्षिका तत्संपादितेन मधुना अङ्क्तम् अभिषिञ्चतं संयोजयतम् । ※अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणगतिषु । अस्मात् लोण्मध्यमे श्नसोरल्लोपे श्नान्नलोपे च कृते रूपम् ※ । यथा खल्वहं भर्गस्वतीम् दीप्तिमतीं मधुरां वाचं जनान् मनुष्यान् अनुलक्ष्य आवदामिं अभिलक्ष्य उच्चारयामि । तथा मां मधुना सिञ्चतम् इत्यर्थः ॥

मयि॒ वर्चो॑ अथो॒ यशोथो॑ य॒ज्ञस्य॒ यत् पय॑: ।
तन्मयि॑ प्र॒जाप॑तिर्दि॒वि द्यामि॑व दृंहतु ॥ ३ ॥
मयि॑ । वर्चः॑ । अथो॒ इति॑ । यशः॑ । अथो॒ इति॑ । य॒ज्ञस्य॑ । यत् । पयः॑ ।
तत् । मयि॑ । प्र॒जाऽप॑तिः । दि॒वि । द्याम्ऽइ॑व । दृं॒ह॒तु ॥ ३ ॥

मयि साधके यद् वर्चः तेजोस्ति अथो अपि च यद् यशः अन्नं कीर्तिर्वा । अपि च यज्ञस्य क्रियमाणस्य यागस्य यत् पयः सारभूतं फलं तत् सर्वं मयि यजमाने प्रजापतिः प्रजानाम् अधिपतिर्विधाता दृंहतु दृढीकरोतु । तत्र दृष्टान्तः । दिवि अन्तरिक्षे निराधारे स्थाने द्याम् दीप्यमानं ज्योतिर्मण्डलं यथा दृढीकृतवान् तथा दृंहत्वित्यर्थः । ※दृह दृहि वृद्धौ※ ॥

[इति] षष्ठकाण्डे सप्तमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

"यथा मांसम्" इति सूक्तेन गोवत्सयोरन्योन्यविरोधशान्तिरूपे सांमनस्यकर्मणि वत्सं संस्नाप्य गोमूत्रेण अवसिच्य वत्सं त्रिः परिभ्राम्य अभिमन्त्र्य स्तनपानार्थं मुञ्चेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन गोः शिरः कर्णं च अनुमन्त्रयेत ॥

सूत्रितं हि । "यथा मांसम् इति वननम । वत्सं संधाव्य गोमूत्रेणावसिच्य त्रिः परिणीय उपचृतति । शिरः कर्णम् अनुमन्त्रयते" इति [कौ० ५. ५] ॥

"यद् अन्नम्" इति तृचेन दुष्टादुष्टप्रतिग्रहजनितदोषशान्त्यर्थं प्रतिग्राह्यं वस्तु अभिमन्त्र्य गृह्णीयात् । "क इदं कस्मा अदात्[३.२९.७] "कामस्तद् अग्रे[१९.५२] यद् अन्नम्[६.७१] पुनर्मैत्विन्द्रियम्[७. "६९] इति प्रतिगृह्णाति" इति सूत्रात् [कौ० ५.९] ॥

तथा अनेन अग्निकार्ये ब्रह्मचारी भैक्षम् अहरहर्जुहुयात् । "यद् अन्नम् इति तिसृभिर्भैक्षस्य जुहोति" इति [कौ० ७.८] सूत्रात् ॥

दर्शपूर्णमासयोः पुरोडाशभागम् "यद् अन्नम्" इत्यनया ब्रह्मा अश्नीयात् । "यद् अन्नम् इति भागं प्राश्नाति" इति [सूत्रात्] [वै० १.४] ॥

"यथासितः" इति तृचेन वाजीकरणकामः एकशाखार्कमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य अर्कसूत्रेण बध्नीयात् ॥

तत्रैव कर्मणि "यावदङ्गीनम्" इत्यृचा कृष्णचर्ममणिं संपात्य अभिमन्त्र्य कृष्णमृगवालेन बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । "यथासितः[६.७२] इत्येकार्कसूत्रम् आर्कं बध्नाति यावदङ्गीनम्[६.७२.३] इति असितस्तम्भम् असितवालेनेति" [कौ ५.४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यथा॑ मां॒सं यथा॒ सुरा॒ यथा॒क्षा अधि॑देव॒ने ।
यथा॑ पुं॒सो वृ॑ष॒ण्यत॑ स्त्रि॒यां नि॑ह॒न्यते॒ मनः॑ ।
ए॒वा ते॑ अ॒ग्ने॒ मनोधि॑ व॒त्से नि ह॑न्यताम् ॥ १ ॥

यथा॑ । मां॒सम् । यथा॑ । सुरा॑ । यथा॑ । अ॒क्षाः॑ । अधि॑ऽदेव॒ने ।
यथा॑ । पुं॒सः॑ । वृ॒ष॒ण्यतः॑ । स्त्रि॒याम् । नि॒ऽह॒न्यते॑ । मनः॑ ।
ए॒व । ते॒ । अ॒ग्ने॒ । मनः॑ । अधि॑ । व॒त्से । नि । ह॒न्य॒ता॒म् ॥ १ ॥

यथा मांसं पुरुषस्य भोक्तुः प्रेमास्पदम् । यथा च सुरा प्रियतमा । यथा च अक्षाः द्यूतकरणानि अधिदेवने । अधि उपरि दीव्यन्त्यस्मिन् कितवा इति अधिदेवनम् द्यूतस्थानं तत्र प्रियतमाः । यथा च पुंसः पु-

१ A B V °ण्यतः स्त्रि°. We with B D K R S C$_s$.

1 S' omits the words यद् अन्नम्. We with *Kausika*.

रुषस्य वृषण्यतः वृषाणं सेक्तारम् आत्मानम् इच्छतः सुरतार्थिनो मनः मानसं स्त्रियां निहन्यते स्त्रीविषये प्रह्वीभवति। "दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति" इति क्यचि निपातितः। एव एवम् हे अघ्न्ये अहन्तव्ये धेनो ते तव मनः वत्से अधि उपरि नि हन्यताम् प्रह्वीभूतम् अस्तु। अयं वत्सो मांसादिवत् मनसः प्रेमास्पदं भवत्वित्यर्थः॥

द्वितीया॥

यथा हस्ती हस्तिन्याः पदेन पदमुद्युजे।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।
एवा ते अघ्न्ये मनोधि वत्से नि हन्यताम्॥ २॥

यथा। हस्ती। हस्तिन्याः। पदेन। पदम्। उत्ऽयुजे।
यथा। पुंसः। वृषण्यतः। स्त्रियाम्। निऽहन्यते। मनः।
एव। ते। अघ्न्ये। मनः। अधि। वत्से। नि। हन्यताम्॥ २॥

यथा हस्ती गजः पदेन स्वकीयेन पादेन हस्तिन्याः करेण्वाः पदम् पादं प्रेम्णा उद्युजे उन्नमयति। यथा पुंस इत्यादि पूर्ववद् योज्यम। उद्युजे इति। युजिर्योगे। छान्दसो विकरणस्य लुक्। "लोपस्त आत्मने पदे[षु" इति] तलोपः। "हस्ताज्जातौ" इति णिनिः॥

तृतीया॥

यथा प्रधिर्यथोपधिर्यथा नभ्यं प्रधावधि।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।
एवा ते अघ्न्ये मनोधि वत्से नि हन्यताम्॥ ३॥

यथा। प्रऽधिः। यथा। उपऽधिः। यथा। नभ्यम्। प्रऽधौ। अधि।
यथा। पुंसः। वृषण्यतः। स्त्रियाम्। निऽहन्यते। मनः।
एव। ते। अघ्न्ये। मनः। अधि। वत्से। नि। हन्यताम्॥ ३॥

प्रधीयत इति प्रधिः रथचक्रस्य नेमिः। [उपधिः] उप तत्समीपे धी-

यत इत्युपधिः नेमिसंबद्धः अराणां संबन्धको वलयः । ‡ "उपसर्गे घोः किः" इति धाञः किप्रत्ययः ‡ । यथा प्रधिः उपधिना संबध्यते । उपधिश्च यथा प्रधिना । यथा च नभ्यम् नाभये हितं रथचक्रमध्यफलकं प्रधावधि नेमिदेशे संबध्नाति । ‡ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ‡ । यथा उक्तरूपा रथचक्रावयवाः परस्परं दृढसंबन्धाः हे धेनो त्वदीयं मनः वत्से [तथा] दृढसंबन्धम् अस्तु ॥

चतुर्थी ॥

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहमग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ १ ॥

यत् । अन्नम् । अद्मि । बहुऽधा । विऽरूपम् । हिरण्यम् । अश्वम् । उत । गाम् । अजाम् । अविम् ।

यत् । एव । किम् । च । प्रतिऽजग्रह । अहम् । अग्निः । तत् । होता । सुऽहुतम् । कृणोतु ॥ १ ॥

विरूपम् विविधाकारं यद् अन्नं बहुधा बहुप्रकारेण अद्मि भक्षयामि । क्षुत्पीडावशेन भोज्याभोज्यविभागम् अन्तरेण भक्षितवान् अस्मीत्यर्थः । उत अपि च हिरण्यादिकं यदेव किं च किमपि द्रव्यजातं दारिद्र्यवशाद् अहं प्रतिजग्राह प्रतिगृहीतवान् अस्मि । तत् सर्वम् अन्नं हिरण्यादि द्रव्यं च होता होमनिष्पादकः अयम् अग्निः सुहुतम् सुष्ठु हुतं कृणोतु करोतु । यथा मम अन्नदोषः प्रतिग्रहदोषश्च न भवति तथा करोत्वित्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्यग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २ ॥

यत् । मा । हुतम् । अहुतम् । आऽजगाम । दत्तम् । पितृऽभिः । अनुऽमतम् । मनुष्यैः ।

१ A R S P J °नुष्यैः. C °नुष्यैः changed to °नुष्यैः. We with B D K V P K Cp.

यस्मात्। मे। मनः। उत्ऽइव। रारजीति। अग्निः। तत्। होता। सुऽहुतम्। कृणोतु ॥ २ ॥

हुतम् होमसंस्कृतम् अहुतम् तद्विपरीतम् उभयविधं यद् द्रव्यं मा माम् आजगाम प्रतिग्रहादिना प्राप्तम् अभूत्। कीदृशम् इति पुनर्विशिनष्टि। पितृभिः पितृदेवताभिः अस्मभ्यं भोगार्थं दत्तम् वितीर्णं [मनुष्यैः] मनुष्यजातीयैः अनुमतम् अनुज्ञातम्। यस्मात् प्रतिगृहीताद् द्रव्याद्धेतोः मे मदीयं मनः उदिव रारजीतु* हर्षातिशयेन भृशम् उद्दीप्यत इव। ✕राजृ दीप्तौ। अस्माद् यङ्लुगन्तात् लोटि छान्दसम् उपधाह्रस्वत्वम्✕। यद्वा उत्कर्षेण भृशं रागयुक्तम् अभूद् इत्यर्थः। ✕रञ्ज रागे। इत्यस्माद् यङ्लुगन्तात् लोटि रूपम्✕। अग्निष्टद् इत्यादि पूर्ववत् ॥

षष्ठी ॥

यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् ॥ ३ ॥

यत्। अन्नम्। अद्मि। अनृतेन। देवाः। दास्यन्। अदास्यन्। उत। सम्ऽगृणामि।
वैश्वानरस्य। महतः। महिम्ना। शिवम्। मह्यम्। मधुऽमत्। अस्तु। अन्नम् ॥३॥

हे देवाः अनृतेन असत्यवदनेन अन्यदीयम् अपहृत्य यद् अन्नम् अद्मि भक्षयामि। उत्तमर्णाय पुनर्दास्यन् अदास्यन् पुनः प्रदानम् अकरिष्यंश्च संगृणामि दास्यामीति केवलं प्रतिजानामि। ✕संपूर्वो गृणातिः प्रतिज्ञायां वर्तते। गृ शब्दे। प्वादित्वात् ह्रस्वः✕। तत् सर्वम् अन्नं वैश्वानरस्य विश्वनरहितस्य महतः अतिशयितप्रभावस्य देवस्य महिम्ना माहात्म्येन मह्यं शिवम् सुखकरं मधुमत् माधुर्यवद् अस्तु भवतु ॥

सप्तमी ॥

यथासितः प्रथयते वशाँ अनु वपूंषि कृण्वन्नसुरस्य मायया।

१ B वशाँ.

एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु ॥ १ ॥

यथा । असितः । प्रथयते । वशान् । अनु । वपूंषि । कृण्वन् । असुरस्य । मायया ।

एव । ते । शेपः । सहसा । अयम् । अर्कः । अङ्गेन । अङ्गम् । समऽसमकम् । कृणोतु ॥ १ ॥

यथा सितः बद्धः पुरुषः वशान् स्ववशान् आत्मीयान् पुरुषान् अनुलक्ष्य प्रथयते स्वात्मानं प्रसारयति । किं कुर्वन् । असुरस्य क्षेपणुर्देवस्य मायया मायाशक्त्या वपूंषि शरीराणि कृण्वन् कुर्वन् । एव एवम् अयम् अर्कः अर्कवृक्षविकारो मणिः सहसा शीघ्रं ते त्वदीयं शेपः पुंव्यञ्जनलक्षणम् अङ्गम् अङ्गेन तद्व्यतिरिक्तेन हस्तपादादिना सम्यक् समगँम् समानगमनं कृणोतु करोतु । यद्वा स्त्रिया अङ्गेन योनिदेशेन समानगमनम् । उपभोगक्षमं करोतित्यर्थः ॥

अष्टमी ॥

यथा पसस्तायादरं वातेन स्थूलभं कृतम् ।

यावत् परस्वतः पसस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥ २ ॥

यथा । पसः । तायादरम । वातेन । स्थूलभम् । कृतम् ।

यावत् । परस्वतः । पसः । तावत् । ते । वर्धताम् । पसः ॥ २ ॥

तायोदरम् तयोदरः प्राणिविशेषः तत्संबन्धि पसः पुंव्यञ्जनं वातेन वायुना यथा स्थूलभं कृतम् । स्थौल्येन भासमानं क्रियत इत्यर्थः । परस्वतः एतत्संज्ञस्य मृगविशेषस्य पसः पुंव्यञ्जनं यावत् यत्परिमाणविशिष्टं भवति हे साधक ते तव पसः पुंव्यञ्जनं तावत् तत्परिमाणविशिष्टं वर्धताम् ॥

नवमी ॥

यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत् ।

यावदश्वस्य वाजिनस्तावत् ते वर्धतां पसः ॥ ३ ॥

---

१ B पश°. २ So we accentuate with A B B̃ D K K̃ R S̃ P P̃ J V C. Cf. See Sâyana.

यावंत॰अङ्गीनम्। पारस्वतम्। हास्तिनम्। गार्दभम्। च। यत्।
यावत्। अश्वस्य। वाजिनः। तावत्। ते। वर्धताम्। पसः॥ ३॥

अङ्गीनम् अङ्गेभ्यः समुद्भूतं पारस्वतम् परस्वतः संबन्धि प्रजननं यावत् यत्परिमाणविशिष्टं भवति। तथा हास्तिनम् हस्तिसंबन्धि। गार्दभम् गर्दभसंबन्धि च प्रजननं यत् यादृगाकारवद् भवति। अश्वस्य वाजिनः यौवनावस्थस्य वडवासंगमने यावद् भवति ते तव पसः पुंव्यञ्जनं तावत्परिमाणं वर्धताम्। हास्तिनम् इति। हस्तिनशब्दात् "तस्येदम्" इति अण्। "इनण्यनपत्ये" इति प्रकृतिभावः॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्ववेदार्थप्रकाशे षष्ठकाण्डे सप्तमोनुवाकः॥

अष्टमेनुवाके पञ्च सूक्तानि। तत्र "एह यातु वरुणः" इति प्रथमं सूक्तम्। अत्र आद्यस्य तृचस्य "सं वः पृच्यन्ताम्" इति द्वितीयस्य च सांमनस्यकर्मणि "सं जानीध्वम्"[६. ६४] इति तृचोक्तेषु उदकुम्भनिनयनादिषु विनियोगः। सूत्रं च तत्रैवोदाहृतम्॥

तत्र आद्यस्य तृचस्य वास्तोष्पत्यगणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ गणप्रयुक्तो विनियोगोनुसंधेयः। सूत्रितं हि। "इहैव ध्रुवाम्[३. १२] "एह यातु[६. ७३] यमो मृत्युः[६. ९३] सत्यं बृहत्[१२. १] इत्यनु-"वाको वास्तोष्पत्यानि" इति [कौ० १. ८]॥

अत्र "इहैव"[३] इत्यनया ऋचा नवशालाप्रवेशकर्मणि उदपात्रनिनयनानन्तरं यजमानो वाचं विसृजेत्। "यजूंषि यज्ञे[५. २६] इति नवशालायाम्" इति प्रक्रम्य "इहैव स्त[३] इति वाचं विसृजते" इति [कौ० ३. ६] सूत्रितत्वात्॥

तत्र प्रथमा॥

एह यातु॑ वरु॑णः सोमो॑ अ॒ग्निर्बृ॒हस्पति॒र्वसु॑भि॒रेह यातु।
अस्य श्रि॒यमुप॑संया॒त॒ सर्वे॑ उ॒ग्रस्य॑ चे॒तुः संम॑नसः स॒जाताः॥ १॥

१ P यत्॰. २ A समनसः.

आ । इह । यातु । वरुणः । सोमः । अग्निः । बृहस्पतिः । वसुऽभिः । आ । इह । यातु ।

अस्य । श्रियम् । उपऽसंयात । सर्वे । उग्रस्य । चेतुः । समऽमनसः । सऽजाताः ॥ १ ॥

इह अस्मिन् देशे वरुणः सोमः अग्निश्च प्रत्येकम् आ यातु सांमनस्यकरणार्थम् आगच्छतु । बृहस्पतिः बृहतां देवानाम् अधिपतिर्देवः वसुभिः अष्टसंख्याकैर्गणदेवैः सह इह अस्मिन देशे आ यातु आगच्छतु । एते खलु सांमनस्यकारिणो देवाः । तथा च तैत्तिरीयकम् । "अग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः" इति [तै० सं० ६. २. २. १] । हे सजाताः समानजन्मानो बान्धवाः ते सर्वे यूयं संमनसः समानमनस्काः सन्तः उग्रस्य उद्गूर्णबलस्य चेतुः कार्याकार्यविभागं सम्यग्जानानस्य अस्य यजमानस्य श्रियम् संपदम् उपसंयात उपसंप्राप्नुत । उपजीवका भवतेत्यर्थः ॥

द्वितीया ॥

यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।

तान्त्सीवयाग्नि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ २ ॥

यः । वः । शुष्मः । हृदयेषु । अन्तः । आऽकूतिः । या । वः । मनसि । प्रऽविष्टा ।

तान् । सीवयामि । हविषा । घृतेन । मयि । सऽजाताः । रमतिः । वः । अस्तु ॥२॥

हे सजाताः वः युष्माकं हृदयेषु यः शुष्मः शोषकं बलम् अस्ति । तथा वः युष्माकं हृदयमध्यवर्तिनि मनसि अन्तःकरणे या आकूतिः इदं मे स्याद् इदं मे स्याद् इति कल्पना अन्तः प्रविष्टा तां विविधाम् आकूतिं बलं च हूयमानेन घृतेन हविषा सीवयामि परस्परसंबद्धां करोमि । हे सजाताः वः युष्माकं रमतिः रमणम् अनुकूलप्रवृत्तिः मयि मदीये सांमनस्यकामे पुरुषे अस्तु भवतु ॥

---

१ P चेतुः. २ D S C तान्श्री°. B K K R V तां श्री°. A B तान्श्री°. P P J C तान् । श्रीवयामि. Sâyaṇa's text: तां श्री°. We pre-serve तान् from the Vaidikas and MSS., and adopt सीवयामि from Sâyaṇa.

तृतीया ॥

इहैव स्त मापं याताध्यस्मत् पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु ।
वास्तोष्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ ३ ॥

इह । एव । स्त । मा । अप । यात । अधि । अस्मत् । पूषा । परस्तात् । अपथम् । वः । कृणोतु ।
वास्तोः । पतिः । अनु । वः । जोहवीतु । मयि । सऽजाताः । रमतिः । वः । अस्तु ॥ ३ ॥

हे सजाताः इह अस्मदीये गृहे एव स्त भवत अनुरागेण वर्तध्वम् । अध्यस्मत् । अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी । अस्मत्तोधि माप यात अपसरणं मा कुरुत । अस्मत्तः परस्ताद् अन्यत्र प्रातिकूल्येन वर्तमानानां वः युष्माकं पूषा मार्गरक्षको देवः अपथम् अमार्गं कृणोतु करोतु । अपसरणाय मार्गं न ददातित्यर्थः । न पन्थाः अपथम् । "नञस्तत्पुरुषात्" इति समासान्तनिषेधस्य "पथो विभाषा" इति विकल्पनात् "ऋक्पूरब्धूः०" इति अकारः समासान्तः । "अपथं नपुंसकम्" इत्यनुशासनात् नपुंसकत्वम् । वास्तोष्पतिः एतत्संज्ञको गृहाणां पालको देवः वः युष्मान् अनु जोहवीतु अनुसृत्य [पुनः पुन]रस्मदर्थम् आह्वयतु । ह्वयतेर्यङ्लुकि "अभ्यस्तस्य च" इति संप्रसारणम् । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

चतुर्थी ॥

सं वः पृच्यन्तां तन्वः[1] सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वो अजीगमत् ॥ १ ॥

सम् । वः । पृच्यन्ताम् । तन्वः । सम् । मनांसि । सम् । ऊं इति । व्रता ।
सम् । वः[2] अयम् । ब्रह्मणः । पतिः । भगः । सम् । वः । अजीगमत् ॥ १ ॥

हे सांमनस्यकामाः वः युष्माकं तन्वः शरीराणि सं पृच्यन्ताम् पर-

---

१ A B $^{b}$B D तन्वा ३: सं. Cs तन्वा ३ सं. R तन्वा सं. S $^{m}$तन्व ३: सं. We with $^{m}$K K V.
२ So P $^{2}$P J Cp.

स्परानुरागेण संसृज्यन्ताम् । ⁂पृची संपर्के⁂ । तथा मनासि शरीरान्तर्वर्तीनि अन्तःकरणानि संसृज्यन्ताम् । सम् उ । उशब्दः चार्थे । व्रता व्रतानि । कर्मनामैतत् । ⁂"शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः⁂ । कृषिवाणिज्यादीनि कर्माणि च संसृज्यन्ताम् । अपि च ब्रह्मणस्पतिः एतत्संज्ञको वेदराशेः पालयिता अयं देवः वः युष्मान् समजीगमत् संगतमनस्कान् करोतु । तथा भगः एतत्संज्ञो देवः वः युष्मान् समजीगमत् संगतमनस्कान् करोतु । ⁂गमेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम्⁂ ॥

पञ्चमी ॥

संज्ञपनं वो मनसोथो संज्ञपनं हृदः ।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि वः ॥ २ ॥

समऽज्ञपनम् । वः । मनसः । अथो इति । समऽज्ञपनम् । हृदः । अथो इति । भगस्य । यत् । श्रान्तम् । तेन । समऽज्ञपयामि । वः ॥ २ ॥

हे सांमनस्यकामाः वः युष्माकं मनसः ज्ञानसाधनस्य इन्द्रियस्य संज्ञपनम् सम्यग्ज्ञानजननम् । येन कर्मणा भवति तत् कर्म करोमीत्यर्थः । ⁂संजानानान् प्रयुङ्क्ष इत्यस्मिन्नर्थे "हेतुमति च" इति णिच् । ततः पुकि "मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा" इति मित्त्वात् "मितां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् । "नन्दिग्रहिपचादिभ्यः०" इति ल्युप्रत्ययः⁂ । अथो अपि च हृदः हृदयस्य मनसोपि आधारभूतस्य संज्ञपनम् समानज्ञानजननं करोमि ॥ अथो अपि च भगस्य एतत्संज्ञस्य सौभाग्यकरस्य देवस्य यच्छ्रान्तम् श्रमजनितं तपोस्ति । ⁂श्राम्यत्यस्मिन्निति श्रान्तम्⁂ । अधिकरणे क्तः । "यस्य विभाषा" इति इट्प्रतिषेधः । "अनुनासिकस्य क्विझलोः०" इति दीर्घत्वम्⁂ । तेन श्रमजनिततपसा वः युष्मान् सांमनस्यकामान् संज्ञपयामि समानज्ञानान् करोमि ॥

१ P सम् । ज्ञपयामि ।. We with C. and P, the latter of which, however, somewhat inaccurately has सम् । ज्ञपयामि for सम्ऽज्ञपयामि. J once read सम्ऽज्ञपयामि which it has corrected into सैम । ज्ञपयामि.

1 S' समज्ञान°. 2 S °तारण°. 3 S' omits °म्.

षष्ठी ॥

यथादित्या वसुभिः संबभूवुर्मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः।
एवा त्रिणामन्नहृणीयमान इमान् जनान्त्संमनसस्कृधीह ॥ ३ ॥

यथा। आदित्याः। वसुऽभिः। समऽबभूवुः। मरुत्ऽभिः। उग्राः। अहृणीयमानाः।

एव। त्रिऽनामन्। अहृणीयमानः। इमान्। जनान्। समऽमनसः। कृधि। इह ॥ ३ ॥

आदित्याः अदितेः पुत्रा मित्रवरुणादयः यथा येन प्रकारेण वसुभिः अष्टसंख्याकैर्गणदेवैः संबभूवुः समानज्ञाना अभूवन्। यथा च मरुद्भिः एकोनपञ्चाशत्संख्याकैः सह उग्राः उद्गूर्णबला रुद्रा अहृणीयमानाः अक्रुध्यन्तः समानज्ञाना अभूवन्। हृणीयतिः कण्ड्वादिः। अत्र क्रुध्यतिकर्मा। एव एवं हे त्रिणामन् त्रिषु भूम्यन्तरिक्षद्युस्थानेषु पार्थिववैद्युतसूर्यात्मना सर्वेषां नमयितः। यद्वा त्रीणि गार्हपत्यादीनि नामानि यस्य स तथोक्तः। तादृश हे अग्ने अहृणीयमानः अक्रुध्यंस्त्वम् इमान् सांमनस्यकामान् जनान् इह अस्मिन् ग्रामनगरादौ संमनसः समानमनस्कान् परस्परानुरक्तचित्तान् कृधि कुरु। "श्रुशृणुपृकृवृभ्यः०" इति हेर्धिरादेशः ॥

[इति] अष्टमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"निरमुं नुदे" इति तृचेन आभिचारिके तन्त्रे दर्भास्तरणं कुर्यात् ॥
तथा तत्रैव कर्मणि अनेन सूक्तेन अभ्यातानान्ते इङ्गिडं जुहुयात् ॥ [कौ० ६. २] ॥
तस्मिन्नेव तन्त्रे अनेन तृचेन संस्थितहोमान् जुहुयात् ॥
"य एनं परिषीदन्ति" इति चतुर्ऋचेन विजयस्वस्त्ययनकामः खड्गाद्यसाधारणं शस्त्रं संपात्य हस्तेन विमृज्य अभिमन्त्र्य धारयेत् ॥

---

१ A अहृणीय°. २ K त्रिणा°. V त्रिनाम°. ३ A K R S इमां ज°. We with B D K C.

1 S' मित्रावरु°. 2 See Kes'ava on *Kaus'ika* VI. 3. 3 S' °रणशस्त्रं.

तथा रात्रिस्वस्त्ययनकामः एतं चतुर्ऋचं जपित्वा प्रादेशेन मुखं विमाय स्वप्यात् ॥

तथा देशान्तरं जिगमिषुः स्वप्रयोजनसिद्ध्यर्थं सुप्तोत्थित एतं चतुर्ऋचं जपन् त्रीणि पदानि प्रक्रम्य उद्दिष्टं देशं गच्छेत् ॥

तत्रैव कर्मणि भूमौ त्रीन् प्रादेशान् मित्वा गच्छेत् ॥

सूत्रितं हि । "य एनं परिषीदन्नीति यदायुधं दण्डेन व्याख्यातम् । "दिष्ट्या मुखं विमाय संविशति । त्रीणि पदानि प्रमायोत्तिष्ठति तिस्रो "दिष्टीः" इति [कौ० ७. १] ॥

तत्र प्रथमा ॥

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति ।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत् ॥ १ ॥

निः । अमुम् । नुदे । ओकसः । सऽपत्नः । यः । पृतन्यति ।
नैःऽबाध्येन । हविषा । इन्द्रः । एनम् । परा । अशरीत् ॥ १ ॥

अमुं शत्रुम् ओकसः स्वनिवासस्थानाद् निर्नुदे निर्गमयामि । मन्त्रसामर्थ्येन स्वस्थानात् प्रच्यावयामीत्यर्थः । कः पुनरसौ इत्याह । यः सपत्नः शत्रुः पृतन्यति अस्मान् बाधितुं पृतनां सेनाम् आत्मन इच्छति । ※"कण्ड्वादिभ्यो यक्" इति क्यचि पृतनाशब्दस्य अन्तलोपः※ । निर्नोदनप्रकारम् आह नैर्बाध्येनेति । निःशेषेण बाधो निर्बाधः तम् अर्हतीति निर्बाध्यो हन्तव्यः शत्रुः तद्विषये प्रयुज्यमानं हविः नैर्बाध्यम् । ※"तस्येदम्" इति अण्※ । निर्बाधनक्षमेण हविषा आज्यादिना हूयमानेन परितुष्ट इन्द्रः एनं शत्रुं पराशरीत् पराशृणातु । यथा न पुनरावर्तते तथा पराङ्मुखं हिनस्तु इत्यर्थः । ※शॄ हिंसायाम् । अस्मात् "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति प्रार्थनायां लुङ्※ ॥

द्वितीया ॥

परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा ।

१ P J °बाध्येन. We with P Cr.

1 So S' as often.

यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥

परमाम्। तम्। पराऽवतम्। इन्द्रः। नुदतु। वृत्रऽहा।
यतः। न। पुनः। आऽअयति। शश्वतीभ्यः। समाभ्यः ॥ २ ॥

वृत्रहा वृत्रम् असुरं हतवान् इन्द्रः तं शत्रुं परमां परावतम्। परावत् इति दूरनाम। अतिशयितदूरदेशं नुदतु प्रेरयतु। तं दूरदेशं विशिनष्टि। यतः यस्माद् दूरात् प्रणुत्तः शत्रुः शश्वतीभ्यः समाभ्यः बहुसंवत्सरकालादपि न पुनरायति पुनर्नावर्तते। तादृशम् अत्यन्तदूरं [देशं] शत्रुं गमयत्वित्यर्थः। ✕परावतम् इति। "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिः✕ ॥

तृतीया ॥

एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति।
एतु तिस्रोति रोचना यतो न पुनरायति
शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि ॥ ३ ॥

एतु। तिस्रः। पराऽवतः। एतु। पञ्च। जनान्। अति।
एतु। तिस्रः। अति। रोचना। यतः। न। पुनः। आऽअयति।
शश्वतीभ्यः। समाभ्यः। यावत्। सूर्यः। असत्। दिवि ॥ ३ ॥

इन्द्रेण नुन्नः अस्मच्छत्रुः परावतः दूरवर्तिनीः तिस्रो भूमीः अत्येतु अतिक्रम्य गच्छतु। "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" [ऐ०ब्रा०२.१७] इति वाक्यशेषात् "तिस्रो भूमीर्धारयन्" इति [ऋ०२.२७.८] मन्त्रवर्णाच्च तिस्रः परावत इत्युक्तम्। तथा पञ्च जनान्। निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्चजनाः। तान् अत्येतु। मनुष्यसंचारदेशं विहाय दूरं गच्छत्वित्यर्थः। तथा तिस्रः त्रिसंख्याका रोचनाः सूर्यचन्द्राग्नीनां रोचमानाः प्रभा अत्येतु अतिक्रम्य गच्छतु। सूर्यादीनां प्रभा यत्र न सन्ति तं देशं गच्छत्वित्यर्थः। ✕रुच दीप्तौ। "अनुदात्तेतश्च हलादेः"

---

१ BBDKSCs जनां अति. We with AKRV. २ We read this mantra as dvyavasâna with all our Vaidikas and MSS.

तथा रात्रिस्वस्त्ययनकामः एतं चतुर्ऋचं जपित्वा प्रादेशेन मुखं विमाय स्वप्यात् ॥

तथा देशान्तरं जिगमिषुः स्वप्रयोजनसिद्ध्यर्थं सुप्तोत्थित एतं चतुर्ऋचं जपन् त्रीणि पदानि प्रक्रम्य उद्दिष्टं देशं गच्छेत् ॥

तत्रैव कर्मणि भूमौ त्रीन् प्रादेशान् मित्वा गच्छेत् ॥

सूत्रितं हि । "य एनं परिषीदन्तीति यदायुधं दण्डेन व्याख्यातम् । "दिष्ट्या मुखं विमाय संविशति । त्रीणि पदानि प्रमायोत्तिष्ठति तिस्रो "दिष्टीः" इति [कौ० ७. १] ॥

तत्र प्रथमा ॥

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति ।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत् ॥ १ ॥

निः । अमुम् । नुदे । ओकसः । सऽपत्नः । यः । पृतन्यति ।
नैःऽबाध्येन । हविषा । इन्द्रः । एनम् । परा । अशरीत् ॥ १ ॥

अमुं शत्रुम् ओकसः स्वनिवासस्थानाद् निर्नुदे निर्गमयामि । मन्त्रसामर्थ्येन स्वस्थानात् प्रच्यावयामीत्यर्थः । कः पुनरसौ इत्याह । यः सपत्नः शत्रुः पृतन्यति अस्मान् बाधितुं पृतनां सेनाम् आत्मन इच्छति । ※"कण्ड्वादिभ्यो यक्" इति क्यचि पृतनाशब्दस्य अन्तलोपः※ । निर्नोदनप्रकारम् आह नैर्बाध्येनेति । निःशेषेण बाधो निर्बाधः तम् अर्हतीति निर्बाध्यो हन्तव्यः शत्रुः तद्विषये प्रयुज्यमानं हविः नैर्बाध्यम् । ※"तस्येदम्" इति अण्※ । निर्बाधनक्षमेण हविषा आज्यादिना हूयमानेन परितुष्ट इन्द्रः एनं शत्रुं पराशरीत् पराशृणातु । यथा न पुनरावर्तते तथा पराङ्मुखं हिनस्तु इत्यर्थः । ※शॄ हिंसायाम् । अस्मात् "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति प्रार्थनायां लुङ्※ ॥

द्वितीया ॥

परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा ।

१ P J °बाध्येन. We with P C1.

1 So S' as often

यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥

परमाम्। तम्। पराऽवतम्। इन्द्रः। नुदतु। वृत्रऽहा।
यतः। न। पुनः। आऽअयति। शश्वतीभ्यः। समाभ्यः ॥ २ ॥

वृत्रहा वृत्रम् असुरं हतवान् इन्द्रः तं शत्रुं परमां परावतम्। परावत् इति दूरनाम। अतिशयितदूरदेशं नुदतु प्रेरयतु। तं दूरदेशं विशिनष्टि। यतः यस्माद् दूरात् प्रणुत्तः शत्रुः शश्वतीभ्यः समाभ्यः बहुसंवत्सरकालादपि न पुनरायति पुनर्नावर्तते। तादृशम् अत्यन्तदूरं [देशं] शत्रुं गमयत्वित्यर्थः। ※परावतम् इति। "उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे" इति वतिः※ ॥

तृतीया ॥

एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति।
एतु तिस्रोति रोचना यतो न पुनरायति
शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत् सूर्यो असद् दिवि ॥ ३ ॥

एतु। तिस्रः। पराऽवतः। एतु। पञ्च। जनान्। अति।
एतु। तिस्रः। अति। रोचना। यतः। न। पुनः। आऽअयति।
शश्वतीभ्यः। समाभ्यः। यावत्। सूर्यः। असत्। दिवि ॥ ३ ॥

इन्द्रेण नुन्नः अस्मच्छत्रुः परावतः दूरवर्तिनीः तिस्रो भूमीः अत्येतु अतिक्रम्य गच्छतु। "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" [ऐ०ब्रा०२.१७] इति वाक्यशेषात् "तिस्रो भूमीर्धारयन्" इति [ऋ०२.२७.८] मन्त्रवर्णाच्च तिस्रः परावत इत्युक्तम्। तथा पञ्च जनान्। निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्चजनाः। तान् अत्येतु। मनुष्यसंचारदेशं विहाय दूरं गच्छत्वित्यर्थः। तथा तिस्रः त्रिसंख्याका रोचनाः सूर्यचन्द्राग्नीनां रोचमानाः प्रभा अत्येतु अतिक्रम्य गच्छतु। सूर्यादीनां प्रभा यत्र न सन्ति तं देशं गच्छत्वित्यर्थः। ※रुच दीप्तौ। "अनुदात्तेतश्च हलादेः"

---

१ BBDKSCs जनां अति. We with AKRV. २ We read this mantra as dvyavasâna with all our Vaidikas and MSS.

इति युच् ॥ । यतो न पुनरायतीत्यादि व्याख्यातम् । उक्तं कालबहुत्वं विशिनष्टि यावत् सूर्य इति । यावत्कालपर्यन्तं दिवि द्युलोके सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः असत् भवेत् । ॥ अस्तेर्लेटि अडागमः ॥ । तावत्कालपर्यन्तं शत्रुः पुनर्नावर्ततां इत्यर्थः ॥

चतुर्थी ॥

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे ।
संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिरुदेतु हृदयादधि ॥ १ ॥

ये । एनम् । परिऽसीदन्ति । समऽआदधति । चक्षसे ।
सम्ऽप्रेद्धः । अग्निः । जिह्वाभिः । उत् । एतु । हृदयात् । अधि ॥ १ ॥

एनं स्वस्त्ययनकामं ये रक्षःप्रभृतयो हिंसकाः परिषीदन्ति हिंसितुं परित उपविशन्ति ततः चक्षसे हिंसायै समादधति समाहिताः संनद्धा भवन्ति । ॥ नृचक्षा राक्षसः इतिवत् चष्टिरत्र हिंसाकर्मा । तस्माद् असुनि "असनयोश्च" इति ख्याञादेशाभावः ॥ । यद्वा एनम् अग्निं परिचरितुं ये जनाः पर्युपविशन्ति चक्षसे दर्शनाय समादधति इध्मप्रक्षेपेण प्रज्वलयन्ति । तैः संप्रेद्धः प्रकर्षेण संदीपितोग्निः स्वकीयाभिर्जिह्वाभिः सह हृदयादधि अस्मदीयाद्धृदयाद् उदेतु उद्गच्छतु । उत्पद्यतां इत्यर्थः । "अहं त्वद् अस्मि मद् असि त्वम एतत् । ममासि योनिस्तव योनिरस्मि" इति हि निगमः [तै० ब्रा० १.२.१.२०] । यद्वा पर्युपविशतां रक्षःप्रभृतीनां हृदयात् संप्रवृद्धोग्निः उदेतु । तान् प्रदग्धुम् इत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

अग्नेः सांतपनस्याहमायुषे पदमा रभे ।
अङ्गातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः ॥ २ ॥

अग्नेः । सामऽतपनस्य । अहम् । आयुषे । पदम् । आ । रभे ।
अङ्गातिः । यस्य । पश्यति । धूमम् । उत्ऽयन्तम् । आस्यतः ॥ २ ॥

१ P °यतम्.

सांतपनस्य अत्यर्थं तपनं संतपनम् तत्संबन्धिनः अग्नेः पदम् स्थानं तद्वाचिपदात्मकं शब्दम् वा आयुषे जीवनाय अहम् आ रभे उपक्रमे । यस्याग्नेः आस्यतः आस्याद् मुखाद् उद्यन्तम् उद्गच्छन्तं धूमम् अङ्गातिः । अङ्गा प्रत्यक्षम् अतति सततं ध्यानेन प्राप्नोतीति अङ्गातिः एतत्संज्ञो महर्षिः पश्यति साक्षात्करोति । यद्वा यस्याग्नेर्धूमं तपःप्रभावात् स्वस्माद् आस्याद् उद्गच्छन्तं पश्यति तादृशस्याग्नेः पदम् इति संबन्धः ॥

षष्ठी ॥

यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् ।
नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे ॥ ३ ॥

यः । अस्य । समऽइधम् । वेद । क्षत्रियेण । समऽआहिताम् ।
न । अभिऽह्वारे । पदम् । नि । दधाति । सः । मृत्यवे ॥ ३ ॥

क्षत्रियेण क्षत्रजातीयेन विजयकामेन पुंसा समाहिताम् सम्यग् आहितां क्षिप्ताम् अस्य अग्नेः समिधम् संदीपनीम् आहुतिं यः पुरुषो वेद जानाति स वेदिता मृत्यवे मृत्युं गन्तुम् अभिह्वारे अभितः कुटिले मृत्युप्राप्तिनिमित्ते गजव्याघ्रादिभूयिष्ठे स्थाने पदं न नि दधाति न निक्षिपति । इत्थं वेदितुर्मरणशङ्कापि नैवोदेतीत्यर्थः ॥

सप्तमी ॥

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति ।
अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान्नाम गृह्णात्यायुषे ॥ ४ ॥

न । एनम् । घ्नन्ति । परिऽआयिनः । न । सन्नान् । अव । गच्छति ।
अग्नेः । यः । क्षत्रियः । विद्वान् । नाम । गृह्णाति । आयुषे ॥ ४ ॥

एनं स्वस्त्ययनकामं पर्यायिणः परित आगन्तारः शत्रवो न घ्नन्ति न हिंसन्ति । [सन्नान्] समीपस्थानपि तान् अयं नावगच्छति नावबुध्यते ।

---

१ B[h] K R S[m] सन्नां अव. We with A D K V C[s].

1 S' राचव्या° for गजव्या°.

अस्य ज्ञानविषयेपि शत्रवो नावस्थातुं शक्नुवन्तीत्यर्थः । कः पुनरसौ इत्याह । यः क्षत्रियः विद्वान् उक्तप्रकारेण माहात्म्यं जानन् अग्नेर्नाम स्तावकं नामधेयम् आयुषे चिरकालजीवनाय गृह्णाति उच्चारयति । नैवैनं घ्नन्तीति संबन्धः ॥

[इति] अष्टमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"अस्याद् द्यौः" इति तृचेन पलायनशीलायाः स्त्रिया निरोधनकर्मणि रज्जुवेष्टनम् अभिमन्त्र्य मध्यमस्थूणायां बध्नीयात् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि स्त्रीखट्वायाः पादम् अनेन तृचेन अभिमन्त्र्य उपले बध्नीयात् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन तृचेन तिलान् जुहुयात् ॥

सूत्रितं हि । "अस्याद् द्यौरिति निवेष्टनम् । आवेष्टनेन वंशाग्रम् अवबध्य मध्यमायां बध्नाति" इत्यादि [कौ० ४. १२] ॥

"तेन भूतेन" इति तृचेन विवाहे आज्यं हुत्वा वरवध्वोर्मूर्ध्नि संपातान् आनयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि तेनैव तृचेन रसान् स्थालीपाकं च संपात्य अभिमन्त्र्य भोजनसमये जायापती प्राशयेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन तृचेन आज्यमिश्रैर्यवैः अञ्जलिं परिपूर्य जुहुयात् ॥

सूत्रितं हि विवाहप्रकरणे । "तेन भूतेन[६. ७८] तुभ्यम् अग्रे[१४. २] शुम्भनी"[७. ११७] इति प्रक्रम्य "मूर्ध्नोः संपातान् आनयति । "तेन भूतेन समशनं रसान् आशयति स्थालीपाकं च । यवानाम् आ-"ज्यमिश्राणां पूर्णाहुतिं जुहोति" इति [कौ० १०. ४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अस्याद् द्यौरस्यात् पृथिव्यस्याद् विश्वमिदं जगत् ।
आस्थाने पर्वता अस्यु स्थाव्यश्वाँ अतिष्ठिपम् ॥ १ ॥

---

१ B B D K K R S C- अस्यः स्था°. We with A V. २ D C- °स्थ्यश्वां अति°.

1 S' निवेष्टनमावेष्टनेन वंशाग्रमिव मध्यमायां. 2 S' सममसनं रसानानयति for समशनं रसान् आशयति which we with *Kau. sû.*

अस्थात्। द्यौः। अस्थात्। पृथिवी। अस्थात्। विश्वम्। इदम्। जगत्।
आऽस्थाने। पर्वताः। अस्थुः। स्थाम्नि। अश्वान्। अतिष्ठिपम्॥ १॥

नियन्तुरीश्वरस्य आज्ञया यथा द्यौरस्थात् अप्रचलिता स्वस्थाने तिष्ठति। पृथिव्यपि यथा अस्थात् निश्चलं तिष्ठति। तयोर्द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमानं विश्वम् सर्वम् इदं जगत् स्वे स्वे स्थाने अस्थात् तिष्ठति। पर्वता मेरुमन्दरादयोपि आस्थाने ईश्वरेण कल्पिते स्थाने अस्थुः तिष्ठन्ति। एवमेव हे योषित् स्थाम्नि। तिष्ठत्यस्मिन् गृहं सर्वम् इति स्थामा स्थूणा। ‡"आतो मनिन्०" इति मनिन् प्रत्ययः‡। तत्र त्वाम् अतिष्ठिपम् बन्धनेन स्थापयामि। अश्वान् इति लुप्तोपमम्। यथा दुष्टान् अश्वान् सादिनो रज्जुभिर्बध्नन्ति तद्वत्। यद्वा स्थाम्नि स्थाने गृहे अश्वानिव त्वाम् अनेन कर्मणा स्थापयामि। ‡तिष्ठतेर्ण्यन्ताच्छान्दसे लुङि चङि "तिष्ठतेरित्" इति इत्त्वम्‡॥

द्वितीया॥

य उदानट् परायणं य उदान्यायनम्।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे॥ २॥

यः। उत्ऽआनट्। पराऽअयनम्। यः। उत्ऽआनट्। निऽअयनम्।
आऽवर्तनम्। निऽवर्तनम्। यः। गोपाः। अपि। तम्। हुवे॥ २॥

यो देवः परायणम् पराङ्मुखगमनम् उदानट् उत्कर्षेण व्याप्नोति। तथा न्ययनम् नितरां नीचीनं वा गमनं यो देवः उदानट् उत्कर्षेण व्याप्नोति। ‡नशतिर्व्याप्तिकर्मा। अस्मात् छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्। "छन्दस्यपि दृश्यते" इति आडागमः। षत्वष्टुत्वे‡। यश्च देवः गोपाः गोपायिता पलायमानानाम् आवर्तनम् आगमनं निवर्तनम् गतिप्रतिरोधं च कर्तुं शक्नोति। अपिः संभावनायाम्। इत्थं संभाव्यमानं तं देवं हुवे आह्वयामि। ‡"बहुलं छन्दसि" इति ह्वयतेः संप्रसारणम्‡॥

१ A अपि. २ C॰ °अयन° changed to °आयन°.

तृतीया ॥

जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः ।
सहस्रं त उपावृतस्ताभिर्नः पुनरा कृधि ॥ ३ ॥

जातऽवेदः । नि । वर्तय । शतम् । ते । सन्तु । आऽवृतः ।
सहस्रम् । ते । उपऽआवृतः । ताभिः । नः । पुनः । आ । कृधि ॥ ३ ॥

हे जातवेदः जातानां वेदितः अग्ने पलायनशीलाम् इमां स्त्रियं निवर्तय पलायनात् प्रत्यावय । गृहे स्थापयेत्यर्थः । ते तव आवृतः आवर्तनोपायाः शतम् शतसंख्याकाः अस्मिन् विषये सन्तु भवन्तु । तथा सहस्रम् सहस्रसंख्याकाः ते त्वदीया उपावृतः समीपदेशप्राप्त्युपायाः सन्तु भवन्तु । ताभिरावृद्भिः उपावृद्भिश्च नः अस्माकम् इमां स्त्रियं पुनरा कृधि अभिमुखीं कुरु ॥

चतुर्थी ॥

तेन भूतेन हविषायमा प्यायतां पुनः ।
जायां यामस्मा आवाक्षुस्तां रसेनाभि वर्धताम् ॥ १ ॥

तेन । भूतेन । हविषा । अयम् । आ । प्यायताम् । पुनः ।
जायाम् । याम् । अस्मै । आऽअवाक्षुः । ताम् । रसेन । अभि । वर्धताम् ॥ १ ॥

तेन प्रसिद्धेन भूतेन समृद्धिकरेण हूयमानेन हविषा अयं पतिः पुनरा प्यायताम् । पुनःपुनः प्रजापश्वादिभिः समृद्धो भवतु । अस्मै पत्ये यां स्त्रियं जायाम् आवाक्षुः जायात्वेन समीपम् आनयिषुः विवाहकर्तारः पितृमात्रादयः । वह प्रापणे । लुङि सिचि "एकाच उपदेशेनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः । तां जायां रसेन दधिमधुघृतादिना अभि वर्धताम् अयं हूयमानोग्निरभिवर्धयतु । "छन्दस्युभयथा" इति शप आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ॥

पञ्चमी ॥

अभि वर्धतां पयसाभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।

रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥ २ ॥

अभि। वर्धताम्। पयसा। अभि। राष्ट्रेण। वर्धताम्।
रय्या। सहस्रऽवर्चसा। इमौ। स्ताम्। अनुपऽक्षितौ ॥ २ ॥

पूर्वमन्त्रोक्त एवार्थः अनया विव्रियते। अयं वरो वधूश्च पयसा क्षीरेण अभि वर्धताम्। गोभिः समृध्यताम् इत्यर्थः ॥ तथा राष्ट्रेण अभि वर्धताम्। ग्रामादिसमृद्धिर्भवत्वित्यर्थः ॥ सहस्रवर्चसा अपरिमिततेजसा रय्या धनेन इमौ जायापती अनुपक्षितौ अनुपक्षीणौ संपूर्णकामौ स्ताम् भवताम् ॥ ※अस्तेर्लोटि तसस्तामादेशे "श्नसोरल्लोपः" इति अकारलोपः※ ॥

षष्ठी ॥

त्वष्टा जायामजनयत् त्वष्टास्यै त्वां पतिम्।
त्वष्टा सहस्रमायूंषि दीर्घमायुः कृणोतु वाम् ॥ ३ ॥

त्वष्टा। जायाम्। अजनयत्। त्वष्टा। अस्यै। त्वाम्। पतिम्।
त्वष्टा। सहस्रम्। आयूंषि। दीर्घम्। आयुः। कृणोतु। वाम् ॥ ३ ॥

त्वष्टा तनूकर्ता शिल्पकारी एतत्संज्ञो देवः जायाम् स्त्रियम् अजनयत् उदपादयत्। जायतेस्याम् अपत्यरूपेण पतिरिति जाया। श्रूयते हि। "तज्जाया जाया भवति यद् अस्यां जायते पुनः" इति [ऐ० ब्रा० ७. १३]। ईदृक्सामर्थ्योपेतं स्त्रीजन्म कृतवान् इत्यर्थः। हे वर अस्यै अस्या जायायास्त्वां पतिम् भर्तारं त्वष्टैव अजनयत्। स्त्रीपुंससृष्टेस्त्वष्टैव कर्तेत्यर्थः। श्रूयते हि तैत्तिरीयकें। "त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां प्रजनयिता" इति [तै० सं० २. १. ८. ४]। यस्माद् एवं तस्मात् हे जायापती वां युवयोः त्वष्टा देवः सहस्रसंवत्सरपरिमितानि आयूंषि एवमात्मकं दीर्घम् आयुः कृणोतु करोतु। ※कृवि हिंसाकरणयोश्च। "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः। "युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः०" इति युष्मदो

१ So B B$^{p}$ B$^{h}$ D K K$^{m}$ R S$^{m}$ P P J V Cr. Only A has स्ताम°: Cs स्तामनु° corrected into स्तामनुं°. २ D S$^{m}$ Cs °मायुष्कृणो°. We with A B B$^{h}$ K K$^{m}$ R V.

वाम् आदेशः । स च "अनुदात्तं सर्वम् अपादादौ" इत्यनुवृत्तेरनुदात्तः ॥

[इति] अष्टमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

"अयं नो नभसस्पतिः" इति तृचेन धान्यस्फातिकामः अश्मानं संप्रोक्ष्य अभिमन्त्र्य कुसूलादिधान्यनिधानस्थानेषु निधाय तस्योपरि अन्वृचं तिस्रो धान्यमुष्टीर्निदध्यात् । सूत्रितं हि । "अयं नो नभसस्पतिरिति "पत्येऽश्मानं संप्रोक्ष्य अन्वृचं काशीन् ओप्य आवापयति" इति [कौ० ३. ४] ॥

"अन्तरिक्षेण पतति" इति तृचेन काककपोतश्येनादिपक्षिहतम् अङ्गं श्वपदस्थानमृत्तिकाम् अभिमन्त्र्य प्रलिम्पेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि शुनोङ्गस्था मक्षिका अनेन अभिमन्त्र्य अग्नौ प्रक्षिप्य तथाविधम् अङ्गं धूपयेत् ॥

"अन्तरिक्षेण [इति] पक्षहतम् अङ्गं मन्त्रोक्तमृत्तिकया । कीटेन धूपयति" इति सूत्रात् [कौ० ४. ७] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अयं नो नभसस्पतिः संस्फानो अभि रक्षतु ।
असमातिं गृहेषु नः ॥ १ ॥

अयम् । नः । नभसः । पतिः । समऽस्फानः । अभि । रक्षतु ।
असमातिम् । गृहेषु । नः ॥ १ ॥

अयं परिदृश्यमानोग्निः नभसः द्युलोकस्य पतिः हविःप्रदानादिना पालयिता । यद्वा नभ इति आदित्यनाम । अग्निस्तस्यापि आहुतिद्वारा पालयिता । "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते" इति स्मृतेः [म० स्मृ० ३. ७६] । ईदृशोग्निः संस्फानः धान्यराशेर्वर्धयिता सन् नः अस्मान् अभि रक्षतु । तथा नः अस्माकं गृहेषु असमातिम् । मा माने इत्यस्माद् औणादिकस्तिप्रत्ययः । मातिर्मानं परिच्छेदस्तेन

1 So S'. *Kausika*: °पक्षहतं मन्त्रोक्तं चङ्गमया &c. Sâyana's version is based upon Kes'ava's explanation

सह वर्तत इति समातिः तद्वैपरीत्यम् असमातिः। कुसूलस्थानां धान्याना परिच्छेदराहित्यं करोतु इत्यर्थः। अस्य तृचस्य क्रमाद् अग्निवाय्वादित्यपरत्वं तैत्तिरीयब्राह्मणाद् अवगन्तव्यम्। तत्र हि एवम् आम्नायते। "अ- "यं नो नभसा पुर इत्याह। अग्निर्वै नभसा पुरः। अग्निमेव तद् आह "एतन्मे गोपायेति। स त्वं नो नभसस्पत इत्याह। वायुर्वै नभसस्पतिः। "वायुमेव तद् आह एतन्मे गोपायेति। देव संस्फानेत्याह। असौ वा "आदित्यो देवः संस्फानः। आदित्यमेव तद् आह एतन्मे गोपायेति" इति [तै० सं० ३. ३. ८. ६] ॥

द्वितीया ॥

त्वं नो॑ नभसस्पत॒ ऊर्जं॑ गृहे॒षु धारय।
आ पु॒ष्टमे॒त्वा व॑सु॒ ॥ २ ॥

त्वम्। नः। नभसः। पते। ऊर्जम्। गृहेषु। धारय।
आ। पुष्टम्। एतु। आ। वसु ॥ २ ॥

हे नभसस्पते अन्तरिक्षस्य पालयितर्वायो त्वं नः अस्माकं गृहेषु ऊर्जम् बलकरं रसवद् अन्नं धारय स्थापय ॥ तथा पुष्टम् प्रजापश्वादिकम् ऐतु आगच्छतु। वसु धनं च ऐतु आगच्छतु ॥

तृतीया ॥

देव॑ संस्फान सहस्रापो॒षस्ये॑शिषे।
तस्य॑ नो रास्व॒ तस्य॑ नो धेहि॒ तस्य॑ ते भक्तिवांसः॒ स्याम ॥ ३ ॥

देव। सम्ऽस्फान। सहस्रऽपोषस्य। ईशिषे।
तस्य। नः। रास्व। तस्य। नः। धेहि। तस्य। ते। भक्तिऽवांसः। स्याम ॥३॥

हे देव दानगदिगुणयुक्त हे संस्फान प्रवृद्ध एवंभूत हे आदित्य सहस्रपोषस्य सहस्रसंख्याकानां प्रजानां पोषकस्य बहुलस्य धनस्य त्वम् ईशिषे ईश्वरो भवसि। ईश ऐश्वर्ये। अदादित्वात् शपो लुक्। "ईशः से" इति इडागमः। "अधीगर्थदयेशाम्" इति कर्मणि ष-

॥ । तस्य तथाविधस्य धनस्य । ॥ "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॥ । तथाविधं धनं नः अस्मभ्यं रास्व प्रयच्छ । ॥रा दाने॥ । यद्वा भागपदाध्याहारेण योज्यम् ॥ तथा तस्य धनस्य भागं नः अस्माकं धेहि भोगार्थं धारय पोषय वा । ते त्वदीयस्य तस्य धनस्य भक्तिवांसः भागवन्तस्त्वत्प्रसादात् स्याम भवेम । ॥भक्तिशब्दात् "छन्दसीवनिपौ" इति मत्वर्थीयो वनिप् । सकारोपजनश्छान्दसः॥ ॥

चतुर्थी ॥

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा भूतावचाकशत् ।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥ १ ॥

अन्तरिक्षेण । पतति । विश्वा । भूता । अवऽचाकशत् ।
शुनः । दिव्यस्य । यत् । महः । तेन । ते । हविषा । विधेम ॥ १ ॥

अन्तरिक्षेण आकाशमार्गेण काककपोतादिः पक्षी पतति पुरुषस्य अङ्गे निपतति । किं कुर्वन् । विश्वा विश्वानि सर्वाणि भूता भूतानि भूतजातानि अवचाकशत् । ॥[अवचाकशत्] पश्यतिकर्मा॥ । जिघत्सया पुनःपुनः पश्यन् । तद्दोषशान्त्यर्थं दिव्यस्य दिवि भवस्य शुनः यत् महः तेजोस्ति तेन हविषा हे अग्ने ते त्वां विधेम परिचरेम । आन्तरिक्षपक्ष्युपघातजं दोषं दिव्यस्य शुनो महसा तुष्टोग्निर्निवर्तयतु इत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

ये त्रयः कालकाञ्जा दिवि देवा इव श्रिताः ।
तान्त्सर्वानह्व ऊतयेस्मा अरिष्टतातये ॥ २ ॥

ये । त्रयः । कालकाञ्जाः । दिवि । देवाःऽइव । श्रिताः ।
तान् । सर्वान् । अह्वे । ऊतये । अस्मै । अरिष्टऽतातये ॥ २ ॥

कालकाञ्जाख्या ये त्रयः असुराः सत्कर्मवशाद् दिवि देवा इव श्रिताः

१ P पतति. We with P J Cp.

1 S' आंतरिक्ष्य°.

आश्रिता वर्तन्ते। तथा च तैत्तिरीयकम्। "कालकञ्जा वै नामासुरा आसन्। ते सुवर्गाय लोकायाग्निम् अचिन्वत" इति प्रक्रम्य "स इन्द्र "इष्टकाम् आवृहत्। तेवाकीर्यन्त। येवाकीर्यन्त त ऊर्णनाभयोभवन्। "द्वावुदपताम्। तौ दिव्यौ श्वानावभवताम्" इति [तै० ब्रा० १.१.२.६] तान् तथाविधान् सर्वान् कालकाञ्जान् अह्वे आह्वयामि। ह्वय-तेश्छान्दसे लुङि "लिपिसिचिह्वश्च" इति ह्वेः अङ् आदेशः। किमर्थम् आह्वानम्। ऊतये रक्षणार्थम् अस्मै अस्य पुरुषस्य। षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। अरिष्टतातये। रिष्टं हिंसा तदभावः अरिष्टम्। तस्य करणाय काककपोतादिपक्ष्युपघातजनितदोषशान्तये इत्यर्थः। "शिवशमरिष्टस्य करे" इति अरिष्टशब्दात् करोत्यर्थे तातिल् प्रत्ययः। "लिति" इति प्रत्ययात् पूर्वस्य उदात्तत्वम्॥

अप्सु ते जन्म दिवि ते सधस्थं समुद्रे अन्तर्महिमा ते पृथिव्याम्।
शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेना ते हविषा विधेम ॥ ३ ॥

अप्ऽसु। ते। जन्म। दिवि। ते। सधऽस्थम्। समुद्रे। अन्तः। महिमा। ते। पृथिव्याम्।
शुनः। दिव्यस्य। यत्। महः। तेन। ते। हविषा। विधेम ॥ ३ ॥

हे अग्ने ते तव अप्सु उदकेषु जन्म और्ववैद्युतादिरूपेण दृश्यते। दिवि द्युलोके ते तव आदित्यात्मनः सधस्थम् सहस्थानम्। तथा समुद्रे अन्तः मध्ये पृथिव्यां च ते तव महिमा माहात्म्यं दृश्यते। "दिवस्परि "प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः। तृतीयम् अप्सु नृमणा "अजस्रम्" इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० १०.४५.१]। शुनो दिव्यस्य इत्यादि व्याख्यातम्॥

[इत्यष्टमेनुवाके] चतुर्थं सूक्तम्॥

"यन्नासि" इति तृचेन गर्भाधाने कङ्कणादिकं संपात्य अभिमन्त्र्य स्त्रिया हस्ते बध्नीयात्। "यन्नासीति मन्त्रोक्तं बध्नाति" इति सूत्रात् [कौ० ४.११]॥

"आगच्छतः" इति तृचेन विवाहकामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा । "आगच्छत इति जायाकामः" इति [कौ०७.१०] सूत्रात् ॥

तथा विवाहे अनेन तृचेन आज्यं हुत्वा वरवध्वोर्मूर्ध्नि संपातान् आनयेत् । "आगच्छतः[६.८२] सविता प्रसवानाम्[५.२४] इति मूर्ध्नोः संपातान् आनयति" इति [कौ०१०.४] सूत्रम् ॥

तत्र प्रथमा ॥

यन्ता॑सि॒ यच्छ॑से॒ हस्ता॒वप॒ रक्षा॑ꣳसि सेधसि ।
प्र॒जां धनं॑ च गृह्णा॒नः प॑रिह॒स्तो अ॑भूद॒यम् ॥ १ ॥

यन्ता । असि । यच्छसे । हस्तौ । अप । रक्षांसि । सेधसि ।
प्रऽजाम् । धनम् । च । गृह्णानः । परिऽहस्तः । अभूत् । अयम् ॥ १ ॥

हे अग्ने त्वं यन्तासि गर्भव्यापत्करीणां रक्षःप्रभृतीनां नियामको भवसि । अत एव आत्मीयौ हस्तौ यच्छसे आयतौ प्रसारयसि । ताभ्यां हस्ताभ्यां रक्षांसि गर्भधारणविघातकानि अप सेधसि अपगमयसि । प्रजाम् पुत्रादिरूपां तद्भोगार्थं धनं च कृण्वानः कुर्वाणः अयम् अग्निः परिहस्तः हस्तं परिवेष्ट्य वर्तमानः रक्षाकरः प्रतिसरः अभूत् ॥

द्वितीया ॥

परि॑हस्त॒ वि धा॑रय॒ योनिं॒ गर्भा॑य॒ धात॑वे ।
मर्या॑दे पु॒त्रमा धे॑हि॒ तं त्वमा ग॑मयागमे ॥ २ ॥

परिऽहस्त । वि । धारय । योनिम् । गर्भाय । धातवे ।
मर्यादे । पुत्रम् । आ । धेहि । तम् । त्वम् । आ । गमय । आऽगमे ॥ २ ॥

हे परिहस्त कङ्कणादिरूप प्रतिसर योनिम् गर्भाशयस्थानं वि धारय विवृतम् अवस्थापय । किमर्थम् । गर्भाय धातवे गर्भं धातुं धारयितुम् । "क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्" इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । धात्वस्तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः ॥ । मर्यादे मर्याः मरणधर्माणो मनुष्याः तैरादीयमाने स्वोत्पत्त्यर्थं स्वीक्रियमाणे स्थाने गर्भाशये हे जाये त्वं पुत्रम्

1 S' °नयतेति. We with *Kausika*.

आ धेहि अभिमुखं धारय। यद्वा हे मर्यादे मर्येण मनुष्येण स्वभोगार्थम् आदीयमाने। जायायाः संबोधनम्। हे जाये त्वं पत्युर्मम आगमे आगमने सति तम् अभीष्टं पुत्रम् आ गमय। उत्पादयेत्यर्थः॥

तृतीया॥

यं परिहस्तमबिभरदिदितिः पुत्रकाम्या।
त्वष्टा तमस्या आ बभ्राद् यथा पुत्रं जनादिति॥ ३॥

यम्। परिऽहस्तम्। अबिभः। अदितिः। पुत्रऽकाम्या।
त्वष्टा। तम्। अस्यै। आ। बभ्रात्। यथा। पुत्रम्। जनात्। इति॥ ३॥

अदितिः देवमाता पुत्रकाम्या पुत्रम् आत्मन इच्छन्ती यं परिहस्तम् हस्तं परिवेष्ट्य वर्तमानं कङ्कणादिरूपं प्रतिसरम् अबिभः धृतवती। पुत्रशब्दात् कर्मण इच्छार्थे "काम्यच्च" इति काम्यच्। ["सनाद्यन्ताः०" इति] धातुसंज्ञायां पचाद्यच्। अबिभरिति। डुभृञ् धारणपोषणयोः। अस्मात् लङि "हल्ङ्या०" इत्यादिना तिलोपे "भृञामित्" इति अभ्यासस्य इत्त्वम्। तं तथाविधं प्रतिसरम् अस्यै अस्या जायायाः। षष्ठ्यर्थे चतुर्थी। त्वष्टा आ बभ्रात् आबभ्रातु। यथा येन प्रकारेण एषा पुत्रं जनात् जनयेत् इति अनेन अभिप्रायेण। त्वष्टा बभ्रातु इति संबन्धः। जनात् इति। जनेर्ण्यन्तात् लेटि आडागमः। "छन्दस्युभयथा" इति आर्धधातुकत्वात् णिलोपः॥

चतुर्थी॥

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः।
इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः॥ १॥

आऽगच्छतः। आऽगतस्य। नाम। गृह्णामि। आऽयतः।
इन्द्रस्य। वृत्रऽघ्नः। वन्वे। वासवस्य। शतऽक्रतोः॥ १॥

आगच्छतः वर्तमानागमनस्य आगतस्य अस्मदन्तिकं प्राप्तस्य इन्द्रस्य नाम प्रीतिकरं वृत्रहादिनामधेयं गृह्णामि उच्चारयामि। आयतः नियतोहं

1 S' प्रतीकरं.

विवाहकामः । यद्वा आयत इत्यपि षष्ठी उत्तरवाक्ये संबध्यते । आयतः आगच्छतः वृत्रघ्नः वृत्रं हतवतः इन्द्रस्य वासवस्य वसुभिरुपास्यमानस्य शतक्रतोः । ※वर्णविकारश्छान्दसः※ । शतं क्रतवः कर्माणि वीर्यप्रख्यापकानि वृत्रवधादीनि यस्य स तथोक्तः । ※सर्वत्र कर्मणि षष्ठी※ । एवंविधम् इन्द्रं वन्वे अहम् अभिमतफलं याचामि । ※वनु याचने । तनादित्वाद् उप्रत्ययः※ ॥

पञ्चमी ॥

येन सूर्यां सावित्रीमश्विनोहतुः पथा ।
तेन मामब्रवीद् भगो जायामा वहतादिति ॥ २ ॥

येन । सूर्याम् । सावित्रीम् । अश्विना । ऊहतुः । पथा ।
तेन । माम् । अब्रवीत् । भगः । जायाम् । आ । वहतात् । इति ॥ २ ॥

येन पथा अध्वना अश्विना अश्विनौ एतत्संज्ञौ देवौ सावित्रीम् सवितुः पुत्रीं सूर्याख्यां स्त्रियम् ऊहतुः ऊढवन्तौ । विवाहकर्मणा जायात्वेन लब्धवन्तौ इत्यर्थः । तद्विवाहप्रकारश्च दाशतय्यां "सत्येनोत्तभिता" इति सूक्ते [ऋ० १०. ८५] प्रपञ्चितः । ऐतरेयकब्राह्मणे च "प्रजापतिर्वै सोमाय "राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीम् । तस्यै सर्वे देवा वरा आग- "च्छन् । तस्या एतत् सहस्रं वहतुम् अन्वाकरोत् । तद् एतद् आश्वि- "नम् इत्याचक्षते" इत्यादिना प्रतिपादितः [ऐ० ब्रा० ४. ७] ॥ ※ऊहतुरिति । वह प्रापणे इत्यस्मात् लिटि यजादित्वात्संप्रसारणद्विर्वचनादिकार्ये रूपम् । पथेति । पथिन्शब्दात् तृतीयैकवचने "भस्य टेर्लोपः" इति टिलोपे उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्तेरुदात्तत्वम※ । तेन पथा जायाम् भार्याम् आ वहतात् आवह आनयेति भगो देवः मां विवाहार्थिनं प्रत्यब्रवीत् । विवाहोपायम् उपदिष्टवान इत्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

यस्ते कुशे वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः ।
तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ॥ ३ ॥

यः। ते। अङ्कुशः। वसुऽदानः। बृहन्। इन्द्र। हिरण्ययः।
तेन। जनिऽइयते। जायाम्। मह्यम्। धेहि। शचीऽपते ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ते तव योऽङ्कुशः अङ्कुशवद् आकर्षको हस्तः वसुधानः वसूनि धनानि धीयन्ते धार्यन्ते अस्मिन्निति वसुधानः। अधिकरणे ल्युट्। अत एव बृहन् महान् हिरण्ययः हिरण्मयः अत्र हिरण्यप्रचुरः। "ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि च्छन्दसि" इति हिरण्यशब्दान्मयटि निपात्यते। एवंविधो यो हस्तः अङ्कुश एव वा तेन साधनेन हे शचीपते शचीदेव्याः पते इन्द्र जनीयते। जायन्तेस्याम् अपत्यानीति जनिर्जाया। ताम् आत्मन इच्छते। यद्वा पुत्रेणोत्पत्तिर्जनिः तत्कामाय मह्यं जायाम् भार्यां धेहि देहि प्रयच्छ ॥

## पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये षष्ठकाण्डे अष्टमोनुवाकः ॥

नवमेनुवाके पञ्च सूक्तानि। "अपचितः" [इति] प्रथमं सूक्तम्। तत्र "अपचितः" इति तृचेन गण्डमालाभैषज्यकर्मणि शङ्खं घृष्ट्वा अभिमन्त्र्य शुनकलालां वा अभिमन्त्र्य गण्डमालां प्रलिम्पेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन जलूकां गृहगोधिकां वा अभिमन्त्र्य रुधिरमोक्षार्थं गण्डमालास्थाने संश्लेषयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि सैन्धवलवणं चूर्णयित्वा अभिमन्त्र्य गण्डमालाया विकीर्य तूष्णीं निष्ठीवेत् ॥

सूत्रितं हि। "अपचितः[६. ८३] आ सुस्रसः[७. ८०] इति किंस्त्यादीनि लोहितलवणं संक्षुद्य अभिनिष्ठीवति" इति [कौ० ४. ७] ॥

तत्रैव कर्मणि "ग्लौरितः प्र पतिष्यति" इत्यर्धर्चं जपन् गोमूत्रेण गण्डं मर्दयेत् प्रक्षालयेद् वा ॥

तथा अनेनैव दन्तमलम् अभिमन्त्र्य गण्डमालां प्रलिम्पेत् ॥

"ग्लौरित्यर्धर्चेन" इति [कौ० ४. ७] सूत्रात् ॥

1 S' धीयते. 2 S' संहृद्य for संक्षुद्य which we with *Kaus'ika*.

"वीहि स्वाम्" इति चतुर्ऋचेन चतुष्पाद्गण्डभैषज्यार्थं शान्त्युदकम् अभिमन्त्र्य व्रणं प्रोक्षेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन चतुर्ऋचेन आज्यं हुत्वा मनसा संकल्प्य व्रणे संपातान् आनयेत् ॥

सूत्रितं हि । "वीहि स्वाम् इत्यज्ञातारुः शान्त्युदकेन संप्रोक्ष्य मनसा संपातवता" इति [कौ० ४. ७] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव ।
सूर्यः कृणोतु भेषजं चन्द्रमा वोपोच्छतु ॥ १ ॥

अपऽचितः । प्र । पतत । सुऽपर्णः । वसतेःऽइव ।
सूर्यः । कृणोतु । भेषजम् । चन्द्रमाः । वः । अप । उच्छतु ॥ १ ॥

हे अपचितः दोषवशाद् अपाक् चीयमानाः गलाद् आरभ्य अधस्तात् प्रसृता गण्डमालाः प्र पतत अस्मात् शरीरात् प्रकर्षेण निर्गच्छत । तत्र दृष्टान्तः सुपर्ण इति । सुपर्णः शोभनपतनः श्येनः वसतेरिव आवासस्थानाद् नीडाद् यथा शीघ्रं प्रपतति तथा पुरुषस्य गण्डस्याधस्तात्प्रदेशम् आशु विसृज्य धावतेत्यर्थः । ॐ अपचित इति । अपपूर्वाच्चिनोतेः कर्मणि क्विप् ॐ । हे अपचितः वः युष्माकं भेषजम् चिकित्सनं सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यः कृणोतु करोतु । [चन्द्रमाः] अमृतमयश्चन्द्रो वः युष्मान् अपोच्छतु अपवासयतु । अपवर्जयतित्यर्थः । ॐ उछी विवासे ॐ ॥

द्वितीया ॥

एन्येका श्येन्येका कृष्णेका रोहिणी द्वे ।
सर्वासामग्रभं नामावीरघ्नीरपेतन ॥ २ ॥

---

१ Such is the accent of all our authorities. Was the original accent corrected into corruption by some one who thought the °यः in सूर्यः to be a relative pronoun?

२ P अपऽचितः. We with P̂ K J Cp.

1 S' स्वामित्यन्यश्चारुः. We with *Kauśika*.

एनी। एका। श्येनी। एका। कृष्णा। एका। रोहिणी इति। द्वे इति।
सर्वासाम्। अग्रभम्। नाम। अवीरऽघ्नीः। अप। इतन ॥ २ ॥

अनया अपचितप्रभेदानां नामग्रहणेन तासाम् अपगमनं प्रार्थ्यते। एका गण्डमाला एनी एतवर्णा। ईषद्रक्तमिश्रश्वेतः एतवर्णः। एका अपरा श्येनी श्येतवर्णा। अत्यन्तशुभ्रेत्यर्थः। एतश्येतशब्दाभ्यां "वर्णाद् अनुदात्तात् तोपधात् तो नः" इति ङीप् तकारस्य च नकारः। एका अन्या गण्डमाला कृष्णा कृष्णवर्णा। अन्ये द्वे गण्डमाले रोहिणी रोहिण्यौ लोहितवर्णे। रोहितशब्दात् पूर्ववद् ङीन्नकारौ। वातपित्तश्लेष्मवशाद् वर्णनानात्वाद् एतासां नानात्वम्। सर्वासाम् अपचिताम्। उदीरितवर्णव्यतिरेकाभावात्। नाम प्रीतिकरं नामधेयम् अहम् अग्रभम् अग्रहीषम् उच्चारयामि। छान्दसश्लेर्लुक्। "हृग्रहोर्भः" इति भत्वम्। हे अपचितः यूयम् अस्मान्नामग्रहणात् प्रीताः सत्यः अवीरघ्नीः वीरम् इमं पुरुषं गण्डमालाग्रस्तम् अहन्त्यः अपेतन अपगच्छत। एतेर्लोटि "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनादेशः। अवीरघ्नीरिति। वीरशब्दोपपदात् हन्तेः "बहुलं छन्दसि" इति क्विप्। "क्वृन्नेभ्यः०" इति ङीप्। "अल्लोपोनः" इति अकारलोपः। "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् ॥

तृतीया ॥

असूतिका रामायण्यपचित् प्र पतिष्यति।
ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति ॥ ३ ॥

असूतिका। रामायणी। अपऽचित्। प्र। पतिष्यति।
ग्लौः। इतः। प्र। पतिष्यति। सः। गलुन्तः। नशिष्यति ॥ ३ ॥

असूतिका पूयस्रावम् अजनयन्ती। चिरपरिपाकेत्यर्थः। रामायणी रमते आसु प्राणवायुरिति रामा नाड्यः ता अयनं प्रधावनमार्गो यस्याः

१ P नशिष्यति changed to नशिष्यति. P नशिष्यति. J न। शिष्यति। changed to नशिष्यति. We with Cr.

सा रामायणी नाडी । व्रणात्मिकेत्यर्थः । एवंभूता अपचित् प्र पतिष्यति अस्मात् शरीरात् प्रगता अन्यत्र गमिष्यति । मन्त्रसामर्थ्याद् इत्यर्थः ॥ ग्लौः व्रणजनितो हर्षक्षयः इतः अस्माद् अङ्गात् प्र पतिष्यति व्याध्यपगमे तज्जनितदुःखानुभवोपि प्रकर्षेण निर्गमिष्यतीत्यर्थः । यद्वा ग्लौश्चन्द्रमाः इतः अस्माद् गोमूत्रजलावसेकाद् अपचितं प्र पतिष्यति । [1]पतिरत्र अन्तर्णीतण्यर्थः[1] । प्रगमयिष्यति । चन्द्रमा वोपोच्छतु इत्युक्त एवार्थोऽनूद्यते । स चन्द्रमाः गलुन्तः गण्डमालोद्भवविकारेण तत्रतत्र हस्तपादादिसंधिषु उद्भूतान् गडून् तस्यति उपक्षपयतीति गडुन्तः । [2]तसु उपक्षये । अस्माद् औणादिकः क्विप् । नकारोपजनश्छान्दसः[2] । नं शिंष्यति नावशेषयति । सर्वं व्रणविकारं निवर्तयतीत्यर्थः

वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि ॥ ४ ॥
वीहि । स्वाम् । आऽहुतिम् । जुषाणः । मनसा । स्वाहा । मनसा । यत् ।
इदम् । जुहोमि ॥ ४ ॥

यस्यास्त आसनि घोरे जुहोम्येषां बद्धानामवसर्जनाय कम् ।
भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जना निर्ऋतिरिति त्वाहं परि वेद सर्वतः ॥ १ ॥
यस्याः । ते । आसनि । घोरे । जुहोमि । एषाम् । बद्धानाम् । अवऽसर्जनाय । कम् ।
भूमिः । इति । त्वा । अभिऽप्रमन्वते । जनाः । निःऽऋतिः । इति । त्वा ।
अहम् । परि । वेद । सर्वतः ॥ १ ॥

भूते हविष्मती भवैष ते भागो यो अस्मासु ।
मुञ्चेमानमूनेनसः स्वाहा ॥ २ ॥
भूते । हविष्मती । भव । एषः । ते । भागः । यः । अस्मासु ।
मुञ्च । इमान् । अमून् । एनसः । स्वाहा ॥ २ ॥

१ R °प्रवन्वते. २ P. भूत.

1 S' वर्ण° for व्रण which is conjectural.

चतुर्थी। हे व्रणरोगाभिमानिन् देव त्वं स्वाम् स्वकीयाम् आहुतिं मनसा जुषाणः सेवमानो वीहि भक्षय। स्वाहा स्वाहुतम् इदं हविरस्तु। अहमपि मनसैव यद् इदं हविर्जुहोमि हे रोगाभिमानिनि पापदेवते यस्यास्ते तव घोरे क्रूरे आसनि आस्ये जुहोमि हविः प्रक्षिपामि सा त्वं मनसा हूयमानं तद्धविः सेवस्वेत्यर्थः। किमर्थम्। एषां व्रणरोगजनितानां बन्धानाम् अवसर्जनाय विमोचनार्थम्। कम् इति पदपूरणः। यद्वा कम् इति उदकनाम। व्रणप्रक्षालनार्थम् इदम् औषधोदकम् तद्रोगशान्तये अवकल्पत इत्यर्थः॥

पञ्चमी। हे व्रणाभिमानिदेवते त्वा त्वां जनाः जन्ममात्रसारा विशेषज्ञानरहिताः प्राणिनः भूमिः पृथिवीति अभिप्रमन्वते अभितः प्रबुध्यन्ते। ※मनु अवबोधने※। अहं तु त्वत्स्वरूपं जानानः त्वा त्वां निर्ऋतिरिति। सर्वरोगनिदानभूता पापदेवता निर्ऋतिः। सैवेति सर्वतः सर्वस्माद्धेतोः परि वेद परितो जानामि। हे भूते सर्वत्र विद्यमाने निर्ऋतिरूपे हविष्मती भव अस्माभिर्दत्तेन हविषा आज्यादिना युक्ता भव। एष ते तव भागः। यः अस्मासु इदानीं परिकल्पितः। अनेन हविर्भागेन तुष्टा इमान् समीपस्थान् गवादीन् अमून् दूरस्थान् अस्मद्दृष्टिगोचरान् एनसः रोगनिदानभूतात् पापाद् मुञ्च विसृज स्वाहा इदं हविः स्वाहुतम् अस्तु॥

षष्ठी॥

एवो ष्व१स्मन्निर्ऋतेनेहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान्।
यमो मह्यं पुनरित् त्वां ददाति तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे॥ ३॥

एवो इति। सु। अस्मत्। निःऽऋते। अनेहा। त्वम्। अयस्मयान्। वि। चृत। बन्धऽपाशान्।
यमः। मह्यम्। पुनः। इत्। त्वाम्। ददाति। तस्मै। यमाय। नमः। अस्तु। मृत्यवे॥ ३॥

१ B ष्वंस्म°. R ष्वास्म°. A K ष्वा१स्म°. We with D K S C.

1 S' निर्ऋतेरूप°.

हे निर्ऋते निःशेषेण आर्तिकरि पापदेवते अनेहा अनाहन्ती । ॒न-ञ्याहन एह च [उ० ४. २२३] इति आङ्पूर्वाद्धन्तेरसुन् तत्संनियोगेन एहादेशश्च । "ऋदुशनस्पुरुदंसोनेहसां च" इति सौ अनङ् आदेशः ॒ । अस्मान् अबाधमाना त्वम् एवो एव उ एवमेव पूर्वोक्तप्रकारेणैव सुष्ठु अस्मत् अस्मत्तः अयस्मयान् अयोविकारान् अत्यन्तदृढान् बन्धपाशान् बन्धनरज्जुविशेषान् रोगात्मकान् वि चृत विमुञ्च छिन्द्धीत्यर्थः । ॒चृती हिंसाग्रन्थनयोः ॒ ॥ हे रुग्ण यमः वैवस्वतः प्राणापहारी देवः त्वां मह्यं पुनर्ददाति । तस्मै मृत्यवे प्राणापहारिणे यमाय नमो अस्तु नमस्कारोस्तु ॥

सप्तमी ॥

अयस्मये द्रुपदे बेधिष इहाभिहितो मृत्युभिर्ये सहस्वम् ।
यमेन त्वं पितृभिः संविदान उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

अयस्मये । द्रुऽपदे । बेधिषे । इह । अभिऽहितः । मृत्युऽभिः । ये । सहस्वम् । यमेन । त्वम् । पितृऽभिः । सम्ऽविदानः । उत्ऽतमम् । नाकम् । अधि । रोहय । इमम् ॥ ४ ॥

"अयस्मये द्रुपदे" इत्येषा सप्तमेनुवाके व्याख्याता । [६. ६३. ३] ॥

[इति] नवमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"वरणो वारयाते" इति तृचेन राजयक्ष्मादिरोगभैषज्यकर्मणि वरणवृक्षमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य पुनस्तृचं जपित्वा बध्नीयात् । "शं नो देवी [२. २५] वरणः [६. ८५] पिप्पली" [६. १०९] इति प्रक्रम्य "तृतीयेन मन्त्रोक्तं बध्नाति" इति [कौ० ४. २] सूत्रात् ॥

"वृषेन्द्रस्य" इति तृचेन श्रैष्ठ्यकामः इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा । "वृषेन्द्रस्येति वृषकामः" इति [कौ० ७. १०] सूत्रात ॥

तत्र प्रथमा ॥

वरणो वार्यता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥ १ ॥

वरणः। वारयातै। अयम्। देवः। वनस्पतिः।
यक्ष्मः। यः। अस्मिन्। आऽविष्टः। तम्। ऊं इति। देवाः। अवीवरन्॥१॥

अयं पुरोवर्ती देवः दानादिगुणयुक्तः [वरणः] वरणाख्यो वनस्पतिः वनानाम् अधिपतिर्वृक्षः। ✕विकारे प्रकृतिशब्दः✕। वरणवृक्षनिर्मितो मणिः वारयातै राजयक्ष्मादिरोगं वारयतु निवर्तयतु। ✕वारयतेर्लेटि आडागमः। "वैतोन्यत्र" इति ऐकारः✕॥ अस्मिन् पुरुषे यो यक्ष्मः रोग आविष्टः प्रविष्टः तमु। उशब्दः अप्यर्थे। तं सर्वमपि रोगं देवा इन्द्रादयः सर्वे अवीवरन् वारयन्तु। ✕वारयतेश्छान्दसे लुङि चङि रूपम✕॥

द्वितीया॥

इन्द्रस्य वचसा वयं मित्रस्य वरुणस्य च।
देवानां सर्वेषां वाचा यक्ष्मं ते वारयामहे॥२॥
इन्द्रस्य। वचसा। वयम्। मित्रस्य। वरुणस्य। च।
देवानाम्। सर्वेषाम्। वाचा। यक्ष्मम्। ते। वारयामहे॥२॥

मणिबन्धनकर्तारो वयम् हे व्याधित ते तव यक्ष्मम् रोगम् इन्द्रस्य देवानाम् अधिपतेः वचसा आज्ञारूपेण वाक्येन वारयामहे निवारयामः। न केवलम् इन्द्रस्य वचसा। मित्रस्य वरुणस्य च अन्येषामपि सर्वेषां देवानां वाचा वाक्येन त्वदीयं रोगं निवारयामः॥

तृतीया॥

यथा वृत्र इमा आपस्तस्तम्भ विश्वधा यतीः।
एवा ते अग्निना यक्ष्मं वैश्वानरेण वारये॥३॥
यथा। वृत्रः। इमाः। आपः। तस्तम्भ। विश्वधा। यतीः।
एव। ते। अग्निना। यक्ष्मम्। वैश्वानरेण। वारये॥३॥

यथा येन प्रकारेण वृत्रः आवरणशीलस्त्वष्टृपुत्रोसुरः इमाः परिदृश्य-

१ So all our MSS. and Vaidikas.

माना विश्वधायनीः विश्वस्य कृत्स्नस्य स्थावरजङ्गमात्मकस्य जगतः पोषयित्रीः आपः मेघस्था व्यापनशीला अपः तस्तम्भ निरुद्धगतीश्चकार । ॥ष्टभि स्कभि गतिप्रतिबन्धे ॥ । हे व्याधित ते तव यक्ष्मम् रोगम् एव एवं वैश्वानरेण विश्वनरहितेन सर्वप्राणिहितकारिणा अग्निना वारये निवारयामि ॥

चतुर्थी ॥

वृषेन्द्रस्य वृषा दिवो वृषा पृथिव्या अयम् ।
वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेकवृषो भव ॥ १ ॥

वृषा । इन्द्रस्य । वृषा । दिवः । वृषा । पृथिव्याः । अयम् ।
वृषा । विश्वस्य । भूतस्य । त्वम् । एकऽवृषः । भव ॥ १ ॥

अयं श्रैष्ठ्यकामः पुरुषः इन्द्रस्य प्रसादाद् वृषा सेचनसमर्थः श्रेष्ठो भवतु । यद्वा हविःप्रदानादिना उपजीव्यः सन् इन्द्रस्यापि श्रेष्ठो भवत्वित्यर्थः । दिवः द्युलोकस्य वृषा कामानां वर्षिता श्रेष्ठो भवतु । पृथिव्या अपि वृषा आहुतिद्वारा वृष्टेरुत्पादयिता सन् अयं श्रेष्ठो भवतु । ॥ दिव इति । "ऊडिदम्०" इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् । पृथिव्या इति । प्रथनात् पृथिवी । "यद् अप्रथयत् तत् पृथिव्यै पृथिवित्वम्" इति श्रुतेः [तै०ब्रा०१.१.३.७] । प्रथ प्रख्याने । प्रथेः षिवन् [सं]प्रसारणं च [उ०१.१४८] । "षिद्गौरादिभ्यश्च" इति ङीष् । "उदात्तयणो हल्पूर्वात्" इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ॥ । किं बहुना द्यावापृथिव्युपलक्षितस्य विश्वस्य भूतस्य सर्वस्यापि प्राणिजातस्य वृषा सेचनसमर्थः उत्कृष्टो भवतु ॥ परः प्रत्यक्षकृतः । हे श्रैष्ठ्यकाम पुरुष उदीरितरीत्या त्वम् एकवृषो भव । यथा गोयूथमध्ये प्रधानभूतो वृषभः सर्वश्रेष्ठो वर्तते एवं सर्वोत्कृष्टो भवेत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

समुद्र ईशे स्रवतामग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे त्वमेकवृषो भव ॥ २ ॥

समुद्रः। ईशे। स्रवताम्। अग्निः। पृथिव्याः। वशी।
चन्द्रमाः। नक्षत्राणाम्। ईशे। त्वम्। एकऽवृषः। भव॥ २॥

स्रवताम् प्रवहताम् उदकानां समुद्रः अग्निः ईशे ईष्टे। ईश ऐश्वर्ये। "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः। पृथिव्याः भूम्या अग्निर्वशी वशयिता स्वामी। नक्षत्राणाम् अश्विन्यादीनां चन्द्रमा ईशे ईष्टे। यथा एतेषां समुद्रादीनां स्वस्वविषयाधिपत्यम् अव्याहतम् एवम् हे श्रैष्ठ्यकाम त्वम् एकवृषो भवेति संबन्धः॥

षष्ठी॥

सम्राडस्यसुराणां ककुन्मनुष्याणाम्।
देवानामर्धभागसि त्वमेकवृषो भव॥ ३॥

सम्ऽराट्। असि। असुराणाम्। ककुत्। मनुष्याणाम्।
देवानाम्। अर्धऽभाक्। असि। त्वम्। एकऽवृषः। भव॥ ३॥

हे इन्द्र त्वम् असुराणाम् सुरविरोधिनां दानवानां सम्राट् सम्यग् राजमानः ईश्वरोसि[1] भवसि। तद्वद् अयं श्रैष्ठ्यकामो मनुष्याणाम् मनोरपत्यानां सर्वप्राणिनां ककुत् वृषभस्य ककुदिव उन्नतो भवतु॥ तथा हे इन्द्र त्वं देवानाम् अर्धभाग् असि। अर्धशब्दः समप्रविभागवचनः। अन्ये सर्वे देवा एको भागः इन्द्र एको भागः। सर्वदेवप्रतिनिधिर्भवसीत्यर्थः। तथा च तैत्तिरीयकम्। "यत् सर्वेषाम् अर्धम् इन्द्रः प्रति तस्माद् इन्द्रो देवतानां भूयिष्ठभाक्तमः" इति [तै० सं० ५. ४. ८. ३]। ईदृशस्य इन्द्रस्य प्रसादात् हे श्रैष्ठ्यकाम त्वम् इन्द्रवद् एकवृषो भव॥

[इति नवमेनुवाके] द्वितीयं सूक्तम्॥

"आ त्वाहार्षम्"[६. ८७] "ध्रुवा द्यौः"[६. ८८] इति तृचाभ्यां स्थैर्यकामो राजा इन्द्रं यजते उपतिष्ठते वा। "आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौरिति ध्रौव्यकामः" [कौ० ७. १०] इति सूत्रात्॥

तथा भूमिकम्पलक्षणोत्पातप्रायश्चित्तार्थम् आभ्याम् तृचाभ्याम् आज्यं

1 S' ईश्वरो भवसि.

जुहुयात् । "अथ यत्रैतद् भूमिचलो भवति" इति प्रक्रम्य "आ त्वाहार्षम्[६.८७] ध्रुवा द्यौः[६.८८] सत्यं बृहत्[१२.१] इत्येतेनानुवाकेन जुहुयात्" इति [कौ०१३.६] ॥

तथा उदकुम्भभङ्गलक्षणाद्भुतप्रायश्चित्तार्थम् आभ्यां तृचाभ्याम् अन्यं नवकलशं दृढीकरणार्थम् अभिमन्त्रयेत । सूत्रितं हि । "अथ यत्रैतत् कुम्भ उदधानः सक्कुधानी वोखा वानिङ्गिता विकसति" इति प्रक्रम्य "अ-"थ चेद् उदधानः स्यात् समुद्रं वः प्र हिणोमि[१०.५.२३] इत्येता-"भ्याम् ऋग्भ्याम् अभिमन्त्र्य अन्यं कृत्वा ध्रुवाभ्यां[६.८७,८८] दंह-यित्वा" इति [कौ०१३.४४] ॥

तथा इन्द्रमहाख्ये उत्सवकर्मणि आभ्यां तृचाभ्याम् इन्द्रम् उत्थापयेत् । "अथ राज्ञाम् इन्द्रमहस्योपचारकल्पम्" इति प्रक्रम्य "अथेन्द्रम् उत्थापयति आ त्वाहार्षं ध्रुवा द्यौर्विंशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु" इति [कौ०१४.४] ॥

तथा अग्निचयने "आ त्वाहार्षम्" इत्यनेन उन्नीतम् उख्याग्निं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । अग्निचयनं प्रक्रम्य सूत्रितम् । "संशितं मे[३.१९] इत्युख्यम् उन्नीयमानम् आ त्वाहार्षम्[६.८७] इत्युन्नीतम्" इति [वै०५.१] ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलत् ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥ १ ॥

आ । त्वा । अहार्षम् । अन्तः । अभूः । ध्रुवः । तिष्ठ । अविऽचाचलत् ।
विशः । त्वा । सर्वाः । वाञ्छन्तु । मा । त्वत् । राष्ट्रम् । अधि । भ्रशत् ॥ १ ॥

हे राजन् त्वा त्वाम् आहार्षम् राष्ट्रम् आनयिषम् । अन्तः अस्माकं मध्ये अभूः अधिपतिरभवः । ✕भवतेर्लुङि "गातिस्था०" इति सिचो लुक् । "भूसुवोस्तिङि" इति गुणप्रतिषेधः✕ । अविचाचलत् भृशं चलनरहितः सन् अस्मिन् राज्याधिपत्ये ध्रुवस्तिष्ठ स्थिर उपविश । ✕[अवि]चाचलत् इति । चल गतौ । अस्माद् यङ्लुगन्तात् श-

1 S' °त्येकनान्न°. 2 S' °वोखादानंगता. We with *Kaus'ika*.

तरि रूपम्। "नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुम्प्रतिषेधः ✕। भूमण्डलमध्यवर्तिन्यः सर्वा विशः प्रजाः त्वा त्वां वाञ्छन्तु अस्माकम् अयमेव स्वामी इत्यनुरागयुक्ता भवन्तु। ✕वाञ्छि इच्छायाम्✕। इदं राष्ट्रम् राज्यं त्वत् सकाशाद् मा अधि भ्रशत् अधिकं कदाचिदपि भ्रष्टं मा भूत्। सर्वदा त्वच्छासने वर्तताम् इत्यर्थः। ✕भ्रशु भ्रन्शु अधःपतने। अस्मान्माङि लुङि पुषादित्वात् च्लेः अङ् आदेशः✕॥

द्वितीया॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलत्।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय॥ २॥

इह। एव। एधि। मा। अप। च्योष्ठाः। पर्वतःऽइव। अविऽचाचलत्।
इन्द्रःऽइव। इह। ध्रुवः। तिष्ठ। इह। राष्ट्रम्। ऊं इति। धारय॥२॥

इहैव अस्मिन्नेव राज्यसिंहासने एधि भव सर्वदा वर्तस्व। माप च्योष्ठाः कदाचिदपि अस्माद् राष्ट्रात् प्रच्युतो मा भूः। ✕च्युङ् प्रुङ् गतौ। अस्मान्माङि लुङि च्लेः सिच्। "न माड्योगे" इति अडभावः✕। कथंभूतः सन्। पर्वत इव अविचाचलत् सर्वदा सर्वथा चलनरहितः सन्। इन्द्र इव इह अस्मिन् राष्ट्रे ध्रुवस्तिष्ठ स्थिरो वर्तस्व। राष्ट्रमु। उशब्दः चार्थे। तव स्वभूतम् एतद् राष्ट्रं च धारय स्वेस्वे स्थानेवस्थापय। संभवद्बाधपरिहारेण पालयेत्यर्थः॥

तृतीया॥

इन्द्र एतमदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः॥ ३॥

इन्द्रः। एतम्। अदीधरत्। ध्रुवम्। ध्रुवेण। हविषा।
तस्मै। सोमः। अधि। ब्रवत्। अयम्। च। ब्रह्मणः। पतिः॥ ३॥

ध्रुवेण स्थैर्यकरेण अस्माभिर्दत्तेन हविषा तुष्ट इन्द्रः एतं राजानम् अ-

१ All our MSS. and Vaidikas: इन्द्रैवधु°. We with Sâyaṇa's text and commentary. २ P एधि। मा। We with P² J Cp. ३ P P² J Cp इंद्र। इह। एव.

स्मिन् राष्ट्रे ध्रुवम् स्थिरं प्रच्युतिरहितम् अदीधरत् धारितवान् । प्रतिष्ठापितवान् इत्यर्थः । तस्मै राज्ञे सोमो राजा अधि ब्रवत् अस्मदीयोयम् इति अधिकं ब्रवीतु । अयं च ब्रह्मणस्पतिः वेदराशेः पालयिता देवः अधि ब्रवीतु । ‡"षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति विसर्जनीयस्य सत्वम्‡ ॥

चतुर्थी ॥

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवो राजा विशामयम् ॥ १ ॥

ध्रुवा । द्यौः । ध्रुवा । पृथिवी । ध्रुवम् । विश्वम् । इदम् । जगत् ।
ध्रुवासः । पर्वताः । इमे । ध्रुवः । राजा । विशाम् । अयम् ॥ १ ॥

यथा द्यौः ध्रुवा स्थिरा वर्तते । पृथिवी च यथा ध्रुवा निश्चला दृश्यते । द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमानम् इदं विश्वम् सर्वं जगत् ध्रुवम् स्थिरं दृश्यते । तत्रत्या इमे परिदृश्यमानाः पर्वता यथा ध्रुवासः ध्रुवाः स्थिराः । ‡"आज्जसेरसुक्"‡ । तथा अयं विशाम् प्रजानां राजा ध्रुवः स्थिरो भवतु ॥

पञ्चमी ॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥ २ ॥

ध्रुवम् । ते । राजा । वरुणः । ध्रुवम् । देवः । बृहस्पतिः ।
ध्रुवम् । ते । इन्द्रः । च । अग्निः । च । राष्ट्रम् । धारयताम् । ध्रुवम् ॥ २ ॥

हे राजन् ते तव राज्यं राजा राजमान ईश्वरो वरुणः ध्रुवम् स्थिरं करोतु । देवः द्योतमानो बृहस्पतिः देवमन्त्री त्वदीयं राष्ट्रं ध्रुवं करोतु । ‡बृहतां देवानां पतिर्बृहस्पतिः । "तद्बृहतोः करपत्योः०" इति सुट्तलोपौ । "उभे वनस्पत्यादिषु०" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम्‡ । तथा ते त्वदीयं राष्ट्रम् इन्द्रश्च अग्निश्च ध्रुवम् स्थिरं धारयताम् । प्रत्येकापेक्षया ध्रुवशब्दस्यावृत्तिः ॥

षष्ठी ॥

ध्रुवोच्युतः प्र मृणीहि शत्रूंश्छत्रूयतोधरान् पादयस्व ।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह ॥ ३ ॥

ध्रुवः । अच्युतः । प्र । मृणीहि । शत्रून् । शत्रुऽयतः । अधरान् । पादयस्व । सर्वाः । दिशः । समऽमनसः । सध्रीचीः । ध्रुवाय । ते । समऽइतिः । कल्पताम् । इह ॥ ३ ॥

हे राजन् ध्रुवः अस्मिन् राष्ट्रे स्थिरः अच्युतः चलनरहितः सन् शत्रून् प्र मृणीहि प्रजहि । मृङ् हिंसायाम् । शत्रूयतः शत्रुवद् आचरतः अन्यानपि जनान् अधरान् अधोमुखान् पातयस्व भूमौ निपतितान् कुरु । एवं शत्रूणाम् अपगमे सति सर्वाः प्राच्याद्या दिशः संमनसः समनस्काः सत्यः सध्रीचीः त्वया सह अञ्चन्त्यो वर्तमानाः । त्वत्सेवापरायणा भवन्तित्यर्थः । सह अञ्चन्तीति सध्रीच्यः । अञ्चतेः "ऋत्विग्०" इत्यादिना क्विन् । "अनिदिताम्०" इति नलोपः । "सहस्य सधिः" इति सभ्यादेशः । "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीप् । "अचः" इति अकारलोपे "चौ" इति दीर्घत्वम् । जसि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः । इह सर्वासु दिक्षु ध्रुवाय निश्चलम् अवस्थिताय ते तुभ्यं समितिः आयोधनं कल्पताम् समर्थं भवतु आयोधनात् पलायनं कदाचिदपि मा भूद् इत्यर्थः ॥

[इति नवमेनुवाके] तृतीयं सूक्तम् ॥

"इदं यत् प्रेण्यः" इति तृचेन जायापत्योरन्योन्यं प्रीतिजननकर्मणि अननुकूलस्य शिरः कर्णं च अनुमन्त्रयेत केशान् वा धारयेत् । सूत्रितं हि । "इदं यत् प्रेण्य इति शिरः कर्णम् अनुमन्त्रयते केशान् धारयते" इति [कौ० ४. १२] ॥

"यां ते रुद्रः" इति तृचेन शारीरशूलरोगपरिहारार्थं लोहमणिं पा-

१ BR शत्रूंछत्रूयतो°. We with ADKKSVC.

1 S' अंचत्ये.

षाणमणिं वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयाद् इति रुद्रदारिलयोर्भाष्यकारयोर्मतम् । शूलिनः शूलस्थानम् अनुमन्त्रयेतेति भद्रस्य भाष्यकारस्य मतम् । "यां ते रुद्र इति शूलिने शूलम्" इति [कौ० ४. ७] सूत्रात् ॥

तत्र प्रथमा ॥

इदं यत् प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।
ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि ॥ १ ॥

इदम् । यत् । प्रेण्यः । शिरः । दत्तम् । सोमेन । वृष्ण्यम् ।
ततः । परि । प्रऽजातेन । हार्दिम् । ते । शोचयामसि ॥ १ ॥

प्रेण्यः प्रेमप्रापकस्य यद् इदं शिरः वृष्ण्यम् वीर्यप्रदं सोमेन दत्तम् ततः तस्माद् दत्ताच्छिरसः परिप्रजातेन उत्पन्नेन स्नेहविशेषेण ते तव हार्दिम् हृन्मध्यवर्तिं अन्तःकरणं शोचयामसि संतापयुक्तं कुर्मः । ‡ "इदन्तो मसिः" ‡ ॥

द्वितीया ॥

शोचयामसि ते हार्दिं शोचयामसि ते मनः ।
वातं धूम इव सध्र्यङ् मामेवान्वेतु ते मनः ॥ २ ॥

शोचयामसि । ते । हार्दिम् । शोचयामसि । ते । मनः ।
वातम् । धूमः ऽइव । सध्र्यङ् । माम् । एव । अनु । एतु । ते । मनः ॥ २ ॥

हे जायापत्योरन्यतर ते तव हार्दिम् हृदयमध्यवर्तिं अन्तःकरणं हृदयमेव वा परस्परानुरागोत्पादनेन शोचयामसि तप्तं कुर्मः । तथा ते तव मनः संकल्पविकल्पात्मकम् अन्तःकरणस्य वृत्तिविशेषमपि शोचयामसि शोचयामः । एवं संतापजननोत्तरकालं सध्रिम् सहभूतं वातम् वायुं धूम इव ते तव मनः मामेव अन्वेतु अनुगच्छतु । यथा धूमो वातानु-

१ D सध्र्याङ्मा°. R सध्यङ्मा°. C सध्र्यङ्मा. २ P C$^{p}$ सध्यङ्.

1 S' °दारुणयो°. The emendation is based upon Kesava's remark on *Kausika* IV. 7: शूलंलोहमणिः । पाषाणे (*sic*) वा । दारिलरुद्रमतम्. व्याधितमभिमन्त्रयते भद्रभाष्यमतम्. Sâyana chiefly draws upon Kesava for his *sûtra*. 2 S' शूलिने. We with *Kausika*. 3 पस्मिति (?) तप्तं for तप्तं.

सारेण पृष्ठतो धावति एवम् अनुरागवशात् त्वदीयं मनो माम् अनुधावतित्यर्थः। ✕सम्भिम् इति। अनुत्तरपदस्यापि सहशब्दस्य सभ्याः देशम्छान्दसः✕ ॥

तृतीया ॥

मह्यं त्वा मित्रावरुणौ मह्यं देवी सरस्वती।
मह्यं त्वा मध्यं भूम्या उभावन्तौ समस्यताम् ॥ ३ ॥

मह्यम्। त्वा। मित्रावरुणौ। मह्यम्। देवी। सरस्वती।
मह्यम्। त्वा। मध्यम्। भूम्याः। उभौ। अन्तौ। सम्। अस्यताम् ॥ ३ ॥

हे जाये त्वा त्वां मित्रावरुणौ मित्रश्च वरुणश्च। ✕"देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः। "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम्✕। एतत्संज्ञौ देवौ मह्यं पत्ये समस्यताम्। संयोजयताम् इत्यर्थः। देवी द्योतमाना सरस्वती त्वां मह्यं समस्यतु। भूम्याः पृथिव्या मध्यम् मध्यस्थितं प्राणिजातं त्वा त्वां मह्यं संयोजयतु। तस्या एव भूम्या उभावन्तौ ऊर्ध्वाधःप्रदेशौ त्वां समस्यताम् संयोजयताम्। ✕असु क्षेपणे। दिवादित्वात् श्यन्✕ ॥

चतुर्थी ॥

यां ते रुद्र इषुमास्यदङ्गेभ्यो हृदयाय च।
इदं तामद्य त्वद् वयं विषूचीं वि वृहामसि ॥ १ ॥

याम्। ते। रुद्रः। इषुम्। आस्यत्। अङ्गेभ्यः। हृदयाय। च।
इदम्। ताम्। अद्य। त्वत्। वयम्। विषूचीम्। वि। वृहामसि ॥ १ ॥

हे व्याधित ते तव अङ्गेभ्यः हस्तपादादिभ्यः हृदयाय च अङ्गानि हृदयं च व्यङ्गुं रुद्रः रोदयिता शूलरोगाभिमानी देवः याम् इषुम् बाणम् आस्यत् धनुर्यन्त्रेण प्राक्षिपत्। अद्य इदानीम् इदं तत्प्रतीकारार्थं ताम् इषुं विषूचीम् अनभिमुखीं [वयं त्वत् त्वत्तो] वि वृहामसि विवृहामः शरीरमध्याद् उत्क्षिपामः। ✕वृहू उद्यमने। "इदन्तो मसिः"✕ ॥

पञ्चमी ॥

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः ।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि ॥ २ ॥
याः । ते । शतम् । धमनयः । अङ्गानि । अनु । विऽस्थिताः ।
तासाम् । ते । सर्वासाम् । वयम् । निः । विषाणि । ह्वयामसि ॥ २ ॥

हे शूलरोगिन् ते तव अङ्गानि अनु हस्तपादाद्यवयवाननु याः [शतम्] शतसंख्याका धमनयः नाड्यो विष्ठिताः विविधम् अवस्थिताः ते त्वदीयानां तासां सर्वासां धमनीनां निर्विषाणि विषरहितानि भैषज्यानि शूलनिबर्हणानि [वयं] ह्वयामसि ह्वयामः संपादयामः ॥

षष्ठी ॥

नमस्ते रुद्रास्यते नमः प्रतिहितायै ।
नमो विसृज्यमानायै नमो निपतितायै ॥ ३ ॥
नमः । ते । रुद्र । अस्यते । नमः । प्रतिऽहितायै ।
नमः । विऽसृज्यमानायै । नमः । निऽपतितायै ॥ ३ ॥

हे रुद्र रोदयितर्देव अस्यते व्याधिरूपाम् इषुं क्षिपते ते तुभ्यं नमोस्तु । ※"नमःस्वस्ति०" इति चतुर्थी※ । तथा प्रतिहितायै धनुषि संहितायै त्वदीयेषवे नमोस्तु । विसृज्यमानायै धनुषः सकाशात् प्रेर्यमाणायै तस्यै नमोस्तु । विसर्जनानन्तरं लक्ष्ये निपतितायै तस्यै नमोस्तु । इत्थं रुद्रस्य तदायुधस्य च विविधावस्थस्य नमस्कारेण तत्कृतपीडाभावः प्रार्थितः ॥

[इति] नवमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

"इमं यवम्" इति तृचेन सर्वरोगभैषज्यार्थम् अर्धर्चेनार्धर्चेन आज्यं हुत्वा सयवे केवले वा उदपात्रे चतुरः संपातान् द्वौ पृथिव्याम् आनीय संपातितमृत्सहितोदकेन तृचाभिमन्त्रितेन व्याधितम् आत्मावयेत् ॥
तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन यवमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि। "दिवे स्वाहा[५.९] इमं यवम्[६.९१] इति चतुर "उदपात्रे संपातान् आनयति। द्वौ पृथिव्याम्। तौ प्रत्याहृत्यात्मावयति। "सयवे चोत्तरेण यवं बध्नाति" इति [कौ० ४.४]॥

"वातरंहाः" इति तूचेन अश्वशान्तौ आज्यं हुत्वा उदपात्रे संपातान् आनीय तेनोदकेन सूत्रोक्तरीत्या अश्वम् आचामयेत् आत्मावयेच्च। तदुक्तं संहिताविधौ। "वातरंहा इति स्नातेऽश्वे संपातान् अभ्यति नयति। पलाशे सचूर्णे चोत्तरान्। आचामयति। आत्मावयति" इति [कौ० ५.५]॥

तत्र प्रथमा॥

इमं यवमष्टायोगैः षड्योगेभिरचर्कृषुः।
तेना ते तन्वो३ रपोपाचीनमप व्यये॥ १॥

इमम। यवम्। अष्टाऽयोगैः। षट्ऽयोगेभिः। अचर्कृषुः।
तेन। ते। तन्वः। रपः। अपाचीनम्। अप। व्यये॥ १॥

इमं भैषज्याय प्रयुज्यमानं यवम् दीर्घशूकं धान्यम् अष्टायोगैः अष्टभिर्बलीवर्दैर्युज्यमाना हला अष्टायोगाः। [षड्योगेभिः] षड्भिर्युज्यमानाः षड्योगाः। इत्थं महद्भिर्हलैः अचर्कृषुः कर्षणं कृतवन्तः। ईदृशेन कर्षणेन उत्पादितवन्त इत्यर्थः। कृष विलेखने। तेन यवेन हे व्याधित ते तव तन्वः शरीरस्य रपः रोगनिदानभूतं पापम् अपाचीनम् अपाङ्मुखम् अप व्यये अपगमयामि॥

द्वितीया॥

न्यङ्ग् वातो वाति न्यक् तपति सूर्यः।
नीचीनमद्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः॥ २॥

न्यक्। वातः। वाति। न्यक्। तपति। सूर्यः।

---

१ B °मुपं. Cs °मपं corrected to °मुपं. २ D ह्वये. ३ P ते. ४ B has no kampa. BDSCs ३ for १. We with AKKRV. ५ P न्यक्. We with PJCp. ६ P न्यक्.

1 S' चतुरुद्°. We with *Kauśika* and his commentators.

नीचीनम् । अह्या । दुहे । न्यक् । भवतु । ते । रपः ॥ २ ॥

न्यग् वात इत्याद्या उपमानार्थाः । यथा वातः वायुः न्यग् वाति नीचीनं गच्छति । ॒वा गतिगन्धनयोः॒ । सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्यश्च न्यक् नीचीनम् अवाङ्मुखं तपति । अह्या । गोनामैतत् । अहन्तव्या गौश्च नीचीनम् अधोमुखं पयो दुहे दुग्धे । ॒"लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः॒ । यथा एते वातादयो न्यक्प्रधर्मोपेताः हे व्याधित [एवं] ते तव रपः पापं रोगावहं न्यक् नीचीनम् अधोमुखं भवतु । शाम्यत्वित्यर्थः ॥

तृतीया ॥

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ३ ॥

आपः । इत् । वै । ऊं इति । भेषजीः । आपः । अमीवऽचातनीः ।
आपः । विश्वस्य । भेषजीः । ताः । ते । कृण्वन्तु । भेषजम् ॥ ३ ॥

आप इद् वा उ आप एव खलु भेषजीः भेषज्यः सर्वौषधानां तद्विकारत्वात् । ॒"°सुमङ्गलभेषजाच्च" इति भेषजशब्दात् ङीप् । "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः॒ । अत एव हेतोः आपः अमीवचातनीः अमीवानां रोगाणां विनाशयित्र्यः । ॒चातयतिर्नाशने इति यास्कः [नि° ६.३०]॒ । तस्माद् विश्वस्य सर्वस्य रोगजातस्य भेषजीः भेषज्यः ता आपः ते तव भेषजम् रोगनिवर्तकम् औषधं कृण्वन्तु कुर्वन्तु ॥

चतुर्थी ॥

वातरंहा भव वाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥ १ ॥

वातऽरंहाः । भव । वाजिन् । युज्यमानः । इन्द्रस्य । याहि । प्रऽसवे । मनःऽजवाः ।

१ See foot-note ६ on the previous page.

युञ्जन्तु । त्वा । मरुतः । विश्वऽवेदसः । आ । ते । त्वष्टा । पतऽसु । जवम् । दधातु ॥ १ ॥

हे वाजिन् अश्व युज्यमानः रथयुगे बध्यमानस्त्वं वातरंहाः वायुवेगो भव । इन्द्रस्य प्रसवे प्रेरणे अनुज्ञायां सत्यां मनोजवाः मनोवेगः सन् याहि गन्तव्यम् अवधिं प्राप्नुहि । विश्ववेदसः विश्वधनाः सर्वगोचरज्ञाना वा मरुतः एकोनपञ्चाशत्संख्याका देवाः त्वा त्वां युञ्जन्तु संनह्यन्तु । त्वष्टा देवः ते तव पत्सु पादेषु जवम् वेगम् आ दधातु करोतु ॥

पञ्चमी ॥

जवस्ते अर्वन् निहितो गुहा यः श्येने वाते उत योऽचरत् परीत्तः ।
तेन त्वं वाजिन् बलवान् बलेनाजिं जय समने पारयिष्णुः ॥ २ ॥

जवः । ते । अर्वन् । निऽहितः । गुहा । यः । श्येने । वाते । उत । यः । अचरत् । परीत्तः ।

तेन । त्वम् । वाजिन् । बलऽवान् । बलेन । आजिम् । जय । समने । पारयिष्णुः ॥ २ ॥

हे अर्वन् अश्व ते तव यो जवः वेगः गुहा गुहायाम् असाधारणे स्थाने निहितः निक्षिप्तोस्ति । श्येने पक्षिविशेषे वाते वायौ । उतशब्दः अप्यर्थे । यो जवः परीत्तः । परिदानं रक्षणार्थं दानम् । रक्षणाय दत्तः अचरत् चरति वर्तते । हे वाजिन् त्वं तेन वेगवता बलेन बलवान् भूत्वा समने संग्रामे पारयिष्णुः पारप्रापणशीलः सन् आजिम् युद्धं जय ॥

षष्ठी ॥

तनूष्टे वाजिन् तन्वं[1] नयन्ती वाममस्मभ्यं धावतु शर्म तुभ्यम् ।
अहुतो महो धरुणाय देवो दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयात् ॥ ३ ॥

---

१ B पारयिष्णुं. A[h] B D K K[m] पारयिष्णु. C[s] पारयिष्णुः corrected to पारयिष्णु. We with R S[m] P[2] J V C[r]. २ A B[h] B D K S[m] C[s] ३ for १. We with R K[m] V. ३ So all our authorities.

तनूः । ते । वाजिन् । तन्वम् । नयन्ती । वामम् । अस्मभ्यम् । धावतु । शर्म । तुभ्यम् ।

अहुतः । महः । धरुणाय । देवः । दिविऽइव । ज्योतिः । स्वम् । आ । मिमीयात् ॥ ३ ॥

हे वाजिन् वेगवन्नश्व ते तव तनूः शरीरयष्टिः तन्वम् आरूढस्य सादिनः शरीरं नयन्ती युद्धभूमिं प्रापयन्ती अस्मभ्यं वामम् वननीयं धनं धावतु प्रापयतु । तुभ्यं च शर्म शस्त्रक्षतादिव्यतिरेकेण सुखं यथा भवति तथा धावतु शीघ्रं गच्छतु । महः महतो दिवः अन्तरिक्षस्य अवकाशात्मकस्य ग्रामजनपदादेः धरुणाय धारणाय अहुतः अकुटिलगामी भूत्वा दिवि अन्तरिक्षे ज्योतिरिव सूर्यप्रकाश इव स्वम् स्वकीयं स्थानम् आ मिमीयात् आगच्छतु । ‡माङ् माने शब्दे च । व्यत्ययेन परस्मैपदम्‡ ॥

पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्वभाष्ये षष्ठकाण्डे नवमोनुवाकः ॥

दशमेनुवाके चत्वारि सूक्तानि । तत्र "यमो मृत्युः" इति प्रथमं सूक्तम् । अत्र आद्यस्य तृचस्य वास्तोष्पत्यगणे पाठाद् वास्तोष्पत्याख्यायां महाशान्तौ वास्तोष्पत्यगणप्रयुक्तो विनियोगोनुसंधेयः । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "वास्तोष्पत्यगणो वास्तोष्पत्यायाम" इति [न० क० १८] ॥

तथा यत्र वास्तोष्पत्यगणस्य विनियोगस्तत्र सर्वत्र अस्यापि गणप्रयुक्तो विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ बृहद्गणप्रयुक्तो विनियोग उन्नेयः ॥

तथा स्वस्त्ययनकर्मणि अनेन तृचेन आज्यसमित्पुरोडाशादिशप्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् । सूत्रितं हि । "यमो मृत्युः[६.९३] "विश्वजित्[६.१०७] शकधूमम्[६.१२८] भवाशर्वौ[११.२] इत्युप- "दधीत" इति [कौ० ७.१] ॥

---

१ See foot-note ३ on the previous page. २ P सम्.

1 S' repeats the word. 2 S' omits °प्र°.

अत्र "सं वो मनांसि" इति द्वितीयेन तृचेन सांमनस्यकर्मणि ग्राममध्ये संपातितोदकुम्भनिनयनम् तद्वत् सुराकुम्भनिनयनम् त्रिवर्षवत्सिकाया गोः पिशितानां प्राशनम् संपातितान्नप्राशनम् संपातितसुरायाः पायनम् तथाविधप्रपोदकपायनं च कुर्यात्। सूत्रितं हि। "सं वो मनांसि[६. ९४] "संज्ञानं नः[७. ५४] इति सांमनस्यानि। उदकुलिजं संपातवन्तं ग्रामं "परिहृत्य मध्ये निनयति। एवं सुराकुलिजम् त्रिहायण्या वत्सतर्याः शु-"क्यानि पिशितान्याशयति। भक्तं सुरां प्रपां संपातवत् करोति" इति [कौ० २. ३] ॥

"अश्वत्थो देवसदनः" इति तृचेन राजयक्ष्मकुष्ठादिरोगशान्त्यर्थं कुष्ठाख्यौषधमिश्रितं नवनीतम् अभिमन्त्र्य प्रतिलोमं व्याधितशरीरं प्रलिम्पेत्। "कुष्ठलिङ्गाभिर्नवनीतमिश्रेणाप्रतीहारं प्रलिम्पति" इति [कौ० ४. ४] सूत्रात् ॥

"गर्भो असि" इत्यनया अग्निचयने अप्सु प्रक्षिप्यमाणम् उख्यं भस्म ब्रह्मा अनुजपेत्। "गर्भो अस्योषधीनाम् इत्युख्यं भस्माप्सूप्यमानम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ५. १] ॥

"या ओषधयः" इति तृचेन ब्राह्मणाक्रोशे जलोदरे च शान्त्यर्थं सोमलताम् अग्नौ प्रक्षिप्य व्याधितं धूपयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन मधुमिश्रं दधि अभिमन्त्र्य पाययेत् ॥

तथा क्षीरं तक्रेण संमिश्र्य अभिमन्त्र्य पाययेत् ॥

तथा दधि मधु क्षीरम् उदश्वितं च एकीकृत्य पाययेत् ॥

सूत्रितं हि। "या ओषधय इति मन्त्रोक्तस्यौषधिभिर्धूपयति" इत्यादि [कौ० ४. ७] ॥

तथा "या ओषधयः" इत्यस्या अंहोलिङ्गगणे पाठाद् "अनुक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानाम् अंहोलिङ्गाभिः" [कौ० ४. ८] इत्यादिषु गणप्रयुक्तो विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

---

1 S' संपादितो°. 2 S' °कुंभ नि°. 3 S' संपादि°. 4 S' °मिश्रेण प्रतीहारं. 5 S' om. °ण°. 6 S' इत्युख्य°. 7 S' जलोदरं च.

तत्र प्रथमा ॥

यमो मृत्युरघमारो निर्ऋथो बभ्रुः शर्वोस्ता नीलशिखण्डः ।
देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसस्ते अस्माकं परि वृञ्जन्तु वीरान् ॥ १ ॥

यमः । मृत्युः । अघऽमारः । निःऽऋथः । बभ्रुः । शर्वः । अस्ता । नीलऽशिखण्डः ।
देवऽजनाः । सेनया । उत्तस्थिऽवांसः । ते । अस्माकम् । परि । वृञ्जन्तु । वीरान् ॥ १ ॥

यमयति नियमयति पापानुसारेण प्राणिनो निगृह्णातीति यमः । मारयति प्राणांस्त्याजयतीति मृत्युः । अघमारः अघेन पापेन निमित्तेन मारयतीति अघमारः । ‘‘पुंसि संज्ञायाम्०’’ इति घः । निर्ऋथः निःशेषेण ऋच्छति पीडयतीति निर्ऋथः । ऋ गतौ इत्यस्मान्निरुपसृष्टाद् औणादिकः स्थक् प्रत्ययः । बभ्रुः पिङ्गलवर्णः भरणशीलो वा । भृञ् भरणे इत्यस्मात् कुर्भ्रश्च [उ०१.२२] इति कुप्रत्ययः द्विर्भावश्च । शृणाति हिनस्तीति शर्वः । शॄ हिंसायाम् इत्यस्माद् वप्रत्ययः । अस्ता । असु क्षेपणे इत्यस्मात् ताच्छीलिकस्तृन् । क्षेपणशीलः । नीलशिखण्डः नीलाः कृष्णवर्णाः शिखण्डाः शिखा यस्य स तथोक्तः । एतत्संज्ञका यमादयो देवजनाः देवजातयः पापिनां हिंसार्थं सेनया स्वस्वपरिवारजनसंघेन उत्तस्थिवांसः उत्थिताः स्वस्थानाद् उक्रान्ता वर्तन्ते । उत्पूर्वात् तिष्ठतेर्लिटः क्वसुः । ‘‘वस्वेकाजाद्घसाम्’’ इति इडागमः । जगदुपद्रवकारिणस्ते अस्माकं वीरान् पुत्रपौत्रादीन् परि वृञ्जन्तु परिहरन्तु । मा बाधन्ताम् इत्यर्थः । वृजी वर्जने । ‘‘श्नसोरल्लोपः’’ इति अकारलोपः ॥

द्वितीया ॥

मनसा होमैर्हरसा घृतेन शर्वायास्त्रे उत राज्ञे भवाय ।

१ A शर्व्यो°. २ All our MSS. and Vaidikas °स्त्रा for °स्ता. We with Sāyaṇa. ३ P P J K अस्त्रा.

नमस्येभ्यो नम एभ्यः कृणोम्यन्यत्रास्मद्घविषा नयन्तु ॥ २ ॥

मनसा । होमैः । हरसा । घृतेन । शर्वाय । अस्ने । उत । राज्ञे । भवाय ।
नमस्येभ्यः । नमः । एभ्यः । कृणोमि । अन्यत्र । अस्मत् । अघऽविषाः ।
नयन्तु ॥ २ ॥

मनसा मनःसंकल्पमात्रेण हरसा हरणशीलेन तेजसा । तद्धेतुत्वात् ताच्छब्द्यम् । तेजोरूपेण घृतेन क्षरणशीलेन आज्येन क्रियमाणैः होमैः सह शर्वाय एतत्संज्ञाय देवाय । अस्ने क्षेप्त्रे एतन्नाम्ने । उत अपि च राज्ञे एतेषाम् ईश्वराय भवाय महादेवाय । एभ्यः "यमो मृत्युरघमारः" इति प्राग् अनुक्रान्तेभ्यः नमस्येभ्यः नमस्कारार्हेभ्यो नमस्कृणोमि नमस्करोमि । होमैर्नमस्कारेण च प्रीतास्ते अस्मत् अस्मत्तः अन्यत्र अघविषाः । अघं पापमेव विषं विषवन्मृतिकरं यासु ताः कृत्यास्तथोक्ताः । ता नयन्तु प्रापयन्तु ॥

तृतीया ॥

त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम ॥ ३ ॥

त्रायध्वम् । नः । अघऽविषाभ्यः । वधात् । विश्वे । देवाः । मरुतः । विश्वऽवेदसः ।
अग्नीषोमा । वरुणः । पूतऽदक्षाः । वातापर्जन्ययोः । सुऽमतौ । स्याम ॥ ३ ॥

हे विश्वे देवाः हे मरुतः विश्ववेदसः सर्वधनाः सर्वगोचरज्ञाना वा यूयम् अघविषाभ्यः प्रागुक्ताभ्यः कृत्याभ्यः वधात् तत्कृतात् हननात् नः अस्मान् त्रायध्वम् पालयत । ☒ अघविषाभ्य इति । "भीत्रार्थानाम्०" इति पञ्चमी ☒ । विश्वे देवा इत्युक्तम् के पुनस्त इत्याह । अग्नीषोमा अग्निश्च सोमश्च अग्नीषोमौ । ☒ "ईदग्नेः सोमवरुणयोः" इति अग्निशब्दस्य दीर्घः । "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः ☒ । वरुणः वारयिता पापिनां निग्रहीत्ता देवः पूतदक्षाः पूतं शुद्धं दक्षो बलं यस्य स तथोक्तः । अनेन मित्रो विवक्षितः । "मित्रं

हुवे पूतदक्षम्" इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० १.२.७]। तथा वयं वातापर्जन्ययोः वातश्च पर्जन्यश्च वातापर्जन्यौ। वातो वायुः सूत्रात्मा सर्वजगत्प्राणभूतः। पर्जन्यः वृष्टिप्रदो जीवनात्मा। "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ्। तयोः सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहात्मिकायां बुद्धौ स्याम भवेम ॥

चतुर्थी ॥

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि।
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥ १ ॥

सम्। वः। मनांसि। सम्। व्रता। सम्। आऽकूतीः। नमामसि।
अमी इति। ये। विऽव्रताः। स्थन। तान्। वः। सम्। नमयामसि ॥ १ ॥

"सं वो मनांसि" इति द्वे चतुर्थीपञ्चम्यौ पूर्ववद् [३.८.५,६] व्याख्येये ॥

पञ्चमी ॥

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि मम चित्तमनु चित्तेभिरेत।
मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यातमनुवर्त्मान एत ॥ २ ॥

अहम्। गृभ्णामि। मनसा। मनांसि। मम। चित्तम्। अनु। चित्तेभिः।
आ। इत।
मम। वशेषु। हृदयानि। वः। कृणोमि। मम। यातम्। अनुऽवर्त्मानः।
आ। इत ॥ २ ॥

षष्ठी ॥

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्चर्ध्यास्मेदं सरस्वति ॥ ३ ॥

ओते इत्याऽउते। मे। द्यावापृथिवी इति। आऽउता। देवी। सरस्वती।
आऽउतौ। मे। इन्द्रः। च। अग्निः। च। ऋध्यासम्। इदम्। सरस्वति ॥ ३ ॥

द्यावापृथिवी द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ। "दिवो द्यावा" इति द्यावा आदेशः। "सुपां सुलुक्०" इति पूर्वसवर्णदीर्घः।

उभे मे मह्यम् ओते आभिमुख्येन संतते परस्परं संबद्धे वा । देवी द्योतमाना सरस्वती द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तमाना वाग्देवता सापि ओता अस्मदाभिमुख्येन संबद्धा । ⁂आङ्पूर्वाद् वेञ् तन्तुसंताने इत्यस्मान्निष्ठा । "वचिस्वपि०" इत्यादिना संप्रसारणम्⁂ । तथा इन्द्रश्च अग्निश्च मे मह्यं मदभिलषितफलसिद्ध्यर्थम् ओतौ आभिमुख्येन संबद्धौ परस्परप्रोतौ वा एककार्योद्युक्तौ । अतः एतेषाम् अनुग्रहात् हे सरस्वति मन्त्रात्मिके देवि इदम् इदानीं वयम् ऋध्यास्म समृद्धा भूयास्म । ⁂ऋधु वृद्धौ⁂ ॥

सप्तमी ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षणं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ १ ॥

अश्वत्थः । देवऽसदनः । तृतीयस्याम् । इतः । दिवि ।
तत्र । अमृतस्य । चक्षणम् । देवाः । कुष्ठम् । अवन्वत ॥ १ ॥

"अश्वत्थो देवसदनः" इति सप्तम्यष्टम्यौ पूर्ववद् [५.४.३,४] अत्रापि व्याख्येये ॥

अष्टमी ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं[1] देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ २ ॥

हिरण्ययी । नौः । अचरत् । हिरण्यऽबन्धना । दिवि ।
तत्र । अमृतस्य । पुष्पम् । देवाः । कुष्ठम् । अवन्वत ॥ २ ॥

नवमी ॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि ॥ ३ ॥

गर्भः । असि । ओषधीनाम् । गर्भः । हिमऽवताम् । उत ।
गर्भः । विश्वस्य । भूतस्य । इमम् । मे । अगदम् । कृधि ॥ ३ ॥

---

१ J पुष्पं. We with A B Br B[h] D K K[m] R S[m] P P[2] V Cs Cr.

हे अग्ने त्वम् ओषधीनाम् । ओषः पाकः आसु धीयत इति ओषध्यः सर्वा वीरुधः । तासां गर्भः गर्भवद् अन्तरवस्थितः असि भवसि । उत अपि च हिमवताम् शीतस्पर्शवताम् अन्येषामपि वनस्पतीनां हिमवत्प्रमुखानां पर्वतानां वा हे अग्ने त्वं गर्भो भवसि । किं बहुना । विश्वस्य सर्वस्यापि भूतस्य भूतजातस्य त्वं गर्भो भवसि । अग्नेः सर्वजगत्परिपाकहेतुत्वेन सर्वत्र अन्तरवस्थानात् । ईदृशस्त्वम् इमं मे मदीयं जनम् अगदम् रोगरहितं कृधि कुरु ॥

दशमी ॥

या ओषधयः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥

याः । ओषधयः । सोमऽराज्ञीः । बह्वीः । शतऽविचक्षणाः ।
बृहस्पतिऽप्रसूताः । ताः । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ १ ॥

या ओषधयः वीरुधः सोमराज्ञीः सोमः अमृतमयो देवो राजा ईश्वरो यासां तास्तथोक्ताः । ⌜बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । जसि "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः⌝ । बह्वीः बह्व्यः अनेकविधाः । ⌜"बह्वादिभ्यश्च" इति ङीष्⌝ । शतविचक्षणाः शतविधदर्शनाः । रसवीर्यविपाकेन नानाविधज्ञानोपेता इत्यर्थः । बृहस्पतिप्रसूताः बृहस्पतिना देवेन तत्तद्रोगभैषज्येषु प्रस्ताः प्रेरिताः । विनियुक्ता इत्यर्थः । तास्तथाविधा ओषधयः नः अस्मान् अंहसः पापात् नानाविधरोगनिदानात् मुञ्चन्तु विसृजन्तु पृथक् कुर्वन्तु ॥

एकादशी ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ २ ॥

मुञ्चन्तु । मा । शपथ्यात् । अथो इति । वरुण्यात् । उत ।

---

१ B °वींशा°. R V °वींशा°. We with A D S[m] P P[ā] K K[m] Cs Cp.

1 S' दश° for शत°.

अथो इति। यमस्य। पड्वीशात्। विश्वस्मात्। देवऽकिल्बिषात् ॥ २ ॥

आपः ओषधयो वा मा मां शपथ्यात् शपथजनिताद् ब्राह्मणाक्रोश-जात् पापाद् मुञ्चन्तु वियोजयन्तु। अथो अपि च। उतशब्दः अप्य-र्थे। वरुण्यात् वरुणकृताद् अनृतवदनादिजनितात् पापादपि मुञ्चन्तु। "अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति" इति हि श्रुतिः [तै०ब्रा० १.७.२.६.]। अथो अपि च यमस्य अन्तकस्य संबन्धिनः पड्वीशात् पादबन्धनपाशाद् मुञ्चन्तु। पड्वीशशब्दः पृषोदरादिः। किम् अनेन विशेषकथनेन। विश्वस्मात् सर्वस्माद् देवकिल्बिषात् देवकृतात् पा-पाद् मां मुञ्चन्तु ॥

द्वादशी ॥

यच्चक्षुषा मनसा यच्च वाचोपारिम जाग्रतो यत् स्वपन्तः।
सोमस्तानि स्वधया नः पुनातु ॥ ३ ॥

यत्। चक्षुषा। मनसा। यत्। च। वाचा। उपऽआरिम। जाग्रतः। यत्। स्वपन्तः।
सोमः। तानि। स्वधया। नः। पुनातु ॥ ३ ॥

जाग्रतः जाग्रदवस्थापन्ना इन्द्रियैः शब्दस्पर्शादिविषयान् व्यवहरन्तो व-यम। जागृ निद्राक्षये। अस्मात् लटः शत्रादेशः। "जक्षित्या-दयः०" इति अभ्यस्तत्वाद् "नाभ्यस्तात्०" इति नुमभावः। च-क्षुषा। उपलक्षणम् एतत्। चक्षुरादीन्द्रियेण प्रतिषिद्धबाह्यविषयगतरू-पादिग्राहिणा। मनसा प्रतिषिद्धविषयसंकल्पविकल्पजनकेन मानसेन्द्रियेण यद् उपारिम यत् पापम् उपगताः। ऋ गतौ इत्यस्मात् लिटि रूपम्। यच्च पापं वाचा। कर्मेन्द्रियाणाम् उपलक्षणम् एतत्। वागादिकर्मेन्द्रियेण कामचारवादादिना उपगताः स्मः। तथा स्वपन्तः स्वप्नावस्था वयं तत्र बाह्येन्द्रियाणाम् उपरमात् केवलं मनसैव यत् पापं चकृम नः अस्माकं तानि पापानि सोमः पितृलोकाधिपतिर्देवः स्वधया पितॄन् उद्दिश्य अस्माभिः क्रियमाणया। स्वधाकारोपलक्षितेन पित्र्यकर्म-

णेत्यर्थः । पुनातु शोधयतु । ✕ पूञ् पवने । "प्वादीनां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् ✕ ॥

[इति] दशमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"अभिभूः"[६.९७] "इन्द्रो जयाति"[६.९८] "अभि त्वेन्द्र" [६.९९] इति तृचैः संग्रामजयकर्मणि आज्यहोमं सक्तुहोमम् धनुरिध्मेऽग्नौ धनुःसमिदाधानम् शरेध्मेऽग्नौ शरसमिदाधानम् संपातितांताभिमन्त्रितधनुःप्रदानं वा कुर्यात् । "अभिभूः इन्द्रो जयाति अभि त्वेन्द्र इति सांग्रामिकाणि । आज्यसक्तून् जुहोति" इत्यादिसूत्रात् [कौ०२.५] ॥

तथा एषां तृचानाम् अपराजितगणे पाठाद् उपाकर्मादिषु "अभयैरपराजितैः" इति [कौ०१४.३] "अपराजितगणोपराजितायाम्" [न० क०१८] इति च एवमादिषु गणप्रयुक्तो विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा इन्द्रमहाख्ये कर्मणि एतैस्तृचैः पूर्णहोमं जुहुयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि एतैस्तृचैः पशव आलंभ्याः ॥

तथा तत्रैव एतैरिन्द्रोपस्थानं कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "अभिभूर्यज्ञ इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तैरन्वारब्धे राजनि पूर्णहोमं जुहुयात्" इत्यादि [कौ०१४.४] ॥

अत्र "इन्द्रो जयाति" इति तृचेन परसेनाविद्वेषणकर्मणि राजा सेनां त्रिः परिगच्छेत् । "परि वर्त्मानि[६.६७] इन्द्रो जयाति[६.९८] इति राजा त्रिः सेनां परियाति" इति सूत्रात् [कौ०२.७] ॥

तथा महाव्रते संनद्धं राजानम् अन्यं वा ब्रह्मा अनेन अनुमन्त्रयेत । "राजानम् अन्यं वा मर्माणि ते[७.१२३] इति संनद्धम् इन्द्रो जयाति[६.९८] इत्यनुमन्त्रयते" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै०६.४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः ।
अभ्य१हं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः ॥ १ ॥

१ K अभ्या १°. A B D R S C अभ्या ३°. We with K V.

1 S' शरेध्मे for शरेध्मेऽग्नौ. 2 S संपादिता°. 3 S' आरब्ध°.

अभिऽभूः। यज्ञः। अभिऽभूः। अग्निः। अभिऽभूः। सोमः। अभिऽभूः। इन्द्रः।

अभि। अहम्। विश्वाः। पृतनाः। यथा। असानि। एव। विधेम। अग्निऽहोत्राः। इदम्। हविः॥ १॥

यज्ञः अस्माभिर्जयकामैः क्रियमाणो यागः अभिभूः शत्रूणाम् अभिभविता भवतु। तथा यागनिष्पादकोयं सांग्रामिकोग्निः अभिभूः अभिभविता अस्तु। यागसाधनभूतः सोमः अभिभूः शत्रूणाम् अभिभविता। तेन सोमेन तर्पित इन्द्रः अभिभूः अभिभविता॥ अहं शत्रुजयकामः विश्वाः सर्वाः पृतनाः सेनाः शात्रवीः यथा अभ्यसानि अभिभवानि एव एवम् अग्निहोत्राः अग्नौ जुह्वतो वयम् इदं संग्रामजयार्थं हविः विधेम विदध्याम। ✕विध विधाने। तौदादिकः✕॥

द्वितीया॥

स्वधास्तु मित्रावरुणा विपश्चिता प्रजावत् क्षत्रं मधुनेह पिन्वतम्।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत्॥ २॥

स्वधा। अस्तु। मित्रावरुणा। विपःऽचिता। प्रजाऽवत्। क्षत्रम्। मधुना। इह। पिन्वतम्।

बाधेथाम्। दूरम्। निःऽऋतिम्। पराचैः। कृतम्। चित्। एनः। प्र। मुमुक्तम्। अस्मत्॥ २॥

हे विपश्चिता विपश्चितौ मेधाविनौ हे मित्रावरुणा मित्रावरुणौ युवाभ्यां स्वधा। अन्ननामैतत्। हविर्लक्षणम् अन्नम् अस्तु तृप्तिकरं भवतु। तौ युवाम् इह अस्मिन् राजनि प्रजावत् प्रजाभिर्युक्तं क्षत्रम् बलं मधुना मधुररसेन पिन्वतम् सिञ्चतम्। ✕पिवि सेचने। इदित्वान्नुम्✕। निर्ऋतिम् पापदेवतां पराजयकारिणीं पराचैः पराङ्मुखं दूरं बाधेथाम्। अस्मत्तो दूरदेशे यथा सा पराङ्मुखी विनश्यति तथा

१ B पिन्वत.

हिंस्तम् इत्यर्थः । कृतं चित् शत्रुभिः कृतमपि एनः पापं पराजयनिमित्तम् अस्मत् सकाशात् प्र मुमुक्तम् प्रमोचयतम् । ✕मुचू मोक्षणे । छान्दसः शपः श्लुः✕ ॥

तृतीया ॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्मं प्रमृणन्तमोजसा ॥ ३ ॥

इमम् । वीरम् । अनु । हर्षध्वम् । उग्रम् । इन्द्रम् । सखायः । अनु । सम् । रभध्वम् ।
ग्रामऽजितम् । गोऽजितम् । वज्रऽबाहुम् । जयन्तम् । अज्मम् । प्रऽमृणन्तम् । ओजसा ॥ ३ ॥

इमम् अस्मदीयं वीरम् वीर्यवन्तं राजानम् अनु हे सैनिकाः हर्षध्वम् वीररसेन हृष्टा भवत । कीदृशम् । उग्रम् उद्गूर्णबलम् इन्द्रम् परमैश्वर्ययुक्तम् हे सखायः समानख्यानाः सैनिकाः अनु सं रभध्वम् राजानम् अनुसृत्य युद्धोद्युक्ता भवत । यद्वा इन्द्रः संग्रामाधिदेवता स एवात्र स्तूयते । अस्मिन् पक्षे हे सखायः समानख्याना मरुत इत्येतावानेव विशेषः । कीदृशम् इन्द्रम । ग्रामजितम् ग्रामान् जयन्तं गोजितम् गाः शात्रवीर्जयन्तम् अपहरन्तं वज्रबाहुम् वज्रहस्तम् उद्यतायुधम् अत एव जयन्तम् शत्रून् पराजितान् कुर्वन्तम् । अज्म अजनशीलं क्षेपणशीलं त्रुबलम् ओजसा बलेन प्रमृणन्तम् प्रकर्षेण हिंसन्तम् । मृञ् हिंसायाम् । "श्नाभ्यस्तयोरातः" इति आलोपः✕ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयाते ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह ॥ १ ॥

इन्द्रः । जयाति । न । परा । जयाते । अधिऽराजः । राजऽसु । राजयाते ।
चर्कृत्यः । ईड्यः । वन्द्यः । च । उपऽसद्यः । नमस्यः । भव । इह ॥ १ ॥

अस्मिन् संग्रामे अस्य राज्ञः साहाय्यार्थम् आगत इन्द्रः तदात्मको वा अयं राजा जयाति जयतु न परा जयातै पराजयं मा प्राप्नोतु [1] अधिको राजा अधिराजः सर्वेषां राज्ञाम् अधिपतिरिन्द्रः राजसु अन्येषु भूपालेषु राजयातै अस्मान् राजयतु प्रकाशयतु वीर्यवत्तया प्रख्यापयतु। ॥ राजयतेर्लेटि आडागमः। "वैतोन्यत्र" इति ऐकारः ॥। स च इन्द्रः चर्कृत्यः अतिशयेन शत्रूणां कर्तिता छेत्ता। ॥ कृती छेदने इत्यस्माद् यङन्तात् पचाद्यच् ॥। ईड्यः स्तुत्यः वन्द्यः वन्दनीयः। ॥ उभयत्र "ऋहलोर्ण्यत्" इति ण्यत्। "ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः" इति आद्युदात्तत्वम् ॥। उपसद्यः उपसदनीयः सर्वैः सेवनीयः। हे इन्द्र यस्मात् त्वम् एवंगुणविशिष्टः तस्माद् इह अस्मिन् संग्रामे नमस्यः अस्माभिः पूजनीयो भव। ॥ "नमसः पूजायाम्" इति स्मरणाद् नमःशब्दात् पूजार्थे "नमोवरिवः०" इति क्यच्। तदन्तात् पचाद्यच् ॥ ॥

पञ्चमी ॥

त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम्।
त्वं दैवीर्विशं इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु ॥ २ ॥

त्वम्। इन्द्र। अधिऽराजः। श्रवस्युः। त्वम्। भूः। अभिऽभूतिः। जनानाम्।

त्वम्। दैवीः। विशः। इमाः। वि। राज। आयुष्मत्। क्षत्रम्। अजरम्। ते। अस्तु ॥ २

इन्द्राभेदेन राज्ञः स्तुतिः। हे इन्द्र त्वम् अधिराजः राज्ञाम् अन्येषाम् अधिकः सन् श्रवस्युः। श्रव इत्यन्नस्य यशसो वा नामधेयम्। तद्युक्तो भवसि। ॥ "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः। अधिराज इति। "राजाहःसखिभ्यः०" इति टच् समासान्तः ॥। हे इन्द्र त्वं जनानाम् सर्वेषां प्राणिनाम् अभिभूतिः अभिभविता स्वमहिम्ना तिरस्क-

१ P देवीः.

1 S सहायार्थम्.

र्तो भूः भवसि । ॥भवतेश्छान्दसे लुङि "बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि" इति अडभावः॥ । दैवीः देवसंबन्धिनीः इमा विशः प्रजाः त्वं वि राज ईशिष्व । ॥राजतिः ऐश्वर्यकर्मा॥ । हे राजन् ते तव आयुष्मत् चिरकालजीवनोपेतम् अजरम् जरारहितम् अपचयरहितं क्षत्रम् बलम् अस्तु भवतु । ॥अजरम् इति । "नञो जरमरमित्रमृताः" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम्॥ ॥

षष्ठी ॥

प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहन्छत्रुहो[1]सि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि[2] हव्यः[3] ॥ ३ ॥

प्राच्याः । दिशः । त्वम् । इन्द्र । असि । राजा । उत । उदीच्याः । दिशः । वृत्रऽहन् । शत्रुऽहः । असि ।
यत्र । यन्ति । स्रोत्याः । तत् । जितम् । ते । दक्षिणतः । वृषभः । एषि । हव्यः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वं प्राच्या दिशः राजासि अधिपतिर्भवसि । उत उदीच्याः उत्तरस्या अपि दिशः अधिपतिरसि । प्राचीग्रहणं प्रतीच्या अप्युपलक्षणम् । उदीचीग्रहणं दक्षिणस्या अपि उपलक्षणम् । अत एव देशस्य द्वैविध्यम् उक्तम् ।

देशः प्राग्दक्षिणः प्राच्य उदीच्यः पश्चिमोत्तरः

इति । तस्मात् सर्वासां दिशाम् अधिपतिरसीत्यर्थः । हे वृत्रहन् वृत्राणां शत्रूणां हन्तरिन्द्र त्वं शत्रुहोसि अस्मदीयानां शत्रूणां हन्ता भवसि । ॥"आशिषि हनः" इति हन्तेर्डप्रत्ययः॥ । यत्र यस्मिन् भूप्रदेशे स्रोत्याः स्रोतोर्हा जलप्रवाहा यन्ति प्रवहन्ति तत् सर्वं स्थानं ते तव जितम् स्वकीयमेव भवति । कृत्स्नं भूमण्डलं त्वदायत्तमेवेत्यर्थः । ईदृशो वृषभः कामानां वर्षिता हव्यः अस्माभिराह्वातव्यः सन् संग्राम-

---

१ R वृत्रहंछ°. २ A K K[m] P V °षि हव्यः. D C[s] °षि हव्यः. B C[s] °षि हव्यः corrected into °षि हव्यः. We with R P S[m] J C[r]. ३ P[c] K हव्यः. We with P J C[r].

जयार्थं दक्षिणतः अस्मद्दक्षिणभागे युद्धसमये एषि[1] गच्छ साहाय्यार्थं वर्तस्व। ॥ह्वय इति। "बहुलं छन्दसि" इति ह्वयतेः संप्रसारणे "अचो यत्" इति यत्। "यतोनावः" इति आद्युदात्तत्वम्॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम्॥

"अभि त्वेन्द्र" इति तृचस्य संग्रामजयादिकर्मसु पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः। सूत्रमपि तत्रैवोदाहृतम्॥

तथा अग्निष्टोमे प्रातःसवने अनेन ब्रह्मा स्तोत्रम् अनुमन्त्रयेत। "अभि त्वेन्द्रेति स्तोत्रानुमन्त्रणम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. ८]॥

"देवा अदुः" इति तृचेन स्थावरजङ्गमविषभैषज्यार्थं वल्मीकमृदः संपातिताभिमन्त्रिताया बन्धनम् उदकेन सह पायनम् आचमनम् प्रलेपनं वा कुर्यात्। सूत्रितं हि। "[देवा] अदुरिति वल्मीकेन बन्धनपायनाचमनप्रदेहनम् उदकेन" इति [कौ० ४. ७]॥

तथा आहिताग्नेरन्त्यसंस्कारे पुरोडाशं हृदये निधाय अनेन अनुमन्त्रयेत। सूत्रितं हि। "[देवा अदुरित्युरसि पुरोडाशम्" इति कौ० ११. २]॥

तत्र प्रथमा॥

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वाहूरणाद्धुवे।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम्॥ १॥

अभि। त्वा। इन्द्र। वरिमतः। पुरा। त्वा। अंहूरणात्। हुवे।
ह्वयामि। उग्रम्। चेत्तारम्। पुरुऽनामानम्। एकऽजम्॥ १॥

हे इन्द्र त्वा त्वां वरिमतः उरुत्वाद्धेतोः। ॥उरुशब्दाद् इमनिचि "प्रियस्थिर०" इत्यादिना वर् आदेशः॥। विस्तीर्णशरीरत्वेन युगपत्संनिधानसमर्थत्वात् संग्रामेषु अंहूरणात् कुटिलगमनात् पराजयनिमित्तात् पुरा पूर्वमेव अभि हुवे आभिमुख्येन ह्वयामि। आह्वाने कार-

1 S' ए for एषि. The text in S' is एधि. 2 S' सहायार्थं. 3 S' संपादिता०. 4 *Kausika*: देवा यज्ञमिति for देवा अदुरिति. But Kesava comments upon the reading देवा अदुः. 5 S' Sâyana's text is पुरात्वंहूरणाद्धवे. Does Sâyana mean to read पुरा तु पुरा एव=पूर्वमेव?

णम आह । उग्रम उद्गूर्णबलं चेत्तारम वेदितारं जयोपायज्ञं पुरुनामानम पुरुभिर्बहुभिः प्रशस्तैर्नामधेयैर्युक्तम यद्वा बहूनां शत्रूणां नमयितारम एकजम । एक एव जायते युद्धेषु प्रादुर्भवतीति एकजः । तम असहायशूरम इन्द्रं ह्वयामि ॥

द्वितीया ॥

यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन् न उदीरते ।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः ॥ २ ॥

यः । अद्य । सेन्यः । वधः । जिघांसन् । नः । उत्ऽईरते ।
इन्द्रस्य । तत्र । बाहू इति । समन्तम । परि । दद्मः ॥ २ ॥

अद्य इदानीं सेन्यः शत्रुसेनासंबन्धी यो वधः हननसाधनम आयुधं नः अस्मान् जिघांसन् हन्तुम इच्छन् उदीरते उद्गच्छति । ईर गतौ कम्पने च । छान्दसः शपो लुगभावः । जिघांसन्निति । "अज्झनगमां सनि" इति दीर्घः । "अभ्यासाच्च" इति कुत्वम । तत्र तस्मिन् वधे इन्द्रस्य बाहू हस्तौ अस्मद्रक्षार्थं समन्तम सर्वतः परि दध्मः प्राकारवत् परितो धारयामः ॥

तृतीया ॥

परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः ।
देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥ ३ ॥

परि । दद्मः । इन्द्रस्य । बाहू इति । समन्तम । त्रातुः । त्रायताम । नः ।
देव । सवितः । सोम । राजन् । सुऽमनसम । मा । कृणु । स्वस्तये ॥ ३ ॥

त्रातुः पालयितुरिन्द्रस्य बाहू हस्तौ समन्तम सर्वतः परि दध्मः । अतः स इन्द्रः नः अस्मान् त्रायताम रक्षतु ॥ हे सवितः सर्वस्य प्रेरक देव हे राजन् सोम स्वस्तये क्षेमाय अविनाशाय मा मां संग्रामे सुमनसम जयेन शोभनमनस्कं कृणु कुरु । "सोमनसी अलोमोषसी" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम ॥

---

१ P P̂ J Cp जिघांसम. We with Sâyana. २ So P P̂ J Cp.

चतुर्थी ॥

देवा अदुः सूर्यो अदाद् द्यौरदात् पृथिव्यदात्।
तिस्रः सरस्वतीरदुः सचित्ता विषदूषणम् ॥ १ ॥

देवाः। अदुः। सूर्यः। अदात्। द्यौः। अदात्। पृथिवी। अदात्।
तिस्रः। सरस्वतीः। अदुः। सऽचित्ताः। विषऽदूषणम् ॥ १ ॥

देवा इन्द्रादयः सर्वे सचित्ताः समानमनस्काः सन्तः विषदूषणम् विषस्य स्थावरजङ्गमोद्भवस्य दूषकं निवर्तकम् औषधम् अदुः दत्तवन्तः। ✕आशंसायां भूतवत् प्रत्ययः। डुदाञ् दाने। लुङि "गातिस्था०" इति सिचो लुक्। "आतः" इति झेर्जुस् आदेशः✕। सूर्यः सर्वस्य प्रेरक आदित्योपि विषदूषणम् अदात् ददातु। द्यौः द्युलोकः अदात् ददातु। पृथिवी भूमिदेवता अदात् ददातु। तिस्रः त्रिसंख्याकाः सरस्वतीः सरस्वत्यस्त्रयीरूपाः। यद्वा इडा सरस्वती भारतीति तिस्रो देव्यः साहचर्यात् सरस्वत्य उच्यन्ते। ताश्च विषनिवारकम् इदम् औषधम् अदुः ददतु प्रयच्छन्तु ॥

पञ्चमी ॥

यद् वो देवा उपजीका[1] आसिञ्चन् धन्वन्युदकम्।
तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम् ॥ २ ॥

यत्। वः। देवाः[2]। उपऽजीकाः। आऽअसिञ्चन्[3]। धन्वनि। उदकम्।
तेन। देवऽप्रसूतेन। इदम्। दूषयत। विषम् ॥ २ ॥

हे देवाः वः युष्माकं संबन्धिन्यः उपजीकाः वल्मीकस्य निर्मात्र्यः एतत्संज्ञाः प्राणिविशेषा धन्वनि निरुदके स्थाने युष्मदीयाद् वरप्रदानाद् यद् उदकम् आसिञ्चन् अक्षारयन्। तथा च तैत्तिरीयकम्। "ता उ-
"पदीका अब्रुवन् वरं वृणामहै। अथ व इमं रन्धयाम। यत्र क च
"खनाम तदपोभितृणदामेति। तस्माद् उपदीका यत्र क च खनन्ति

१ B उपजीका. We with A B Bp D K Km R Sm P Pm J V C Cp. २ P Cp देवाः. ३ J °असिंचन्.

"तदपोभितृन्दन्ति" इति [तै० आ० ५.१.४] । तेनोदकेन देवप्रसूतेन दैवैर्दत्तेन इदं विषं दूषयत निवर्तयत ॥

षष्ठी ॥

असुराणां दुहितासि सा देवानामसि स्वसा ।
दिवस्पृथिव्याः संभूता सा चकर्थारसं विषम् ॥ ३ ॥

असुराणाम् । दुहिता । असि । सा । देवानाम् । असि । स्वसा ।
दिवः । पृथिव्याः । समऽभूता । सा । चकर्थ । अरसम् । विषम् ॥ ३ ॥

हे वल्मीकमृत्तिके असुराणाम् सुरविरोधिनां दानवानां दुहितासि कुमारी भवसि । देवानाम् इन्द्रादीनामपि सा त्वं स्वसासि भगिनी भवसि । दिवः अन्तरिक्षाद् अवकाशात्मकात् पृथिव्याश्च संभूता उत्पन्ना सा वल्मीकमृत्तिका विषम् स्थावरजङ्गमोद्भवम् अरसम् रसरहितं निर्वीर्यं चकर्थ आकर्षतु । ✕कृष आकर्षणे । छान्दसो लिट् ✕ ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

"आ वृषायस्व" इति तृचेन वाजीकरणकामः एकशाखार्कमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य अर्कसूत्रेण बध्नीयात् ॥

तथा कृष्णमृगचर्ममणिं संपात्य अभिमन्त्र्य कृष्णमृगवालेन बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । "आ वृषायस्वेत्युभयम् अप्येति" इति [कौ० ५.४] ॥

"यथायं वाहः" इति तृचेन स्त्रीवशीकरणकर्मणि वृक्षत्वक्शरखण्डतगराञ्जनकुष्ठवातसंभ्रमतृणादिद्रव्याणि पेषयित्वा आज्येन आलोड्य स्त्रिया अङ्गम् अनुलिम्पेत् । सूत्रितं हि । "वाऽच्छ मे[६.९] यथायं वाहः "[६.१०२] इति संस्पृष्टयोर्वृक्षत्वलिबुजयोः शकलावन्तरेणेषुतगराञ्जनकुष्ठम- "धुघरेष्वमथिततृणम् आज्येन संनीय संस्पृशति" इति [कौ० ४.११] ॥

१ A Ś चकर्तार°. We with B D K Ḳ R P P̊ J V C- Cp. २ P अस्ति. We with P J Cp.

1 S' °कुष्ठा° for °कुष्ठ°. We with *Kaus.* ka. 2 So S'. *Kausika* and his two commentators: मदुघ°.

तत्र प्रथमा ॥

आ वृषायस्व श्वसिहि वर्धस्व प्रथयस्व च।
यथाङ्गं वर्धतां शेपस्तेन योषितमिज्जहि ॥ १ ॥

आ। वृषऽयस्व। श्वसिहि। वर्धस्व। प्रथयस्व। च।
यथाऽअङ्गम्। वर्धताम्। शेपः। तेन। योषितम्। इत्। जहि ॥ १ ॥

हे पुरुष त्वम् आ वृषायस्व आ समन्ताद् वृषा सेचनसमर्थः पुंगवः स इव आचर। अनेन बद्धेन अर्कमणिना बहुरेतस्को भवेत्यर्थः। ※वृषशब्दात् "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इति क्यङ्※। श्वसिहि प्राणिहि। दृढप्राणो बलवान् भवेत्यर्थः। ※श्वस प्राणने। अदादित्वात् शपो लुक्। "रुदादिभ्यः सार्वधातुके" इति इडागमः※। वर्धस्व उपचीयमानावयवो भव प्रथयस्व च विस्तीर्णशरीरो भव। ※प्रथ विस्तारे। चुरादिरदन्तः※। यथा येन प्रकारेण त्वदीयम् अङ्गं शेपः पुंस्प्रजननं वर्धताम्। उपचितावयवं सत् मिथुनीभवनक्षमं भवति तथा वर्धस्व प्रथयस्व चेति संबन्धः। तेन प्रवृद्धेन शेपसा योषितम् सुरतार्थिनीं स्त्रियं जहि गच्छ। इच्छब्दः अवधारणे। स च उक्तफलस्य अव्यभिचारं सूचयति ॥

द्वितीया ॥

येन कृशं वाजयन्ति येन हिन्वन्त्यातुरम्।
तेनास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥ २ ॥

येन। कृशम्। वाजयन्ति। येन। हिन्वन्ति। आतुरम्।
तेन। अस्य। ब्रह्मणः। पते। धनुःऽइव। आ। तानय। पसः ॥ २ ॥

येन रसविशेषेण वंशम् वन्ध्यं शुष्कवीर्यं पुरुषं वाजयन्ति वाजीकुर्वन्ति प्रजननसमर्थवीर्योपेतं कुर्वन्ति। येन रसविशेषेण आतुरम् रोगार्तं पुरुषं हिन्वन्ति प्रीणयन्ति पोषयन्ति। ※हिवि प्रीणने। इदित्वान्नुम※। हे

१ ABDR$^{m}$SVCs यथा°. We with B$^{h}$K$^{m}$KPP$^{2}$JCp. २ P श्वसिहि.

ब्रह्मणस्पते मन्त्रराशेः पालक देव तेन रसविशेषेण अस्य वाजीकरणकामस्य पसः । प्रजननमैतत् । पुंस्प्रजननं धनुरिव धनुर्दण्डमिव आ तानय आततम् उन्नमितं कुरु ॥

तृतीया ॥

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि ।
क्रमस्वर्शी इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥ ३ ॥

आ । अहम् । तनोमि । ते । पसः । अधि । ज्याम्ऽइव । धन्वनि ।
क्रमस्व । ऋशःऽइव । रोहितम् । अनवऽग्लायता । सदा ॥ ३ ॥

"आहं तनोमि" इत्येषा तृतीया पूर्ववद् [४.४.७] व्याख्येया ॥

चतुर्थी ॥

यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।
एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥ १ ॥

यथा । अयम् । वाहः । अश्विना । सम्ऽऐति । सम् । च । वर्तते ।
एव । माम् । अभि । ते । मनः । सम्ऽऐतु । सम् । च । वर्तताम् ॥ १ ॥

हे अश्विना अश्विनौ [यथा] अयं वाहः सुशिक्षितोश्वः समैति वाहकेच्छानुगुण्येन सम्यग् वा आगच्छति सं च वर्तते सम्यक् तदधीनं वर्तते च एव एवम् हे कामिनि ते त्वदीयं मनः मां कामुकम् अभिलक्ष्य समैतु सम्यग् आगच्छतु । सम्यग् मदधीनं वर्ततां च । मय्येव सर्वदा रमताम् इत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

आहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव ।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥ २ ॥

आ । अहम् । खिदामि । ते । मनः । राजऽअश्वः । पृष्ट्याम्ऽइव ।

---

१ On the various readings in this couplet see IV. 1. 7. २ P वाहः. ३ A K K V पृष्ठ्या°. We with B D R S P P J C. C r.

रेष्मऽछिन्नम। यथा। तृणम्। मयि। ते। वेष्टताम्। मनः॥ २॥

हे कामिनि ते तव मनः चित्तम् अहम् अनेन प्रयोगेण आ खिदामि मदभिमुखम् उत्खनामि उन्मूलयामि। आवर्जयामीत्यर्थः। ✕खिद उत्खाते✕। तत्र दृष्टान्तः। राजाश्वः अश्वानां राजा राजाश्वः। ✕राजदन्तादिषु [पठित]त्वात् षष्ठ्याः परनिपातः✕। स यथा अश्वश्रेष्ठः पृष्ठ्याम् शङ्कुबद्धां सबन्धनरज्जुं लीलया आखिदति तद्वत्। रेष्मच्छिन्नम रेष्मा रेषको वात्यात्मको वायुः तेन च्छिन्नं भग्नं तृणं यथा तद्वशं सत् परिभ्रमद् वर्तते हे कामिनि ते त्वदीयं मनः तद्वद् मयि वेष्टताम् मदधीनं सत् परिभ्राम्यतु मा कदाचिद् अपगच्छतु। ✕वेष्ट वेष्टने✕॥

आञ्जनस्य मधुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे॥ ३॥

आऽअञ्जनस्य। मधुघस्य। कुष्ठस्य। नलदस्य। च।
तुरः। भगस्य। हस्ताभ्याम्। अनुऽरोधनम्। उत्। भरे॥ ३॥

आञ्जनस्य अञ्जनसाधनद्रव्यस्य त्रिककुत्पर्वतोद्भवस्य नीलाञ्जनादिमणेः मधुघस्य मधूकवृक्षस्य यष्टिमधुकस्य वा कुष्ठस्य एतत्संज्ञकस्य औषधस्य नलदस्य। सुगन्धिस्तृणविशेषो नलदः उशीरापरपर्यायः। एतेषां द्रव्याणाम समुच्चयार्थश्चकारः। एतेषां समुदितानां द्रव्याणां संबन्धि अनुरोधनम। अनुरुध्यते वशीक्रियते अनेनेति अनुरोधनम अनुलेपनम। ✕अनौ रुध कामे इत्यस्मात् करणे ल्युट्✕। ईदृशम् अञ्जनादिद्रव्यसाधनभूतम् अनुलेपनं तुरः त्वरमाणस्य भगस्य सौभाग्यकरस्य देवस्य हस्ताभ्याम् अहम् उद् भरे उद्धरामि। त्वदीयम् अङ्गम् अनुलिम्पामीत्यर्थः॥

चतुर्थं सूक्तम्॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये षष्ठकाण्डे दशमोनुवाकः॥

---

१ ABDKRC- श्यामनु°. We with KSPPJVCp.

एकादशेनुवाके पञ्च सूक्तानि । अत्र "संदानं वः"[१०३] "आदानेन"[१०४] इति तृचाभ्यां संग्रामजयकर्मणि भाङ्गपाशान् अन्यान् वा इङ्गिडालंकृतान् पाशान् संपात्य अभिमन्त्र्य परसेनाक्रमणस्थानेषु प्रक्षिपेत् । "संदानं व आदानेनेति पाशैरादानसंदानानि" इति हि सूत्रम् [कौ०२.७] ॥

तत्र प्रथमा ॥

संदानं वो बृहस्पतिः संदानं सविता करत् ।
संदानं मित्रो अर्यमा संदानं भगो अश्विना ॥ १ ॥
समऽदानम् । वः । बृहस्पतिः । समऽदानम् । सविता । करत् ।
समऽदानम् । मित्रः । अर्यमा । समऽदानम् । भगः । अश्विना ॥ १ ॥

हे शत्रुसेनाः बृहस्पतिर्देवः वः युष्माकं संदानम् बन्धनम् एभिः प्रक्षिप्तैः पाशैः करत् करोतु । ॐसंपूर्वो द्यतिर्बन्धने वर्तते । तस्माद् भावे ल्युट् ॐ । सविता सर्वप्रेरको देवः संदानम् युष्माकं बन्धनं करोतु । ॐकरोतेर्लेटि अडागमः । व्यत्ययेन [वा] शप् ॐ । मित्रश्च अर्यमा च संदानम् बन्धनं करोतु । भगश्च अश्विना अश्विनौ च संदानम् बन्धनं कुर्वन्तु ॥

द्वितीया ॥

सं परमान्त्समवमानथो सं द्यामि मध्यमान् ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥ २ ॥
सम् । परमान् । सम् । अवमान् । अथो इति । सम् । द्यामि । मध्यमान् ।
इन्द्रः । तान् । परि । अहाः । दाम्ना । तान् । अग्ने । सम् । द्य । त्वम् ॥ २ ॥

परमाम् उत्कृष्टां दूरदेशस्थां वा शत्रुसेनां पाशैरहं सं द्यामि बध्नामि । ॐदो अवखण्डने । "ओतः श्यनि" इति ओकारलोपः । अत्र उपसर्गवशाद् बन्धनार्थः ॐ । अवमाम् अपकृष्टाम् आसन्नदेशवर्तिनीं वा परसेनां सं द्यामि । अथो अपि च मध्यमाम् मध्यव-

र्तिनीमपि सेनां सं द्यामि । तान् तथाविधसेनापतीन् शत्रून् संग्रामाधिपतिरिन्द्रः पर्यहाः परिहरतु वर्जयतु । हरतेर्लुङि च्लेः सिच् । "बहुलं छन्दसि" इति इडभावे "हल्ङ्या०" इत्यादिलोपे "रात् सस्य" इति सलोपः । हे अग्ने तान् परिहृतान् शत्रून् दाम्ना पाशेन त्वं सं द्य बधान ॥

तृतीया ॥

अमी ये युधमायन्ति केतून् कृत्वानीकशः ।
इन्द्रस्तान् पर्यहार्दाम्ना तानग्ने सं द्या त्वम् ॥ ३ ॥

अमी इति । ये । युधम् । आऽयन्ति । केतून् । कृत्वा । अनीकऽशः ।
इन्द्रः । तान् । परि । अहाः । दाम्ना । तान् । अग्ने । सम् । द्य । त्वम् ॥३॥

अमी दूरे दृश्यमाना ये शत्रवः युधम् युद्धम् आयन्ति आगच्छन्ति अनीकशः संघशः केतून् कृत्वा ध्वजान् कृत्वा । आगत्य युध्यन्त इत्यर्थः । इन्द्रस्तान् इत्यादि पूर्ववत् ॥

चतुर्थी ॥

आदानेन संदानेनामित्राना द्यामसि ।
अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् ॥ १ ॥

आऽदानेन । समऽदानेन । अमित्रान् । आ । द्यामसि ।
अपानाः । ये । च । एषाम् । प्राणाः । असुना । असून् । सम् । अच्छिदन् ॥ १ ॥

आदीयते आबध्यते अनेनेति आदानम् पाशयन्त्रविशेषः । तेन यत् संदानं बन्धनं तेन अमित्रान् शत्रून् आ द्यामसि आद्यामः आबध्नीमः । "इदन्तो मसिः" । तेषां शत्रूणां ये च अपानाः अन्तर्मुखाः प्राणवायुवृत्तयः ये च प्राणाः बहिर्मुखाः श्वासवृत्तयः तान् असून् प्राणान् असुना प्राणेन समच्छिदम् सम्यक् छिनद्मि । पाशयन्त्रेण गलगतेन प्राणापानगती निरुध्य परस्परोपमर्देन हन्मीत्यर्थः । दिर् द्वैधीकरणे । "इरितो वा" इति च्लेः अङ् आदेशः ॥

पञ्चमी ॥

इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम् ।
अमित्रा येत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् ॥ २ ॥

इदम् । आऽदानम् । अकरम् । तपसा । इन्द्रेण । सम्ऽशितम् ।
अमित्राः । ये । अत्र । नः । सन्ति । तान् । अग्ने । आ । द्य । त्वम् ॥ २ ॥

इदम् आदानम् आबन्धनसाधनं पाशयन्त्रं तपसा अभिचारकर्मोक्त-नियमविशेषेण अकरम् अकार्षम् । ✠ "कृमृदृरुहिभ्यः०" इति क्लेः अङ् आदेशः ✠ । तच्च पूर्वम् इन्द्रेण संशितम् सम्यक् तीक्ष्णीकृतम् । ✠ शो तनूकरणे । "शाच्छोरन्यतरस्याम्" इति इत्त्वम् ✠ । अत्र अस्मिन् संग्रामे नः अस्माकम् अमित्राः शत्रवो ये सन्ति हे अग्ने तान् सर्वान् शत्रून् त्वम् आ द्य आबधान पाशयन्त्रेण गृहाण ॥

षष्ठी ॥

एनान् द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ ।
इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्यः कृणोतु नः ॥ ३ ॥

आ । एनान् । द्यताम् । इन्द्राग्नी इति । सोमः । राजा । च । मेदिनौ ।
इन्द्रः । मरुत्वान् । आऽदानम् । अमित्रेभ्यः । कृणोतु । नः ॥ ३ ॥

इन्द्रश्च अग्निश्च इन्द्राग्नी मेदिनौ मेदस्विनौ अस्माभिर्दत्तेन हविषा माद्यन्तौ वा देवौ एनान् अस्मच्छत्रून् आ द्यताम् आबध्नीताम् । तथा सोमो राजा च आबध्नातु । मरुत्वान् मरुद्गणैर्युक्त इन्द्रः नः अस्माकम् अमित्रेभ्यः शत्रुभ्यः आदानम् आबन्धनं कृणोतु करोतु ॥

[इति] एकादशेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"यथा मनो मनस्कैतः" इति तृचेन कासश्लेष्मरोगादिशान्त्यर्थं सक्तुमन्थम् अभिमन्त्र्य भक्षयेत् ॥

---

१ All our Saṁhitā authorities °नां, and pada authorities °नाम्, except Cp which we follow. २ P द्यताम्.

तथा अनेन उदकम् अभिमन्त्र्य पाययेत् ॥

तथा अनेन सूर्यम् उपतिष्ठेत ॥

"यथा मनः[६.१०५] अव दिवः[७.११२] इत्यरिष्टेन" इति हि सूत्रम् [कौ०४.७] ॥

"आयने" इति तृचेन गृहादीनाम् अग्निदाहनिवृत्त्यर्थं गृहमध्ये गर्तं कृत्वा उदकम् अभिमन्त्र्य निनयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन अवकाम् अभिमन्त्र्य गृहस्योपरि वितनुयात् ॥

तथा तण्डमाषके दिव्ये तैलादिकम् अभिमन्त्र्य शपथकर्त्रे प्रयच्छेत् ॥

तथा अग्निदग्धम् एतत्तृचेन अभिमन्त्रितोदकेन प्रक्षालयेत् ॥

सूत्रितं हि । "आयने त इति शमनम् । अन्तरा ह्रदं करोति । "शाले चावकया शालां परितनोति । शप्यमानाय प्रयच्छति । निर्दग्धं "प्रक्षालयति" इति [कौ०७.३] ॥

अत्र "अपाम इदम्" "हिमस्य त्वा" इत्याभ्याम् ऋग्भ्याम् अग्निचयने मण्डूकावकवेतसैर्विकृष्यमाणां चितिं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । उक्तं वैतासे । "चितिं परिषिञ्चति" इति प्रक्रम्य "इदं व आपः[३.१३.७] हि-"मस्य त्वा[६.१०६.३] उप द्याम् उप वेतसम्[१८.३.५] अपाम "इदम्[६.१०६.२] इति मण्डूकावकवेतसैर्दक्षिणादिप्रतिदिशं विकृष्यमा-"णाम्" इति [वै०५.२] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत मनसोनु प्रवाय्यम् ॥ १ ॥

यथा । मनः । मनःऽकेतैः । पराऽपततीति । आशुऽमत् ।
एव । त्वम् । कासे । प्र । पत । मनसः । अनु । प्रऽवाय्यम् ॥ १ ॥

मनस्केतैः मनसा बुद्धिवृत्त्या केत्यमानैर्ज्ञायमानैर्दूरस्थैर्विषयैः सह यथा येन प्रकारेण मनः अन्तःकरणम् आशुमत् शैघ्र्ययुक्तं परापतति ध्रुवम-

१ So we with A B B D K K R S V P P J C C P. २ A B पत म°. ३ P कासे corrected to कासे. P J K C P कासे.

ण्डलपर्यन्तं पराङ्मुखं गच्छति । ✕ पतॢ गतौ ✕ । एव एवम् हे कासे कासश्लेष्मरोगात्मिके कृत्ये त्वं मनसो वेगेन धावतः प्रवाय्यम् प्रगन्तव्यम् अवधिम् अनुलक्ष्य प्र पत प्रगच्छ । मनोवेगेन अस्मात् पुरुषाच्छीघ्रं दूरदेशं निर्गच्छेत्यर्थः । ✕ "भय्यप्रवय्ये च च्छन्दसि" इति निपात्यते । व्यत्ययेन दीर्घः ✕ ॥

द्वितीया ॥

यथा बाणः सुसंशितः परापतत्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत पृथिव्या अनु संवतम् ॥ २ ॥
यथा । बाणः । सुऽसंशितः । पराऽपतति । आशुऽमत् ।
एव । त्वम् । कासे । प्र । पत । पृथिव्याः । अनु । सम्ऽवतम् ॥ २ ॥

यथा येन प्रकारेण सुसंशितः सुष्ठु सम्यक् तीक्ष्णीकृतो बाणः धनुर्यन्त्रविमुक्तः सन् आशुमत् परापतति पराङ्मुखः शीघ्रं भूमिं प्रभिद्य गच्छति एव एवम् हे कासे त्वं पृथिव्याः बाणविद्धाया भूम्याः संवतम संहतप्रदेशम् अनुलक्ष्य प्र पत प्रधाव । बाणवेगेन पातालपर्यन्तं गच्छेत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

यथा सूर्यस्य रश्मयः परापतन्त्याशुमत् ।
एवा त्वं कासे प्र पत समुद्रस्यानु विक्षरम् ॥ ३ ॥
यथा । सूर्यस्य । रश्मयः । पराऽपतन्ति । आशुऽमत् ।
एव । त्वम् । कासे । प्र । पत । समुद्रस्य । अनु । विऽक्षरम् ॥ ३ ॥

सूर्यस्य रश्मयः किरणा उदयाद् ऊर्ध्वं यथा आशुमत् परापतन्ति लोकालोकपर्यन्तं शीघ्रं परागच्छन्ति एव एवं समुद्रस्य उदधेः विक्षरम विविधं क्षरणं प्रवाहो यस्मिन् देशे तं देशम् अनुलक्ष्य प्र पत प्रगच्छ । इमं पुरुषं विसृज्य समुद्रपर्यन्तं सूर्यरश्मिवत् शीघ्रं गच्छेत्यर्थः ॥

---

१ See note १ of the previous page. २ P P J °पतति.

चतुर्था ॥

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः।
उत्सो वा तत्र जायतां ह्रदो वा पुण्डरीकवान् ॥ १ ॥

आऽअयने। ते। पराऽअयने। दूर्वाः। रोहन्तु। पुष्पिणीः।
उत्सः। वा। तत्र। जायताम्। ह्रदः। वा। पुण्डरीकऽवान् ॥ १ ॥

हे अग्ने ते तव आयने आभिमुख्येन गमने परायणे पराङ्मुखगमने च अस्मदीये देशे पुष्पिणीः पुष्पयुक्ताः कोमला दूर्वा रोहन्तु प्ररोहन्तु उत्पद्यन्ताम्। तत्र तस्मिन् गृहादिदेशे उत्सो वा उदकप्रस्रवणं वा जायताम् उत्पद्यताम्। पुण्डरीकवान् तामरसयुक्तो ह्रदो वा उत्पद्यताम्। अनेन अग्निकृतबाधस्य अत्यन्ताभावः प्रार्थितः ॥

पञ्चमी ॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम्।
मध्ये ह्रदस्य नो गृहाः पराचीना मुखा कृधि ॥ २ ॥

अपाम्। इदम्। निऽअयनम्। समुद्रस्य। निऽवेशनम्।
मध्ये। ह्रदस्य। नः। गृहाः। पराचीना। मुखा। कृधि ॥ २ ॥

इदम् अस्मदीयं गृहम् अपाम् उदकानां न्ययनम् निलयनम् आवासस्थानं भवतु। तथा समुद्रस्य जलधेः निवेशनम् निविशतेस्मिन्निति निवेशनम् गृहं भवतु। ✕निपूर्वाद् विशतेः अधिकरणे ल्युट्✕। ह्रदस्य अगाधजलस्य तटाकादेर्मध्ये नः अस्माकं गृहा भवन्तु। न ह्येतेषां समुद्रादीनां दाहशङ्कास्ति तत्संबन्धप्रतिपादनेन अग्निदाहस्य अत्यन्तासंभव उक्तः। इदानीं प्रत्यक्षतः प्रार्थ्यते। हे अग्ने त्वं मुखा मुखानि ज्वालारूपाणि आस्यानि पराचीना पराचीनानि पराङ्मुखानि कृधि कुरु। ✕उभयत्र "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः। "विभा-

१ B रोहतु पुष्पिणीः. D R S C रोहतु पुष्पिणी. We with A K K J V. २ P P J दूर्वा। रोहतु। पुष्पिणी। C रोहन्तु। पुष्पिणी। We with Sâyana.

"षाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्" इति स्वार्थिकः खः । "श्रुशृणुपृकृवृभ्यः०" इति हेर्धिरादेशः ॥

षष्ठी ॥

हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि ।
शीतह्रदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम् ॥ ३ ॥
हिमस्य । त्वा । जरायुणा । शाले । परि । व्ययामसि ।
शीतऽह्रदा । हि । नः । भुवः । अग्निः । कृणोतु । भेषजम् ॥ ३ ॥

हे शाले हिमस्य शीतलोदकस्य जरायुणा जरायु गर्भवेष्टनम् तद्वद् आवेष्ट्य अवस्थितेन अवकारूपेण शैवालेन त्वा त्वां परि व्ययामसि परिव्ययामः परिवेष्टयामः । नः अस्माकं त्वं शीतह्रदा शीतलह्रदयुक्ता भुवः भवेः । हि यस्माद् एवं तस्मात् परिव्ययाम इत्यर्थः । इत्थम् अस्माभिः प्रार्थितः अग्निः गृहादीनां भेषजम् अदाहनिमित्तम् औषधं कृणोतु करोतु ॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम् ॥

"विश्वजित् त्रायमाणायै" इति चतुर्ऋचस्य बृहज्जणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ विनियोगः ॥

तथा स्वस्त्ययनकर्मणि अनेन चतुर्ऋचेन आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानि त्रयोदश द्रव्याणि जुहुयात् ॥

सूत्रितं हि । "विश्वजित्[६.१०७] शकधूमम्[६.१२८] भवाशर्वौ [११.२] इत्युपदधीत" इति [कौ०७.१] ॥

"त्वं नो मेधे" इति पञ्चर्चेन सूक्तेन मेधाजननकर्मणि क्षीरौदनं पुरोडाशं रसान् वा संपात्य अभिमन्त्र्य भक्षयेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन सूक्तेन आदित्यम् उपतिष्ठेत ॥

"पूर्वस्य मेधाजननानि" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । "त्वं नो मेधे[६.

१ KRPV शीतह्रं°. We with ABDKSPJCs Cr. २ ABBKKRV °ग्निः कृणोतु. We with DSC.

1 S' क्षीरोदनं.

"१०८] द्यौश्च मे[६.५३] इत्याशयति। आदित्यम् उपतिष्ठते" इति [कौ०२.१] ॥

तथा उपनयने "त्वं नो मेधे" इति पञ्चर्चेन अग्निम् उपतिष्ठेत। "त्वं नो मेध इत्युपतिष्ठते" इति [कौ०७.८] सूत्रात् ॥

तत्र प्रथमा ॥

विश्वजित् त्रायमाणायै मा परि देहि।
त्रायमाणे द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥ १ ॥

विश्वऽजित्। त्रायमाणायै। मा। परि। देहि।
त्रायमाणे। द्विऽपात्। च। सर्वम्। नः। रक्ष। चतुःऽपात्। यत्। च। नः। स्वम् ॥ १ ॥

हे विश्वजित् विश्वं कृत्स्नं जगज्जयति वशीकरोतीति विश्वजित् हे एतत्संज्ञक देव त्रायमाणायै जगत्पालनाधिकृतायै देवतायै मा मां स्वस्त्ययनकामं परि देहि रक्षणार्थं प्रयच्छ। हे त्रायमाणे एतत्संज्ञे देवते नः अस्माकं स्वम् स्वभूतं द्विपात् पादद्वयोपेतं सर्वम् पुत्रभृत्यादिकं रक्ष पालय। तथा नः अस्माकं स्वभूतं यच्च प्राणिजातं चतुष्पात् पादचतुष्टयोपेतं गोमहिषादिकम् अस्ति तत् पालय। द्वौ पादावस्य चत्वारः पादा अस्येति विगृह्य समासे "संख्यासुपूर्वस्य" इति पादशब्दान्त्यलोपः समासान्तः। "द्वित्रिभ्यां पाद्दन्०" इति द्विपाच्छब्दोन्नोदात्तः। चतुष्पाद् इत्यत्र तु बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। पूर्वपदं च "त्रेः संख्यायाः" [फि०२.५] इति आद्युदात्तम् ॥

द्वितीया ॥

त्रायमाणे विश्वजिते मा परि देहि।
विश्वजिद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥ २ ॥

१ BDSKC नः स्वम्. We with ARV. २ Sâyaṇa's text in S' repeats विश्वजित् at the beginning of this mantra. But neither our MSS. nor his commentary support the repetition.

1 S' इत्यादित्यम् for इत्याशयति। आदित्यम्. 2 S' आद्युदात्तत्वम्.

त्रायमाणे । विश्वऽजिते । मा । परि । देहि ।

विश्वऽजित् । द्विऽपात् । च । सर्वम् । नः । रक्ष । चतुःऽपात् । यत् । च । नः । स्वम् ॥ २ ॥

हे विश्वजित् सर्वजित् हे त्रायमाणे पालयित्रि मा मा विश्वजिते देवतायै परि देहि । परिदानं रक्षणार्थं दानम् । ‡"ध्वसोरेद्धौ०" इति एत्वाभ्यासलोपौ‡ । हे त्रायमाणे द्विपाच्चतुष्पाच्च अस्मदीयं स्वं रक्षेति पूर्ववद् योजना ॥

तृतीया ॥

विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि ।

कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥ ३ ॥

विश्वऽजित् । कल्याण्यै । मा । परि । देहि ।

कल्याणि । द्विऽपात् । च । सर्वम् । नः । रक्ष । चतुःऽपात् । यत् । च । नः । स्वम् ॥ ३ ॥

हे विश्वजित् कल्याण्यै सर्वमङ्गलकारिण्यै देवतायै मां परि देहि । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् ॥

चतुर्थी ॥

कल्याणि सर्वविदे मा परि देहि ।

सर्वविद् द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद् यच्च नः स्वम् ॥ ४ ॥

कल्याणि । सर्वऽविदे । मा । परि । देहि ।

सर्वऽवित् । द्विऽपात् । च । सर्वम् । नः । रक्ष । चतुःऽपात् । यत् । च । नः । स्वम् ॥ ४ ॥

हे कल्याणि मङ्गलकारिणि देवते सर्वविदे सर्वं कार्यजातं जानते देवाय मा मां परि देहि । हे सर्ववित् देव अस्मदीयं पुत्रपश्वादिकं स्वं रक्षेत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरा गहि ।

त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ॥ १ ॥

त्वम। नः। मेधे। प्रथमा। गोभिः। अश्वेभिः। आ। गहि।
त्वम। सूर्यस्य। रश्मिऽभिः। त्वम। नः। असि। यज्ञिया ॥ १ ॥

हे मेधे श्रुतधारणसामर्थ्यरूपिणि देवि प्रथमा मुख्या देवमनुष्यादिभिः सर्वैरुपास्यमाना त्वं गोभिः अस्मभ्यं दातव्यैः अश्वेभिः अश्वैश्च नः अस्मान् आ गहि आगच्छ। गमेर्लोटि "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक्। "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः। तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वात् हेर्लुगभावः। हे मेधे त्वं सूर्यस्य सर्वप्रेरकस्य देवस्य रश्मिभिः सर्वव्यापिभिः किरणैः। लुप्तोपमम् एतत्। सूर्यरश्मयो यथा आशु सर्वं जगद् व्याप्नुवन्ति एवं सर्वविषयव्यापनशक्तैरात्मीयैः सामर्थ्यैरस्मान् आगच्छेति संबन्धः। तत्र हेतुरुच्यते। हे मेधे त्वं नः अस्माकं यज्ञिया यज्ञार्हा असि भवसि। अस्माभिर्दत्तेन हविषा यतः प्रीता भवसि तत आगच्छेत्यर्थः। "यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ" इति अर्हार्थे यज्ञशब्दाद् घप्रत्ययः ॥

षष्ठी ॥

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥ २ ॥

मेधाम। अहम। प्रथमाम। ब्रह्मण्ऽवतीम। ब्रह्मऽजूताम। ऋषिऽस्तुताम।
प्रऽपीताम। ब्रह्मचारिऽभिः। देवानाम। अवसे। हुवे ॥ २ ॥

अहं मेधाकामः प्रथमाम् मुख्यां मेधां देवीं हुवे आह्वयामि। कीदृशीम्। ब्रह्मण्वतीम् ब्रह्म वेदः तद्युक्ताम्। तद्धारणेन तैर्युज्यमानाम् इत्यर्थः। "मादुपधायाः०" इति मतुपो वत्वम्। "अनो नुट्" इति नुडागमः। ब्रह्मजूताम् ब्राह्मणजातीयैः सेविताम्। ऋषिष्टुताम् ऋषिभिः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिर्वसिष्ठादिभिः प्रशंसिताम्। ब्रह्मचारिभिः। ब्रह्म वेदस्तत्र चरितुं शीलम् एषाम् इति ब्रह्मचारिणः गुरु-

1 S' °धर° for °धारण°.

कुलवासादिनियमोपेता अधीयानाः तैः । ✕चरतेस्ताच्छीलिको णिनिः✕ । तैः प्रपीताम् सेविताम् । ✕प्रपूर्वात् पिबतेः "घुमास्था०" इत्यादिना ईत्त्वम्✕ । यद्वा प्रपीताम् प्रवर्धिताम् । ✕प्यायी वृद्धौ इत्यस्मान्निष्ठा । "प्यायः पी" इति पीभावः✕ । किमर्थम् । देवानाम् इन्द्रादीनाम् अवसे । अध्ययनतदर्थज्ञानतदनुष्ठानादिना रक्षणायेत्यर्थः ॥

सप्तमी ॥

यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः ।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि ॥ ३ ॥

याम् । मेधाम् । ऋभवः । विदुः । याम् । मेधाम् । असुराः । विदुः ।
ऋषयः । भद्राम् । मेधाम् । याम् । विदुः । ताम् । मयि । आ । वेशयामसि ॥ ३ ॥

ऋभवो देवाः यां मेधां विदुः जानन्ति असुराः दानवा यां मेधां विदुः भद्राम् भन्दनीयां कल्याणीं वेदशास्त्रादिविषयां यां मेधाम् ऋषयः वसिष्ठाद्या विदुः तां सर्वतोदिक्कां मेधां मयि साधके आ वेशयामसि आवेशयामः आस्थापयामः । ✕"इदन्तो मसिः"✕ ॥

अष्टमी ॥

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥ ४ ॥

याम् । ऋषयः । भूतऽकृतः । मेधाम् । मेधाविनः । विदुः ।
तया । माम् । अद्य । मेधया । अग्ने । मेधाविनम् । कृणु ॥ ४ ॥

ऋषयः मन्त्रद्रष्टारो भूतकृतः पृथिव्यादीनि भूतानि कर्तुं शक्ताः कश्यपकौशिकादयो मेधाविनः धीमन्त इति प्रसिद्धा यां मेधां विदुः जानन्ति । ✕"विदो लटो वा" इति झेः उस् आदेशः✕ । हे

१ B K K विदुः for विदुः. Cp विदुः.

अग्ने तया मेधया अद्य इदानीं मां मेधाविनं कृणु मेधायुक्तं कुरु ॥

नवमी ॥

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥ ५ ॥

मेधाम् । सायम् । मेधाम् । प्रातः । मेधाम् । मध्यन्दिनम् । परि ।
मेधाम् । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः । वचसा । आ । वेशयामहे ॥ ५ ॥

सायंकाले मेधाम् अहं स्तौमि । प्रातःकाले मेधां देवीं स्तौमि । मध्यन्दिनं परि मध्याह्नकालेपि मेधां भजे । किं बहुना । सूर्यस्य रश्मिभिः सार्धं सर्वस्मिन्नपि अहनि वचसा स्तुतिरूपेण वाक्येन तां महानुभावां मेधाम् आ वेशयामहे आत्मनि स्थापयामः । कर्त्रभिप्रायक्रियावचनाद् विशेर्ण्यन्तात् "णिचश्च" इति आत्मनेपदम् ॥

[इति] एकादशेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

"पिप्पली क्षिप्नभेषजी" इति तृचेन धनुर्वातक्षिप्नवातादिकृत्स्नवातव्याधिशान्त्यर्थं पिप्पलीं संपात्य अभिमन्त्र्य पुनस्तृचं जपित्वा आशयेत् । "पिप्पली[६.१०९] विद्रधस्य[६.१२७] या वभ्रवः[८.७]" इति प्रक्रम्य "चतुर्थेनाशयति" इति [कौ०४.२] सूत्रात् ॥

"प्रत्नो हि" इति तृचेन पापनक्षत्रजातस्य अपत्यस्य संपातिताभिमन्त्रितोदपात्रेण सूत्रोक्तरीत्या आप्लावनम् अवसेकं वा कुर्यात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन संपातिताभिमन्त्रितक्षीरौदनं प्राश्नीयात् ॥

"प्रत्नो हीति पापनक्षत्रे जाताय" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । "उदकान्ते मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिरासावयत्यवसिञ्चति" इति [कौ०५.१०] ॥

तत्र प्रथमा ॥

पिप्पली क्षिप्नभेषज्यूतातिविद्धभेषजी ।

---

१ A B D K C$_{s}$ C$_{r}$ पिप्पली. We with B K R S P P J V. २ R V भेषज्यू १. We with A B D K K S C$_{s}$.

1 S' संपादिता°. 2 S' जाताया इति.

ता देवाः समकल्पयन्नियं जीवितवा अलम् ॥ १ ॥

पिप्पली । क्षिप्नऽभेषजी । उत । अतिविद्धऽभेषजी ।
ताम् । देवाः । सम् । अकल्पयन् । इयम् । जीवितवै । अलम् ॥ १ ॥

पिप्पली एतत्संज्ञा कणाद्यपरपर्याया ओषधिः क्षिप्नभेषजी क्षिप्नानि तिरस्कृतानि अन्यानि भेषजानि यया सा तथोक्ता । यद्वा क्षिप्नस्य वातरोगविशेषस्य भेषजी निवर्तिका । उत अपि च अतिविद्धभेषजी अतिशयेन विद्धानि ताडितानि भेषजान्तराणि यया सा तथोक्ता । यद्वा कृत्स्नं रोगम् अतिविध्यति निपीडयतीति अतिविद्धा । ‘व्यध ताडने इत्यस्मात् कर्तरि क्तः’ । अतिविद्धा चासौ भेषजी च अतिविद्धभेषजी । तां तादृशीं पिप्पलीं देवा इन्द्रादयः अमृतमथनसमये सम् अकल्पयन् सम्यक् कल्पितवन्तः । कथम् इति । इयम् एकैव ओषधिः जीवितवै सर्वरोगनिवारणेन सर्वान् प्राणिनो जीवयितुम् अलम् समर्था शक्ता इत्यभिप्रेत्य । ‘जीव प्राणधारणे इत्यस्मात् ण्यन्तात् तुमर्थे तवै प्रत्ययः’ ॥

द्वितीया ॥

पिप्पल्यः१ समवदन्तायतीर्जनंनादधि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ २ ॥

पिप्पल्यः । सम् । अवदन्त । आऽयतीः । जनंनात् । अधि ।
यम् । जीवम् । अश्नवामहै । न । सः । रिष्याति । पुरुषः ॥ २ ॥

हस्तिपिप्पल्यादिजातिभेदभिन्नाः सर्वाः पिप्पल्यः ओषधयः जननाद् अधि अमृतमथनसमकालीनोत्पत्तेरूर्ध्वम् आयतीः आयत्यः आगच्छन्त्यः समवदन्त परस्परं संवादं संभाषणम् अकृषत । ‘व्यक्तवाचां समुच्चारणे’ इति आत्मनेपदम् । तत्प्रकार उच्यते । यं जीवम्

१ See foot-note १ on the previous page. २ P अतिविद्धऽभे°. P अति । विद्धऽभे°. We with J Cp. ३ P.P J Cp जीवित । वै ।. ४ B D K C. Cp. पिप्प°. ५ S V °ल्या १. C. °ल्यः १. We with A B D K R. ६ P J. ऋप्या°.

जीवनवन्तं पुरुषम् अश्नवामहै वयं भेषजत्वेन व्याप्नवाम स पुरुषः न रिष्याति न रिष्यतु न विनश्यत्विति। ऋरिष हिंसायाम्। लेटि आडागमः ॥

तृतीया ॥

असुरास्त्वा न्यखनन् देवास्त्वोदवपन् पुनः।
वातीकृतस्य भेषजीमथो क्षिप्नस्य भेषजीम् ॥ ३ ॥

असुराः। त्वा। नि। अखनन्। देवाः। त्वा। उत्। अवपन्। पुनः।
वातीऽकृतस्य। भेषजीम्। अथो इति। क्षिप्नस्य। भेषजीम् ॥ ३ ॥

हे पिप्पलि त्वा त्वाम् असुराः पूर्वदेवाः न्यखनन् निखातवन्तः। देवाः पुनस्त्वा त्वां सर्वप्राणिहिताय उदवपन् उद्धृतवन्तः। कीदृशीम्। वातीकृतस्य वातरोगाविष्टशरीरस्य भेषजीम् औषधभूताम्। अथो अपि च क्षिप्नस्य मुहुर्मुहुरवयवक्षेपणशीलस्य आक्षेपकनाम्नो वातरोगविशेषस्य भेषजीम् निवर्तयित्रीम् ॥

चतुर्थी ॥

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
त्वां चाग्ने तन्वं पिप्रायस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥ १ ॥

प्रत्नः। हि। कम्। ईड्यः। अध्वरेषु। सनात्। च। होता। नव्यः।
च। सत्सि।
त्वाम्। च। अग्ने। तन्वम्। पिप्रायस्व। अस्मभ्यम्। च। सौभगम्।
आ। यजस्व ॥ १ ॥

प्रत्न इति पुराणनाम। हिशब्दः प्रसिद्धौ। कम् इति पूरणः। प्रत्नः चिरंतनः खलु अयम् अग्निः सर्वदेवात्मकत्वात्। "अग्निः सर्वा देवताः" इति श्रुतिः [तै० सं० २. २. ९. १]। अत एव ईड्यः स्तुत्यः। अध्वरेषु यज्ञेषु च सनात् चिरंतनो होता देवानाम् आह्वाता होमनिष्पादको वा। हे अग्ने ईदृशस्त्वं नव्यः अभिनवश्च होता भूत्वा सत्सि वेद्यां

सीदसि । "अग्निर्देवो होता देवान् यक्षत्" इति हि निगमः [आप०२. १६. ५] ॥ इत्थं होतृत्वेन वेद्याम् उपविशंस्त्वं स्वाम् स्वकीयां तन्वम् शरीरं पिप्रयस्व आज्यादिहविषा पूरय । अस्मभ्यं च सौभगम् सौभाग्यकरं धनम् आ यजस्व आगमय । प्रयच्छेत्यर्थः । पिप्रयस्व च आ यजस्व चेति परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ । "चवायोगे प्रथमा" इति प्रथमा तिङ्विभक्तिर्न निहन्यते ॥

पञ्चमी ॥

ज्येष्ठघ्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ २ ॥

ज्येष्ठऽघ्याम् । जातः । विऽचृतोः । यमस्य । मूलऽबर्हणात् । परि । पाहि । एनम् ।
अति । एनम् । नेषत् । दुःऽइतानि । विश्वा । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय ॥ २ ॥

ज्येष्ठं वयसा प्रवृद्धं हन्तीति ज्येष्घ्नी ज्येष्ठाख्यं नक्षत्रम् । तथा च तैत्तिरीयकम् । "ज्येष्ठम् एषाम् अवधिष्मेति तज्ज्येष्ठघ्नी" इति [तै०ब्रा० १. ५. २. ८] । तस्यां ज्येष्ठघ्यां जातः पुत्रः ज्येष्ठस्य पितृभ्रात्रादेर्हन्ता भवति । तथा विचृतोः विचर्तनस्वभावे मूलनक्षत्रे जातः पुत्रः सर्वं कुलं विचृतति हिनस्ति । चृती हिंसाग्रन्थनयोः इत्यस्मात् क्विप् । नक्षत्रस्य एकत्वेपि अधिष्ठानापेक्षया द्विवचनम् । "उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके" इति हि आम्नायते [२. ८. १] । मूलनक्षत्रं हि मूलोन्मूलनकरम् । तथा च तैत्तिरीयके तन्नामनिर्वचनम् । "मूलम् एषाम् अवृक्षामेति तन्मूलबर्हणी" इति [तै०ब्रा०१. ५. २. ८] । अतः पापनक्षत्रे जातम् एनं कुमारं यमस्य यमसंबन्धिनः यमेन क्रियमाणाद् मूलबर्हणात् संतानमूलोच्छेदनात् परि पाहि परितः सर्वतो रक्ष । बृहू उद्यमने । अस्माद् भावे ल्युट् । ततः कर्मणि षष्ठ्याः समासः । यमस्येति शेषषष्ठी । अतो न "उभयप्राप्तौ कर्मणि" इति नियमस्य अव-

सरः ॥ । एनं पुत्रं विश्वा विश्वानि सर्वाणि दुरितानि अति नेषत् अतिनयतु अतिक्रमयतु । किमर्थम् । दीर्घायुत्वाय चिरकालजीवनाय । तदेव विशेष्यते । शतशारदाय शतं शारदाः शरदृतुना युक्ताः संवत्सरा यस्मिन् । शतसंवत्सरपरिमितजीवनायेत्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

व्याघ्रेऽहर्जनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ॥ ३ ॥

व्याघ्रे । अहि । अजनिष्ट । वीरः । नक्षत्रऽजाः । जायमानः । सुऽवीरः । सः । मा । वधीत् । पितरम् । वर्धमानः । मा । मातरम् । प्र । मिनीत् । जनित्रीम् ॥ ६ ॥

व्याघ्रे व्याघ्रवत्क्रूरे अहि उदीरिते पापनक्षत्रे वीरः पुत्रः अजनिष्ट जातोभूत् । नक्षत्रजाः दुष्टनक्षत्रे जातः । ॥ जनी प्रादुर्भावे । "जनसनखनक्रमगमो विट्" । "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति आत्वम् ॥ । जायमान एव सुवीरः शोभनवीर्ययुक्तो भवतु । स तथाविधः पुत्रः वर्धमानः उपचितावयवः प्रबुद्धः सन् पितरम् स्वजनकं मा वधीत् मा हन्तु । [जनित्रीम्] जनयित्रीम् उत्पादयित्रीं मातरं मा प्र मिनीत् मा प्रमिनातु हिनस्तु । ॥ मीङ् हिंसायाम् । लङि तिपि व्यत्ययेन ईत्वम् ॥ ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

"इमं मे अग्ने" इति चतुर्ऋचस्य मातृनामगणे पाठाद् "दिव्यो गन्धर्व इति मातृनामभिर्जुहुयात्" [कौ० १३. २] इत्यादिषु विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा गन्धर्वराक्षसाप्सरोभूतग्रहादिपीडाशान्तये घृताक्तसर्वौषधिहोमे चतुष्पथे ग्रहगृहीतशिरःस्थितमृन्मयकपालाग्निहोमादौ च अस्य विनियोगः । "मातृनाम्नोः सर्वसुरभिचूर्णान्यन्वक्तानि हुत्वा शेषेण प्रलिम्पति । चतुष्पथे "च शिरसि दर्भेण्डेऽङ्गारकपालेन्वक्तानि । [तितउनि] प्रतीपं गाहमानो

1 S' °स्थिते. 2 S' दर्भेंडुककपाले°. We with *Kausika*.

"वपति इतरोवसिञ्चति पश्चाद् । आमपात्र ओप्य आसिच्य मौञ्जे त्रि-
"पादे वयोनिवेशने प्रबध्नाति" इति [सूत्रम्] [कौ० ४. २] ॥

"मा ज्येष्ठम्" [११२] "त्रिते देवाः" [११३] इति तृचाभ्यां प-
रिवित्तिपरिवेत्तृप्रायश्चित्तार्थम् उदकघटं संपात्य अभिमन्त्र्य तयोः पर्वाणि
मौञ्जपाशैर्बद्ध्वा आप्लावनम् अवसेकं वा कुर्यात् । अत्र "नदीनां फे-
नान्" इत्यर्धर्चेन उत्तरपाशान् नदीफेने निदध्यात् । सूत्रितं हि । "मा
"ज्येष्ठं त्रिते देवा इति परिवित्तिपरिविविदानावुदकान्ते मौञ्जैः पर्वसु ब-
"द्ध्वा पिञ्जूलीभिराप्लावयति । अवसिञ्चति । फेनेषूत्तरान् पाशान् आधा-
"य नदीनां फेनान् इति प्रप्लावयति सर्वैश्च प्रविश्य" इति [कौ० ५. १०] ॥

तत्र प्रथमा ॥

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्यय यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अंतोधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोसति ॥ १ ॥

इमम् । मे । अग्ने । पुरुषम् । मुमुग्धि । अयम् । यः । बद्धः । सुऽयतः ।
लालपीति ।

अंतः । अधि । ते । कृणवत् । भागऽधेयम् । यदा । अनुत्ऽमदितः ।
असति ॥ १ ॥

हे अग्ने मे मदीयम् इमं पुरुषं मुमुग्धि रोगनिदानभूतात् पापाद् मोचय । मुचेर्व्यत्ययेन शपः श्लुः । "हुझल्भ्यो हेर्धिः" इति हे-
र्धिरादेशः । योयं पुरुषो बद्धः पापरूपैः पाशैर्बद्धः सन् सुयतः सुष्ठु नियमितः निरुद्धप्रसरः सन् लालपीति भृशं प्रलपति । अतः अ-
स्माद्धेतोः हे अग्ने ते तव भागधेयम् हविर्भागम् अधि कृणवत् अधिकं करोतु अयं पुरुषः । यथा येन प्रकारेण असौ अनुन्मदितः उन्मादर-
हितः गन्धर्वाप्सरोग्रहजनितबुद्धिस्खालित्यरहितः असति भवेत् । अस भुवि । व्यत्ययेन शपो लुगभावः ॥

---

१ A B D K S P J C, C[P] अतो°. We with B K K P V. २ P J C[P] अतः.

1 S' °विदानानामुद°. 2 S' °दाय. We with *Kausika*. 3 S' च for प्र°.

द्वितीया ॥

अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोससि ॥ २ ॥

अग्निः । ते । नि । शमयतु । यदि । ते । मनः । उत्ऽयुतम् ।
कृणोमि । विद्वान् । भेषजम् । यथा । अनुत्ऽमदितः । अससि ॥ २ ॥

हे गन्धर्वग्रहगृहीत ते त्वाम् [अग्निः] नि शमयतु सम्यग् ज्ञापयतु । उन्मादं निवर्तयतित्यर्थः । "शमो दर्शने" इति मित्त्वात् "मितां ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् । ते त्वदीयं मनः यदि उद्युतम् ग्रहविकारेण उद्भ्रान्तं वर्तते । यदिशब्दो हेतौ । यस्माद् एवं तस्मात् कारणाद् विद्वान् प्रतीकारं जानन्नहं ग्रहविकारस्य भेषजम् औषधं कृणोमि करोमि । यथा येन प्रकारेण त्वम् अनुन्मदितः उन्मादरहितश्चित्तभ्रमरहितः अससि भवसि । तथाहं चिकित्सामीत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

देवैनसादुन्मदितमुन्मत्तं रक्षसस्परि ।
कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोसति ॥ ३ ॥

देवऽएनसात् । उत्ऽमदितम् । उत्ऽमत्तम् । रक्षसः । परि ।
कृणोमि । विद्वान् । भेषजम् । यदा । अनुत्ऽमदितः । असति ॥ ३ ॥

देवकृतम् एनः देवैनसम् । "अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि" इति अच् समासान्तः । देवकृतात् पापाद् उपघाताद् उन्मदितम् उन्मादं चित्तस्खलनं प्रापितं तथा रक्षसः रक्षःसकाशाद् ब्रह्मराक्षसादिग्रहणाद् उन्मत्तम् उन्मादेन परवशम् एनं परिप्राप्य विद्वान् तत्प्रतीकारज्ञोहं भेषजम् औषधं कृणोमि करोमि । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

चतुर्थी ॥

पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः ।

---

१ K यदानु°. २ B °सति. ३ K देवैन°. ४ A B D यदानु°. We with B K K R S V C$_s$ C$_r$.

पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोससि ॥ ४ ॥

पुनः । त्वा । दुः । अप्सरसः । पुनः । इन्द्रः । पुनः । भगः ।
पुनः । त्वा । दुः । विश्वे । देवाः । यथा । अनुत्तऽमदितः । अससि ॥ ४ ॥

हे उन्मादगृहीत पुरुष त्वा त्वाम् अप्सरसः । एतद् गन्धर्वादीनामपि उपलक्षणम् । "गन्धर्वाप्सरसो वा एतम् उन्मादयन्ति य उन्माद्यति" इति हि तैत्तिरीयकम् [तै० सं० ३. ४. ८. ४] । उन्मादकारिण्योऽप्सरसः त्वां पुनः अँदुः उन्मादपरिहारेण अस्मभ्यं दत्तवत्यः । इन्द्रश्च त्वा पुनरदात् । भगश्च पुनरदात् । किं बहुना । विश्वे सर्वे देवास्त्वां पुनः अँदुः दत्तवन्तः । यथा येन प्रकारेण त्वम् अनुन्मदितः असंसि उन्मादविकाररहितो भवसि तथा अँदुरिति संबन्धः ॥

पञ्चमी ॥

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ १ ॥

मा । ज्येष्ठम् । वधीत् । अयम् । अग्ने । एषाम् । मूलऽबर्हणात् । परि ।
पाहि । एनम् ।
सः । ग्राह्याः । पाशान् । वि । चृत । प्रऽजानन् । तुभ्यम् । देवाः । अनु ।
जानन्तु । विश्वे ॥ १ ॥

हे अग्ने अयं परिवित्तः एषां पितृमातृभ्रात्रादीनां मध्ये ज्येष्ठम् भ्रातरं मा वधीत् मा हन्तु । ॐ"लुङि च" इति वधादेशः ॐ । मूलबर्हणात् मूलोच्छेदनात् तद्धेतुभूताद् दोषाद् वा एनं परिवित्तं परि पाहि परिपालय । परिवेदनदोषं शमयेत्यर्थः । हे अग्ने स त्वं प्रजानन् विमोचनोपायं विद्वान् ग्राह्याः ग्रहणशीलायाः पिशाच्याः पाशान् बन्धनरज्जून् वि चृत विमुञ्च । ॐचृती हिंसाग्रन्थनयोः ॐ । तुभ्यं विमोक्त्रे विश्वे सर्वे देवाः अनु जानन्तु विमोचने अनुज्ञां कुर्वन्तु ॥

१ A R सं. २ P ण्याम्. We with P J Cp.

षष्ठी ॥

उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् ॥ २ ॥

उत् । मुञ्च । पाशान् । त्वम् । अग्ने । एषाम् । त्रयः । त्रिऽभिः । उत्सिताः । येभिः । आसन् ।
सः । ग्राह्याः । पाशान् । वि । चृत । प्रऽजानन् । पितापुत्रौ । मातरम् । मुञ्च । सर्वान् ॥ २ ॥

हे अग्ने त्वम् एषां पित्रादीनां पाशान् परिवेदनदोषोद्भवान् बन्धकान् पाशान् उन्मुञ्च उन्मोचय । शमयेत्यर्थः । पाशा विशेष्यन्ते । माता पिता पुत्र इत्येते त्रयः येभिर्यैः [त्रिभिः] उत्तमाधममध्यमैः पाशैः परिवेदनदोषोद्भवैः उत्स्थिताः उत्क्रम्य अवस्थिता आसन् । तान् विमुञ्चेत्यर्थः । स ग्राह्या इति पूर्ववत् । एषाम् इति प्रागुक्तमेव विवृणोति पितापुत्राविति । पिता च पुत्रश्च पितापुत्रौ । [1]"आनङ् ऋतो द्वन्द्वे" इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः[1] । पितरं पुत्रं मातरम् अन्यानपि सर्वान् भ्रात्रादीन् परिवेदनदोषाद् मुञ्च । दोषं शमयेत्यर्थः ॥

सप्तमी ॥

येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धोऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व ॥ ३ ॥

येभिः । पाशैः । परिऽवित्तः । विऽबद्धः । अङ्गेऽअङ्गे । आर्पितः । उत्सितः । च ।
वि । ते । मुच्यन्ताम् । विऽमुचः । हि । सन्ति । भ्रूणऽघ्नि । पूषन् । दुःऽइतानि । मृक्ष्व ॥ ३ ॥

येभिः यैः पापरूपैः पाशैः परिवित्तः ज्येष्ठे अकृतदारपरिग्रहे पूर्वं गृ-

---

१ See note ३ on the previous page. २ P त्रिऽभिः. We with P J Cr. ३ A अङ्गे॰. ४ A R उत्थितश्च. K उत्सितं च. ५ A B D K K R S Cs ते मु॰. A once read ते मु॰. We with J and A's original reading and Sâyaṇa. ६ K मुंचतां. We with A B B D R S P P J V Cs Cr. ७ P P Cr ते. We with J.

हीतदारः पुरुषः अङ्गेअङ्गे अवयवेवयवे विबद्धः विविधं बद्धः आर्पितः आर्तिं प्रापितः [उत्थितः] उत्क्रान्तावस्थितिश्च भवति ते तथाविधाः पाशा वि मुच्यन्ताम् विसृज्यन्ताम् । हि यस्माद् विमुचः विमोक्तारो देवाः सन्ति विद्यन्ते । तस्माद् विमुच्यन्ताम् इति संबन्धः । हे पूषन् पोषक देव भ्रूणघ्नि भ्रूणहनि । भ्रूणशब्दो गर्भवचनः । "गर्भो भ्रूण इमौ समौ" इत्यभिधानात् । यद्वा "कल्पप्रवचनाध्यायी भ्रूणः" इति बोधायनस्मरणात् कल्पप्रवचनसहितसाङ्गवेदाध्यायी भ्रूणः । तं हतवान् भ्रूणहा । "ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु०" इति भूते क्विप् । तस्मिन् भ्रूणघ्नि दुरितानि परिवेदनोद्भवानि पापानि मृष्व मार्जय । भ्रूणहा पूर्वमेव पापी तत्रैव पापायतने इदमपि पापं निवेशयेत्यर्थः ॥

अष्टमी ॥

त्रितेऽ देवा अमृजतैतदेनस्त्रितऽएनन्मनुष्येषु ममृजे ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ १ ॥

त्रितेऽ । देवाः । अमृजत । एतत् । एनः । त्रितः । एनत् । मनुष्येषु । ममृजे । ततः । यदि । त्वा । ग्राहिः । आनशे । ताम् । ते । देवाः । ब्रह्मणा । नाशयन्तु ॥ १ ॥

अत्र इयम् आख्यायिका । पुरा खलु देवाः पुरोडाशादिकं हविः संभृत्य तल्लेपजनितपापमार्जनाय एकतो द्वितस्त्रित इति त्रीन् पुरुषान् आप्याख्यान् अभ्युदकसंपर्कवशाज्जनयामासुः । तेषु च तत् पापं निमृष्टवन्तः । ते च आप्याः सूर्याभ्युदितादिषु परंपरया पापं निमृष्टवन्त इति । तद् एतत् सर्वं तैत्तिरीये समाम्नायते । "देवा वै हविर्भृत्वाब्रुवन्" [तै० ब्रा० ३.२.८.९] इति प्रक्रम्य "ते देवा आप्येष्वमृजत । आप्या अमृ-
"जत सूर्याभ्युदिते । सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्ते । सूर्याभिनिर्मुक्तः कुन-

१ A B B D K K R S P P J V C₅ C₇ त्रि° for त्रि°. We with Sâyana. २ A B D K K S C₅ एनं for एनन्. ३ P P J K C₇ एनम्. We with Br.

1 So S'. 2 पाशं for पापं. 3 S' -निर्मृ°.

"खिनि । कुनखी श्यावदति । श्यावदन्नग्रदिधिषौ । अग्रदिधिषुः प-
"रिवित्ते । परिवित्तो वीरहणि । वीरहा ब्रह्महणि । तद् ब्रह्महणं ना-
"त्यच्यवत" इति [तै०ब्रा०३.२.८.१२] ॥ तद् इदम् उच्यते । एतत् परिवित्तसमवेतम् एनः पापं पूर्वं देवास्त्रिते एतत्संज्ञे आप्त्ये अमृजत निमृष्टवन्तः । स च त्रितः एतत् स्वात्मनि समवेतं पापं मनुष्येषु सूर्याभ्युदितादिषु ममृजे मृष्टवान् निमार्जनेन स्थापितवान् । ततः तस्माद्धेतोः हे परिवित्त त्वा त्वां ग्राहिः ग्रहणशीला पापदेवता यदि । निपातानाम् अनेकार्थत्वाद् अत्र यदिशब्दो यच्छब्दार्थे । या ग्राहिरानशे प्राप ते त्वदीयां तां ग्राहिं प्रागुक्ता देवाः ब्रह्मणा मन्त्रेण नाशयन्तु ॥

नवमी ॥

मरीचीर्धूमान् प्र विशानु पाप्मन्नुदारान् गच्छोत वा नीहारान् ।
नदीनां फेनाँ अनु तान् वि नश्य भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृष्व ॥ २ ॥

मरीचीः । धूमान् । प्र । विश । अनु । पाप्मन् । उत्ऽआरान् । गच्छ ।
उत । वा । नीहारान् ।
नदीनाम् । फेनान् । अनु । तान् । वि । नश्य । भ्रूणऽघ्नि । पूषन् । दुःऽइतानि । मृष्व ॥ २ ॥

हे पाप्मन् परिवेदनजनितपाप मरीचीः अग्निसूर्यादिप्रभाविशेषान् अनु प्र विश । परिवित्तं विसृज्य प्रगच्छेत्यर्थः । अथवा धूमान् अग्नेरुत्पन्नान् अनु प्र विश । यद्वा उदारान् ऊर्ध्वं गतान् मेघात्मना परिणतांस्तान् गच्छ प्रविश । उत वा अपि वा तज्जन्यान् नीहारान् अवश्यायान् गच्छ । ✕ निपूर्वात् हरतेः कर्मणि घञ् । "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः ✕ । तथा च तैत्तिरीये सृष्टिं प्रक्रम्य आम्नायते । "तस्मात् तेपानाद् धूमोजायत । तद् भूयोतप्यत । तस्मात् तेपा-
"नान्मरीचयोऽजायन्त । तस्मात् तेपानाद् उदारा अजायन्त । तद् भूयो-

१ BDKS नश्यन् for नश्य. C- विनश्यन् भ्रू° for वि नश्य भ्रू°. Cp वि । नश्यत् ।. We with AKRPPJV.

"तप्यत । तद् अभ्रम् इव समहन्यत" इति [तै०ब्रा०२.२.९.२] । हे पाप्मन् नदीनाम् सरितां तान् प्रसिद्धान् फेनान् फेनिलान् प्रवाहान् अनु वि विक्ष्व अनुप्रविश्य विविधं गच्छ । ✕"नेर्विशः" इति आत्मनेपदम् । व्यत्ययेन शपो लुक् ✕ । अन्यद् व्याख्यातम् ॥

दशमी ॥

द्वादशधा निहितं त्रितस्यापमृष्टं मनुष्यैनसानि ।
ततो यदि त्वा ग्राहिरानशे तां ते देवा ब्रह्मणा नाशयन्तु ॥ ३ ॥

द्वादशऽधा । निऽहितम् । त्रितस्य । अपऽमृष्टम् । मनुष्यऽएनसानि । ततः । यदि । त्वा । ग्राहिः । आनशे । ताम् । ते । देवाः । ब्रह्मणा । नाशयन्तु ॥ १० ॥

त्रितस्य आप्यस्य संबन्धि[1] प्रागुक्तरीत्या अपमृष्टं तद् एनः द्वादशधा निहितम् द्वादशसु स्थानेषु स्थापितम् । प्रथमं देवेषु पश्चात् त्रिषु आप्येषु ततः सूर्याभ्युदितादिषु अष्टसु एवं द्वादशसु स्थानेषु निक्षिप्तम् । तद् एनः मनुष्यैनसानि भवन्ति मनुष्यसमवेतानि इदानींतनानि पापानि संपद्यन्ते । उत्तरोर्धर्चो व्याख्यातः ॥

पञ्चमं सूक्तम् ॥

[इति] सायणार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये षष्ठकाण्डे एकादशोनुवाकः ॥

द्वादशेनुवाके पञ्च सूक्तानि । अस्यानुवाकस्य आचार्यमरणे आज्यसमित्पुरोडाशादिहोमे विनियोगः ॥

तथा खदाशयान्नप्रायश्चित्तार्थं याज्ञिकः खदाशयानां[2] व्रीहियवतिलं कृत्वा अनेनानुवाकेन जुहुयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि पाकयज्ञतन्त्रं कृत्वा वैवस्वतदेवताकं चरुम् अनेनानुवाकेन जुहुयात् ॥

---

१ See foot-note १ on the previous page.

2 S' खदाश°.

तथा तत्रैव कर्मणि खदाशयान्नं शरावचतुष्टयपरिमितम् अनेन अनुवाकेन अभिमन्त्र्य ब्राह्मणाय प्रयच्छेत् ॥

सूत्रितं हि। "देवहेडनेन मन्त्रोक्तम्। आचार्यायोपदधीत। खदाशयस्यावपते। वैवस्वतं यजते। चतुःशरावं ददाति" इति [कौ० ५. १०] ॥

तथा सवान् आधास्यमानः सवाग्नौ अनेनानुवाकेन आज्यं जुहुयात् समिधः शकलान् वा आदध्यात्। सूत्रितं हि। "अग्नीन् आधास्यमानः सवान् वा दास्यन्" इति प्रक्रम्य "तस्मिन् देवहेडनेनाज्यं जुहुयात् समिधोभ्यादध्यात् शकलान् वा" इति [कौ० ८. १] ॥

तथा अन्त्येष्टौ चिताग्नावादीप्ते अनेनानुवाकेन आज्यं जुहुयात् ॥

"याम्यां यमभये" [न० क० १७] इति विहितायां याम्याख्यायां महाशान्तौ "यद् देवा देवहेडनम्" इति अनुवाकम् आवपेत्। तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे। "यद् देवा देवहेडनम् इति याम्यायाम्" इति [न० क० १८] ॥

तथा सवयज्ञेषु ब्राह्मौदनिकाग्नौ "यद् देवा देवहेडनम्" [६. ११४] "यद् विद्वांसः" [६. ११५] "अपमित्यम् अप्रतीत्तम्" [६. ११७] एतैस्त्रिभिस्तृचैः पूर्णाहुतिं जुहुयात्। सवयज्ञं प्रक्रम्य सूत्रितम्। "ब्राह्मौदनिकम् अग्निं मथित्वा यद् देवा देवहेडनम् यद् विद्वांसो यदविद्वांसः अपमित्यम् अप्रतीत्तम् इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तैरन्वारब्धे दातरि पूर्णहोमं जुहुयात्" [इति] [कौ० ८. ८] ॥

तथा "यद् देवा देवहेडनम्" इति द्वाभ्यां तृचाभ्याम् अग्निष्टोमे तृतीयसवने आदित्यग्रहहोमं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। अग्निष्टोमं प्रक्रम्य वैताने सूत्रितम्। "आदित्यग्रहहोमं यद् देवा देवहेडनं द्वाभ्याम्" इति [वै० ३. १२] ॥

तथा अग्निष्टोम एव तृतीयसवनान्ते आभ्यां तृचाभ्यां सर्वप्रायश्चित्तहोमान् कुर्यात्। तद् उक्तं वैताने। "आग्नीध्रीये सर्वप्रायश्चित्तीयान् जुहोति" इति प्रक्रम्य "देवहेडनस्य सूक्ताभ्यां च" इति [वै० ३. १३] ॥

1 S' खद्वाश°. 2 S' सचाग्नौ. 3 S' सवानाधास्यन्. We with *Kausika*. 4 S °चित्तीयां. We with *Kausika*.

अत्र "यद् विद्वांसः" इत्यनेन तृचेन आग्रयणेष्टौ वैश्वदेवं चरुं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । आग्रयणेष्टिं प्रक्रम्य "यद् विद्वांसः[६.११५] द्यावापृथिवी उपश्रुत्या[२.१६.२] सोमो वीरुधाम्[५.२४.७] इति वैश्वदेवद्यावापृथिव्यसौम्यान्" इति [वै०२.४] वैताने सूत्रितत्वात् ॥

तत्र प्रथमा ॥

यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ॥ १ ॥

यत् । देवाः । देवऽहेडनम् । देवासः । चकृम । वयम् ।
आदित्याः । तस्मात् । नः । यूयम् । ऋतस्य । ऋतेन । मुञ्चत ॥ १ ॥

हे देवाः अग्न्यादयः देवहेळनम् । हेळतिः क्रुध्यतिकर्मा । देवाः क्रुध्यन्ति येन पापेन । करणे ल्युट् । देवानां क्रोधकरं यत् पापं देवासः देवाः देवनशीला इन्द्रियपरवशाः सन्तः वयं चकृम कृतवन्तः । देवास इति । "आज्जसेरसुक्" । "देवसेनमेषादयः पचादिषु द्रष्टव्याः" इति परिगणनाद् इगुपधलक्षणं कं बाधित्वा अजन्तो देवशब्दः सर्वत्र अन्तोदात्तः । इह तु व्यत्ययेन आद्युदात्तत्वम् । हे आदित्याः अदितेः पुत्रा देवाः यूयं तस्मात् तथाविधात् पापाद् ऋतस्य ऋतेन । ऋतम् इति यज्ञस्य सत्यस्य च नामधेयम् । यज्ञसंबन्धिना सत्येन । यद्वा ऋतम् सत्यं परं ब्रह्म तत्संबन्धिना प्रणवादिरूपेण मन्त्रेण साधनेन नः अस्मान् मुञ्चत वियोजयत । इन्द्रियचापलेन उपार्जितं कृत्स्नं पापं मन्त्रसामर्थ्येन निर्दहतेत्यर्थः ॥

द्वितीया ॥

ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुञ्चतेह नः ।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ॥ २ ॥

ऋतस्य । ऋतेन । आदित्याः । यजत्राः । मुञ्चत । इह । नः ।

१ P चकृम. २ B B$^{2}$ D K R S P J C$^{2}$ शेकिम. We with A K R$^{2}$ P V.

1 S' अधिकरणे ... करणे.

यज्ञम्। यत्। यज्ञऽवाहसः। शिक्षन्तः। न। उपऽशेकिम ॥ २ ॥

हे आदित्याः अदितेः पुत्रा देवाः। "दित्यदित्या०" इत्यादिना अपत्येर्थे प्राग्दीव्यतीयो ण्यप्रत्ययः। यजत्राः। "अमिनक्षीत्यादिना [उ०३.१०५] यजेरत्रन् प्रत्ययः। यष्टव्याः यूयम् ऋतस्य यज्ञस्य संबन्धिना ऋतेन सत्येन। यद्वा ऋतशब्दद्वयेनापि सत्यम् उच्यते। सत्यस्य सत्येन परब्रह्मणा। श्रूयते हि। "तद् एतत् सत्यस्य सत्यं प्राणा वै सत्यं तेषाम् एष सत्यम्" इति [बृ०आ०२.१.२३]। तेन परब्रह्मणा ध्यातव्येन इह अस्मिन् कर्मणि नः अस्मान् मुञ्चत कर्माधिकारविघातकात् सर्वस्मात् पापाद् वियोजयत। ध्यायमानं हि परं ब्रह्म सर्वस्य पापस्य निवर्तकम्। स्मर्यते हि।

उपपातकेषु सर्वेषु पातकेषु महत्सु च।
प्रविश्य रजनीपादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत्॥

इति। हे यज्ञवाहसः यज्ञस्य प्रापका निर्वर्तका देवाः वयं यज्ञम् ज्योतिष्टोमादिकं शिक्षन्तः शक्तुं निष्पादयितुम् इच्छन्तः यत् यस्मात् पापाद्धेतोः नोपशेकिम शक्ताः समर्था न भवेम। तस्मात् पापाद् मुञ्चतेत्यर्थः। यज्ञवाहस इति। वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि [उ०४.२२०] इति वहेरसुन् प्रत्ययः। तत्र णिदित्यनुवृत्तेरुपधावृद्धिः। शिक्षन्त इति। शकॄ शक्तौ। अस्मात् सनि "सनि मीमा०" इत्यादिना अचः स्थाने इस् आदेशः। "अत्र लोपोभ्यासस्य" इति अभ्यासलोपः। शेकिमेति। तस्मादेव धातोश्छान्दसे लिटि एत्वाभ्यासलोपौ। ऋादिनियमाद् इट्॥

तृतीया॥

मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ॥ ३ ॥

मेदस्वता। यजमानाः। स्रुचा। आज्यानि। जुह्वतः।

---

१ P J C$^{p}$ उपऽशेकिम. We with P. २ A B$^{h}$ K$^{m}$ R P J C$^{p}$ विश्वे. We with D K$^{m}$ S$^{1}$ P V C$^{s}$. ३ D K$^{2}$ P V शेकिम. We with A B B$^{h}$ K$^{m}$ R S$^{m}$ P J C$^{s}$ C$^{p}$.

1 So S', making the pâda of nine syllables. 2 S' नवतका.

अकामाः । विश्वे । वः । देवाः । शिक्षन्तः । न । उप । शेकिम ॥ ३ ॥

मेदस्वता । चतुर्थो धातुर्मेदः । तद्वता स्फीतावयवेन पशुना यजमानाः यागं निष्पादयन्तः स्रुचा जुह्वा आज्यानि जुह्वतः आहवनीये प्रक्षिपन्तः एवंभूता वयम् हे विश्वे देवाः वः युष्माकम् अकामाः कामनारहिताः । पापवशाद् भयमाना इत्यर्थः । शिक्षन्तः शक्तुं यागानुष्ठानं कर्तुम् इच्छन्तः नोप शेकिम । यस्मात् पापात् न शक्ता भवाम तस्मात् पापान्मुञ्चतेति शेषः ॥

चतुर्थी ॥

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥ १ ॥

यत् । विद्वांसः । यत् । अविद्वांसः । एनांसि । चकृम । वयम् ।
यूयम् । नः । तस्मात् । मुञ्चत । विश्वे । देवाः । सऽजोषसः ॥ १ ॥

यत् पापनिमित्तं विद्वांसः जानन्तः यच्च पापनिमित्तम् अविद्वांसः अजानानाः ज्ञानाद् अज्ञानाद् वा वयम् एनांसि पापानि चकृम कृतवन्तः हे विश्वे देवाः सजोषसः सह प्रीयमाणा यूयं तस्मात् प्रागुक्तात् पापाद् नः अस्मान् मुञ्चत ॥

पञ्चमी ॥

यदि जाग्रद् यदि स्वप्नेन एनस्योकरम ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम ॥ २ ॥

यदि । जाग्रत् । यदि । स्वपन् । एनः । एनस्यः । अकरम ।
भूतम् । मा । तस्मात् । भव्यम् । च । द्रुपदात्ऽइव । मुञ्चताम ॥ २ ॥

एनः पापं प्रियम् अस्य एनसि साधुरिति वा एनस्यः अज्ञानाद् ईदृशोहं जाग्रत् जागरावस्यापन्नः सन् । यदिशब्दः यद् इत्यर्थे । यद् एनः

१ P J K Cr विश्वे. We with P Cr. २ P K शेकिम. We with P J Cr. ३ Such is the account of all the MSS. and Vaidikas. ४ P चकृम. We with P J Cr. ५ P Cr एनस्यः. We with P J K.

पापम् अकरम् कृतवान् अस्मि । तथा स्वपन् स्वप्नावस्था प्राप्तः सन् यदि [यत्] पापं कृतवान् अस्मि । जाग्रत् इति । जागृ निद्राक्षये । अस्मात् लटः शत्रादेशः । अदादित्वात् शपो लुक् । "जक्षित्यादयः षट्" इति अभ्यस्तत्वाद् "नाभ्यस्ताच्छतुः" इति नुमभावः । अकरम् इति । "कृमृहरुहिभ्यः०" इति च्लेः अङ् आदेशः । तस्माद् उभयविधात् पापाद् भूतम् लब्धसत्ताकं प्राणिजातम् । भविष्यत्सत्ताकं प्राणिजातं भव्यम् । "भव्यगेय०" इत्यादिना "अचो यत्" इति कर्तरि यत् । "यतोनावः" इति उदात्तत्वम् । यद्वा इमौ लोकौ भूतभव्यशब्दवाच्यौ । तथा च तैत्तिरीयकम् । "भूताय स्वाहा-"भविष्यते स्वाहेति भूताभव्यौ होमौ जुहोति । अयं वै लोको भूतम् "असौ भविष्यत्" इति [तै०ब्रा०३.८.१८.५] । ते उभे भूतभव्ये मा मां द्रुपदादिव । पादबन्धनार्थो द्रुमो द्रुपदः । तस्मादिव मुञ्चताम् वियोजयताम् ॥

षष्ठी ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥ ३ ॥

द्रुपदात्ऽइव । मुमुचानः । स्विन्नः । स्नात्वा । मलात्ऽइव ।
पूतम् । पवित्रेणऽइव । आज्यम् । विश्वे । शुम्भन्तु । मा । एनसः ॥ ३ ॥

द्रुपदादिव काष्ठमयात् पादबन्धनादिव पापाद् मुमुचानः विमुच्यमानः । व्यत्ययेन यकः श्नुः । यद्वा मुचेर्लिटः कानच् । व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः । तथा स्विन्नः स्वेदयुक्तः पुरुषः स्नात्वा अप्सु निमज्य मलादिव यथा देहाश्रिताद् बाह्यमलाद् वियुज्यते एवं पापाद् वियुज्यमानः । भवानीति शेषः । तथा पवित्रेण पवनसाधनेन पूतम् शोधितम् आज्यमिव तद् यथा निष्कल्मषं भवति एवं मा मां विश्वे सर्वे देवाः एनसः पापाद् शुम्भन्तु शुद्धं कुर्वन्तु ॥

[इति] द्वादशेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"यद् यामं चक्रुः" इति तृचेन घृततैलमधूनां परिमितानां वृद्धिक्षयलक्षणाद्भुतप्रायश्चित्तार्थम् आज्यं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अथ यत्रैतत् "सर्पिर्वा तैलं वा मधु वा विस्पन्दयते यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्र "इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः" इति [कौ० १३. ४०] ॥

"अपमित्यम् अप्रतीत्तम्" इति त्रिभिस्तृचैः उत्तमर्णे मृते सति तत्पुत्राय सगोत्राय वा धनम् अभिमन्त्र्य ऋणी दद्यात् ॥

तथा अनेन तृचत्रयेण द्रव्यम् अभिमन्त्र्य उत्तमर्णस्य श्मशानभूमौ चतुष्पथे वा निक्षिपेत् ॥

तथा तृचत्रयेण द्रव्यम् अभिमन्त्र्य कक्षेषु निक्षिप्य तान् अग्निना दीपयेत् ॥

सूत्रितं हि । "अपमित्यम् अप्रतीत्तम् इत्युत्तमर्णे मृते तदपत्याय प्रयच्छति । सगोत्राय । श्मशाने निवपति । चतुष्पथे च । कक्षान् आदीपयति" इति [कौ० ५. १०] ॥

तथा अस्य तृचत्रयस्य सवयज्ञेषु पूर्णहोमे विनियोग उक्तः ॥

तथा लौकिकाग्निना शालादाहे तच्छान्त्यर्थम् अनेन तृचत्रयेण व्रीहियवगोधूमादिमिश्रधान्यैः पूर्णाञ्जलिं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अथ य- "त्रैतद् ग्राम्योग्निः शालां दहत्यपमित्यम् अप्रतीत्तम् इत्येतैस्त्रिभिः सूक्तै- "र्मैश्रधान्यस्य पूर्णाञ्जलिं हुत्वा" इति [कौ० १३. ४१] ॥

तथा अग्निष्टोमावसाने गार्हपत्याग्नेररण्योरात्मनि वा समारोपणानन्तरम् उपोष्यमाणां वेदिम् अपमित्यम् इत्यनेन अनुमन्त्रयेत । "अपमित्यम् अप्रतीत्तम् इति वेदिम् उपोष्यमाणाम्" इति वैतानात् [वै० ३. १४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया ।
वैवस्वते राजनि तज्जुहोम्यथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोन्नम् ॥ १ ॥

यत् । यामम् । चक्रुः । निऽखनन्तः । अग्रे । कार्षीवणाः । अन्नऽविदः । न । विद्यया ।

---

1 S' विष्पंदते. 2 S' उत्तमवर्णे. 3 S' उत्तमवर्णस्य. 4 S' स्मशा°. 5 S' अपोह्यमाणां. We with *Kauśika*. 6 S' वेदिमपोह्यमाणामिति. We with the *Vaitâna* and its commentators.

वैवस्वते। राजनि। तत्। जुहोमि। अथ। यज्ञियम्। मधुऽमत्। अस्तु।
नः। अन्नम् ॥ १ ॥

कार्षीवणाः कृषिं वनन्ति संभजन्त इति कृषीवनाः शूद्राः। तत्संबन्धिनः कर्मकराः कार्षीवणाः। ते अग्रे पुरा भूमिं निखनन्तः कृषन्तः यद् यामं यमसंबन्धि क्रूरं यत् कर्म चक्रुः कृतवन्तः। तत्र कारणम् आह नँ विदो न विद्यया इति। यस्मात् ते विद्यया विशेषज्ञानेन नोपलक्षिताः अत एव नँ विदः न वेदितारः कार्याकार्यविभागज्ञानशून्याः तस्माद् यामं कर्म कृतवन्त इत्यर्थः। यद्वा अग्रे पुरा भूमिं निखनन्तः असुराः यद् यामं यमसंबन्धि प्राणापहरणनिमित्तं क्रूरं कर्म कृतवन्तः। श्रूयते हि। "असुरा वै निर्यन्तो देवानां प्राणेषु वलगान् न्यखनन्" इति [तै० सं० ६.२.११.२]। तत् कर्म कार्षीवणा अज्ञजनाः न विदो न जानन्ति। ※विदुरित्युकारस्य व्यत्ययेन अकारः※। यतस्ते विद्यया संस्कृतबुद्ध्या न भवन्ति। विशेषज्ञानशून्या इत्यर्थः। तत् तत्र अद्भुतशमने न्यूनाधिकपरिमाणोपेतं तत् आज्यमधुतैलादिकं वैवस्वते विवस्वान् आदित्यः तस्य पुत्रे राजनि ईश्वरे यमे जुहोमि हविष्टेन प्रक्षिपामि। अथ अद्भुतशमनानन्तरं यज्ञियम् यज्ञार्हं तद् अन्नं मधुमत् माधुर्योपेतं [नः] अस्माकं भोक्तुं योग्यम् अस्तु ॥

द्वितीया ॥

वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं मधुभागो मधुना सं सृजाति।
मातुर्यदेनं इषितं न आगन् यद् वा पितापराद्धो जिहीडे ॥ २ ॥

वैवस्वतः। कृणवत्। भागऽधेयम्। मधुऽभागः। मधुना। सम्। सृजाति। मातुः। यत्। एनः। इषितम्। नः। आऽअगन्। यत्। वा। पिता। अपऽराद्धः। जिहीडे ॥ २ ॥

वैवस्वतः विवस्वतः पुत्रो यमः भागधेयम् आत्मार्थं हविर्भागं कृणवत् करोतु। मधुभागः माधुर्योपेतहविषा भागेन युक्तः सन् मधुना माधु-

1 S' °निमित्तक्रूरं.

योपेतेन क्षीरघृतादिना अस्मान् [सं सृजाति] संसृजतु । मातुः सकाशाद् यद् एनः पापम् इषितम् प्रेरितं सत् नः अस्मान् कृतापराधान् [आगन्] आगमत् । ✕गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "मो नो धातोः" इति नत्वम् ✕ । [वा] अथवा पिता अपराद्धः अस्मत्कृतापराधेन विमुखः सन् यत् जिहीळे* क्रुध्यति । ✕हेड क्रोधे । छान्दसो वर्णविकारः ✕ । मातापित्रोर्द्रोहकृतं यद् उत्पातस्य निमित्तं तदपि शाम्यत्वित्यर्थः ॥

तृतीया ॥

यदीदं मातुर्यदि वा पितुर्नः परि भ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन् ।
यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः ॥ ३ ॥

यदि । इदम् । मातुः । यदि । वा । पितुः । नः । परि । भ्रातुः । पुत्रात् । चेतसः । एनः । आऽआगन् ।
यावन्तः । अस्मान् । पितरः । सचन्ते । तेषाम् । सर्वेषाम् । शिवः । अस्तु । मन्युः ॥ ३ ॥

इदं परिदृश्यमानम् एनः पापं यदि मातुः सकाशात् आगन् आगमत् यदि वा पितुः सकाशात् यदि वा भ्रातुः सकाशात् यदि वा अन्यस्मादपि परिजनात् पुत्राद् वा चेतसः आत्मीयाद् मनसः सकाशात् पापं [नः अस्मान्] आगमत् । तेन च पापेन क्रुद्धा यावन्तः यत्परिमाणाः पितरः अस्मान् सचन्ते समवयन्ति प्राप्नुवन्ति तेषां सर्वेषां मन्युः क्रोधः शिवो अस्तु शान्तो भवतु ॥

चतुर्थी ॥

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् ॥ १ ॥

अपऽमित्यम् । अप्रतीत्तम् । यत् । अस्मि । यमस्य । येन । बलिना । चरामि ।

१ P P J आ । अगन् । We with Cr. २ D चरामसि.

इदम्। तत्। अग्ने। अनृणः। भवामि। त्वम्। पाशान्। विऽचृतम्। वेत्थ। सर्वान्॥ १॥

अपमित्यम् अपमातव्यम् अपाकर्तव्यं धान्यादिकम् ऋणम् उत्तमर्णाद् गृहीतम् अप्रतीत्तम् पुनस्तस्मै न प्रत्यर्पितम्। मेङ् प्रणिदाने। अस्माद् अपपूर्वाच्छान्दसः क्यप्। "मयतेरिदन्यतरस्याम्" इति इत्त्वम् अत्रापि व्यत्ययेन प्रवर्तते। "ह्रस्वस्य पिति कृति०" इति तुक्। प्रतिपूर्वाद् ददातेर्निष्ठा। "अच उपसर्गात् तः" इति धातोस्तकारादेशः। "दस्ति" इति उपसर्गस्य दीर्घः। ईदृशं यद् ऋणमेव अहम् अस्मि भवामि। ऋणबाहुल्यख्यापनार्थं तादात्म्यव्यपदेशः। यस्माद् एवं तस्माद् बलिना बलवता येन ऋणेन शासितुः यमस्य वशे चरामि हे अग्ने त्वत्प्रसादाद् इदम् इदानीं तत् तेन ऋणेन अनृणः ऋणरहितो भवामि। त्वं खलु तान् सर्वान् ऋणोद्भवान् पारलौकिकान् पाशान् बन्धनरज्जुविशेषान् विचृतम् विचर्तितुं मोचयितुं वेत्थ जानासि। शक्तो भवसीत्यर्थः। चृती हिंसाग्रन्थनयोः। अस्मात् तुमर्थे "शकि णमुल्कमुलौ" इति शकेरप्रयोगेपि छान्दसः कमुल् प्रत्ययः॥

पञ्चमी॥

इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज्जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत्।
अपमित्यं धान्यं[1] यज्जघसाहमिदं तदग्ने अनृणो भवामि॥ २॥

इह। एव। सन्तः। प्रति। दद्मः। एनत्। जीवाः। जीवेभ्यः। नि। हरामः। एनत्।

अपऽमित्यं। धान्यम्। यत्। जघस। अहम्। इदम्। तत्। अग्ने। अनृणः। भवामि॥ २॥

इहैव इह लोक एव सन्तः विद्यमाना एनद् ऋणं प्रति दध्मः उ-

---

१ P P[2] J °वृतम्. We with Cv. २ B दध्म ए°. ३ A °न्यां ३. B D S[m] C- °न्यं ३. We with B[h] K K[m] R V.

---

1 S' अपमापतव्यम्.

त्तमर्णाय प्रत्यर्पयामः । एतदेव विवृणोति । जीवाः इह लोके जीवन्त एव जीवेभ्यः जीवञ्च उत्तमर्णेभ्यो देहत्यागात् पुरैव एनद् ऋणं नि हरामः नितरां नियमेन वा अपाकुर्मः । धान्यं व्रीहियवादिकम् उत्तमर्णसकाशाद् अपमित्य प्रस्थाढकादिसंख्यया परिवृत्य गृहीत्वा यद् अहं जघस भक्षितवान् अस्मि । अपमित्येति । अपपूर्वात् मेङः "उदीचां माङो व्यतीहारे" इति क्त्वा प्रत्ययः । ल्यबादेशे "मयतेरिदन्यतरस्याम्" इति इत्त्वम् । "ह्रस्वस्य पिति०" इति तुक् । जघसेति । "लिट्यन्यतरस्याम्" इति अदेर्लिटि उत्तमैकवचने घस्लृ आदेशः । "णल् उत्तमो वा" इति णित्त्वस्य विकल्पनाद् वृद्ध्यभावः । हे अग्ने इदम् इदानीं तत् तस्मात् परकीयधान्यभक्षणात् त्वत्प्रसादेन अनृणः ऋणरहितः ऋणनिमित्तनरकपातरहितो भवामि । अनृण इति । बहुव्रीहौ "नञ्सुभ्याम्" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ॥

षष्ठी ॥

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥ ३ ॥

अनृणाः । अस्मिन् । अनृणाः । परस्मिन् । तृतीये । लोके । अनृणाः । स्याम । ये । देवऽयानाः । पितृऽयानाः । च । लोकाः । सर्वान् । पथः । अनृणाः । आ । क्षियेम ॥ ३ ॥

हे अग्ने त्वत्प्रसादाद् अस्मिन् भूलोके अनृणाः । ऋणम् अत्र लौकिकं वैदिकं च परिगृह्यते । लौकिकं तावद् उत्तमर्णाद् गृहीतं हिरण्यधान्यादिकं प्रसिद्धम् । वैदिकं तु "जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते । ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः" इति [तै० सं० ६.३.१०.५] । तेन सर्वेण ऋणेन रहिताः स्याम भवेम । परस्मिन् लोके स्वर्गादौ एतद्देहपरित्यागेन दिव्यशरीरपरिग्रहेण सुकृतफलभोगस्थानेपि अनृणाः स्याम । ऋणादाननिमित्तो भोगप्रतिबन्धस्तत्रापि मा भूद्

1 So S'. The Vaidika reading is ब्रह्मचर्येणर्षि°.

इत्यर्थः। तृतीये लोके स्वर्गादपि उत्कृष्टे नाकपृष्ठादौ वयम् अनृणा भवेम। अन्येपि ये लोकाः देवयानाः देवा एव येषु यान्ति गच्छन्ति ते तथोक्ताः। ‡अधिकरणे ल्युट्‡। ये च लोकाः पितृयाणाः पितॄणाम् असाधारणभोगभूमयः तान् सर्वान् लोकान् तत्राप्युपायभूतान् पथः मार्गांश्च। यद्वा लोक्यन्त इति लोकाः पन्थानः देवानेव यैर्यान्ति ते देवयानाः पितॄनेव यैर्यान्ति ते पितृयाणाः। ‡उभयत्र करणे ल्युट्‡। य एवम् उभये विभिन्ना मार्गाः तान् सर्वान् अनृणाः ऋणप्रतिबन्धरहिताः सन्तः आ क्षियेम अभिगच्छेम। ‡क्षि निवासगत्योः। नुदादित्वात् शः‡॥

[इति] द्वितीयं सूक्तम्॥

"यद्वस्ताभ्याम्" इति तृतीयं सूक्तम्। अस्य विनियोगः पूर्वतृचेन सह उक्तः॥

तत्र प्रथमा॥

यद्वस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गल्गुमुपलिप्समानाः।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनु दत्तामृणं नः॥ १॥

यत्। हस्ताभ्याम्। चकृम। किल्बिषाणि। अक्षाणाम्। गल्गुम्। उपऽलिप्समानाः।

उग्रंपश्ये इत्युग्रमऽपश्ये। उग्रऽजितौ। तत्। अद्य। अप्सरसौ। अनु। दत्ताम्। ऋणम्। नः॥ १॥

हस्ताभ्याम्। इन्द्रियाणाम् उपलक्षणम् एतत्। हस्तपादादीन्द्रियैः किल्बिषाणि पापानि यत् चकृम वयं कृतवन्तः स्मः। अक्षाणाम् इन्द्रियाणां गल्गुम् गन्तव्यं शब्दस्पर्शादिविषयम् उपलिप्समानाः उपलब्धुम् अनुभवितुम् इच्छन्तः। यद् ऋणं चकृमेत्यर्थः। ‡गल्गुम इति। गमेः औणादिकः कुप्रत्ययः। "अनुदात्तोपदेश०" इत्यादिना अनुनासिकलोपः। उपपूर्वात् लभेः इच्छासनि "सनि मीमाघुरभलभ०" इति अच इस्

१ K K^m V गन्तु°. We with A B B^h D R S^m P P^m J C^s C^p.

आदेशः । "अत्र लोपोभ्यासस्य" इति अभ्यासलोपः । "पूर्ववत् सनः" इति आत्मनेपदम् । हे* उग्रंपश्ये तीक्ष्णदर्शने । "उग्रंपश्येरंमदपाणिंधमाश्च" इति खशि निपात्यते । हे* उग्रजितौ उग्रान् उद्गूर्णबलान् प्रतिकर्तुम् अशक्यान् शत्रून् जयत इति उग्रजितौ । तत्रैका उग्रंपश्या । अपरा उग्रजित् । युगपदधिकरणवाचित्वाद् वृक्षौ च वृक्षौ च वृक्षौ इतिवद् उभयत्रापि द्विवचनम् । एतन्नामानौ अप्सरसौ अद्य इदानीं नः अस्माकं तत् प्राग् उदीरितम् ऋणम् अनु दत्ताम् आनुकूल्येन उत्तमर्णेभ्यः प्रयच्छतम् ॥

द्वितीया ॥

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् ॥ २ ॥

उग्रंपश्ये इत्युग्रमऽपश्ये । राष्ट्रऽभृत् । किल्बिषाणि । यत् । अक्षऽवृत्तम् । अनु । दत्तम् । नः । एतत् ।
ऋणात् । नः । न । ऋणम् । अर्त्समानः । यमस्य । लोके । अधिऽरज्जुः । आ । अयत् ॥ २ ॥

हे उग्रंपश्ये । राष्ट्रभृतः पृथगुपादानाद् अत्र एकवचनान्तम् एतत् । हे राष्ट्रभृत् राष्ट्रं राज्यं बिभर्ति पोषयतीति राष्ट्रभृत् । एतत्संज्ञे अप्सरसौ यानि अस्माभिः कृतानि किल्बिषाणि पापानि यच्च पापम् अक्षवृत्तम् अक्षेषु इन्द्रियेषु निषिद्धानिषिद्धविभागपरिहारेण स्वस्वविषयप्रवृत्तेषु निष्पन्नम् । "तत्पुरुषे तुल्यार्थ०" इत्यादिना सप्तमीपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । नः अस्माकम् ऋणभूतम् एतत् सर्वं पापम् अनु दत्तम् आनुकूल्येन यथास्मान् न बाधते तथा दत्तम् प्रयच्छतम् । निवारयतम् इत्यर्थः । अनुदानप्रकारम् आह । ऋणान्न इति । ऋणान्* ऋणिनः । मत्वर्थीयः अकारः । अनपाकृतिनो[2] नः अस्मान् । यद्वा ऋणात् इति पदच्छेदः । भावप्रधानो निर्देशः । ऋणित्वा-

1 S' चेतिव° for इतिव°. 2 S' अनपाकृतिनां.

हेतोः नः अस्मान् यमस्य पुण्यपापानुरूपं दण्डयितुर्देवस्य संबन्धिनि लोके स्थाने उत्तमर्णः ऋणम् एच्छमानः ऋणं ग्रहीतुम् अभित इच्छन् अधिरज्जुः अस्मद्ग्रहणाय पाशहस्तो भूत्वा न आयत् न प्राप्नोति। तथा अनुदत्तम् इति संबन्धः। ॥अय गतौ। व्यत्ययेन परस्मैपदम्॥

तृतीया॥

यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् ॥ ३ ॥

यस्मै। ऋणम्। यस्य। जायाम्। उपऽएमि। यम्। याचमानः। अभिऽएमि। देवाः।
ते। वाचम्। वादिषुः। मा। उत्तराम्। मत्। देवपत्नी इति देवऽपत्नी। अप्सरसौ। अधि। इतम् ॥ ३ ॥

यस्मै उत्तमर्णाय वस्त्रहिरण्यधान्यादिकम् ऋणम् अहं धारयामि। ॥धारयतेः प्रयोगाभावेपि अर्थसत्तां द्योतयितुं "धारेरुत्तमर्णः" इति चतुर्थी॥। यस्य पुरुषस्य जायाम् भार्याम् उपैमि कामुकः सन् उपगच्छामि। तथा यं पुरुषं स्वामिनम् उत्तमर्णं वा याचमानः इष्टं धनं प्रार्थयमानः हे देवाः अभ्यैमि अभिगच्छामि। ते सर्वे मत् मत्तः उत्तराम् उत्कृष्टतरां वाचं प्रतिकूलां मा वादिषुः मा ब्रुवन्तु। हे देवपत्नी देवपत्न्यौ देवानां पत्न्यौ जायाभूते अप्सरसौ अधीतम् मद्विज्ञापनं चित्तेऽवधारयतम्। ॥इक् स्मरणे॥

चतुर्थी॥

यददीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥

यत्। अदीव्यन्। ऋणम्। अहम्। कृणोमि। अदास्यन्। अग्ने। उत। सम्ऽगृणामि।

१ C उपऽएमि. We with P P J. २ P J मा. ३ P अप्सरसौ. We with P J C.

1 S चित्तेवधारयतम् अवधारयतम्.

वैश्वानरः । नः । अधिऽपाः । वसिष्ठः । उत् । इत् । नयाति । सुऽकृतस्य ।
लोकम् ॥ १ ॥

अदीव्यन् व्यवहर्तुम् अशक्नुवन् यद् ऋणम् अहं कृणोमि करोमि हे अग्ने अदास्यन् पुनः प्रदानम् अकरिष्यन् । ‡उतशब्दः अप्यर्थे‡ । संगृणामि दास्यामीति केवलं प्रतिजानामि । ‡गृ शब्दे । प्वादित्वात् ह्रस्वः‡ । वैश्वानरः विश्वनरहितः सर्वेषां प्राणिना हितकारी अत एव अधिपाः अधिकं पालयिता वसिष्ठः वासयितृतमः एवंभूतोग्निः सुकृतस्य पुण्यकर्मणः फलभूतं लोकम् [नः अस्मान्] उन्नयाति उन्नयतु ऊर्ध्वं प्रापयतु । ‡इत्शब्दः अवधारणे‡ । स्वयमेव नयत्वित्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु ।
स एतान् पाशान् विचृतं[1] वेद सर्वानथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ २ ॥

वैश्वानरायं । प्रति । वेदयामि । यदि । ऋणम् । समऽगरः । देवतासु ।
सः । एतान् । पाशान् । विऽचृतम् । वेद । सर्वान् । अथ । पक्वेन । सह ।
सम् । भवेम ॥ २ ॥

वैश्वानराय विश्वनरहिताय अग्नये प्रति वेदयामि विज्ञापयामि । किं तद् इत्याह यद्यृणम् इति । यदिशब्दो यच्छब्दार्थः । यद् ऋणं लौकिकम् देवतासु देवताविषये यः संगरः अवश्यकर्तव्यतया प्रतिज्ञा "ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः" [तै० सं० ६.३.१०.५] इति तद्धि वैदिकम् ऋणम् । तत् सर्वं वैश्वानरायं निवेदयामीत्यर्थः । स तादृशो वैश्वानरोग्निः एतान् लौकिकवैदिकऋणात्मकान् सर्वान् पाशान् पाशवद्बन्धकान् विचृतम् विचर्तितुं विश्लेषयितुं वेद जानाति । ‡विचृतम् इति । विपूर्वाच्चृतेः तुमर्थे कमुल् प्रत्ययः‡ । अथ ऋणरूपपाशच्छेदनानन्तरं पक्वेन परिपक्वेन स्वर्गादिफलेन सह वयं सं भवेम संगच्छेमहि ॥

---

१ P °वृतम्.

षष्ठी ॥

वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम्।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि ॥ ३ ॥

वैश्वानरः। पविता। मा। पुनातु। यत्। समऽगरम्। अभिऽधावामि। आऽशाम्।
अनाजानन्। मनसा। याचमानः। यत्। तत्र। एनः। अप। तत्। सुवामि ॥ ३ ॥

पविता शोधयिता सर्वभावानां शुद्धेः कर्ता वैश्वानरोग्निः मा मा पुनातु पूतं शुद्धं करोतु। यत् यस्माद्धेतोः संगरम् प्रतिज्ञाम् यक्ष्ये दास्यामीत्येवंरूपाम् ऋणापाकरणविषयां केवलम् अभिधावानि आभिमुख्येन प्राप्नवानि तथा आशाम् देवादीनाम् अभिलाषमेव उत्पादयामि न किंचिद् यागादिरूपम् ऋणापाकरणं करोमि अनाजानन् हिताहितविभागम् अजानन् प्रत्युत मनसा अन्तःकरणेन ऐहिकमेव सुखं याचमानः प्रार्थयमानः। ※उभयत्र लक्षणहेत्वोः क्रियाया इति हेतौ शतृप्रत्ययः※। अज्ञानाद् विपर्ययज्ञानाच्च हेतोरित्यर्थः। तत्र तथाविधे अनृतकरणे यद् एनः पापम् उत्पन्नम् अस्ति तद् अप सुवामि अस्मत्तोपगमयामि। ※षू प्रेरणे। तुदादित्वात् शः॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

"यद् अन्तरिक्षम्" इति चतुर्थं सूक्तम्। तत्र "विषाणा पाशान्" इति चतुर्ऋचेन दारुलोहरज्वादिबन्धनमोचनार्थं चर्ममयलोहमयादिकं पूर्वबन्धनरज्जुसदृशं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्रयेत। सूत्रितं हि। "विषाणा "पाशान् इत्युन्मोचनम्। प्रतिरूपं संपातवन्तं करोति। वाचा बद्धाय "भूमिपरिलेखम्" इति [कौ० ७. ३] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम।

१ P J एनः. We with P̊ K Cr.

अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥
यत् । अन्तरिक्षम् । पृथिवीम् । उत । द्याम् । यत् । मातरम् । पितरम् । वा । जिहिंसिम ।
अयम् । तस्मात् । गार्हऽपत्यः । नः । अग्निः । उत् । इत् । नयाति । सुऽकृ-तस्य । लोकम् ॥ १ ॥

अन्तरिक्षादिशब्दैर्लोकवचनैस्तत्रत्या जना लक्ष्यन्ते । अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षलोकस्थान् जनान् पृथिवीम् भूलोकं तत्रत्यान् जनान् । उतशब्दः अप्यर्थः समुच्चये । द्याम् दिवं द्युलोकस्थांश्च जनान् यज्जिहिंसिम । तत्तद्विषयहिंसया यत् पापं कृतम् इत्यर्थः । तथा मातरम् जनयित्रीं पितरम् जनकम् । वाशब्दः समुच्चये । यज्जिहिंसिम । तयोः प्रतिकूलाचरणलक्षणाद्धिंसनाद् यत् पापम् उपार्जितम् इत्यर्थः । हिंसि हिंसायाम् । अस्मात् लिटि रूपम् । तस्माद् उभयविधात् पापाद् अयं गार्हपत्यः गृहपतिना संयुक्तः अस्माभिः परिचर्यमाणोग्निः नः अस्मान् [सुकृतस्य लोकम् इत् सुकृतपरिपाकस्य लोकं स्वर्गमेव] उन्नयाति उन्नयतु उद्गमयतु । पापाद् उत्तारयत्वित्यर्थः । गार्हपत्य इति । "गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः" इति ञ्यप्रत्ययः ॥

द्वितीया ॥

भूमिर्माता दितिर्नो जनित्रं भ्राताऽन्तरिक्षमभिशस्त्या नः ।
द्यौर्नः पिता पित्र्याच्छं भवाति जामिमृत्वा माव पत्सि लोकात् ॥ २ ॥
भूमिः । माता । अदितिः । नः । जनित्रम् । भ्राता । अन्तरिक्षम् । अभिऽशस्त्याः । नः ।
द्यौः । नः । पिता । पित्र्यात् । शम् । भवाति । जामिम् । कृत्वा । मा । अव । पत्सि । लोकात् ॥ २ ॥

नः अस्माकं भूमिः पृथिवीदेवता माता जननी । अदितिः अखण्ड-

१ D K C$^{r}$ लोकान्. २ So our pada MSS. ३ P P$^{2}$ J C$^{r}$ मा wrongly.

नीया अदीना वा देवमाता जनित्रम् जननकारणम्। अन्तरिक्षम् अवकाशात्मकोन्तरिक्षलोकः भ्राता सर्वदा सहभावित्वात्। अतो नः अस्माकं मात्रादिकृतं पापम् अस्तीत्यर्थः। ते सर्वे अभिशस्त्या अभिशंसनाद् मिथ्यापवादजनितात् पापाद् नः अस्मान्। रक्षन्त्विति शेषः॥ तथा नः अस्माकं द्यौः द्युलोकः पिता वृष्ट्यादिप्रदानेन रेतःसेकस्य कर्ता। स च पित्र्यात् पितुरागताद् दोषाद् ऋणादानादिरूपात्। ‡"पितुर्यच्च" इति यत् प्रत्ययः‡। शं भवाति सुखम् उत्पादयतु। पित्र्यमपि दोषं निवर्त्य अस्मान् सुखिनः करोत्वित्यर्थः। अहं च जामि व्यर्थमेव मृत्वा प्राणान् परित्यज्य परलोकहितं यागहोमदानादिकम् अननुष्ठाय लोकात् लोकनीयात् स्वर्गादेः मा अव पत्सि अवपन्नः अधोगतिर्मा भूवम्। यद्वा जामिम् इति पदच्छेदः। जामिर्भगिनी तद्वन्निषिद्धा स्त्री ताम् ऋत्वा गत्वा निषिद्धाचरणेन अवपन्नो मा भूवम् इत्यर्थः। ‡पद गतौ। माङि लुङि उत्तमैकवचने रूपम‡॥

तृतीया॥

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अङ्गैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥ ३॥

यत्र। सुऽहार्दः। सुऽकृतः। मदन्ति। विऽहाय। रोगम्। तन्वः। स्वायाः। अश्लोणाः। अङ्गैः। अहुताः। स्वःऽगे। तत्र। पश्येम। पितरौ। च। पुत्रान्॥ ३॥

यत्र यस्मिन्नुत्तमे स्वर्गादिलोके सुहार्दः शोभनहृदयाः सुकृतः शोभनं यागादिकं कृतवन्तो जनाः स्वायाः स्वकीयायाः तन्वाः[m] शरीरस्य संबन्धिनं रोगम् पापफलभूतं ज्वरादिकं विहाय परित्यज्य मदन्ति दुःखासंस्पृष्टकेवलसुखानुभवेन माद्यन्ति वयमपि अङ्गैः अवयवैर्हस्तपादादिभिः अश्लोणाः[m] कुष्ठादिरोगरहिता अहुताः अकुटिलगतयः सन्तः तत्र पुण्यकृ-

१ A B S[m] C[s] °न्वाः ३. We with B K K[m] R V.

1 S' inserts तथा after माद्यन्ति.

ङिः प्राप्ये स्वर्गे लोके पितरौ पितरं मातरं च । ✕"पिता मात्रा" इति पितुः शेषः✕ । तथा आत्मीयान् पुत्राश्च पश्येम साक्षात्कुर्याम ॥

चतुर्थी ॥

विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥

विऽसानाः । पाशान् । वि । स्य । अधि । अस्मत् । ये । उत्ऽतमाः । अधमाः । वारुणाः । ये ।

दुःऽस्वप्न्यम् । दुःऽइतम् । निः । स्व । अस्मत् । अथ । गच्छेम । सुऽकृतस्य । लोकम् ॥ १ ॥

हे बन्धनाभिमानिनि निर्ऋतिदेवते पाशान् अस्मदवयवगतान् बन्धनरज्जुविशेषान् विषाणा विमुञ्चती अस्मत् अस्मत्तः अधि उपरि वि ष्य विमुञ्च । ✕षो अन्तकर्मणि । "ओतः श्यनि" इति ओकारलोपः✕ । पाशा विशेष्यन्ते । ये पाशा उत्तमा उत्कृष्टा ऊर्ध्वकायाश्रिताः ये च अधमाः निकृष्टा अधःकायाश्रिता ये च वारुणाः वरुणसंबन्धिनः सर्वकायाश्रिताः पाशाः । "उदुत्तमं वरुण पाशम् अस्मद् अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय" इति हि निगमः [ऋ०१.२४.१५] । इत्थम् अनेकभेदभिन्नान् पाशान् अस्मत्तो विमुञ्चेत्यर्थः । अपि च दुःष्वप्न्यम् दुष्टस्वप्नदर्शनजनितं दुरितं पापम् [अस्मत्] अस्मत्तो निः ष्व निर्गमय । ✕ष्वू प्रेरणे । तुदादित्वात् शः । "तन्वादीनां छन्दसि बहुलम्" इति यण्✕ । अथ पाशविमोचनानन्तरं सुकृतस्य पुण्यस्य फलभूतं लोकम् इमं च अमुं च गच्छेम प्राप्नुयाम ॥

पञ्चमी ॥

यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा ।

१ C- दुःष्व°. २ None of our saṁhitā MSS. and Vaidikas have the visarga after नि. ३ All the MSS. read रज्वां.

1 S' निष्व for निः ष्व both here and in its text.

अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ २ ॥

यत्। दारुणि। बध्यसे। यत्। च। रज्वाम्। यत्। भूम्याम्। बध्यसे। यत्। च। वाचा।

अयम्। तस्मात्। गार्हऽपत्यः। नः। अग्निः। उत्। इत्। नयाति। सुऽकृतस्य। लोकम् ॥ २ ॥

हे पुरुष त्वं दारुणि काष्ठविशेषे यद् बध्यसे[1]। यच्च रज्वां बध्यसे। भूम्यां वा गर्तरूपायां यद् बध्यसे। वाचा २ आज्ञाप्रकाशिन्या यच्च बध्यसे। तस्मात् सर्वस्माद् बन्धनाद् अयम् अस्मदीयो गार्हपत्योग्निः त्वाम् उत्तारयत्वित्यर्थः। [शेषं पूर्ववत्] ॥

उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके।
प्रेहामृतस्य यच्छतां प्रैतु बद्धकमोचनम् ॥ ३ ॥

उत्। अगाताम्। भगवती इति भगऽवती। विऽचृतौ। नाम। तारके इति। प्र। इह। अमृतस्य। यच्छताम्। प्र। एतु। बद्धकऽमोचनम् ॥ ३ ॥

भगवती भाग्ययुक्ते विचृतौ नाम विचृन्नामनी तारके नक्षत्रे उदगाताम् उदयं प्राप्नवती। "विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवता" इति श्रुतेः [तै० सं० ४. ४. १०. २] मूलनक्षत्रस्य विचृत् इति संज्ञा। ॥अधिष्ठानद्वयापेक्षया द्विवचनम्॥। इह अस्मिन् बद्धे पुरुषे अमृतस्य। ॥कर्मणि षष्ठी॥। अमृतम् अमरणं प्र यच्छताम्। बद्धकमोचनम् कुत्सितं निगलादिभिर्बद्धः बद्धकः। ॥कुत्सायां कन् प्रत्ययः॥। तस्य मोचनं बन्धान्मोक्षः प्रैतु प्राप्नोतु ॥

सप्तमी ॥

वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम्।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वाँ अनु क्षिय ॥ ४ ॥

---

१ See foot-note ३ on the previous page. २ P ॰वृतौ.

वि । जिहीष्व । लोकम् । कृणु । बन्धात् । मुञ्चासि । बङ्कम् ।
योन्याःऽइव । प्रऽच्युतः । गर्भः । पथः । सर्वान् । अनु । क्षिय ॥ ४ ॥

हे बन्धनाभिमानिदेव त्वं वि जिहीष्व विविधं गच्छ । ओहाङ् गतौ । शपः श्लुः । "भृञाम् इत्" इति अभ्यासस्य इत्त्वम् । लोकं स्थानम् अस्य पुरुषस्य बन्धनार्तस्य कृणु कुरु । तस्माद् [बन्धात्] बन्धनाद् बङ्कम् इमं पुरुषं मुञ्चासि मुञ्च ॥ हे पुरुष बन्धनमोक्षानन्तरं योन्याः प्रच्युतः मातुर्गर्भाशयाद् बहिर्विनिर्गतो गर्भ इव स यथा इतस्ततः अनिरुद्धगतिः प्रचलति एवं सर्वान् पथो मार्गान् अनु क्षिय अनुगच्छ । यथेष्टं वर्तस्वेत्यर्थः । क्षि निवासगत्योः ॥

[इति] चतुर्थं सूक्तम् ॥

"एतं भागम्" "एतं सधस्थाः" इति द्वाभ्यां सवयज्ञेषु संस्थितहोमान् जुहुयात् । तदनुमन्त्रणं च कुर्यात् । सूत्रितं हि । "एतं भागम् "[६.१२२] एतं सधस्थाः[६.१२३] उलूखले[१०.९.२६] इति सं- "स्थितहोमान् आवपतेऽनुमन्त्रणं च" इति [कौ० ८.४] ॥

तथा अग्निष्टोमे हविर्धाने स्वस्वचमससमीपे चमसिभिः स्वकीयान् पितॄन् उद्दिश्य पुरोडाशशकलेषु दत्तेषु सत्सु आभ्याम् अनुमन्त्रयेत । उक्तं वैताने । "हविर्धाने यथाचमसं दक्षिणतः स्वेभ्य उपासनेभ्यस्त्रींस्त्रीन् पुरो- "डाशसंवर्तान् एतत् ते प्रततामह[१८.४.७५] इति निपृणन्ति । अ- "त्र पितरः[कौ०११.९] इति जपित्वा एतं भागम्[६.१२२] एतं सध- "स्थाः[६.१२३] श्येनो नृचक्षाः[७.४२.२] इत्यनुमन्त्रयते" इति [वै० ३.१२] ॥

अत्र "एतं सधस्थाः" इति द्वाभ्यां ब्रह्मा वैश्वकर्मणहोमान् अनुमन्त्रयेत । "एतं सधस्थाः[६.१२३.१,२] इति द्वे येनासहस्रम्[९.५.१७] इति वैश्वकर्मणहोमान्" इति [वै० ५.२] वैतानसूत्रात् ॥

"शुद्धाः पूताः" इत्यनया सवयज्ञेषु ऋत्विजां हस्तप्रक्षालनार्थम् उदकं दद्यात् । सवयज्ञान् प्रक्रम्य सूत्रितम् । "चतुर आर्षेयान् भृग्वङ्गिरोविद उपसादयति शुद्धाः पूता इति मन्त्रोक्तम्" इति [कौ० ८.४] ॥

"देवाः पितरः" इति तिस्रः यजमानस्य आर्षेयप्रवरणे वाचयेत्। "प्रवरे प्रक्रियमाणे वाचयेद् देवाः पितर इति तिस्रः" इति [वै० १. २] वैतानसूत्रात्॥

"दिवो नु मां बृहतः" इति तृचेन आकाशोदकप्लावनदोषशान्त्यर्थम् उदकम् अभिमन्त्र्य शरीरं प्रक्षालयेत्॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तैलं शान्तौषधीर्गन्धं हिरण्यं वासो वा अभिमन्त्र्य तैः शरीरम् उद्वर्तयेत्॥

सूत्रितं हि। "दिवो नु माम् इति वियद्बिन्दून् प्रक्षालयति मन्त्रोक्तैः स्पृशति" इति [कौ० ५. १०]॥

तत्र प्रथमा॥

एतं भागं परि ददामि विद्वान् विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य।
अस्माभिर्दत्तं जरसः परस्तादच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम॥ १॥

एतम्। भागम्। परि। ददामि। विद्वान्। विश्वऽकर्मन्। प्रथमऽजाः। ऋतस्य।

अस्माभिः। दत्तम्। जरसः। परस्तात्। अच्छिन्नम्। तन्तुम्। अनु। सम्। तरेम॥ १॥

हे विश्वकर्मन् विश्वं कृत्स्नं जगत् कर्म कर्तव्यं यस्य स विश्वकर्मा। एतत्संज्ञ हे देव यस्त्वम् ऋतस्य सत्यस्य परब्रह्मणः प्रथमजाः प्रथमं जातः उत्पन्नः। स प्रथमशरीरी हिरण्यगर्भः सर्वजगत्स्रष्टेत्यर्थः। "जननसनखनक्रमगमो विट्"। "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति आत्वम्। ईदृशस्य तव माहात्म्यं विद्वान् जानन् एतं भागम् पक्वम् अन्नं हविर्भागं वा परि ददामि रक्षणार्थं तुभ्यं प्रयच्छामि। एवम् इह लोके अस्माभिस्तुभ्यं दत्तम् इमं भागं जरसः परस्तात् जराया ऊर्ध्वम् एतद्देहपातोत्तरकालम्। जरसः परस्ताद् इति वदता जरापर्यन्तम् आयुषो दैर्घ्यं प्रार्थितम्। जीर्णम् इमं देहं परित्यज्य अच्छिन्नम् अवि-

1 S' शांत्यौष°.

च्छिन्नं तन्तुम् । तायते कुलं विस्तार्यते अनेनेति तन्तुः पुत्रपौत्रादिलक्षणः संतानः । तम् अनुप्रविश्य सं चरेम संप्राप्नुयाम । एतदेव हि संसारिणः पुरुषस्य अमृतत्वम् । तथा च मन्त्रवर्णः । "प्रजाम् अनु प्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम्" इति [तै० ब्रा० १. ५. ५. ६] "प्रजाभिरग्ने अमृतत्वम् अश्याम्" इति च [ऋ० ५. ४. १०] ॥

द्वितीया ॥

ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति येषां दत्तं पित्र्यमायनेन ।
अबन्ध्वेके ददतः प्रयच्छन्तो दातुं चेच्छिक्षान्त्स स्वर्ग एव ॥ २ ॥

ततम् । तन्तुम् । अनु । एके । तरन्ति । येषाम् । दत्तम् । पित्र्यम् । आऽअयनेन ।

अबन्धु । एके । ददतः । प्रऽयच्छन्तः । दातुम् । च । इत् । शिक्षान् । सः । स्वःऽगः । एव ॥ २ ॥

एके केचन जना ऋणिनः सन्तः देहपातोत्तरकालं ततम् विस्तीर्णं तन्तुम् पुत्रपौत्रादिलक्षणं संतानम् अनुलक्ष्य तरन्ति ऋणम् अतिक्रामन्ति । पुत्रादिभिस्तस्य पितृगतस्य ऋणस्य अपाकरणात् । येषां जनानाम् ऋणवतां पित्र्यम् पितुरागतमपि ऋणम् आयनेन आगमनेन पुत्रपौत्रादिषु प्रवेशनेन दत्तम् उत्तमर्णेभ्यः प्रत्यर्पितं भवति । ते तरन्तीति पूर्वत्र संबन्धः । अस्त्येवं पुत्रपौत्रादिसंतानवताम् । येषां तु तदभावः कथं ते अनृणाः स्युरिति तत्राह अबन्ध्वेक इति । अबन्धु । [1]"सुपां सुलुक्०" इति जसो लुक्[1] । अबन्धवः । बध्नाति कुलं संततम् अविच्छिन्नं करोतीति बन्धुः पुत्रपौत्रादिलक्षणः संतानः । तद्रहिता एके जना ददतः । [1]चतुर्थ्यर्थे षष्ठी[1] । हिरण्यधान्यादिकं ददते उत्तमर्णाय पितृकृतम् आत्मकृतं चेति उभयविधमपि ऋणं प्रयच्छन्तः इह

१ A B चेच्छिक्षा° corrected to चेच्छिक्षा°. R चेच्छिक्षा°. २ P J शिक्षान्. We with P C.

1 S' कुलसंततम्.

लोक एव प्रत्यर्पयन्तो दातुं चेत् शिक्षान् सर्वात्मना प्रत्यर्पयितुं यदि शक्नुवन्ति शक्त्यभावेपि तदिच्छामात्रं वा विद्यते स एव तेषां स्वर्गः। तावन्मात्रेणापि सर्वम् ऋणम् अपाकृत्य स्वर्गभाजो भवन्तीत्यर्थः। शिक्षान् इति। शक्लृ शक्तौ इत्यस्मात् सनि "सनि मीमा०" इत्यादिना अचः स्थाने इस् आदेशः। "अत्र लोपोभ्यासस्य" इति अभ्यासलोपः। लेटि आडागमः। "इतश्च लोपः परस्मैपदेषु" इति इकारलोपः। संयोगान्तलोपे तस्य असिद्धत्वात् नलोपाभावः ॥

तृतीया ॥

अन्वारभेथामनुसंरभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ॥ ३ ॥

अनुऽआरभेथाम्। अनुऽसंरभेथाम्। एतम्। लोकम्। श्रत्ऽदधानाः। सचन्ते।
यत्। वाम्। पक्वम्। परिऽविष्टम्। अग्नौ। तस्य। गुप्तये। दंपती इति दमऽपती। सम्। श्रयेथाम् ॥ ३ ॥

हे दंपती जायापती अन्वारभेथाम् परलोकहितं सत्कर्म अनुलक्ष्य तस्य आरम्भः क्रियताम्। अनुसंरभेथाम् आरम्भानन्तरं तत्रैव संरब्धौ संयुक्तौ भवताम्। सत्कर्मणाम् अग्निहोत्रादीनाम् अनारम्भः आरब्धानां च तेषां परित्यागश्च सर्वथा न युक्त इत्यर्थः। एतम् कर्मफलभूतं लोकम् स्वर्गादिकं श्रद्दधानाः श्रद्धावन्तः आस्तिक्यबुद्धियुक्ताः कर्मानुष्ठानतत्परा जनाः सचन्ते सेवन्ते। "सचस्वा नः स्वस्तये" सेवस्व नः स्वस्तये इति हि निरुक्तम् [नि० ३. २१]। यस्माद् एवं तस्मात् हे दंपती युवामपि श्रद्दधानौ भवतम् इत्यर्थः। वां युवाभ्याम् अर्थे यत् पक्वम् पाकेन संस्कृतं स्थालीपाकादिलक्षणम् अन्नम्। "युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोः०" इति चतुर्थीद्विवचनान्तस्य वाम् आदेशः। पक्वम् इति। पचेरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य "पचो वः" इति

1 S' उपा०.

वत्वम् ॥ । यद्वा युवयोः संबन्धि ब्राह्मणेभ्यो देयं पक्वम् अन्नम् । एतच्च स्मृतिविहितस्य वापीकूपतटाकनिर्माणादेः पूर्तस्य उपलक्षणम् । यच्च अन्नम् अग्नौ परिविष्टम् हवीरूपेण देवतार्थं प्रक्षिप्तम् । एतच्च इष्टशब्दवाच्यस्य अग्निहोत्रदर्शपूर्णमासादेर्यागस्य उपलक्षणम् । तस्य इष्टापूर्तस्य गुप्तये रक्षणाय हे दंपती युवां सं श्रयेथाम् संसेवेथाम् । ॥श्रिञ् सेवायाम् ॥ ॥

चतुर्थी ॥

यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तमन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता अग्ने जरसः परस्तात् तृतीये नाके सधमादं मदेम ॥ ४ ॥

यज्ञम् । यन्तम् । मनसा । बृहन्तम् । अनुऽआरोहामि । तपसा । सऽयोनिः । उपऽहूताः । अग्ने । जरसः । परस्तात् । तृतीये । नाके । सधऽमादम् । मदेम ॥ ४ ॥

यज्ञम् अस्माभिः कृतं यागं यन्तम् देवान् गच्छन्तं बृहन्तम् महान्तं मनसा बुद्ध्या अहम् अन्वारोहामि अनुप्रविश्य तत्रैव तिष्ठामि । कथंभूतः । तपसा अनशनादिरूपेण दीक्षानियमेन सयोनिः । योनिः दिव्यदेहोत्पत्तिबीजम् अपूर्वम् । तत्सहितः । यदि हि यजमानस्तपस्वी भवति तदा यज्ञस्तेन संबद्धो भवति । "योतपस्वी स्याद् असंश्लिष्टोस्य यज्ञः स्यात् । तपस्वी स्यात् । यज्ञमेव तत् संश्लेषयत इति विज्ञायते" इति स्मरणात् । सर्वथा यजमानेन तपस्विना भवितव्यम् इत्यभिप्रायः । यद्वा यज्ञम् यज्ञसाधनं यष्टव्यं वा अग्निं यन्तम् अस्मदीयं हविरादाय देवान् गच्छन्तम् इति योज्यम् । यज देवपूजादौ । "यजयाच०" इत्यादिना भावे अकर्तरि च कारके नङ् प्रत्ययः । यन्तम् इति । एतेर्लटः शत्रादेशे "इणो यण्" इति यण् ॥ । हे अग्ने उपहूताः त्वया अनुज्ञाता जरसः परस्तात् चिरकालम् इह लोके उषित्वा जरसः परस्तात् जरायाः ऊर्ध्वम् । "जरायाः जरस् अन्यतरस्याम्" इति जरस् आदेशः ॥ । जीर्णम् इदं मानुषशरीरं परित्यज्य तृतीये

त्रित्वसंख्यापूरके नाके । कं सुखम् अकं दुःखम् नास्मिन् अकम् अस्तीति नाकः । ✕"नञ्राण्नपाद्०" इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः✕ । दुःखासंस्पृष्टे स्वर्गलोके सधमादम् पुत्रपौत्रादिभिः सह हर्षो यथा भवति तथा मदेम हृष्येम । ✕"सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहशब्दस्य सधादेशः✕ ॥

पञ्चमी ॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे ॥ ५ ॥

शुद्धाः । पूताः । योषितः । यज्ञियाः । इमाः । ब्रह्मणाम् । हस्तेषु । प्रऽपृथक् । सादयामि ।

यत्ऽकामः । इदम् । अभिऽसिञ्चामि । वः । अहम् । इन्द्रः । मरुत्वान् । सः । ददातु । तत् । मे ॥ ५ ॥

शुद्धाः पापरहिताः पूताः जगत्पवित्रभूता योषितः स्त्रीरूपाः यज्ञियाः यज्ञार्हा इमा अपः ब्रह्मणाम् ब्राह्मणानां चतुर्णाम् आर्षेयाणाम् ऋत्विजां हस्तेषु प्रक्षालनेन पृथक् सादयामि अस्मदुपभोगार्थं स्थापयामि । यत्कामः यत्फलं कामयमानः इदम् इदानीम् हे आपः वः युष्मान् अहम् अभिषिञ्चामि अभितो निनयामि । ✕षिच क्षरणे । "शे मुचादीनाम्" इति नुम्✕ । मरुत्वान् मरुद्गणैर्युक्तः स प्रसिद्ध इन्द्रः मे मह्यं तत् फलं ददातु प्रयच्छतु ॥

एतं सधस्थाः परि वो ददामि यं शेवधिमावहाज्जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्ति तं स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ १ ॥

एतम् । सधऽस्थाः । परि । वः । ददामि । यम् । शेवऽधिम् । आऽवहात् । जातऽवेदाः ।

अनुऽआगन्ता । यजमानः । स्वस्ति । तम् । स्म । जानीत । परमे । विऽओमन् ॥ १ ॥

हे सधस्थाः । सह तिष्ठन्ति एकत्र स्वर्गे लोके स्थाने यजमानेन सह निवसन्तीति सधस्था देवाः । "सुपि स्थः" इति तिष्ठतेः कप्रत्ययः । "सध मादस्थयोः०" इति सहस्य सधादेशः । हे सहायभूता देवाः एतं हविर्भागं वः युष्मभ्यं परि ददामि । परिदानं रक्षणार्थं दानम् । यं भागं शेवधिम् निधिरूपं जातवेदाः जातानां वेदिता अग्निः आवहात् युष्मान् प्रापयति । आङ्पूर्वाद् वहेर्लेटि आडागमः । एतम् इति पूर्वत्रान्वयः । अयं यजमानः स्वस्ति क्षेमेण तं शेवधिम् अन्वागन्ता पृष्ठत आगमिष्यति । "अनद्यतने लुट्" इति गमेर्लुट् । परमे उत्कृष्टे व्योमन् व्योमनि विविधावनयुक्ते स्वर्गलोके तम् अन्वागतं यजमानं जानीत स्म अवगच्छत । मा विस्मरतेत्यर्थः । अविस्मरणद्योतनार्थः स्मशब्दः । व्योमन्निति । विपूर्वाद् अवतेः "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति दृशिग्रहणाद् भावे मनिन् । "ज्वरत्वरस्रिव्यविमवाम् उपधायाश्च" इति ऊठि कृते गुणः । "सुपां सुलुक्०" इति सप्तम्या लुक् । विविधम् ओम रक्षणम् अस्मिन्निति बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । "न ङिसंबुद्ध्योः" इति नलोपाभावः ॥

सप्तमी ॥

जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ॥ २ ॥

जानीत । स्म । एनम् । परमे । विऽओमन् । देवाः । सधऽस्थाः । विद । लोकम् । अत्र ।
अनुऽआगन्ता । यजमानः । स्वस्ति । इष्टापूर्तम् । स्म । कृणुत । आविः । अस्मै ॥ २ ॥

जानीत स्मैनम् इत्यादि पूर्ववद् योज्यम् । हे सधस्थाः सहस्थाना देवाः अत्र अस्मिन् स्वर्गे अस्य यजमानस्य लोकं विद जानीथ । कर्मानुष्ठानसमय एव अवधारयत । तृतीयः पादः पूर्ववद् योजनीयः । अस्मै अन्वागताय यजमानाय तत्कृतम् इष्टापूर्तम् । इष्टं श्रुत्युक्तयागादि कर्म ।

स्मृत्युक्तवापीकूपतटाकनिर्माणादि पूर्तम्। तद् उभयम् आविष्कृणुत दर्शयत। तत्फलं प्रयच्छतेत्यर्थः ॥

देवाः पितरः पितरो देवाः। यो अस्मि सो अस्मि ॥ ३ ॥

देवाः। पितरः। पितरः। देवाः ॥ यः। अस्मि। सः। अस्मि ॥ ३ ॥

स पचामि स ददामि स यजे स दत्तान्मा यूषम् ॥ ४ ॥

सः। पचामि। सः। ददामि। सः। यजे। सः। दत्तात्। मा। यूषम् ॥ ४ ॥

अष्टमी ॥ ये देवाः वसुरुद्रादित्यरूपास्ते अस्माकं पितरः पितृपितामहप्रपितामहात्मकाः पितृदेवताः। ये च अस्माकं पितरः पितृपितामहप्रपितामहरूपा मानुषास्त एव प्रागुक्ता देवाः। इत्थं परस्परव्यतिहारेण पितॄणां देवतात्मकत्वं दृढीकृतम्। अतः सर्वेषां जनकाः देवा एव। ततो यो अस्मि यदीयो भवामि सो अस्मि तदीयोहम् अस्मि। संभावितव्यतिक्रमा हि स्त्रियः। अत एतद्भावनया स्वपितुरेव अहं पुत्रो भवामीत्यर्थः। "स्त्र्यपराधात् कर्तुश्च पुत्रदर्शनात्" [जै० १. २. १३] इत्यत्र मीमांसाभाष्यकृता एतत् समर्थितम्। अतः स तदीय एवाहं पचामि पाकयज्ञान् करोमि। स ददामि दानानि करोमि। स यजे यागान् अनुतिष्ठामि। सोहं दत्तात् पुत्रादिभिरनुष्ठितश्राद्धादिजन्यफलाद् मा यूषम् पृथक्कृतो मा भूवम्। सत्यपि मातापित्रोर्व्यभिचारे एतन्मन्त्रपाठसामर्थ्येन यथास्वमेव सर्वं कर्मानुष्ठितं भवतीत्यर्थः। यूषम् इति। यौतेः पृथग्भावार्थाद् माङि लुङि "च्लेः सिच्"। वर्णव्यत्ययेन ऊकारः ॥

नवमी ॥

नाके राजन् प्रति तिष्ठ तत्रैतत् प्रति तिष्ठतु।
विद्धि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमना भव ॥ ५ ॥

नाके। राजन्। प्रति। तिष्ठ। तत्र। एतत्। प्रति। तिष्ठतु।
विद्धि। पूर्तस्य। नः। राजन्। सः। देव। सुऽमनाः। भव ॥ ५ ॥

---

१ B K V C. अस्मि. We with A $^{h}$B D R $^{m}$S $^{d}$P J C$^{e}$. Sâyaṇa's text as given in S' is: योहमस्मि सो अस्मि. २ P अस्मि. ३ P दत्तान्. C$^{e}$ दत्तात्. We with $^{d}$P J.

हे राजन् स्वामिन् सोम । "सोमोस्माकं ब्राह्मणानां राजा" [तै०सं० १.८.१०.२] इति श्रुतेः । स त्वं नाके स्वर्गे लोके प्रति तिष्ठ अस्मदीयम् अपराधं विस्मृत्य सुखं वर्तस्व । तत्र तस्मिन् स्वर्गे लोके एतत् अस्माभिः कृतम् इष्टापूर्तं प्रति तिष्ठतु प्रतिष्ठितं फलप्रदानसमर्थं वर्ततताम् । हे राजन् नः अस्माकं पूर्तस्य । उपलक्षणम् एतत् । ※कर्मणि षष्ठी※ । इष्टापूर्तं विद्धि जानीहि । एतस्य कर्मण एतावत् फलं देयम् इति मनसा निश्चिनु । हे देव स तादृशस्त्वं सुमनाः शोभनमनस्को भव ॥

दशमी ॥

दिवो नु मां बृहतो अन्तरिक्षादपां स्तोको अभ्यपप्तद् रसेन ।
समिन्द्रियेण पयसाहमग्ने छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन ॥ १ ॥

दिवः । नु । माम् । बृहतः । अन्तरिक्षात् । अपाम् । स्तोकः । अभि । अपप्तत् । रसेन ।

सम् । इन्द्रियेण । पयसा । अहम् । अग्ने । छन्दःऽभिः । यज्ञैः । सुऽकृतां । कृतेन ॥ १ ॥

दिवः द्युलोकात् । नुशब्दो वितर्के । अथवा बृहतः महतः अन्तरिक्षात् आकाशाद् निर्मेघाद् अपाम् उदकानां स्तोकः बिन्दुः स्वकीयेन रसेन माम् अभ्यपप्तत् ममोपरि पतितोभूत् । ※पप्लृ गतौ । लुङि ऌदित्वात् च्लेः अङ् आदेशः । "पतः पुम्" इति पुम् आगमः※ । हे अग्ने त्वत्प्रसादेन अकालवर्षबिन्दुसेकजनितदोषम् अनेन प्रक्षालनेन परिहृत्य इन्द्रियेण इन्द्रस्य आत्मनो लिङ्गं यत् तेजो बलं वा तेन । पयसा [क्षीरेण] पयोवत् सारभूतेन अमृतेन वा । ※सम् इत्युपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः※ । संगच्छेय । तथा छन्दोभिः गायत्र्यादिच्छन्दोयुक्तैर्मन्त्रैः यज्ञैः अनुष्ठितैर्यागैः सुकृताम् पुण्यकृतां जनानां कृतेन क-

१ B अभ्यपप्त°. R अभ्यपप्त°.

1 S' पतितमभूत्.

र्मणा । यद्वा सुकृताम् शोभनकर्मणां कृतेन फलेन अहं संगच्छेयेत्यर्थः । एतस्य सर्वस्य निवर्तकं हि वृष्ट्युदकाभिवर्षणम् । श्रूयते हि दीक्षितधर्मप्रकरणे । "दिव्या आपोशान्ता ओजो बलं दीक्षां तपोस्य निर्भ्रन्ति" इति [तै०सं०३.१.१.३] ॥

एकादशी ॥

यदि वृक्षाद्भ्यपप्तत् फलं तद् यद्यन्तरिक्षात् स उ वायुरेव ।
यत्रास्पृक्षत् तन्वो३ यच्च वासस आपो नुदन्तु निर्ऋतिं पराचैः ॥ २ ॥

यदि । वृक्षात् । अभिऽअपप्तत् । फलम् । तत् । यदि । अन्तरिक्षात् । सः । उ इति । वायुः । एव ।
यत्र । अस्पृक्षत् । तन्वः । यत् । च । वाससः । आपः । नुदन्तु । निःऽऋतिम् । पराचैः ॥ २ ॥

वृक्षात् वृक्षाग्राद् यदि वर्षबिन्दुः अभ्यपप्तत् माम् अभिलक्ष्य पतितोभूत् । [पूर्ववत् लुङि पुम् आगमः] । तत् पतितं वर्षजलं तद्वृक्षसंबन्धि फलमेव । यदि च अन्तरिक्षात् निरावरणाद् आकाशप्रदेशाद् वर्षबिन्दुः अभ्यपप्तत् स उ सोपि वायुरेव वाय्वात्मक एव । नास्माकं दोषायेत्यर्थः । तन्वः शरीरस्य संबन्धिनि यत्र यस्मिन्नङ्गे अस्पृक्षत् वर्षबिन्दुः स्पृशति । [स्पृशतेश्छान्दसो लुङ् । "शल इगुपधाद् अनिटः क्सः" इति क्सेः क्सादेशः] । वाससः परिहितस्य अस्मदीयस्य वस्त्रस्य यच्च अङ्गं स्पृशति [वर्षबिन्दुस्तां] वर्षबिन्द्वात्मना पतितां निर्ऋतिम् अनिष्टकरीं पापदेवताम् इमाः प्रक्षालनार्थाः शुद्धा आपः पराचैः पराङ्मुखीं नुदन्तु अस्मत्तः प्रेरयन्तु । दूरं गमयन्तु इत्यर्थः ॥

द्वादशी ॥

अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव ।

१ AK १ for ३. We with BDKRSVC.
1 S' पतितमभूत्. २ S' निवारणा°.

सर्वा पवित्रा विततास्मत् तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ ३ ॥

अभिऽअञ्जनम । सुरभि । सा । समऽऋद्धिः । हिरण्यम । वर्चः । तत् । ऊं इति । पूत्रिमम् । एव ।

सर्वा । पवित्रा । विऽततता । अधि । अस्मत् । तत् । मा । तारीत् । निःऽऋतिः । मो इति । अरातिः ॥ ३ ॥

यद् एतद् वर्षजलं मदङ्गे पतितं तत् अभ्यञ्जनम् अभ्यङ्गसाधनम् । इदं तैलं सुरभि सौरभ्योपेतं चन्दनादिकम् । सैव समृद्धिः अस्माकम् अभिवृद्धिः । हिरण्यम् स्वर्णमयालंकारादि । वर्चः बलम् । इत्थम् अभ्यञ्जनाद्यात्मना भाव्यमानं तत् वर्षबिन्दुजलं पूत्रिमम् पवनसाधनमेव शुद्धिकरमेव । न दोषावहम् इत्यर्थः । पूञ् पवने इत्यस्मात् छान्दसः क्रिप्रत्ययः । "क्रेर्मम् नित्यम्" इति मप् । सर्वा सर्वाणि पवित्रा पवित्राणि पवनसाधनानि अभ्यञ्जनादीनि उक्तानि अनुक्तानि च अस्मदधि अस्माकम् उपरि विततता विततानि विस्तृतानि । "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः । तत् तस्मात् पवित्राच्छन्नत्वाद् निर्ऋतिः अनिष्टकारिणी पापदेवता अस्मान् मा तारीत् मातिक्रामतु । अरातिः शत्रुश्च मो मैव अतिक्रामतु । तॄ प्लवनतरणयोः । अस्मान् माङि लुङि सिचि वृद्धौ "इट ईटि" इति सिज्लोपः ॥

इति सायणार्यविरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये षष्ठकाण्डे द्वादशोनुवाकः ॥

त्रयोदशेनुवाके नव सूक्तानि । तत्र "वनस्पते वीड्वङ्गः" इति प्रथमं सूक्तम् । अत्र आद्येन तृचेन नवं रथम् अभिमन्त्र्य जयकामं राजानं रथम् आरोहयेत् । तद् उक्तं कौशिकेन । "वनस्पते[६.१२५] अया "विष्ठा[७.३] अग्न इन्द्रः[७.११५] दिशश्चतस्रः[८.८.२२] इति न-"वं रथं राजानं ससारथिम् आस्थापयति" इति [कौ०२.६] ॥

तथा आधाने रथचक्रहोमानन्तरम् अनेन आतिष्ठेत् ॥

अत्र "इन्द्रस्यौजः" इत्यनया तत्रैव कर्मणि च रथचक्रे जुहुयात् ॥

उक्तं वैताने । ' इन्द्रस्यौजो मरुताम् अनीकम्[६.१२५.३] इति र-

"थम् अभि हुत्वा वनस्पते वीड्वङ्गः[६.१२५] इत्यातिष्ठति" इति [वै० २.२] ॥

तथा महाव्रते माध्यन्दिनसवने अनेनाभिमन्त्रितं रथं राजानम् अन्यं वा आरोहयेत्। "वनस्पते वीड्वङ्ग इत्यभिमन्त्रितं रथम् आरोहयति" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै०६.४] ॥

"उप श्वासय" इति तृचेन परसेनात्रासनविद्वेषणकर्मणि भेर्यादिवादित्रं सूत्रोक्तप्रकारेण संपात्य त्रिस्ताडयित्वा वादकाय प्रयच्छेत्। सूत्रितं हि। "उच्चैर्घोषः[५.२०] उप श्वासय[६.१२६] इति सर्ववादित्राणि प्रक्षात्य तगरोशीरेण संधाव्य संपातवन्ति त्रिराहत्य प्रयच्छति" इति [कौ०२.७] ॥

तथा महाव्रते अनेन तृचेन भूमिदुन्दुभिं ताडयेत्। तद् उक्तं वैतानें। "भूमिदुन्दुभिम् औक्षेणापिनद्धं पुच्छेनाघ्नन्त्युच्चैर्घोष उप श्वासय" इति [वै०६.४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः।
गोभिः संनद्धो असि वीडयस्वास्माता ते जयतु जेत्वानि ॥ १ ॥

वनस्पते। वीडुऽअङ्गः। हि। भूयाः। अस्मत्ऽसखा। प्रऽतरणः। सुऽवीरः। गोभिः। सम्ऽनद्धः। असि। वीडयस्व। आऽस्माता। ते। जयतु। जेत्वानि ॥ १ ॥

हे वनस्पते। ※विकारे प्रकृतिशब्दः※। वनस्पतिविकार वृक्षनिर्मित रथ। ※"आमन्त्रितस्य च" इति षाष्ठिकम् आद्युदात्तत्वम※। वीड्वङ्गः दृढाङ्गो भूयाः। त्वदीयानि अङ्गानि ईषाचक्रयुगादीनि दृढानि भवन्त्वित्यर्थः। हिशब्दः प्रसिद्धौ। ※"हि च" इति निघातप्रतिषेधाद् यासुट उदात्तत्वम※। अस्मत्सखा वयं सखायः समानख्याना मित्रभूता यस्य स तथोक्तः। ※तत्पुरुषे हि "राजाहःसखिभ्यः०" इति समासान्तः [स्यात्]। अतो ऽत्र प्रसङ्गः। व-

1 S' अवयवानि.

हुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । प्रतरणः प्रकर्षेण शत्रुभ्यस्तारयिता सुवीरः शोभनैर्वीरैर्योधैरुपेतः । "वीरवीर्यौ च" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् । गोभिः । विकारे प्रकृतिशब्दः । गोविकारैश्चर्मरज्जुभिः संनद्धः सम्यक् दृढं बद्धः असि अत एव वीळयस्व दृढो भव । संग्रामयोग्यो भवेत्यर्थः । ते तव आस्थाता अधिष्ठाता पुरुषः जेत्वानि जेतव्यानि परकीयानि बलानि सुवर्णरजतराज्यादीनि वा परकीयाणि जयतु । जि जये "कृत्यार्थे तवैकेन्०" इति कर्मणि त्वन् प्रत्ययः । "ञ्नित्यादिर्नित्यम्" इति आद्युदात्तत्वम् ॥

द्वितीया ॥

दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ २ ॥

दिवः । पृथिव्याः । परि । ओजः । उत्ऽभृतम् । वनस्पतिऽभ्यः । परि । आऽभृतम् । सहः ।
अपाम् । ओज्मानम् । परि । गोभिः । आऽवृतम् । इन्द्रस्य । वज्रम् । हविषा । रथम् । यज ॥ २ ॥

दिवः द्युलोकात् पृथिव्याश्च सकाशाद् ओजः तदीयं बलम् उद्भृतम् उद्भृतम् । द्युसंबन्धिवृष्टिजललक्षणस्य रेतसो निषेकात् पृथिव्यवयवैरुपचयाच्च । तदीयं सारम् उद्धृत्य रथात्मना निर्मितम् इत्यर्थः । परिः पञ्चम्यर्थानुवादी । "हृग्रहोर्भः" इति भत्वम् । तथा वनस्पतिभ्यः सारवद्भ्यो वृक्षेभ्यः सकाशाद् आभृतम् आहृतं सहः पराभिभवनक्षमं बलमेव अयं रथः । तथा अपाम् उदकानाम् ओज्मानम् । ओजो बलम् । तदात्मकम् । उदकसंवर्धितवृक्षविकारत्वात् । परितो गोभिः गोविकारैश्चर्मभिरावृतम् आवेष्टितम् इन्द्रस्य वज्रम् इन्द्रायुधवद् अप्रतिह-

१ A B B D K K S V C- C[p] °राभृत°. We with R P J. २ P C[p] °भृतम्. We with P[2] J.

1 S' पृथिव्यवयवानुपमाच्च. 2 S' तदा.

तगतिम्। यद्वा वज्रावयववत्वाद् वज्रो रथः। अवयवे समुदायशब्दः प्रयुज्यते। तथा च श्रुतिः। "इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्। स त्रेधा व्यभवत्। स्फ्यस्तृतीयम्। रथस्तृतीयम्। यूपस्तृतीयम्" इति [तै० सं० ६. १.३.४]। एवंभूतं रथम् हे होतः हविषा आज्यादिना यज प्रीणय॥

तृतीया॥

इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः।
स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय॥ ३॥

इन्द्रस्य। ओजः। मरुताम्। अनीकम्। मित्रस्य। गर्भः। वरुणस्य। नाभिः। सः। इमाम्। नः। हव्यऽदातिम्। जुषाणः। देव। रथ। प्रति। हव्या। गृभाय॥ ३॥

हे देव दानादिगुणयुक्त हे रथ त्वम् इन्द्रस्य ओजः बलम् असि। मरुताम् मरुद्गणानाम् अनीकम् समुदायरूपं बलम् असि। तथा मित्रस्य देवस्य गर्भः गर्भवद् अन्तरवस्थितः पालनीयोसि। वरुणस्य देवस्य नाभिः नाभिरिव अवयवभूतोसि। यद्वा वरुणेन संनद्धो भवसि। ※णह बन्धने इत्यस्मात् नहो भश्च [उ० ४.१२५] इत्यौणादिक इञ् प्रत्ययो भत्वं च※। स तादृशस्त्वं नः अस्मदीयाम् इमां हव्यदातिम्। हव्यानि हवींषि दीयन्तेस्याम् इति हव्यदातिः यज्ञक्रिया। तां जुषाणः सेवमानः हव्या हव्यानि हवींषि अस्माभिर्दीयमानानि प्रति गृभाय प्रतिगृहाण। ※"छन्दसि शायजपि" इति श्नः शायजादेशः। "हृग्रहोर्भः" इति भत्वम※॥

चतुर्थी॥

उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते वन्वतां विष्ठितं जगत्।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून्॥ १॥

उप। श्वासय। पृथिवीम्। उत। द्याम्। पुरुऽत्रा। ते। वन्वताम्। विऽस्थितम्। जगत्।

सः । दुन्दुभे । सऽजूः । इन्द्रेण । देवैः । दूरात् । दवीयः । अप । सेध । शत्रून् ॥ १ ॥

हे दुन्दुभे पृथिवीम् भूमिम् उप श्वासय आत्मीयेन घोषेण उपश्वसिताम् आपूरितां कुरु । उत द्याम् द्यामपि द्युलोकमपि उप श्वासय आपूरय । ष्वस प्राणने । विष्ठितम् विविधम् अवस्थितं जगत् प्राणिजातं पुरुत्रा बहुषु देशेषु [ते] त्वदीयं जयघोषं वनुंताम् संभजताम् । वन षण संभक्तौ । विकरणव्यत्ययः । यद्वा । वनु याचने । श्रोत्रसुखं त्वदीयं जयघोषं सर्वो जनः प्रार्थयताम् इत्यर्थः । पुरुत्रेति । "देवमनुष्य०" इत्यादिना सप्तम्यर्थे पुरुशब्दात् त्रा प्रत्ययः । हे दुन्दुभे स तादृशस्त्वम् इन्द्रेण संग्रामाधिदैवतेन तदनुचरैर्देवैः मरुदादिभिश्च [सजूः] दूरात् सर्वे जना यावन्तं विप्रकृष्टदेशं दूरं मन्यन्ते ततोपि दवीयो दूरतरम् अस्मदीयान् शत्रून् अप सेध अपगमय । षिधु गत्याम् । भौवादिकः । दवीय इति । ईयसुनि "स्थूलदूर०" इत्यादिना यणादि परं लुप्यते पूर्वस्य च गुणे अव् आदेशः ॥

पञ्चमी ॥

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा अभि ष्टन दुरिता बाधमानः ।
अप सेध दुन्दुभे दुच्छुनामित इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥ २ ॥

आ । क्रन्दय । बलम् । ओजः । नः । आ । धाः । अभि । स्तन । दुःऽइता । बाधमानः ।
अप । सेध । दुन्दुभे । दुच्छुनाम् । इतः । इन्द्रस्य । मुष्टिः । असि । वीडयस्व ॥ २ ॥

हे दुन्दुभे बलम् परकीयं शत्रुसंबन्धि रथतुरगगजपदातिलक्षणं युद्धाय संनद्धम् आ क्रन्दय पराजयेन आर्तध्वनियुक्तं कुरु । क्रदि आह्वाने रोदने च । अस्माकम् ओजः बलम् आ धाः आधेहि । युद्धाभिमुखं स्थापय । दधातेश्छान्दसो लुङ् ॥ तथा दुरि-

१ P बाधमानाः. We with P J Cr.

ता दुरितानि पराजयनिमित्तानि पापानि यद्वा शत्रुकृतानि दुर्गतानि दुःखानि बाधमानः निवर्तयन् अभि ष्टन अभितः श्रवणकटुकं शत्रुहृदयभञ्जकं परुषं शब्दं कुरु। ष्टन शब्दे। "अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम्" इति षत्वम्। इतः अस्माद् युद्धरङ्गाद् दुच्छुनाम् दुःखकरीं शत्रुसेनाम् अप सेध अपगमय। इन्द्रस्य देवस्य त्वं मुष्टिरसि मुष्टिवत् शत्रूणां भञ्जकोसि अतस्त्वं वीडयस्व दृढीभव॥

षष्ठी॥

प्रामूं जयाभीऽमे जयन्तु केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीतु।
समश्वपर्णाः पतन्तु नो नरोस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु॥ ३॥

प्र। अमूम्। जय। अभि। इमे। जयन्तु। केतुऽमत्। दुन्दुभिः। वावदीतु। सम्। अश्वऽपर्णाः। पतन्तु। नः। नरः। अस्माकम्। इन्द्र। रथिनः। जयन्तु॥ ३॥

हे इन्द्र अमूं दूरे दृश्यमानां शत्रुसेनां प्रकर्षेण जय यथा अस्मत्समीपं नायाति तथा पराजितां कुरु। इमे अस्मदीया भटाः पुरोवर्तिनः अभि जयन्तु शत्रून् अभिमुखं गच्छन्तो जयं प्रतिपद्यन्ताम्। अयं दुन्दुभिः केतुमत् प्रज्ञानवद् उच्चैस्तरां वावदीतु भृशं वदतु। ध्वनिश्रवणमात्रेण यथा शत्रवः पलायन्ते तथा उच्चैर्ध्वनत्वित्यर्थः। केतुमत् इति। "ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप्" इति मतुप उदात्तत्वम्। वावदीतु। वद व्यक्तायां वाचि। अस्माद् यङ्लुगन्तात् लोटि रूपम्। नः अस्माकं नरः नेतारः सेनानायकाः अश्वपर्णाः अश्वपतनाः अश्वारूढाः सन्तः [सं] पतन्तु युद्धभूमिम् इतस्ततो गच्छन्तु। तथा अस्माकं रथिनः रथारूढा अमात्यजना राजानश्च जयन्तु जयं प्रतिपद्यन्ताम्॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके प्रथमं सूक्तम्॥

"विद्रधस्य बलासस्य" इति तृचेन जलोदरविसर्पादिसर्वरोगभैषज्यार्थं व्याधितस्य मूर्ध्नि संपातान् आनयेत्॥

1 S' °हृदयजंभकं.

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन चतुरङ्गुलं पलाशशकलं पिष्ट्वा अभिमन्त्र्य व्याधितशरीरं लिम्पेत् ॥

सूत्रितं हि । "विद्रधस्य[६.१२७] या बभ्रवः[८.७] इत्युपोत्तमेन पलाशस्य चतुरङ्गुलेनालिम्पति" इति [कौ०४.२] "पञ्चमेन वरुणगृहीतस्य मूर्ध्नि संपातान् आनयति" इति च [कौ०४.२] ॥

"शकधूमम्" इति चतुर्ऋचेन स्वस्त्ययनकामः आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानां त्रयोदशद्रव्याणाम् अन्यतमं जुहुयात् ॥

तथा नित्यनैमित्तिककाम्यकर्माणि शीघ्रं कर्तुकामः अनेन चतुर्ऋचेन ब्राह्मणस्य संधिषु गोमयपिण्डान् निधाय अग्नित्वेन संकल्प्य अभिमन्त्र्य सूत्रोक्तप्रकारेण प्रश्नप्रतिवचने कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "शकधूमम्[६.१२८] भवाशर्वौ[११.२] इत्युपदधीत" इति [कौ०७.१] । "उपोत्तमेन सुहृदो ब्राह्मणस्य शकृत्पिण्डान् "पर्वस्वाधाय शकधूमं किम् अद्याहरिति पृच्छति । भद्रं सुमङ्गलम् इति "प्रतिपद्यते" इति [च कौ०७.१] ॥

तथा सोमग्रहणजनितारिष्टशान्तये अनेनाज्यं जुहुयात् । "अथ यत्रैतच्चन्द्रमसमं उपप्लवति" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । "शकधूमं नक्षत्राणीत्येतेन सूक्तेन जुहुयात्" इति [कौ०१३.८] ॥

तथा ग्रहयज्ञे हविराज्यहोमादीनि अनेन सोमाय कुर्यात् । तद् उक्तं शान्तिकल्पे । "शकधूमम् इति सोमाय" इति [शा०क०१५] ॥

तत्र प्रथमा ॥

विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते ।
विसल्पकस्योषधे मोच्छिषः पिशितं चन ॥ १ ॥

विऽद्रधस्य । बलासस्य । लोहितस्य । वनस्पते ।
विऽसल्पकस्य । ओषधे । मा । उत् । शिषः । पिशितम् । चन ॥ १ ॥

हे वनस्पते चतुरङ्गुलपलाशवृक्ष हे ओषधे विसर्पकादिव्याधेरौषधभूत

1 So S'. *Kauśika*: शकधूमं. 2 S' °मस उप°.

विद्रधस्य विदरणशीलस्य व्रणविशेषस्य । बलासस्य बलं शारीरम् अस्यति क्षिपतीति बलासः कासश्वासादिः तस्य । लोहितस्य लोहितवर्णस्य । एतद् विसर्पकविशेषस्य नाम । यद्वा लोहितं रुधिरम् । रुधिरस्रावात्मकस्य रोगस्येत्यर्थः । विसल्पकस्य विविधं सर्पति नाडीमुखेन शरीरस्य अन्तर्व्याप्नोतीति विसर्पकः । ✕कपिलकादित्वात् लत्वम्✕ । एवंविधस्य रोगजातस्य पिशितं चन । चनशब्दः अप्यर्थे । निदानभूतं दुष्टं मांसमपि । अपिशब्दाद् दुष्टत्वगादिकम् । मोच्छिषः मोच्छेषय । वातपित्तश्लेष्मणां दोषाणां तारतम्येन त्वगसृङ्मांसादीन् धातून् दूषयित्वा विसर्पकादयो रोगा उत्पद्यन्ते । सनिदानांस्तान् सर्वान् निवर्तयेत्यर्थः । ✕उच्छिष इति । शिषू विशेषणे । लृदित्वाच्लेः अङ् आदेशः✕ ॥

द्वितीया ॥

यौ ते बलास तिष्ठतः कक्षे मुष्कावपाश्रितौ ।
वेदाहं तस्य भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम् ॥ २ ॥

यौ । ते । बलास । तिष्ठतः । कक्षे । मुष्कौ । अपऽश्रितौ ।
वेद । अहम् । तस्य । भेषजम् । चीपुद्रुः । अभिऽचक्षणम् ॥ २ ॥

हे बलास कासश्वासादिरोग ते तव यौ विकारौ[1] विसर्पकादिरूपौ कक्षे बाहुमूले तिष्ठतः । मुष्कौ अण्डौ च अपश्रितौ अपकृष्टम् आश्रितौ तस्य तादृग्विकारोपेतस्य बलासस्य अहं भेषजं [वेद] जानामि । किं तद् इति उच्यते । चीपद्रुः एतत्संज्ञो द्रुमविशेषः । अभिचक्षणम् व्याधिमूलं सम्यग् अभिचक्ष्य ज्ञात्वा निवर्तकम् औषधम् इत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

यो अङ्गयो यः कण्र्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः ।
वि वृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम् ।

---

१ So we with all our MSS. and Vaidikas. See Rw. Sâyaṇa's text and commentary read चीपद्रुः.

1 S' नीडा°.

परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि ॥ ३ ॥

यः । अङ्गचः । यः । कर्ण्यः । यः । अक्ष्योः । विऽसल्पकः ।

वि । वृहामः । विऽसल्पकम् । विऽद्रधम् । हृदयऽआमयम् ।

परा । तम् । अज्ञातम् । यक्ष्मम् । अधराञ्चम् । सुवामसि ॥ ३ ॥

यो विसर्पकः अङ्गचः अङ्गेषु हस्तपादादिषु भवः यः कर्ण्यः कर्णयोरुत्पन्नः । ※उभयत्र "शरीरावयवाच्च" इति यत्※ । अक्ष्योः अक्ष्णोर्यो विसर्पकः । ※"ई च द्विवचने" इति अक्षिशब्दस्य ईकारान्तादेशः※ । एवं बहुविधं तं विसर्पकं वि वृहामः उत्खनामः । समूलम् उन्मूलयाम इत्यर्थः । ※वृहू उद्यमने※ ॥ तथा विद्रधम् विदरणस्वभावं व्रणविशेषं हृदयामयम् हृद्रोगं हृदयाश्रितम् अन्यमपि रोगं निवर्तयामः । तं तथाविधम् अज्ञातम् अनिर्ज्ञातस्वरूपं यक्ष्मम् रोगम् अधराञ्चम् अधरम् अधस्ताद् अञ्चन्तम् अधोमुखं गच्छन्तं परा सुवामसि पराङ्मुखं प्रेरयामः । ※षू प्रेरणे । "इदन्तो मसिः※ ॥

चतुर्थी ॥

शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानमकुर्वत ।

भद्राहमस्मै प्रायच्छन्निदं राष्ट्रमसादिति ॥ १ ॥

शकऽधूमम् । नक्षत्राणि । यत् । राजानम् । अकुर्वत ।

भद्रऽअहम् । अस्मै । प्र । अयच्छन् । इदम् । राष्ट्रम् । असात् । इति ॥ १ ॥

शकस्य शकृतः संबन्धी धूमो यस्मिन्नग्नौ स शकधूमः अग्निः । तदभेदाद् ब्राह्मणोत्र अभिधीयते । "एष वा अग्निर्वैश्वानरो यद् ब्राह्मणः" [तै० सं० ५.२.८.२] इति श्रुतिः । तयोस्तादात्म्यं दर्शयति । तं शकधूमं ब्राह्मणं पुरा नक्षत्राणि तारकाः राजानं चन्द्रमसम् अकुर्वत व्यदधतेति यत् तस्य कारणम् उच्यते । अस्मै शकधूमाय भद्राहम् पुण्याहं कल्याणप्रदं [कालं] प्रायच्छन् । ※भद्रं च तद् अहश्चेति भद्राहः ।

१ P कर्ण्यः. We with P̈ J Cp. २ P परः. ३ P तत्. ४ P̈ J असात्. We with P Cp.

"राजाहःसखिभ्यः०" इति टच् समासान्तः ॥ किमर्थं प्रायच्छन्। तत्राह। इदं राष्ट्रम् राज्यं नक्षत्रमण्डलाधिपत्यम् असात् भवेत्। अस्य वशे सर्वं वर्तेत इत्यनेनाभिप्रायेणेत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

भद्राहं नो मध्यंदिने भद्राहं सायमस्तु नः।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः ॥ २ ॥

भद्रऽअहम्। नः। मध्यंदिने। भद्रऽअहम्। सायम्। अस्तु। नः।
भद्रऽअहम्। नः। अह्नाम्। प्रातः। रात्री। भद्रऽअहम्। अस्तु। नः ॥ २ ॥

नः अस्माकं मध्यंदिने मध्याह्ने भद्राहम् शोभनदिनं पुण्यम् अहः। भवत्वित्यर्थः। तथा नः अस्माकं सायम् सूर्यास्तमयकालेपि भद्राहम् पुण्याहम् अस्तु ॥ अह्नाम् दिवसानां प्रातः पूर्वाह्णकालेपि नः अस्माकं भद्राहम् पुण्याहं भवतु। तथा रात्री कृत्स्नापि निशीथिनी [नः] भद्राहम् शुभकालो भवतु। "रात्रेश्चाजसौ" इति ङीप् ॥

षष्ठी ॥

अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्।
भद्राहमस्मभ्यं राजन्छकधूम त्वं कृधि ॥ ३ ॥

अहोरात्राभ्याम्। नक्षत्रेभ्यः। सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्।
भद्रऽअहम्। अस्मभ्यम्। राजन्। शकऽधूम। त्वम्। कृधि ॥ ३ ॥

अहोरात्राभ्याम् अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रौ। "अहःसर्वैकदेश०" इत्यादिना अकारः समासान्तः ॥ अहोरात्राभ्यां सकाशात् नक्षत्रेभ्यः अश्विन्यादिभ्यः सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्। सूर्यश्च चन्द्रमाश्च सूर्याचन्द्रमसौ अहोरात्रयोर्विभेदकौ ताभ्यां च सकाशात् हे शकधूम ब्राह्मणात्मक हे राजन् नक्षत्राणाम् अधिप अस्मभ्यं भद्राहम् पुण्याहं [त्वं] कृधि कुरु। सूर्याचन्द्रमसाभ्याम् इति। पूर्वपदस्य "देवताद्वन्द्वे च" इति आनङ्। छान्दसः अकारः समासान्तः ॥

---

१ KR राजं°. We with ABDKSVC.

सप्तमी ॥

यो नो भद्राहमकरः सायं नक्तमथो दिवा ।
तस्मै ते नक्षत्रराज शकधूम सदा नमः ॥ ४ ॥

यः । नः । भद्रऽअहम् । अकरः । सायम् । नक्तम् । अथो इति । दिवा ।
तस्मै । ते । नक्षत्रऽराज । शकऽधूम । सदा । नमः ॥ ४ ॥

हे शकधूम ब्राह्मणात्मक नक्षत्रराज नक्षत्राणाम् अधिप हे सोम यस्त्वं [नः] सायम् सायाह्नकाले नक्तम् रात्रौ अथो अपि च दिवा दिवसे भद्राहम् पुण्याहं सुदिनम् अकरः कृतवान् असि । ✕करोतेर्लुङि "कृमृदरुहिभ्यः०" इति च्लेः अङ् आदेशः✕ । तस्मै तथाविधाय ते तुभ्यं सदा सर्वदा नमः नमस्कारोस्तु ॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"भगेन मा सम्" इति तृचेन शङ्खपुष्पिकामूलं खात्वा संपात्य अभिमन्त्र्य सौभाग्यकामस्य बध्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन शङ्खपुष्पिकापुष्पम् अभिमन्त्र्य शिरसि बध्नीयात् ॥

तद् उक्तं संहिताविधौ । "भगेन मा[६.१२९] न्यस्तिका[६.३९] "इदं खनामि[७.३८] इति सौवर्चलम् ओषधिवच्छुक्लप्रसूनं शिरस्यपि- "हत्य ग्रामं प्रविशति" इति [कौ० ४.१२] ॥

"रथजिताम्" इत्यादिसूक्तत्रयेण दुष्टस्त्रीवशीकरणकर्मणि माषान् अभिमन्त्र्य स्त्रियाः संचरणस्थलेषु प्रक्षिपेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचत्रयेण शरभृष्टीः संदीप्ताः प्रतिदिशं प्रक्षिपेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि आवलेखिनीं स्त्रीप्रतिकृतिं कृत्वा सूत्रोक्तप्रकारेण धनुरिषुं च कृत्वा अनेन तृचत्रयेण प्रतिकृतिं हृदये विध्येत् ॥

१ Such is the accent of all our MSS. and Vaidikas.

1 So S'. *Kausika* शिरस्युपवृत्य. 2 S' शिरभृ°. 3 S' प्रकृतिं.

"रथजिताम् इति माषान् निवपति शरभृष्टीरादीप्नाः प्रतिदिशम् अभ्यस्त्यर्वाच्या आवलेखिन्या" इति [कौ० ४. १२] ॥

तत्र प्रथमा ॥

भगेन मा शांशपेन साकमिन्द्रेण मेदिना।
कृणोमि भगिनं मापं द्रान्त्वरातयः ॥ १ ॥

भगेन। मा। शांशपेन। साकम्। इन्द्रेण। मेदिना।
कृणोमि। भगिनम्। मा। अपं। द्रान्तु। अरातयः ॥ १ ॥

संशँफेन। संगताः शफा गोमहिषादीनां खुराः शफाकृतिरायुधविशेषो वा यस्य स तथोक्तः। तादृशेन भगेन सौभाग्यकरेण देवेन साकं सह मा मां सौभाग्यवन्तं करोमि। मेदिना स्निग्धेन अस्मत्सेवया परितुष्टेन इन्द्रेण मा मां भगिनम् भाग्यवन्तं कृणोमि करोमि ॥ अरातयः अदानशीलाः शत्रवः अप द्रान्तु अस्मत् सकाशाद् अपेत्य कुत्सितां गतिं गच्छन्तु। ※द्रा कुत्सितायां गतौ। अदादित्वात् शपो लुक्※ ॥

द्वितीया ॥

येन वृक्षाँ अभ्यभवो भगेन वर्चसा सह।
तेन मा भगिनं कृण्वपं द्रान्त्वरातयः ॥ २ ॥

येन। वृक्षान्। अभि॒ऽअभवः। भगेन। वर्चसा। सह।
तेन। मा। भगिनम्। कृणु। अपं। द्रान्तु। अरातयः ॥ २ ॥

हे ओषधे येन भगेन सौभाग्यकरेण देवेन वर्चसा तत्कृतेन तेजसा सह वृक्षान् समीपस्थान् अभ्यभवः अभिभवसि तिरस्करोषि तेन भगेन मा मां भगिनम् सौभाग्यवन्तं कृणु कुरु। गतम् अन्यत् ॥

तृतीया ॥

यो अन्धो यः पुनःसरो भगो वृक्षेष्वाहितः।

---

१ AK शांशफेन. We with BBDKRSPPJVC-Cr. २ BDKSC- वृक्षां अ°. We with AKRV.

तेनं मा भगिनं कृण्वपं द्रान्त्वरातयः ॥ ३ ॥

यः । अन्धः । यः । पुनःऽसरः । भगः । वृक्षेषु । आऽहितः ।

तेनं । मा । भगिनम् । कृणु । अपं । द्रान्तु । अरातयः ॥ ३ ॥

यो भगः अन्धः दृष्टिरहितः । ✕तथा च यास्कः । अन्धो भग इत्याहुः । प्राशित्रम् अस्याक्षिणी निर्जघानेति च ब्राह्मणम् इति [नि° १२.१४]✕ । यो भगः पुनःसरः । दृष्टिराहित्येन पुरतो गन्तुम् अशक्नुवन् गतप्रदेश एव पुनः सरति गच्छतीति पुनःसरः । अत एव वृक्षेषु स्थाणुषु मार्गस्थेषु स्थाणुषु आहंतः ताडितो भवति । यो भगः आन्ध्येन पुरतोऽन्यत्र गन्तुम् अशक्नुवन् गृहीतं न परित्यजतीत्यर्थः । तेन भगेन सौभाग्यकरेण देवेन । उक्तार्थम् अन्यत् ॥

चतुर्थी ॥

रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः ।

देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥

रथऽजिताम् । राथऽजितेयीनाम् । अप्सरसाम् । अयम् । स्मरः ।

देवाः । प्र । हिणुत । स्मरम् । असौ । माम् । अनु । शोचतु ॥ १ ॥

हे रथजिते रथेन जेतव्ये माषाख्ये ओषधि रथजिताम् रथेन आत्मीयेन वाहनेन विश्वं जयन्तीनां धीनाम् ध्यानजन्नीनां विरागविशेषस्य उत्पादयित्रीणाम् अप्सरसाम् उर्वशीप्रभृतीनां संबन्धी अयं स्मरः कामः । तदधीने वर्तत इत्यर्थः । अतः इयं दुष्टा स्त्री मां स्मरकृतपीडाभावाद् न कामयत इत्यर्थः । यद्वा रथजिताम् रथेन रथाकारेण विमानेन विश्वं जयतां देवानां संबन्धिनि रथजिते रथेन जेतव्ये मेरुशिखरादौ भो-

---

१ So A B $\overset{b}{\text{B}}$ D K $\overset{m}{\text{K}}$ R $\overset{m}{\text{S}}$ V C- C$^{\text{P}}$, and not धीना° which Sâyaṇa reads. The यीनाम् of three of our pada MSS. (P $\overset{2}{\text{P}}$ J which read राथऽजिते । यीनाम्) would perhaps point to such a reading as is followed by Sâyaṇa. Only A $\overset{m}{\text{K}}$ had रथजितेर्यीना° once, but in both it has been corrected to राथजितेर्यीना°. C$^{\text{P}}$ once read राथजिते । यीनाम्. But it has corrected it to राथजितेयीनाम् । All our MSS. have राथजितेर्यीना°. २ B शोचतौ. ३ C$^{\text{P}}$ °जितम्. ४ P स्मरः.

गर्भप्रदेशे धीनाम् ध्यातृणां गन्धर्वाणाम् अप्सरसां च अयं स्वभूतः स्मरः। हे देवाः तं स्मरम् कामं प्र हिणुत एतस्याः समीपं प्रेषयत। ※हि गतौ वृद्धौ च। स्वादित्वात् श्नुः। "हिनु मीना" इति णत्वम※। असौ पराङ्मुखी स्त्री तेन स्मरेण पीडिता सती माम् अनु शोचतु अनुस्मृत्य शोकयुक्ता भवतु। ※शुच शोके※॥

असौ मे स्मरतादिति प्रियो मे स्मरतादिति।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु॥ २॥

असौ। मे। स्मरतात्। इति। प्रियः। मे। स्मरतात्। इति।
देवाः। प्र। हिणुत। स्मरम्। असौ। माम्। अनु। शोचतु॥ २॥

यथा मम स्मरादसौ नामुष्याहं कदा चन।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु॥ ३॥

यथा। मम। स्मरात्। असौ। न। अमुष्य। अहम्। कदा। चन।
देवाः। प्र। हिणुत। स्मरम्। असौ। माम्। अनु। शोचतु॥ ३॥

पञ्चमी॥ असौ पुरुषः मे मां स्मरतात् स्मरतु इति। इतिशब्दो वाक्यसमाप्तौ। प्रियः मयि अनुरागविशेषयुक्तः सन् मे मां स्मरतात् स्मरतु। ※स्मृ चिन्तायाम्। "तुह्योस्तातङ्०" इति तातङ् आदेशः※। [इति] अनेन प्रकारेण आशंसमाना कामार्ता यथा असौ दुष्टा स्त्री मम स्मरात् मां स्मरेत्। ※"अधीगर्थ०" इति कर्मणि षष्ठी※। इति चिन्तयेत्। अमुष्य अमूं स्त्रियम् अहं कदा चन कदाचिदपि कामार्तो न स्मरामि तथा हे देवाः स्मरं प्र हिणुत। यद्वा असौ मे स्मरताद् इति प्रियो मे स्मरताद् इति यथा माम् अनुस्मृत्य सा परितप्यते तथा स्मरं प्र हिणुतेति संबन्धः। यथा मम स्मराद् इति स्त्रीवाक्यम्। असौ पुरुषो यथा मां स्मरेत् कदाचिदपि अहम् अमुष्य अमुं पुरुषं न स्मरामि इत्थं पुरुष एव कामातुरो माम् अ-

१ See foot-note २ on the previous page.

1 So S'.

भिगच्छेद् इति वशीकृतायाः स्त्रिया वाक्यम् । गतम् अन्यत् ॥

षष्ठी ॥

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय ।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥ ४ ॥
उत् । मादयत । मरुतः । उत् । अन्तरिक्ष । मादय ।
अग्ने । उत् । मादय । त्वम् । असौ । माम् । अनु । शोचतु ॥ ४ ॥

हे मरुतः मरुद्गणाः इमां स्त्रियम् उन्मादयत उन्मत्तां परवशाम् अस्मदायत्तां कुरुत । हे अन्तरिक्ष त्वमपि एनाम् उन्मादय एनाम् अस्मद्वशे कुरु । हे अग्ने त्वम् एनाम् उन्मादय स्वात्मानं विस्मृत्य यथा अस्माकं वशे भवति तथा कुरु । एवं युष्माभिरुन्मादं प्रापिता असौ माम् अनुस्मृत्य शोचतु ॥

[इति] तृतीयं सूक्तम् ॥

"नि शीर्षतो नि पत्ततः" इति सूक्तस्य पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तत्र प्रथमा ॥

नि शीर्षतो नि पत्तत आध्योऽ[1] नि तिरामि ते ।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ १ ॥
नि । शीर्षतः । नि । पत्ततः । आऽध्यः । नि । तिरामि । ते ।
देवाः । प्र । हिणुत । स्मरम् । असौ । माम् । अनु । शोचतु ॥ १ ॥

हे जाये ते तव शीर्षतः शिरःप्रदेशाद् आरभ्य आध्यः आधींश्चिन्ताविशेषान् नि तिरामि शरीरे निक्षिपामि । तथा पत्ततः । ॥ एकस्तशब्दश्छान्दसः ॥ । पत्तः पादत आरभ्य तव शरीरे आधीन् निक्षिपामि । इत्थं सर्वस्मिन्नपि त्वदीये अङ्गे स्मरकृतां पीडां निक्षिपामीत्यर्थः । ॥आध्यः । आङ्पूर्वाद् दधातेः "उपसर्गे घोः किः"

---

१ AR १ for ३. We with l. BDKKSVC. २ P आध्याः. PJ आध्यः. We with Cp.

इति किमत्ययः। शसि व्यत्ययेन यणादेशः। यद्वा। आङ्पूर्वाद् ध्यै चिन्तायाम् इत्यस्माद् "ध्यायतेः संप्रसारणं च" इति भावे क्विप् संप्रसारणं च। आध्यः आध्यानानीत्यर्थः। "एरनेकाचः०" इति शसि यण्[x]। व्याख्यातम् अन्यत् ॥

द्वितीया ॥

अनुमतेन्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः।
देवाः प्र हिणुत स्मरमसौ मामनु शोचतु ॥ २ ॥

अनुऽमते। अनु। इदम्। मन्यस्व। आऽकूते। सम्। इदम्। नमः।
देवाः। प्र। हिणुत। स्मरम्। असौ। माम्। अनु। शोचतु ॥ २ ॥

हे अनुमते सर्वकार्याणाम् अनुमन्त्रि हे अनुमतकारिणि देवपत्नि इदम् मदभिलषितम् अनु मन्यस्व अनुजानीहि। हे आकूते। आकूतिः संकल्पाभिमानिनी देवता। त्वमपि इदम् अस्माभिः क्रियमाणं नमः नमस्कारं हविर्लक्षणम् अन्नं वा संप्राप्य। अनुमन्यस्वेत्यर्थः। शिष्टं व्याख्यातम् ॥

तृतीया ॥

यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्विनम्।
ततस्त्वं पुनरायसि पुत्राणां नो असः पिता ॥ ३ ॥

यत्। धावसि। त्रिऽयोजनम्। पञ्चऽयोजनम्। आश्विनम्।
ततः। त्वम्। पुनः। आऽअयसि। पुत्राणाम्। नः। असः। पिता ॥ ३ ॥

वशीकृता स्त्री प्रार्थ्यते। हे पुरुष त्वं त्रियोजनम् योजनत्रयपरिमितं दूरदेशं यद् धावसि गच्छसि। यद्वा पञ्चयोजनम् ततोपि दूरतरं पञ्चसंख्याकयोजनपरिमितं देशं धावसि। अथवा आश्विनम् अश्विनैव प्रापणीयं न पादचारेणेति अत्यन्तं दूरं यद् धावसि ततः तस्माद् दूरदेशात्

१ K V त्रयो°. B त्रियो° changed to त्रयो°. We with A D K R S C. २ P J आऽअयसि. P आऽअयसि. C आ। अयसि। We with what P means for the correct version in it is आऽअय.

1 S' °नित्यर्थः. 2 S' °मितदूर° for °मितं दूर°. 3 S' अश्वेनैव.

त्वं पुनरायसि पुनरागच्छ । नः अस्माकं पुत्राणां गृहे वर्तमानानां पिता असः पालको भव । यद्वा तव देशान्तरगमनाद् एतावन्तं कालं पुत्राः पितृरहिता आसन् इदानीं त्वदागमनात् पितृमन्तो भवन्तु इत्यर्थः ॥

चतुर्थी ॥

यं देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ १ ॥

यम् । देवाः । स्मरम् । असिञ्चन् । अप्ऽसु । अन्तः । शोशुचानम् । सह । आध्या ।

तम् । ते । तपामि । वरुणस्य । धर्मणा ॥ १ ॥

सर्वे देवाः यं स्मरं मनोभवम् आध्या । आधिस्तु मानसी पीडा । सा हि स्मरस्य भार्या । "कामो गन्धर्वस्तस्याधयोप्सरसः" [तै०सं०३.४.७.३] इति श्रुतेः । तया सह शोशुचानम् विरहाग्निना संतप्यमानगात्रम् अप्सु उदकेषु अन्तः मध्ये असिञ्चन् परितापशमनार्थम् आसिक्तवन्तः । यद्वा शोशुचानम् दीप्यमानं स्वशक्त्या सहितं स्मरम् अप्सु अन्तरिक्षनामैतत् । अवकाशात्मके अन्तरिक्षे अन्तरवस्थितान् तत्रत्यान् प्राणिनः पीडयितुम् असिञ्चन् । कामिनां साम्राज्ये अभ्यषिञ्चन्नित्यर्थः । हे योषित् ते तुभ्यं त्वदर्थं तं स्मरं वरुणस्य जलाधिपतेर्देवस्य धर्मणा धारणशक्त्या तपामि संतापयामि । स्मरकृतं संतापम् उत्पादयामीत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

यं विश्वे देवाः स्मरमसिञ्चन्नप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ २ ॥

यम् । विश्वे । देवाः । स्मरम् । असिञ्चन् । अप्ऽसु । अन्तः । शोशुचानम् । सह । आध्या ।

तम् । ते । तपामि । वरुणस्य । धर्मणा ॥ २ ॥

१ B ३ for १ here and in the following verses.

1 S' अवकाशात्मिके.

विश्वे देवाः एतत्संज्ञा देवगणाः । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् ॥

षष्ठी ॥

यमिन्द्राणी स्मरमसिञ्चदप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ३ ॥

यम् । इन्द्राणी । स्मरम् । असिञ्चत् । अप्ऽसु । अन्तः । शोशुचानम् । सह । आध्या ।
तम् । ते । तपामि । वरुणस्य । धर्मणा ॥ ३ ॥

इन्द्राणी इन्द्रस्य पत्नी । ※"इन्द्रवरुण०" इत्यादिना ङीषानुकौ※ । अन्यत् पूर्ववत् ॥

सप्तमी ॥

यमिन्द्राग्नी स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ४ ॥

यम् । इन्द्राग्नी इति । स्मरम् । असिञ्चताम् । अप्ऽसु । अन्तः । शोशुचानम् । सह । आध्या ।
तम् । ते । तपामि । वरुणस्य । धर्मणा ॥ ४ ॥

इन्द्रश्च अग्निश्च इन्द्राग्नी । ※"देवताद्वन्द्वे च" इति प्राप्तस्य उभयपदप्रकृतिस्वरत्वस्य "नोत्तरपदेनुदात्तादौ०" इति प्रतिषेधः※ । तौ यं स्मरम् असिञ्चताम् अभ्यषिञ्चताम् । अन्यत् समानम् ॥

अष्टमी ॥

यं मित्रावरुणौ स्मरमसिञ्चतामप्स्व१न्तः शोशुचानं सहाध्या ।
तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा ॥ ५ ॥

यम् । मित्रावरुणौ । स्मरम् । असिञ्चताम् । अप्ऽसु । अन्तः । शोशुचानम् । सह । आध्या ।

---

१ P असिंचन्.

तम् । ते । तपामि । वरुणस्य । धर्मणा ॥ ५ ॥

मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ । "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ् । "देवताद्वन्द्वे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् ॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

"य इमां देवो मेखलाम्" इति पञ्चर्चेन अभिचारकर्मणि दीक्षाया मेखलां संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

अत्र "आहुतासि" इत्यनया तत्रैव कर्मणि मेखलाया ग्रन्थिम् आलिम्पेत् ॥

"मृत्योरहम्" इत्यनया वाधकीः समिध आदध्यात् ॥

उपनयनकर्मणि "श्रद्धाया दुहिता" इति द्वाभ्यां मेखलां बध्नीयात् । सूत्रितं हि । "श्रद्धाया दुहितेति द्वाभ्यां मौञ्जीं मेखलां बध्नाति" इति [कौ० ७. ८] ॥

"अयं वज्रः" इति तृचेन अभिचारकर्मणि दीक्षायां दण्डं संपात्य अभिमन्त्र्य गृह्णीयात् ॥

तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन अन्नम् अभिमन्त्र्य कर्ता भुञ्जीत ॥

तत्र प्रथमा ॥

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः संननाह य उ नो युयोज ।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उ नो वि मुञ्चात् ॥ १ ॥

यः । इमाम् । देवः । मेखलाम् । आऽबबन्ध । यः । सम्ऽननाह । यः । ऊं इति । नः । युयोज ।
यस्य । देवस्य । प्रऽशिषा । चरामः । सः । पारम् । इच्छात् । सः । ऊं इति । नः । वि । मुञ्चात् ॥ १ ॥

यो देवः शत्रुहननकुशलः इमां मेखलां स्वशत्रुवधार्थम् आबबन्ध पुरा आबद्धवान् । तथा यो देवः संननाह इदानीमपि अन्येषां मेखलां

संनह्यति । यश्च नः अस्मान् युयोज अभिचारकर्मणि मेखलया योजयति । तथा वयं यस्य देवस्य प्रशिषा प्रशासनेन चरामः वर्तामहे स सर्वान्तर्यामी देवः पारं प्रारिप्सितस्य कर्मणः समाप्तिम् इच्छात् इच्छतु । ‡इच्छतेर्लेटि आडागमः‡ । स उ स एव नः अस्मान् वि मुञ्चतु शत्रुभ्यो विमुञ्चतु । शत्रुं निहत्य अस्मान् कृतार्थान् करोत्वित्यर्थः ॥

द्वितीया ॥

आहुतास्यभिहुत ऋषीणामस्यायुधम् ।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले ॥ २ ॥

आऽहुता । असि । अभिऽहुता । ऋषीणाम् । असि । आयुधम् ।
पूर्वा । व्रतस्य । प्रऽअश्नती । वीरऽघ्नी । भव । मेखले ॥ २ ॥

हे मेखले त्वम् आहुता आहुतिभिः संस्कृता असि । संपाताभिहुता च । सा ऋषीणाम् अतीन्द्रियार्थदर्शिनां विश्वामित्रादीनाम् आयुधम् शत्रुहननसाधनम् असि । व्रतस्य कर्मणः प्रारिप्सितस्य पूर्वा प्रथमभाविनी प्राश्नती प्राश्नुवाना प्राप्नुवती । यद्वा । ‡व्रतस्येति कर्मणि षष्ठी‡ । व्रतं क्षीरादिकं प्राश्नती प्रथमं पिबन्ती । वीरघ्नी वीराः शत्रवः तेषां हन्त्री भव ॥

तृतीया ॥

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय ।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ॥ ३ ॥

मृत्योः । अहम् । ब्रह्मऽचारी । यत् । अस्मि । निःऽयाचन् । भूतात् । पुरुषम् । यमाय ।
तम् । अहम् । ब्रह्मणा । तपसा । श्रमेण । अनया । एनम् । मेखलया । सिनामि ॥ ३ ॥

---

१ K K V भूतान्. We with A B D R S[m] C[h] C[p].

---

1 S' प्रारप्सि°. 2 S' मुंचता°.

मृत्योः वैवस्वतस्य अहं कर्मकरो भवामि । यत् यस्माद् ब्रह्मचारी अस्मि ब्रह्मचर्यधर्मेण दीक्षादिनियमेन तपोविशेषेण युक्तो भवामि । तस्मात् मत्कृतेन अभिचारकर्मणा नियमविशेषेण च शत्रुवधः अवश्यंभावीति मृत्योरेव अहं सहायभूतो भवामीत्यर्थः । अतो हेतोः भूतात् भूतग्रामात् पुरुषम् शत्रुं यमाय यमार्थं निर्याचम् निःशेषेण याचे प्रार्थये । तं मारयितव्यम् एनं शत्रुं ब्रह्मणा मन्त्रेण तपसा अनशनादिरूपेण मत्कृतेन श्रमेण शरीरदण्डेन च अनया आबध्यमानया मेखलया अहं सिनानि बध्नामि । अनेन मेखलाबन्धनेन शत्रुमेव निरुद्धगतिं बध्नामीत्यर्थः । ॥ षिञ् बन्धने ॥

## चतुर्थी ॥

श्रद्धायां दुहिता तपसोधि जाता स्वस ऋषीणां भूतकृतां बभूव ।
सा नो मेखले मतिमा धेहि मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च ॥ ४ ॥

श्रद्धायाः । दुहिता । तपसः । अधि । जाता । स्वसा । ऋषीणाम् । भूतऽकृताम् । बभूव ।
सा । नः । मेखले । मतिम् । आ । धेहि । मेधाम् । अथो इति । नः । धेहि । तपः । इन्द्रियम् । च ॥ ४ ॥

श्रद्धाया दुहिता । श्रुतिस्मृत्युदितकर्मसु आस्तिक्यबुद्धिः श्रद्धा । तस्या दुहिता पुत्री तपसोधि जाता सृष्ट्यादौ ब्रह्मणस्तपस उत्पन्ना । ॥ अधिशब्दः पञ्चम्यर्थानुवादी । उपर्यर्थो वा ॥ । भूतकृताम् भूतग्रामस्य कर्तृणाम् ऋषीणाम् मरीच्यत्रिप्रभृतीनां स्वसा भगिनी येयं मेखला इत्थं बभूव हे मेखले सा तादृशी त्वं [नः] मतिम् आगामिगोचरां बुद्धिम् आ धेहि आभिमुख्येन कुरु । तथा मेधाम् श्रुतधारणसमर्थां बुद्धिम् आ धेहि । अथो अपि च तपः नियमविशेषम् इन्द्रियम् इन्द्रस्यात्मनो लिङ्गं वीर्यं च नः अस्माकं विधेहि ॥

१ P तपसः. We with P J Cr.

1 S' °धर° for °धारण°.

पञ्चमी ॥

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे ।
सा त्वं परि ष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ॥ ५ ॥

याम् । त्वा । पूर्वे । भूतऽकृतः । ऋषयः । परिऽबेधिरे ।
सा । त्वम् । परि । स्वजस्व । माम् । दीर्घायुऽत्वाय । मेखले ॥ ५ ॥

हे मेखले यां त्वा त्वां भूतकृतः पृथिव्यादिभूतग्रामस्य कर्तारः [पूर्वे पूर्वभाविन] ऋषयः परिबेधिरे परिबद्धवन्तः सा तादृशी त्वं मां परि ष्वजस्व आलिङ्ग । ※ष्वञ्ज परिष्वङ्गे※ । किमर्थम् । दीर्घायुत्वाय आयुषो दैर्घ्याय । अभिचारदोषपरिहारेण चिरकालजीवनायेत्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमप हन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवाः प्र शृणातूष्णिहां वृत्रस्येव शचीपतिः ॥ १ ॥

अयम् । वज्रः । तर्पयताम् । ऋतस्य । अव । अस्य । राष्ट्रम् । अप । हन्तु । जीवितम् ।
शृणातु । ग्रीवाः । प्र । शृणातु । उष्णिहाः । वृत्रस्यऽइव । शचीऽपतिः ॥ १ ॥

अयं धार्यमाणो दण्डः वज्रः शत्रूणा वर्जयिता इन्द्रस्य वज्र इव सन् ऋतस्य सत्यस्य यज्ञस्य·वा सा[मर्थ्येन त]र्पयताम् तृप्तो भवतु । अप्रतिहतशक्तिर्भवतु इत्यर्थः । स वज्रः अस्य द्वेष्यस्य राज्ञो राष्ट्रम् राज्यम् अप हन्तु । अन्ततो जीवितम् जीवनं प्राणमपि अप हन्तु । तथा ग्रीवाः गलगतान्यस्थीनि शृणातु हिनस्तु छिनत्तु । उष्णिहाः उत्स्नातास्तत्रत्या धमनीः प्र शृणातु प्रच्छिनत्तु । ※शृ हिंसायाम् । प्वादित्वाद् ह्रस्वः※ । वृत्रस्येव शचीपतिः यथा शचीपतिरिन्द्रः वृत्रस्य असुरस्य ग्रीवा उष्णिहाश्च अच्छैत्सीद् एवं छिनत्तु इत्यर्थः ॥

सप्तमी ॥

अधरोधर उत्तरेभ्यो गूढः पृथिव्या मोत्सृपत् ।

वज्रेणावहतः शयाम ॥ २ ॥

अधरःऽअधरः । उत्तरेभ्यः । गूढः । पृथिव्याः । मा । उत् । सृपत् ।
वज्रेण । अवऽहतः । शयाम ॥ २ ॥

उत्तरेभ्यः उत्कृष्टतरेभ्यः अधरोधरः अतिशयेन अधरः अधोगतिर्निकृष्टतरः गूढः संवृतः पृथिव्याम् अन्तर्निमग्नः तस्याः पृथिव्याः सकाशात् मा उत्सृपत् मोत्सर्पतु उत्तिष्ठतु । अनेन वज्रेण अवहतः चूर्णीकृतः शयाम् शेताम् । म्रियताम् इत्यर्थः । ॥ शीङ् स्वप्ने । "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तलोपः ॥

अष्टमी ॥

यो जिनाति तमन्विच्छ यो जिनाति तमिज्जहि ।
जिनतो वज्र त्वं सीमन्तमन्वञ्चमनु पातय ॥ ३ ॥

यः । जिनाति । तम् । अनु । इच्छ । यः । जिनाति । तम् । इत् । जहि ।
जिनतः । वज्र । त्वम् । सीमन्तम् । अन्वञ्चम् । अनु । पातय ॥ ३ ॥

यः शत्रुः जिनाति हानिं प्रापयति । ॥ ज्या वयोहानौ । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् ॥ । हे वज्र तं शत्रुम् अन्विच्छ । तथा यो जिनाति तम् इत् तमेव जहि मारय । जिनतः हानिं प्रापयतः शत्रोः सीमन्तम् । सीम्नोरन्तः सीमन्तः [तम्] । ॥ "सीमन्तः केशेषु" इति शकन्ध्वादिषु पाठात् पररूपत्वम् ॥ । शिरसो मध्यदेशम् अन्वञ्चम् अनुलोमम् अनु पातय । अनुक्रमेण विदारयेत्यर्थः ॥

[इति] पञ्चमं सूक्तम् ॥

"यद् अश्नामि" "यद् गिरामि" इत्याभ्याम् अभिचारकर्मणि अन्नम् अभिमन्त्र्य भुञ्जीत ॥ [कौ० ६.१] ॥

"यत् पिबामि" इत्यनया उदकम् अभिमन्त्र्य पिबेत् ॥ [कौ० ६.१] ॥

"देवी देव्याम्" "यां जमदग्निः" इति तृचाभ्यां केशवृद्धिकरणकामः काचमाचीफलं जीवन्तीफलं भृङ्गराजं वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि काचमाचीभृङ्गराजसहितोदकम् आभ्यां तृचाभ्याम् अभिमन्त्र्य उषःकाले अवसिञ्चेत् ॥

सूत्रितं हि । "देवी देव्याम्[१३६] यां जमदग्निः[१३७] इति म-"न्त्रोक्ताफलं जीव्यलाकाभ्याम् अमावास्यायां कृष्णवसनः कृष्णभक्षः पुरा "काकसंपाताद् अवनक्षत्रेवसिञ्चति" इति [कौ० ४. ७] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यद॒श्नामि॒ बल॑ं कु॒र्वे इ॒त्थं व॒ज्र॒मा द॑दे ।
स्क॒न्धान॒मुष्य॑ शा॒तय॑न् वृ॒त्रस्ये॑व॒ श॒ची॒पतिः॑ ॥ १ ॥

यत् । अ॒श्नामि॑ । बल॑म् । कु॒र्वे॑ । इ॒त्थम् । व॒ज्र॑म् । आ । द॒दे॒ ।
स्क॒न्धान् । अ॒मुष्य॑ । शा॒तय॑न् । वृ॒त्रस्य॑ऽइव । श॒ची॒ऽपतिः॑ ॥ १ ॥

अश्नामि भुञ्जे इति यत् तेन आत्मनो बलं कुर्वे करोमि । तेन च बलेन इत्थम् अनेन प्रकारेण वज्रम् वर्जकम् आयुधम् आ ददे गृह्णामि । इत्थम् इति इदमा आदानप्रकारस्य अभिनयः । "आङो दोनास्यविहरणे" इति आत्मनेपदम् । शचीपतिः इन्द्रः वृत्रस्येव अमुष्य एतन्नाम्नः अस्मच्छत्रोः स्कन्धान् स्कन्धोपलक्षितान् शरीरावयवान् शातयन् छिन्दन् । "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति हेतौ शतृप्रत्ययः । शदॢ शातने इत्यस्मात् णिचि "शदेरगतौ तः" इति तकारादेशः ॥

द्वितीया ॥

यत् पिबा॑मि॒ सं पि॑बामि समु॒द्र इ॑व॒ संपि॑बः ।
प्रा॒णान॒मुष्य॑ सं॒पाय॒ सं पि॑बामो अ॒मुं व॒यम् ॥ २ ॥

यत् । पिबा॑मि । सम् । पि॒बा॒मि॒ । स॒मु॒द्रःऽइ॑व । सम्ऽपि॑बः ।
प्रा॒णान् । अ॒मुष्य॑ । सम्ऽपा॑य । सम् । पि॒बा॒मः॒ । अ॒मुम् । व॒यम् ॥ २ ॥

अहम् उदकं पिबामीति यत् तेन सं पिबामि शत्रुमेव संगृह्य तदीयं

१ P °पिब. P °पिब. We with J Cr.

1 S' omits इत्थ°. 2 S' omits शातय°.

रसं पिबामि । समुद्र इव यथा समुद्रः नदीमुखात् सर्वं जलम् आदाय संपिबः सम्यक् पाता भवति । स्वात्मसात् करोतीत्यर्थः । ‡"पाघ्राध्माधेट्दृशः शः" इति पिबतेः कर्तरि शप्रत्ययः । "पाघ्रा°" इत्यादिना पिबादेशः ‡ । सं पिबामीति उक्तम् अर्थं विवृणोति । अमुष्य शत्रोः प्राणान् प्राणापानव्यानादिकांश्चक्षुरादीन्द्रियाणि च प्रथमं संपाय रसीकृत्य सम्यक् पीत्वा अन्ततः [अमुम्] अवयविनं शत्रुमेव वयं सं पिबामः ॥

तृतीया ॥

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ॥ ३ ॥

यत् । गिरामि । सम् । गिरामि । समुद्रःऽइव । समऽगिरः ।
प्राणान् । अमुष्य । समऽगीर्य । सम् । गिरामः । अमुम् । वयम् ॥ ३ ॥

पिबतेः स्थाने गिरतिरेव विशेषः । अन्यत् पूर्ववद् योज्यम् । यत् पलादिकं गिरामि निगिरामि निगरणव्यापारेण अन्तर्नयामि । ‡गृ निगरणे । तुदादित्वात् शः । "ऋत इद्धातोः" इति इत्त्वम् ‡ । संगिर इति सम्यङ् निगरिता । ‡"इगुपधज्ञा°" इति किरतेर्विधीयमानः कप्रत्ययः गिरतेरपि द्रष्टव्यः । [संगीर्येति । ऋत] इत्त्वे "हलि च" इति दीर्घः ‡ ॥

चतुर्थी ॥

देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे ।
तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दंहणाय खनामसि ॥ १ ॥

देवी । देव्याम् । अधि । जाता । पृथिव्याम् । असि । ओषधे ।
ताम् । त्वा । निऽतत्नि । केशेभ्यः । दंहणाय । खनामसि ॥ १ ॥

हे ओषधे काचमाचीप्रभृतिके देवी द्योतमाना देव्याम् पृथिव्याम् अ-

१ P J असि. We with P C².

धि जाता उत्पन्ना [असि] भवसि । हे नितलि नितन्वाने न्यक्प्रसरणशीले ओषधे । ✕"आदृगमहन०" इति तनोतेश्छान्दसः किप्रत्ययः । लिङ्वद्भावाद् द्विर्वचनम् । "तनिपत्योश्छन्दसि" इति उपधालोपः ✕ । तां पूर्वोक्तगुणविशिष्टां [त्वा] त्वां केशेभ्यः केशानाम् अर्थे दंहणाय दृढीकरणाय खनामसि खनामः खननेन संगृह्णीमः ॥

दंह प्रलान् जनयाजातान् जातानु वर्षीयसस्कृधि ॥ २ ॥

दंह । प्रलान् । जनय । अजातान् । जातान् । ऊं इति । वर्षीयसः । कृधि ॥ २ ॥

यस्ते केशोवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते ।

इदं तं विश्वभेषज्याभि षिञ्चामि वीरुधा ॥ ३ ॥

यः । ते । केशः । अवऽपद्यते । सऽमूलः । यः । च । वृश्चते ।

इदम् । तम् । विश्वऽभेषज्या । अभि । सिञ्चामि । वीरुधा ॥ ३ ॥

पञ्चमी ॥ प्रलान् पुरातनान् केशान् हे ओषधे त्वं दंह दृढीकुरु । अजातान् अनुत्पन्नान् केशान् जनय उत्पादय । जातान् उ उत्पन्नानपि केशान् वर्षीयसः प्रवृद्धतमान् आयततमान् कृधि कुरु । हे केशदंहणनकाम ते तव यः केशः अवपद्यते मध्ये भग्नो भूमौ निपतति समूलः मूलसहितः सन् यः केशः वृश्चते छिद्यते । इदं तम् इति उत्तरत्र संबन्धः

॥ इदम् अनेन प्रयोगेण तं सर्वं केशं विश्वभेषज्या सर्वस्य केशाश्रितरोगजातस्य निवर्तयित्र्या वीरुधा ओषध्या अभि षिञ्चामि अभितः सिञ्चामि आर्द्रीकरोमि । अस्माद् औषधप्रयोगाद् मन्त्रसामर्थ्याच्च सर्वं केशाश्रितरोगजातं निवर्तत इत्यर्थः ॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

---

१ $\overset{m}{K}$ R have the anusvára instead of न्. २ A $\overset{b}{B}$ K $\overset{m}{K}$ V Cs तां. Cr तम् corrected from ताम्. We with B D R $\overset{m}{S}$ P $\overset{s}{P}$ J.

1 S' अनेगेण for अनेन प्रयोगेण. 2 S' ममर्थ्याच्च.

"यां जमदग्निः" इति तृचस्य पूर्वतृचेन सह उक्तो विनियोगः । सूत्रमपि[1] तत्रैवोदाहृतम् ॥

"त्वं वीरुधाम्" इति पञ्चर्चेन अभिचारकर्मणि सूत्रोक्तप्रकारेण मूत्रपुरीषस्थानं बाँधकेन[2] काष्ठेन हन्यात् ॥

तत्र प्रथमा ॥

यां जमदग्निरखनद् दुहित्रे केशवर्धनीम् ।
तां वीतहव्य आभरदसितस्य गृहेभ्यः ॥ १ ॥

याम् । जमतऽअग्निः । अखनत् । दुहित्रे । केशऽवर्धनीम् ।
ताम् । वीतऽहव्यः । आ । अभरत् । असितस्य । गृहेभ्यः ॥ १ ॥

जमत् इति ज्वलतिकर्मसु पाठात् [निघ० १. १७] जमच्छब्दो दीप्तिवचनः । जमन्तः ज्वलन्तः अग्नयो यस्य स जमदग्निः महर्षिः दुहित्रे आत्मजाया अर्थे केशवर्धनीम् केशाभिवृद्धिकरीं याम् ओषधिम् अखनत् खननेन उद्धृतवान् ताम् ओषधिं वीतहव्याख्यो महर्षिः केशवृद्ध्यर्थम् असितस्य कृष्णकेशस्य एतत्संज्ञस्य मुनेर्गृहेभ्यः सकाशाद् आ अभरत् आहरत् । ※"हृग्रहोर्भः" इति भत्वम्※ ॥

द्वितीया ॥

अभीशुना मेया आसन् व्यामेनानुमेयाः ।
केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ २ ॥

अभीशुना । मेयाः । आसन् । विऽआमेन । अनुऽमेयाः ।
केशाः । नडाःऽइव । वर्धन्ताम् । शीर्ष्णः । ते । असिताः । परि ॥ २ ॥

हे केशाभिवृद्धिकाम त्वदीयाः केशाः प्रथमम् अभीशुना । अङ्गुलिनामैतत् । ※जातावेकवचनम्※ । अङ्गुलिभिः मेयाः मातव्याश्चतुरङ्गुलाः षडङ्गुला इत्येवं परिच्छेद्या आसन् । ततो व्यामेन प्रसारितहस्तद्वयपरिमाणेन अनु पश्चात् मेयाः मातव्या आसन् । चतुररत्निर्व्याम

1 S' omits अपि तत्रै°. 2 S' वेधकेन. We with *Kaus'ika*.

इति याज्ञिकाः । हे पुरुष ते तव शीर्ष्णः शिरसः [परि] परितः असिताः कृष्णवर्णाः केशाः नडा इव वर्धन्ताम् । नडास्तृणविशेषाः । ते यथा तटाकोदकप्रान्तेषु उत्पन्नाः संहताः सन्तः शीघ्रं वर्धमाना द्राघीयांसो भवन्ति तथा केशा अपि वर्धन्ताम् इत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

दंह मूलमाग्रं यच्छ वि मध्यं यामयौषधे ।
केशा नडा इव वर्धन्तां शीर्ष्णस्ते असिताः परि ॥ ३ ॥

दंह । मूलम् । आ । अग्रम् । यच्छ । वि । मध्यम् । यमय । ओषधे ।
केशाः । नडाःऽइव । वर्धन्ताम् । शीर्ष्णः । ते । असिताः । परि ॥ ३ ॥

हे ओषधे केशानां मूलं दंह दृढीकुरु । यथा नोत्खिद्यन्ते तथा कुर्वित्यर्थः । तथा केशानाम् अग्रम् आ यच्छ आयतम् आयामयुक्तं कुरु । एवं केशानां मध्यं वि यमय विविधं यमय नियमय स्थिरीकुरु । उत्तरोर्धर्चो व्याख्यातः ॥

चतुर्थी ॥

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमाभिश्रुतास्योषधे ।
इमं मे अद्य पूरुषं क्लीबमोपशिनं कृधि ॥ १ ॥

त्वम् । वीरुधाम् । श्रेष्ठऽतमा । अभिऽश्रुता । असि । ओषधे ।
इमम् । मे । अद्य । पुरुषम् । क्लीबम् । ओपशिनम् । कृधि ॥ १ ॥

हे ओषधे निर्वीर्यकारिन् ओषधिविशेष वीरुधाम् अन्यासां लतानां त्वं श्रेष्ठतमा अतिशयेन प्रशस्या । ※प्रशस्य[शब्दा]द् इष्ठनि "प्रशस्यस्य श्रः" इति श्रादेशः । पुनः श्रैष्ठ्यप्रकर्षविवक्षायां तमप् ※ । अत एव [हे] ओषधे त्वम् अभिश्रुता अभितः सर्वतः प्रख्याता अप्रतिहतवीर्यतया प्रसिद्धा [असि] भवसि । [अद्य इदानीं] मे मदीयम् इमं पुरुषम् द्वेष्यं पुरुषं क्लीबम् निर्वीर्यं सन्तम् ओपशिनम् । उपशेते अस्मिन् पुरुष

1 S' वर्तमाना.

इति ओपशः स्त्रीव्यञ्जनम् । तद्वन्तं कृधि कुरु । नपुंसकत्वे हि पुंस्त्वशङ्कापि स्यात् सापि अस्य मा भूद् इत्यर्थः ॥

पञ्चमी ॥

क्लीबं कृध्योपशिनमथो कुरीरिणं कृधि ।
अथास्येन्द्रो ग्रावभ्यामुभे भिनत्त्वाण्ड्यौ ॥ २ ॥

क्लीबम् । कृधि । ओपशिनम् । अथो इति । कुरीरिणम् । कृधि । अथ । अस्य । इन्द्रः । ग्रावऽभ्याम् । उभे इति । भिनत्तु । आण्ड्यौ ॥ २ ॥

उक्त एवार्थः अनूद्य विव्रियते । [हे] ओ[षधे] मदीयं शत्रुं क्लीबम् नपुंसकम् ओपशिनम् स्त्रीत्वोपेतं कृधि कुरु । अथो अपि च कुरीरिणम् कुरीराः केशाः तद्वन्तं कृधि कुरु । पुंस्त्वापगमेन स्त्रीत्वापातात् तद्वत् प्रशस्तकेशयुक्तं कुर्वित्यर्थः ॥

स्तनकेशवती स्त्री स्यात् लोमशः पुरुषः स्मृतः

इति हि व्यक्तिविदः । अत एव सिनीवाल्याः प्रशंसार्थो मन्त्र इत्थम् आम्नातः । "सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा" इति [तै० सं० ४. १. ५. ३.] । अथ अनन्तरम् अस्य द्वेष्यस्य उभे आण्ड्यौ वीर्यस्य आश्रयभूतौ अण्डौ इन्द्रः ग्रावभ्याम् पाषाणाभ्यां भिनत्तु मर्दयतु । यथासौ पुत्रोत्पादनक्षमो न भवेत् तथा करोत्वित्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

क्लीबं क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकरमरसारसं त्वाकरम् ।
कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि ॥ ३ ॥

क्लीबं । क्लीबम् । त्वा । अकरम् । वध्रे । वध्रिम् । त्वा । अकरम् । अरस । अरसम् । त्वा । अकरम् ।
कुरीरम् । अस्य । शीर्षणि । कुम्बम् । च । अधिऽनिदध्मसि ॥ ३ ॥

हे क्लीब द्वेष्य त्वा त्वाम् अनेन कर्मणा क्लीबम् अकरम् अकार्षम् ।

१ A B D K कुबं. We with B K R S P P J C. C P.

हे वध्रे । निसर्गपण्डको वध्रिः । हे तथाविध शत्रो त्वा त्वां वध्रिम् स्वभावतः षण्ढम् [अकरम्] अकार्षम् । हे अरस रसो रेतः । हे अ-रेतस्क शत्रो त्वा त्वाम् अरसम् अरेतस्कम् अकरम् अकार्षम् । यस्माद् एवं तस्माद् अस्य द्वेष्यस्य नपुंसकीभूतस्य शीर्षणि शिरसि कुरीरम् केशजालं कुम्बम् तदाभरणं च स्त्रीणाम् असाधारणम् अधिनिदध्मसि उपरि निक्षिपामः । यद् आह आपस्तम्बः । "अत्र पत्नीशिरसि कुम्बकुरीरम् अध्यूहते" इति [आप०१०.९.५] ॥

सप्तमी ॥

ये ते नाड्यौ॑ देवकृते॒ ययो॒स्तिष्ठ॑ति वृ॒ष्ण्यम् ।
ते ते भिनद्मि शम्य॑यामु॒ष्या अधि॑ मु॒ष्कयोः॑ ॥ ४ ॥

ये इति । ते । नाड्यौ॑ । देवकृते इति॑ देव॑ऽकृते । ययोः॑ । तिष्ठ॑ति । वृ॒ष्ण्यम् ।
ते इति॑ । ते । भिनद्मि । शम्य॑या । अ॒मु॒ष्याः॑ । अधि॑ । मु॒ष्कयोः॑ ॥ ४ ॥

देवकृते देवेन विधात्रा निर्मिते ते त्वदीये ये नाड्यौ रेतोवहे । ययोर्नाड्योः वृष्ण्यम् । वृषा सेचनसमर्थः पुरुषः । तत्संबन्धि वीर्यं वृष्ण्यम् तिष्ठति आश्रित्य वर्तते ते शुक्राधारभूत[1] देवनिर्मिते नाड्यौ ते तव मुष्कयोः अण्डयोरुपरि स्थिते अमुष्याः प्रसिद्धायाः शिलाया अधि उपरि शम्यया लकुटेन भिनद्मि पेषयामि ॥

अष्टमी ॥

यथा॑ नड॑ कशिपु॑ने स्त्रियो॑ भि॒न्दन्त्यश्म॑ना ।
एवा भिनद्मि ते शेपो॑मुष्या अधि॑ मु॒ष्कयोः॑ ॥ ५ ॥

यथा॑ । नड॑म् । कशिपु॑ने । स्त्रियः॑ । भि॒न्दन्ति॑ । अश्म॑ना ।
एव॑ । भिनद्मि । ते । शेपः॑ । अ॒मु॒ष्याः॑ । अधि॑ । मु॒ष्कयोः॑ ॥ ५ ॥

स्त्रियः कशिपुने कटाय कटं निर्मातुं यथा येन प्रकारेण नडम् कटोपादानं तृणविशेषम् अश्मना भिन्दन्ति आघ्नन्ति एव एवम् हे शत्रो

1 S' शुक्रा°.

ते तव मुष्कयोः [अण्डयोः] वर्तमानं शेपः अमुष्याः शिलाया [अधि] उपरि अश्मना भिनद्मि आहन्मि । अनेन कर्मणा त्वां निर्वीर्यं करोमीति तात्पर्यम् ॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

"न्यस्तिका" इति सूक्तेन पञ्चर्चेन स्त्रीवशीकरणकर्मणि "भगेन मा सꣳसृज" [६.१२९] इत्यत्रोक्तानि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रं तु तत्रैव उदाहृतम् ॥

"यौ व्याघ्रौ" इति तृचेन कुमारस्य कुमार्या वा प्रथमम् उपरितनदन्तजननिमित्तदोषपरिहारार्थं व्रीहियवतिलानाम् अन्यतमं जुहुयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि व्रीहियवमाषतिलान् एकीकृत्य अनेनाभिमन्त्र्य उपजातदन्ताभ्यां दंशयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन स्थालीपाकं संपात्य अभिमन्त्र्य उक्तं शिशुम् आशयेत् ॥

सूत्रितं हि । "यस्योत्तमदन्तौ पूर्वौ जायेते यौ व्याघ्रावित्यावपति । मन्त्रोक्तान् दंशयति । [शान्त्युदकशृतम् आदिष्टानाम् आशयति] । पितरौ चं" इति [कौ० ५.१०] ॥

न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगंकरणी मम ।
शतं तवं प्रतानास्त्रयस्त्रिंशन्नितानाः ।
तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते ॥ १ ॥

निऽअस्तिका । रुरोहिथ । सुभगमऽकरणी । मम ।
शतम् । तवं । प्रऽतानाः । त्रयःऽत्रिंशत् । निऽतानाः ।
तया । सहस्रऽपर्ण्या । हृदयम् । शोषयामि । ते ॥ १ ॥

शुष्यतु मयि ते हृदयमथो शुष्यत्वास्यम् ।
अथो नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ २ ॥

शुष्यतु । मयि । ते । हृदयम् । अथो इति । शुष्यतु । आस्यम् ।

१ A B B D R Ś P C$^{m}$ सुभागं°. We with K K$^{m}$ P$^{2}$ J V C$^{r}$.

1 S$^{1}$ तात्पर्यात्. 2 S$^{1}$ वेति for च इति. We with *Kausika*.

अथो इति। नि। शुष्य। माम्। कामेन। अथो इति। शुष्कऽआस्या। चर॥ २॥

तत्र प्रथमा॥ हे शङ्खपुष्पिके न्यस्तिका दौर्भाग्यलक्षणं नितराम् अस्यन्ती [त्वम्]। ✕असु क्षेपणे इत्यस्माद् औणादिकस्तिकन् प्रत्ययः✕। रुरोहिथ प्रादुर्भूतासि उत्पन्ना भवसि। ✕रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे। ऋादिनियमाद् इट्✕। किं कुर्वती। मम सुभगंकरणी सौभाग्यं कुर्वती। ✕"आढ्यसुभग०" इत्यादिना करोतेः ख्युन् प्रत्ययः। "खित्यनव्ययस्य" इति पूर्वपदस्य सुम्। "टिड्ढा-णञ्०" इति ङीप्✕। हे ओषधे तव शतम् शतसंख्याकाः प्रतानाः प्रतायन्ते विस्तार्यन्ते इति प्रतानाः शाखाः। ✕"हलश्च" इति तनोतेर्घञ् प्रत्ययः✕। शतायुषः पुरुषस्य उपकाराय प्रताना अपि शतसंख्याका उत्पद्यन्त इत्यर्थः। नितानाः न्यग्विस्तार्यमाणाः प्ररोहाः त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाः संभवन्ति। त्रयस्त्रिंशत्संख्यानां देवानाम् उपकारकत्वात् तत्संख्यया नितानाः प्ररोहन्तीत्यर्थः। ✕त्रयश्च त्रिंशच्च त्रयस्त्रिंशत्। "त्रेस्त्रयः" इति पूर्वपदस्य त्रिशब्दस्य त्रयस् आदेशः स च आद्युदात्तः। "संख्या" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्✕॥

द्वितीया॥ हे कामिनि तया तथाविधया प्रागुदीरितमाहात्म्योपेतया सहस्रपर्ण्या सहस्रसंख्याकपत्रोपेतया ते त्वदीयं हृदयम् अहं शोषयामि कामाग्निना परितप्तं करोमि। ✕शुष] शोषणे✕। मयि मद्विषये ते तव हृदयम् जीवायतनं हृदयस्थानं शुष्यतु शुष्कं परितप्तं भवतु। अथो अपि च आस्यम् त्वदीयं मुखमपि शुष्यतु शुष्कं द्रवरहितं भवतु। अथो अपि [च मा]म् उद्दिश्य कामेन अभिलाषेण नि शुष्य नितरां परितप्यस्व। अथो अपि च सा त्वं शुष्कास्या द्रवरहिताननना सती चर माम् अभिगच्छ॥

तृतीया॥

संवनंनी समुष्पला बभ्रु कल्याणि सं नुद।
अमूं च मां च सं नुद समानं हृदयं कृधि॥ ३॥

सम्ऽवनंनी । सम्ऽउष्णला । बभ्रु । कल्याणि । सम् । नुद् ।
अमूम् । च । माम् । च । सम् । नुद् । समानम् । हृदयम् । कृधि ॥ ३ ॥

हे बभ्रु बभ्रुवर्णे पीतवर्णे हे कल्याणि मङ्गलकारिणि ओषधे संवननी संवननं वशीकरणं तद्वती । ※संपूर्वाद् वनतेः करणे ल्युट् । टित्वान्ङीप् ※ । समुष्णला सम्यक् उष्णफला सती सं नुद मत्समीपं तां स्त्रियं नुद प्रेरय । तदनन्तरम् अमूं च कामिनीं मां कामुकं च सं नुद संयोजय सम्यग् मिथुनीभावय । आवयोः हृदयं समानम् एकं कृधि कुरु ॥

चतुर्थी ॥

यथोदकमपपुषोपशुष्यत्यास्यम् ।
एवा नि शुष्य मां कामेनाथो शुष्कास्या चर ॥ ४ ॥

यथा । उदकम् । अपपुषः । अपऽशुष्यति । आस्यम् ।
एव । नि । शुष्य । माम् । कामेन । अथो इति । शुष्कऽआस्या । चर ॥४॥

यथा येन प्रकारेण उदकम् अपपुषः जलम् अपीतवतस्तृषार्तस्य पुरुषस्य आस्यम् मुखं शुष्यति एव एवम् हे कामिनि माम् उद्दिश्य कामेन नि शुष्य परितप्ता भव । अन्यत् पूर्ववत् । ※अपपुष इति । पा पाने इत्यस्मात् लिटः क्वसुः । ङसि "वसोः संप्रसारणम्" इति संप्रसारणम् । "आतो लोप इटि च" इति आकारलोपः । न च तस्मिन् कर्तव्ये संप्रसारणस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धवद्भावः । अत्रग्रहणं समानाश्रयप्रतिपत्त्यर्थम् इत्युक्तत्वात् । ङसि संप्रसारणं क्वसौ आल्लोप इति अनयोर्व्याश्रयत्वात् । "न लोकाव्यय°" इति कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधः ※ ॥

पञ्चमी ॥

यथा नकुलो विच्छिद्य संदधात्यहिं पुनः ।

---

१ J °उष्णला. २ K °र्यन्त्वा°. ३ P अपपुषः.

एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति ॥ ५ ॥

यथा । नकुलः । विऽछिद्य । सम्ऽदधाति । अहिम् । पुनः ।
एव । कामस्य । विऽछिन्नम् । सम् । धेहि । वीर्यऽवति ॥ ५ ॥

नास्य कुलम् अस्तीति नकुलः प्राणी । ☒ "नञ्राण्नपात्०" इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ☒ । स यथा अहिम् सर्पं विच्छिद्य खण्डयित्वा पुनः संदधाति संयोजयति एव एवम् हे वीर्यावति अतिशयितवीर्ययुक्ते ओषधे कामस्य विच्छिन्नम् स्त्रियाः पराङ्मुखत्वेन कामकृतविकारेण अवखण्डितं मां सं धेहि पुनः संयोजय ॥

षष्ठी ॥

यौ व्याघ्रावव॑रूढौ जिघ॑त्सतः पि॒तर॑ं मा॒तर॑ं च ।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शि॒वौ कृ॑णु जातवेदः ॥ १ ॥

यौ । व्याघ्रौ । अव॑ऽरूढौ । जिघ॑त्सतः । पि॒तर॑म् । मा॒तर॑म् । च ।
तौ । दन्तौ । ब्रह्मणः । पते । शि॒वौ । कृ॒णु । जा॒त॒ऽवे॒दः ॥ १ ॥

व्याघ्रौ व्याघ्रवत् हिंसकौ यौ दन्तौ उपरितनपङ्क्तिस्थौ अवरूढौ अवाङ्मुखं प्ररूढौ प्रथमत उत्पन्नौ पितरं मातरं च जिघत्सतः अत्तुं भक्षयितुम् इच्छतः । ☒ अद भक्षणे । "लुङ्सनोर्घस्लृ" इति घस्लृ आदेशः । "स[स्यार्ध]धातुके" इति तत्वम् ☒ । हे ब्रह्मणस्पते मन्त्रस्याधिपते हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने तौ तथाविधौ दन्तौ शिवौ सुखकरौ मातापित्रोरहिंसकौ कृणु कुरु ॥

सप्तमी ॥

व्री॒हिम॑त्तं यव॑मत्तमथो माष॒मथो तिल॑म् ।
एष वां॑ भा॒गो निहि॑तो रत्न॒धेयाय दन्तौ मा हिंसिष्टं पि॒तर॑ं मा॒तर॑ं
च ॥ २ ॥

व्री॒हिम् । अ॒त्त॒म् । यव॑म् । अ॒त्त॒म् । अथो॒ इति॑ । मा॒ष॒म् । अथो॒ इति॑ ।
तिल॑म् ।

एषः । वाम् । भागः । निऽहितः । रत्नऽधेयाय । दन्नौ । मा । हिंसि-
ष्टम् । पितरम् । मातरम् । च ॥ २ ॥

हे प्रथमोत्पन्नौ उपरितनदन्नौ व्रीहिम् अत्तम् भक्षयतं तथा यवम् अत्तम् भक्षयतम् । अथो अपि च माषम् अत्तम् । अथो अपि च तिलम् अत्तम् । हे दन्नौ रत्नधेयाय रमणीयफलाय वाम् युवयोः एषः व्रीहियवादिलक्षणो भागो निहितः निक्षिप्तः । तेन तृप्नौ युवाम् अस्य शिशोः पितरं मातरं च मा हिंसिष्टम् मा वधिष्टम् ॥

अष्टमी ॥

उपहूतौ सयुजौ स्योनौ दन्नौ सुमङ्गलौ ।
अन्यत्र वां घोरं तन्वः परैतु दन्नौ
मा हिंसिष्टं पितरं मातरं च ॥ ३ ॥

उपऽहूतौ । सऽयुजौ । स्योनौ । दन्नौ । सुऽमङ्गलौ ।
अन्यत्र । वाम् । घोरम् । तन्वः । परा । एतु । दन्नौ ।
मा । हिंसिष्टम् । पितरम् । मातरम् । च ॥ ३ ॥

उपहूतौ समीपम् आहूतौ देवेन अनुज्ञातौ वा सयुजौ समानं युञ्जानौ मित्रभूतौ स्योनौ सुखकरौ सुमङ्गलौ सुशोभनौ एवंगुणविशिष्टौ तौ दन्नौ भवताम् । हे दन्नौ वाम् युवयोः घोरम् क्रूरं कर्म मातापितृहननलक्षणम् अन्यत्र अन्यस्मिन् देशे तन्वाः[1] शिशुशरीरात् परैतु परागच्छतु । गतम् अन्यत् ॥

[इति] त्रयोदशेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

"वायुरेनाः" इति तृचेन पुष्ट्यर्थचित्राकर्मणि वृक्षशाखादिसंभारान् संपातयेत् ॥

तत्रैव कर्मणि "वायुरेनाः" इति ऋचा प्रभाते उदकधारोपेतया शाखया गां परिक्रामेत् ॥

---

१ A V न्याः३. R न्याः१. B S न्वः३. We with D K K.

---

1 S' अस्मिन्.

तत्रैव कर्मणि "लोहितेन स्वधितिना" इति मन्त्रेण सूत्रोक्तरीत्या वत्सकर्णं छिन्द्यात् ॥

तत्रैव कर्मणि "यथा चक्रुः" इति ऋचा कर्णलोहितं दधिमधुघृतोदकमिश्रितं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य वत्सं प्राशयेत् ॥

आह च कौशिकः। "वायुरेना इति युक्तयोश्चित्राकर्मनिशायां संभा-"रान् संपातवतः करोति। अपरेद्युर्वायुरेना इति शाखयोदकधारया गाः "परिक्रामति। प्रथमजस्य शकलम् अवधायौदुम्बरेणासिना लोहितेनेति "मन्त्रोक्तम्। यथा चक्रुरितीक्षुकाशकाण्ड्या[1] लोहितं निर्मृज्य[2] रसमिश्रम् "अश्नाति। सर्वम् औदुम्बरम्" इति [कौ० ३. ६] ॥

"उच्छ्रयस्व" इति तृचेन पुष्ट्यर्थबीजवापनकर्मणि व्रीह्यादिबीजम् आंज्यमिश्रं कृत्वा अभिमन्त्र्य प्रत्यृचं तिस्रो मुष्टीर्लाङ्गलपद्धतौ निधाय पांसुभिराच्छादयेत्। तद् उक्तं कौशिकेन। "उच्छ्रयस्वेति बीजोपहरणम्। "आज्यमिश्रान् यवान् उर्वरायां[3] कृष्टे फालेन उदुह्य अन्वृचं काशीन् "निनयति निवपति" इति [कौ० ३. ७] ॥

तत्र प्रथमा ॥

वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम्।
इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥ १ ॥

वायुः। एनाः। सम्ऽआकरत्। त्वष्टा। पोषाय। ध्रियताम्।
इन्द्रः। आभ्यः। अधि। ब्रवत्। रुद्रः। भूम्ने। चिकित्सतु ॥ १ ॥

एनाः अस्मदीया गाः वायुर्देवः समाकरत् समाकरोतु संघश आनयतु। वायुर्हि तेषां रक्षिता। तथा च तैत्तिरीयकम्। "वायव स्थेत्या-"ह। वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः। अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः। "वायव एवैनान् परिददाति" इति [तै० ब्रा० ३. २. १. ३] ॥ तथा त्वष्टा देवः पोषाय अभिवृद्धये इमा गाः ध्रियताम् धारयतु। स एव हि पशूनाम् अभिवृद्धेः कर्ता। "त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानां रूपकृत्" इति

1 S' °तीक्ष्ण°. 2 S' निमृज्य. 3 S' °रायाङ्°.

श्रुतेः [तै० सं० १. ७. ४. ५] । ※धृङ् अवस्थाने । तुदादित्वात् शः । "रिङ् शयग्लिङ्क्षु" इति रिङ् आदेशः※ । आभ्यो गोभ्यः इन्द्रो देवानाम् अधिपतिः अधि ब्रवत् अधिब्रवीतु आधिक्यं वदतु । रुद्रः पशूनाम् अभिमन्ता पीडाकरो देवः भूम्ने बहुत्वाय चिकित्सतु । पादास्यादिरोगपरिहारेण बह्वीः करोतु इत्यर्थः । ※भूम्न इति । बहुशब्दाद् इमनिचि "बहोर्लोपो भू च बहोः" इति इमनिच आदिवर्णलोपो बहोर्भूभावश्च । चिकित्सतु । कित ज्ञाने । "गुप्तिजकिद्भ्यः सन्" इति व्याधिप्रतीकारलक्षणेर्थे कितेः सन् प्रत्ययः※ ॥

द्वितीया ॥

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥ २ ॥

लोहितेन । स्वऽधितिना । मिथुनम् । कर्णयोः । कृधि ।
अकर्ताम् । अश्विना । लक्ष्म । तत् । अस्तु । प्रऽजया । बहु ॥ २ ॥

हे गोपाल लोहितेन लोहितवर्णेन ताम्रविकारेण स्वधितिना शस्त्रेण कर्णयोः वत्ससंबन्धिनोः मिथुनम् स्त्रीपुंसात्मकम् चिह्नं कृधि कुरु । अश्विना अश्विनौ देवौ तादृशं लक्ष्म चिह्नम् अकर्ताम् कुरुताम् । ※करोतेश्छान्दसो लुङ् । "बहुलं छन्दसि" इति विकरणस्य लुक्※ । तत् तथाविधं लक्ष्म प्रजया पुत्रपौत्रादिरूपया बहु बहुलं समृद्धम् अस्तु ॥

तृतीया ॥

यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥ ३ ॥

यथा । चक्रुः । देवऽअसुराः । यथा । मनुष्याः । उत ।
एव । सहस्रऽपोषाय । कृणुतम् । लक्ष्म । अश्विना ॥ ३ ॥

१ P बहु. २ B °देवसुरा. S देवासुरा. We with A B D K K R P P J V C₂ Cr.

1 S' तादृशी.

देवाश्च असुराश्च देवासुराः। ते यथा पशूनां लक्ष्म लक्षणं कर्णयोः स्वधितिना चक्रुः कृतवन्तः। मनुष्या उत मानवा अपि यथा चक्रुः कृतवन्तः हे अश्विना अश्विनौ एव एवं सहस्रपोषाय गवाम् अपरिमिताभिवृद्धये लक्ष्म चिह्नं कृणुतम् कुरुतम् ॥

चतुर्थी ॥

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि।
सुमित्रः सोम नो भव पराग्ने दुर्मतिर्हतम् ॥ १ ॥

उत्। श्रयस्व। वनस्पते। वर्ष्मन्। पृथिव्याः। अधि।
सुऽमित्रः। सोम। नः। भव। परा। अग्ने। दुःऽमतिः। हतम् ॥ १ ॥

हे वनस्पते वर्ष्मन् वर्षीयसि पृथिव्या अधि उपरि उच्छ्रयस्व उत्तिष्ठ प्ररूढः सन् उन्नतो भव। हे सोम नः सुमित्रः शोभनमित्रो भव। हे अग्ने दुर्मतिः दुष्टबुद्धिः परा हतम् परागच्छतु ॥

पञ्चमी ॥

आशृण्वन्तं यवं देवं यत्र त्वाच्छावदामसि।
तदुच्छ्रयस्व द्यौरिव समुद्र इवैध्यक्षितः ॥ २ ॥

आऽशृण्वन्तम्। यवम्। देवम्। यत्र। त्वा। अच्छऽआवदामसि।
तत्। उत्। श्रयस्व। द्यौःऽइव। समुद्रःऽइव। एधि। अक्षितः ॥ २ ॥

आशृण्वन्तम् आभिमुख्येन अस्मदुक्तम् आकर्णयन्तं यवम् यवधान्यरूपेण अवस्थितं देवं तत्र तस्यां भूमौ त्वा त्वाम् अच्छावदामसि आभिमुख्येन वदामः प्रार्थयामहे। तत् तत्र भूम्यां द्यौरिव आकाश इव उच्छ्रयस्व उन्नतो भव। सस्यावस्थायाम् उक्तम्। फलावस्थायामपि आह। समुद्र इव अक्षितः अक्षीणः क्षयरहितः एधि भव। अ-

1 S' गुस्तूल°.

स्तेर्लोटि सिपो हिरादेशः । श्नसोरल्लोपे "ध्वसोरेद्धौ०" इति एत्त्वम् । तस्य "असिद्धवद् अत्रा भात्" इति असिद्धत्वात् झलन्तलक्षणं हेर्धित्वम् । अक्षित इति । क्षि क्षये । "निष्ठायाम् अण्यदर्थे" इति पर्युदस्तत्वाद् दीर्घाभावात् "क्षियो दीर्घात्" इति नत्वस्यापि अभावः ॥

षष्ठी ॥

अक्षितास्त उपसदोक्षिताः सन्तु राशयः ।
पृणन्तो अक्षिताः सन्त्वत्तारः सन्त्वक्षिताः ॥ ३ ॥

अक्षिताः । ते । उपऽसदः । अक्षिताः । सन्तु । राशयः ।
पृणन्तः । अक्षिताः । सन्तु । अत्तारः । सन्तु । अक्षिताः ॥ ३ ॥

हे यव ते तव उपसदः उपसत्तारः उपगन्तारः कर्मकरा अक्षिताः क्षयरहिताः सन्तु भवन्तु । राशयः धान्यसमूहा अक्षिताः क्षयरहिताः [सन्तु] भवन्तु । पृणन्तः गृहादिकं पूरयन्तः समाहर्तारो जना अक्षिताः क्षयरहिताः सन्तु भवन्तु । अत्तारः भोक्तारो जना अक्षिताः क्षयरहिताः [सन्तु] भवन्तु ॥

[इति] षष्ठकाण्डे त्रयोदशेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

श्रीमद्राजाधिराजराजपरमेश्वरश्रीवीरप्रतापहरिहरमहाराजकारिते
अथर्वसंहिताभाष्ये षष्ठकाण्डं संपूर्णम् ॥

श्रीगणाधिपतये नमः ॥

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ।
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

सप्तमे काण्डे दशानुवाकाः । तत्र प्रथमेनुवाके त्रीणि सूक्तानि । तत्र "धीती वा ये" इति प्रथमे सूक्ते आद्याभ्यां द्वाभ्याम् ऋग्भ्याम् अर्थोत्थापनविघ्नशमनकर्मणि आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तानां त्रयोदशानां द्रव्याणाम् अन्यतमं जुहुयात् जपेद् वा । तद् उक्तं संहिताविधौ । "धीती वेत्यर्थम् उत्थास्यन्नुपदधीत जपति" इति [कौ० ५. ५] ॥

तथा सर्वफलकामः आभ्याम् ऋग्भ्याम् इन्द्राग्नी यजते उपतिष्ठते वा । "तदिद् आस[५. २.] धीती वा[७. १] इतीन्द्राग्नी" [कौ० ७. १०] इति कौशिकसूत्रात् ॥

अत्र "अथर्वाणं पितरम्" इत्यष्टर्चेन सर्वफलकामः अथर्वाणं यजत उपतिष्ठते वा । "यस्येदमा रजः[६. ३३] अथर्वाणम[७. २] अदितिर्द्यौः"[७. ६] इति [कौ० ७. १०] सूत्रात् ॥

"अया विष्ठा" इति द्व्यृचेन नवं रथम् अभिमन्त्र्य जयकामं राजानम् आरोहयेत् । सूत्रितं हि । "अया विष्ठा[७. ३] अग्न इन्द्रः [७. "११५] दिशश्चतस्रः[८. ८. २२] इति नवं रथं राजानं ससारथिम् आ- "स्थापयति" इति [कौ० २. ६] ॥

"एकया च"[७. ४] इत्यनया अश्वशान्तौ सर्वौषधिचूर्णम् अश्वस्य मूर्ध्नि प्रकिरेत् । "वातरंहाः[६. ९२] इति स्नातेश्वे" इति प्रक्रम्य कौशिकेन सूत्रितम् । "चूर्णैरवकिरति त्रिरेकया च" इति [कौ० ५. ५] ॥

तथा चातुर्मास्ये शुनासीरीयपर्वणि वायव्ययागानुमन्त्रणम् अनया कुर्यात् । उक्तं वैताने । "वायव्यं शुनासीरीयं सौर्यम् एकया चेति" [वै० २. ५] ॥

"यज्ञेन" इत्यनया सोमयागे आतिथ्येष्टौ हविर्ब्रह्माभिमृशेत् । "आतिथ्यायां हविरभिमृशति यज्ञेन यज्ञम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३.३] ॥

तत्र प्रथमा ॥

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येवदन्नृतानि ।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥ १ ॥

धीती । वा । ये । अनयन् । वाचः । अग्रम् । मनसा । वा । ये । अवदन् । ऋतानि ।
तृतीयेन । ब्रह्मणा । ववृधानाः । तुरीयेण । अमन्वत । नाम । धेनोः॥१॥

यद्यपि अस्मिन् द्यूचे देवताविशेषो न प्रतीयते तथापि "अनिरुक्तो वै प्रजापतिः" इति [ऐ०ब्रा० ६.२०] श्रुतेर्देवता अत्र प्रजापतिः । "अथर्वाणं पितरम्" इत्यृष्टचेंपि प्रजापतिर्देवता । अथर्वशब्दः प्रजापतिवाचक इति वक्ष्यते । अतः कृत्स्नम् इदं सूक्तं प्राजापत्यम् । अत एव अर्थोत्थापनकर्मणि समिदाज्यादिहोमे देवताविशेषादर्शनात् प्रजापतिर्देवतेति निश्चीयते ॥ अथवा "धीती वेति द्यूचेन इन्द्राग्नी यजेत सर्वकामः" इति विनियोगविधानात् तयोश्च "उभा दातारावृषां रयीणाम्" [ऋ० ६.६०.१३] इत्यादिषु फलदातृत्वप्रसिद्धेः देवताविशेषानादेशस्थलेषु च प्रजापतिवद् इन्द्रस्यापि देवतात्वेन स्मरणात् ऐन्द्रेषु च मन्त्रेषु "मुञ्चामि त्वा हविषा" [ऋ०१०.१६१.१] इत्यादिषु अग्नेर्निपातभाक्त्वाद् इन्द्राग्नी देवतेति अध्यवसीयते । अपि च "यत् सर्वेषाम् अधमं इन्द्रः प्रति" [तै०सं० ५.४.८.३] इति "अग्निः सर्वा देवताः" [तै०सं०२.२.९.१] इति इन्द्रस्याग्नेश्च सर्वदेवतात्मकत्वाभिधानात् तयोर्योगेन सर्वकामप्राप्तिर्युक्ता । अतस्तस्य तयोर्वा इतरदेवतावन्न स्तुतिहविःप्रदानमात्रेण अर्थसिद्धिः किं तु तन्माहात्म्यज्ञानेनैव इत्यभिप्रेत्य आद्ययर्चा तज्ज्ञानप्रकारः उत्तरया तत्सार्वात्म्यम् अभिधीयते ॥

ईदृशी खलु विवक्षूणां शब्दाभिव्यक्तिः । प्रथमम् अभिलषितम् अर्थं

विवक्षोः पुरुषस्य तद्वाचकशब्दप्रयोगार्थं तदिच्छावशेन जातात् प्रयत्नात् मूलाधारे प्राणवायोः परिस्पन्दो जायते। तेन परिस्पन्देन मूलाधारे सकलशब्दमूलकारणभूता निष्पन्दा सूक्ष्मा परा वाक् आविर्भवति। सैव मूलाधाराद् ऊर्ध्वं नाभिदेशं प्राप्ता सामान्यज्ञानरूपा विवक्षितपदार्थदर्शनात् पश्यन्तीति उच्यते। सैव हृदयदेशं प्राप्ता अर्थविशेषनिश्चयबुद्धियुक्ता मध्यदेशावस्थानाद् मध्यमेति गीयते। सैव कण्ठताल्वादिस्थानेषु वर्णरूपेण व्यज्यमाना विशेषेण परावबोधप्रचण्डा वैखरीति भण्यते। अत्र पराद्यवस्थात्मकास्त्रयः शब्दा देहान्तर्गतत्वाद् अस्फुटत्वेन विवक्षितम् अर्थं परेभ्यो न प्रतिपादयन्ति। वैखर्यात्मकः शब्द एव अर्थप्रत्यायनक्षमः। "गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति" इति हि निगमः [ऋ० १. १६४. ४५]। गुहायां त्रीणि पदानि निहितानि नार्थं वेदयन्ते इति हि यास्केन व्याख्यातम् [नि० प० १. ९]। आगमोपि।

स्वरूपं ज्योतिरेवान्तः परा वाग् अनपायिनी।
यस्यां दृष्टस्वरूपायाम् अधिकारो निवर्तते॥
अविभागेन वर्णानां सर्वतः संवृतक्रमा।
प्राणाश्रयात् तु पश्यन्ती मयूराण्डरसोपमा॥
मध्यमा बुद्ध्युपादाना कृतवर्णपरिग्रहा।
अन्तःसंजल्परूपा तु न श्रोत्रम् उपसर्पति॥
तालोष्ठव्यापृतिस्पृङ्गा[1] परबोधप्रकाशिनी।
मनुष्यमात्रसुलभा बाह्या वाग् वैखरी मता॥

इति। तथा च अस्यां ऋचः अयम् अर्थः। ये प्रजापतेः इन्द्राग्न्योर्वा वाचकशब्दं विवक्षवः स्तोतारः धीती। ध्यायतेः क्तिनि छान्दसं संप्रसारणम्। "हलः" इति दीर्घः। "सुपां सुलुक्०" इति तृतीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः[2]। धीत्या ध्यानात्मकेन विवक्षाजन्यप्रयत्नजातप्राणवायुपरिस्पन्दाविर्भूतेन परावस्थापन्नेन प्रथमेन शब्दब्रह्मणा इति यावत्। "तृतीयेन ब्रह्मणा" इति वक्ष्यमाणत्वाद् अत्रापि संख्याविशिष्टब्रह्मपदं संबध्य-

1 So S'. 2 S' °पृथि°.

ते । वाशब्दः चार्थे । वाचो अग्रम् । "सर्वे वेदा यत् पदम् आमनन्ति" इति [क०व०२.१५] श्रुतेः सकलवाक्यप्रतिपाद्यत्वेन मुख्यम् निखिलवाग्व्यवहारस्य वा आदिभूतं प्रजापतिरूपम् अर्थम् इन्द्राग्निरूपं वा अनयन् ध्यानविषयत्वं प्रापितवन्तः । ऋ "यद्वृत्तान्नित्यम्" इति निघातनिषेधः । अडागमस्य उदात्तत्वेन आद्युदात्तं पदं भवति ऋ । ये च विवक्षवः मनसा सामान्यधर्मग्राहकेण पश्यन्त्यात्मकेन द्वितीयेन शब्दब्रह्मणेत्यर्थः । ऋतानि सत्यभूतानि अखण्डपरावस्थापेक्षया ईषद् उद्गतानि वा वाक्यानि देवतावाचकशब्दविचारविषयाणि अवदन् । वदनम् अत्र सामान्यज्ञानं विवक्षितम् । पूर्ववाक्ये यच्छब्दश्रुतेस्तच्छब्दः अध्याहार्यः । ते विवक्षवः तृतीयेन । ध्यानमनोवच्छिन्नपरापश्यन्त्यपेक्षया तृतीयत्वम् । त्रित्वसंख्यापूरकेण ब्रह्मणा । अन्तर्विभक्तवर्णात्मकेन अर्थविशेषाध्यवसायबुद्धियुक्तेन मध्यमाख्येनेत्यर्थः । वावृधानाः । ऋ अन्तर्भावितण्यर्थः । वृधेर्लिटः कानच् । तुजादित्वाद् दीर्घः । "चितः" इति अन्तोदात्तत्वम् ऋ । वर्धयन्तः अशब्दविषयम् अर्थं शब्दवाच्यत्वेन पोषयन्तः तुरीयेण चतुर्थेन । ऋ "चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च" इति छप्रत्ययः ऋ । चतुःसंख्यापूरकेण वैखर्यात्मकेन वर्णपदवाक्यरूपेण ब्रह्मणा धेनोः । वाङ्नामैतत् । वाच्यवाचकयोरभेदाद् वाच्ये वाचकशब्दः । मन्त्रप्रतिपाद्यस्य[1] । यद्वा धेनुवद् धेनुः । अभिमतफलप्रदानेन प्रीणनकारिणः प्रजापतेः नाम नामधेयम् प्रजासर्जनपालनादिधर्मकं प्रजापतिरिति । इन्द्राग्निदेवतापक्षे इदंदर्शनभूतेन्धनादिगुणविशिष्टम् [नि०१०.८] इन्द्र इति अग्रणीत्वाङ्गनादिगुणकम् अग्निरिति च नामधेयम् अमन्वत । उच्चारितवन्त इत्यर्थः । ऋ धातूनाम् अनेकार्थत्वात् । मनु अवबोधने । तानादिकः ऋ । एवं परादिवाचा प्रतिपादितस्वरूपः प्रजापतिः अस्माकम् अभीष्टं साधयत्विति इन्द्राग्नी वा साधयताम् इति प्रार्थना ॥

अथवा वाचो अग्रम् इति पदेन वेदात्मिकाया वाचो निदानं पर्यवसानभूमिर्वा परमात्मतत्त्वं विवक्ष्यते । तथा च ऐतरेयारण्यके "तदिद् आस भुवनेषु ज्येष्ठम्" [ऋ०१०.१२०] इत्यस्य सूक्तस्य तच्छब्दप्रशंसा-

1 S' inserts नू after °पाद्यस्व. 2 S' धेनुष्विः. 3 S' °पादितनु° (= °तधेनु°?).

वसरे समाम्नायते । "बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रम् [ऋ०१०.७१.१] इत्येतद्धयेव प्रथमं वाचो अग्रम्" इति [ऐ०आ०१.३.३] । "तदिद् आस" इत्यत्र तच्छब्देन सर्वश्रुतिप्रसिद्धं सर्वजगत्कारणं ब्रह्म अभिहितं तद् अत्र एतच्छब्देन विवक्ष्यत इति तत्रार्थः । तादृशं सकलवाङ्निदानभूतं तत्त्वं ये जिज्ञासवो महर्षयो देवा वा धीती । कर्मनामैतत् । धीत्या । वाशब्दो विकल्पवाची । बाह्यविषयव्यापृतया अक्षवृत्त्या अनयन् । ज्ञातुं प्रयत्नं कृतवन्त इत्यर्थः । अनेन जाग्रदवस्थाभिमानिविश्वसंज्ञात्मना तत्त्वं ग्रहीतुम् उद्युञ्जत इत्युक्तं भवति । ये वा ततोपि सूक्ष्मदर्शिनो मनसा केवलेन अन्तःकरणेन[1] ऋतानि सत्यब्रह्मविषयाणि वाक्यानि अवदन् । अनेन स्वप्नावस्थायां केवलमनोव्यापारात् तदभिमानितैजसात्मकब्रह्मणा तत्त्वज्ञानाय प्रयतन्त इत्युक्तं भवति । ये वा ततोप्यान्तरं वस्तु जिज्ञासमाना वावृधानाः । ॐ वर्धतेः "लक्षणहेत्वोः०" इति हेतौ शानचि व्यत्ययेन शपः श्लुः ॐ । परिच्छेदापनयनरूपवर्धनाङ्गेतोः तृतीयेन त्रित्वसंख्यापूरकेण ब्रह्मणा चैतन्यात्मना । अत्र सुषुप्तौ कारणशरीराभिमानी प्रज्ञानघनः प्राज्ञो विवक्षितः । तेन जागरस्वप्नावस्थावत् सुषुप्तौ बाह्यान्तरेन्द्रियजनितविक्षेपाभावात् अपरिच्छिन्नब्रह्मभावेन वर्तन्त इति शेषः । एवम् अवस्थात्रयाभिमानिविश्वादितादात्म्येन तत्त्वं बुभुत्सवः सर्वेपि तत्रतत्र निरस्तसमस्तभेदं तत्त्वम् अलभमानाः सन्तः धेनोः वाचो अग्रम् इति निर्दिष्टस्य फलप्रदस्य वा परमात्मनः नाम नामकं यत्स्वरूपं प्रति सर्वे प्रणताः तत् निरस्तसमस्तोपाधिकं सत्यज्ञानादिलक्षणं तत्त्वं तुरीयेण तुर्यावस्थापन्नेन कारणशरीराभिमानरहितेन सर्वसाक्षिणा चैतन्येनात्मना अमन्वत जानन्ति स्म । "गूढं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्दद् अत्रिः" इति हि निगमः [ऋ०५.४०.६] । "स ब्रह्मा [स शिवः] स हरिः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराट्" इति श्रुतौ [तै०आ० १०.११.२] परमात्मनो नानादेवतानामव्यवहार्यत्वदर्शनाद् अत्र प्रजापतिशब्दव्यपदेश्यम् इन्द्राग्निशब्दव्यपदेश्यं वा तदेव तत्त्वं सम्यग् अधिगतं सत् अस्माकम् अभिमतं साधयतिति प्रार्थ्यते ॥

1 S' inserts कृता (doubtless a mistake for ऋता) after °करणेन. 2 So S'.

द्वितीया ॥

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स सूनुर्भुवत् स भुवत् पुनर्मघः ।
स द्यामौर्णोदन्तरिक्षं स्वः१ः स इदं विश्वमभवत् स आभवत् ॥ २ ॥

सः । वेद् । पुत्रः । पितरम् । सः । मातरम् । सः । सूनुः । भुवत् । सः । भुवत् । पुनःऽमघः ।

सः । द्याम् । और्णोत् । अन्तरिक्षम् । स्वः । सः । इदम् । विश्वम् । अभवत् । सः । आ । अभवत् ॥ २ ॥

अनया उक्तविधस्य देवस्य ब्रह्माभेदेन सार्वात्म्यम् अभिधीयते । स विश्वात्मकः प्रजापतिः पुत्रः स्वीयं रूपम् सम्यक् जानतः पुरुषान् अनर्थहेतोः संसारात् त्रायत इति पुत्र इति व्यपदिश्यते । ‡पुत्रः पुरु त्रायते [नि०२.११] इत्यादि निरुक्तम्‡ । पितरम् द्युलोकं वेद वेत्ति । स एव मातरम् पृथिवीं वेत्ति । प्रजापतिः द्यावाभूमी स्वधार्यत्वेन जानातीत्यर्थः । "द्यौः पिता । पृथिवी माता" इति हि मन्त्रवर्णः [तै० ब्रा०३.७.५.५] । "ताभ्याम् इदं विश्वम् एजत् सम् एति यद् अन्तरा पितरं मातरं च" [ऋ०१०.८८.१५] इति श्रुतेः द्यावापृथिव्योर्मध्ये विश्वस्यावस्थानात् तयोः प्राधान्येनाभिधानम् । अथवा "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे" [ऋ०१०.१२१.१] इति मन्त्रवर्णात् प्रजापतिः परमात्मना प्रथमं सृष्टः । तस्य पिता सकलजगदधिष्ठानं परं ब्रह्म । माता चिप्रतिबिम्बिता मूलप्रकृतिः । तौ प्रजापतिः स्वाभेदेन जानाति । पुत्रशब्दः अत्र मुख्यार्थवाची । कारणपरिज्ञानेन कार्यमपि तदभेदात् परिज्ञातं भवतीति कारणभूतमातापितृपरिज्ञानमात्रम् अत्रोक्तम् । न केवलं परिज्ञाता अपि तु स प्रजापतिः सूनुः सर्वस्य जगतः स्वस्वकर्मसु प्रेरयिता भुवत् भवति । "एष उ एव साधु कर्म कारयति तम्" [कौ०उ०३.८] इत्यादिश्रुतेः । ‡षू प्रेरणे इत्यस्माद् औणादिको नुप्रत्ययः । भुवत् इति । भवतेर्लेङि व्यत्ययेन शः । "भूसुवोस्तिङि" इति गुणप्रति-

१ A B B̈ ३ for १. We with K K̈ R S̈ V Cs.

षेधः ॥ । स एव मँघः । ॥ लिङ्गव्यत्ययः ॥ । धनवाचिना मघशब्देन कर्मफलं विवक्ष्यते । कर्मफलमपि भुवत् भवति । पुनँःशब्दः चार्थे । स च अनुक्तसमुच्चयार्थः । भोक्तापि स एवेत्यर्थः । "भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्मम् एतत्" [श्वे० उ० १. १२] इति हि श्रुतिः । यद्वा पुनर्मघ इति समस्तं पदम् । स्तोतृभ्यो बहुधनप्रदानेपि पुनःपुनः अभिवृद्धधन इत्यर्थः । किं च स प्रजापतिः द्याम् । ॥ द्यु अभिगमने इत्यस्माद् उत्पन्नो द्योशब्दः ॥ । सुकृतिभिरभिगन्तव्यां दिवम् और्णोत् स्वात्मना व्याप्नोति । ॥ ऊर्णुञ् छादने । लङि शब्लुकि वृद्ध्यभावे रूपम् ॥ । अन्तरिक्षम् । अन्तरा क्षान्ति इत्यन्तरिक्षम् आकाशं तदपि व्याप्नोति । स च स्वः स्वर्गं पुण्यभोगस्थानं च व्याप्नोति । इदं पृथिव्यादेरुपलक्षणम् । व्याप्यापेक्षया व्यापकस्य अधिकवृत्तिप्रदर्शनात् सर्वेभ्योपि लोकेभ्यः प्रजापतिः अधिकवृत्तिरित्यर्थः । "ज्यायान् पृथिव्या ज्यायान् अन्तरिक्षाज्ज्यायान् दिवः" [छा० ३. १४. ३] इत्यादिश्रुतेः । किं बहुना । स प्रजापतिः इदं परिदृश्यमानं नामरूपात्मकं विश्वं जगद् अभवत् । विश्वात्मना स एवावतिष्ठते । स आभवत् आ सर्वतो व्याप्य वर्तते । आवृत्यावृत्य तादृप्येण कारणात्मना वा वर्तते । सोऽस्माकम् अभिमतसर्वफलानि साधयतिति प्रार्थ्यते ॥

तृतीया ॥

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम् ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ १ ॥

अथर्वाणम् । पितरम् । देवऽबन्धुम् । मातुः । गर्भम् । पितुः । असुम् । युवानम् ।

यः । इमम् । यज्ञम् । मनसा । चिकेत । प्र । नः । वोचः । तम् । इह । इह । ब्रवः ॥ १ ॥

अथर्वशब्दः प्रजापतिवाची । तथा च गोपथब्राह्मणे । "ब्रह्म वा इ-

१ D S C चिकेतः. We with A B K K R V.

"दम् अग्र आसीत् । स्वयंभ्वेकमेव तद् ऐक्षत । मन्मात्रं द्वितीयं देवं "निर्ममे" इति [गो०१.१] प्रक्रम्य "तद् अथर्वाभवत्" इत्यथर्वसृष्टिम् अभिधाय तस्याथर्वणः परब्रह्मणश्च अभेदं प्रतिपाद्य समाम्नायते । "तम् "अथर्वाणं ब्रह्माब्रवीत् प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्वेति । [तद् यद् "अब्रवीत् प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्वेति] तस्मात् प्रजापतिरभवत् । "तत् प्रजापतेः प्रजापतित्वम् । अथर्वा वै प्रजापतिः" इति [गो०ब्रा० १.४] । तथा "प्रजापतिरथर्वा देवस्तपस्तप्त्वैतं चातुष्प्राश्यं ब्रह्मौदनं निरमिमीत" इति [गो०ब्रा०२.१६] । अतः अथर्वशब्देन प्रजापतिरुक्तः । तस्य प्रजानां स्रष्टृत्वं पालकत्वं च अनेन प्रदर्श्यते । पितरम् पालकं प्रजानाम् । न केवलं पालकः अपि तु देवबन्धुम् देवानां बन्धुं कारणं स्रष्टारम् । "समुद्रो बन्धुः"[? ५.११.१०] इत्यत्र बन्धुशब्दः कारणम् आहेति व्याख्यातम् । मनुष्यादिसृष्टेर्देवसृष्टिः पूर्वभाविनीति सा प्रथमम् उक्ता । स्त्रीपुंससृष्टिरपि तस्मादेव भवतीत्याह । मातुर्गर्भम् यस्य गर्भस्य या माता तस्यास्तं गर्भं युवानम् मिश्रयन्तं कुर्वन्तम् । पितुर्गर्भजनकस्य असुम् प्राणं प्राणसंहितम् । रेत इत्यर्थः । तच्च युवानम् सिञ्चन्तम् । "न ह वा ऋते प्राणाद् रेतः सिच्यते" इति [ऐ०आ०३.२.२] "आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते" इति [ऋ०१०.१८४.१] च श्रुतिभ्यः । युवानम् इति । यौतेरादादिकात् लटः शानचि उवङादेशे रूपम् । स्त्रीपुंससृष्टिः इतरसृष्टेरुपलक्षणम् । यद्वा "स इदं सर्वम् अभवत्" इति स्वस्यैव जगदात्मना भवनाद् गर्भरूपत्वम् असुरूपत्वं च संपद्यते । "यच्चासुः पुरुषो जायते यच्च पुत्रः" इति हि श्रुतिः । तथापि युवानम् नित्यतरुणम् । न कदाचिदपि जननादिभावविकारवन्तम् इत्यर्थः । एतादृशम् अथर्वाणम् । थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः इति हि यास्कः [नि०११.१८] । अत्र चरतिना च्युतिर्विवक्ष्यते । च्युतिरहितं प्रजापतिं स्वमनीषितसिद्धये प्रार्थय इति शेषः । एवं सम्यग्विदितार्थवस्वरूपो मन्त्रद्रष्टा महर्षिः स्वेन ज्ञातं तत्स्वरूपं

1 S' स्वयंभुवेकमेतद् for स्वयंभ्वेकमेव तद्, which we with Deccan College 6 of 1870-71 and 89 of 1880-81. 2 S' चतु°. 3 S' प्रदृश्यते. 4 S' °रहितम्.

परेषां प्रत्याययितुं स्वयम् अजानन्निव तटस्थम् अभिज्ञं पृच्छति उत्तरार्धेन य इति। यः अथर्वा। "एतद् वा अथर्वणो रूपं यद् उष्णीषी ब्रह्मा" [गो० ब्रा० २.१९] इत्याम्नानाद् अथर्वात्मक ऋत्विग्भूतो ब्रह्मा इमम् अनुष्ठीयमानं सर्वफलसाधनं यज्ञं स्वर्गादिसाधनं प्रसिद्धम् अग्निष्टोमादियज्ञं वा मनसा चिकेत। ✕कितीं संज्ञाने✕। जानाति अनुसंधत्ते। एतद् उक्तं भवति। यज्ञस्य हि द्वौ पक्षौ। तत्रैकः पक्षः त्रिभिर्होत्रादिभिर्वाचा संस्क्रियते। अपरस्तु ब्रह्मणा मनसेति। अत्र "तस्य वाक् च मनश्च वर्तनी" इति प्रक्रम्य ब्राह्मणे समाम्नायते। "स वा एष त्रिभिर्वेदैर्यज्ञस्यान्यतरः पक्षः संस्क्रियते मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरं पक्षं संस्करोति" इति [गो० ब्रा० ३.२]। तं मनसा यज्ञान् अनुसंदधानम् अथर्वाणं नः अस्माकं प्र वोचः प्रकर्षेण ब्रूहि। हे विद्वन्निति शेषः। किं यदाकदाचित्। नेत्याह। इहेह अस्मिन्नस्मिन् अभिलषितसाधने कर्मणि ब्रवः ब्रूहि। जानासि चेद् ब्रूहि। मद्व्यतिरिक्तो न कोपि जानातीत्यर्थः। ✕वोच इति। ब्रवीतेश्छान्दसे लुङि ह्लेरङि अडभावे रूपम्। इहेहेति। वीप्सायां द्विर्वचनम्। "अनुदात्तं च" इति आम्रेडितस्य अनुदात्तत्वम्। ब्रव इति। पञ्चमलकारे "लेटोडाटौ" इति अडागमः✕॥ यद्वा प्रजापतिस्वरूपं सामान्यतो ज्ञात्वा तद्विशेषजिज्ञासायै पार्श्वस्थं पृच्छति। यो विद्वान् इमम् अथर्वाणं पितरं देवबन्धुमित्याद्युक्तलक्षणं सर्वैः स्वात्मत्वेन अनुभूयमानं वा यज्ञम् यष्टव्यं यज्ञात्मकं वा प्रजापतिं मनसा मनसैव चिकेत जानाति। न केवलं श्रुतिवाक्यश्रवणेन किं तु मननिदिध्यासनाभ्यां यस्तत्त्वं साक्षात्करोति तम् अभिज्ञं नः अस्माकं प्रब्रूहि। "आचार्यवान् पुरुषो वेद" इति श्रुतेः [छा० ६.१४.२] आचार्योपदेशेनैव अधिगतं देवतास्वरूपं पुरुषार्थार्थं भवतीति विवक्षया अभिज्ञप्रश्नः। अथ तेनाभिज्ञेन प्रदर्शितं तत्त्वोपदेष्टारं गुरुं पृच्छति तम् इहेह ब्रव इति। यष्टव्यदेवतास्वरूपपरिज्ञाने क्रियमाणं कर्म सगुणं भवेद् इति मनीषया प्रश्नः॥ अथवा मन्त्रद्रष्टा महर्षिः स्वात्मानमेव संबोध्य ब्रूते। य उक्तविधः प्रजापतिः तं

1 S' स्वयमजातानन्व for स्वयमजानन्निव.

नः अस्मदर्थं प्र वोचः प्रकर्षेण ब्रूहि यष्टव्यदेवतास्वरूपं सम्यग् ज्ञात्वा ब्रूहि । इहेह ब्रूहीति पुनर्वचनम् आदरार्थम् । तथाहि देवतास्तुतिकरणविषये मन्त्रद्रष्टुः स्वात्मानम् अभिमुखीकृत्य वचनं शाखान्तरे समाम्नायते । "अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवः" इति [ऋ० ३.२३.३] ॥

## चतुर्थी ॥

अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि स हि घृणिरुरुवराय गातुः ।
स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रं स्वया तन्वा तन्वमैरयत ॥ १ ॥

अया । विऽस्था । जनयन् । कर्वराणि । सः । हि । घृणिः । उरुः । वराय । गातुः । सः । प्रतिऽउदैत् । धरुणम् । मध्वः । अग्रम् । स्वया । तन्वा । तन्वम् । ऐरयत ॥ १ ॥

अया अनया । तृतीयाया याजादेशः । "हलि लोपः" इति लोपः । उक्तरीत्या विष्ठाः । विविधं तिष्ठतीति । "क्विप् च" इति क्विप् । सर्वात्मभावेन स्थित इत्यर्थः । अथवा अया अयम् । प्रथमाया आकारः । अयं प्रजापतिः विष्ठा विश्वात्मना स्थितः कर्वराणि । कर्मनामैतत् । यज्ञादिकर्माणि कार्यजातानि वा जनयन् उत्पादयन् वर्तते । स प्रजापतिः घृणिः दीप्यमानः । घृण दीप्तौ । औणादिक इन् प्रत्ययः । वराय वरणीयाय कर्मफलाय । तादर्थ्ये चतुर्थी । उरुः महान् गातुः मार्गः । फलप्राप्तेः अयमेव साधनान्तरनिरपेक्षो महान् उपाय इत्यर्थः । हिशब्दो हेतौ । यस्मात् फलप्राप्तिमार्गः तस्मात् स तादृशो धरुणम् धारकं चिरकालं भगत्वेनावस्थायि मध्वः मधुनः । नुमभावश्छान्दसः । मधुवद् आस्वाद्यस्य फलस्य अग्रं सारं प्रत्युदैत् । अन्तर्भावितण्यर्थः । प्रत्युद्गमयति स्तोतृभ्यः । एतेश्छान्दसो लुङ् । गा-

---

१ B विष्वा. २ K K$^{m}$ P P$^{2}$ °त् for °त. R °न्त. We with A S$^{m}$ (which change °त् to °त) and B B$^{h}$ D R J V Cs Cr which have already °त.

1 S′ इहैव. 2 S′ तथापि. 3 S′ भगात्वेन°.

देशाभावे सिचि वृद्धिः ॥ । सर्वेषां फलप्रदत्वं स्वस्य सर्वनियन्तृत्वम् अन्तरेण न संभवतीति तद् उपपादयति स्वयेति । स्वया स्वीयया तन्वा विराडात्मिकया तन्वम् । ॥ जात्येकवचनम् ॥ । सर्वप्राणिशरीराणि ऐरयत प्रेरयति तत्तत्कर्मस्विति । ॥ ईर गतौ कम्पने च । छान्दसो लङ् ॥ ॥ अस्य मन्त्रस्य अभिनवे रथे जयकामस्य नृपतेरास्थापने विनियोगात् तत्परतया व्याख्यायते । अया अयं जयकामो राजा कर्वराणि शत्रुत्रासनादीनि कर्माणि जनयन् । ॥ "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति हेतौ शतृप्रत्ययः ॥ । त्रासनादिजननाद्धेतोः विष्ठाः विशेषेण विशिष्टे वा रथे स्थितः । मन्त्रायुधादिसंस्काराद् रथस्य वैशिष्ट्यम् । स तादृशः खलु राजा दीप्यमानः । स्वसेनयेति शेषः । तेजस्वी वा वराय वरिष्ठाय जयलक्षणाय फलाय महान् मार्गः । स राजा धरुणम् ध्रियमाणं परैः अनभिभाव्यं मधुनः जयलक्षणस्य सारं प्रत्युदैत् प्रत्युद्गच्छतु प्राप्नोतु । स च पराभिभवनम् अन्तरेण न घटत इति तद् उपपादयति । स्वया स्वीयेन तन्वा शरीरेण स्वगतबलेन सेनालक्षणबलेन वा तन्वम् शत्रुशरीराणि कम्पयति उच्चाटयति ॥

पञ्चमी ॥

एकया च दशभिश्चा सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ॥ १ ॥

एकया । च । दशऽभिः । च । सुऽहुते । द्वाभ्याम् । इष्टये । विंशत्या । च । तिसृऽभिः । च । वहसे । त्रिंशता । च । वियुक्ऽभिः । वायो इति । इह । ताः । वि । मुञ्च ॥ १ ॥

हे सुहुते शोभनाह्वान सुष्ठु ह्वातव्य वा हे वायो । सर्वप्रेरकः प्रजापतिः प्रसिद्धो वा वायुः । एकया च दशभिश्च । ॥ परस्परसमुच्चयार्थौ चशब्दौ ॥ । एकादशभिः वियुग्भिः विशेषेण युज्यन्ते रथे इति वियुजो वडवाः । ॥ युजेः कर्मणि क्विप् ॥ । ताभिर्वहसे । वह-

१ A D K P R S V Cs सुहूते. We with B K P J.

तिरत्र गतिमात्रवाची । आगच्छ । किमर्थम् । इष्टये यागाय । ‘क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्’ इति कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थी । अस्माभिरनुष्ठीयमानं कर्म आयाहि । यद्वा इष्टये इच्छायै । ‘मन्त्रे वृषेषपच०’ इति क्तिन्नुदात्तः । ‘क्रियार्थोपपदस्य०’ इति चतुर्थी । अस्मदीयफलकामनां पूरयितुम् एकादशभिरश्वाभिः वहसे । व्यत्ययेन कर्मार्थे कर्तृप्रत्ययः । उह्यसे । दशभिरिति ‘झल्युपोत्तमम्’ इति स्वरेण मध्योदात्तं पदम् । तथा द्वाभ्यां च विंशत्या च द्वाविंशत्या वडवाभिर्वहसे । विंशत्येति । ‘उदात्तयणो हल्पूर्वात्’ इति विभक्तिरुदात्ता । तथा तिसृभिश्च त्रिंशता च त्रयस्त्रिंशता अश्वाभिवर्हसे । अयम् अर्थः । सुहुत इति विधेयविशेषणम् यतस्त्वं सुहुतिः अतः अस्मदाह्वानानुसारेण अस्माकं फलप्रदानादरानुसारेण वा शीघ्रम् आगन्तुं कदाचिद् एकादशभिः कदाचिद् द्वाविंशत्या कदाचित् त्रयस्त्रिंशता वडवाभिः अस्मदीयं यागं प्राप्नुहीति । अतित्वरागमनविवक्षायां वायोः अपरिमिता अश्वाः शाखान्तरे समाम्नायन्ते । “आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार” इति [ऋ० ७.९२.१] । वायोरश्वा नियुत इत्युच्यन्ते । आगत्य च हे वायो इह अस्मिन् अस्मदीये कर्मणि अश्वशान्तिलक्षणे वा ता वडवा वि मुञ्च । इहैव स्थापय । इतः प्रदेशात् प्रदेशान्तरम् आभिर्वडवाभिर्मा प्राप इत्यर्थः ॥

## षष्ठी ॥

यज्ञेन॑ यज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ।
ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः स॒न्ति दे॒वाः ॥ १ ॥

यज्ञे॑न । यज्ञ॑म् । अ॒यज॑न्त । दे॒वाः । तानि॑ । धर्मा॑णि । प्र॒थमा॑नि । आ॒स॒न् ।
ते । ह॒ । नाक॑म् । म॒हि॒मानः॑ । स॒च॒न्त॒ । यत्र॑ । पूर्वे॑ । सा॒ध्याः । स॒न्ति ।
दे॒वाः ॥ १ ॥

देवाः कर्मणा देवत्वं प्राप्ता यजमानाः पूर्वे यज्ञेन अग्निना निर्मन्थ्येन यज्ञं होमाधारम् आहवनीयम् अग्निम् अयजन्त । यजिरत्र संगत-

करणवाची ॥ । अनुष्ठानाय संयोजितवन्त इत्यर्थः । "यद् अग्नावग्निं मथित्वा प्रहरति तेनैवाग्नय आतिथ्यं क्रियते" इति हि तैत्तिरीयकम् [तै० सं० ६.२.१.७] । तानि धर्माणि अग्निसाधनानि कर्माणि प्रथमानि । प्रथम इति मुख्यनाम । प्रतमानि प्रकृष्टतमानि आसन् । फलप्रसवसमर्थानि अभवन्नित्यर्थः । ॥ धर्माणीति । धर्मशब्दः अपूर्वे पुंलिङ्गः तत्साधने नपुंसक इति "अर्धर्चाः पुंसि०" इति सूत्रे वृत्तिकारेण लिङ्गानुशासनं कृतम ॥ । ते ह ते खलु देवा महिमानः महत्त्वयुक्ता नाकम् कं सुखम् अकं दुःखं तद् अत्र नास्तीति नाकः स्वर्गः तं सचन्त संगताः । ॥ षच समवाये । लङि "०अमाङ्योगेपि" इति अडभावः ॥ । यत्र यस्मिन् नाके पूर्वे पुरातनाः साध्याः । प्राणाभिमानिनो देवाः साध्या इत्युच्यन्ते । तथा च वाजसनेयकम् । "प्राणा वै साध्या देवास्त एतम् अग्रम् एवम् असाधयन्" इति [श० ब्रा० १०.२.२.४] । यद्वा छन्दोभिमानिनो देवा आदित्या अङ्गिरसश्च साध्या देवा इत्युच्यन्ते । ते देवाः सन्ति निवसन्ति । तस्माद् इदानीमपि यज्ञाधिकारिभिः एवं कर्तव्यम् इत्यर्थः । अत्र ऐतरेयकब्राह्मणम् । "यज्ञेन वै तद् देवा यज्ञम् अयजन्त । यद् अग्निनाग्निम् अयजन्त ते स्वर्गं लोकम् आयन्" इति [ऐ० ब्रा० १.१६] । "यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा इति । छन्दांसि वै साध्या देवाः । तेग्रेग्निनाग्निम् अयजन्त । ते स्वर्गं लोकम् आयन्नादित्याश्चैवेहासन्नङ्गिरसश्च । तेग्रेग्निनाग्निम् अयजन्त । ते स्वर्गं लोकम् आयन्" इति [ऐ० ब्रा० १.१६] । यद्वा देवा इदानीं देवभावम् आपन्नाः पूर्वं यज्ञेनाग्निना पशुभूतेन यज्ञं यष्टव्यम् अग्निम् अयजन्त पूजितवन्तः । अग्नेरेव मूर्तिभेदेन देवत्वं पशुत्वं च द्रष्टव्यम् । "अग्निः पशुरासीत् । तम् आलभन्त । तेनायजन्तेति च ब्राह्मणम्" इति हि यास्कः [नि० १२.४१] । साध्याः यज्ञादिसाधनवन्तः । "साधनाः द्युस्थानो देवगण इति नैरुक्ताः" इति हि यास्कः [नि० १२.४१] । शिष्टं पूर्ववद् व्याख्येयम् । अथ वा यज्ञेन ज्ञानयज्ञरूपेण यज्ञः । "यज्ञो वै विष्णुः" इति श्रुतेः [तै० ब्रा० १.३.८.५] विष्णुः । तम् अयजन्त आत्मत्वेन ध्यातवन्तः । ते नाकं स्वर्गम्

दुःखेन यत्र संभिन्नं न च ग्रस्तम् अनन्तरम्।
अभिलाषोपनीतं यत् सुखं स्वर्गपदास्पदम्

इत्युक्तनित्यसुखरूपम्

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमं मम।

इति [भ० गी० १५. ६] भगवतोक्तं स्थानं सचन्त सेवन्ते प्राप्नुवन्ति। साध्याः। ॥ व्यत्ययेन कर्तरि कृत्यप्रत्ययः ॥। साधकाः। अहंगृहोपासका इत्यर्थः। यद्वा साध्यं ज्ञानेन प्राप्यं वस्तु येषाम् आत्मत्वेन अस्तीति। ॥ अर्शआदित्वाद् अच् प्रत्ययः ॥। शिष्टं समानम्॥

सप्तमी॥

यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः।
स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमा दधातु॥ २॥

यज्ञः। बभूव। सः। आ। बभूव। सः। प्र। जज्ञे। सः। ऊं इति। ववृधे। पुनः।
सः। देवानाम्। अधिऽपतिः। बभूव। सः। अस्मासु। द्रविणम्। आ। दधातु॥ २॥

यज्ञः यज्ञरूपः प्रजापतिः प्रसिद्धो वा यज्ञः स बभूव विश्वात्मना व्याप्तः निर्वृत्तो वा अभूत्। स आ बभूव सर्वतः कारणात्मना अभवत्। [यद्वा] स निर्वृत्तो यज्ञः आवृत्य भवतु पुनःपुनर्भवतु। ॥ छान्दसो लिट् ॥। स प्र जज्ञे। ॥ जानातेर्जायतेर्वा रूपम् ॥। प्रज्ञातः प्रसिद्धो यज्ञः प्रकर्षेण जातः। फलोन्मुखो जात इत्यर्थः। उशब्दः अवधारणे। स एव पुनर्ववृधे अद्यापि जगदात्मना पुनःपुनर्वर्धते वर्धतां वा यज्ञः। ॥ तुजादित्वाद् अभ्यासस्य दीर्घः ॥। स देवानाम् इन्द्रादीनाम् अधिपतिः अधिको मुख्यः स्वामी बभूव। यज्ञो वा हेतुत्वाद् देवानाम् अधिकं पालयिताभूत्। स यज्ञः अस्मासु हविषा परिचरत्सु द्रविणम् धनम् अभिमतं फलम् आ दधातु स्थापयतु॥

1 S' adds an इति after °स्पदम् and before इत्युक्त°. 2 S' निवृत्तो.

अष्टमी ॥

यद् देवा देवान् हविषायजन्तामर्त्यान् मनसामर्त्येन।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ॥ ३ ॥

यत्। देवाः। देवान्। हविषा। अयजन्त। अमर्त्यान्। मनसा। अमर्त्येन। मदेम। तत्र। परमे। विऽओमन्। पश्येम। तत्। उतऽइतौ। सूर्यस्य॥ ३॥

देवाः कर्मणा देवत्वं प्राप्ताः यत् फलम्। उद्दिश्येति क्रियाध्याहारः। अमर्त्यान् अमरणधर्मणो देवान् इन्द्रादीन् अमर्त्येन अमर्त्यसंबन्धिना। देवविषयेणेत्यर्थः। अविनाशिना वा। भोगायतनेष्वागमापायिष्वपि मनसोवस्थानाद् नित्यत्वम्। तादृशेन चिरकालावस्थायिना मनसा हविषा चरुपुरोडाशादिना अयजन्त इष्टवन्तः इति स्वेषामेव परोक्षेणाभिधानम्। "विद्वान् यजेत" इति "विद्वान् याजयेत" इति वचनाद् अनुष्ठेयार्थप्रकाशकमन्त्रार्थयष्टव्यदेवताकर्तृज्ञानरूपं वैदुष्यं कर्मसु अपेक्षितम् तच्च पूर्वापरानुसंधानसाधनभूतेन मनसा विना न संभवतीति मनसेत्युक्तम्। "यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात् तां ध्यायेद् वषट्करिष्यन्" इति हि [ऐ० ब्रा० ३. ८] श्रुतिः। वषट्कारवचनम् उपलक्षणम्। तत्र तस्मिन् परमे उत्कृष्टे केवलपुण्यफलभोगस्थाने व्योमन् व्योमनि द्युलोके मदेम वयं यजमाना हृष्यास्म। ✕माद्यतेः "लिङ्याशिष्यङ्"-प्रत्ययः✕। अपि च सूर्यस्योदितौ। द्युलोके हि नित्योदितः सूर्यः। सूर्यप्रकाशे यावत्सूर्यप्रकाशं तत् फलं पश्येम। ✕पश्यतिरत्र आलोचनवाची✕। भोग्यत्वेन जानीमः। चिरकालं पुण्यफलम् अनुभवेमेत्यर्थः॥ एवं द्रव्ययज्ञस्वरूपतत्फलतद्भोगस्थानपरतया व्याख्यातः। ज्ञानयज्ञपरत्वेनापि अयं मन्त्रो व्याख्यायते। आत्मविषयविद्यया दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः विविदिषवः। यत्। ✕सप्तम्या लुक्✕। यस्मिन् ब्रह्मात्मौ देवान्। देवशब्देन देवनसाधनभूता इन्द्रियवृत्तयो विवक्ष्यन्ते। तासां मनसश्च विषयेषु सांतत्येन प्रवर्तनाद् अमर्त्यत्वाभिधानम्। अथवा तत्त्वविद्योदयपर्यन्तम् इ-

१ B °मर्त्येन. २ P देवाः.

1 S' यजे for यजेत.

न्द्रियवासनानां मनसश्चावस्थानाद् अविनश्वरत्वम् । ॥ मनसेति सहार्थे तृतीया ॥ । अक्षवृत्त्युपरमेपि मनसो व्यापारसद्भावात् पृथगुपादानम् । मनःसहिता अक्षवृत्तीः हविषा । ॥ भावपरोयं निर्देशः ॥ । हविष्टेन । संकल्प्येति शेषः । ॥ यद्वा हविष्टसंकल्पे मनसः करणत्वात् तृतीया ॥ । अमर्त्येन । मर्त्यशब्देन क्षयिष्णवो बाह्यविषया उच्यन्ते । विनाशिविषयानासक्तेनेत्यर्थः ।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तेर्निर्विषयं स्मृतम् ।

इति श्रुतेः । तादृशेन विषयानासङ्गिना मनसा इन्द्रियवृत्तीर्हविष्टेन संकल्प्य अयजन्त । तथाविधा वयं तत्र तस्मिन् परमे । तस्य सर्वजगदधिष्ठानत्वात् तस्य वा अधिष्ठानान्तराभावात् परमत्वम् । "स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि" इति [छा० उ० ७.२४.१] श्रुतेः स्वमहिमप्रतिष्ठे व्योमनि व्योमवद् असङ्गे सर्वगते चिदानन्दलक्षणे ब्रह्मणि विषये मदेम तुष्यास्म । न केवलं संतोषः अपि तु सूर्यस्य सुष्ठुप्रेरकस्य परमात्मनः उदितौ परिपूर्णप्रकाशसाक्षात्कारेण अविद्यास्तमये सति तत् प्रकाशात्मकं तत्त्वं पश्येम स्वात्मतया अनुभवेम । ॥ संप्रश्ने लिङ् ॥ ॥

नवमी ॥

यत् पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येनेजिरे ॥ ४ ॥

यत् । पुरुषेण । हविषा । यज्ञम् । देवाः । अतन्वत ।
अस्ति । नु । तस्मात् । ओजीयः । यत् । विऽहव्येन । ईजिरे ॥ ४ ॥

सर्वातिशायिसर्वात्मकहिरण्यगर्भरूपफलप्रापकात् पुरुषमेधाख्यमहाक्रतोरपि सर्वात्मकब्रह्मस्वरूपावाप्तिफलप्रापको ज्ञानयज्ञः श्रेयान् इत्यनया अभिधीयते । पुरुषमेधविधायकं वाक्यम् एवं वाजसनेयब्राह्मणे समाम्नाय-

---

१ B $\overset{h}{B}$ D R $\overset{m}{S}$ Cs अतन्वत. A corrects its old reading of अतन्व° to अतन्व°. We with K $\overset{m}{K}$ $\overset{2}{P}$ V. २ B $\overset{h}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ R $\overset{m}{S}$ P $\overset{2}{P}$ J V Cr अस्थि. A अस्ति changed to अस्थि. We with Cs and Sâyaṇa. ३ P J Cr अतन्वत.

ते। "पुरुषो ह वै नारायणोकामयत। अतितिष्ठेयं सर्वाणि भूतान्यहमेवेदं "सर्वं स्याम् इति। स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं यज्ञक्रतुम् अपश्यत्। तम् "आहरत्। तेनायजत। तेनेष्ट्वात्यतिष्ठत्। सर्वाणि भूतानीदं सर्वम् अभवत्" इति [श० ब्रा० १३. ५. ५. १]। देवाः दीव्यन्तीति देवा यजमानाः पुरुषेण अश्वरूपेण हविषा। "अथ स पुरुषोश्व आसीत्" इति वाजसनेयश्रुतेः। अत्र साक्षात् पुरुषस्य अनालम्भनात् पर्यग्निकरणानन्तरम् उत्सर्गविधानाद् अश्वमेधातिदिष्टोश्वः पशुः पुरुषशब्देन विवक्ष्यते। तेन हविषा यज्ञं पुरुषमेधाख्यम् अतन्वत विस्तारितवन्तः। [1]यदृत्तयोगाद् अनिघातः[1]। "ब्रह्मणे ब्राह्मणम् आलभते" [तै० ब्रा० ३. ४. १. १] इत्यादिना समाम्नाता ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रादिरूपा बहवः पुरुषपशवो विद्यन्ते इति यज्ञविस्तारोक्तिः। एवं पुरुषहविष्कयज्ञ इति यद् अस्ति तस्माद् ओजीयः अतिशयेन ओजस्वि सारवत् अस्ति नु विद्यते खलु। सामान्यनिर्देशेन यज्ञस्वरूपापेक्षया वा नपुंसकत्वम्। [2]ओजीय इति ओजस्विशब्दाद् ईयसुनि विनो लुकि रूपम[2]। ओजीयोस्तीति प्रतिज्ञातम् तद् दर्शयति। विहव्येन हव्यं होतव्यहविः। विगतहविष्केण ज्ञानयज्ञेन ईजिरे इष्टवन्तः स्वात्मानं परमात्माभेदेन साक्षात्कृतवन्त इति यत् तद् ओजीय इति। द्रव्ययज्ञज्ञानयज्ञयोरुभयोः सार्वात्म्यलक्षणफलसाम्येपि पुरुषमेधफलस्य कर्मजन्यत्वेन विनाशित्वं ज्ञानयज्ञफलं तु न तथेति तस्माद् ओजीय इत्युक्तम्। भगवतापि उक्तम्।

श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप। इति [भ० गी० ४. ३३]॥

दशमी॥

मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः॥ ५॥

मुग्धाः। देवाः। उत। शुना। अयजन्त। उत। गोः। अङ्गैः। पुरुऽधा। अयजन्त।

१ K पुरुषाय°. B पुरुधाय° changed from पुरुषाय°. २ P P J C[P] omit the visarga.

1 S' एवं for एतं. 2 S' अश्वमेधादातिदिष्टोश्वपशुः. 3 S' omits ज्ञान°.

यः । इमम् । यज्ञम् । मनसा । चिकेत । प्र । नः । वोचः । तम् । इह । इह । ब्रवः ॥ ५ ॥

एवं कर्मयज्ञात् ज्ञानयज्ञस्य उत्कर्षं श्रुत्वा कर्मयज्ञं निन्दन् अविनाशिफलकामस्तटस्थो ब्रूते । मुग्धाः कार्याकार्यविवेकरहिता देवा यजमानाः । उतशब्दः अप्यर्थे । शुनापि अयजन्त । यज्ञो हि पशुसाधनकः । तत्र अत्यन्तगर्हितस्यापि शुनः पशुत्वेन निर्देशात् कर्मयज्ञस्य निन्दा दर्शिता । अखाद्यानां परमावधिः श्वा । तथा । उतशब्दः अप्यर्थे । [गोः] गोरूपपशोः अङ्गैः अवयवैरपि । "हृदयस्याग्रेवद्यति" [तै० सं० ६.३.१०.४] इति अङ्गावदानश्रवणाद् अङ्गैरित्युक्तम् । अवध्यानां परमावधिर्गौः । पुरुधा बहुधा अयजन्त । एकदा करणे प्रमादाज्ञानादिकृतम् इति संभावना भवति । अतस्तन्निरासाय पुरुधेत्युक्तम् । सर्वदा शुनकगवादिरूपैः पशुभिर्यज्ञं कुर्वन्तीत्यर्थः । एवं पूर्वार्धेन कर्मयज्ञं निन्दित्वा उत्तरार्धेन ज्ञानयज्ञप्राप्तये तदभिज्ञं प्रार्थयते । यो विद्वान् इमं यज्ञम् यष्टव्यं परमात्मानं मनसा चिकेत जानाति स्म तं तथाविधं गुरुं नः अस्माकं प्र वोचः प्रकर्षेण ब्रूहि । तेन प्रदर्शितं गुरुं ब्रूते । इहेह इहैव इदानीमेव ब्रवः परमात्मस्वरूपं ब्रूहि ॥

[इति] सप्तमे काण्डे प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"अदितिर्द्यौरदितिः" [इति] द्वितीयं सूक्तम् । तत्र आद्याभिश्चतसृभिः सर्वफलकामः अदितिं यजते उपतिष्ठते वा । "अथर्वाणम्[७.२] अदितिर्द्यौः[७.६] दितेः पुत्राणाम्"[७.८] इति [कौ० ७.१०] सूत्रात् ॥

तथा आधाने पवमानेष्टौ आदित्यहविरनुमन्त्रणे "अदितिर्द्यौः" इति विनियुक्ता । आधानं प्रक्रम्य वैताने सूत्रितम् । "पवमानः पुनातु[६.१९.२] त्वेषस्ते[१८.४.५९] अग्नी रक्षांसि[८.३.२६] अदितिर्द्यौः" [७.६] इति [वै० २.२] ॥

"महीमू षु"[७.६.२] इति तृचेन नौघटादिभिरुदकतरणे स्वस्त्ययनकामो नावादिकम् अभिमन्त्र्य तेन तरेत् ॥

1 S' °वधिश्चातथागौः.

तथा नावादिभिर्दूरदेशगमने स्वस्त्ययनकामः अनेन तृचेन नावं संपात्य तरेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन नौमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य नाविकेभ्यो बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि। "महीमू ष्विति तरणान्यारोहयति। दूरान्नावं संपातवतीं[1] नौमणिं बध्नाति" इति [कौ० ७. ३] ॥

"महीमू षु" इति ऋचा विवाहे चतुर्थिकाकर्मणि खट्वां स्पर्शयेत्। "महीमू ष्विति तल्पम् आलम्भयति" इति [कौ० १०. ५] सूत्रात् ॥

तथा आवसथ्याधाने ऋव्याद्विसर्जनानन्तरं गृहसमीपे नदीरूपाणि कृत्वा उदकेन आपूर्य "महीमू षु" "सुत्रामाणम्" इत्याभ्यां नावम् आरोहयेत्। सूत्रितं हि। "प्राग्दक्षिणं सप्त नदीरूपाणि कारयित्वा उ-"दकेन पूरयित्वा आ रोहत सवितुर्नावम् एताम्[१२. २. ४८] सुत्रामा-"णम्[७. ७. १] महीमू षु[७. ६. २] इति सहिरण्यां सयवां नावम् "आरोहयति" इति [कौ० ९. ३] ॥

सोमयागे दीक्षायां "सुत्रामाणम्" इत्येनां कृष्णाजिनस्थो यजमानो जपेत्। "पुनन्तु मा[६. १९. १] इति पाव्यमानः सुत्रामाणम्[७. ७. १] इति कृष्णाजिनम् उपवेशितः" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. १] ॥

अग्निचयने "वाजस्य नु प्रसवे" इति वाजप्रसवीयहोमान् ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "वाजस्य नू प्रसव इति वाजप्रसवीयहोमान्" इति [वै० ५. २] वैतानसूत्रात् ॥

सर्वफलकामो "दितेः पुत्राणाम्" इति देवान् यजते उपतिष्ठते[2] वा। "अथर्वाणम् अदितिर्द्यौर्दितेः पुत्राणाम्" इति [कौ० ७. १०] हि कौशिकं सूत्रम् ॥

प्रवासे द्रव्यलाभार्थं "भद्रादधि" इति ऋचा आज्यसमित्पुरोडाशादीनाम् अन्यतमं जुहुयाद् ऋचं जपेद् वा ॥

तथा अश्वादियानेन गच्छन् अनया अश्वादिकं संपात्य अभिमन्त्र्य उदकेन संप्रोक्षयेद् मोचयेच्च ॥

---

1 S' संपातवती. 2 S' नदीं. 3 S' उत्तिष्ठते.

तथा विक्रेयं वस्त्रादिकम् अनया संपात्य अभिमन्त्र्य लाभकामः अभिमतं देशं नयेत् ॥

तथा लाभकामः अनया वस्त्रादिकम् अभिमन्त्र्य स्वीकुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "भद्रादधीति प्रवत्स्यन्नुपदधीत । जपति । यानं संप्रोक्ष्य विमोचयति । द्रव्यं संपातवद् उत्थापयति । निर्मृज्योपयच्छति" इति [कौ० ५. ६] ॥

तथा ग्रहयज्ञे "भद्रादधि" इत्यनया हविराज्यसमिदाधानोपस्थानानि बृहस्पतये कुर्यात् । तद् उक्तं शान्तिकल्पे । "स बुभ्यात्[४. १. ५] भद्रादधि श्रेयः प्रेहि[७. ९] बृहस्पतिर्नः[७. ५३] [इति] बृहस्पतये" इति [शा० क० १५] ॥

"प्रपथे पथाम्" इति चतुर्ऋचेन नष्टद्रव्यलाभार्थं नष्टद्रव्याकाङ्क्षिणां दक्षिणं पाणिम् उन्मृज्य संपात्य विमृज्य वा उत्थापयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन चतुर्ऋचेन एकविंशतिशर्करा अभिमन्त्र्य चतुष्पथे निधाय विकिरेत् ॥

सूत्रितं हि । "प्रपथ इति नष्टैषिणां प्रक्षालिताभ्यक्तपाणिपादानां दक्षिणं पाणिं निर्मृज्योत्थापयेत् । एवं संपातवतो विमृज्यैकविंशतिशर्करा-राश्चतुष्पथे निक्षिप्यावकिरति" इति [कौ० ७. ३] ॥

तथा चातुर्मास्ये वैश्वदेवपर्वणि "प्रपथे पथाम्" इत्यनया पौष्णं हविरनुमन्त्रयेत । "चातुर्मास्यानि प्रयुञ्जीत" इति प्रक्रम्य "प्रपथे पथाम्[७. १०] मरुतः पर्वतानाम्[५. २४. ६]" इति [कौ० २. ४] वैताने सूत्रितम् ॥

तत्र प्रथमा ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १ ॥

अदितिः । द्यौः । अदितिः । अन्तरिक्षम् । अदितिः । माता । सः । पिता । सः । पुत्रः ।
विश्वे । देवाः । अदितिः । पञ्च । जनाः । अदितिः । जातम् । अदितिः । जनित्वम् ॥ १ ॥

1 S' बुभा° for बुभ्या°.

अदितिः अदीना अखण्डनीया वा पृथिवी देवमाता वा। सैव द्यौः द्योतनशीलो नाकः। सैव अन्तरिक्षम् अन्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्ये ईक्ष्यमाणं व्योम। सैव माता निर्मात्री जगतो जननी। सैव पिता उत्पादकस्तातश्च। स पुत्रः मातापित्रोर्जातः पुत्रोपि सैव। विश्वे देवाः सर्वेपि देवा अदितिरेव। पञ्च जनाः निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः। यद्वा गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि। तद् उक्तं यास्केन। गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके। चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः इति [नि० ३. ८]। ऐतरेयब्राह्मणे तु एवम् आम्नातम्। "सर्वेषां वा एतत् पञ्चजनानाम् उक्थं देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितॄणां च" इति [ऐ० ब्रा० ३. ३१]। तत्र गन्धर्वाप्सरसाम् ऐक्यात् पञ्चजनत्वम्। एवंविधाः पञ्च जना अपि अदितिरेव। जातम् जननं प्रजानाम् उत्पत्तिः सापि अदितिरेव। जनित्वम् जन्माधिकरणम्। यद्वा जातम् उत्पन्नं जनित्वम् उत्पत्स्यमानं च यद् अस्ति तदपि अदितिरेव। एवं सकलजगदात्मना अदितिः स्तूयते। उक्तं च यास्केन। इत्यदितेर्विभूतिम् आचष्टे इति [नि० ४. २३]। ॐ अदितिः। दो अवखण्डने। अस्मात् कर्मणि क्तिनि "द्यतिस्यतिमास्थाम्०" इति इत्त्वम्। यास्कपक्षे तु दीङ् क्षये इत्यस्मात् क्तिनि व्यत्ययेन ह्रस्वत्वम्। नञ्समासे अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। स पितेति स पुत्र इति "निर्दिश्यमानप्रति-" "निर्दिश्यमानयोरेकताम् आपादयन्ति सर्वनामानि पर्यायेण तल्लिङ्गताम् "उपाददते" इत्युद्देश्यलिङ्गतया पुंलिङ्गत्वम्। जनित्वम्। जनेरौणादिक इत्वन् प्रत्ययः ॐ ॥

द्वितीया ॥

महीमू षु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हवामहे।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ॥ २ ॥

महीम्। ऊं इति। सु। मातरम्। सुऽव्रतानाम्। ऋतस्य। पत्नीम्। अवसे। हवामहे।

1 S° °स्तावतश्च.

तुविक्षत्राम । अजरन्तीम । उरूचीम । सुशर्माणम । अदितिम । सुप्रणीतिम ॥ २ ॥

महीम महतीं मंहनीयां वा सुव्रतानाम । व्रतम इति कर्मनाम । शोभनकर्मणां पुरुषाणां मातरम मातृस्थानीयाम ऋतस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा पत्नीम पालयित्रीं तुविक्षत्राम बहुबलां बहुधनां वा । [त्रिचक्रादित्वाद् उत्तरपदान्तोदात्तत्वम] । अजरन्तीम अविनश्वरीम उरूचीम उरून् महतः अञ्चतीम उरु महद् अतिदूरं वा गच्छन्तीं बहुप्रकारगतिं वा । ["चौ" इति पूर्वपदस्य दीर्घत्वम] । सुशर्माणम सुसुखाम । ["सोर्मनसी अलोमोषसी" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम] । सुप्रणीतिम सुखेन कर्मणां प्रणेत्रीं सुष्ठु प्रणीयमानां वा अदितिम अखण्डनीयां देवमातरं नावं वा अवसे रक्षणाय सु सुष्ठु हवामहे आह्वयामः । [व्यत्ययेन शः] । उ इति पदपूरणे ॥

तृतीया ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसो अस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १ ॥

सुऽत्रामाणम । पृथिवीम । द्याम । अनेहसम । सुऽशर्माणम । अदितिम । सुऽप्रणीतिम ।
दैवीम । नावम । सुऽअरित्राम । अनागसः । अस्रवन्तीम । आ । रुहेम । स्वस्तये ॥ १ ॥

सुत्रामाणम सुष्ठु त्रायमाणां पृथिवीम् विस्तीर्णाम । [प्रथेः षिवन् संप्रसारणं च [उ० १. १४८] इति प्रत्ययसंप्रसारणे । षित्वात् ङीष्] । द्याम द्योतमानाम् अभिगन्तव्यां वा अनेहसम अपापाम । सुशर्माणम इति पादः पूर्वस्याम ऋचि व्याख्यातः । स्वरित्राम शोभनारित्राम । अरित्रम उदकक्षेपणसाधनभूतो दण्डः । अस्रवन्तीम अच्छिद्रां दैवीम देवानाम इयम । ["देवाद् यञञौ" इति अञ् प्रत्ययः] । देवमातरं देवसंबन्धिनीं वा नावम् नौसदृशीं प्र-

सिद्धां वा नावम् अनागसः अनपराधा वयं स्वस्तये क्षेमाय आ रुहेम आरूढा भूयास्म। ॥ "लिङ्याशिष्यङ्" । "अन्येषामपि दृश्यते" इति सांहितिको दीर्घः ॥ अस्य मन्त्रस्य दीक्षायां कृष्णाजिनादिरूढेन यजमानेन जप्यत्वाद् नौशब्देन कृष्णाजिनं विवक्ष्यते। तथा च ऐतरेयब्राह्मणे। "कृष्णाजिनं वै सुतर्मा नौः" इत्याम्नातम् [ऐ० ब्रा० १. १३]। सर्वाणि विशेषणानि पूर्ववद् योज्यानि ॥

चतुर्थी ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।
यस्या उपस्थ उर्वन्तरिक्षं सा नः शर्म त्रिवरूथं नि यच्छात् ॥ २ ॥

वाजस्य। नु। प्रऽसवे। मातरम्। महीम्। अदितिम्। नाम। वचसा। करामहे।

यस्याः। उपऽस्थे*। उरु। अन्तरिक्षम्। सा। नः। शर्म। त्रिऽवरूथम्। नि। यच्छात् ॥ २ ॥

वाजस्य अन्नस्य प्रसवे उत्पत्तौ उत्पत्त्यर्थम्। ॥ "थाथ०" इत्यादिस्वरेण अन्तोदात्तः ॥ । मातरम् अन्नस्य निर्मात्रीं महीम् महतीम् अदितिं नाम। अदितिः अदीना अखण्डनीया वा। एवंनामधेयाम् एवंस्वभावां नावं वा नु क्षिप्रं वचसा स्तुत्या करामहे कुर्महे। अदितिं नावं वा अन्नप्रसवार्थं स्तुम इत्यर्थः। ॥ करोतेर्व्यत्ययेन शप् ॥। यस्या अदित्या उपस्थे उत्सङ्गे समीपे उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षम् आकाशं वर्तते सा अदितिः नः अस्माकं त्रिवरूथम् त्रिभूमिकं त्रिकक्ष्यं शर्म गृहं नि यच्छात् नियच्छतु प्रयच्छतु। ॥ यमेर्लेटि आडागमः। "इषुगमियमां छः" इति छादेशः ॥ ॥

पञ्चमी ॥

दितेः पुत्राणामदितेरकारिषमवं देवानां बृहतामनर्मणाम्।

---

१ KPPJCr उपऽस्थः. We with Sâyaṇa. २ AR °कार्ष°. B uncertain. We with BDKKmSPPmJVCr.

तेषा हि धाम गभिषक् समुद्रियं नैनान् नमसा परो अस्ति कश्चन ॥१॥

दितेः । पुत्राणाम् । अदितेः । अकारिषम् । अव । देवानाम् । बृहताम् । अनर्मणाम् ।

तेषाम् । हि । धाम । गभिऽसक् । समुद्रियम् । न । एनान् । नमसा । परः । अस्ति । कः । चन ॥ १ ॥

कश्यपस्य द्वे भार्ये अदितिर्दितिश्च । तत्र अदितेरुत्पन्ना देवाः । दितेस्तु दैत्या दानवाः । तथा सति देवयागे अस्या ऋचो विनियोगाद् देवप्रशंसापरत्वेन व्याख्यायते । दितेः पुत्राणाम् दैत्यानां संबन्धि । तेषां हि धामेति तृतीयपादे दैत्यस्थानस्य उक्तत्वाद् अत्र षष्ठ्या तत्संबन्धि स्थानं विवक्ष्यते । दैत्यानां स्थानम् अव । ‘उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः’ । अवकृष्य दैत्येभ्यः अपहृत्य अदितेः । जन्ये जनकशब्दः । पुत्राणाम् इति वा अनुषङ्गः । अदितेः पुत्राणां देवानाम् । अर्थायेति शेषः । दितेः पुत्राणां स्थानम् अवाकारिषम् अवकिरामि अवक्षिपामि । यथा तद् धाम दैत्यानां निवासाय न भवेत् तथा विप्रकीर्णं करोमीत्यर्थः । ‘कॄ विक्षेपे । लुङि “आर्धधातुकस्येड्वलादेः” इति इडागमे वृद्धौ रूपम्’ । देवा विशेष्यन्ते । बृहताम् गुणैर्महताम् अनर्मणाम् अर्म हतस्थानम् तद्रहितानां शत्रुभिरनभिभाव्यानाम् । हिर्हेतौ । हि यस्मात् समुद्रियं समुद्रे भवम् । “समुद्राभ्राद् घः” इति घः’ । समुद्रम् अन्तरिक्षं प्रसिद्धो वा समुद्रः । तत्र दैत्या निवसन्तीति हि प्रसिद्धिः । तादृशं समुद्रभवं तेषां दैत्यानां धाम स्थानं गभिषक् । गम्भीरम् इत्यर्थः । परैर्दुष्प्रवेशम् । दुर्जयम् इति यावत् । अतः अवकृष्य किरामि[1] अवक्षिपामि तेषामिति[2] संबन्धः । किमिति दैत्यतिरस्कारः तद् आह । एनान् । देवानां बृहताम् अनर्मणाम् इति गुणाधिक्यस्य उक्तत्वात् ते देवा अत्र अन्वादिश्यन्ते । एनान् देवान् परः । ‘परशब्दयोगे पञ्चम्या भवितव्यम् । अत्र छान्दसो विभक्तिव्यत्ययः’ । एतेभ्यो देवेभ्यः परः अन्यः कश्चन । चनेति नि-

1 S' करोमि. 2 तेति for तेषामिति.

पातसमुदायः अप्यर्थे। कश्चिदपि नमसा नमस्कारेण हविर्लक्षणेन अन्नेन वा न संभाव्योस्ति। अतो देवानामेव यष्टव्यत्वेन प्रशस्तत्वात् तदर्थेनानेन यागेन अस्माभिरभिलषितसिद्धिराशास्यते ॥

षष्ठी ॥

भद्रादधि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु।
अथेममस्या वर आ पृथिव्या आरेशत्रुं कृणुहि सर्ववीरम् ॥ १ ॥

भद्रात्। अधि। श्रेयः। प्र। इहि। बृहस्पतिः। पुरःऽएता। ते। अस्तु। अथ। इमम्। अस्याः। वरे। आ। पृथिव्याः। आरेऽशत्रुम्। कृणुहि। सर्वेऽवीरम् ॥ १ ॥

हे वस्त्रधनादिलाभकाम पुरुष भद्रात् मङ्गलात् संपदः। ※अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी※। श्रेयः संपदं प्रेहि प्रगच्छ प्रकर्षेण गच्छ। उत्तरोत्तरं संपदं प्राप्नुहीत्यर्थः। यद्वा भद्रात् भन्दनीयाद् अस्मात् स्थानात् श्रेयः अतिशयितलाभहेतुं स्थानं प्रेहि। देशान्तरं गच्छतः पुरुषस्य बृहस्पतिसाहायकं दर्शयति। ते लाभार्थं गच्छतस्तव बृहस्पतिः बृहतां देवानां पतिः हिताचरणेन पालयिता एतन्नामा देवः पुरएता अस्तु पुरतो गन्ता अग्रगामी भवतु। ※प्राप्तकाले लोट्। "पुरोव्ययम" इति गतित्वाद् "गतिकारकोपपदात् कृत्" इति उत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम※॥ उत्तरार्धे बृहस्पतिः संबोध्यते। हे बृहस्पते त्वम् अथ पुरतो गमनानन्तरम् इमं लाभकामं पुरुषम् अस्याः पृथिव्या वरे उत्कृष्टे लाभस्थाने आ। ※उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः※। आस्थापय। यस्मिन् प्रदेशे धनादिलाभविशेषो भवति तत्र इमं पुरुषं संयोजयेत्यर्थः। अपि च सर्ववीरम् सर्वे वीराः पुत्रभृत्यादयः [यस्य] तादृशं शत्रुम् आरे दूरे कृणुहि कुरु। लाभस्थाने लाभकामस्य पुरुषस्य ये परिपन्थिनो जनाः तान् दूरम् अपसारयेत्यर्थः। ※कृवि हिंसाकरणयोश्च। "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः। "उतश्च प्रत्ययाच्छन्दसि वा वचनम्" इति हेर्लुगभावः※॥

1 S' °साहाय्यकं.

सप्तमी ॥

प्रऽपथे पथामऽजनिष्ट पूषा प्रऽपथे दिवः प्रऽपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ १ ॥

प्रऽपथे । पथाम् । अजनिष्ट । पूषा । प्रऽपथे । दिवः । प्रऽपथे । पृथिव्याः ।
उभे इति । अभि । प्रियतमे इति प्रियऽतमे । सधस्थे इति सधऽस्थे । आ ।
च । परा । च । चरति । प्रऽजानन् ॥ १ ॥

पूषा पोषको मार्गरक्षको देवः पथाम् मार्गाणां प्रपथे प्रक्रान्तः पन्थाः प्रपथः । मार्गमुखे अजनिष्ट प्रादुर्भवति रक्षणार्थम् । तथा पूषैव दिवः द्युलोकस्य प्रपथे प्रवेशद्वारे पृथिव्याः प्रपथे प्रवेशद्वारे । अजनिष्ट इति संबन्धः । सोयं पूषा प्रियतमे अतिशयेन प्रीतिमत्यौ सधस्थे परस्परं सहैव अवस्थिते । ‘“सध मादस्थयोश्छन्दसि” इति सहस्य सधादेशः’ । तादृश्यौ उभे द्यावापृथिव्यौ अभिलक्ष्य प्रजानन् यजमानैः कृतं कर्म तत्फलं च प्रकर्षेण विद्वान् आ चरति च परा चरति च दिवः पृथिवीम् आगच्छति पृथिव्या दिवं परागच्छति । सर्वप्राणिकृतस्य कर्मणः साक्षी भूत्वा उभयोरपि लोकयोर्गमनागमने करोतीत्यर्थः ॥

अष्टमी ॥

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥ २ ॥

पूषा । इमाः । आशाः । अनु । वेद । सर्वाः । सः । अस्मान् । अभयऽतमेन । नेषत् ।
स्वस्तिऽदाः । आघृणिः । सर्वऽवीरः । अप्रऽयुच्छन् । पुरः । एतु । प्रऽजानन् ॥ २ ॥

पूषा पोषको देवः इमाः सर्वा आशाः दिशः अनु वेद अनुक्रमेण जानाति । स पूषा देवः अस्मान् अभयतमेन अत्यन्तभयरहितेन मार्गेण

नेषत् नयतु । ✕ नयतेर्लेटि "सिब्बहुलम्०" इति सिप् । अडागमः ✕ । सोयं पूषा स्वस्तिदाः क्षेमस्य कल्याणस्य वा दाता आघृणिः आगतदीप्तिर्व्याप्तदीप्तिर्वा सर्ववीरः सर्वैर्वीरैः पुत्रादिभिर्युक्तः अप्रयुच्छन् । ✕ युछ प्रमादे ✕ । प्रमादम् अकुर्वन् प्रजानन् अस्मदभिप्रायं मार्गं वा प्रकर्षेण जानन् पुर एतु पुरतो गच्छतु । अस्मदभिलषितसाधनायेति शेषः ॥

नवमी ॥

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ३ ॥

पूषन् । तव । व्रते । वयम् । न । रिष्येम । कदा । चन ।
स्तोतारः । ते । इह । स्मसि ॥ ३ ॥

हे पूषन् पोषक देव तव व्रते कर्मणि यागरूपे वर्तमाना वयं कदा चन कदाचिदपि न रिष्येम न विनश्येम । पुत्रमित्रादिभिर्धनेन च वियुक्ता मा भूमेत्यर्थः । ✕ रुष रिष हिंसायाम् । दैवादिकः ✕ ॥ किं च इह अस्मिन् कर्मणि इदानीं वा ते तव स्तोतारः स्तुतिं कुर्वाणाः स्मसि भवामः ॥

दशमी ॥

परि पूषा परस्तात्[1] हस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु सं नष्टेन गमेमहि ॥ ४ ॥

परि । पूषा । परस्तात् । हस्तम् । दधातु । दक्षिणम् ।
पुनः । नः । नष्टम् । आ । अजतु । सम् । नष्टेन । गमेमहि ॥ ४ ॥

पूषा पोषको देवः परस्तात् परतः अतिदूराद् देशादपि । धनम् आदातुम् इति शेषः । दक्षिणं हस्तं परि दधातु प्रसारयतु । यत्रयत्र अस्माकं दित्सितं धनम् अस्ति तद् धनम् अस्माकं दातुं तत्रतत्र देशे

१ KKV ना. We with ABBDRSC. २ BDKKSP[2]PVC. Cp पुर°. W with ARJ.

हस्तं प्रसारयतु इत्यर्थः । नः अस्मान् नष्टं धनं पुनः आजतु पुनरागच्छतु । ॥अज गतिक्षेपणयोः॥ । न केवलम् आगमनं किं तु नष्टेन पुनरागतेन धनेन सं गमेमहि संगच्छेमहि । धनेन संगता भवेमेत्यर्थः । ॥संपूर्वाद् गमेरात्मनेपदिनो "लिङ्याशिष्यङ्" इति अङ् प्रत्ययः॥ ॥

[इति] सप्तमे काण्डे प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"यस्ते स्तनः" इति तृतीयं सूक्तम् । तत्र जम्भगृहीतबालकभैषज्यार्थं "यस्ते स्तनः" इत्यनया स्तनम् अभिमन्त्र्य बालं पाययेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि प्रियंगुतण्डुलानाम् उपरि क्षीरं दुग्ध्वा अनया ऋचा अभिमन्त्र्य व्याधितं पाययेत् ॥

सूत्रितं हि । "यस्ते स्तन इति जम्भगृहीताय स्तनं प्रयच्छति । प्रियंगुतण्डुलान् अभ्यवदुग्धान् पाययति" इति [कौ० ४. ८] ॥

अशनिनिवारणकर्मणि "यस्ते पृथु स्तनयित्नुः" इति ऋचा अशनिम् उपतिष्ठेत । "यस्ते पृथु स्तनयित्नुरित्यशनिम्" इति [कौ० ५. २.] सूत्रात् ॥

तथा ग्रहयज्ञे अनया हविराज्यहोमसमिदाधानोपस्थानानि केतवे कुर्यात् । तद् उक्तं शान्तिकल्पे । "यस्ते पृथु स्तनयित्नुः[७. १२] देवो देवान्"[१८. १. ३०] इत्यादि "केतुं कृण्वन्नकेतवे [ऋ० १. ६. ३] इति केतवे" [शा० क० १५] इत्यन्तम् ॥

तथा उपाकर्मणि अनया आज्यं जुहुयात् ॥

"सभा च मा" इति पञ्चर्चेन सभाजयकर्मणि क्षीरौदनं पुरोडाशं रसान् वा संपात्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि पञ्चर्चं जपन् सभास्तम्भं गृह्णीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन पञ्चर्चेन सभाम् उपतिष्ठते ॥

"सभा च मेति भक्षयति । स्थूणे गृह्णाति उपतिष्ठते" इति [कौ० ५. २] कौशिकसूत्रात् ॥

कृत्याप्रतिहरणकर्मणि कृत्यानिःसारणानन्तरं स्वगृहम् आगत्य "यथा

"सूर्यः" इत्यृचं जपन् प्रदक्षिणं गच्छेत्। "यथा सूर्य इत्यावृत्याव्रजति" इति सूत्रात् [कौ० ५. ३] ॥

अभिचारकर्मणि "यथा सूर्यो नक्षत्राणाम्" इति द्व्यृचं शत्रुं दृष्ट्वा जपेत् ॥

तत्रैव कर्मणि "यावन्तो मा सपत्नानाम्" इति जपित्वा शत्रून् निरीक्षते ॥

तथा नैर्ऋतकर्मणि निर्ऋतिप्रतिकृतिविसर्जनानन्तरं "यथा सूर्यः" इति जपन् पुनः स्वगृहम् आगच्छेत्। तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे। "उपानहावुपमुच्य यथा सूर्य इत्यावृत्याव्रजति" इति [न० क० १५] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ १ ॥

यः। ते। स्तनः। शशयुः। यः। मयःऽभूः। यः। सुम्नऽयुः। सुऽहवः। यः। सुऽदत्रः।

येन। विश्वा। पुष्यसि। वार्याणि। सरस्वति। तम्। इह। धातवे। कः ॥ १ ॥

हे सरस्वति वर्णपदवाक्यादिना सरणवति वाग्देवते ते तव यः स्तनः शिंशयुः शिशोः पोषं कुर्वन् भवति। ※ "प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे बहुलम् इष्ठवच्च" इति शिशुशब्दात् पुष्णातिधात्वर्थे णिच् प्रत्ययः। इष्ठवद्भावात् शिशोष्टिलोपः। ण्यन्ताद् औणादिक उप्रत्ययः। णिलोपाभावश्छान्दसः। ण्यन्तत्वादेव अनवग्रहः※। शेतेर्वा। शिंशयुः निगूढः। अनुपासकानाम् अप्रकाश इत्यर्थः। "यस्ते स्तनो गुहायां निहितः" इति वाजसनेयश्रुतेः। यश्च स्तनो मयोभूः। मय इति सुखनाम। सुखस्य भावयिता। यश्च सुम्नयुः सुम्नं सुखं परेषाम् इच्छतीति सुम्नयुः। ※ "छन्दसि परेच्छायाम्" इति क्यच्※। सामान्यविशेषविवक्षया मयोभूः सुम्नयुरिति विशेषणद्वयम्। सुहवः शोभनाह्वानः सर्वैराप्यायनार्थं सम्यग् आहूयमानः। काम्यमान इत्यर्थः। यश्च सुदत्रः

1 So S'. The *Nakshatrakalpa*: °वमु°. 2 S' सवराप्या° for सर्वैराप्या°.

कल्याणदानः सुधनो वा । येन च स्तनेन विश्वा विश्वानि वार्याणि वरणीयानि धनानि पुष्यसि पोषयसि । स्तोतृभ्य इति शेषः । तं तादृशगुणोपेतं स्तनम् इह अस्मिन् जम्भगृहीते बालके धातवे धातुं पातुं योग्यं कः कुरु । ✕धेट् पाने । तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः । करिति । करोतेश्छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुकि गुणे "हल्ङ्या०" इत्यादिना सिपो लोपे "०अमाङ्योगेपि" इति अडभावे रूपम् ✕ ॥

द्वितीया ॥

यस्ते पृथु स्तनयित्नुर्यं ऋष्वो दैवः केतुर्विश्वमाभूषतीदम् ।
मा नो वधीर्विद्युता देव सस्यं मोत वधी रश्मिभिः सूर्यस्य ॥ १ ॥

यः । ते । पृथुः । स्तनयित्नुः । यः । ऋष्वः । दैवः । केतुः । विश्वम् । आऽभूषति । इदम् ।
मा । नः । वधीः । विऽद्युता । देव । सस्यम । मा । उत । वधीः । रश्मिऽभिः । सूर्यस्य ॥ १ ॥

हे देव द्योतनशील पर्जन्य ते तव स्वभूतः पृथुः विस्तीर्णो महान् यः स्तनयित्नुः गर्जनरूपशब्दं कुर्वन् अशनिः यश्च रुंष्वः बाधकः । ✕रुष हिंसायाम् । औणादिकः क्वन् प्रत्ययः ✕ । दैवः देवस्य पर्जन्यस्य संबन्धी देवैर्निर्मितो वा । ✕"देवाद् यञञौ" इति अञ् प्रत्ययः ✕ । केतुः अनर्थज्ञापकोशनिः केतुरूपो वा ग्रहः इदं परिदृश्यमानं विश्वम् आभूषति व्याप्नोति । बाधितुम् इति शेषः । हे देव पर्जन्य विद्युता तादृश्या अशन्या नः अस्माकं सस्यम् शाल्यादिकं मा वधीः मा बाधिष्ठाः । ✕हन्तेर्लुङि वधादेशः ✕ । उत अपि च सूर्यस्य सवितुः रश्मिभिः संतापकरैः किरणैः अस्मदीयं सस्यं मा वधीः मा शोषय । अयम् अर्थः । क्षेत्रेषु उप्ताः शाल्यादयः अतिवृष्ट्यनावृष्टिभ्यां बाध्यन्ते । सस्यविनाशेन तदुपजीविन्यः प्रजा विनश्यन्ति । अतोत्र तत्परिहारः प्रार्थ्यत इति ॥

---

१ A C₂ °यो ऋष्वो. K K̃ V °यो रिष्वो. We with B B̃ D R S̃.

तृतीया ॥

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥ १ ॥

सभा। च। मा। समऽइतिः। च। अवताम्। प्रजाऽपतेः। दुहितरौ। संविदाने इति समऽविदाने।
येन। समऽगच्छै। उप। मा। सः। शिक्षात्। चारु। वदानि। पितरः। समऽगतेषु ॥ १ ॥

सभा विदुषां समाजः। समितिः संयन्ति संगच्छन्ते युद्धाय अत्रेति समितिः संग्रामः। सांग्रामीणजनसभेत्यर्थः। यद्वा संग्रामनामानि यज्ञनामानि भवन्तीति यास्केनोक्तत्वात् समितिशब्देन यज्ञ उच्यते। परस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ। ते उभे अपि मा मां वादिनम् अवताम् रक्षताम्। कीदृश्यौ। प्रजापतेः सर्वजगत्स्रष्टुर्दुहितरौ पुत्र्यौ।

चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत् त्रैविद्यमेव वा।
सा ब्रूते यं स धर्मः स्यात् [या० स्मृ० १. ९]

इति "यद् आर्याः प्रशंसन्ति स धर्मः" इति [च] स्मृतेर्विद्वत्संघस्य सभात्वात् तदुक्तेश्च सर्वशास्त्रनिर्णीतधर्मरूपत्वात् प्रजापतिपुत्रीत्वव्यपदेशः। ते च सभे संविदाने अस्मद्रक्षणविषयम् ऐकमत्यं प्राप्ते। विदेः संपूर्वात् "समो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम्। किं च येन वादिना संगच्छै वक्तुं संगतो भवानि। पूर्ववद् आत्मनेपदिनो गमेर्लोटि रूपम्। स विद्वान् मा मां संगतम् उप शिक्षात् उपेत्य शिक्षयतु। समीचीनं वादयत्वित्यर्थः। शिक्ष विद्योपादाने। ण्यन्तात् लेटि आडागमः। यद्वा शिक्षात् मां वक्तुं शक्तं समर्थम् इच्छतु। शकेः सन्नन्तात् पञ्चमलकारे रूपम्। अयम् अर्थः। येन सह अहं विवदे स स्वयं मदुक्तवचनविघटनपटूनि वाक्यानि अभाषमाणः प्रत्युत मामेव स्ववचनतिरस्कारकवाक्यवादिनं करोत्विति।

१ B K °चारु.

अपि च हे पितरः पालकाः मदुक्तं वाक्यं साधु साध्विति अनुमोदमानाः पितृभूता वा हे सभासदो जनाः संगतेषु मया सह वक्तुं मिलितेषु वादिषु चारु न्यायोपेतं सदुत्तरं वदामि । यथा सम्यग् वदामि तथा अनुगृह्णीतेत्यर्थः ॥

चतुर्थी ॥

विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचसः ॥ २ ॥

विद्म । ते । सभे । नाम । नरिष्टा । नाम । वै । असि ।
ये । ते । के । च । सभाऽसदः । ते । मे । सन्तु । सऽवाचसः ॥ २ ॥

हे सभे ते तव नाम नामधेयं विद्म जानीमः । "विदो लटो वा" इति मसो मादेशः । तन्नाम दर्शयति । हे सभे नाम । नाम्नेति यावत् । नरिष्टा । रिषिणा क्तान्तेन नसमासः । अहिंसिता परैरनभिभाव्या । एतन्नामिका असि वै भवसि खलु । एकस्य वचनम् अन्यैराद्रियते तिरस्क्रियतेपि । बहवः संभूय यद्येकं वाक्यं वदेयुस्तद्धि न परैरतिलङ्घ्यम् अतः अनतिलङ्घ्यवाक्यत्वाद् नरिष्टेति नाम सभाया युज्यते । अतस्ते तव संबन्धिनः ये के च सभासदः सभायां सीदन्तो विद्वांसस्ते सर्वे मे मम सवाचसः समानवाक्याः [सन्तु] भवन्तु । न हि सभा सर्वा संभूय एकं प्रति ब्रूते अपि तु तत्रत्याः कतिपये । तेपि मद्विषये अनुकूलवाक्या भवन्तु इति प्रार्थ्यते ॥

पञ्चमी ॥

एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे ।
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ॥ ३ ॥

एषाम् । अहम् । समऽआसीनानाम् । वर्चः । विऽज्ञानम् । आ । ददे ।
अस्याः । सर्वस्याः । समऽसदः । माम् । इन्द्र । भगिनम् । कृणु ॥ ३ ॥

समासीनानाम् 'सभायाम् अवतिष्ठमानानाम् एषाम् पुरोवर्तिनां वा-

दिनां वर्चः तेजो वैदुष्यजनितप्रभावविशेषम् विज्ञानम् वेदशास्त्रार्थविषयं ज्ञानं च। विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोरिति तद्विदः। तद् अहम् आ ददे स्वीकरोमि। अपहरामीत्यर्थः। ददातेः "आङो दोनास्यविहरणे" इति आत्मनेपदम्। किं बहुना। हे इन्द्र। इन्द्रस्यैव वागनुशासनकर्तृत्वात् सभाजयकर्मणि तस्यैव प्रार्थनम्। तथा च तैत्तिरीयके। "ते देवा इन्द्रम् अब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुरु" इति प्रक्रम्य आम्नातम्। "ताम् इन्द्रो मध्यतोवक्रम्य व्याकरोत् तस्माद् इयं व्याकृता वाग् उद्यते" इति [तै०सं०६.४.७.३]। तादृशेन्द्र अस्याः पुरः स्थितायाः सर्वस्याः संसदः सभाया भगिनम्। भगो भाग्यं वैदुष्यलक्षणं जयलक्षणं वा। तद्वन्तं [मां] कृणु कुरु। सर्वामपि सभां मदेकवाक्यश्रवणपरां कुर्वित्यर्थः। अथवा भगो भागः। तद्वन्तं कुरु। सर्वस्याः सभाया यावती वैदुष्यकृता संभावना तावद्भागभाजं कुर्विति इन्द्रः प्रार्थ्यते॥

षष्ठी॥

यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा।
तद् व आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मनः॥ ४॥

यत्। वः। मनः। पराऽगतम्। यत्। बद्धम्। इह। वा। इह। वा। तत्। वः। आ। वर्तयामसि। मयि। वः। रमताम्। मनः॥ ४॥

हे सभासदः वः युष्माकं यन्मनः मानसं परागतम् अस्मत्तः परागत्य अन्यत्र गतम्। अस्मदनभिमुखम् इत्यर्थः। यच्च मनः इह वा अस्मिन् वा विषये बद्धं संसक्तम्। मनसो विषयानासङ्गेन अनवस्थानात् तत्संबन्धार्हान् सर्वान् पदार्थान् अभिनयेन दर्शयति। इह वा इह वेति अस्मद्व्यतिरिक्तसर्वविषयेषु संसक्तं वर्तते। तत् तादृशं वः युष्माकं मनः आ वर्तयामसि अस्मदभिमुखं कुर्मः। आवर्तितं च वो मनः मयि रमताम् मदनुकूलार्थचिन्तापरं भवत्वित्यर्थः॥

सप्तमी॥

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे।

एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आ ददे ॥ १ ॥

यथा । सूर्यः । नक्षत्राणाम् । उत्ऽयन् । तेजांसि । आऽददे ।
एव । स्त्रीणाम् । च । पुंसाम् । च । द्विषताम् । वर्चः । आ । द-
दे ॥ १ ॥

उद्यन् उदयं प्राप्नुवन् सूर्यः नक्षत्राणाम् तारकाणां तेजांसि दीप्तिं यथा आददे आदत्ते निस्तेजस्कानि करोति । ✕छान्दसो लिट्✕ । एव एवम् । ✕अन्त्यलोपश्छान्दसः✕ । स्त्रीणां पुंसां च द्विषताम् स्त्रीणां द्विषतीनां पुरुषाणां द्विषतां च । ✕"पुमान् स्त्रिया" इति पुंसो द्विषत एकशेषः✕ । वर्चः तेजः पराभिभवनसामर्थ्यम् । आ ददे स्वीकरोमि अपहरामि । ✕ददातेर्वर्तमाने लटि उत्तमैकवचने रूपम्✕ ॥

अष्टमी ॥

यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।
उद्यन्त्सूर्य इव सुप्तानां द्विषतां वर्च आ ददे ॥ २ ॥

यावन्तः । मा । सऽपत्नानाम् । आऽयन्तम् । प्रतिऽपश्यथ ।
उत्ऽयन् । सूर्यःऽइव । सुप्तानाम् । द्विषताम् । वर्चः । आ । ददे ॥ २ ॥

सपत्नानाम् शत्रूणां मध्ये यावन्तः यत्परिमाणाः शत्रवो यूयम् आयन्तम् युद्धाय युष्मान् अभिगच्छन्तं मा मां प्रतिपश्यत प्रतिकूलं निरीक्षध्वम् । ✕अतिसर्गे लोट्✕ । द्विषताम् तेषां प्रतिकूलं पश्यतां शत्रूणां युष्माकं वर्चः पराक्रमरूपं तेजः आ ददे अपहरामि । तत्र दृष्टान्तः । उद्यन् उदयं गच्छन् [सूर्य इव] सूर्यो यथा सुप्तानाम् उदयकाले स्वपतां जनानां वर्चः अपहरति तद्वत् । सूर्यस्योदये अस्तमये वा स्वपतां पुरुषाणां वर्चसः सूर्येण अपहृतत्वात् तत्समाधानाय आपस्तम्बेन प्रायश्चित्तरूपाणि कर्माणि विहितानि । "स्वपन्नभिनिर्मुक्तोनाश्नन् "वाग्यतो रात्रिम् आसीत । श्वोभूत उदकम् उपस्पृश्य वाचं विसृजेत् ।

1 S' °निमुक्तो'.

"स्वपन्नभ्युदितोनाश्वान् वाग्यतोहस्तिष्ठेद् । आ तमितोः प्राणम् आयच्छेदित्येके" इति [आप०ध०२.५.१२.१२-१५] ॥

सप्तमकाण्डे प्रथमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

[इति] अथर्ववेदार्थप्रकाशे सप्तमकाण्डे प्रथमोनुवाकः ॥

द्वितीयेनुवाके द्वे सूक्ते । तत्र "अभि त्यम्" इत्याद्ये सूक्ते आदित्यर्तुर्ऋचेन सूत्रोक्तं स्थानं गत्वा तत्र उदपात्रं संपात्य सोममिश्रं कृत्वा सारूपवत्सम् ओदनं संपात्य अभिमन्त्र्य पुष्टिकामः अश्नीयात् ॥

"तां सवितः" इति ऋचा एकवारप्रसूताया गोर्बन्धनरज्जुमणिं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य पुष्टिकामो बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । "अभि त्यम्[७.१५] इति महावकाशेरण्य उन्नते विमिते प्राग्द्वारे प्रत्यग्द्वारे वाप्सु संपातान् आनयति । कृष्णाजिने सोमांशून् विचिनोति । सोममिश्रेण संपातवन्तम् अश्नाति । आदीप्ते संपन्नं "तां सवितः[७.१६] इति गृष्टिदाम बध्नाति" इति [कौ०३.७] ॥

तथा सोमक्रयणानन्तरम् "अभि त्यम्" इत्यनेन ब्रह्मा हिरण्यपाणिः सोमं विचिनुयात् । "चर्मणि सोमम् अभि त्यम् इति हिरण्यपाणिर्विचिनोति" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै०३.३] ॥

"बृहस्पते सवितः" इत्यनया सूर्योदयपर्यन्तं सुप्तं ब्रह्मचारिणम् उत्थापयेत् ॥

तथा आधाने संभारस्पर्शनदिवसे सुप्तान् यजमानादीन् अनया उत्थापयेत् । "अथाग्न्याधेयम्" इति प्रक्रम्य वैताने सूत्रितम् । "वाग्यता जाग्रतो रात्रिम् आसते । अपररात्रं वा बृहस्पते सवितरिति सुप्तान् बोधयेत्" इति [वै०२.१] ॥

"धाता दधातु" इति चतुर्ऋचेन सर्वफलकामो धातारं यजेत उपतिष्ठेत वा । सूत्रितं हि । "अदितिर्द्यौः[७.६] दितेः पुत्राणाम्[७.८] बृहस्पते सवितः[७.१७] धाता दधातु"[७.१८] इति [कौ०७.१०] ॥

तथा वीरपुत्रप्रजननार्थम् अनेन चतुर्ऋचेन गर्भिण्या उदरम् अभि-

1 S' °दित्येके. 2 S' उपतिष्ठते.

मन्त्रयेत । "याम इच्छेद् वीरं जनयेद् इति धातर्व्याभिरुदरम् अभिमन्त्रयते" इति [कौ० ४. ११ सूत्रात्] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम् ।
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ॥ १ ॥

अभि । त्यम् । देवम् । सवितारम् । ओण्योः । कविऽक्रतुम् ।
अर्चामि । सत्यऽसवम् । रत्नऽधाम् । अभि । प्रियम् । मतिम् ॥ १ ॥

त्यं तं प्रसिद्धं देवम् द्योतनात्मकम् ओण्योः सर्वस्य अवित्र्योर्द्यावापृथिव्योः सवितारम् प्रसवितारम् एतन्नामधेयं देवम् अभ्यर्चामि अभिष्टौमि । ओण्योरिति । अवतेः औणादिको निप्रत्ययः । "ज्वरत्वर०" इत्यादिना ऊठ् गुणः । छान्दसं णत्वम् । "उदात्तस्वरितयोः०" इति ओकारः स्वर्यते । "उदात्तयणो हल्पूर्वात्" इत्येष स्वरो व्यत्ययेन न प्रवर्तते । सवितारं विशिनष्टि । कविक्रतुम् कवीनां मेधाविनामिव क्रतुः कर्म यस्य तादृशं कमनीयकर्माणं वा सत्यसवम् सत्यानुज्ञं यथार्थप्रेरणम् रत्नधाम् रमणीयधनानां धारयितारं दातारं वा प्रियमभि प्रियं प्रेम प्रीणयितारं स्तोतारं वा अभिलक्ष्य । रत्नधाम् इति संबन्धः । यद्वा अभि आभिमुख्येन प्रियं सर्वस्य प्रीतिकरम् अत एव मतिम् सर्वैर्मन्तव्यम् । "मन्त्रे वृषेष०" इति क्तिन्नुदात्तः । ईदृशं देवम् अभ्यर्चामि । अर्चतिः स्तुतिकर्मा । पादादित्वात् न निघातः ॥

द्वितीया ॥

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि ।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः ॥ २ ॥

---

१ K °ण्यां. २ A वां. B S[m] change °वं to °वां. K changes °वां to °वं. We with B D R V C. ३ B changes अ° to य°. ४ B omits °त्. We with A B D K K[m] R S[m] V P P[2] J C[p].

---

1 S' धातव्याभि°. *Kauś.* and Dārila read धातर्व्याभि°. 2 S' णिप्रत्ययः.

ऊर्ध्वा[1]। यस्य। अमतिः। भाः[2]। अदिद्युतत्। सवीमनि[3]।
हिरण्यऽपाणिः। अमिमीत। सुऽक्रतुः। कृपात्[4]। स्वः॥ २॥

यस्य सवितुर्देवस्य अमतिः अमनशीला व्यापनशीला। अमतेर्गतिकर्मण औणादिकः अतिप्रत्ययः। अत एव मध्योदात्तः। एतादृशी भाः दीप्तिः ऊर्ध्वा उत्कृष्टा अदिद्युतत् द्योतयति। विश्वम् इति शेषः। द्योततेर्ण्यन्तात् चङि उपधाह्रस्वत्वम्। यस्य च देवस्य सवीमनि सवे अनुज्ञायां सत्याम्। षू प्रेरणे। "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति मनिन्। छान्दसम् इटो दीर्घत्वम्। येन सवित्रानुज्ञातः सुक्रतुः शोभनकर्मा पुष्टिकामो ब्रह्मा वा हिरण्यपाणिः हिरण्यहस्तः सन् कृपा[5] कल्पनया अङ्गुल्यादिविषयया स्वः स्वर्गप्रदं सुखप्रदम्। सोमम् इत्यर्थः। अमिमीत मिमीते। छान्दसो लङ्। [त्यं प्रसिद्धम् इति पूर्वमन्त्रेण संबन्धः]॥ यद्वा। सवीमनीति निमित्तसप्तमी। सुनोतेरौणादिक ईमनिन् प्रत्ययः। अभिषवार्थे हिरण्यपाणिः हितरमणीयरश्मिः हिरण्यहस्तो वा। "हिरण्यपाणिम् ऊतये सवितारम् उप स्तुहि" इति हि निगमः [ऋ०१.२२.५]। स्वः आदित्यः सविता कृपा[5] कृपया पुष्टिकामं ब्रह्माणं वा आविश्य स्वयमेव मिमीते। सोमम् इति शेषः। कृपा। कृपू सामर्थ्ये। क्विप्। "सावेकाचः०" इति विभक्तेरुदात्तत्वम्॥

तृतीया॥

सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः॥ ३॥

सावीः। हि। देव। प्रथमाय। पित्रे। वर्ष्माणम्। अस्मै। वरिमाणम्। अस्मै।

---

१ P P[1] J Cr K ऊर्ध्वाः. २ P भाः. ३ See foot-note ४ on the previous page. ४ B °तर्वार्यी°.

1 So S'. See *Rig*. 1. 22. 5, 6.

अर्थ । अस्मभ्यम् । सवितः । वार्याणि । दिवःऽदिवः । आ । सुव । भूरि ।
पश्वः ॥ ३ ॥

हे देव द्योतनात्मक सवितः प्रथमाय । प्रथम इति मुख्यनाम । प्रतमाय प्रकृष्टतमाय पित्रे पालकाय यजमानाय सावीर्हि प्रेरयैव । फलम् इति शेषः । सामान्येनोक्तं विशिनष्टि । अस्मै पुष्टिकामाय वर्ष्माणम् देहम् । पुत्रपौत्रादिलक्षणां संततिम् इत्यर्थः । तां प्रयच्छेति संबन्धः । अस्मै पुष्टिकामाय यजमानाय वरिमाणम् उरुत्वं च प्रयच्छ । यद्वा वर्ष्माणम् देहं यथा यजमानस्य देहः पुत्रपौत्रादिजननक्षमो भवति तथा कुरु । वरिमाणम् पुत्रपौत्रादिलक्षणम् उरुत्वं प्रयच्छेति ॥ अथ अनन्तरं हे सवितः अस्मभ्यं वार्याणि वरणीयानि फलानि आ सुवेति क्रियया संबन्धः । अपि च दिवोदिवः दिवसान् दिवसान् प्रतिदिवसम् । "दिवेदिव आ सुव" इति शाखान्तरे [ऋ० ३. ५६. ६] पठ्यते । भूरि भूरीन् । ⁂सुपो लुक्⁂ । पश्वः पशून् । ⁂छान्दसो यण् आदेशः⁂ । आ सुव अस्मदभिमुखं प्रेरय ॥

चतुर्थी ॥

दमूना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्नं दक्षं पितृभ्य आयूंषि ।
पिबात् सोमं ममददेनमिष्टे परिज्मा चित् क्रमते अस्य धर्मणि ॥ ४ ॥

दमूनाः । देवः । सविता । वरेण्यः । दधत् । रत्नम् । दक्षम् । पितृऽभ्यः ।
आयूंषि ।
पिबात् । सोमम् । ममदत् । एनम् । इष्टे । परिऽज्मा । चित् । क्रमते ।
अस्य । धर्मणि ॥ ४ ॥

दमूनाः दान्तमना दानमना वा वरेण्यः वरणीयः सविता सर्वप्रेरको देवः रत्नम् रमणीयं धनं दक्षम् । बलनामैतत् । बलं च दधत् प्रयच्छन् तथा पितृभ्यः पूर्वेभ्यः सकाशात् आयूंषि शतसंवत्सरपरिमितम् आयुः । तपनपरिस्पन्दबाहुल्यात् तत्कालावच्छिन्नस्यापि आयुषो बहुत्वम् पुत्रपौत्राद्यपेक्षया वा बहुवचनम् । तादृशम् आयुश्च दधत् विदधत् प्र-

यच्छन् सोमम् अभिषुतं पिबात् पिबतु। ॥पातेर्लेटि आडागमः॥। पीतः स सोमः इष्टे यागे सवितृदेवत्ये एनं सवितारं ममदत् मदयतु। ॥माद्यतेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपम्। वाक्यादित्वात् न निघातः "चङ्यन्यतरस्याम्" इति उपोत्तमस्य उदात्तत्वम्॥। ततः परिज्मा चित् परितो व्यापनशीलोपि स सोमः अस्य सवितुः धर्मणि धारके स्थाने जठररूपे क्रमते अप्रतिबद्धो वर्तताम्। ॥"वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः" इति आत्मनेपदम्॥ ॥

पञ्चमी ॥

तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम्।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय ॥ १ ॥

ताम्। सवितः। सत्यऽसवाम्। सुऽचित्राम्। आ। अहम्। वृणे। सुऽमतिम्। विश्वऽवाराम्।

याम्। अस्य। कण्वः। अदुहत्। प्रऽपीनाम्। सहस्रऽधाराम्। महिषः। भगाय ॥ १ ॥

हे सवितः प्रसवितः सर्वस्य प्रेरयितः तां तादृशीम् उत्तरार्धे वक्ष्यमाणगुणां त्वदीयां सत्यसवाम् सत्यानुज्ञां सुचित्राम् सुष्ठु चायनीयां विश्ववाराम् सर्वैर्वरणीयां सुमतिम् शोभनाम् अनुग्रहबुद्धिम्। ॥"मन्क्तिन्व्याख्यान°" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम्॥। ताम् अहम् आ वृणे आभिमुख्येन याचे। याम् अस्य सवितुः संबन्धिनीं सुमतिं महिषः। महन्नामैतत्। महान् कण्वः एतन्नामा ऋषिः अदुहत् दुग्धवान्। स्वाधीनां कृतवान् इत्यर्थः। कीदृशीम्। प्रपीनाम् प्रवृद्धाम्। ॥प्यायतेः पीभावः॥। सहस्रधाराम् बहुधाराम्। ॥सुमतेर्गोसादृश्यविवक्षया पीनत्वादिविशेषण[योगाद्] दुहिधातुप्रयोगः॥। किमर्थं दुग्धवान्। भगाय भाग्याय। यां कण्वो दुग्धवान् तां सवितृसंबन्धिनीं सुमतिम् आ वृणे इति संबन्धः ॥

१ B त्रामहं.

1 S' सभजयाचे.

षष्ठी ॥

बृहस्पते सवितर्वर्धयैनं ज्योतयैनं महते सौभगाय ।
संशितं चित् संतरं सं शिशाधि विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥ १ ॥

बृहस्पते । सवितः । वर्धय । एनम् । ज्योतय । एनम् । महते । सौभगाय । समऽशितम् । चित् । समऽतरम् । सम् । शिशाधि । विश्वे । एनम् । अनु । मदन्तु । देवाः ॥ १ ॥

हे बृहस्पते बृहतां महतामपि देवानां पते हे सवितः प्रसवितः एतन्नामक देव । ※"नामन्त्रिते समानाधिकरणे०" इति पूर्वस्यामन्त्रितस्य अविद्यमानवत्प्रतिषेधाद् द्वितीयम् इदं सवितृपदं निहन्यते※ । एनं सूर्योदयपर्यन्तं सुप्तं ब्रह्मचारिणं यजमानादिकं वा वर्धय । उदयकाले स्वपतः पुरुषस्य दोषश्रवणात् तद्दोषपरिहारेण एनं यजमानं समर्धयेत्यर्थः । ※द्वितीयस्य आमन्त्रितस्य अविद्यमानत्वाद् वर्धयेति पदं न निहन्यते※ । किं च एनं यजमानादिकं महते प्रभूताय सौभगाय सौभाग्याय द्योतय । यथा महत् सौभाग्यं भवति तथा दीप्तं कुर्वित्यर्थः । अपि च संशितम् संशितव्रतं चित् अपि व्रतवन्तमपि संतरम् सम्यक् अतिशयेन । ※समस्तरपि प्रत्यये "अमु च च्छन्दसि" इति अम्※ । सं शिशाधि सम्यक् तीक्ष्णीकुरु । संतरं सं शिशाधि इत्युपसर्गद्वयश्रुतेर्व्रतलोपपरिहारेण यजमानादेः कर्मसाफल्यम् आशास्यते । ※शो तनूकरणे । लोटि "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः । इत्वं च अभ्यासस्य छान्दसम् । "वा छन्दसि" इति अपित्त्वे प्रतिषिद्धे पित्त्वेन ङित्त्वाभावात् "अङितश्च" इति हेर्धिभावः※ । किं च विश्वे सर्वे देवाः एनं यजमानादिकम् अनु मदन्तु अनुमोदन्ताम् । साधीयान् असाविति सर्वेऽनुमन्यन्ताम् इत्यर्थः ॥

सप्तमी ॥

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः ।
स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ १ ॥

धाता। दधातु। नः। रयिम्। ईशानः जगतः। पतिः।
सः। नः। पूर्णेन। यच्छतु ॥ १ ॥

धाता विश्वस्य धारयिता एतन्नामको देवः नः अस्मभ्यं रयिम् धनं दधातु विदधातु प्रयच्छतु। कीदृशः। ईशानः सर्वार्थसाधनशक्तः। ※अनुदात्तेच्चात् लसार्वधातुकानुदात्तत्वम्※। जगतस्पतिः पालयिता। ※"षष्ठ्याः पतिपुत्र०" इति सत्वम्※। किं च स धाता देवः नः अस्मान् पूर्णेन आप्यायितेन समृद्धेन धनेन यच्छतु नियच्छतु। योजयत्वित्यर्थः ॥

अष्टमी ॥

धाता दधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम्।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं विश्वराधसः ॥ २ ॥

धाता। दधातु। दाशुषे। प्राचीम्। जीवातुम्। अक्षिताम्।
वयम्। देवस्य। धीमहि। सुऽमतिम्। विश्वऽराधसः ॥ २ ॥

धाता सर्वस्य विधारको देवः दाशुषे हविर्दत्तवते मह्यं यजमानाय प्राचीम् प्रकृष्टगमनाम् अस्मदभिमुखगमनां जीवातुम् जीवनकारिणीम्। ※जीवेः आतुप्रत्ययः※। अक्षिताम् अनुपक्षीणाम्। सुमतिम् इति अनुषज्यते। तां दधातु धारयतु ॥ वयमपि विश्वराधसः सर्वधनस्य अतिप्रभूतधनस्य देवस्य धातुः सुमतिम् कल्याणीं मतिम् अनुग्रहात्मिकां धीमहि धारयेम। ※धीङ् आधारे। श्यनो लुक्※। यद्वा दाशुषे यजमानाय प्राचीम् प्राञ्चनाम् अनुगुणां जीवातुम् जीवनाय पर्याप्ताम् अक्षितां रयिं दधातु ॥ वयमपि धनप्रदानार्थं धातुः सुमतिं धीमहि ध्यायेम। याचेमेत्यर्थः ॥

नवमी ॥

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ ३ ॥

1 S' सत्व° for सर्व°. 2 S' शपो for श्यनो.

तथा तत्रैव कर्मणि अनया लोहिताजमांसं संपात्य अभिमन्त्र्य भक्षयेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनया ऋचा उदकुम्भं सुराकुम्भं वा संपात्य अभिमन्त्र्य प्रजाकामां स्त्रियं परिभ्राम्य अग्रे निनयेत् ॥

तथा अनया ओदनं सुरां प्रपां वा संपात्य अभिमन्त्र्य प्रजाकामायै दद्यात् ॥

सूत्रितं हि । "प्रजापतिरिति प्रजाकामाया उपस्थे जुहोति । लोहिताजायाः पिशितान्याशयति प्रपान्तानि" इति [कौ० ४. ११] ॥

तथा अभिलषितफलकामः अनया प्रजापतिं यजेत उपतिष्ठेत वा ॥

"अन्वद्य नोनुमतिः" इति षड्ऋचेन अभिलषितफलकामः अनुमतिं यजेत उपतिष्ठेत वा । सूत्रितं हि । "धाता ददातु[७. १८] प्रजापतिर्जनयतु[७. २०] अन्वद्य नोनुमतिः"[७. २१] इति [कौ० ७. १०] ॥

पूर्णमासयागे अनुमतिदेवताम् "अन्वद्य नः" इति षड्ऋचेन परिगृह्णीयात् । उक्तं वैताने । "देवताः परिगृह्णाति" इति प्रक्रम्य "अन्वद्य न इति पौर्णमास्याम्" इति [वै० १. १] ॥

पितृमेधकर्मणि इष्टकाभिश्चितं श्मशानं "समेत विश्वे"[७. २२] इत्यनया सर्वे बान्धवाः परिषिञ्चेयुः ॥

"अयं सहस्रम्" इति द्वाभ्यां पृश्निसवे हविर्मर्शनसंपातप्रदानादीनि कर्माणि कुर्यात् । सूत्रितं हि । "आयं गौः पृश्निः[६. ३१] अयं सहस्रम्[७. २३] इति पृश्निं गाम्" इति [कौ० ८. ७] ॥

तत्र प्रथमा ॥

प्र नभस्व पृथिवि भिन्द्धीदं दिव्यं नभः ।
उद्नो दिव्यस्य नो धातरीशानो वि ष्या हतिम् ॥ १ ॥

प्र । नभस्व । पृथिवि । भिन्द्धि । इदम् । दिव्यम् । नभः ।
उद्नः । दिव्यस्य । नः । धातः । ईशानः । वि । स्य । हतिम् ॥ १ ॥

---

१ K has no kampa, reading भिंधीदं दि°. D R too have no kampa and read भिंधीदं दि°. K V १ for ३. We with B S Cs. २ A D K K R S V Cs Cr उत्नो. B उन्नो. B उत्वो. We with Sâyaṇa. ३ P P J Cr उत्नः.

1 S' ददातु. 2 So S'.

अत्र द्वितीयादिपादत्रये वृष्ट्यर्थं पर्जन्यः प्रार्थ्यते। तदर्थम् आदौ अतिवृष्ट्या भूमेर्बाधा मा भूद् इति तस्याः स्थैर्यं प्रथमपादे[1] आशास्यते। हे पृथिवि विस्तीर्णे भूमे त्वं प्र नभस्व। ॐ नभतिर्गतिकर्मा ॐ। प्रकर्षेण संगता उच्छ्वसिता भव। अयम् अर्थः। सस्यादिवृद्ध्यर्थं पर्जन्यस्त्वोपरि महतीं वृष्टिं करिष्यति तयातिवृष्ट्या त्वं शिथिलावयवा मा भव किं तु दृढा भवेति। यद्वा। ॐ नभ तुभ हिंसायाम्। क्रैयादिकः। व्यत्ययेन शप् ॐ। कृष्ट्या[2] प्रकर्षेण बाधिता मृदिता भव। शाल्यादिबीजवापनार्थं क्षेत्रादिकर्षणक्लेशवती भवेत्यर्थः। ॐ नह्यतेर्वा विकरणव्यत्ययः। हकारस्य भकारः ॐ। प्र नह्यस्व संनद्धा भवेति। एवं पृथिवीं संस्तुभ्य[4] वृष्ट्यर्थं देवः प्रार्थ्यते। इदं पुरोवर्ति दिव्यम् दिवि भवं नभः मेघं भिन्धि विदारय। इति सामर्थ्यात् पर्जन्यः संबोध्यते। तथा कृत्वा दिव्यस्य दिवि भवस्य उद्नः उदकस्य। ॐ "पद्दन्०" इत्यादिना उदकस्य उदन् आदेशः। कर्मार्थे षष्ठी ॐ। उदकस्य भागम् इति वा नः अस्मभ्यं धात[5] धेहि प्रयच्छ। ॐ दधातेर्लोटि शपो लुकि "तिङां तिङो भवन्ति" इति हेस्तादेशः ॐ। एतदेव प्रकारान्तरेणाह। ईशानः वृष्टिप्रदानशक्तस्त्वं हृतिम् जलपूर्णां भस्त्रां मेघरूपा वि ष्य विमुञ्च। ॐ स्यतिः उपसृष्टो विमोचने। षो अन्तकर्मणि। "ओतः श्यनि" इति ओकारलोपः ॐ। यथा जलपूर्णहृतिमुखात् महज्जलं स्रवति एवं मेघेभ्यो महतीं वृष्टिं कुर्वित्यर्थः॥

द्वितीया॥

न घ्रंस्तापु न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम्॥ २॥

न। घ्रन्। तताप। न। हिमः। जघान। प्र। नभताम्। पृथिवी। जीरऽदानुः।
आपः। चित्। अस्मै। घृतम्। इत्। क्षरन्ति। यत्र। सोमः। सदम्। इत्। तत्र। भद्रम्॥ २॥

1 S' °पादेथ for °पादे. 2 S' °वृष्ट्यर्थं. 3 S' पृष्ट्या. 4 S' संस्तोभ्य. 5 S' धाता.

घन् । अनुकरणशब्दोयम् । घर्म इत्यर्थः । "यद् घन्नित्यपतत् तद् घर्मस्य घर्मत्वम्" इति तैत्तिरीयश्रुतेः [तै० आ० ५. १. ५] । अनेन घर्मशब्दवाच्यः कालो लक्ष्यते । स घर्मः ग्रीष्मो न तताप । ※अन्तर्भावितण्यर्थः※ । न तापयति संतापेन न बाधते । हिमः हेमन्तर्तुः न जघान । अतिशैत्येन गात्रसंकोचनरूपबाधां न करोतीत्यर्थः । पृथिवी च जीरदानुः जीवनप्रदा । ※जीवे रदानुप्रत्ययः※ । यद्वा । ※रकि ज्यः प्रसारणे जीर इति भवति । "दाभाभ्यां नुः" [उ० ३. ३२] इति नुप्रत्यये दानुरिति । अस्यां व्युत्पत्तौ अवग्रहो युज्यते※ । जीरदानुः प्रवृद्धदाना सती प्र नभताम् । उक्तो नभतिशब्दार्थः । वर्षेण आप्यायिता भवत्वित्यर्थः । किं च अस्मै यजमानाय आपश्चित् आपोपि घृतम् इत् घृतमेव सत्यः क्षरन्ति घृतवत् प्रीतिकारिण्यो भवन्ति । "आपो भद्रा घृतमिद् आप आसुः" इति [तै० सं० ५. ६. १. ३] श्रुत्यन्तरात् । यद्वा आपः घृतमेव क्षरन्ति कुर्वन्ति । वृष्ट्या गोसमृद्धौ घृतवृद्धिर्भवतीति यावत् । घर्महेमन्तजनितसंतापशैत्यबाधाभावः पृथिव्याप्यायनं घृतक्षरणं च केन हेतुना भवतीति तद् आह । यत्र यस्मिन् देशे सोमः एतन्नामा देवः । इज्यत इति शेषः । तत्र तस्मिन् देशे सदम् इत् सर्वदैव भद्रम् कल्याणं भवति । सौम्ययागेन अनिष्टनिवृत्तिः इष्टप्राप्तिश्च भवतीत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः ।
संजानानाः संमनसः सयोनयो मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ॥ १ ॥

प्रजाऽपतिः । जनयति । प्रऽजाः । इमाः । धाता । दधातु । सुऽमनस्यमानः ।
समऽजानानाः । समऽमनसः । सऽयोनयः । मयि । पुष्टम् । पुष्टऽपतिः ।
दधातु ॥ १

प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा पालयिता स देवः इमाः प्रजाः पुत्रादिका

1 S' तद् for यद्. 2 S' omits च.

जनयतुं उत्पादयतु । धाता पोषको देवः सुमनस्यमानः सुमना इवाचरन् । "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इति क्यङ् । सलोपो व्यत्ययेन न प्रवर्तते । सौमनस्यं प्राप्तो दधातु पोषयतु । प्रजा इत्यनुषङ्गः । किं च ताः प्रजाः संजानानाः समानज्ञानाः । कार्यविषये परस्परम् ऐकमत्यं प्राप्ता इत्यर्थः । "संप्रतिभ्याम् अनाध्याने" इति ज्ञानातेरकर्त्रभिप्रायेपि आत्मनेपदम् । संमनसः संगतमनस्काः । अन्योन्याविसंवादिकार्यचिन्तापरा इत्यर्थः । सयोनयः समानकारणाः । यथा प्रजा उक्तविशेषणविशिष्टा भवन्ति तथा पुष्टपतिः पोषस्य पतिः एतन्नामा देवो मयि पुष्टम् पोषं प्रजाविषयं दधातु विदधातु ॥

चतुर्थी ॥

अन्वद्य नोनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम ॥ १ ॥

अनु । अद्य । नः । अनुऽमतिः । यज्ञम् । देवेषु । मन्यताम् ।
अग्निः । च । हव्यऽवाहनः । भवताम् । दाशुषे । मम ॥ १ ॥

अनुमतिः अनुमन्त्री सर्वकर्मसु अनुज्ञात्री पौर्णमासाभिमानिनी देवता ।

कलाहीने सानुमतिः पूर्णे राका निशाकरे ।

इति हि तद्विदः । अद्य इदानीं नः अस्माकं यज्ञं देवेषु यष्टव्येषु अनु मन्यताम् अनुजानातु । ज्ञापयत्वित्यर्थः । अग्निश्च अग्निरपि दाशुषे । विभक्तिव्यत्ययः । हविर्दत्तवतो मम हव्यवाहनः हव्यं प्रापयिता यष्टव्यान् देवान् भवताम् भवतात् । व्यत्ययेनात्मनेपदम् । हव्यवाहन इति । "हव्येनन्तःपादम" इति ल्युट् ॥

पञ्चमी ॥

अन्विदनुमते त्वं मंससे शं च नस्कृधि ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ २ ॥

अनु । इत् । अनुऽमते । त्वम् । मंससे । शम् । च । नः । कृधि ।
जुषस्व । हव्यम् । आऽहुतम् । प्रऽजाम् । देवि । ररास्व । नः ॥ २ ॥

हे अनुमते एतन्नामिके देवते त्वम् अनु मंसिषे अनुमन्येथाः । ॐ इत् अवधारणे । मन्यतेः पञ्चमलकारे रूपम् ॐ । किं च नः अस्माकं शम् सुखं कृधि कुरु । आहुतम् आभिमुख्येन अग्नौ प्रक्षिप्तं हव्यम् हविः जुषस्व सेवस्व । हे देवि द्योतमाने अनुमते नः अस्मभ्यं प्रजाम् पुत्रादिलक्षणां रारास्व प्रयच्छ । ॐ रातेः "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ॐ ॥

षष्ठी ॥

अनु॑ मन्यतामनुमन्य॑मानः प्र॒जाव॑न्तं र॒यिमक्षी॑यमाणम् ।
तस्यं॑ व॒यं हेड॑सि॒ मापि॑ भूम सुमृ॒ळीके॑ अ॑स्य सुम॒तौ स्या॑म ॥ ३ ॥

अनु॑ । म॒न्यता॒म् । अ॒नु॒ऽमन्य॑मानः । प्र॒जाऽव॑न्तम् । र॒यिम् । अक्षी॑य-माणम् ।

तस्य॑ । व॒यम् । हेड॑सि । मा । अपि॑ । भू॒म॒ । सु॒ऽमृ॒ळीके॑ । अ॒स्य॒ । सु॒ऽम॒तौ । स्या॒म॒ ॥ ३ ॥

अनुमन्यमानः अनुमन्ता पुंदेवः । यद्वा लिङ्गव्यत्ययः । अत एव शाखान्तरे स्त्रीलिङ्गत्वेन पठ्यते । "अनु मन्यताम् अनुमन्यमाना" इति "तस्यै वयं हेडसि" इति च [तै० सं० ३. ३. ११. ४] । अनुमन्त्री अनुमतिर्देवता रयिम् अनु मन्यताम् अनुजानातु । कीदृशम् । प्रजावन्तम् पुत्रादियुक्तम् अक्षीयमाणं च । किं च तस्य अनुमन्तुः पुंदेवस्य तस्या अनुमतेर्वा हेडसि । ॐ क्रोधनामैतत् ॐ । क्रोधेपि वयं मा भूम । क्रोधविषया मा भूमेत्यर्थः । किं तु अस्य अनुमन्तुः अस्या अनुमतेर्वा सुमृळीके । मृळीकम् इति सुखनाम । शोभनसुखरूपे शोभनसुखकारिण्यां वा सुमतौ अनुग्रहात्मिकायां शोभनायां बुद्धौ स्याम भवेम ॥

सप्तमी ॥

यत् ते॒ नाम॑ सुहवं॑ सुप्रणीतेनुमते॒ अनु॑मतं॑ सुदानु॑ ।
तेना॑ नो य॒ज्ञं पि॑पृहि विश्ववारे र॒यिं नो॑ धेहि सुभगे सुवी॑रम् ॥ ४ ॥

---

1 S' मंशिषे. The text in S' reads मंसिषे (actually मंसिसं). See verse 6 below.

यत्। ते। नाम। सुऽहवम्। सुऽप्रनीते। अनुऽमते। अनुऽमतम्। सुऽदानु। तेन। नः। यज्ञम्। पिपृहि। विश्वऽवारे। रयिम्। नः। धेहि। सुऽभगे। सुऽवीरम्॥ ४॥

हे सुप्रणीते सुप्रणयने यजमानानां धनादेः सुष्ठु प्रणेत्रि वा हे अनुमते ते तव सुहवम् सुष्ठु ह्वातव्यम् अनुमतम् सर्वेषाम् अभिमतं सुदानु शोभनदानम् अभिमतफलप्रदायकं यन्नाम नामधेयम् अनुमतिरूपम् अस्ति तेन नाम्ना नः अस्मदीयं यज्ञं पिपृहि पूरय। ☒"अर्तिपिपर्त्योश्च" इति अभ्यासस्य इत्त्वम्☒। हे विश्ववारे विश्वैः सर्वैर्वरणीये किं च हे सुभगे शोभनभाग्ययुक्ते अनुमते नः अस्माकं सुवीरम् शोभनापत्यं रयिम् धनं धेहि॥

अष्टमी॥

एमं यज्ञमनुमतिर्जगाम सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम्।
भद्रा ह्यस्याः[1] प्रमतिर्बभूव सेमं यज्ञमवतु देवगोपा॥ ५॥

आ। इमम्। यज्ञम्। अनुऽमतिः। जगाम। सुऽक्षेत्रतायै। सुऽवीरतायै। सुऽजातम्।

भद्रा। हि। अस्याः। प्रऽमतिः। बभूव। सा। इमम्। यज्ञम्। अवतु। देवऽगोपा॥ ५॥

अनुमतिर्देवी इमम् अनुष्ठीयमानम् अस्मदीयं यज्ञम् आ जगाम आगच्छतु। ☒छान्दसो लिट्☒। किमर्थम्। सुक्षेत्रतायै सुभूमित्वाय फलाय। सुवीरतायै शोभनपुत्रत्वरूपफलाय सुक्षेत्रपुत्रादिरूपं फलं दातुम्। कीदृशं यज्ञम्। सुजातम् मन्त्रद्रव्यादिना सुष्ठु निष्पन्नम्। किं च हि यस्माद् अस्या अनुमतेः भद्रा भन्दनीया कल्याणी प्रमतिः प्रकृष्टानुग्रहबुद्धिः बभूव अतः देवगोपा देवानाम् अग्न्यादीनां गोप्त्री सा अनुमतिः इमं यज्ञम् अवतु रक्षतु॥

---

१ A R ह्यस्याः. We with B $\overset{b}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ $\overset{m}{S}$ V.

नवमी ॥

अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यदु च विश्वमेजति ।
तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः ॥ ६ ॥

अनुऽमतिः । सर्वम् । इदम् । बभूव । यत् । तिष्ठति । चरति । यत् । ऊं इति । च । विश्वम् । एजति ।
तस्याः । ते । देवि । सुऽमतौ । स्याम् । अनुऽमते । अनु । हि । मंससे । नः ॥ ६ ॥

अनुमतिर्देवी इदं परिदृश्यमानं सर्वं जगद् बभूव । सर्वशब्दार्थं विशिनष्टि । यत् जगत् तिष्ठति स्थावरवृक्षगुल्मादिरूपेण वर्तते । चरति यत् जगत् अबुद्धिपूर्वं चेष्टते । यदु च यदपि च विश्वम् सर्वं जगद् एजति बुद्धिपूर्वकं चेष्टते । एजृ कम्पने । स्थावरजङ्गमात्मकं सर्वं जगद् अनुमतिर्बभूव । हे देवि अनुमते तस्यास्तादृश्यास्ते तव सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहबुद्धौ स्याम भवेम । हे अनुमते हि यस्मात् नः अस्मान् अनु मंसिषे[1] अनुमन्यसे । मन्यतेः पञ्चमलकारे "सिप् बहुलं लेटि" इति सिप् ॥

दशमी ॥

समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम् ।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत् तं वर्तनिरनु वावृत एकमित् पुरु ॥ १ ॥

समऽएत । विश्वे । वचसा । पतिम् । दिवः । एकः । विऽभूः । अतिथिः । जनानाम् ।
सः । पूर्व्यः । नूतनम् । आऽविवासत् । तम् । वर्तनिः । अनु । ववृते । एकम् । इत् । पुरु ॥ १ ॥

पैतृमेधिककर्मणा संस्कृतस्य पुरुषस्य सूर्यप्रशंसापूर्वकं तदनुग्रहं प्रार्थय-

१ B वर्तनि°. S वर्तनी°. We with A B D K K R V Cs.

1 S' मंशिषे.

ते। हे विश्वे सर्वे बान्धवाः दिवः द्युलोकस्य पतिम् स्वामिनं सूर्यं वचसा मन्त्ररूपेण स्तोत्रेण समेत संप्राप्नुत। संस्तुतेत्यर्थः। इण् गतौ। लोटि तस्य तबादेशः। सूर्यो विशेष्यते। जनानाम् जन्मवतां प्राणिनाम् एकः मुख्यो विभूः स्वामी अतिथिः संततम् अतनशीलः। अत सातत्यगमने। ऋतन्यञ्जीत्यादिना [उ०४.२] इथिन् प्रत्ययः। अतिथिवद् अर्घ्यादिना पूज्यो वा। पूर्व्यः पुरातनः। स्वार्थिको यत्। [स] सूर्यः नूतनम् पितृभूतम् इमं पुरुषम् आविवासत्। विवासतिः परिचरणकर्मा। परिचरतु। स्वीयोयम् इति अनुगृह्णातित्यर्थः। यद्वा पूर्व्यः। "पूर्वैः कृतम् इनयौ च" इति यप्रत्ययः। पूर्वैः पितृभिः अस्मदीयोयम् इति स्वीकृतः स पुरुषो नूतनम् पुनःपुनरुदयेन अभिनवं सूर्यं परिचरतु। अथ वा पूर्व्यः स पितृभूतः नूतनम् इष्टकचितम् अभिनवं प्रदेशम् अभिगच्छतित्यिति। तम् एकमेव सूर्यं पुरु बहुधा वर्तनिः सत्कर्ममार्गः अनु ववृते अनुवर्तते॥

अयं सहस्रमा नो दृशे कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि॥ १॥

अयम्। सहस्रम्। आ। नः। दृशे। कवीनाम्। मतिः। ज्योतिः। विऽधर्मणि॥ १॥

ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन्।
अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः॥ २॥

ब्रध्नः। समीचीः। उषसः। सम्। ऐरयन्।
अरेपसः। सऽचेतसः। स्वसरे। मन्युमत्ऽतमाः। चिते। गोः॥ २॥

एकादशी॥ अयं परिदृश्यमानः सर्वैः स्वात्मत्वेन अनुभूयमानो वा सूर्यः नः अस्माकं सहस्रम्। "कालाध्वनोः०" इति द्वितीया। सहस्रसंवत्सरकालपर्यन्तं दृशे दर्शनाय। "दृशे विख्ये च" इति केप्रत्ययान्तत्वेन निपातितः। आ उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रिया-

1 S' विभर्गविभूः for विभूः.

ध्याहारः ॥ । [आ भवतु] अनेककालपर्यन्तं सूर्यः अस्मच्चक्षुर्गोचरो भवत्वित्यर्थः । तं विशिनष्टि । कवीनाम् क्रान्तदर्शिनां पुंसां मतिः मननीयः । ॥ कर्मणि क्तिन् ॥ । ज्योतिः प्रकाशरूपः । किं च विधर्मणि विविधे धर्मसाधने कर्मणि । ॥ निमित्तसप्तमी ॥ । व्रध्नः सर्वेषां स्वस्वकर्मसु तत्फलेषु च बन्धकः संयोजकः सूर्यः । ॥ बन्धेर्ब्रधिबुधी च [उ० ३. ५] इति नक् प्रत्ययः ॥ । उषसः उषःकालोपलक्षितानि अहानि समीचीः संगतानि अनुक्रमेण प्राप्तानि समैरयन् । ॥ वचनव्यत्ययः ॥ । सम्यक् प्रेरयतु । सत्कर्मकरणाय पुनःपुनरहानि प्रेरयत्वित्यर्थः ॥

द्वादशी ॥ उषसो विशेष्यन्ते । अरेपसः अपापाः पापहारिण्यः सचेतसः समानज्ञानाः स्वसरे । अहर्नामैतत् अह्नि विषये मन्युमत्तमाः । ॥ मन्यतिर्दीप्तिकर्मा ॥ । अतिशयेन दीप्तिमत्यः प्रकाशयुक्ताः गोः पृश्निरूपायाः चिते । ॥ चायतेश्चितशब्दो निपातितः ॥ । पूजादानादिकर्मणि निमित्ते व्रध्नः प्रेरयत्विति पूर्वेण संबन्धः । यद्वा । ॥ चिनोतेः संपदादिलक्षणो भावे क्विप् ॥ । गोशब्देन आदित्य उच्यते । ॥ गौः विष्टप् नभ इति षट् पदानि दिवश्चादित्यस्य च साधारणानीति हि यास्कः [निघ० १. ४] ॥ । तस्य आदित्यस्य चिते चयनाय ज्ञापनाय । भवन्तु इति शेषः । अथ वा स्वसरे गोश्चित इति सामानाधिकरण्येन संबन्धः । ॥ चायतेर्निशामनार्थादेव चितशब्दः ॥ । गोः आदित्यस्य चिते दर्शनयोग्ये स्वसरे अह्नि विषये उषसो भवन्तु इति ॥

त्रयोदशी ॥

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ।
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचस्ता अस्मन्नाशयामसि ॥ १ ॥

दौःऽस्वप्न्यम् । दौःऽजीवित्यम् । रक्षः । अभ्वम् । अराय्यः ।
दुःऽनाम्नीः । सर्वाः । दुःऽवाचः । ताः । अस्मत् । नाशयामसि ॥ १ ॥

१ See IV. 17. 5.

व्याख्याता । [४. १७. ५] ॥

द्वितीयं सूक्तम् ।

[इति] सप्तमे काण्डे द्वितीयोनुवाकः ॥

तृतीयेनुवाके त्रीणि सूक्तानि । तत्र "यन्न इन्द्रः" इति प्रथमं सूक्तम् । तत्र आद्यर्चा मन्त्रोक्ता इन्द्राद्या नव देवताः सर्वफलकामो यजेत उपतिष्ठेत वा ॥

तत्रैव कर्मणि "ययोरोजसा" इति द्वाभ्यां विष्णुवरुणौ यजेत उपतिष्ठेत वा ॥

सर्वसंपत्कामो "विष्णोर्नु कम्" इत्यष्टर्चेन विष्णुं यजेत उपतिष्ठेत वा ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "यन्न इन्द्रः[७. २५] ययोरोजसा[७. २६] विष्णोर्नु कम्"[७. २७] इति [कौ० ७. १०] ॥

तथा "वैष्णवीम् अन्नकामस्यान्नक्षये[1] च" इति [न० क० १७] विहितायां वैष्णव्याख्यायां महाशान्तौ "विष्णोर्नु कम्" इति आवपेत् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "विष्णोर्नु कम इति वैष्णव्याम्" इति [न० क० १८] ॥

आतिथ्येष्टौ "विष्णोर्नु कम्" इति वैष्णवं हविरभिमृशेत् । तद् उक्तं वैताने । "आतिथ्यायां हविरभिमृशति यज्ञेन यज्ञम्[७. ५] इति वैष्णवं विष्णोर्नु कम्" [७. २७] इति [वै० ३. ३] ॥

तथा सोमयागे औपवस्थ्याहनि हविर्धानयोः उपस्तभ्यमानम् उपस्तम्भनकाष्ठम् अनया अनुमन्त्रयेत । "विष्णोर्नु कम् इत्युपस्तम्भनम् उपस्तभ्यमानम्" इति वैतानसूत्रात् [वै० ३. ५] ॥

सोमयागे "यस्योरुषु" इति. सोमक्रयणार्थं निष्क्रामेत् । "यस्योरुष्विति निष्क्रम्य" इति [वै० ३. ३] वैतानसूत्रात् ॥

पशुयागात् प्राक् क्रियमाणायाम् इष्टौ "उरु विष्णो" इत्यनया वैष्णवं पूर्णहोमं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "अथ पशुः । वैष्णवं पूर्णहोमम् उरु विष्णो" [वै० २. ६] इति हि वैतानम् ॥

तथा अद्भुतशान्तौ "उरु विष्णो" इत्यनया विष्णुं यजेत । उक्तं न-

1 S' °जये for °क्षये. 2 So S'.

क्षत्रकल्पे । "उरु विष्णो विक्रमस्वेति विष्णोः" इति [न०क०१४] ॥

दर्शपूर्णमासयोः प्रणीताप्रणयनप्रभृति हविष्कृदुद्वादनाद् अर्वाक् अभिवदनप्रायश्चित्तार्थम् "इदं विष्णुः" इति जपेत् । "प्रणीतासु प्रणीयमानासु वाचं यच्छत्या हविष्कृत उद्वादनाद् । यदि वदेद् वैष्णवीं जपेत्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै०१.२] ॥

सोमयागे उत्तरवेद्यग्निप्रणयनानन्तरं दक्षिणहविर्धानस्य वर्त्महोमम् "इदं विष्णुः" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत ॥

तस्मिन्नेव कर्मणि उत्तरहविर्धानस्य वर्त्महोमं "त्रीणि पदा" इति अनुमन्त्रयेत ॥ तद् उक्तं वैताने । "दक्षिणहविर्धानस्य वर्त्माभिहोमम् इदं विष्णुः[७.२७.४] इत्युत्तरस्य त्रीणि पदा[७.२७.५]" इति [वै०३.५] ॥

तृतीयसवने सोमयागानन्तरम् "इदं विष्णुः" इति चमसान् अप्सु प्रक्षिपेत् । "अप्सु[सोम]चमसांन् वैष्णव्यर्चा निनयति" [वै०३.१३] इति वैताने सूत्रितम् ॥

तथा "त्वाष्ट्रीं वस्त्रक्षये" इति [न०क०१७] विहितायां त्वाष्ट्र्याख्याया महाशान्तौ "इदं विष्णुः" इत्यनया त्रिवृन्मणिबन्धनं कुर्यात् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "अग्निः सूर्यः[५.२८.२] इदं विष्णुः[७.२७.४] इति त्रिवृतं त्वाष्ट्र्याम्" इति [न०क०१९] ॥

पशुतन्त्रे अवटे स्थापितं यूपं "विष्णोः कर्माणि" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "धर्ता ध्रियस्व[१२.३.३५] इति पादेनावटे निधीयमानं विष्णोः कर्माणि[७.२७.६] इति द्वाभ्याम् उच्छ्रितम्" इति [वै०२.६] वैतानं सूत्रम् ॥

तथा अग्निचयने कूर्माभ्यञ्जनानन्तरम् उलूखलमुसलं च "विष्णोः कर्माणि" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "विष्णोः कर्माणीत्युलूखलमुसलं निधीयमानम्" इति [वै०५.२] वैताने सूत्रितत्वात् ॥

तत्र प्रथमा ॥

यन्न इन्द्रो अखनद् यदग्निर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः ।

1 So S'. 2 S' ध्रियस्वेति पदे° for ध्रियस्वेति पादे°. 3 S' कर्माभ्यांजना°. 4 S' निधनमिति. We with the *Vaitāna*.

तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥ १ ॥

यत्। नः। इन्द्रः। अखनत्। यत्। अग्निः। विश्वे। देवाः। मरुतः। यत्। सुऽअर्काः।

तत्। अस्मभ्यम्। सविता। सत्यऽधर्मा। प्रजाऽपतिः। अनुऽमतिः। नि। यच्छात्॥ १ ॥

इन्द्रः। इदि परमैश्वर्ये। "ऋज्रेन्द्राग्र०" इत्यादिना [उ० २. २८] रक्प्रत्ययान्तो निपातितः। यास्कस्तु इन्द्र इरां ददातीति [नि० १०. ८] इत्यादिना इन्द्रशब्दं बहुधा निरुवाच। परमैश्वर्यादिगुणविशिष्टो देवः नः अस्मभ्यं यत् फलम् असनत् अददात्। षणु दाने। व्यत्ययेन शप्। संभजनार्थस्य भौवादिकस्य वा रूपम्। यत् फलं समभजत्। अग्निः अङ्गनादिगुणविशिष्टो देवो यत्। असनद् इति सर्वत्र क्रियानुषङ्गः। विश्वे देवाः एतन्नामका गणदेवाः। मरुतः एकोनपञ्चाशत्संख्याका मरुद्गणाः। सुऽअर्काः। अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति। अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्तीति यास्कः [नि० ५. ४]। सुमन्त्राः सुदेवा वा एतन्नामानो देवाश्च। यद् असनन् इति क्रियापदस्य बहुवचनान्तत्वेन विपरिणामः। तत् फलम् अस्मभ्यं सविता सर्वस्य प्रेरकः सत्यधर्मा यथार्थकर्मा एतन्नामा देवः प्रजापतिः अनुमतिश्च नि यच्छात् निच्छतु स्थापयतु। प्रत्येकविवक्षया एकवचनम्। यम उपरमे। अस्मात् पञ्चमलकारे "इषुगमियमां छः"। आडागमः॥

द्वितीया ॥

ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यैर्वीरतमा शविष्ठा।

यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥ १ ॥

ययोः। ओजसा। स्कभिता। रजांसि। यौ। वीर्यैः। वीरऽतमा। शविष्ठा। यौ। पत्येते इति। अप्रतिऽइतौ। सहःऽभिः। विष्णुम्। अगन्। वरुणम्। पूर्वऽहूतिः॥ १ ॥

ययोः विष्णुवरुणयोः ओजसा बलेन रजांसि । ॥ लोका रजास्युच्यन्त इति हि निरुक्तम् [४१.९] ॥ । रञ्जनात्मकानि पृथिव्यादीनि स्थानानि स्कभिता स्कम्भितानि । दृढीकृतानीत्यर्थः । ॥ शेर्लोपः ॥ । यौ विष्णुवरुणौ वीर्यैः वीरकर्मभिः शत्रुजयादिरूपैः पराक्रमैः वीरतमा अत्यन्तशूरौ शविष्ठा । शव इति बलनाम । अतिशयेन बलवन्तौ । ॥ शवस्विशब्दाद् इष्ठनि विनो लुक् । उभयत्र सुप आकारः ॥ । किं च यौ विष्णुवरुणौ सहोभिः बलैः अप्रतीतौ अप्रतिगतौ अतिरस्कृतौ सन्तौ पत्येते । ॥ पत्यतिरैश्वर्यकर्मा ॥ । ऐश्वर्यं सामर्थ्यं प्राप्नुतः । तादृशं विष्णुम् व्यापनशीलं देवं वरुणम् अनर्थनिवारकं देवं च पूर्वहूतिः पूर्वाह्वानः इतरेभ्यः फलार्थिभ्यः प्रथमाह्वानोयं यष्टा अगन् गच्छतु । हविषा संयोजयतु इत्यर्थः । ॥ गमेश्छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुकि "मो नो धातोः" इति मकारस्य नत्वे रूपम् ॥ ॥

तृतीया ॥

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते प्र चानति वि च चष्टे शचीभिः ।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुमगन् वरुणं पूर्वहूतिः ॥ २ ॥

यस्य । इदम् । प्रऽदिशि । यत् । विऽरोचते । प्र । च । अनति । वि । च । चष्टे । शचीभिः ।

पुरा । देवस्य । धर्मणा । सहःऽभिः । विष्णुम् । अगन् । वरुणम् । पूर्वऽहूतिः ॥ २ ॥

यस्य विष्णोः वरुणस्य च । ॥ प्रत्येकविवक्षया एकवचनम् ॥ । प्रदिशि प्रदेशने आज्ञायां यद् इदं विश्वं विरोचते विशेषेण दीप्यते । प्रानिति च प्रकर्षेण चेष्टते च । ॥ श्वस प्राणने । अन च इति धातुः ॥ । शचीभिः कर्मभिः वि चष्टे च । ॥ पश्यतिकर्मैतत् ॥ । स्वस्वकर्तव्यं फलं वा विशेषेण पश्यति च । किं च देव-

१ B च.

स्य द्योतमानस्य विष्णोर्वरुणस्य च धर्मणा धारकेण कर्मणा सहोभिः बलैश्च पुरा पूर्वं जगद् व्यरोचिष्ट प्रानीत् व्यचष्टेति कालविपरिणामेन योज्यम्। ‡पुराशब्दस्य निपातस्य रोचते इत्यादिधातुयोगे "यावत्पुरानिपातयोर्लट्" इति भविष्यदर्थे लट्‡। देवस्य धारकेण कर्मणा बलैश्च यद् इदं विश्वं विरोचिष्यते प्राणिष्यति विख्यास्यति विशेषेण द्रक्ष्यति। एवं विष्णुवरुणयोराज्ञायां विश्वं जगद् भूतभविष्यद्वर्तमानकालेषु रोचनादिव्यापारास्पदं भवति। तादृशं विष्णुं वरुणं च पूर्वहूतिः इतरेभ्यः प्रथमाह्वानोयं फलार्थी जनः अगन् गच्छतु। हविषा संयोजयतु इत्यर्थः॥

चतुर्थी॥

विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥ १॥

विष्णोः। नु। कम्। प्र। वोचम्। वीर्याणि। यः। पार्थिवानि। वि। ममे। रजांसि।

यः। अस्कभायत्। उत्ऽतरम्। सधऽस्थम्। वि। ऽचक्रमाणः। त्रेधा। उरुऽगायः॥ १॥

विष्णोः व्यापनशीलस्य देवस्य वीर्याणि वीरकर्माणि नु क्षिप्रं प्रा वोचम् प्रकर्षेण ब्रवीमि। ‡छान्दसो लुङ्‡। कम् इति पूरणः। विष्णुर्विशेष्यते। यो देवः पार्थिवानि पृथिवीमयानि रजांसि लोकान् विममे निर्ममे। "तिस्रो भूमीर्धारयन्त्रीरुत द्यून्" इति [ऋ० २. २७. ८] मन्त्रवर्णे एकैकस्य लोकस्य त्रित्वसंख्या श्रूयते। यद्वा "त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः" इति [ऐ० ब्रा० २. १७] एकैकस्य त्रिवृत्करणश्रवणात् पार्थिवानीत्यत्र पृथिवीशब्देन पृथिव्यन्तरिक्षद्युलोका उच्यन्ते। "द्वितीयस्यां पृथिव्यां तृतीयस्यां पृथिव्याम्" इति हि तैत्तिरीयश्रुतिः [तै० सं० १. २. १२. १]। पृथिवीषु भवानि। ‡पृथिवीशब्दाद् भवार्थे अञ्

१ K K V प्र.

प्रत्ययः ॥ । रजांसि ज्योतींषि अग्निविद्युत्सूर्यात्मकानि विममे निर्मितवान् । किं च यो विष्णुः उत्तरम् उद्गततरं सधस्थं स्थानम् । सह तिष्ठन्त्यस्मिन् देवा इति सधस्थम् स्वर्गम् । ॥ "सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः ॥ । अस्कभायत् अस्तभ्नात् अधारयत् । ॥ "स्तन्भुस्तुन्भु०" इत्यादिना स्कभेः श्नाप्रत्यये "शायच् छन्दसि सर्वत्र" इति शायजादेशः ॥ । किं कुर्वन् । त्रेधा त्रिधा पृथिव्याम् अन्तरिक्षे दिवि च विचक्रमाणः पादप्रक्षेपं कुर्वन् उरुगायः उरुभिर्महात्मभिर्गीयमानः स्तूयमानः उरुगमनो वा । तस्य विष्णोर्वीर्याणि प्रब्रवीमीति संबन्धः ॥

प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
परावत आ जगम्यात् परस्याः ॥ २ ॥

प्र । तत् । विष्णुः । स्तवते । वीर्याणि । मृगः । न । भीमः । कुचरः । गिरिऽस्थाः ।
पराऽवतः । आ । जगम्यात् । परस्याः ॥ २ ॥

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥ ३ ॥

यस्य । उरुषु । त्रिषु । विऽक्रमणेषु । अधिऽक्षियन्ति । भुवनानि । विश्वा ।
उरु । विष्णो इति । वि । क्रमस्व । उरु । क्षयाय । नः । कृधि ।
घृतम् । घृतऽयोने । पिब । प्रऽप्र । यज्ञऽपतिम् । तिर ॥ ३ ॥

पञ्चमी ॥ तत् । ॥ लिङ्गव्यत्ययः ॥ । स महानुभावो विष्णुः वीर्याणि वीरकर्माणि । उद्दिश्येति क्रियाध्याहारः । प्र स्तवते प्रकर्षेण स्तूयते । ॥ स्तौतेः कर्मणि व्यत्ययेन शप् ॥ । मृगो न मृग इव सिंह इव भीमः भयानकः कुचरः कुत्सितं चरन् कौ भूम्या

१ R तद्विष्णुः. २ P omits the visarga.

वा चरन् गिरिष्ठाः पर्वते तिष्ठन् भूमौ संचरन्नपि सिंहः उत्प्लवनेन पर्वतस्थितो भवति। एवं स विष्णुः परस्याः परावतः अतिदूराद् देशादपि आ जगम्यात् स्तुतिकर्मत्वेन आगच्छतु। ॥ गमेश्छान्दसः शपः श्लुः ॥। यस्य विष्णोः उरुषु विस्तीर्णेषु त्रिषु विक्रमणेषु पादनिधानस्थानेषु विश्वा विश्वानि भुवनानि भूतानि अधिक्षियन्ति अधिवसन्ति। ॥ क्षि निवासगत्योः ॥। प्रथमे विक्रमे भौमानि द्वितीये अन्तरिक्ष्याणि तृतीये दिव्यानि भूतानि वसन्तीत्यर्थः ॥

षष्ठी ॥ हे विष्णो व्यापक उरु प्रभूतं वि क्रमस्व लोकत्रये पादत्रयं कुरु। किं च नः अस्माकं क्षयाय निवासाय। ॥ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ॥। निवासस्य उरु प्रभूतं धनादिकं कृधि कुरु। अस्माकं निवासं बहुधनादियुक्तं कुर्वित्यर्थः। हे घृतयोने घृतस्य योने कारणभूत घृतं योनिर्यस्येति वा घृतयोनिः। अत्र अध्यात्मना विष्णुः स्तूयते। हे विष्णो इदं हूयमानं घृतम् आज्यं पिब। अपि च यज्ञपतिम् यजमानं प्रप्र तिर प्रवर्धय। ॥ प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्धनार्थः। "प्रसमुपोदः पादपूरणे" इति प्रशब्दस्य द्विर्वचनम् ॥ ॥

सप्तमी ॥

इ॒दं विष्णु॒र्वि च॑क्रमे त्रे॒धा नि द॑धे प॒दा। सम्ऽऊ॑ढमस्य पांसु॒रे ॥ ४ ॥

इ॒दम्। विष्णुः। वि। च॒क्र॒मे॒। त्रे॒धा। नि। द॒धे॒। प॒दा ॥ समऽऊ॑ढम्। अ॒स्य॒। पां॒सु॒रे ॥ ४ ॥

विष्णुः व्यापी भगवान् इदं विश्वं वि चक्रमे विक्रान्तवान्। कतिधा विचक्रमे इति तद् आह। त्रेधा त्रिधा पदा पदानि नि दधे स्थापयामास। "पृथिव्याम् अन्तरिक्षे दिवि च विष्णुर्वामनो भूत्वेमाँल्लोकांस्त्रिभिः क्रमैरभ्यजयत्" इति श्रुतेः। अस्य विक्रममाणस्य विष्णोः पांसुरे पांसुमति। ॥ रो मत्वर्थीयः ॥। पादे लोकत्रयं समूढम् सम्यग् ऊढं समवस्थापितं समाकृष्टं वा अभवत्। ॥ अत्र "विष्णुर्वि-

1 S' °दा° for °धा°.

"शतेर्वा व्यश्नोतेर्वा । यद् इदं किं च तद् वि चक्रमे त्रेधा निदधे प-
"दम् । पृथिव्याम् अन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः" [नि० १२.१८] इ-
त्यादि निरुक्तम् अनुसंधेयम् ॥

अष्टमी ॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
इतो धर्माणि धारयन् ॥ ५ ॥

त्रीणि । पदा । वि । चक्रमे । विष्णुः । गोपाः । अदाभ्यः ।
इतः । धर्माणि । धारयन् ॥ ५ ॥

त्रीणि पदा पदानि वि चक्रमे विक्रान्तवान् । गोपाः गोपायिता अ-
दाभ्यः अहिंस्यः परैरनभिभाव्यो विष्णुः । अतः अस्मात् लोकात् पृथि-
व्या आरभ्य धर्माणि कर्माणि अग्निहोत्रादीनि धारयन् । अपि वा ।
अतः एभ्यस्त्रिभ्यः पदेभ्यो धर्माणि भूतधारकाणि रजांसि पृथिव्यन्तरिक्ष-
द्युलोकरूपाणि धारयन् । विचक्रमे इति संबन्धः ॥

नवमी ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ६ ॥

विष्णोः । कर्माणि । पश्यत । यतः । व्रतानि । पस्पशे ।
इन्द्रस्य । युज्यः । सखा ॥ ६ ॥

विष्णोः व्यापकस्य देवस्य कर्माणि पश्यत । हे स्तोतार इति शेषः ।
यतः । "इतराभ्योपि दृश्यन्ते" इति तृतीयार्थे तसिल् प्रत्य-
यः[1] । यैः कर्मभिः व्रतानि नानाविधानि युष्मदीयानि कर्माणि
पस्पशे स्पृशति बध्नाति वा । स्पश बन्धनस्पर्शनयोः । स्वरितेत् ।
छान्दसो लिट् । शर्पूर्वस्य खयः शेषः । पुनः कीदृशो विष्णुः ।
इन्द्रस्य देवस्य युज्यः योग्यः अनुगुणः सखा समानख्यानो मित्रभू-

1 So S'.

तः ॥ युज्य इति । युजेः संपदादिलक्षणे क्विपि युग् इति पदं भवति । युजि योगे साधुः । "तत्र साधुः" इति यत् ॥

[इति] तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"तद् विष्णोः" इति द्वितीयं सूक्तम् । तत्र आद्ययोर्ऋचोः सर्वसंपत्कर्मणि "विष्णोर्नु कम्" इत्यत्र विनियोगोऽभिहितः ॥

दर्शपूर्णमासयोः "वेदः स्वस्तिः" इति वेदं विमुञ्चेत् । "वेदः स्वस्तिरिति वेदं विचृतति" इति [वै० १. ४] वैतानसूत्रात् ॥

प्रायणीयेष्टौ अनया स्वस्तियागम् अनुमन्त्रयेत । "प्रायणीयायां पथ्यायाः स्वस्तेः" इति प्रक्रम्य "पथ्या रेवतीर्वेदः स्वस्तिः" इति [वै० ३. ३] सूत्रितम् ॥

सर्वव्याधिभैषज्यार्थं व्याधितशरीरं मौञ्जैः पाशैः पर्वसु बद्ध्वा "अग्नाविष्णू" इति द्वाभ्यां शरपिञ्जूलीभिः सह उदकघटं संपात्य अभिमन्त्र्य व्याधितम् आप्लावयेद् अवसिञ्चेद् वा । तद् उक्तं संहितविधौ । "अग्नाविष्णू[७. ३०] सोमारुद्रा[७. ४३]" इति प्रक्रम्य "मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिराप्लावयत्यवसिञ्चति" इति [कौ० ४. ८] ॥

तथा सर्वसंपत्कामः अनेन द्यृचेन अग्नाविष्णू यजेत उपतिष्ठेत वा । [कौ० ७. १०] ॥

गोदानाख्ये संस्कारकर्मणि "स्वाक्तम्"[१] इत्यनया अञ्जनम् अभिमन्त्र्य ब्रह्मचारिणोऽक्षिणी अभ्यञ्ज्यात् । "आयुर्दाः[२. १३] इति गोदानं कारयिष्यन्" इति [कौ० ७. ४] प्रक्रम्य "स्वाक्तं म इत्यनक्ति" इति [कौ० ७. ५] हि सूत्रितम् ॥

पशावज्यमानं यूपम् अनया ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "स्वाक्तं म इत्यज्यमानम्" इति वैतानसूत्रात् [वै० २. ६] ॥

आभिचारकर्मणि "इन्द्रोतिभिः"[१] इत्यनया अशनिहतवृक्षसमिधम् आदध्यात् ॥

उपनयने आयुष्कामस्य माणवकस्य मूर्धानम् "उप प्रियम्" इत्यनुमन्त्रयेत । "आवतस्ते[५. ३०. १] उप प्रियम्[७. ३३] अन्तकाय मृ-

"त्यवे" [८.१] इति [कौ०७.९.] सूत्रितम् ॥

पुष्टिकर्मणि तटाकादिसर्वजनसाधारणोदके मिश्रधान्यं प्रक्षिप्य "सं मा सिञ्चन्तु" [१] इत्यनया संपात्य अभिमन्त्र्य पुष्टिकामोऽश्नीयात् । "सं मा सिञ्चन्विति सर्वोदके मैश्रधान्यम्" इति [कौ० ३.७.] कौशिकसूत्रात् ॥

तथा अग्निकार्ये अनया माणवकोऽग्निं पर्युक्षेत् । "सं मा सिञ्चन्विति त्रिः पर्युक्षति" इति [कौ०७.८] कौशिकसूत्रात् ॥

तथा अग्निचयने अभिषिच्यमानं यजमानं ब्रह्मा एनाम् ऋचं वाचयेत् । "सं मा सिञ्चन्वित्यभिषिच्यमानं वाचयति" इति वैतानसूत्रात् [वै०५.२] ॥

तत्र प्रथमा ॥

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ७ ॥

तत् । विष्णोः । परमम् । पदम् । सदा । पश्यन्ति । सूरयः ।
दिविऽइव । चक्षुः । आऽततम् ॥ ७ ॥

तत् प्रसिद्धं पूर्वत्रोक्तं वा विष्णोः व्यापकस्य देवस्य परमम् उत्कृष्टं पूर्णं वा पदम् स्थानम् पद्यते गम्यत इति पदं ज्ञातव्यं तत्त्वम् सदा सर्वदा सूरयः मेधाविनः पश्यन्ति साक्षात्कुर्वन्ति । कीदृशम् । दिवि द्युलोके चक्षुरिव आततम् । सर्वेषां चक्षुःस्थानीयं सूर्यमण्डलम् इह चक्षुःशब्देनोच्यते । "चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः" इति हि निगमः [ऋ०१.११५.१] । आततम् समन्ताद् विस्तारितम् । "गतिरनन्तरः" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् । सूर्यमण्डलमिव सर्वत्र प्रकाशस्वरूपं तत्त्वं पश्यन्तीत्यन्वयः ॥

द्वितीया ॥

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ॥ ८ ॥

दिवः । विष्णो इति । उत । वा । पृथिव्याः । महः । विष्णो इति । उरोः ।
अन्तरिक्षात् ।

हस्तौ। पृणस्व। बहुऽभिः। वसव्यैः। आऽप्रयच्छ। दक्षिणात्। आ।
उत। सव्यात्॥ ८॥

हे विष्णो देव दिवः द्युलोकात् उत वा अपि वा पृथिव्याः महः महतः दिवः पृथिव्याश्च महतोन्यस्मात् महर्लोकादेः। ॠमहच्छब्दात् पञ्चम्येकवचने टिलोपश्छान्दसः। महतेर्वा पूजार्थात् किबन्तात् पञ्चम्येकवचनम्ॠ। यद्वा मह इति पदम् अन्तरिक्षस्य विशेषणम्। हे विष्णो। पुनरामन्त्रणम् आदरार्थम्। उरोः विस्तीर्णात्। ॠभाषितपुंस्कत्वेन नुमभावःॠ। अन्तरिक्षात् लोकात्। आनीतैरिति शेषः। बहुभिः अधिकैः वसव्यैः वसूनां समूहैः। ॠ"वसोः समूहे च" इति यत् प्रत्ययःॠ। हस्तौ त्वदीयौ पृणस्व पूरय। द्युलोकादिभ्य आनीतैर्बहुभिर्धनैस्त्वदीयौ हस्तौ पूरय। प्रभूतं धनराशिं हस्ताभ्यां गृहाणेत्यर्थः। ततस्तं प्रभूतं धनराशिं दक्षिणात् हस्ताद् आप्रयच्छ आभिमुख्येन अस्मभ्यं देहि। उत अपि च सव्यात् वामहस्ताच्च आ। प्रयच्छेत्यनुषङ्गः। ॠदाण् दाने। "पाघ्रा०" इत्यादिना यच्छादेशःॠ॥

तृतीया॥

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी॥ १॥

इडा। एव। अस्मान्। अनु। वस्ताम्। व्रतेन। यस्याः। पदे। पुनते।
देवऽयन्तः।
घृतऽपदी। शक्वरी। सोमऽपृष्ठा। उप। यज्ञम्। अस्थित। वैश्वऽदेवी॥ १॥

इडा धेनुरूपा। एवशब्दः अवधारणे। अस्मान् सत्कर्मकारिणः व्रतेन कर्मणा अनु वस्ताम् अनुक्रमेणाच्छादयतु। अस्माभिरनुष्ठीयमानं कर्म यथा फलप्रदं भवति तथा करोत्वित्यर्थः। ॠवस आच्छादने। आदादिकः अनुदात्तेतॠ। यस्या इडायाः पदे पादे देवयन्तः देवकामा यजमानाः पुनते स्वात्मानं पुनन्ति। ॠदेवशब्दात् "सुप आ-

१ P अस्मात्.

"त्मनः क्यच्" ॥ । घृतपदी घृतं पदे यस्याः सा । "यत्रयत्र न्यक्रामत् तत्र घृतमपीड्यत तस्माद् घृतपद्युच्यते" इति तैत्तिरीयश्रुतेः [तै० सं० २. ६. ७. १] । शक्करी शक्ता फलदाने समर्था । ॥ शकेः क्कनिपि "वनो र च" इति ङीब्रेफौ ॥ । सोमपृष्ठा सोमः पृष्ठे यस्यास्तादृशी वैश्वदेवी विश्वेषां देवानाम् इयं विश्वदेवात्मिका इडा नाम धेनुः यज्ञम् अस्मदीयम् उपास्तृत सर्वत्र विस्तृतं करोतु । ॥ स्तृङ् आच्छादने । छान्दसे लुङि सिचो लुकि रूपम् ॥ ॥

चतुर्थी ॥

वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ।
हविष्कृतो यज्ञिया यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं जुषन्ताम् ॥ १ ॥

वेदः । स्वस्तिः । द्रुऽघनः । स्वस्तिः । परशुः । वेदिः । परशुः । नः । स्वस्ति ।
हविःऽकृतः । यज्ञियाः । यज्ञऽकामाः । ते । देवासः । यज्ञम् । इमम् । जुषन्ताम् ॥ १ ॥

वेदो नाम दर्भमुष्टिः स्वस्तिः अविनाशहेतुः अस्माकं भवतु । ॥ अयं स्वस्तिशब्दो निपातो गुणमात्रे अविनाशे वर्तते । अत्र मतुव्लोपाद् गुणिनि अविनाशहेतौ वर्तते । अत एव सुबुत्पत्तिः । यद्वा सुपूर्वात् अस्तेः क्तिनि भूभावाभावश्छान्दसः ॥ । द्रुघणः द्रुः द्रुमो हन्यते अनेनेति द्रुघणः लवित्रादिः । ॥ "करणेयोविद्रुषु" इति अप् घत्वं च ॥ । स च स्वस्तिः अविनाशहेतुर्भवतु । परशुः पर्शुः पार्श्वद्वयः तृणादिच्छेदनी वेदिः हविरासादनाधारभूता परशुः वृक्षच्छेदनसाधनभूतश्च नः अस्माकं स्वस्तिः अविनाशहेतुर्भवतु । किं च हविष्कृतः हविःसंपादका यज्ञियाः यज्ञार्हा यज्ञकामाः यज्ञं कामयमानाः । अथ वा हविष्कृतः । ॥ षष्ठ्यन्तं पदम् ॥ । हविःसंपादकस्य मम यज्ञ-

१ A B D R Ś C[s] परशु°. We with K K[m] V P P[2] V. २ J C[p] परशुः.

1 S′ विस्तृतां. 2 S′ °सदना°. 3 S′ स्वस्ति.

कामास्ते प्रकृताः वेदद्रुघणादयो देवासः देवात्मका इमम् अस्मदीयं यज्ञं जुषन्ताम् सेवन्ताम् ॥

पञ्चमी ॥

अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥ १ ॥

अग्नाविष्णू इति। महि। तत्। वाम्। महिऽत्वम्। पाथः। घृतस्य। गुह्यस्य। नाम।
दमेऽदमे। सप्त। रत्ना। दधानौ। प्रति। वाम्। जिह्वा। घृतम्। आ। चरण्यात् ॥ १ ॥

हे अग्नाविष्णू। ऋ "देवताद्वन्द्वे च" इति पूर्वपदस्य आनङ्ऋ। वाम् युवयोस्तत् वक्ष्यमाणं प्रसिद्धं वा महित्वम् माहात्म्यं महि महत् महनीयं पूजनीयम्। ऋइन् सर्वधातुभ्यः इति [उ० ४. ११७] महेरिन् प्रत्ययःऋ। यतः गुह्यस्य गोपनीयस्य गुहारूपजुहूगतस्य वा नाम आज्यसांनाय्यादिनामवतो[3] घृतस्य क्षरणशीलस्य वस्तुनः पाथः पिबथः। ऋपा पाने। शपो लुक् छान्दसःऋ। कीदृशौ। दमेदमे गृहेगृहे सर्वेषु यज्वगृहेषु सप्त सप्तसंख्याकानि रत्ना रत्नानि रमणीयानि गवाश्वादिसप्तपशुरूपाणि रत्नानि दधानौ धारयन्तौ। किं च वाम् युवयोः प्रति प्रत्येकं जिह्वा रसना घृतम् हूयमानम् आज्यम् आ चरण्यात् आभिमुख्येन प्राप्नोतु। भक्षयत्वित्यर्थः। एतत् महित्वम् इति पूर्वेण संबन्धः। ऋचरण गतौ इति कण्ड्वादौ पठ्यते। तस्मात् लेटि आडागमःऋ ॥

षष्ठी ॥

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥ २ ॥

---

1 S' ततः for यतः. 2 S' °सांनायादि°. 3 S' नामव for °नाम्नतो, which is conjectural. 4 S' गवाश्वादिरूपाणि for गवाश्वादि°.

अग्नाविष्णू इति । महि । धाम । प्रियम् । वाम् । वीथः । घृतस्य । गुह्या । जुषाणौ ।

दमेऽदमे । सुऽस्तुत्या । ववृधानौ । प्रति । वाम् । जिह्वा । घृतम् । उत् । चरण्यात् ॥ २ ॥

हे अग्नाविष्णू वाम् युवयोः धाम स्थानं तेजो वा महि महत् महनीयं वा प्रियम् इष्टं सर्वेषां प्रीतिकारि वा भवति । किं च घृतस्य गुह्या गुह्यानि सांनाय्यचरुपुरोडाशादीनि स्वरूपाणि वीथः भक्षयथः । वी गतिप्रजनकान्त्यशनखादनेषु । जुषाणौ परस्परं प्रीयमाणौ दमेदमे गृहेगृहे सर्वेषु यजमानगृहेषु सुष्टुत्या शोभनया गुणिनिष्ठगुणाभिधानरूपया स्तुत्या वावृधानौ अत्यर्थं वर्धमानौ । यस्माद् एवं तस्माद् वाम् युवयोः जिह्वा प्रति प्रत्येकं घृतम् उच्चरण्यात् प्राप्नोतु भक्षयतु । चरण्यते रूपसिद्धिरुक्ता ॥

सप्तमी ॥

स्वाक्तं मे द्यावापृथिवी स्वाक्तं मित्रो अकरयम ।

स्वाक्तं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वाक्तं सविता करत् ॥ १ ॥

सुऽआक्तम् । मे । द्यावापृथिवी इति । सुऽआक्तम् । मित्रः । अकः । अयम् । सुऽआक्तम् । मे । ब्रह्मणः । पतिः । सुऽआक्तम् । सविता । करत् ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ मे मदीयम् अक्षियुगं यूपं वा स्वाक्तम् अञ्जनेन सुष्ठु आ सर्वतः अक्तम् रञ्जितं कुरुताम् । अयं परिदृश्यमानो मित्रः सूर्यः स्वाक्तम् अकः करोतु । सर्वत्र अक्षियुगं यूपो वा कर्म । अकः इति । करोतेश्छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुकि गुणे "हल्ङ्या०" इत्यादिना तिपो लोपे रूपम । तथा ब्रह्मणः मन्त्रस्य पतिः पालयिता देवः मे मदीयम् अक्षि यूपं वा स्वाक्तं करोतु । सविता सर्वस्य प्रेरयिता देवोपि स्वाक्तं करत् करोतु । करोतेर्लुङि "कृमृदरुहिभ्यश्छन्दसि" इति च्लेः अङ् । "०अमाङ्योगेपि" इति अडभावः । पञ्चमलकारे वा अडागमे रूपम ॥

अष्टमी ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवन्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ १ ॥

इन्द्र । ऊतिऽभिः । बहुलाभिः । नः । अद्य । यावत्ऽश्रेष्ठाभिः । मघऽवन् ।
शूर । जिन्व ।
यः । नः । द्वेष्टि । अधरः । सः । पदीष्ट । यम् । ऊं इति । द्विष्मः । तम् ।
ऊं इति । प्राणः । जहातु ॥ १ ॥

हे इन्द्र बहुलाभिः बह्वीभिः ऊतिभिः रक्षाभिः अद्य इदानीं नः अस्मान् । पालयेति शेषः । हे मघवन् धनवन् हे शूर शौर्यवन् इन्द्र श्रेष्ठाभिः प्रशस्यतमाभिस्ताभिरूतिभिः यावत् साकल्येन अस्मान् जिन्व प्रीणय । जिवि प्रीणने । इदित्वात् नुम् । यः शत्रुः नः अस्मान् द्वेष्टि हिनस्ति सः अधरः अधोमुखः सन् पदीष्ट पततु । सांहितिकः सकारश्छान्दसः । यं च शत्रुं वयं द्विष्मस्तं तदीयः प्राणो जहातु परित्यजतु । ओहाक् त्यागे । जुहोत्यादित्वात् शपः श्लुः । "श्लौ" इति द्विर्वचनम् । "तिङ्ङतिङः" इति निघातः ॥

नवमी ॥

उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

उप । प्रियम् । पनिप्नतम् । युवानम् । आहुतिऽवृधम् ।
अगन्म । बिभ्रतः । नमः । दीर्घम् । आयुः । कृणोतु । मे ॥ १ ॥

प्रियम् सर्वेषाम् इष्टं प्रीणनकारिणं वा पनिप्नतम् शब्दायमानं स्तूयमानं वा । पण व्यवहारे स्तुतौ च । पन च इत्यस्माद् यङुगन्तात्छतरि छान्दसी रूपसिद्धिः । युवानम् फलस्य मिश्रयितारं नित्यतरुणं वा आहुतिवृधम् आज्याद्याहुतिभिर्वर्धमानम् अग्निं नमः नम-

१ A °वञ्छ°. R °वँछ°. We with $B^{b}$DKK$^{m}$S$^{m}$VCs.

स्कारम् हविर्लक्षणम् अन्नं वा बिभ्रतः धारयन्तो वयम् उपागन्म उपगच्छेम परिचरेम । ॐगमेश्छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुकि "मो नो धातोः" "म्वोश्च" इति नकारे रूपम् ॐ । अतः मे मम मदीयस्य वा माणवकस्य दीर्घं शतसंवत्सरपरिमितम् आयुः कृणोतु करोतु ॥

दशमी ॥

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।
सं मायमग्निः सिञ्चतु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

सम् । मा । सिञ्चन्तु । मरुतः । सम् । पूषा । सम् । बृहस्पतिः ।
सम् । मा । अयम् । अग्निः । सिञ्चतु । प्रऽजया । च । धनेन । च । दीर्घम् । आयुः । कृणोतु । मे ॥ १ ॥

मरुदादयो देवताः मा मां फलार्थिनं यष्टारं प्रजया पुत्रादिरूपया धनेन च सं सिञ्चन्तु संयोजयन्तु अभिषिञ्चन्तु वा । ॐपरस्परसमुच्चयार्थौ चशब्दौ । प्रतिदेवतं क्रियानुषङ्गद्योतनार्थं सम् इति उपसर्गः ॐ । किं च मे मम मदीयस्य माणवकस्य वा दीर्घम् आयुः कृणोतु । अग्निः संनिहितत्वाद् आयुष्करणे संबध्यते । अपि वा मरुदादयः । तदा कृणोत्विति प्रत्येकविवक्षया एकवचनम् ॥

[ इति ] तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

विद्वेषिणः पुमपत्यराहित्याय "अग्ने जातान्" इत्यनया अश्वतरीमूत्रं पाषाणेन संघृष्य अभिमन्त्र्य ओदनेन सह विद्वेषिण्यै प्रयच्छेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनया अश्वतरीमूत्रं पाषाणाभ्यां संघृष्य अभिमन्त्र्य तस्या अलंकारान् आलिम्पेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनया विद्वेषिण्याः सीमन्तम् ईक्षेत ॥

विद्वेषिण्या वन्ध्याकरणकर्मणि "प्रान्यान्" इति तृचेन पूर्वमन्त्रोक्तानि कर्माणि कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "अग्ने जातान् [ १ ] इति न वीरं जनयेत् प्रान्यान्[ ७.

"३६] इति न विजायेतेत्यश्वतरीमूत्रम् अश्ममण्डलाभ्यां संघृष्य भक्तेऽलं-"कारे। सीमन्तम् अन्वीक्षते" इति [कौ० ४. १२] ॥

अभिचारकर्मणि "अग्ने जातान्" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्याम् अशनि-हतवृक्षसमिध आदध्यात् ॥

अग्निचयने पञ्चम्यां चितौ असपत्नेष्टकाम् उपधीयमानाम् "अग्ने जा-तान्" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "अग्ने जातान् इति द्वाभ्यां पञ्चम्यां चितावसपत्नेष्टका निधीयमानाः" इति [वै० ५. २] हि वैतानं सूत्रम् ॥

विवाहे चतुर्थदिवसे "अक्षौ नौ" इत्यनया वरवध्वौ अन्योन्यम् अक्षिणी अज्ञाताम्। "अक्षौ नाविति समञ्जाते" इति [कौ० १०. ५] सूत्रम् ॥

[सौभाग्यसंवर्न]नकर्मणि "इदं खनामि" इति पञ्चर्चेन सौवर्चलमूलं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन पञ्चर्चेन शङ्खपुष्पीपुष्पम् अभिमन्त्र्य स्त्रियाः शिरसि बध्नीयात् ॥

"इदं खनामीति सौवर्चलम् ओषधिवत् शुक्लप्रसूनं शिरस्युपवृत्य ग्रामं प्रविशति" इति सूत्रम् [कौ० ४. १२] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवोऽनागस्तस्ते वयमदितये स्याम ॥ १ ॥

अग्ने। जातान्। प्र। नुद। मे। सऽपत्नान्। प्रति। अजातान्। जातऽवेदः। जातऽवेदः। नुदस्व।

अधःऽपदम्। कृणुष्व। ये। घृतन्यवः। अनागसः। ते। वयम्। अदितये। स्याम ॥ १ ॥

---

१ D °जातांजा°. We with A B B^h K K^in R S^m V Cs. २ A B B^h D K K^in R S^m P P^2 Cp °नागसस्ते. Cs °नागसस्ते corrected to नागसस्ते. We with J. ३ P P^2 ते.

---

1 S' विजायेत अश्वतरी. 2 S' भक्तालंकारे. We with *Kaus'ika*. 3 We supply this from the *Kes'avî*. 4 S' शिरस्यपिहत्य. We with *Kaus'ika*.

हे अग्ने मे मदीयान् जातान् निष्पन्नान् सपत्नान् शत्रून् प्र णुद प्रकर्षेण प्रेरय अतिदूरम् अपसारय ॥ तथा हे जातवेदः जातानां वेदितः जातप्रज्ञ वा अजातान् अनुत्पन्नान् उत्पत्स्यमानान् शत्रुपुत्रान् प्रति नुदस्व विनाशय ॥ किं च ये शत्रवः पृतन्यवः संग्रामेच्छवः । ⁂पृतनाशब्दाद् इच्छायां क्यचि "कण्ड्वादिपृतनस्यर्चि लोपः" इति अन्त्यलोपः⁂ । तान् अस्माभिः सह योद्धुम् इच्छून् सपत्नान् अधस्पदम् पादस्याधस्ताद् देशे कृणुष्व कुरु । मदीयपादाधःप्रदेशवर्तिनः कुरु । एवं शत्रुबाधा प्रार्थिता । अथ तद्दोषपरिहारश्चतुर्थपादेन प्रार्थ्यते । ते तादृशाः शत्रुपीडाकाङ्क्षिणो वयम् । ⁂पुत्रादिसाहित्यं वक्तुं बहुवचनम्⁂ । अदितये अदितिः अखण्डनीया पृथिवी अदीना वा देवमाता तस्यै । ⁂षष्ठ्यर्थे चतुर्थी⁂ । अदित्याः प्रसादाद् अनागसः स्याम पापरहिता भवेम । अयम् अर्थः । भूमिर्हि पुण्यकृतः स्वस्योपरि चिरकालम् अवस्थापयति पापकृतस्तिरस्करोति । अतः अत्र शत्रुपीडाकाङ्क्षिणोपि अस्मान् तत्पापपरिहारेण भूमिश्चिरकालम् अवस्थापयतिति प्रार्थ्यते । शत्रुहननार्थम् अग्नेः प्रार्थनाद् वा तन्माता अदितिः पापरहितान् अस्मान् करोतिति आशास्यते । यद्वा अदितये अखण्डितत्वाय अदीनत्वाय अनभिशस्तये वा अनागसः स्यामेति ॥

द्वितीया ॥

प्रान्यान्त्सपत्नान्त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ॥ १ ॥

प्र । अन्यान् । सऽपत्नान् । सहसा । सहस्व । प्रति । अजातान् । जातऽवेदः । नुदस्व ।

इदम् । राष्ट्रम् । पिपृहि । सौभगाय । विश्वे । एनम् । अनु । मदन्तु । देवाः ॥ १ ॥

---

१ Only K has °जातांजा°. २ Cs पिपृहि changed to पिपृहि. We with the rest of our authorities. ३ P Cp सहस्व. We with P² J K. ४ Cp पिपृहि. ५ P मदंति.

1 S' तमोपपरि°.

हे जातवेदः अन्यान् अस्मत्प्रातिकूल्यकारित्वेन विभिन्नान् सपत्नान् सहसा बलेन शीघ्रं वा प्र सहस्व प्रकर्षेण अभिभव। प्रत्यजातान् इति पादो व्याख्यातः। किं च इदम् अनुभूयमानं स्वनिवासाश्रयं राष्ट्रम् अस्मदीयं जनपदं सौभगाय सौभाग्याय पिपृहि पूरय। यस्मिन् देशे परोपद्रवकारी वर्तते स देशः सस्यादिना अभिवृद्धो न भवतीति प्रसिद्धिः। अतः अत्र राज्यस्य सौभाग्यपूर्तिः प्रार्थ्यते। किं च विश्वे सर्वे देवाः एनं शत्रुहननकर्मणः प्रयोक्तारम् अनु मदन्तु अनुमोदन्ताम्॥

तृतीया॥

इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत।
तासां ते सर्वासामहमश्मना बिलमप्यधाम्॥ २॥

इमाः। याः। ते। शतम्। हिराः। सहस्रम्। धमनीः। उत।
तासाम्। ते। सर्वासाम्। अहम्। अश्मना। बिलम्। अपि। अधाम्॥ २॥

हे विद्वेषिणि स्त्रि ते त्वदीया या इमाः शतम् शतसंख्याका हिराः नाड्यः गर्भधारणार्थम् अन्तरवस्थिताः सूक्ष्मा या नाड्यः सन्ति उत अपि च सहस्रम् सहस्रसंख्याका धमनीः धमन्यः गर्भाशयस्य अवष्टम्भिका बाह्याः स्थूला या नाड्यः सन्ति ते त्वदीयानां तासां सर्वासां नाडीनां बिलम् मुखम् अश्मना पाषाणेन अहम् वन्ध्याकरणकर्मप्रयोक्ता अप्यधाम् अपिहितवान् अाच्छादितवान् अस्मि। यथा गर्भधारणक्षमा न भवन्ति तथा अकार्षम्। छान्दसो वा लुङ्। अपिदधामि॥

चतुर्थी॥

परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः।
अस्वं[1] त्वाप्रजसं कृणोम्यश्मानं ते अपिधानं कृणोमि॥ ३॥

परम्। योनेः। अवरम्। ते। कृणोमि। मा। त्वा। प्रऽजा। अभि। भूत्।
मा। उत। सूनुः।

[1] A B D J C[s] सूतुः. We with K K[m] R S[m] V. [2] B changes to अप्स्व°. We with A B[h] D R S[m] K V.

परायतः । निवर्तनम् । आयतः । प्रतिनन्दनम् ॥ १ ॥

इदं वशीकरणकारि भेषजम् सौवर्चलाख्यं खनामि उद्धरामि । औषधं विशिनष्टि । मांपश्यम् । पश्यतीति पश्यः । "पाघ्राध्माधेट्दृशः शः" इति शः । "शित्त्वात् पाघ्रा०" इत्यादिना पश्यादेशः । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इत्यत्र बहुलग्रहणात् मांपश्यम् इत्यत्र द्वितीयाया अलुक् । मामेव नारीं पश्यत् ममैवानुकूलम् । यद्वा । पश्यतिरन्तर्णीतण्यर्थः । मामेव असाधारण्येन पत्ये प्रदर्शयत् पतिवशीकारकम् अभिरोरुदम् पत्युः अन्यनारीसंसर्गम् अभितो निरुन्धत् । रुधिर् आवरणे । यङन्तात् पचाद्यच् । "यङोचि च" इति यङो लुक् । "न धातुलोप आर्धधातुके" इति लघूपधगुणनिषेधः । धकारस्य दकारोपजनश्छान्दसः । परायतः स्वस्मात् पराङ्मुखं गच्छतः पत्युः निवर्तनम् निषेधकं पुनरावर्तनकारणम् आयतः मां प्रति आगच्छतः पत्युः प्रतिनन्दनम् आनन्दकारि । एवंगुणविशिष्टं भेषजं खनामीति संबन्धः । परायत इति । परापूर्वाद् आङ्पूर्वाच्च इण् गतौ इत्यस्मात् शतरि "इणो यण्" इति यण् आदेशः । निवर्तनं प्रतिनन्दनम् इत्यत्र करणे ल्युट् ॥

अष्टमी ॥

येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि ।
तेना नि कुर्वे त्वामहं यथा तेसानि सुप्रिया ॥ २ ॥

येन । निऽचक्रे । आसुरी । इन्द्रम् । देवेभ्यः । परि ।
तेन । नि । कुर्वे । त्वाम् । अहम् । यथा । ते । असानि । सुऽप्रिया ॥ २ ॥

आसुरी असुरस्य माया । "असुरस्य स्वम्" "मायायाम् अण्" इति अण् प्रत्ययः । देवेभ्यः परि । "अपपरी वर्जने" इति परिः कर्मप्रवचनीयः । "पञ्चम्यपाङ्परिभिः" इति पञ्चमी । देवान् वर्जयित्वा इन्द्रं येन भेषजेन निचक्रे युद्धे स्वाधीनं

1 S' आप०.

कृतवती । यद्वा असुरः असुमान् । ‡रो मत्वर्थीयः‡ । बलवान् पुलोमाख्यः । तस्येयम् आसुरी शची । शेषं पूर्ववत् । तेन भेषजेन अहम् हे पते त्वां नि कुर्वे स्वाधीनं कुर्वे । यथा येन प्रकारेण ते तव सुप्रिया अत्यन्तं प्रिया असाधारण्येन प्रीतिजननी असानि भवानि । तथा नि कुर्वे इति संबन्धः । ‡अस्तेर्लोटि "आडुत्तमस्य पिच्च" इति आडागमः‡ ॥

नवमी ॥

प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् ।
प्रतीची विश्वान् देवान् तां त्वाच्छावदामसि ॥ ३ ॥

प्रतीची । सोमम् । असि । प्रतीची । उत । सूर्यम् ।
प्रतीची । विश्वान् । देवान् । ताम् । त्वा । अच्छऽआवदामसि ॥ ३ ॥

अनया प्रकृता शङ्खपुष्प्याख्या ओषधिः स्तूयते । हे ओषधे सोमम् प्रतीची वशीकरणार्थं प्रत्यगञ्चना असि भवसि । उत अपि च सूर्यम् सुष्ठु प्रेरकम् आदित्यं प्रतीची भवसि । अहोरात्राभिमानिनोः सूर्याचन्द्रमसोः अभिमुखा भवसीत्यर्थः । किं बहुना विश्वान् देवान् प्रतीची असि । ‡प्रतिपूर्वात् अञ्चतेः क्विन् । "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीप् । "अचः" इति अकारलोपः । "चौ" इति पूर्वपदस्य दीर्घः‡ । यत एवम् अतः तां सर्वदेववशीकरणसमर्थां त्वा त्वाम् अच्छावदामसि पतिरुचिकरणाय अभिमुखं स्तुमः । ‡"अच्छ गत्यर्थवदेषु" इति अच्छशब्दो गतिसंज्ञकः‡ ॥

दशमी ॥

अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद ।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ॥ ४ ॥

अहम् । वदामि । न । इत् । त्वम् । सभायाम् । अह । त्वम् । वद ।

---

१ P P̊ J वदानि. We with A B B̊ D K K̊ R S̊ V Cs Cr. २ Such is the accent of all our MSS. and vaidikas. ३ B ममेदस°. We with A B̊ D K K̊ R S̊ V Cs.

मम । इत् । असः । त्वम् । केवलः । न । अन्यासाम् । कीर्तयाः । चन ॥ ४ ॥

पतिवशीकरणाय ओषधिं संप्रार्थ्य नारी पुनः स्वपतिं ब्रूते । हे पते अहं वदामि त्वं नेत् नैव वदेः । एवं पत्युः सर्वत्र वदननिषेधे प्राप्ते स्थानान्तरे तस्य वाग्व्यापारं दर्शयति । अहशब्दो विनिग्रहार्थीयः । त्वं तु सभायां विद्वत्समाजे वद । अयम् अर्थः । हे पते यदा मत्समीपम् आगच्छसि तदा अहमेव वदामि त्वं तु मदुक्तमेव अनुवद कदापि प्रतिकूलं मा वादीः । मद्व्यतिरिक्तस्थानेपि सभायामेव यथेच्छं वद मान्यत्रेति । एतद् एव प्रकारान्तरेणाह । यथा हे पते त्वम् । इत् अवधारणे । ममैव केवलः असाधारणः असः भवेः । अन्यासां नारीणां नामधेयमपि [ न कीर्तयाः ] न कीर्तयेः ॥

एकादशी ॥

यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः ।
इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत् ॥ ५ ॥

यदि । वा । असि । तिरःऽजनम् । यदि । वा । नद्यः । तिरः ।
इयम् । ह । मह्यम् । त्वाम् । ओषधिः । बद्ध्वाऽइव । निऽआनयत् ॥ ५ ॥

हे पते यदि तिरोचनम् । ※क्रियाविशेषणम् एतत्※ । तिरः तिरोभूतम् अचनं गमनं यस्मिन् कर्मणि तत् तिरोचनम् । तिरोभूतगतिः मच्चक्षुर्विषयो न भवेः । वाशब्दो विकल्पे । यदि वा नद्यः निम्नगास्तिरः आवयोर्व्यवधायिका भवेयुः । ह । तथापीत्यर्थः । इयं प्रस्तुता ओषधिः शङ्खपुष्प्याख्या मह्यं पतिप्रीतिकामिन्यै त्वां पतिं बद्ध्वेव निगृह्येव न्यानयत् नितराम् अभिमुखं नयतु । ※नयतेर्लेटि अडागमः※ ॥

तृतीयं सूक्तम् ॥

[ इति ] सप्तमे काण्डे तृतीयोनुवाकः ॥

---

१ P J नद्यः. We with P Cp.

चतुर्थेनुवाके त्रीणि सूक्तानि । तत्र "दिव्यं सुपर्णम्" इति आद्यसूक्ते आद्ययर्चा पुष्टिकर्मणि वृषभवपया इन्द्रं यजेत । "दिव्यं सुपर्णम् इत्यृषभदण्डिनो वपयेन्द्रं यजते" इत्यादि [कौ० ३. ७] सूत्रम् ॥

अन्वारम्भणीयेष्टौ सारस्वतं पुरोडाशं "यस्य व्रतम्" इति अनुमन्त्रयेत । "सरस्वत्यै चं चरुं सरस्वते द्वादशकपालं सरस्वति व्रतेषु[७. ७०] यस्य व्रतम्"[७. ४१] इति वैतानं सूत्रम [वै० २. ४] ॥

नवगृहकरणार्थं भूशुद्धये "अति धन्वानि" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां गृहनिर्माणस्थाने श्येनदेवताकं चरुं जुहुयात् । सूत्रितं हि । "अति धन्वानीत्यवशाननिवेशनानुचरणानिनयनेज्या" इति [कौ० ५. ७] ॥

अग्निष्टोमे हविर्धाने पुरोडाशपिण्डावापानन्तरम् उद्गान् पिण्डान् "श्येनो नृचक्षाः" इति अनुमन्त्रयेत । सूत्रितं वैताने । "हविर्धानं यथाचमसं दक्षिणतः" इति प्रक्रम्य "एतं सधस्थाः[६. १२३] श्येनो नृचक्षाः[७. ४२. २] इत्यनुमन्त्रयते" इति [वै० ३. १२] ॥

सर्वव्याधिभैषज्यार्थं व्याधितशरीरं मौञ्जैः पाशैः पर्वसु बद्ध्वा "सोमारुद्रा" इति द्वाभ्यां शरपिञ्जूलीभिः सह उदकघटं संपात्य अभिमन्त्र्य व्याधितम् आप्लावयेत् अवसिञ्चेद् वा । तद् उक्तं संहिताविधौ । "अग्नाविष्णू[७. ३०] सोमारुद्रा[७. ४३]" इति प्रक्रम्य "मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिरासावयत्यवसिञ्चति" इति [कौ० ४. ८] ॥

तथा सर्वसंपत्कामः अनेन द्यृचेन सोमारुद्रौ यजेत उपतिष्ठेत वा ॥

मिथ्याभिशस्तस्य लोकनिन्दानिवृत्त्यर्थं "शिवास्ते" इत्यनया ओदनं मन्थं वा अभिमन्त्र्य दद्यात् ॥

तथा अनयैव द्रुंघणमणिं तदाकृतिं पलाशायोलोहहिरण्यानाम् अन्यतमस्य मणिं वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् ॥

सूत्रितं हि । "उतामृतासुः[५. १. ७] शिवास्ते[७. ४४] इत्यभ्या- "ख्याताय प्रयच्छति । द्रुघणशिरो बध्नाति । प्रतिरूपं पलाशायोलोहहि- "रण्यानाम्" इति [कौ० ५. १०] ॥

1 S' omits च. We with the *Vaitāna*. 2 S' अतिधन्वानीत्यावसनानिवेशानुचरणानिःश्येनेज्येति. We with *Kauśika*. 3 S' द्रघण°. 4 S' इत्याभ्या°.

सांमनस्यकर्मणि "उभा जिग्यथुः" इत्यनया हस्त्यादियानं संपात्य अभिमन्त्र्य सांमनस्यकामान् आरोप्य सूत्रोक्तप्रकारेण स्वगृहम् आगत्य ओदनं मन्थं वा संपात्य अभिमन्त्र्य सह भोजयेत् । सूत्रितं हि । "उ-"भा जिग्यथुरित्यार्द्रपादाभ्यां सांमनस्यम् । यानेन प्रत्यञ्चो ग्रामान् प्र-"तिपाद्य प्रयच्छति" इति [कौ० ५. ६] ॥

तथा उक्थ्ये अच्छावाकयाज्याहोमानुमन्त्रणम् अनया ब्रह्मा कुर्यात् । "एतेषां याज्याहोमान् इन्द्रावरुणा सुतपौ[७. ६०] बृहस्पतिर्नः[७. ५३] उभा जिग्यथुः"[७. ४५] इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ४. १] ॥

ईर्ष्याविनाशार्थं "जनाद् विश्वजनीनात्" इत्येनाम् ईर्ष्यालुं पश्यन् जपेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनया सक्तुमन्थम् अभिमन्त्र्य ईर्ष्यावते दद्यात् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि ईर्ष्यावन्तं स्पृशन् एनाम् ऋचं जपेत् ॥

सूत्रितं हि । "ईर्ष्याया ध्राजिम[६. १८] जनाद् विश्वजनीनात्[७. ४६] त्वाष्ट्रेणाहम्[७. ७८. ३] इति प्रतिजापप्रदानाभिमर्शनानि" इति [कौ० ४. १२] ॥

तत्र प्रथमा ॥

दि॒व्यं सु॑प॒र्णं प॑य॒सं बृ॒हन्त॑म॒पां गर्भं॑ वृष॒भमोष॑धीनाम् ।
अ॒भीप॑तो वृ॒ष्ट्या त॒र्पय॑न्तमा नो॑ गो॒ष्ठे र॑यि॒ष्ठां स्था॑पयाति ॥ १ ॥

दि॒व्यम् । सु॒ऽप॒र्णम् । प॒य॒सम् । बृ॒हन्त॑म् । अ॒पाम् । गर्भ॑म् । वृ॒ष॒भम् । ओष॑धीनाम् ।

अ॒भीप॑तः । वृ॒ष्ट्या । त॒र्पय॑न्तम् । आ । नः॒ । गो॒ऽस्थे । र॒यि॒ऽस्थाम् । स्था-प॒या॒ति॒ ॥ १ ॥

दिव्यम् दिवम् अर्हतीति दिव्यः । [1]"छन्दसि च" इति यः । तं सुपर्णम् शोभनपतनं पयसम् पयस्वन्तम् । [2]पयःशब्दात् मनुपो

1 S' संवयाभिमंत्र्य. 2 S' प्रत्यंचात् ग्रामात्. We with *Kausika*. 3 S' पयःशब्दादुर्म-नस्यमनुपो.

लुक् ॥। उदकवन्तं बृहन्तम् महान्तम् अपां गर्भम् मध्यभूतम् ओषधीनां वृषभम् वर्षितारं वृद्धिकरम्। उपलक्षणम् एतत्। सर्वेषामपि वृषभम्। यद्वा अपां वृषभम् ओषधीनां गर्भम्। अभीपतः अभिगताः सर्वतः संगता आपोस्मिन्निति। ॥ "ऋक्पूरब्धूः०" इति अप् समासान्तः। "द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योप ईत्"। आद्यादित्वात् तसिः ॥। सर्वतो वृष्ट्या तर्पयन्तम्। विश्वम् इति शेषः। यद्वा। ॥ पॄ गतौ। क्विप्। छान्दसम् उपसर्गस्य दीर्घत्वम् ॥। अभिपतनशीलान् वृष्टिकामान् सर्वप्राणिनो वृष्ट्या तर्पयन्तं रयिष्ठाम् धनवति प्रदेशे तिष्ठन्तम् एवंगुणकं सरस्वन्तं देवं नः अस्मदीये गोष्ठे गोनिवासस्थाने आ स्थापयाति आस्थापयतु। इन्द्र इति विनियोगाद् अवगम्यते। सरस्वांस्तु मन्त्रान्तरप्रसिद्ध्या। आस्थापनकर्तृत्वेन इन्द्रस्यैव प्राधान्यात् तस्यैव यष्टव्यत्वम् ॥

द्वितीया ॥

यस्य व्रतं पशवो यन्ति सर्वे यस्य व्रत उपतिष्ठन्त आपः।
यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टस्तं सरस्वन्तमवसे हवामहे ॥ १ ॥

यस्य। व्रतम्। पशवः। यन्ति। सर्वे। यस्य। व्रते। उपऽतिष्ठन्ते। आपः।

यस्य। व्रते। पुष्टऽपतिः। निऽविष्टः। तम्। सरस्वन्तम्। अवसे। हवामहे ॥ १ ॥

यस्य सरस्वतो व्रतम् कर्म सर्वेपि पशवो यन्ति अनुगच्छन्ति। तन्निमित्तत्वात् पुष्टेः। यस्य च व्रते कर्मणि आपः उपतिष्ठन्ते परस्परं संगच्छन्ते। तन्निमित्तत्वाद् वृष्टेः। ॥ "अकर्मकाच्च" इति आत्मनेपदम् ॥। यस्य च व्रते कर्मणि पुष्टिपतिः तत्तत्पोषणपतिर्निविष्टः। तदधीनत्वाद् वृष्टेः पुष्टेश्च। तं तादृशं सरस्वन्तम् एतन्नामानं देवम् अवसे रक्षणाय तृप्त्यर्थं वा हवामहे आह्वयामः ॥

---

१ A पुष्टि°.

1 S' स्वरस्वतं. 2 S' आस्थापनेन कर्तृ°. 3 S' सरस्वतम्.

तृतीया ॥

आ प्रत्यञ्चं दाशुषे दाश्वंसं सरस्वन्तं पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।
रायस्पोषं श्रवस्युं वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥ २ ॥

आ । प्रत्यञ्चम् । दाशुषे । दाश्वंसम् । सरस्वन्तम् । पुष्टऽपतिम् । रयिऽस्थाम् । रायः । पोषम् । श्रवस्युम् । वसानाः । इह । हुवेम । सदनम् । रयीणाम् ॥ २ ॥

प्रत्यञ्चम् प्रत्यगञ्चनं हविर्दत्तवतः प्रीणयितुम् अभिमुखं गच्छन्तं दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय दाश्वांसम् इष्टफलं प्रयच्छन्तम् । ✕"दाश्वान् साह्वान्०" इति क्वसौ निपातितः✕ । पुष्टपतिम् पोषणपतिं रयिष्ठाम् धनस्थाने तिष्ठन्तं रायस्पोषम् रायो धनस्य पोषं पोषकम् । ✕पुष पुष्टौ । पचाद्यच्✕ । श्रवस्युम् । श्रव इत्यन्ननाम श्रूयत इति यास्कः [नि० १०. ३] । तद् यजमानानां दातुम् इच्छन्तं रयीणाम् धनानां सदनम् नित्यनिवासस्थानम् एवंविधं सरस्वन्तं देवं वसानाः । ✕विवासतेः परिचरणकर्मत्वाद् अत्र केवलोपि वसतिः परिचरणार्थः✕ । हविरादिना परिचरन्तः । ✕वस्तेरादादिकात् हेत्वर्थे शानच्✕ । परिचरणाद्धेतोः । इह अस्मिन् कर्मणि आ हुवेम आह्वयेम । ✕"ह्वयतेः लिङ्याशिष्यङ्" । "बहुलं छन्दसि" इति संप्रसारणम्✕ ॥

चतुर्थी ॥

अति धन्वान्यत्यपस्तर्तर्द श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।
तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात् ॥ १ ॥

अति । धन्वानि । अति । अपः । ततर्द । श्येनः । नृऽचक्षाः । अवसानऽदर्शः ।
तरन् । विश्वानि । अवरा । रजांसि । इन्द्रेण । सख्या । शिवः । आ । जगम्यात् ॥ १ ॥

---

१ R दाश्वांसं. We with A B $B^h$ D K $K^m$ $S^m$ V $C^s$. २ So we with P $P^2$ J $C^p$.

नृचक्षाः नृणां द्रष्टा सर्वकर्मसाक्षी सर्वैः प्राणिभिर्द्रष्टव्यो वा। तदेवाह। अवसानदर्शः अवसाने अन्तभूते द्युलोके द्रष्टव्यः। अथ वा अवसीयते निश्चीयत इति अवसानं कर्मफलं तद् दर्शयतीति अवसानदर्शः। तादृशः श्येनः शंसनीयगतिः सूर्यः धन्वानि मरुदेशान् अति अतिक्रम्य अपः उदकानि अति ततर्द। अतिशयेन करोतित्यर्थः। ॥ उतृदिर् हिंसानादरयोः ॥। निरुदकप्रदेशेपि यथा वृष्टिर्भवति तथा प्रभूतं वर्षतिति यावत्। किं च अवरा अवराणि द्युलोकाद् अधस्तनानि विश्वानि रजांसि लोकान् तरन् अवतरन् अतिक्रामन् श्येनः सख्या समानख्यानेन मित्रभूतेन इन्द्रेण। ॥ सहयोगाभावेपि तृतीया ॥। तेन सह शिवः कल्याणकारी सन् आ जगम्यात् नवगृहनिर्माणस्थानम् आगच्छतु ॥

पञ्चमी ॥

श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः।
स नो नि यच्छाद् वसु यत् परांभृतमस्माकमस्तु पितृषु स्वधावत् ॥ २ ॥

श्येनः। नृऽचक्षाः। दिव्यः। सुऽपर्णः। सहस्रऽपात। शतऽयोनिः। वयःऽधाः।
सः। नः। नि। यच्छात्। वसु। यत्। पराऽभृतम्। अस्माकम्। अस्तु। पितृषु। स्वधाऽवत् ॥ २ ॥

नृचक्षाः नृणां द्रष्टा दिव्यः दिवि भवः सुपर्णः सुपतनः सहस्रपात् सहस्रकिरणः। ॥ पादस्य लोपः समासान्तः ॥। शतयोनिः शतस्य अपरिमितस्य कार्यस्य कारणभूतः अपरिमितफलस्य मिश्रयिता वा। अथ वा शतसंख्याकानि योनयः कारणानि प्रतिपदार्थं भिन्नानि असाधारणानि यस्येति। वयोधाः अन्नस्य धारयिता दाता स तादृशः श्येनः सूर्यः नः अस्मान् नि यच्छात् नियच्छतु। चिरकालं स्थापयतित्यर्थः। अपि च यद् वसु धनं पराभृतम् अन्यैश्चोरादिभिः पराहृतम्

1 S' वस्तु for वसु. The text too in S' appears to read वस्तु for वसु.

अपहृतम् अस्ति अथ वा यद् वसु पुरोडाशशकलरूपं पराभृतम् पराचीनेन पाणिना आहृतं प्रक्षिप्तं तद् वसु अस्माकं पितृषु स्वधावत् स्वधाकारेण हुतम् अस्तु ॥

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ॥ १ ॥

सोमारुद्रा । वि । वृहतम् । विषूचीम् । अमीवा । या । नः । गयम् । आऽविवेश ।
बाधेथाम् । दूरम् । निःऽऋतिम् । पराचैः । कृतम् । चित् । एनः । प्र । मुमुक्तम् । अस्मत् ॥ १ ॥

हे सोमारुद्रा । सुप आकारः । हे सोमारुद्रौ विषूचीम् विष्वग्गमनां वक्ष्यमाणम् अमीवाशब्दवाच्यं रोगं वि वृहतम् विनाशयतम् । वृहूं उद्यमने । तौदादिकः । या अमीवा रोगः नः अस्माकं गयम् गृहं शरीरं वा आविवेश सर्वतो व्याप्ता । तां वि वृहतम् इति संबन्धः ॥ किं च निर्ऋतिम् निकृष्टगमनहेतुं रोगनिदानभूतां पिशाचीं पराचैः पराङ्मुखं दूरं बाधेथाम् । यथा पुनरस्मान् नागच्छति तथा पराङ्मुखं दूरं गमयित्वा नाशयतम् । पराचैरिति । निपातोयम् उच्चैर्नीचैरितिवत् । किं च । चिच्छब्दः चेदर्थे । एनः अस्माभिः कृतं चेत् । अप्यर्थे वा चिच्छब्दः । कृतमपि एनः पापम् अस्मत् अस्मत्तः । पञ्चमीबहुवचने "पञ्चम्या अत्" । प्र मुमुक्तम् प्रकर्षेण मोचयतम् । मुञ्चतेः शपः श्लुः ॥

सप्तमी ॥

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो असत् तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ २ ॥

१ P अस्मात्.

1 See note 1 on the previous page. 2 S' पराचीने. 3 S' वृहु.

सोमारुद्रा । युवम् । एतानि । अस्मत् । विश्वा । तनूषु । भेषजानि । धत्तम् ।
अव । स्यतम् । मुञ्चतम् । यत् । नः । असत् । तनूषु । बद्धम् । कृतम् ।
एनः । अस्मत् ॥ २ ॥

हे सोमारुद्रा हे सोमारुद्रौ युवम् युवाम् अस्मत् । ॐषष्ठ्याः "सुपां सुलुक्०" इति लुक् । व्यत्ययो वा विभक्तेः ॐ । अस्मत् अस्माकं तनूषु शरीरेषु विश्वा सर्वाणि एतानि रोगनिर्हरणक्षमत्वेन प्रसिद्धानि भेषजानि धत्तम् स्थापयतम् । किं च नः अस्माकं तनूषु बद्धम् संबद्धं यत् अस्माभिः कृतम् एनः पापम् असत् स्यात् अस्ति वा तद् अस्मत् अस्मत्सकाशाद् मुञ्चतम् मोचयतं विश्लेषयतम् । ततो मुक्त्वा तद् अव स्यतम् अवसाययतं विनाशयतम् । ॐषो अन्तकर्मणि । लोटि रूपम् ॐ ॥

अष्टमी ॥

शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम् ॥ १ ॥

शिवाः । ते । एकाः । अशिवाः । ते । एकाः । सर्वाः । बिभर्षि । सुऽमनस्यमानः ।
तिस्रः । वाचः । निऽहिताः । अन्तः । अस्मिन् । तासाम् । एका । वि ।
पपात । अनु । घोषम् ॥ १ ॥

सर्वा हि वाक् परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपचतुरवस्थापन्ना । तत्र पराद्यास्तिस्रोवस्था देहान्तरवस्थानाद् न परेभ्योर्थं प्रतिपादयितुं क्षमाः । वैखरी तु तालवोष्ठादिस्थानेषु वर्णपदवाक्यरूपेण अभिव्यज्यमाना परश्रोत्रग्रहणयोग्या भवति । एवं परावस्थापन्ना वाक् स्तुतिरूपा निन्दारूपा चेति द्विविधा भवति । तथा च अस्या ऋचः अयम् अर्थः । ते इति युष्मच्छब्देन बिभर्षीति मध्यमपुरुषेण च मिथ्याभिशस्तः पुरुषोऽभिधीयते । हे अकारणं निन्दित पुरुष ते तव विषये शिवाः स्तुतिरूपाः

कल्याण्यः एकाः अन्या वाचः सन्ति । तथा ते तव विषये अशिवाः अस्तुतिरूपा निन्दार्था एकाः अन्या वाचः सन्ति । सर्वास्ता उभयीर्वाचः त्वं सुमनस्यमानः । सुमना इवाचरन् । ☒ आचारार्थे "कर्तुः क्यङ्०" ☒ । स्तुतिवाक्यश्रवणे यथा सुमनस्कत्वं प्राप्नोषि एवं निन्दावाक्यश्रवणेपि सौमनस्यं प्राप्नुवन् बिभर्षि बिभृहि । ☒ लोडर्थे लट् ☒ । स्तुतिनिन्दाजातहर्षविषादयोरपि समानं सौमनस्यं प्राप्नुहीत्यर्थः । अथ वाचः पराद्यवस्थाचतुष्टयात्मकत्वेपि प्रथमावस्थात्रयरूपाया वाचो नार्थप्रत्यायकत्वं तुरीयावस्थापन्नायास्तु अर्थबोधकत्वम् इति उत्तरार्धेनाह । तासां पूर्वोक्तानां द्वितयीनां वाचां मध्ये तिस्रो वाचः पराद्याः अस्मिन् शब्दप्रयोक्तरि पुरुषे अन्तः देहमध्ये निहिताः अवस्थिता भवन्ति । एका वैखरीरूपा घोषम् अनु तालवोष्ठव्यापारजन्यं ध्वनिम् अनुलक्ष्य वि पपात विशेषेण वर्णपदादिरूपेण वर्तते । यद्वा पूर्वार्धेन निन्दावाक्यस्य स्तुतिवाक्यसमानतामतिपत्तिम् आपाद्य निन्दावाक्यप्रयोगेपि प्रयोक्तुरेव महती बाधा नाभियुज्यमानस्य बाधेत्याह । तासाम् अशिवानां निन्दारूपाणां वाचां मध्ये तिस्रो वाचः पराद्याः अस्मिन् मिथ्यापवदितरि जने अन्तर्निहिताः । एका वाक् वैखरी घोषम् जनसंघध्वनिम् अनुलक्ष्य वि पपात निन्दात्वेन विरुद्धा पतिता । अयम् अर्थः । निन्दावाक्यस्यापि परादिचतुष्टयात्मकत्वात् तादृशवाक्यप्रयोक्तृशरीरमध्ये त्रयाणां भागानाम् अवस्थानात् तस्मिन्नेव निन्दा महती । मिथ्याभियुज्यमाने तु एक एव भागः पतित इति नास्ति निन्देति ॥

नवमी ॥

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ १ ॥

उभा । जिग्यथुः । न । परा । जयेथे इति । न । परा । जिग्ये । कतरः । चन । एनयोः ।

१ BDKKSVC. इंद्रश्च विष्णो. We with ABRPPJCr.

1 S' द्वितीयानां.

इन्द्रः। च। विष्णो इति। यत्। अपस्पृधेथाम्। त्रेधा। सहस्रम्। वि। तत्। ऐरयेथाम् ॥ १ ॥

हे इन्द्राविष्णू उभा उभौ युवां जिग्यथुः सर्वदा जयथ एव। छान्दसो लिट्। "सन्लिटोर्जेः" इति कुत्वम्। न कदाचिदपि परा जयेथे। अन्यैर्न जीयेथे इत्यर्थः। "विपराभ्यां जेः" इति आत्मनेपदम्। किम् एतौ परस्परसाहाय्याज्जेतारौ अपराजितौ च। नेत्याह। एनयोः इन्द्राविष्णवोर्युवयोर्मध्ये कतरश्चन एकोपि। "किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्"। न परा जिग्ये नान्यैः पराजितो भवति ॥ हे विष्णो इन्द्रश्च त्वं च युवां यद् वस्तु प्रति अपस्पृधेथाम् अस्पर्धेथाम् असुरैः सह। "अपस्पृधेथाम् आनृचुः०" इति स्पर्धतेर्लङि द्विर्वचनं संप्रसारणं च निपात्यते। तद् वस्तु त्रेधा त्रिधा लोकवेदवागात्मना स्थितं सहस्रम् अपरिमितं तद् वस्तु व्यैरयेथाम्। व्यक्रमेथाम् इत्यर्थः। विक्रमणं च वैष्णवमपि ऐकात्म्याद् उभयोरित्युच्यते। अत्र ऐतरेयब्राह्मणम्। "उभा जिग्यथुरित्युभौ हि तौ जिग्यतुः" इत्यादि "इन्द्रश्च ह वै विष्णुश्चासुरैर्युयुधाते। तान् ह स्म "जित्वोचतुः कल्पामहा इति। ते ह तथेत्यसुरा ऊचुः। सोब्रवीद् इन्द्रो "यावद् एवायं विष्णुस्त्रिर्विक्रमते तावद् अस्माकम् अथ युष्माकम् इतरद् "इति। स इमाँल्लोकान् विचक्रमेथो वेदान् अथोवाचम्। तदाहुः किं "तत् सहस्रम् इतीमे लोका इमे वेदा अथो वाग् इति ब्रूयात्" इत्यन्तम् अनुसंधेयम [ऐ० ब्रा० ६. १५] ॥

दशमी ॥

जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्याभृतम्।
दूरात् त्वा मन्य उद्भृतमीर्ष्याया नाम भेषजम् ॥ १ ॥

जनात्। विश्वऽजनीनात्। सिन्धुतः। परि। आऽभृतम्।
दूरात्। त्वा। मन्ये। उतऽभृतम्। ईर्ष्यायाः। नाम। भेषजम् ॥ १ ॥

१ P J अपऽस्पृ°. We with P Cr. २ B दूरात्त्वा.

अत्र ईर्ष्यानिवर्तनक्षमम् औषधं संबोध्यते ॥ विश्वजनीनात् विश्वजनहितात् । ‡"आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः" इति खः‡ । तादृशात् जनात् । जनपदाद् इत्यर्थः । एकदेशेन व्यपदेशो भीमसेनो भीम इतिवत् । तथा सिन्धुतः समुद्रात् । ‡परिः पञ्चम्यर्थानुवादी‡ । आभृतम् आहृतम् । ‡"हृग्रहोर्भः"‡ । तथा दूरात् दूरदेशाद् उद्भृतम् उद्भृतं वा त्वां सक्तुमन्थलक्षणम् औषधम् ईर्ष्यायाः क्रोधस्य नाम खलु भेषजम् निवर्तनक्षमम् औषधं मन्ये जानामि । ‡मन ज्ञाने । दिवादित्वात् श्यन् । लटि उत्तमैकवचने रूपम‡ ॥

[इति] चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ।

ईर्ष्याविनाशकर्मणि तप्तपरशुना क्वाथितम् उदकम् "अग्नेरिवास्य दहतः" इत्यनया अभिमन्त्र्य ईर्ष्यालुं पाययेत् । "अग्नेरिवेति परशुफाण्टम्" इति [कौ० ४. १२] सूत्रात् ॥

सर्वव्याधिभैषज्यार्थं व्याधितशरीरं मौञ्जैः पाशैः पर्वसु बद्ध्वा "सिनीवालि" इति नवर्चेन शरपिञ्जूलीभिः सह उदकघटं संपात्य अभिमन्त्र्य व्याधितम् आप्लावयेत् अवसिञ्चेद् वा । तद् उक्तं संहिताविधौ । "सो-"मारुद्रा[७.४३] सिनीवालि[७.४८] वि ते मुञ्चामि[७.८३] शुम्भ-"नी[७.११७] इति मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिरात्प्लावयत्यवसिञ्चति" इति [कौ० ४. ८] ॥

तथा सर्वसंपत्कामः अनेन नवर्चेन यथालिङ्गं सिनीवाली कुहू राका देवपत्न्य इति चतस्रो देवता यजेत उपतिष्ठेत वा । "अग्नाविष्णू[७. ३०] सोमारुद्रा[७. ४३] सिनीवालि पृथुष्टुके[७. ४८] बृहस्पतिर्नः" [७. ५३] इति कौशिकं सूत्रम् [कौ० ७. १०] ॥

तथा दर्शयागे "सिनीवालि" इति तृचेन सिनीवालीदेवतां परिगृह्णीयात् । [तद् उक्तं वैतानेन] । "देवताः परिगृह्णति । सिनीवालि पृथुष्टुक इति मन्त्रोक्ताम् अमावास्यायाम्" इति [वै० १. १] ॥

दर्शयाग एव "कुहूं देवीम्" इति द्व्यृचेन कुहूं देवीं परिगृह्णीयात् ॥

पूर्णमासयागे "राकाम् अहम्" इति द्यृचेन राकां देवीं परिगृह्णीयात् ॥ "कुहूं देवीम्[७.४९] यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयम्[७.८४] इत्य-"मावास्यायाम्। राकाम् अहम्[७.५०] पूर्णा पश्चात्[७.८५] इति "पौर्णमास्याम्" इति वैतानसूत्रात् [वै० १.१] ॥

दर्शपूर्णमासयोः पत्नीसंयाजेषु "देवानां पत्नीः" इति द्यृचेन देवपत्नीयागम् अनुमन्त्रयेत। "सं वर्चसा[६.५३.३] देवानां पत्नीः[७.५१] सुगार्हपत्यः[१२.२.४५] इति पत्नीसंयाजान्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० १.४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अग्नेरिवास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक्।
एतामेतस्येर्ष्यामुद्वाग्निमिव शमय ॥ १ ॥

अग्नेःऽइव। अस्य। दहतः। दावस्य। दहतः। पृथक्।
एताम्। एतस्य। ईर्ष्याम्। उद्वा। अग्निम्ऽइव। शमय ॥ १ ॥

अग्नेरिव दहतः क्रोधेन मदीयकार्याणि विनाशयतः अस्य पुरःपरिदृश्यमानस्य ईर्ष्यालोः तथा पृथक् प्रत्येकं प्रतिपदार्थं दहतः भस्मीकुर्वतो दावस्य। अत्र उपमावाचक इवशब्दोऽध्याहार्यः। दावस्य अग्नेरिव पृथक् दहतः एतस्य पुरोवर्तिनः क्रुध्यतः पुरुषस्य। पुरोवर्तिनम् ईर्ष्यालुम् इदमेतच्छब्दाभ्याम् अङ्गुल्या निर्दिशति। तादृशस्य पुरुषस्य एतां मद्विषये प्रयुज्यमानाम् ईर्ष्याम् उद्वा उदकेन। "पदन्नोमास्०" इत्यादिना उदकस्य उदन्भावः। तप्तपरशुकथितेनोदकेन शमय शान्तां कुर्विति ईर्ष्यानिवारको देवः संबोध्यते। तत्र दृष्टान्तः। अग्निमिवेति। यथा अग्निं ज्वलन्तम् उद्वा उदकेन शमयन्ति तद्वत् ॥

द्वितीया ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।

---

१ B appears to read °मुत्ता°. K$^{m}$R °मुत्ता°. B$^{h}$ °मुन्ना°. ADK$^{s}$V °मुन्ना°. C$^{c}$ °मुन्ना° changed to °मुत्ता°. P P$^{2}$ J उन्ना. C$^{p}$ उत्ता. We with Sâyaṇa. २ B °ग्निमिव. ३ B$^{h}$ D R S$^{m}$ देवाना°. We with A K K$^{m}$ C$^{c}$.

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १ ॥

सिनीवालि । पृथुष्टुके । या । देवानाम् । असि । स्वसा ।

जुषस्व । हव्यम् । आऽहुतम् । प्रऽजाम् । देवि । दिदिड्ढि । नः ॥ १ ॥

दृष्टचन्द्रा अमावास्या सिनीवाली स्त्रीत्वेन रूप्यते । हे सिनीवालि । अत्र यास्कः । सिनम् अन्नं भवति सिनाति भूतानि वालं पर्व वृणोतेस्तस्मिन्नन्नवती वालिनी वा वालेनैवास्याम् अणुत्वाच्चन्द्रमाः सेवितव्यो भवतीति वेति [ नि० ११. ३१ ] । पर्वण्यन्नवतीति अल्पकलचन्द्रोपेतेति वेति तस्यार्थः । तादृशि हे सिनीवालि पृथुष्टुके पृथुजघने पृथुकेशस्तुके वा । स्यायतेः स्तुकशब्दः । बहुभिः संस्तुते वा । स्तौतेर्निष्ठातकारस्य वर्णोपजनश्छान्दसः । या त्वं देवानां स्वसा स्वयं सारिणी वृष्ट्यादिना असि भवसि भगिनी वा समानकार्यत्वात् सा त्वम् आहुतम् अभिमुखं प्रक्षिप्तं हव्यम् हविः जुषस्व सेवस्व । किं च हे देवि सिनीवालि नः अस्माकं प्रजाम् पुत्रादिकां दिदिड्ढि उपचिनु । देहीत्यर्थः । दिहेर्दिशतेर्वा लोटि शपः श्लुः ॥

तृतीया ॥

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।

तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ २ ॥

या । सुऽबाहुः । सुऽअङ्गुरिः । सुऽसूमा । बहुऽसूवरी ।

तस्यै । विश्पत्न्यै । हविः । सिनीवाल्यै । जुहोतन ॥ २ ॥

या सिनीवाली सुबाहुः सुपाणिः स्वङ्गुरिः शोभनाङ्गुलिः सुषूमा सुयोनिः । सूतेः सूमशब्दः । सुष्ठु प्रसवित्री वा । बहुसूवरी बह्वीनां प्रजानां सवित्री । सूतेः क्वनिप् । "वनो र च" इति ङीत्रेफौ । तस्यै सिनीवाल्यै विश्पत्न्यै विशां प्रजानां पालयित्र्यै । "विभाषा सपूर्वस्य" इति पत्युर्नकारः । अयस्मयादित्वेन

१ P असि. Cp असि changed to असि. We with $P^2$ J. २ P $P^2$ दिदिड्ढिनः as one word! We with J Cp. ३ P बाह°.

भावाद् विशो जश्त्वाभावः ॥ । हविः जुहोतन जुहुत हे ऋत्विग्यजमानाः । ॥ "तप्तनप्तनथनाश्च" इति तस्य तनबादेशः । पित्त्वेन ङित्त्वाभावाद् गुणः ॥ ॥

चतुर्थी ॥

या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व ॥ ३ ॥

या । विश्पत्नी । इन्द्रम् । असि । प्रतीची । सहस्रऽस्तुका । अभिऽयन्ती । देवी ।

विष्णोः । पत्नि । तुभ्यम् । राता । हवींषि । पतिम् । देवि । राधसे । चोदयस्व ॥ ३ ॥

या सिनीवाली विश्पत्नी विशां पालयित्री इन्द्रम् परमैश्वर्यसंपन्नं देवं प्रतीची प्रत्यगञ्चना असि भवसि । अमावास्यायाम् इन्द्रस्य इज्यमानत्वाद् इन्द्रं प्रतीचीत्युक्तम् । कीदृशी । सहस्रस्तुका । सहस्रशब्दो बहुवाची । बहुकेशस्तुका पृथुजघना वा सहस्रसंख्याकैः स्तोतृभिः संस्तुता वा । अभियन्ती अभिमुखं गच्छन्ती यष्टव्यान् देवान् । यद्वा फलप्रदानाय अस्मान् अभिगच्छन्ती देवी द्योतनशीला । किं च हे विष्णोः पत्नि विष्णोर्व्यापनशीलस्य देवस्य इन्द्रस्य वा पत्नि तुभ्यं हवींषि राता रातानि दत्तानि । अतः हे देवि सिनीवालि तुष्टा त्वं पतिम् त्वदीयम् इन्द्रं राधसे । राध इति धननाम । ॥ "क्रियार्थोपपदस्य०" इति चतुर्थी ॥ । अस्मभ्यं धनं दातुं चोदयस्व प्रेरयस्व ॥

पञ्चमी ॥

कुहूं देवीं सुकृतं विघ्नाऽपसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ १ ॥

कुहूम् । देवीम् । सुऽकृतम् । विघ्नाऽअपसम् । अस्मिन् । यज्ञे । सुऽहवा । जोहवीमि ।

---

१ P असि. २ P C विघ्नाऽअप°. We with P² J.

सा । नः । रयिम् । विश्वऽवारम् । नि । यच्छात् । ददातु । वीरम् । श-
तऽदायम् । उक्थ्यम् ॥ १ ॥

नष्टचन्द्रा अमावास्या कुहूः । तां देवीम् । कुहूशब्दं बहुधा यास्को निरुवाच । कुहूर्गूहतेः क्वाभूद् इति वा क्व सती हूयत इति वा क्वाहुतं हविर्जुहोतीति वेति [नि० ११. ३२] । तादृशीं कुहूम् अस्मिन् यज्ञे दर्शयागे सर्वाभिलषितसाधने कर्मणि च जोहवीमि भृशम् आह्वयामि । ह्वयतेरिदं रूपं जुहोतेर्वा । हविषा यजामि । तां विशिनष्टि । सुकृतम् सुकर्माणं विघ्ननापसम् । अप इति कर्मनाम । विदितकर्माणम् । विदेः औणादिको मक् प्रत्ययः । [विघ्नो वेदनम् ।] तद्वत् विघ्नम् । पामादिलक्षणो नप्रत्ययः । तादृशम् अपः कर्म यस्या इति विग्रहः । सुहवाम् शोभनाह्वानाम् । सा कुहूः विश्ववारम् सर्वैर्वरणीयं रयिम् धनं नः अस्मभ्यं नि यच्छात् नियमयतु स्थापयतु । प्रयच्छत्वित्यर्थः । तथा शतदायम् बहुधनं बहुप्रदं वा उक्थ्यम् प्रशस्यं स्तोत्रार्हं वा वीरम् विक्रान्तं पुत्रं ददातु प्रयच्छतु ॥

षष्ठी ॥

कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्य हविषो जुषेत ।
शृणोतु यज्ञमुशती नो अद्य रायस्पोषं चिकितुषी दधातु ॥ २ ॥

कुहूः । देवानाम् । अमृतस्य । पत्नी । हव्या । नः । अस्य । हविषः । जुषत ।
शृणोतु । यज्ञम् । उशती । नः । अद्य । रायः । पोषम् । चिकितुषी । दधातु ॥ २ ॥

देवानाम् । निर्धारणे षष्ठी । देवानां मध्ये कुहूर्देवी अमृतस्य अमृतत्वस्य अविनाशस्य उदकस्य वा पत्नी पालयित्री । यद्वा देवानां मध्ये यः अमृतः अविनश्वरो देवस्तस्य पत्नी नारी । अथवा देवानाम् इति सर्वविकारोपलक्षणम् । सर्वेषां भूतानाम् अमृतस्य च प-

१ P विश्ववारम्.

त्नी पालयित्री हव्या आह्वानार्हा नः अस्मदीयस्य अस्य दीयमानस्य हविषः। ‡कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी‡। अस्मदीयम् इदं हविः जुषेत सेवेत। किं च नः अस्मदीयं यज्ञम् उशती कामयमाना। ‡वश कान्तौ। शतरि "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम्‡। अद्य इदानीं शृणोतु। अस्मदीयम् आह्वानम् इति शेषः। ततः चिकितुषी अस्मदीयं यज्ञं ज्ञातवती रायः धनस्य पोषम् पुष्टिं दधातु अस्माकं विदधातु। ‡चिकितुषीति। कित ज्ञाने। क्वसौ ङीपि संप्रसारणे रूपम्‡॥

सप्तमी॥

राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्॥ १॥

राकाम्। अहम्। सुऽहवा। सुऽस्तुती। हुवे। शृणोतु। नः। सुऽभगा। बोधतु। त्मना।
सीव्यतु। अपः। सूच्या। अच्छिद्यमानया। ददातु। वीरम्। शतऽदायम्। उक्थ्यम्॥ १॥

संपूर्णचन्द्रा पौर्णमासी राका। तां देवीं सुहवाम् शोभनाह्वानाम् आह्वानप्रयोजनकारिणीं सुष्टुती शोभनया स्तुत्या अहं हुवे आह्वयामि। सा च सुभगा सुज्ञानादिका नः अस्माकं शृणोतु आह्वानम्। श्रुत्वा च त्मना आत्मना। ‡"मन्त्रेष्वाङ्यादेरात्मनः" इति आकारलोपः‡। स्वयमेव बोधतु बुध्यताम् अस्मदभिप्रायम्। बुद्ध्वा च अपः कर्म प्रजननलक्षणं सीव्यतु। अपः प्रजननकर्मेति हि यास्कः [नि० ११. ३१]। तत् अच्छिद्यमानया सूच्या सूचिस्थानीयया सीवन्या नाड्या सीव्यतु संतनोतु बध्नातु। ‡षिवु तन्तुसंताने। दैवादिकः। "हलि च" इति दीर्घः‡। यथा वस्त्रादिकं सूच्या स्यूतं चिरं कार्यक्षमं भवति एवम् इदं करोतु। "राका ह वा एतां पुरुषस्य सेवनीं सीव्यति यैषा

१ P सुहवा.

"शिम्नेधि । पुमांसोस्य पुत्रा जायन्ते" इति ऐतरेयश्रुतेः [ऐ० ब्रा० ३. ३७] । तथा च कृत्वा वीरम् विक्रान्तं पुत्रं शतदायम् बहुधनं बहुप्रदं वा उक्थ्यम् कर्मभिः स्तोत्राहं ददातु प्रयच्छतु ॥

अष्टमी ॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ २ ॥

याः । ते । राके । सुऽमतयः । सुऽपेशसः । याभिः । ददासि । दाशुषे । वसूनि ।
ताभिः । नः । अद्य । सुऽमनाः । उपऽआगहि । सहस्रऽपोषम् । सुऽभगे । रराणा ॥ २ ॥

हे राके देवि यास्ते तव सुमतयः कल्याणबुद्धयः अनुग्रहात्मिकाः सुपेशसः सुरूपाः शोभनविषया वा यास्ते सुष्टुतयः सुरूपा इति वा याभिः सुमतिभिः दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय वसूनि धनानि ददासि प्रयच्छसि ताभिः सुमतिभिरुपलक्षिता तथाभूतसंकल्पा नः अस्मान् अद्य इदानीं सुमना भूत्वा उपागहि उपागच्छ । ✕गमेः शपो लुकि मलोपः । तस्यासिद्धत्वेन हेर्लुगभावः ✕ । किं कुर्वती । हे सुभगे शोभनसौभाग्ये कल्याणधनप्रापिणि वा राके सहस्रपोषम् बहूनां धनानां पोषं पुष्टिं रराणा प्रयच्छन्ती उपागच्छेति । ✕रातेर्व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । शपः श्लुः ✕ ॥

नवमी ॥

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु ॥ १ ॥

देवानाम् । पत्नीः । उशतीः । अवन्तु । नः । प्र । अवन्तु । नः । तुजये । वाजऽसातये ।

---

१ D K S सहस्रपोषं. We with A B B K R V C. २ P ददाति.

याः। पार्थिवासः। याः। अपाम्। अपि। व्रते। ताः। नः। देवीः। सुऽहवाः। शर्म। यच्छन्तु ॥ १ ॥

देवानां पत्नीः पत्न्यः उशतीः उशत्यः कामयमानाः नः अस्मान् अवन्तु रक्षन्तु। तथा नः अस्माकं तुजये तोकाय अपत्याय वाजसातये अन्नलाभाय च प्रावन्तु प्रकर्षेण आगच्छन्तु रक्षन्तु वा। ॥अव रक्षणादिषु॥ ॥ किं च या देवपत्न्यः पार्थिवासः पार्थिव्यः। पृथिवीस्थाना इत्यर्थः। याश्च। अपिशब्दः चार्थे। अपां व्रते कर्मणि कारके अन्तरिक्षे स्थितास्ता देवीः देव्यः सुहवाः शोभनाह्वाना नः अस्मभ्यं शर्म सुखं गृहं वा यच्छन्तु। ॥वचनव्यत्ययः॥। यच्छन्तु प्रयच्छन्तु इत्यर्थः ॥

दशमी ॥

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्यग्न्यायग्नायश्विनी राट्।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥ २ ॥

उत। ग्नाः। व्यन्तु। देवऽपत्नीः। इन्द्राणी। अग्नायी। अश्विनी। राट्। आ। रोदसी। वरुणानी। शृणोतु। व्यन्तु। देवीः। यः। ऋतुः। जनीनाम् ॥ २ ॥

उत अपि च देवपत्नीः देवाः पतयो यासां ताः देवानां पत्न्य इति वा। ग्नाः देव्यः व्यन्तु कामयन्ताम् अश्नन्तु वा। हवींषीति शेषः। ता देवपत्नीर्दर्शयति। इन्द्राणी इन्द्रस्य पत्नी। ॥"इन्द्रवरुण०" इति ङीषानुकौ॥। अग्नायी अग्नेः पत्नी। ॥"वृषाकप्यग्निकुसितकुसीदानाम् उदात्तः" इति ऐकारादेशो ङीप् च॥। अश्विनी अश्विनोर्जाया राट् राजन्ती। ॥राजतेः क्विप्॥। रोदसी रुद्रस्य जाया वरुणानी वरुणस्य पत्नी आ शृणोतु अभिमुखं सर्वतो वा

१ BDS ३ for १. We with AKKVCs.

1 This is another instance of Sâyaṇa's strict adherence to his text such as it was. He could easily have changed the reading to यच्छन्तु if he had considered it right to change his readings. २ So S'.

शृणोतु । अस्मदीयं हव्यं व्यन्तु अश्नन्तु कामयन्ता वा हवींषि देवीर्देव्यः । कस्मिन् काले हविःकामनं तम् आह । यः जनीनां जायानाम् ऋतुः कालस्तस्मिन् । पत्नीसंयाजकाल इत्यर्थः । ⁂अत्र "अपि च "ग्ना व्यन्तु देवपत्न्यः इन्द्राणीन्द्रस्य पत्नी । अग्नाय्यग्नेः पत्नी । अश्वि-न्यश्विनोः पत्नी । राट् राजतेः । रोदसी रुद्रस्य पत्नी । वरुणानी "[च] वरुणस्य पत्नी । व्यन्तु देव्यः कामयन्ताम् । य ऋतुः कालो जा-"यानाम्" इति निरुक्तम् अनुसंधेयम् [नि० १२. ४६]⁂ ॥

[इति] चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

द्यूतजयकर्मणि स्थलशुद्धिम् अक्षाधिवासनं च कृत्वा "यथा वृक्षम् अ-शनिः" इति नवर्चेन अक्षान्[1] अभिमन्त्र्य द्यूतं कुर्यात् । सूत्रितं हि । "पूर्वास्वषाढासु गर्तं खनति । उत्तरासु संभिनत्ति । आदेवनं संस्तीर्य । "उद्भिन्दतीं संजयन्तीम[४. ३८] यथा वृक्षम् अशनिः[७. ५२] इदम् "उग्राय[७. ११४] इति वासितान् अक्षान् निवपति" इति [कौ० ५. ५] ॥

सर्वफलकामः "बृहस्पतिर्नः" इति ऋचा बृहस्पतिं यजेत उपतिष्ठेत वा । "बृहस्पतिर्नः[७. ५३] यत् ते देवाः"[७. ८४] इति हि सू-त्रम् [कौ० ७. १०] ॥

तथा उक्थ्यक्रतौ ब्राह्मणाच्छंसिनो याज्याहोमम् अनया ब्रह्मा अनुमन्त्र-येत । उक्तं वैताने । "एतेषां याज्याहोमान् इन्द्रावरुणा सुतपौ[७. ५८] बृहस्पतिर्नः[७. ५३] उभा जिग्यथुः"[७. ४५] इति [वै० ४. १] ॥

तथा ग्रहयज्ञे अनया हविराज्यहोमसमिदाधानोपस्थानानि बृहस्पतये कुर्यात् । तद् उक्तं शान्तिकल्पे । "भद्रादधि श्रेयः प्रेहि[७. ९] बृ-हस्पतिर्नः[७. ५३] इति बृहस्पतये" इति [शा० क० १५] ॥

तथा "बार्हस्पत्यां राज्यश्रीब्रह्मवर्चसकामस्य" [न० क० १७] इति वि-हितायां बार्हस्पत्याख्यायां महाशान्तौ बृहस्पतिर्नः इत्येनाम् आवपेत् । उ-क्तं नक्षत्रकल्पे । "बृहस्पतिर्नः परिपातु पश्चात[७. ५३] अमुत्र भूयात् [७. ५५] इति बार्हस्पत्यायाम्" इति [न० क० १८] ॥

1 S' °ज° changed to °क्ष°. 2 S' अजाधि°. 3 S' अजान्.

तत्र प्रथमा ॥

यथा वृक्षमशनिर्विश्वाहा हन्त्यप्रति ।
एवाहमद्य कितवानक्षैर्वध्यासमप्रति ॥ १ ॥

यथा । वृक्षम् । अशनिः । विश्वाहा । हन्ति । अप्रति ।
एव । अहम् । अद्य । कितवान् । अक्षैः । वध्यासम् । अप्रति ॥ १ ॥

अशनिः वैद्युतोग्निः अप्रति । ✕प्रतिनिध्यर्थे प्रतिः कर्मप्रवचनीयः✕ । न विद्यते प्रति प्रतिनिधिः समानो यस्य अप्रतिमः सन् विश्वाहा विश्वेषु सर्वेष्वहःसु यथा वृक्षम् तरुं हन्ति बाधते । यद्वा विश्वस्य हन्ता । ✕हन्तेः क्विप्✕ । अशनिः अप्रति अप्रतिपक्षं यथा वृक्षं विनाशयति एव एवम् अहम् अप्रति अप्रतिनिधिः सन् । प्रतिकितवपराजये मम सदृशः अन्यो नास्तीत्यर्थः । यद्वा अप्रति अप्रतिपक्षं वध्यासम् इति संबन्धः । अद्य इदानीं कितवान् । ✕कितवः किं तवास्तीति शब्दानुकृतिरिति यास्कः [नि० ५.२२]। अक्षैर्दीव्यन् पुरुषः परैरपह्रियमाणधनः किं तवास्ति न किंचिद् इति सर्वैर्भाष्यत इत्यर्थः✕ । तादृशान् कितवान् अक्षैः देवनसाधनैः अप्रति अप्रतिपक्षं वध्यासं हनिष्यामि । यथा प्रतिकितवा द्यूतक्रियायां मम प्रतिस्पर्धिनो न भवन्ति तथा अक्षैः पराजितान् करिष्यामीत्यर्थः । ✕"हनो वध लिङि" इति हन्तेर्वधादेशः✕ ॥

द्वितीया ॥

तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम् ।
समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम ॥ २ ॥

तुराणाम् । अतुराणाम् । विशाम् । अवर्जुषीणाम् ।
समऽएतु । विश्वतः । भगः । अन्तःऽहस्तम् । कृतम् । मम ॥ २ ॥

तुराणाम् । ✕तुर त्वरणे । इगुपधलक्षणः कः✕ । द्यूतकर्मणि त्वरमाणानाम् अतुराणाम् अत्वरमाणानाम् । अहमेव प्रथमः अक्ष-

प्रक्षेपेण प्रतिवादिनं जेष्यामि अहमेवेति अहमहमिकया त्वरमाणास्तुराः । विमृश्यकारिण्यः अतुराः । तासाम् अवर्जुषीणाम् अवर्जनशीलानां प्रतिकितवैः पराजयेपि पुनरहमेव जेष्यामीति द्यूतक्रियाम् अपरित्यजन्तीनां पुनःपुनर्जयलाभाद् अवर्जयन्तीनां वा । सर्वदा द्यूतव्यसनवतीनाम् इत्यर्थः । विशाम् प्रजानां भगः भाग्यम् जयलक्षणं विश्वतः सर्वतः समैतु सम्यग् अभिमुखम् आगच्छतु । द्यूतजयकामिनं माम् इति शेषः ॥ न केवलं तत एव जयप्रार्थना अपि तु मम अन्तर्हस्तम् हस्तमध्ये कृतम् । कृतशब्दवाच्यश्चतुःसंख्यायुक्तः अक्षविषयः अयः । स हस्तमध्ये स्थितो वर्तते । एकादयः पञ्चसंख्यान्ता अक्षविषया अयाः । तत्र चतुर्णां कृतम् इति संज्ञा । तथा च तैत्तिरीयकम् । "ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत् । अथ ये पञ्च कलिः सः" इति [तै०ब्रा०१.५.११.१] ॥ तत्र कृतस्य लाभाद् द्यूतजयों भवति । अत एव दाशतय्यां लब्धकृतायात् कितवाद् भीतिराम्नायते । "चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयाद् आ निधातोः" इति [ऋ०१.४१.९] । तत्र निरुक्तम् । चतुरोक्षान् धारयत इति तद् यथा कितवाद् बिभीयाद् इति [नि०३.१६] ॥

तृतीया ॥

ईडे अग्निं स्ववसुं नमोभिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम ॥ ३ ॥

ईडे । अग्निम । स्वऽवसुम । नमःऽभिः । इह । प्रऽसक्तः । वि । चयत् । कृतम । नः ।
रथैःऽइव । प्र । भरे । वाजयत्ऽभिः । प्रऽदक्षिणम । मरुताम । स्तोमम । ऋध्याम ॥ ३ ॥

स्ववसुम स्वकीयधनं स्वकीयेभ्यः स्तोतृभ्यो दीयमानं धनं यस्य तम् अग्निं नमोभिः स्तोत्रैः ईळे स्तौमि । इह द्यूतकर्मणि प्रसक्तः प्रकर्षेण आसक्तोग्निः देवनकर्माधिपतिः नः अस्माकं दीव्यतां कृतम् कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुम् अयं वि चयत् विचिनोतु । करोतित्यर्थः । चिनोते-

लेटि अडागमः ॥ । वाजयद्भिः वाजम् अन्नं कुर्वद्भिः । ॥ वाजशब्दात् करोत्यर्थे णिच् ॥ । अन्नलाभकारणे रथैरिव स्थितैरक्षैः प्र भरे प्रहरे । प्रतिकितवान् इति शेषः । ॥ "हृग्रहोर्भः" इति भत्वम् ॥ । ततः मरुताम् । देवोपलक्षणम् । सर्वेषां देवानां स्तोमम् स्तोत्रं संघं वा प्रदक्षिणम् अनुक्रमेण कृध्याम् समर्धयेयम् ॥

चतुर्थी ॥

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥

वयम् । जयेम । त्वया । युजा । वृतम् । अस्माकम् । अंशम् । उत् । अव । भरेऽभरे ।
अस्मभ्यम् । इन्द्र । वरीयः । सुऽगम् । कृधि । प्र । शत्रूणाम् । मघऽवन् । वृष्ण्या । रुज ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त्वया युजा सहायेन वृतम् वृणोति अक्षैः संरुणद्धीति वृत् प्रतिकितवः । ॥ वृणोतेः किप् ॥ । तादृशं कितवं वयं जयेम । तथा भरेभरे संग्रामेसंग्रामे द्यूतलक्षणे अस्माकं जिगीषूणाम् अंशम् जयलक्षणम् उद् अव उद्गमय । ॥ अव रक्षणादिषु ॥ । किं च अस्मभ्यं वरीयः उरुतरं धनं सुगम् सुगमनं कृधि कुरु । ॥ उरुशब्दाद् ईयसुनि "प्रियस्थिर०" इति वर् आदेशः ॥ । हे मघवन् धनवन् इन्द्र शत्रूणाम् शातयितृणां प्रतिकितवानां वृष्ण्या वृष्ण्यानि वृष्णि भवानि । ॥ "भवे छन्दसि" इति यत् । टिलोपः ॥ । वीर्याणि जयलक्षणानि प्र रुज निवारय । ॥ रुजो भङ्गे । तौदादिकः ॥ । यथा प्रतिकितवा अस्मान् न जयेयुः यथा तान् वयं जयेम जयेन च तेभ्यो धनं स्वीकुर्याम तथा कुर्विति इन्द्रः प्रार्थ्यते ॥

पञ्चमी ॥

अजैषं त्वा संलिखितमजैषमुत संरुधम् ।

---

१ B वृत°. २ P मघवन्.

अविं वृको यथा मथद्देवा मश्नामि ते कृतम् ॥ ५ ॥

अजैषम् । त्वा । समऽलिखितम् । अजैषम् । उत । सम्ऽरुधम् ।
अविम् । वृकः । यथा । मथत् । एव । मश्नामि । ते । कृतम् ॥ ५ ॥

लोके हि कितवाः अस्मिन् पदे प्रतिकितवम् अक्षशलाकादिभिः संरोत्स्यामीति अङ्कान् कुर्वन्ति तत्रैव च संरुन्धन्ति । तादृशः प्रतिकितवोत्र संबोध्यते । हे कितव संलिखितम् पदेषु सम्यग् अङ्कान् लिखितवन्तमपि त्वा त्वाम् अजैषम् अहमेव जयामि । उत अप्यर्थे । संरुधम् । ‡रुधेः क्विप्‡ । संरोद्धारमपि त्वाम् अजैषम् जयामि । यद्वा संलिखितम् सम्यग् लिखितं चिह्नितं पदम् अभिलक्ष्य त्वां जयामि । उत अपि च संरुधम् । ‡संरुन्धन्ति अत्रेति । अधिकरणे कप्रत्ययः‡ । तादृशं स्थानम् अभिलक्ष्य त्वां जयामि । किं च वृकः अरण्यश्वा अविम् अजं यथा मथत् मश्नाति एव एवं ते तव कृतं कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुम् अयं मश्नामि विनाशयामि ॥

षष्ठी ॥

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥ ६ ॥

उत । प्रऽहाम् । अतिऽदीवा । जयति । कृतम्ऽइव । श्वऽघ्नी । वि । चिनोति । काले ।
यः । देवऽकामः । न । धनम् । रुणद्धि । सम् । इत् । तम् । रायः । सृजति । स्वधाभिः ॥ ६ ॥

उत अपि च अतिदीवा अतिशयेन दीव्यन् पुरुषः । ‡कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः इति [उ० १. १५४] अतिपूर्वाद् दीव्यतेः कनिन् । किच्चादेव गुणाभावः‡ । प्रहाम् अक्षैः प्रहन्तारं प्रतिकितवं जयति । यतः [श्वघ्नी] । ‡श्वघ्नी कितवो भवति स्वं हन्ति स्वं पुनराहृतं भवतीति यास्कः [नि० ५. २२]‡ । परस्वस्य

हन्ता कितवः काले द्यूतकाले कृतमिव । इवशब्द एवार्थे । कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुम् अयमेव वि चिनोति मृगयते । हस्तस्थेष्वक्षेषु प्रागेव निधानात् कृतत्वम् अक्षाणां लाभाय अन्विष्यते अतो जयतीति संबन्धः ॥ यो देवकामः देवान् कामयमानः दीव्यन् पुरुषः धनं न रुणद्धि द्यूतलब्धं धनं न व्यर्थं स्थापयति किं तु देवतार्थं विनियुङ्क्ते तं रायां धनेन स्वधाभिः अन्नैर्बलैर्वा सं सृजत्येव संयोजयत्येव । इन्द्र इति देवता गम्यते । इत् अवधारणे ॥

सप्तमी ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ ७ ॥

गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःऽएवाम् । यवेन । वा । क्षुधम् । पुरुऽहूत । विश्वे ।
वयम् । राजऽसु । प्रथमाः । धनानि । अरिष्टासः । वृजनीभिः । जयेम ॥ ७ ॥

हे इन्द्र दुरेवाम् दुष्टगमनां दारिद्र्याद् आगताम् अमतिम् दुर्बुद्धिं गोभिः पशुभिः तरेम । हे पुरुहूत बहुभिराहूत इन्द्र विश्वे सर्वे वयं यवेन वा । यवशब्दो धान्योपलक्षणम् । धान्येन वा क्षुधम् बुभुक्षां तरेम निवारयेम ॥ राजसु नृपेषु राजमानेषु दीव्यत्सु वा पुरुषेषु । स्थितानीति शेषः । प्रथमा प्रथमानि मुख्यानि प्रकृष्टतमानि धनानि वयम् अरिष्टासः अहिंसिताः प्रातिकितवैरपराजिताः सन्तः वृजनीभिः बलकारिणीभिरक्षशलाकाभिः जयेम साधयेम ॥

अष्टमी ॥

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥ ८ ॥

कृतम् । मे । दक्षिणे । हस्ते । जयः । मे । सव्ये । आऽहितः ।
गोऽजित् । भूयासम् । अश्वऽजित् । धनम्ऽजयः । हिरण्यऽजित् ॥ ८ ॥

1 S' अक्षांनृणांलाभाय. The emendation is conjectural.

मे मम दक्षिणे हस्ते पाणौ कृतम् कृतशब्दवाच्यो लाभहेतुः अयः अस्ति । कृतायलाभो हि महान् द्यूतजयः । तद् उक्तं द्यूतक्रियाम् अधिकृत्य आपस्तम्बेन । "कृतं यजमानो विजिनाति" इति [आप० ५.२०.१] । तथा मे मम सव्ये हस्ते जय आहितः कृतायसाध्यो जयो निहितोस्ति । अतः अहं गोजित् परकीयानां गवां जेता भूयासम् । अश्वजित् प्रतिकितवसंबन्धिनाम् अश्वानां जेता । धनंजयः । धनशब्दः सामान्यवाची । दासीभूम्यादिधनस्य जेता । "संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः" इति जयतेः खच् प्रत्ययः । "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम" इति मुम् । हिरण्यजित् सुवर्णस्य जेता भूयासम् । लोके हि कितवा द्यूतकर्मणि गवादिधनं शुल्कं कृत्वा दीव्यन्ति तत्र ये जयन्ति ते तद्धनं स्वीकुर्वन्ति । अत्र जयस्य पूर्वार्धेन उक्तत्वाद् गवादिधनजयलाभः उत्तरार्धेन प्रार्थ्यते ॥

नवमी ॥

अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।
सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नात्रेव नह्यत ॥ ९ ॥

अक्षाः । फलऽवतीम् । द्युवम् । दत्त । गाम् । क्षीरिणीमऽइव ।
सम् । मा । कृतस्य । धारया । धनुः । स्नात्राऽइव । नह्यत ॥ ९ ॥

अनया देवनसाधनभूतान् अक्षान् जयाय प्रार्थयते । हे अक्षाः द्युवम् द्यूतक्रियाम् । दीव्यतेः संपदादिलक्षणो भावे क्विप् । "च्छ्वोः शूडनुनासिके च" इति ऊठ् । तदन्ताद् द्वितीयैकवचने अमि उवङ् आदेशः । द्यूतक्रियां फलवतीं फलोपेतां दत्त प्रयच्छत । यथा द्यूतेन धनलाभो भवति तथा कुरुतेत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः क्षीरिणीं गामिवेति । फलं कस्माद् भवति तम आह । कृतस्य कृतशब्दवाच्यस्य चतुःसंख्यायुक्ताक्षविषयस्य लाभहेतोः अयस्य धारया संतत्या उपर्युपरिलाभहेतुकृतायप्रवाहेण मा मां सं नह्यत संयोजयत । तत्र दृष्टान्तः धनुः स्नात्रेवेति । यथा धनुः कार्मुकं स्नात्रा स्नावनिर्मितया मौर्व्या सं-

1 S' यथा संनह्यंमिति for संनह्यन्ति.

नह्यन्ति । यथा मौर्वीसंनद्धं कार्मुकं जयकारि भवति एवं मां कृतायपरंपरया जयिनं कुरुतेत्यर्थः ॥

दशमी ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ १ ॥

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत । उत्ऽतरस्मात् । अधरात् । अघऽयोः ।
इन्द्रः । पुरस्तात् । उत । मध्यतः । नः । सखा । सखिऽभ्यः । वरीयः । कृणोतु ॥ १ ॥

बृहस्पतिः बृहतां देवानां पाता हितकारित्वेन पालयिता एतन्नामा देवः नः अस्मान् परि पातु परितः सर्वतो रक्षतु । सर्वत इत्युक्तम् कस्माद् इति तद् आह । पश्चात् प्रतीच्या दिशः । ※"पश्चात्" इति अस्तात्यर्थे निपातितः※ । उत अपि च उत्तरस्मात् ऊर्ध्वाल्लोकात् अधरात् अधस्तनाल्लोकात् अघायोः अघं हिंसालक्षणं परेषाम् इच्छतीति अघायुः । ※अघशब्दात् "छन्दसि परेच्छायाम्" इति क्यच् । "अश्वाघस्यात्" इति आत्त्वम् । "क्याच्छन्दसि" इति उप्रत्ययः※ । अभिजिघांसतः पुरुषात् । परि पात्विति संबन्धः । तथा इन्द्रः पुरस्तात् प्राच्या दिशः उत अपि च मध्यतः मध्यात् प्रदेशात् नः अस्मान् परि पात्विति । सर्वाभ्यो दिग्भ्यो योऽघायुरागच्छति ततोस्मान् इन्द्राबृहस्पती परिपालयताम् इत्यर्थः । अपि च सखा सखिभूत इन्द्रः सखिभ्यः समानख्यानेभ्यः स्तोतृभ्यः अस्मभ्यं वरीयः उरुतरं धनं कृणोतु करोतु ॥

तृतीयं सूक्तम् । समाप्तश्चतुर्थोनुवाकः ॥

पञ्चमेनुवाके त्रीणि सूक्तानि । तत्र "संज्ञानं नः" इति आद्यं सूक्तं बृहद्गणे पठितम् । तस्य शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ विनियोगः ॥

तथा सांमनस्यकर्मणि "संज्ञानं नः" इति द्यृचेन उदकुम्भं सुराकुम्भं वा संपात्य अभिमन्त्र्य ग्रामं परिभ्राम्य ग्राममध्ये निनयेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेन द्यृचेन त्रिहायण्या वत्सतर्याः शुक्त्यानि[1] मांसानि संपात्य अभिमन्त्र्य भक्षयेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अन्नं सुरां प्रपां वा अनेन द्यृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य यथायोगं भक्षणं पानं[2] वा कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि । "सं वो मनांसि[3] [६.९४] संज्ञानं नः[७.५४] इति "सांमनस्यानि । उदकुलिजं संपातवन्तं ग्रामं परिहृत्य मध्ये निनयति । "एवं सुराकुलिजम् । त्रिहायण्या वत्सतर्याः शुक्त्यानि पिशितान्याशय-"ति । भक्तं सुरां प्रपां संपातवत् करोति" इति [कौ°२.३] ॥

उपनयने आचार्यो माणवकस्य नाभिं संस्पृश्य "अमुत्रभूयात्" इति षळृचं जपेत् । "दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशे संस्तभ्य जपति । आ यातु मित्रः[३.८] अमुत्रभूयात्"[७.५५] इति हि सूत्रम् [कौ°७.६] ॥

तथा "बार्हस्पत्यां राज्यश्रीब्रह्मवर्चसकामस्य" इति [न°क°१७] विहितायां बार्हस्पत्याख्यायां महाशान्तौ "अमुत्रभूयात्" इति आवपेत् । उक्तं नक्षत्रकल्पे । "बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चात्[७.५३] अमुत्रभूयात् [७.५५] इति बार्हस्पत्यायाम्" इति [न°क°१८] ॥

पुष्ट्यर्थे आग्रहायणीकर्मणि अग्निसमीपात् प्रातरुत्थिते "उद्वयम्" इति उक्रामेत् । "उदायुषा[३.३१.१०] इत्युपोत्तिष्ठति । उद्वयम्[७.५५.७] इत्युक्रामति" इति हि [कौ°३.७] सूत्रम् ॥

अन्नप्राशनकर्मणि भूमौ उपवेशितं बालम् "उद्वयम्" इत्यनया आदित्यं प्रदर्शयेत् ॥

तथा सोमयागे अवभृथस्नानानन्तरम् "[उद्वयम्]" इत्यनया जलाद् उक्रामेत् । "संप्रोक्षति[4] । अपां सूकरित्याद्युपस्पर्शनान्तम् । उद्वयम् इत्युक्रामति" इति वैताने सूत्रितम् [वै°३.१४] ॥

अध्यापकानाम् अर्थार्जनविघ्नशमनार्थम् "ऋचं साम" इत्यनया आ-

1 So S'. See Sâyana on VI. 61. 2 S' पाश्रयं for पानं. 3 S' मनांसीति. 4 S' संप्रोक्ष्यापां for संप्रोक्षति । अपां.

ज्यं जुहुयात्। "ऋचं सामेत्यनुप्रवचनीयस्य जुहोति" इति हि [कौ० ५. ६] सूत्रम्॥

तत्र प्रथमा॥

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम्॥ १॥

समऽज्ञानम्। नः। स्वेभिः। समऽज्ञानम्। अरणेभिः।
समऽज्ञानम्। अश्विना। युवम्। इह। अस्मासु। नि। यच्छतम्॥ १॥

स्वेभिः स्वकीयैः पुरुषैः नः अस्माकं संज्ञानम् संगतं ज्ञानम् ऐकमत्यम्। भवत्विति शेषः। तथा अरणेभिः अरणैः अरमणैः अनुकूलम् अवदद्भिः। ※रणतिः शब्दार्थः※। प्रतिकूलैः पुरुषैः। यद्वा। ※अर्तेः अरणशब्दः※। अरातिभिः सह संज्ञानम् समानज्ञानं भवतु। ※स्वेभिः अरणेभिः इत्युभयत्र "बहुलं छन्दसि" इति भिस ऐसोऽभावः। "बहुवचने झल्येत्" इति एत्त्वम※। हे अश्विना अश्विनौ युवम् युवाम् इह अस्मिन् विषये इह इदानीं वा अस्मासु संज्ञानम् समानज्ञानं स्वीयैः परैश्च सह ऐकमत्यं नि यच्छतम् नियमयतम्। स्थापयतम् इत्यर्थः॥

द्वितीया॥

सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन।
मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते मेषुः पपात्विन्द्रस्याहन्यागते॥ २॥

सम्। जानामहै। मनसा। सम्। चिकित्वा। मा। युष्महि। मनसा। दैव्येन।
मा। घोषाः। उत्। स्थुः। बहुले। विऽनिर्हते। मा। इषुः। पपात्। इन्द्रस्य। अहनि। आऽगते॥ २॥

१ A D C$^{s}$ युत्स्महि. V युछ्महि. S युष्महि corrected to युत्स्महि. P P$^{1}$ J युछ्महि. We with B$^{m}$ K K$^{m}$ R C$^{p}$. २ D K C$^{s}$ उत्थुः. We with A B K K$^{m}$ S$^{m}$ V$^{c}$. ३ So all our MSS. and vaidikas.

मनसा अन्यदीयेन सं जानामहै समानज्ञाना भवाम । यद्वा मनः कर्म । परकीयं मनः संयोजयामः । यथा अस्मद्विषयेऽनुकूलं भवति तथा कुर्म इत्यर्थः । ॐ "संप्रतिभ्याम् अनाध्याने" इति जानातेरात्मनेपदम् । "संज्ञोन्यतरस्यां कर्मणि" इति मनसस्तृतीया ॐ । चिकित्वा ज्ञात्वा । सम् । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः । संगतकार्यकारिणो भवाम । यद्वा पूर्वं मनसा संगतिरुक्ता । इदानीं निश्चयात्मकज्ञानेन संगतिः प्रार्थ्यते । चिकित्वा चिकित्वना । ज्ञानेनेत्यर्थः । सं जानामहै इत्यनुषङ्गः । स्वेषां परेषां च मनसा ज्ञानेन च संगता भवामेत्यर्थः । ॐ चिकित्वेति । कित ज्ञाने । "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" इति क्त्वाप्रत्ययः । छान्दसं द्विर्वचनम् । "एकाचः०" इति इण्निषेधः । यद्वा "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति क्वनिपि पूर्ववद् द्विर्वचनम् । तृतीयाया डादेशः ॐ । किं च दैव्येन देवसंबन्धिना देवताविषयेण । ॐ "देवाद् यञञौ" इति यञ् प्रत्ययः ॐ । तादृशेन मनसा मा युष्महि मा वियुक्ता भूम । प्रतिकूलजनितविक्षेपराहित्येन स्वकीयं मनः सर्वदा देवताविषयं भवत्वित्यर्थः । ॐ यु मिश्रणामिश्रणयोः । "माङि लुङ्" । सिच् । "संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः" इति गुणाभावः ॐ । अपि च बहुले अधिके विनिहुते । ॐ ह्रु कौटिल्ये । "हु ह्वरेश्छन्दसि" इति निष्ठायां हु इत्यादेशः ॐ । कौटिल्ये निमित्ते घोषाः वैमनस्यनिबन्धनाः शब्दाः मा उत्स्थुः उत्थिता मा भूवन् । यद्वा बहुलशब्देन तमो विवक्ष्यते । विनिहुते विशेषेण स्तैन्यादिकौटिल्यनिमित्ते बहुले तमसि । रात्रावित्यर्थः । घोषाः वैमनस्यनिबन्धनाः शब्दा उत्थिता मा भूवन् । ॐ उत्पूर्वात् तिष्ठतेः "माङि लुङ्" । वचनस्य ऊर्ध्वकर्मत्वं विवक्षित्वा आत्मनेपदाभावः ॐ । तथा अहनि अह्नि वासरे आगते च इन्द्रस्य इषुः । ऐन्द्र्या वाचः शत्रुनिवारकत्वाद् इषुत्वेन रूपणम् । "वाग् अस्यैन्द्री सपत्नक्षयणी" इति तैत्तिरीयश्रुतेः [तै० सं० १.६.२.२] । यद्वा इन्द्रस्य इषुः अशनिः अशनिरूपा मर्मभेदिनी परकीया वाक् मा पप्तत् अस्मासु मा पततु । अहोरात्रोपलक्षितेषु सर्वेषु

दिवसेष्वपि वैमनस्यनिबन्धनाः परेषां वाचः अस्मासु मा पतन्तु किं तु अनुकूला एव भवन्तु इत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

अमुत्रभूयादधि यद् यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः ।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ १ ॥

अमुत्रऽभूयात् । अधि । यत् । यमस्य । बृहस्पतेः । अभिऽशस्तेः । अमुञ्चः ।

प्रति । औहताम् । अश्विना । मृत्युम् । अस्मत् । देवानाम् । अग्ने । भिषजा । शचीभिः ॥ १ ॥

हे बृहस्पतेः । [X]संबुद्धौ सोर्लोपाभावश्छान्दसः[X] । बृहतां महतां देवानां पते हविःप्रदानेन पालयितरग्ने अमुत्रभूयात् परलोके भवनम् अमुत्रभूयम् । [X]"भुवो भावे" इति भावे क्यप् प्रत्ययः[X] । परलोकभवनरूपाद् यमस्य पितृपतेः संबन्धिनः अभिशस्तेः अभिशंसनाद् मरणहेतोः यत् यस्मात् अमुञ्चः मोचयसि । इमं माणवकम् इति शेषः । अधिशब्दः अनर्थकः । यद्वा । [X]अमुत्रभूयाद् इति त्यब्लोपे पञ्चमी[X] । परलोकभवनम् अभिलक्ष्य क्रियमाणाद् यमकर्तृकाद् अभिशंसनाद् मोचयसि तस्मात् कारणात् हे अग्ने त्वयि एवं कुर्वाणे त्वत्प्रसादादेव देवानां भिषजा भिषजौ वैद्यौ अश्विना अश्विनौ शचीभिः क्रियाभिः अस्मत् अस्मत्तः अस्मदीयात् । माणवकाद् इत्यर्थः । मृत्युम् मरणकारणं प्रत्यौहताम् । निवारयताम् इत्यर्थः । [X]अमुञ्चः औहताम् इत्युभयत्र छान्दसो लङ्[X] ॥

॥

सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम्

१ B B̊ K K̃ V Cp बृहस्पते अभिशस्तेरमुञ्चः. Cs बृहस्पते अभिशंस्तेरमुंचः corrected to बृहस्पतेरभिशंस्तेरमुंचः. We with A R S̃ P P̊ J Cs. None of our authorities read °रमुंञ्चः.

शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वसिष्ठः ॥ २ ॥

सम् । क्रामतम् । मा । जहीतम् । शरीरम् । प्राणापानौ । ते । सऽयुजौ । इह । स्ताम् ।

शतम् । जीव । शरदः । वर्धमानः । अग्निः । ते । गोपाः । अधिऽपाः । वसिष्ठः ॥ २ ॥

हे प्राणापानौ सं क्रामतम् आयुष्कामस्य शरीरे संक्रान्तौ भवतम् । तथा शरीरम् आयुष्कामस्य देहं मा जहीतम् मा त्यजतम् । सर्वदा शरीरे तिष्ठतम् इत्यर्थः । ओहाक् त्यागे । लोटि "ईहल्यघोः" इति ईत्वम् ॥ प्राणापानौ संबोध्य तयोः शरीरेऽवस्थानं संप्रार्थ्य आयुष्कामं प्रत्याह उत्तरेण पादत्रयेण । हे आयुष्काम ते तव इह अस्मिन् शरीरे प्राणापानौ प्राणितीति प्राणः नासिकाविवराद् बहिर्निर्गच्छन् वायुः । अपानितीति अपानः हृदयस्य अधोभागे संचरन् वायुः । तौ सयुजौ संयुक्तौ परस्परसंयुक्तौ स्ताम् भवताम् । यावन्तं कालं प्राणापानौ परस्परसंबद्धौ देहे वर्तेते तावन्तम् आयुर्भवतीति तयोः साहित्यं प्रार्थितम् । अनन्तरम् हे आयुष्काम शतं शरदः शतवर्षपर्यन्तं जीव प्राणान् धारय । तथा जीवतस्ते तव वर्धमानः हविरादिना समृद्धिं गच्छन् अग्निः गोपाः गोपायिता भवतु । गुपू रक्षणे । किपि "गुपूधूपविच्छि°" इति आयप्रत्ययः । "लोपो व्योर्वलि" इति यकारलोपः । अधिपाः अधिकं पाता मदीयोयम् इति आदरातिशयेन अग्निः पालयिता भवतु । वसिष्ठः वासयितृतमश्चास्तु वसुमत्तमो वा भवतु । वासयितृशब्दाद् इष्ठनि "तुरिष्ठेमेयःसु" इति तृचो लोपः । वसुमच्छब्दाद् इष्ठनि मतोर्लुकि टेर्लोपः ॥

पञ्चमी ॥

आयुर्यत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा ताविताम् ।
अग्निष्टदाहार्निर्ऋतेरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वेशयामि ते ॥ ३ ॥

१ J °जहि°.

आयुः। यत्। ते। अतिऽहितम्। पराचैः। अपानः। प्राणः। पुनः। आ।
तौ। इताम्।
अग्निः। तत्। आ। अहाः। निःऽऋतेः। उपऽस्थात्। तत्। आत्मनि।
पुनः। आ। वेशयामि। ते॥ ३॥

हे आयुष्काम ते तव यद् आयुः जीवनं पराचैः पराङ्मुखम् अतिहितम् अतिक्रम्य गतम्। हि गतौ इत्यस्माद् निष्ठायां रूपं हितम् इति। यद्वा अतिहितम् अतिक्रम्य अन्यत्र निहितम्। मृत्युनेति शेषः। "दधातेर्हिः" इति निष्ठायां हिभावः। तद् आयुरिति उत्तरवाक्येन संबन्धः। आयुषः प्राणापानागमननिमित्तत्वाद् वाक्यमध्ये तयोरागमनं प्रार्थयते प्राणोपान इति। तौ वायू देहधारकौ पुनः एताम् आगच्छताम्। इण् गतौ। लोटि प्रथमपुरुषद्विवचने रूपम्। तद् आयुः अतिहितं जीवनम् अग्निः निर्ऋतेः निकृष्टगमनस्य मृत्योः उपस्थात् अन्तिकाद् आहाः आहार्षीत् आहरतु आनयतु। हरतेश्छान्दसो लुङ्। सिचि वृद्धिः। "अनित्यम् आगमशासनम्" इति इडभावः। "झलो झलि" इति सिचो लोपः। "हल्ङ्या०" इत्यादिना तिपो लोपः। तद् अग्निना आनीतम् आयुः हे आयुष्काम ते तव आत्मनि शरीरे पुनः आ वेशयामि मन्त्रसामर्थ्येन आस्थापयामि। विश प्रवेशने॥

षष्ठी॥

मेमं प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात्।
सप्तर्षिभ्य एनं परि ददाम्मि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु॥ ४॥

मा। इमम्। प्राणः। हासीत्। मो इति। अपानः। अवऽहाय। परा। गात्।

---

१ P अहः. २ A R अपानोऽहाय. C अपानोऽवि° changed to अपानोव्°. We with $\overset{h}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ $\overset{m}{S}$ V. ३ D $\overset{m}{K}$ R सप्तऋषिभ्यं. C सप्तऋषिभ्यं changed to सप्तर्षिभ्यं. We with A $\overset{h}{B}$ K $\overset{m}{S}$ V.

1 S' प्राणापान इति.

सप्तर्षिऽभ्यः । एनम् । परि । ददामि । ते । एनम् । स्वस्ति । जरसे । वहन्तु ॥ ४ ॥

इमम् आयुष्कामं प्राणः मा हासीत् मा त्यजतु । ओहाक् त्यागे । लुङि रूपम् । अपानः अवहाय अस्माच्छरीराद् निष्क्रम्य परित्यज्य वा मा परा गात् मैव परागच्छतु । अवहायेति । जिहीतेर्जहातेर्वा त्यपि रूपम् । सप्तर्षिभ्यः । ऋषिशब्देन प्राणा उच्यन्ते । "के त ऋषय इति । प्राणा वा ऋषयः" इति वाजसनेयश्रुतेः [श० ब्रा० ६.१.१.१] । सप्तसंख्याकेभ्यः प्राणेभ्यः । "सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः" इति [तै० ब्रा० १.२.३.३] श्रुतेः । तेभ्यः एनम् आयुष्कामम् । "इदमोन्वादेशे०" एनादेशः । परि ददामि । रक्षार्थं दानं परिदानम् । रक्षितुं प्रयच्छामि । अथ ते सप्त प्राणा एनम् आयुष्कामं जरसे । तादर्थ्ये चतुर्थी । जरार्थं स्वस्ति क्षेमेण वहन्तु प्रापयन्तु । जरापर्यन्तं स्थापयन्तु इत्यर्थः । जराया जरस् आदेशः । अत्र प्राणापानयोः शरीरे चिरकालम् अवस्थानं सर्वेन्द्रियाणां च प्राबल्यं बहुकालं प्रार्थितम् ॥

सप्तमी ॥

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥ ५ ॥

प्र । विशतम् । प्राणापानौ । अनड्वाहौऽइव । व्रजम् ।
अयम् । जरिम्णः । शेवऽधिः । अरिष्टः । इह । वर्धताम् ॥ ५ ॥

आयुषः प्राणापानावस्थाननिबन्धनत्वात् पुनःपुनः प्राणापानयोः शरीरे प्रवेशः प्रार्थ्यते । हे प्राणापानौ प्रविशतम् आयुष्कामस्य शरीरम् । प्रवेशमात्रे दृष्टान्तः । अनड्वाहौ अनोवहनशक्तौ बलीवर्दौ यथा व्रजम् गोष्ठं प्रविशतः तद्वत् । [अयम्] आयुष्कामः जरिम्णः जरायाः शेवधिः निधिर्भवतु । शेवं सुखं धीयतेऽत्रेति "कर्मण्यधिकरणे च" इति घोः किप्रत्ययः । किं च अरिष्टः अहिंसितः मृत्युबाधारहि-

तः सर्वेन्द्रियैरहीनो वा इह अस्मिन् लोके वर्धताम् समृद्धो भवतु ॥

अष्टमी ॥

आ ते प्राणं सुवामसि परा यक्ष्मं सुवामि ते।
आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः ॥ ६ ॥

आ। ते। प्राणम्। सुवामसि। परा। यक्ष्मम्। सुवामि। ते।
आयुः। नः। विश्वतः। दधत्। अयम्। अग्निः। वरेण्यः ॥ ६ ॥

हे आयुष्काम ते तव प्राणम् आ सुवामसि आगमयामः। ⁂षू प्रेरणे। तौदादिकः। "इदन्तो मसिः" ⁂ ॥ तथा ते तव यक्ष्मम् आयुःप्रतिबन्धकं रोगं मृत्युं वा परा सुवामि पराङ्मुखं प्रेरयामि ॥ किं च वरेण्यः वरणीयः संभजनीयः अयं हूयमानः अग्निः नः अस्मदीयस्य आयुष्कामस्य आयुः शतसंवत्सरपरिमितं जीवनं विश्वतः सर्वतः दधत् विदधातु। करोत्वित्यर्थः। ⁂दधातेर्लेटि "घोर्लोपो लेटि वा" इति लोपः। "लेटोऽडाटौ" इति अडागमः ⁂ ॥

नवमी ॥

उद् वयं तमसस्परि रोहन्तो नाकमुत्तमम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ७ ॥

उत्। वयम्। तमसः। परि। रोहन्तः। नाकम्। उत्ऽतमम्।
देवम्। देवऽत्रा। सूर्यम्। अगन्म। ज्योतिः। उत्ऽतमम् ॥ ७ ॥

तमसः। "पाप्मा वै तमः" इति हि श्रुतिः [तै० सं० ५.१.८.६]। पाप्मनः परि उपरि वयम् उत्क्रान्ताः। ⁂उदुपसर्गः ससाधनां क्रियाम् आह। "पञ्चम्याः परावध्यर्थे" इति सकारः ⁂। किं कुर्वन्तः। उत्तमम् उत्कृष्टं नाकम् दुःखसंस्पर्शरहितं स्वर्गं रोहन्तः आरोहन्तः। ततश्च देवत्रा देवेषु। ⁂"देवमनुष्य०" इति सप्तम्यर्थे त्रा प्रत्ययः ⁂। उत्तमम् उद्गततमं ज्योतिः ज्योतीरूपं द्योतमानं सूर्यं देवम् अगन्म गच्छेम। ⁂गमेर्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्। "म्वोश्च" इति मकारस्य नकारः ⁂ ॥

दशमी ॥

ऋचं॑ सा॒म यजामहे॒ याभ्यां॑ कर्मा॑णि कु॒र्वते॑ ।
ए॒ते सद॑सि राजतो य॒ज्ञं दे॒वेषु॑ य॒च्छतः॑ ॥ १ ॥
ऋ॒चम॑ । सा॒म । य॒जा॒म॒हे॒ । याभ्या॑म् । कर्मा॑णि । कु॒र्वते॑ ।
ए॒ते इति॑ । सद॑सि । रा॒ज॒तः॒ । य॒ज्ञम् । दे॒वेषु॑ । य॒च्छ॒तः॒ ॥ १ ॥

ऋचम् ऋग्वेदं साम सामवेदम् अधीतं यजामहे हविषा पूजयामः । याभ्याम् ऋक्सामाभ्यां कर्माणि यज्ञरूपाणि कुर्वते ऋत्विग्यजमानाः । एते ऋक्सामे सदसि सीदन्त्यत्रेति सदः एतन्नामके मण्डपे राजतः दीप्येते । ऋक्सामयोस्तत्रैव प्रयोगात् । तथा देवेषु यज्ञं यच्छतः प्रयच्छतः । स्तुतशस्त्राभ्यां यज्ञनिष्पत्तेः ॥

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

अध्यापकानाम् अर्थार्जनविघ्नशमनार्थम् "ऋचं साम यद् अप्राक्षम्" इति ऋचा केवलया "ऋचं साम यजामहे" इति पूर्वमन्त्रसहितया च आज्यं जुहुयात् । "ऋचं सामेत्यनुप्रवचनीयस्य जुहोति । युक्ताभ्यां तृतीयाम्" इति हि [कौ० ५. ६] सूत्रितम् ॥

मार्गस्वस्त्ययनकर्मणि "ये ते पन्थानः" इत्येनाम् ऋचं जपन् प्रथमं दक्षिणपादप्रक्षेपपुरःसरं गच्छेत् ॥

तथा सर्वस्वस्त्ययनकर्मणि असंख्याताः शर्करास्तृणानि वा अनया अभिमन्त्र्य गृहक्षेत्रादिषु प्रक्षिपेद् इन्द्रम् उपतिष्ठेत वा ॥

सूत्रितं हि । "स्वस्तिदाः[१.२१] ये ते पन्थानः[७.५७.२] इ-
"त्यध्वानं दक्षिणेन प्रक्रामति । असंख्याताः शर्करास्तृणानि क्षिप्त्वोपति-
"ष्ठते" इति [कौ० ७.१] ॥

वृश्चिकमशकपिपीलिकाशकोटकादिविषभैषज्यार्थं "तिरश्चिराजेः" इत्यृचेन मधुकम् अभिमन्त्र्य वृश्चिकादिदष्टं पाययेत् ॥

---

१ S m. गच्छतः corrected from यच्छतः. २ P ऋचम्.

1 S' मंडपे. 2 S' inserts प्रदिषु after °क्षेत्रादिषु. 3 So S'. *Kauśika*: व्युदस्यत्यसंख्या°. 4 So S'. *Kauśika*: छित्वोप°. 5 S' शर्कोटिकादिविषय°.

तथा तत्रैव कर्मणि क्षेत्रमृत्तिकां वल्मीकमृत्तिकां वा सजीवपशुचर्मावेष्टिताम् अनेन अष्टर्चेन संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात्। केवलां मृत्तिकाम् अभिमन्त्र्य उदकेन पाययेत्॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेनैव उदपात्रं हरिद्रामिश्रम् आज्यं वा संपात्य अभिमन्त्र्य पाययेत्॥

सूत्रितं हि। "तिरश्चिराजेरिति मन्त्रोक्तम्। आकृतिलोष्टवल्मीकौ परिवेष्ट्य। पायनानि" इति [कौ० ४. ८]॥

तथा उपाकर्मणि "अरसस्य शर्कोटस्य" इत्यनया आज्यं जुहुयात्। "अरसस्य शर्कोटस्य[७. ५८. ५] इन्द्रस्य प्रथमो रथः"[१०. ४] इति हि सूत्रितम् [कौ० १४. ३]॥

तत्र प्रथमा॥

ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम्।
एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते॥ १॥

ऋचम्। साम। यत्। अप्राक्षम्। हविः। ओजः। यजुः। बलम्।
एषः। मा। तस्मात्। मा। हिंसीत्। वेदः। पृष्टः। शचीऽपते॥ १॥

ऋचम् ऋग्वेदं हविः अप्राक्षम् पृच्छामि स्म। साम सामवेदम् ओजः। शरीरधारकोष्टमो धातुरोज इत्युच्यते। तद् अप्राक्षम्। यजुः यजुर्वेदं बलम् बाह्यं वीर्यम् अप्राक्षम्। ऋचा याज्यारूपया हविर्हूयत इति ऋग्वेदं प्रति हविःप्रश्नः। माध्यन्दिनसवने गीयमानानां पृष्ठस्तोत्राणां यज्ञप्राणत्वेन ताण्डकब्राह्मणे संस्तवात् सामवेदं प्रति आन्तरबलरूपौजःप्रश्नः। यजुषा यज्ञशरीरनिर्वृत्तेर्यजुर्वेदं प्रति बलप्रश्नः। "अकथितं च" इति ऋगादेः कर्मता। अप्राक्षम् इति। पृच्छतेर्लुङि "एकाचः०" इति इण्निषेधे "वदव्रज०" इति हलन्तलक्षणा वृद्धिः। यच्छब्दो हेत्वर्थे। यत् यस्मात् ऋगादीन् प्रति हविरादिकम् अप्राक्षं तस्मात् का-

१ A K K$^{m}$ S V C$_{s}$ पृष्टः. We with B D R P. २ P ओजाः. ३ P J C$_{P}$ पृष्टः. We with P.

1 S' शर्कोटिकस्य. 2 S' निवृत्ते°.

रणात् तत्तदसाधारणधर्मप्रश्नाद्धेतोः हे शचीपते इन्द्राणीपते इन्द्र । वाग्व्याकरणकर्तृत्वाद् इन्द्रः संबोध्यते । तथा च तैत्तिरीयकम् । "ताम् इन्द्रो मध्यतोवक्रम्य व्याकरोत् । तस्माद् इयं व्याकृता वाग् उद्यते" इति [तै० सं० ६. ४. ७. ३] । हे वागनुशासनकर्तः इन्द्र पृष्टः इत्थं विचारित एषः मया सम्यग् अधीतो वेदः ऋक्सामयजुरात्मकः मा माम् अध्यापकं मा हिंसीत् मा हिनस्तु । अध्यापननिबन्धनं प्रत्यवायं मा करोतु अपि तु फलम् अभिमतं प्रयच्छत्वित्यर्थः ॥

द्वितीया ॥

ये ते पन्थानोव दिवो येभिर्विश्वमैरयः ।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥ २ ॥

ये । ते । पन्थानः । अव । दिवः । येभिः । विश्वम् । ऐरयः ।
तेभिः । सुम्नऽया । आ । धेहि । नः । वसो इति ॥ २ ॥

हे वसो वासयितः वसुमन् वसुप्रद वा इन्द्र ते तव ये पन्थानः मार्गा दिवः द्युलोकस्य अव अवस्ताद् अधोदेशे वर्तन्ते येभिः पथिभिः विश्वम् जगद् ऐरयः प्रेरयसि स्वस्वकर्मसु । ☒ईर गतौ । छान्दसो लङ् ☒ । तेभिः तैर्विश्वप्रेरणसाधनैर्मार्गैः नः अस्मान् सुम्नया । ☒सप्तम्या याजादेशः ☒ । सुम्ने सुखे आ धेहि स्थापय ॥

तृतीया ॥

तिरश्चिराजेरसितात् पृदाकोः परि संभृतम् ।
तत् कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत् ॥ १ ॥

तिरश्चिऽराजेः । असितात् । पृदाकोः । परि । समऽभृतम् ।
तत् । कङ्कऽपर्वणः । विषम् । इयम् । वीरुत् । अनीनशत् ॥ १ ॥

तिरश्चिराजेः तिरश्च्यः तिर्यग्भूता राजयो रेखा यस्य स तिरश्चिराजिः सर्पविशेषः । ☒तिरःशब्दोपपदाद् अञ्चतेः किन्नन्ताद् "अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्" इति ङीपि "अचः" इति अकारलोपः । पुंवद्भावाभावश्छा-

न्दसः। "ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्" इति ङीपो ह्रस्वत्वम्। तिरश्चीननानारेखोपेतात् सर्पविशेषात् असितात् सितः श्वेतः न सितः असितः तस्मात् कालोरगात् पृदाकोः। पर्द कुत्सिते शब्दे। "पर्देः संप्रसारणं च" इति [उ० ३. ८०] आकुप्रत्ययः। तत्संनियोगेन संप्रसारणम्। पर्दयति कुत्सितं शब्दयति स्वेन दष्टान् प्राणिन इति पृदाकुः सर्पविशेषः। तस्मात्। परिः पञ्चम्यर्थानुवादी। तिरश्चिराजिप्रभृतेः सर्पविशेषात् संभृतम् संपादितं विषम्। तथा कङ्कपर्वणः एतन्नामकाद् दंशकविशेषात् संभृतं तद् विषम् इयं प्रयुज्यमाना वीरुत् विशेषेण रोहन्ती मधुकाख्या ओषधिः अनीनशत् नाशयतु॥

चतुर्थी॥

इयं वीरुन्मधुजातां मधुश्चुन्मधुला मधूः।
सा विहुतस्य भेषज्यथो मशकजम्भनी॥ २॥

इयम्। वीरुत्। मधुऽजाता। मधुऽश्चुत्। मधुला। मधूः।
सा। विऽहुतस्य। भेषजी। अथो इति। मशकऽजम्भनी॥ २॥

इयं प्रयुज्यमाना वीरुत् ओषधिः मधुजाता मधुनो निष्पन्ना अत एव मधुश्चुत् मधुरं रसं श्चोतति क्षरतीति मधुश्चुत् मधुररसस्रावणी मधुला मधुमती। "सिध्मादिभ्यश्च" इति लो मत्वर्थीयः। मधूः नामतः। सा एतत्संज्ञा उक्तविधगुणोपेता मधुकाख्या ओषधिः विहुतस्य विशेषेण कौटिल्यकारिणो विषस्य भेषजी प्रतिकर्त्री। ह्वृ कौटिल्ये। "हु ह्वरेश्छन्दसि" इति निष्ठायां हु इत्यादेशः। अथो अपि च मशकजम्भनी। जभतिर्हिंसाकर्मा। मशकानां दंशकानां हिंसित्री॥

पञ्चमी॥

यतो दृष्टं यतो धीतं ततस्ते निर्ह्वयामसि।

---

१ B B K K °जाता. Cs °जाता changed to °जाता. We with A D R S P P J V.
२ B °जंभनीः.

1 So S'.

अर्भस्य तृप्रदंशिनो मशकस्यारसं विषम् ॥ ३ ॥

यतः । दष्टम् । यतः । धीतम् । ततः । ते । निः । ह्वयामसि ।

अर्भस्य । तृप्रऽदंशिनः । मशकस्य । अरसम् । विषम् ॥ ३ ॥

विषदष्टं संबोध्य उच्यते । यतः । [x]सप्तम्यर्थे तसिः[x] । यस्मिन् प्रदेशे दष्टम् । सर्पादिनेति शेषः । [x]भावे निष्ठा[x] । तथा यतः यस्मिन् प्रदेशे धीतम् पीतं सर्पादिना । [x]धेट् पाने । भावे निष्ठा । "घुमास्था०" इति ईत्वम्[x] । हे सर्पदष्ट पुरुष ते तव ततः तस्माद् अवयवाद् निर्वयामसि विषं निर्गमयामः । [x]अय वय पय मय चय तय गतौ । अन्तर्भावितण्यर्थः[x] । तथा त्रिप्रदंशिनः त्रिभिर्मुखपुच्छपादरूपैरङ्गैः प्रकर्षेण दशतीति त्रिप्रदंशी । [x]"बहुलम् आभीक्ष्ण्ये" इति दंशेर्णिनिः[x] । मुखपुच्छाभ्यां पादेन च दष्टवतः अर्भस्य अर्भकस्य अल्पस्य अल्पसामर्थ्यस्य वा मशकस्य विषम् अरसम् निर्वीर्यम् ।

शृङ्गारादौ रसे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः ।

इति वचनाद् रसशब्दो वीर्यवाची । निर्वीर्यं निर्वयामसीति संबन्धः । विषं मूर्च्छनादिविकारानुत्पादकं कुर्म इत्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गो मुखानि वक्रा वृजिना कृणोषि ।

तानि त्वं ब्रह्मणस्पत इषीकामिव सं नमः ॥ ४ ॥

अयम् । यः । वक्रः । विऽपरुः । विऽअङ्गः । मुखानि । वक्रा । वृजिना । कृणोषि ।

तानि । त्वम् । ब्रह्मणः । पते । इषीकामऽइव । सम् । नमः ॥ ४ ॥

योयं सर्पादिना दष्टः पुरुषः वक्रः कुटिलावयवः संकोचितावयवः विपरुः । परुः पर्व । विश्लिष्टपर्वा विगतसंधिः व्यङ्गः विवशावयवः ।

---

१ A B D K K S V Cs Cp त्रिप्र°. We with R P P J. २ S °स्पते इ°. ३ B D K K V Cs नम. We with A R S P P J.

एवंभूतः सन् मुखानि । आदिशब्दाध्याहारः । मुखादीनि अङ्गानि । मुखगतावयवापेक्षया वा बहुवचनम् । वक्रा वक्राणि कुटिलानि अतएव वृजिना वृजिनानि कष्टानि अनवस्थितानि । अङ्गानां यथासंनिवेशम् अनवस्थानाद् वृजिनत्वम् । तथाविधानि कृणोषि । ॥ पुरुषव्यत्ययः ॥ । कृणोति करोति हे ब्रह्मणस्पते ब्रह्मणो मन्त्रस्य पालक विषनिर्हरणमन्त्रसामर्थ्यप्रद एतन्नामक देव त्वं तानि दष्टपुरुषसंबन्धीनि वक्रावाद्यवस्थापन्नानि अङ्गानि सं नमः संनमय ऋजूकुरु । तत्र दृष्टान्तः इषीकामिवेति । यथा इषीकाम् पूर्वम् ऋजुं दीर्घां बलात् कौटिल्यं प्रापितां पश्चात् कौटिल्यपरिहारेण सहजम् आर्जवं प्रापयन्ति तद्वत् । एनं सर्पादिविषेण कौटिल्यं गतं विषनिर्हरणेन यथावस्थितम् ऋजुं कुर्वित्यर्थः । ॥ नमेः अन्तर्णीतण्यर्थात् पञ्चमलकारे अडागमः ॥ ॥

सप्तमी ॥

अरसस्य शर्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः ।
विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ॥ ५ ॥

अरसस्य । शर्कोटस्य । नीचीनस्य । उपऽसर्पतः ।
विषम् । हि । अस्य । आऽअदिषि । अथो इति । एनम् । अजीजभम् ॥ ५ ॥

अरसस्य निर्वीर्यस्य विषसामर्थ्यरहितस्य नीचीनस्य न्यग्भूतस्य अवाङ्मुखस्य उपसर्पतः समीप गच्छतः अस्य शर्कोटस्य एतन्नामधेयस्य सर्पविशेषस्य विषम् अदिषि खण्डितवान् अस्मि । हिः अवधारणे । विषम् अनीनशमेव । ॥ दो अवखण्डने । अस्मात् लुङि व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । "स्याघ्वोरिच्च" इति धातोः इत्त्वम् । सिचः कित्वम् ॥ अथो अपि च एनं विषिणं शर्कोटम् अजीजभम् अनीनशम् । शर्कोटनामकं सर्पं तद्विषं च मन्त्रसामर्थ्येन अहं प्रयोक्ता अहिंसिषम् इत्यर्थः ॥

अष्टमी ॥

न ते बाह्वोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ।

---

१ BR ३ for १. We with $^{h}$BK $^{m}$K $^{m}$SV. २ $^{m}$K °जीगमम्.

अथ किं पापयामुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥ ६ ॥

न । ते । बाह्वोः । बलम् । अस्ति । न । शीर्षे । न । उत । मध्यतः ।
अथ । किम् । पापया । अमुया । पुच्छे । बिभर्षि । अर्भकम् ॥ ६ ॥

अत्र पुच्छेन दंशी वृश्चिकः संबोध्यते । हे वृश्चिक ते तव बाह्वोः हस्तयोः बलं परपीडाकारि सामर्थ्यं नास्ति । तथा शीर्षे शिरसि बलं नास्ति । उत अपि च मध्यतः । [illegible]सप्तम्यर्थे तसिः[illegible] । मध्ये मध्यावयवे बलं नास्ति । अथेति प्रश्ने । अमुया अनया । [illegible]अदः-शब्दात् तृतीयैकवचने "अदसोसेर्दादु दो मः" इति उत्वमत्वे[illegible] । पापया पापिष्ठया परपीडाकारिण्या बुद्ध्या अर्भकम् । [illegible]अर्तेः औणादिके भन्प्रत्यये अर्भः । सः अल्पार्थवाची । तस्माद् "अल्पे च" इति अल्पार्थे कन् प्रत्ययः[illegible] । अत्यल्पं विषं पुच्छे किं बिभर्षि किमर्थं धारयसि । बाह्वादिस्थानेषु विषं नास्ति । पुच्छेपि वर्तमानम् अत्यल्पमेव । तदपि परपीडायै वहसि । तेनापि परपीडा न भवतीत्यर्थः ॥

नवमी ॥

अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृश्चन्ति मयूर्यः ।
सर्वे भल ब्रवाथ शार्कोटमरसं विषम् ॥ ७ ॥

अदन्ति । त्वा । पिपीलिकाः । वि । वृश्चन्ति । मयूर्यः ।
सर्वे । भल । ब्रवाथ । शार्कोटम् । अरसम् । विषम् ॥ ७ ॥

अत्र पूर्वार्धे सर्पः संबोध्यते । उत्तरार्धे विषनिर्हरणक्षमाः संबोध्यन्ते । हे सर्प त्वा त्वां पिपीलिका अदन्ति भक्षयन्ति । मयूर्यः मयूरस्त्रियः । [illegible]"जातेरस्त्रीविषयाद् अयोपधात्" इति ङीष्[illegible] । वि वृश्चन्ति विशेषेण छिन्दन्ति सर्पम् । [illegible]ओव्रश्चू छेदने । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम्[illegible] ॥ हे सर्वे सर्पविषनिर्हरणक्षमा यूयं शार्कोटम् । शर्कोटो नाम सर्पविशेषः । तस्य संबन्धि । [illegible]"तस्ये-

१ B मयूर्यः. २ P P J Cp omit the visarga.

"दम्" इति अण्ऽ। विषम् अरसम् निर्वीर्यं भलब्रूवाथ साधु ब्रूत। ऽभल भल्ल परिभाषणहिंसादानेषु। अस्मात् पचाद्यचि भल इति भवति। स साध्वर्थवाची। क्रियाविशेषणम् एतत्। सह इति योगविभागात् तिङन्तेन समासः। ब्रूतेः पञ्चमलकारे "लेटोडाटौ" इति आडागमः ऽ॥

दशमी॥

य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च।
आस्ये३ न ते विषं किमु ते पुच्छधावसत्॥ ८॥

यः। उभाभ्याम्। प्रऽहरसि। पुच्छेन। च। आस्येन। च।
आस्ये। न। ते। विषम्। किम्। ऊं इति। ते। पुच्छऽधौ। असत्॥ ८॥

अत्र वृश्चिकः संबोध्यते। हे वृश्चिक यस्त्वं पुच्छेन आस्येन उभाभ्याम्। ऽपरस्परसमुच्चयार्थौ चकारौ ऽ। ताभ्यां प्रहरसि अन्यान् बाधसे तथापि आस्यपुच्छयोर्मध्ये ते तव आस्ये मुखे विषं न। अस्तीति शेषः। ते तव पुच्छधौ। पुच्छं धीयतेत्रेति पुच्छधिः। पुच्छशब्देन तद्गतरोमाणि विवक्ष्यन्ते। पुच्छधिशब्देन रोमवान् अवयवः। उशब्दः अप्यर्थे। तत्र पुच्छेपि किम् असत् विषं किं स्यात्। न भवेद् इत्यर्थः। अतो मुखपुच्छयोर्विषाभावाद् वृश्चिको न बाधत इत्यर्थः। ऽअस्तेर्लेटि अडागमः ऽ॥

[इति] पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम्॥

याचकानाम् अभिलषितार्थप्राप्तये "यद् आशसा" इति द्वाभ्यां सरूपवत्साया गोर्दुग्धेन शृतं पायसं संपाद्य अभिमन्त्र्य अश्नीयात्। "यं याचामि[५.७.५] यद् आशसा[७.५९] इति याचिष्यन् मन्त्रोक्तानि" इति हि सूत्रितम [कौ० ५.१०]॥

उक्थ्यक्रतौ मैत्रावरुणयाज्याहोमानुमन्त्रणम् "इन्द्रावरुणा सुतपौ" इ-

१ BDKRVCs १ for ३. We with KmSm.

1 S' सुविति for सहति.

त्यनया कुर्यात् । उक्तं वैताने । "एतेषां याज्याहोमान् इन्द्रावरुणा सुतपौ[७. ६०] बृहस्पतिर्नः[७. ५३] उभा जिग्यथुः"[७. ४५] इति [वै० ४. १] ॥

अभिचारकर्मणि "यो नः शपात्" इत्यनया अशनिहतवृक्षसमिध आदध्यात् ॥

तत्र प्रथमा ॥

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद् याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन ॥ १ ॥

यत् । आऽशसा । वदतः । मे । विऽचुक्षुभे । यत् । याचमानस्य । चरतः । जनान् । अनु ।

यत् । आत्मनि । तन्वः । मे । विऽरिष्टम् । सरस्वती । तत् । आ । पृणत् । घृतेन ॥ १ ॥

वदतः याचितुं दातॄन् व्यक्तं भाषमाणस्य मे मम यद् अङ्गम् आशसा । शसु हिंसायाम् । संपदादिलक्षणो भावे क्विप् । आशसनेन दातृभिः कृतेन याञ्चाप्रतिघातेन भर्त्सनप्रहरणादिरूपेण हिंसनेन वा विचुक्षुभे विशेषेण क्षुभितं याच्यमानवस्त्वलाभेन विक्षिप्तम् आसीत् । तथा याचमानस्य । "लक्षणहेत्वोः क्रियायाः" इति हेत्वर्थे शानच् प्रत्ययः । याचनाद्धेतोः जनान् दातॄन् अनु अनुलक्ष्य । "अनुर्लक्षणे" इति [अनुः] कर्मप्रवचनीयः । वीप्सार्थे वा अनुः कर्मप्रवचनीयः । जनान्जनान् चरतः गच्छतः परिभ्राम्यतो मम यद् अङ्गं विचुक्षुभे इष्टफलप्राप्त्यभावेन पर्याकुलम् आसीत् मे मम तन्वः शरीरस्य विरिष्टम् । रिषेर्हिंसार्थान्निष्ठा । विशेषेण बाधितं क्लिष्टं तत् अङ्गम् आत्मनि मय्येव क्षोभरहितं सरस्वती । स्थापयत्विति शेषः । यद्वा आत्मशब्दः स्वभाववाची । याञ्चायाः पूर्वं यथा क्षोभरहितं तथा स्वभावे स्थापयतु । न केवलं क्षोभराहित्यम् अपि तु

१ A B K R तदात्मनि. २ A तदापृण°. ३ P P̃ J सरस्वति. We with Cp.

सरस्वती वाग्देवता तद् अङ्गं घृतेन घृतवत्सारभूतेन फलेन आ पृणत् आपूरयतु। ॐपृण प्रीणने। लेटि अडागमः ॐ॥

द्वितीया॥

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतन्नृतानि।
उभे इदस्योभे अस्य राजत उभे यतेते उभे अस्य पुष्यतः॥ २॥

सप्त। क्षरन्ति। शिशवे। मरुत्वते। पित्रे। पुत्रासः। अपि। अवीवृतन्। ऋतानि।
उभे इति। इत्। अस्य। उभे इति। अस्य। राजतः। उभे इति। यतेते इति। उभे इति। अस्य। पुष्यतः॥ २॥

मरुत्वते मरुद्भिर्युक्ताय शिशवे अपां पुत्रभूताय वरुणाय सप्त नद्यः क्षरन्ति स्रवन्ति। "सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः" इति हि दाशतय्याम् आम्नायते [ऋ०८.६९.१२]। "अपां शिशुर्मातृतमास्वन्तः" इति मन्त्रान्तरम् [तै०सं०१.८.१२.१]। यद्वा मरुत्वत्पदसामर्थ्याद् इन्द्र उच्यते। मरुत्वते मरुद्भिस्तद्वते शिशवे। ॐशो तनूकरणे इत्यस्माद् उत्पन्नः शिशुशब्दः ॐ। शत्रूणां शातयित्रे इन्द्राय। ॐषष्ठ्यर्थे चतुर्थी ॐ। तस्याज्ञया सप्त सर्पणशीलाः स्रवणशीलाः सप्तसंख्याका वा नद्यः क्षरन्ति प्रवहन्ति। तथा च दाशतय्यां नदीवाक्यत्वेन अयं मन्त्र आम्नायते।

इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहुरपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम्।
देवोनयत् सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः॥

इति [ऋ०सं०३.३३.६]॥ किं च पित्रे। पितृशब्देन द्युलोक उच्यते। "द्यौः पिता पृथिवी माता" इति [तै०ब्रा०३.७.५.५] मन्त्रवर्णात्। द्युलोकस्थिताय इन्द्राय इन्द्रप्रमुखाय देवगणाय वा। ॐतान्स्थात् ताच्छब्द्यम ॐ। पुत्रासः। ॐपुत्रः पुरु त्रायते इति निरुक्तम् [नि०२.११] ॐ। हविःप्रदानादिना पोषकाः पुत्रभूता वा मनुष्याः। अपिशब्दः चार्थे। ऋतानि सत्यभूतानि यज्ञादिरूपाणि क-

र्माणि अवीवृतन् वर्तयन्ति अनुतिष्ठन्ति । ✕वर्ततेर्ण्यन्तात् लुङि चङि "उर्ऋत्" इति ऋकारादेशः✕ ॥ उभे द्विवचनसामर्थ्याद् द्यावापृथिव्यावुच्येते । इत् अवधारणे । ते एव अस्य पितृपुत्रशब्दव्यवहृतस्य देवमनुष्यात्मकस्य संघस्य । निवासस्थाने भवत इति शेषः । तथा उभे द्यावापृथिव्यौ अस्य देवमनुष्यसंघस्य राजतः ईश्वर्यौ भवतः । ✕राजतिः ऐश्वर्यकर्मा✕ । तेषाम् आश्रयत्वेन तयोः स्वामित्वम् । उभे द्यावापृथिव्यौ यतेते प्रयत्नं कुरुतः देवमनुष्यार्थम् । ✕यती प्रयत्ने✕ । तथा उभे द्यावापृथिव्यौ अस्य । ✕कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी✕ । इमं देवमनुष्यसंघं पुष्यतः अन्नोदकैः पोषयतः । "भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः" इति [ऋ० १. १६४. ५१] श्रुत्यन्तरात् । द्यावापृथिवीकर्तृकपोषणलिङ्गाद् याचकाभिलषितप्राप्तौ अस्य मन्त्रस्य विनियोगोऽभिहितः ॥

तृतीया ॥

इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ ।
युवो रथो अध्वरो देववीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥ १ ॥

इन्द्रावरुणा । सुतऽपौ । इमम् । सुतम् । सोमम् । पिबतम् । मद्यम् । धृतऽव्रतौ । युवोः । रथः । अध्वरः । देवऽवीतये । प्रति । स्वसरम् । उप । यातु । पीतये ॥ १ ॥

हे सुतपौ सुतस्य अभिषुतस्य सोमस्य पातारौ हे धृतव्रतौ विधृतकर्माणौ हे इन्द्रावरुणा इन्द्रावरुणौ मद्यम् मदार्हं मदकरं तृप्तिकरम् इमम् अस्मदीयं सुतम् अभिषुतं सोमं पिबतम् । तदर्थं युवोः युवयोः अध्वरः हिंसारहितः शत्रुभिरपराजितो रथः पीतये युवयोः सोमपीतये देववीतये देवकामाय । ✕षष्ठ्यर्थे चतुर्थी✕ । यजमानस्य स्वसरम् गृहं प्रति उप यातु समीपे आगच्छतु ॥

१ K अध्वरं. K[m] अध्वरो corrected from अध्वरं. We with A[h] B D R S[m] Cs. २ P स्वसारं°. We with P[2] J Cp.

चतुर्थी ॥

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
इदं वामन्धः परिषिक्तमासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥ २ ॥

इन्द्रावरुणा। मधुमत्ऽतमस्य। वृष्णः। सोमस्य। वृषणा। आ। वृषेथाम्।
इदम्। वाम्। अन्धः। परिऽसिक्तम्। आऽसद्य। अस्मिन्। बर्हिषि।
मादयेथाम् ॥ २ ॥

हे वृषणा वृषणौ अभिमतफलस्य वर्षकौ हे इन्द्रावरुणा इन्द्रावरुणौ युवां मधुमत्तमस्य अतिशयेन माधुर्योपेतस्य वृष्णः वर्षितुः अभिमतस्य सेक्तुः सोमस्य। भागम् इति शेषः। सोमं वा आ वृषेथाम्। आश्नीतम् इत्यर्थः। "यथाभागम् आवृषायध्वमिति यथाभागम् अश्नीतेत्येवैतदाह" इति [श० ब्रा० २. ४. २. २०] वाजसनेयश्रुतेः। वाम् युवयोरर्थाय इदम् अन्धः अन्नं सोमलक्षणं परिषिक्तम् ग्रहचमसपात्रेषु अस्माभिः परितः सिक्तम्। अतः अस्मिन् स्तीर्णे बर्हिषि आसद्य उपविश्य मादयेथाम् सोमपानेन तृप्तौ भवतम् ॥

पञ्चमी ॥

यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात्।
वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनु शुष्यतु ॥ १ ॥

यः। नः। शपात्। अशपतः। शपतः। यः। च। नः। शपात्।
वृक्षःऽइव। विऽद्युता। हतः। आ। मूलात्। अनु। शुष्यतु ॥ १ ॥

यः शत्रुः अशपतः सनिन्दम् उपालम्भम् अकुर्वाणान् नः अस्मान् शपात् निन्दावाक्यैर्भर्त्सयेत्। यश्च शपतः परुषवाक्यप्रयोक्तॄन् नः अस्मान् शपात् पुनर्निन्देत् स शत्रुः विद्युता अशन्या हतः भस्मीकृतो वृक्ष इव स यथा मूलसहितः शुष्यति एवम् आ मूलात्। ॐअभिविधावाकारः ॐ। पितृपुत्रादिभिः सहितः अनु शुष्यतु अनुक्रमेण वि-

नश्यतु । ॐ शुष शोषे । दिवादिः ॐ ॥

तृतीयं सूक्तम् ॥

[इति] सप्तमे काण्डे पञ्चमोनुवाकः ॥

षष्ठेनुवाके चत्वारि सूक्तानि । तत्र "ऊर्जं बिभ्रत्" इति आद्ये सूक्ते आदितः षड्चं देशान्तराद् आगतः स्वगृहं दृष्ट्वा समिधो गृहीत्वा प्रजपन् स्वगृहम् आगत्य हस्तस्थाः समिधो वामेन हस्तेन धृत्वा वलीकतृणानि दक्षिणेन हस्तेन स्पृष्ट्वा षड्चं जपित्वा गृहं प्रविश्य आहितेऽग्नौ अनेन षड्चेन ताः समिधः पुष्ट्यर्थम् आदध्यात् । सूत्रितं हि । "ऊर्जं "बिभ्रद् इति गृहसंकाशे जपति । सव्येन समिधो दक्षिणेन शालावलीकं "संस्तभ्य जपति । अतिव्रज्य समिध आधाय" इति [कौ०३.७] ॥

स्वगृहे वर्तमानानां सर्वेषां सांमनस्यार्थं च समिध आनीय "ऊर्जं बिभ्रत्" इति सूक्तं जपित्वा ताः समिधः सकृद् आदध्यात् । तद् उक्तं संहिताविधौ । "समिध आदाय ऊर्जं बिभ्रद् इति असंकल्पयन्नेत्य सकृद् आदधाति" इति [कौ०५.६] ॥

तथा ऋव्याद्विसर्जनानन्तरं सर्वेपि एतत् सूक्तं जपन्तो यजमानगृहं प्रविशेयुः । "निःसालाम्[२.१४] इति शालानिवेशनं संप्रोक्ष्य ऊर्जं बिभ्रत्[७.६२] इति प्रपादयति" इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ०९.४] ॥

तथा अन्त्येष्टौ शवदहनानन्तरं संस्कर्ता "ऊर्जं बिभ्रत्" इति षड्चं जपन् स्वकीयान् स्वगृहं प्रवेशयेत् ॥

"इहैव स्त" इत्यनया प्रवासं करिष्यन् स्वकीयान् गृहान् पुत्रादींश्चावेक्षेत । "इहैव स्तेति प्रवत्स्यन्नवेक्षते" इति हि [कौ०३.७] सूत्रम् ॥

आग्रहायण्यां "यद् अग्ने तपसा" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां क्षीरौदनपुरोडाशरसानाम् अन्यतमं संपात्य अभिमन्त्र्य मेधाकामः अश्नीयाद् अग्निम् उपतिष्ठेत वा । "यद् अग्ने तपसेत्याग्रहायण्यां भक्षयति । अग्निम् उपतिष्ठते" इति [कौ०२.१] सूत्रितत्वात् ॥

तथा उपनयने अग्निकार्ये आभ्याम् ऋग्भ्याम् अग्निं परिसमूहेत् ।

1 S' omits अ° in असंकल्प° and reads एताः for एत्य.

"सं मा सिञ्चन्तु[७.३४] इति त्रिः पर्युक्षति। यद् अग्ने तपसा तपः अग्ने तपस्तप्यामहे[७.६३] इति द्वाभ्यां परिसमूहति" इति [कौ०७.८]॥

आवसथ्याधाने "अयम् अग्निः" इत्येषा महाशान्तिगणे आवपनीया। "पित्र्यम् अग्निं शमयिष्यन्" इति प्रक्रम्य "अयम् अग्निः स-"त्पतिः[७.६४] नलेम आ रोह[१२.२] इत्यनुवाकं महाशान्तिं च "शान्त्युदक आवपति" इति कौशिकसूत्रात् [कौ०९.१]॥

तथा अग्निचयने आतिच्छन्दसीष्टकानुमन्त्रणानन्तरम् अनया गार्हपत्ये "चीयमानाम् इष्टकां ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। तद् उक्तं वैताने। "अ-"ग्निं होतारं मन्ये[१.१२७.१] इत्यातिच्छन्दसीः। गार्हपत्य उक्तम्। "अयम् अग्निः सत्पतिः[७.६४] येना सहस्रम्"[९.५.१७] इति [वै०५.२]॥

तत्र प्रथमा॥

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत॥ १॥

ऊर्जम्। बिभ्रत्। वसुऽवनिः। सुऽमेधाः। अघोरेण। चक्षुषा। मित्रियेण। गृहान्। आ। एमि। सुऽमनाः। वन्दमानः। रमध्वम्। मा। बिभीत। मत॥ १॥

ऊर्जम् अन्नं बिभ्रत् धारयन् वसुवनिः अन्नादिसाधनस्य वसुनो धनस्य संभक्ता। ✕"छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्" इति वनतेः कर्मोपपदाद् इन् प्रत्ययः✕। सुमेधाः शोभनमेधायुक्तः। ✕"नित्यम् असिच् प्रजामेधयोः" इति असिच् समासान्तः✕। अघोरेण अभयंकरेण न केवलम् अप्रतिकूलेन[3] किं तु मित्रियेण मित्रं सुहृत् तदर्हेण अनुकूलेन स्निग्धेन चक्षुषा। पश्यन्निति शेषः। सुमनाः शोभनमनस्कः धनादिसाहित्येन प्राप्तसौमनस्यः वन्दमानः स्तुवन् गृहान् ऐमि आगच्छामि। ✕"गृहाः पुंभूम्नि" इति वचनाद् गृहशब्दः पुंलिङ्गो

१ P ऊर्जम्.

1 S' गार्हपत्यो. 2 S' उत्थ्ययमग्निः. We with the *Vaitána*. 3 S' °कूलं. 4 So S'.

बहुवचनान्तश्च ॥ । हे गृहाः यूयं रमध्वम् क्रीडत सुखिनः स्यात । मयाधिपतिनेति शेषः । अतः मत् मत्तः । ॥ "पञ्चम्या अत्" इति अत् आदेशः ॥ । देशान्तराद् आगच्छतो मत्तः मा बिभीत अन्यो गृहस्वामी सन् अस्मान् प्रविशतीति भयं मा प्राप्नुत । ॥ "भीत्रार्थानां भयहेतुः" इति मत् इत्यत्र अपादानसंज्ञायां पञ्चमी ॥ ॥

द्वितीया ॥

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥ २ ॥

इमे । गृहाः । मयःऽभुवः । ऊर्जस्वन्तः । पयस्वन्तः ।
पूर्णाः । वामेन । तिष्ठन्तः । ते । नः । जानन्तु । आऽयतः ॥ २ ॥

मयोभुवः । मय इति सुखनाम । सुखस्य भावयितारः ऊर्जस्वन्तः अन्नरसवन्तः पयस्वन्तः क्षीरादिसमृद्धाः वामेन वननीयेन धनेन पूर्णाः संपूर्णाः समृद्धास्तिष्ठन्तः ते इमे पुरतो दृश्यमाना अस्मदीया गृहाः आयतः प्रवासाद् आगच्छतो नः अस्मान् जानन्तु स्वामित्वेन अवबुध्यन्ताम् । ॥ आयत इति । आङ्पूर्वाद् एतेः शतरि "इणो यण्" इति यण् ॥ ॥

तृतीया ॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः ।
गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वायतः ॥ ३ ॥

येषाम् । अधिऽएति । प्रऽवसन् । येषु । सौमनसः । बहुः ।
गृहान् । उप । ह्वयामहे । ते । नः । जानन्तु । आऽयतः ॥ ३ ॥

प्रवसन् प्रवासं कुर्वन् देशान्तरे वसन् पुरुषो येषाम् यान् गृहान् अध्येति स्मरति । ॥ इक् स्मरणे । "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति येषाम् इत्यत्र षष्ठी ॥ । येषु गृहेषु सौमनसः सौमनस्यवान् बहुः अ-

१ B changes प्रवसन्येषु to प्रवसन्त्येषु. R प्रवसन्नेषु. We with A $\overset{h}{\text{B}}$ D K $\overset{m}{\text{K}}$ $\overset{m}{\text{S}}$ V Cs.

1 So S'. 2 S' °त्यस्य for °त्यत्र.

धिकः पदार्थो वर्तते। ✕सुमनःशब्दाद् भावे अण् द्रष्टव्यः। सौमनसम् अस्यास्तीति अर्शआदित्वाद् अच् प्रत्ययो मत्वर्थीयः। सुमनसोऽयम् इति वा। "तस्येदम्" इति अण्✕। तान् गृहान् उक्तविशेषणान् उप ह्वयामहे प्राप्तुं प्रार्थयामहे। अनुज्ञास्वीकाराय यत् प्रार्थनं तद् उपहव इत्युच्यते। ✕"निसमुपविभ्यो ह्वः" इति आत्मनेपदम्✕। ते नो जानन्त्वायत इति पादो व्याख्यातः॥

चतुर्थी॥

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसंमुदः।
अक्षुध्या अतृष्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन॥ ४॥

उपऽहूताः। भूरिऽधनाः। सखायः। स्वादुऽसंमुदः।
अक्षुध्याः। अतृष्याः। स्त। गृहाः। मा। अस्मत्। बिभीतन॥ ४॥

हे गृहाः उपहूताः अनुज्ञार्थं प्रार्थिता यूयं भूरिधनाः प्रभूतधनोपेताः स्त भवत। सखायः समानख्याना मित्रभूता भवत। स्वादुसंमुदः स्वादुभिर्मधुरैः पदार्थैः संमोदमाना भवत। अक्षुध्याः क्षुधं बुभुक्षाम् अर्हन्तीति क्षुध्याः न क्षुध्या अक्षुध्याः। अतृष्याः तृषं पिपासाम् अर्हन्तीति तृष्याः न तृष्या [अतृष्याः]। क्षुत्तृष्णोपेतैर्जनैर्युक्ता मा भूत अपि तु धनादिसमृद्ध्या सर्वदा तृप्तैर्जनैर्युक्ता भवतेत्यर्थः। ✕क्षुत्तृष्णाशब्दाभ्यां "तद् अर्हति" इत्यर्थे "छन्दसि च" इति यप्रत्ययः। अस्तेर्लोटि मध्यमबहुवचने रूपं स्तेति✕। हे गृहाः अस्मत् अस्मत्तः देशान्तराद् आगच्छन्तो मा बिभीतन भयं मा प्राप्नुत। ✕ञिभी भये। लोटि तस्य तनादेशः✕॥

पञ्चमी॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥ ५॥

उपऽहूताः। इह। गावः। उपऽहूताः। अजऽअवयः।

१ B D K R S V C s णः. We with A K.

अथो इति । अन्नस्य । कीलालः । उपऽहूतः । गृहेषु । नः ॥ ५ ॥

इह एषु अस्मदीयेषु गृहेषु गावः धेनव उपहूताः अनुज्ञार्थं प्रार्थिता भवन्तु । अजावयः अजाश्च अवयश्च उपहूताः सन्तु । अथो अपि च नः अस्माकं गृहेषु अन्नस्य कीलालः सारभूतोंशः उपहूतो भवतु । एतद् उपलक्षणम् । यद्यद् गृहे भोग्यं वर्तते तत् सर्वम् अनुज्ञाये प्रार्थितं भवत्वित्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः ।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥ ६ ॥

सूनृतांऽवन्तः । सुऽभगाः । इरांऽवन्तः । हसामुदाः ।
अतृष्याः । अक्षुध्याः । स्त । गृहाः । मा । अस्मत् । बिभीतन ॥ ६ ॥

हे गृहाः सूनृतावन्तः । प्रियसत्यात्मिका वाक् सूनृतेत्युच्यते । तद्वन्तः स्त भवत । अरिष्टादिनिमित्तवाग्राहित्येन पुत्रमित्रादिसंपत्तिनिमित्तवाक्सहिता भवतेत्यर्थः । प्रवसति यजमाने गृहे जातमप्यरिष्टं पुनरागच्छति गृहस्वामिनि तद्दिवसे न ज्ञापनीयम् इत्याश्वलायनेनोक्तम् । "विदितमप्यलीकं न तद् अहर्ज्ञापयेयुः" इति [आश्व० २,५,१८] । सर्वदापि अरिष्टराहित्यम् अनेन पदेन प्रार्थ्यते । सुभगाः शोभनभाग्योपेता भवत । इरावन्तः इरा अन्नं तद्वन्तः स्त । हसामुदाः । हसे हसने । भावे क्विप् । तदन्तात् तृतीया हसेति । मोदतेः इगुपधलक्षणः कः । "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" इति बहुलग्रहणात् तृतीयाया अलुक्[1] । हासेन मोदमानाः । गृहस्थितानां हासेन तदीयः संतोषोभिव्यज्यते । हासाभिव्यक्तसंतोषा भवत । अतृष्या अक्षुध्या इत्यर्धर्चो व्याख्यातः ॥

सप्तमी ॥

इहैव स्त मानु गात विश्वा रूपाणि पुष्यत ।

---

१ So P P̈ J Cp. The word occurs again in XIV. 2. 43 where also the MSS. do not read an avagraha.

1 S' ससर्वदापि for सर्वदापि.

ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ॥ ७ ॥

इह । एव । स्त । मा । अनु । गात । विश्वा । रूपाणि । पुष्यत ।
आ । एष्यामि । भद्रेण । सह । भूयांसः । भवत । मया ॥ ७ ॥

हे गृहाः इहैव अस्मिन् प्रदेश एव स्त भवत सुखिनो वर्तध्वम् । मा अनु गात प्रवसन्तं मां गृहस्वामिनं मानुगच्छत । ऽएतेः "माङि लुङ्" । "इणो गा लुङि" इति गादेशः ऽ । विश्वा विश्वानि सर्वाणि रूपाणि रूपवन्ति निरूप्यमाणानि वा पुत्रादीनि वस्तूनि पुष्यत समृद्धानि कुरुत । भद्रेण भन्दनीयेन धनेन सह ऐष्यामि पुनरागमिष्यामि । ततः मया देशान्तरात् पुनरागतेन अर्जितधनेन भूयांसः अतिप्रभूता भवत । ऽभद्रेणा सह भवता मया इत्युभयत्र छान्दसः सांहितिको दीर्घः ऽ ॥

अष्टमी ॥

यदग्ने तपसा तप उपतप्यामहे तपः ।
प्रियाः श्रुतस्य भूयास्मायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ १ ॥

यत् । अग्ने । तपसा । तपः । उपऽतप्यामहे । तपः ।
प्रियाः । श्रुतस्य । भूयास्म । आयुष्मन्तः । सुऽमेधसः ॥ १ ॥

हे अग्ने तपसा तव संबन्धिना पर्युक्षणपरिसमूहनसमिदाधानादिरूपेण कर्मणा यत् तपो निर्वर्तयितव्यम् अस्ति तत् तपः उप त्वत्समीपे तप्यामहे आर्जयामः । यद्वा तपसा कृच्छ्रचान्द्रायणादिरूपेण यत् तपः तपनं शरीरक्लेशनम् । "तपः क्लेशसहिष्णुत्वम्" इति हि तद्विदः । कृच्छ्रादिचरणेन यच्छरीरशोषणं तत् तपं उपतप्यामहे । तव समीपे परिचरणेन आर्जयाम इत्यर्थः । यद्वा तपसा । ऽतप पर्यालोचने इत्यस्माद् असुन् ऽ । पर्यालोचनेन देवताविषयज्ञानेन । "मनसश्चेन्द्रियाणां चैकाग्र्यं तप उच्यते" इति हि तद्विदः । ऽसहार्थे तृतीया ऽ । तेन तपसा सहितं तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादिरूपो नियमः । "शौचसंतोषतपः-

१ A B[b] K K[m] R V omit the visarga. We with D S[m] Cs. २ P P[2] J Cr omit the visarga.

स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः" इति हि पातञ्जलं सूत्रम् [पा० सू० २. ३२] । तत् तपः हे अग्ने त्वत्समीपे परिचरणेन तप्यामहे आर्जयामः । ※"तपस्तपःकर्मकस्यैव" इति कर्मकर्तरि यगात्मनेपदे※ । तेन तपसा श्रुतस्य सम्यग् अधीतस्य वेदशास्त्रादेः प्रियाः प्रियतमाः सुहृदः निवासस्थानत्वेन प्रीणयितारः आयुष्मन्तः दीर्घकालजीविनः सुमेधसः शोभनधारणाशक्तिसहिता भूयास्म ॥

नवमी ॥

अग्ने तपस्तप्यामह उप तप्यामहे तपः ।
श्रुतानि शृण्वन्तो वयमायुष्मन्तः सुमेधसः ॥ २ ॥

अग्ने । तपः । तप्यामहे । उप । तप्यामहे । तपः ।
श्रुतानि । शृण्वन्तः । वयम् । आयुष्मन्तः । सुऽमेधसः ॥ २ ॥

हे अग्ने तपस्तप्यामहे शरीरशोषणरूपं नियमम् आर्जयामः । किम् अन्यत्र । नेत्याह । उप तप्यामहे । तव समीप एव तादृशं तपः साधयाम इत्यर्थः । ※पूर्ववत् कर्मकर्तरि यगात्मनेपदे※ । तेन तपसा श्रुतानि सम्यग् अधीतानि वेदशास्त्रादीनि शृण्वन्तः । ※हेत्वर्थे शतृप्रत्ययः※ । वेदशास्त्रश्रवणाद्धेतोः वयम् आयुष्मन्तः दीर्घकालजीवनवन्तः सुमेधसः समीचीनधारणाशक्तियुक्ताश्च । भूयास्मेति शेषः ॥

दशमी ॥

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ १ ॥

अयम् । अग्निः । सत्ऽपतिः । वृद्धऽवृष्णः । रथीऽइव । पत्तीन् । अजयत् ।
पुरःऽहितः ।
नाभा । पृथिव्याम् । निऽहितः । दविद्युतत् । अधःऽपदम् । कृणुताम् ।
ये । पृतन्यवः ॥ १ ॥

१ A K̈ पत्तीनं° changed to पत्तीनं°. D R P̈ J C[1] पत्तीनं°. P पत्नी°. We with B K S V Cs.

सत्पतिः सतां महतां देवानां हविःप्रदानेन पालयिता सतो विद्यमानस्य स्थावरजङ्गमादेर्जगतः स्वामी [वा] वृद्धवृष्ण्यः वृष्णि भवं वृष्ण्यं बलं प्रवृद्धबलः पुरोहितः पुरतो होमार्थम् ऋत्विग्भिर्निहितः पुरोभाविहितकारी वा। अयं पुरोवर्ती अग्निः गार्हपत्यरूपः पत्नीम् पालयित्रीं प्रजाम्। पत्नीवत् पत्नी। पत्नीभूताम् इष्टकां वा अजयत् जयति स्वाधीनां करोति। तत्र दृष्टान्तः। रथी रथवान् पुरुषः पत्नीम् प्रजाम् अन्यदीयां स्वीयां वा नारीं यथा जयति स्वाधीनां करोति एवम् अग्निरिति। किं च पृथिव्याम् देवयजनलक्षणायां भूमौ तत्रापि नाभा नाभौ नाभिस्थानीयायाम् उत्तरवेद्याम्। "यद् उत्तरवेदीनाभिः" इति ऐतरेयश्रुतेः [ऐ० ब्रा० १.२८]। तत्र निहितः स्थापितः दविद्युतत् अत्यर्थं दीप्यमानः। ☒ द्योततेर्यङ्लुकि "दाधर्ति०" इति सूत्रे निपातनाद् रूपसिद्धिः ☒। तादृशोग्निः अधस्पदम् पादस्याधोदेशे कृणुताम् कुरुताम्। कान् इति तत्राह। ये पृतन्यवः पृतनां संग्रामम् इच्छवः शत्रवस्तान् मदीयपादस्याधोदेशे निधत्तादिति॥

[इति] षष्ठेनुवाके प्रथमं सूक्तम्॥

आवसथ्याधाने मथनार्थं यजमानः अरण्यां "पृतनाजितम्" इति ऋचा अग्निम् आह्वयेत्। "मूलत उत्तरारणिम् उपसंधाय पृतनाजितम् इत्याह्वयति" इति हि [कौ० ९.१] सूत्रम्॥

शरीरे काकाभिघातदोषशान्त्यर्थम् "इदं यत् कृष्णः" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्याम् उदकम् अभिमन्त्र्य काकोपहतशरीरं प्रक्षालयेत्॥

तथा काकावदंशनदोषशान्तये आभ्याम् ऋग्भ्याम् उल्मुकम् अभिमन्त्र्य काकावमृष्टं शरीरं परिभ्रामयेत्॥

काकस्पर्शनदोषशान्त्यर्थं "श्यावदता" इति मन्त्रोक्तरोगशान्तये च "प्रतीचीनफलः" इति त्रिभिः अपामार्गसमिध आदध्यात्॥

तद् उक्तं संहिताविधौ। "इदं यत् कृष्णः[७.६६] इति कृष्णशकुने-
"नाधिक्षिप्तं प्रक्षालयति। अपमृष्टं पर्यग्नि करोति। प्रतीचीनफलः[७.

1 S' काकादंशन°. 2 S' °नाविक्षिप्तं क्षालयति. We with *Kausika*.

"६७] इत्यपामार्गेध्म आपामार्गीरादधाति" इति [कौ० ५. १०] ॥

विवाहे कुमार्याः स्नापनानन्तरं "यद् दुष्कृतम्" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्याम् अङ्गानि वाससा प्रमार्जयेत् । "यद् दुष्कृतम् इति वाससाङ्गानि प्रमृज्य" इति हि [कौ० १०. २] सूत्रम् ॥

"यद्यन्तरिक्षे" "पुनर्मैत्विन्द्रियम्" इति व्यृचस्य बृहज्जणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ विनियोगः । सूत्रितं हि । "यद्यन्तरिक्षे[७. ६८] पुनर्मैत्विन्द्रियम[७. ६९] शिवा नः"[७. ७१] इति [कौ० १. ९] ॥

तथा "पुनर्मैत्विन्द्रियम्" इत्यनया प्रतिग्रहदोषशान्तये प्रतिग्राह्यं वस्त्वभिमन्त्र्य गृह्णीयात् ॥

तथा नित्यनैमित्तिककाम्येषु कर्मसु पाकयज्ञतन्त्रे च कर्मसमापनानन्तरं न्यूनातिरेकदोषशान्तये अनया आत्मानम् अनुमन्त्रयेत ॥

सूत्रितं हि । "यद् अन्नम्[६. ७१] पुनर्मैत्विन्द्रियम[७. ६९] इति प्रतिगृह्णाति । उत्तमा सर्वकर्मा । वशया पाकयज्ञा व्याख्याताः" इति [कौ० ५. ९] ॥

तथा गोदानाख्ये संस्कारकर्मणि वपनार्थम् अनया क्षुरं संमार्ज्य नापिताय प्रयच्छेत् । "पुनः प्राणः[६. ५३. २] पुनर्मैत्विन्द्रियम[७. ६९] इति त्रिर्निमृज्य" इति हि [कौ० ७. ५] सूत्रम् ॥

सवयज्ञेषु "पुनर्मैत्विन्द्रियम्" इत्यनया इन्द्रियाणाम् अभिमर्शनम् अनुमन्त्रणं च कुर्यात् । सूत्रितं हि । "वाङ्म आसन्"[१९. ६०] इति "मन्त्रोक्तान्यभिमन्त्रयते बृहता[५. १०. ८] द्यौश्च[६. ५३] पुनर्मैत्विन्द्रियम[७. ६९] इति प्रतिमन्त्रयते" इति [कौ० ८. ७] ॥

तथा ब्रह्मचारिणो दण्डभङ्गे अनया अन्यं दण्डम् अभिमन्त्र्य ब्रह्मचारी गृह्णीयात् । "यद्यस्य दण्डो भिद्येत" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । "शीर्णे भग्ने नष्टेऽन्यं कृत्वा पुनर्मैत्विन्द्रियम् इत्याददीत" इति [कौ० ७. ८] ॥

अग्निष्टोमे तृतीयसवने हौत्रादिधिष्ण्येषु विहृतान् अग्नीन् "पुनर्मैत्विन्द्रियम्" इति ऋचा ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "विहृतान् अनुमन्त्रयते । उ-

1 S' °वसायपाकयज्ञाय.व्याख्यातेति. 2 So S'. *Kausika*: निर्मृज्य. 3 S' °भिमृशते. We with *Kausika*.

"त्रयोः सवनयोः पुनः प्राणः[ ६. ५३. २] पुनर्मैत्विन्द्रियम्"[७. ६९] इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. ८] ॥

आहिताग्नेः प्रेतसंस्कारे "ओ चित् सखायम्" इति काण्डजपानन्तरं सारस्वतहोमेषु "सरस्वति व्रतेषु" इति द्व्यृचेन आज्यं जुहुयात् ॥

तथा चातुर्मास्ये वैश्वदेवपर्वणि सारस्वतयागं "सरस्वति व्रतेषु" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "सविता प्रसवानाम्[ ५. २४] सरस्वति व्रतेषु[ ७. ७०] प्रपथे पथाम्"[७. १०] इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० २. ४] ॥

तथा अन्वारम्भणीयेष्टौ सारस्वतचरुयागम् अनया अनुमन्त्रयेत। उक्तं वैताने। "सरस्वत्यै चरुं सरस्वते द्वादशकपालं सरस्वति व्रतेषु[ ७. ७०] यस्य व्रतम्"[७. ४१] इति [वै० २. ४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सधस्थात्।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोति दुरितान्यग्निः ॥ १ ॥

पृतनाऽजितम्। सहमानम्। अग्निम्। उक्थैः। हवामहे। परमात्। सधऽस्थात्।

सः। नः। पर्षत्। अति। दुःऽगानि। विश्वा। क्षामत्। देवः। अति। दुःऽइतानि। अग्निः ॥ १ ॥

पृतनाजितम् शत्रुसंग्रामजेतारं तदेवाह सहमानम् अभिभवन्तम्। ×षह अभिभवने इति नैरुक्तो धातुः×। यद्वा। ×षह मर्षणे×। देवतागणार्थं यजमानादिभिर्दीयमानं हविर्भारं तितिक्षमाणम् अग्निम् मथ्यमानं परमात् उत्कृष्टात् सधस्थात् सहस्थानाद् अरणिलक्षणात्। ×"सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः×। सर्वस्माल्लोकात् उत्कृष्टाद् देवतानां सहनिवासस्थानाद् द्युलोकाद् वा उक्थैर्वक्तव्यैः स्तोत्रैः हवामहे आह्वयामः। ×ह्वयतेः "बहुलं छन्द-

१ J परिप०.

1 So S'. The *Vaitâna* (ed. Garbe, and my two MSS. and the commentary of Somâditya) omit the words पुनः प्राणः.

"सि" इति संप्रसारणम् ॥ । स आहूतोऽग्निः नः अस्माकं विश्वा विश्वानि दुर्गाणि दुर्गमनानि कष्टानि अरिष्टानि अति पर्षत् अतिपारयतु । यथा अस्माकम् आपदो न भवन्ति तथा करोत्विति । ॥ पॄ पालनपूरणयोः इत्यस्मात् लेटि "सिब्बहुलम्" इति सिप् । अडागमः ॥ । अरिष्टहेतुपापनिवारणम् आशास्ते चतुर्थपादेन । देवः दीप्यमानोऽग्निः मथ्यमानः दुरितानि दुर्गमनानि पापानि अति क्षामत् अत्यर्थं क्षामाणि दग्धानि करोतु । अरिष्टहेतुभूतं पापसंघं निःशेषेण विनाशयत्वित्यर्थः । ॥ क्षामत् इति । क्षै क्षये । अस्मान्निष्ठायां "क्षायो मः" इति निष्ठातकारस्य मकारादेशः । क्षामशब्दात् तत् करोतीत्यर्थे णिच् । तस्मात् लेटि तिप इकारस्य "इतश्च लोपः०" इति लोपः । "लेटोडाटौ" इति अडागमः । "छन्दस्युभयथा" इति तिप आर्धधातुकत्वात् "णेरनिटि" इति णिलोपः ॥ ॥

द्वितीया ॥

इदं यत् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥ १ ॥

इदम् । यत् । कृष्णः । शकुनिः । अभिऽनिष्पतन् । अपीपतत् ।
आपः । मा । तस्मात् । सर्वस्मात् । दुःऽइतात् । पान्तु । अंहसः ॥ १ ॥

कृष्णः कृष्णवर्णः शकुनिः पक्षी । काक इत्यर्थः । अभिनिष्पतन् अभितः सर्वतः अभिमुखं वा आकाशमार्गाद् अवपतन् इदं मदीयम् अङ्गम् अपीपतत् पातयामास पक्षाभ्याम् अभिजघानेति यत् तस्मात् अभिहननजनितात् सर्वस्माद् दुरिताद् दुष्टगमनाद् अंहसः पापाद् मा माम् अभिहतावयवम् आपः अभिमन्त्रिताः पान्तु रक्षन्तु ॥

तृतीया ॥

इदं यत् कृष्णः शकुनिरवामृक्षन्निर्ऋते ते मुखेन ।

---

१ D K K° पान्वंहसः, We with A B R S V Cr. २ P °निष्पतत्. We with P J Cr.
३ P पानु. J पांतु corrected to पातु. We with P Cr.

---

1 S' आहुतो°.

अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥ २ ॥

इदम्। यत्। कृष्णः। शकुनिः। अवऽअमृक्षत्। निःऽऋते। ते। मुखेन।
अग्निः। मा। तस्मात्। एनसः। गार्हऽपत्यः। प्र। मुञ्चतु ॥ २ ॥

हे निर्ऋते मृत्युदेवते ते तव मुखेन कृष्णः शकुनिः काकः इदं मदीयम् अङ्गम् अवामृक्षत् अवमृष्टवान्। काकः स्वचञ्चुपुटेन मदीयम् अङ्गं नोपहतवान् किं तु मृत्युमुखेनेति काकस्पर्शनदोषः अतिकष्ट इति ज्ञापयितुं निर्ऋतिमुखेन अभिमर्शनवचनम्। ✕मृश आमर्शने। लुङि "शल इगुपधाद् अनिटः क्सः" इति क्सः✕। काकः अङ्गं मुखेन अवमृष्टवान् इति यत् तस्माद् एनसः पापाद् गार्हपत्यः गृहपतिना मया होमार्थं निहितोग्निः एतत्संज्ञको वा मा मां प्र मुञ्चतु प्रकर्षेण मोचयतु। काकावमर्शनजनितदोषरहितं करोतु ॥

चतुर्थी ॥

प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ।
सर्वान् मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः ॥ १ ॥

प्रतीचीनऽफलः। हि। त्वम्। अपामार्ग। रुरोहिथ।
सर्वान्। मत्। शपथान्। अधि। वरीयः। यवयाः। इतः ॥ १ ॥

हे अपामार्ग पापापमार्जनसाधन एतत्संज्ञक इध्मप्रकृतिभूत काष्ठविशेष त्वं हि यस्मात् प्रतीचीनफलः प्रत्यङ्मुखानि फलानि यस्य। अग्राद् आरभ्य फलस्य मूलपर्यन्तम् आत्माभिमुखं स्पर्शने कण्टकराहित्यदर्शनात् प्रतीचीनफलत्वम्। तादृशः रुरोहिथ रूढवान् असि तस्मात् सर्वान् शपथान् दोषान् मत् मत्तः सकाशात्। ✕अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी✕। इतः अस्माद् वरीयः। ✕क्रियाविशेषणम् एतत्✕। उरुतरम् अत्यर्थं यावयाः पृथक्कुरु। इतः इति मत् इत्यस्य विशेषणम्।

१ A B D K K$^{m}$ S$^{m}$ P P$^{2}$ J V Cs Cr त्वमपा°. J once read त्वमपा°. We with R. २ P P$^{2}$ Cr अपामार्ग. J once read अपामार्ग but has subsequently changed to अपामार्ग. ३ So P P$^{2}$ J Cr.

1 S' यावय for यावयाः.

अस्मात् काकाभिहतावयवाद् मत इति । यद्वा इतः अस्मात् कारणाद् इति व्याख्येयम् । ॐयावयाः इति । यु मिश्रणामिश्रणयोः । ण्यन्तात् लेटि आडागमे रूपम् ॐ ॥

पञ्चमी ॥

यद् दुष्कृतं यच्छमलं यद् वा चेरिम पापया ।
त्वया तद् विश्वतोमुखापामार्गाप मृज्महे ॥ २ ॥

यत् । दुःऽकृतम् । यत् । शमलम् । यत् । वा । चेरिम । पापया ।
त्वया । तत् । विश्वतःऽमुख । अपामार्ग । अप । मृज्महे ॥ २ ॥

यद् दुष्कृतम् दुःखफलाय कृतं पापं दुष्टं कृतं [वा] दुष्कृतं यच्च शमलम् मलिनम् पापम् । वाशब्दो विकल्पवाची । यत् पापया । ॐद्वितीयाया याजादेशः ॐ । यत् पापं चेरिम चरितवन्तः स्मः । अथ वा पापया पापप्रवृत्तिहेतुभूतया बुद्ध्या यद् एनश्चेरिम । ॐचरतेर्लिटि उत्तमबहुवचने रूपम् ॐ । तत् पापम् हे विश्वतोमुख सर्वतः प्रसृतशाखायुक्त हे अपामार्ग त्वया साधनेन अप मृज्महे अपमार्जयामः अपसारयामः । ॐमृजूष् शुद्धौ । आदादिकः ॐ ॥

षष्ठी ॥

श्यावदंता कुनखिनां बण्डेन यत् सहासिम ।
अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदप मृज्महे ॥ ३ ॥

श्यावऽदंता । कुनखिनां । बण्डेन । यत् । सह । आसिम ।
अपामार्ग । त्वया । वयम् । सर्वम् । तत् । अप । मृज्महे ॥ ३ ॥

श्यावदता श्यावाः श्याववर्णा दन्ता यस्य तेन । ॐ"विभाषा श्यावारोकाभ्याम" इति श्यावपदाद् उत्तरस्य दन्तशब्दस्य दतृ इत्यादे-

---

१ A B S दुःकृ°. We with D K K R V. २ All our vaidikas and MSS. तया, though they all have त्वया in the next verse. We with Sâyana. ३ A B B D R S C मृज्महे here and in the next verse as often.

1 S' यावयति for यावया इति. The reading in Sâyana's text: यावया इति. 2 S' तत् पापम् inserted again after साधनेन. 3 S' श्यावा for श्यावाः.

शः ॥ । श्यावदन्तयुक्तेन पुरुषेण कुनखिना कुत्सितानि नखानि कुनखानि तद्वता च वण्डेन । निर्वीर्यः पण्डो वण्ड इत्युच्यते । नपुंसकेन वा सह आशिम भुक्तवन्तः स्मः । ॥ अश भोजने । तस्य लिटि उत्तमबहुवचने रूपम ॥ । अशनं व्यवहारमात्रोपलक्षणम् । एतैः सह व्यवहृतवन्तः स्म इति यद् अस्ति हे अपामार्ग त्वया साधनेन सर्वं तत् पापं वयम् अप मृज्महे अपमार्जयामः निवारयामः ॥

सप्तमी ॥

यद्यन्तरिक्षे यदि वात आस यदि वृक्षेषु यदि वोलपेषु ।
यदश्रवन् पशव उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरस्मानुपैतु ॥ १ ॥

यदि । अन्तरिक्षे । यदि । वाते । आस । यदि । वृक्षेषु । यदि । वा । उलपेषु । यत् । अश्रवन् । पशवः । उद्यमानम् । तत् । ब्राह्मणम् । पुनः । अस्मान् । उपऽएतु ॥ १ ॥

मन्त्रब्राह्मणात्मको हि वेदो मेघे वाताधिक्ये वृक्षच्छायायां हरितसस्यसंनिधौ पशोश्च समीपे नाध्येतव्यः । तथाध्ययने सम्यक् पठितोपि वेदो निर्वीर्यो भवति । तद् उक्तम् आपस्तम्बेन स्वाध्यायधर्मप्रकरणे । "नाभ्रे न च्छायायां न पर्यावृत्त आदित्ये न हरितयवान् प्रेक्षमाणो न ग्राम्यस्य पशोरन्ते नारण्यस्य नापाम् अन्ते" [आप० १५. २१. ८] इति । अत्र तादृशकालस्थलेषु अधीतस्यापि वेदस्य वीर्यवत्त्वम् अनेन प्रार्थ्यते । अन्तरिक्षे । मेघाच्छन्ने इति विशेषणसाहित्यं द्रष्टव्यम् । तादृशे अन्तरिक्षे यदि ब्राह्मणम् आस । कर्मविधायकं वाक्यं ब्राह्मणम् इत्युच्यते । एतद् मन्त्रस्यापि उपलक्षणम् । मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदो यदि तत्राधीत आसीत् । "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इति हि आपस्तम्बवचनम् । यद्वा ब्राह्मणम् ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य अध्येतव्यत्वेन संबन्धि । वेदवाक्यम् इत्यर्थः । वाते वायौ । प्रभूते सतीति विशेषणं द्रष्टव्यम् । यदि आस ब्राह्मणम् अधीतम् आसीत् । ॥ अस्तेर्लिटि भूभावाभावश्छा-

१ B यदश्र°. A B D K R S V Cs Cr यदश्र°. We with P J.

न्दसः ॥ । यदि ब्राह्मणं वृक्षेषु वृक्षच्छायायाम् आस । वाशब्दो विकल्पवाची । उलपेषु । उलपशब्दः सस्यमात्रोपलक्षणम् । यदि उलपेषु ब्राह्मणम् अधीतम् आसीत् । तथा पशवः ग्राम्या आरण्याश्च उद्यमानम् अभिधीयमानम् अधीयमानं यद् ब्राह्मणम् अश्रवन् अशृण्वन् । ॥ शृणोतेर्लङि सामान्यविहितः शबेव छन्दोविषयत्वाद् अवस्थितः । उद्यमानम् इति । वद व्यक्तायां वाचि । कर्मणि यकि यजादित्वात् संप्रसारणम् ॥ । तत् तादृशेषु निमित्तेषु अधीतं ब्राह्मणम् अस्मान् अधीतवतः पुनरुपैतु निषिद्धकालस्थलेषु अध्ययनेन अस्मत्तो निष्क्रान्तं ब्राह्मणं पुनः वीर्यवत्त्वेन फलप्रदं सत् आगच्छतु ॥

अष्टमी ॥

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च ।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥ १ ॥

पुनः । मा । आ । एतु । इन्द्रियम । पुनः । आत्मा । द्रविणम । ब्राह्मणम । च ।
पुनः । अग्नयः । धिष्ण्याः । यथाऽस्थाम । कल्पयन्ताम । इह । एव ॥ १ ॥

इन्द्रियम इन्द्रेण दत्तं वीर्यम । ॥ "इन्द्रियम इन्द्रलिङ्गम°" इति सूत्रेण इन्द्रियशब्दो निपातितः ॥ । यद्वा । ॥ इन्द्रियम इति जातावेकवचनम ॥ । चक्षुरादीन्द्रियाणि । मा मां पुनरैतु पुनरागच्छतु । आत्मा देहाभिमानी । पुनरैतु इत्यनुषङ्गः । द्रविणम् प्रतिग्राह्यं धनम् । माम् ऐतु इत्यनुषङ्गः । तथा ब्राह्मणम् मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदश्च । पुनरैतु इति संबन्धः । तथा धिष्ण्याः होत्रादिधिष्ण्येषु विहृता अग्नयः इहैव अस्मिन्नेव विहृतप्रदेशे यथास्थाम । यथास्थानम् इत्यर्थः । ॥ तिष्ठतेः "आतो मनिन्°" ॥ । पुनः कल्पयन्ताम् समर्थाः प्रवृद्धा भवन्तु ॥

नवमी ॥

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ १ ॥

सरस्वति। व्रतेषु। ते। दिव्येषु। देवि। धामऽसु।

जुषस्व। हव्यम्। आऽहुतम्। प्रऽजाम्। देवि। ररास्व। नः ॥ १ ॥

हे सरस्वति वर्णपदादिरूपेण प्रसरणवति हे देवि ते तव संबन्धिषु व्रतेषु कर्मसु दिव्येषु दिवि भवेषु देवार्हेषु वा धामसु स्थानेषु गार्हपत्यादिरूपेषु। धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानि इति हि यास्कः [नि० ९. २८]। तेषु स्थानेषु आहुतम् अभिमुखं प्रक्षिप्तं हव्यम् होतव्यं हविः जुषस्व सेवस्व। किं च हे देवि सरस्वति नः अस्मभ्यं प्रजाम् प्रकर्षेण जायमानां पुत्रादिरूपां ररास्व देहि। राते: "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः। व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ॥

दशमी ॥

इदं ते हव्यं घृतवत् सरस्वतीदं पितॄणां हविरास्यं१ यत्।

इमानि त उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ॥ २ ॥

इदम्। ते। हव्यम्। घृतऽवत्। सरस्वति। इदम्। पितॄणाम्। हविः। आस्यम्। यत्।

इमानि। ते। उदिता। शमऽतमानि। तेभिः। वयम्। मधुऽमन्तः। स्याम ॥ २ ॥

हे सरस्वति ते त्वदर्थं हूयमानं घृतवत् घृतोपेतं यद् इदं हव्यम् हविः। पितॄणाम्। अर्थायेति शेषः। आस्यम् क्षेपणीयम्। असु क्षेपणे। "ऋहलोर्ण्यत्"। पित्रर्थं हूयमानं यद् इदं हविः। शंतमानि अस्माकम् अत्यर्थं सुखकराणि यानि इमानि हवींषि हे सरस्वति ते त्वदर्थम् उदिता उदितानि उक्तानि। वद व्यक्तायां वाचि। अस्मात् कर्मणि निष्ठा। यजादित्वात् संप्रसारणम्। त्वदर्थम् उक्तानि शंतमानि यानि इमानि हवींषि इति वा योज्यम्। एकत्र श्रुतो

यच्छब्दः सर्वत्र संवध्यते । तृतीयपादे विभक्तिविपरिणामेन योज्यः । तेभिस्तैः त्वदर्थं हुतैर्हविर्भिर्वयं मधुमन्तः मधुररसोपेतान्नवन्तः स्याम भवेम ॥

[इति] षष्ठेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"शिवा नः" "शं नो वातो वातु" इत्यनयोर्बृहद्गणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणादौ विनियोगः । "शिवा नः[७.७१] शं नो वातो वातु [७.७२] अग्निं ब्रूमो वनस्पतीन्"[११.६] इति हि [कौ०१.९] सूत्रम् ॥

अभिचारकर्मणि "यत् किं चासौ" इति पञ्चर्चेन मध्यमपलाशेन फलाकरणान् जुहुयात् ॥

दर्शपूर्णमासयोः "परि त्वाग्ने पुरं वयम्" इत्यनया तण्डुलानां पर्यग्निकरणं कुर्यात् ॥

"ब्रह्मणा शुद्धाः[११.१.१८] इति तण्डुलान् परि त्वाग्ने पुरं वयम[७.७४] इति त्रिः पर्यग्नि करोति" इति हि कौशिकं सूत्रम [कौ०१.२] ॥

सोमयागे माध्यन्दिनसवने धिष्ण्याग्निम् अवलोकयन् "परि त्वाग्ने पुरं वयम्" इति ब्रह्मा यजमानश्च जपेत् । "धिष्ण्यम् अवेक्ष्य परि त्वाग्न इति जपति ब्रह्मा च" इति [वै०३.११] ॥

तथा अग्निचयने उखार्थं परिलिख्यमानं मृत्पिण्डम् अनया ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "परि त्वाग्न इति मृत्पिण्डं परिलिख्यमानम्" इति वैतानं सूत्रम [वै०५.१] ॥

सोमयागे प्रवर्ग्ये घर्मधुग्दोहार्थम् उत्तिष्ठतः अध्वर्वादीन् "उत्तिष्ठताव पश्यत" इत्यनया ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "घर्मदुग्दोहायोत्तिष्ठत उत्तिष्ठताव पश्यत" इति वैतानं सूत्रम [वै०३.४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ॥ १ ॥

शिवा । नः । शमऽतमा । भव । सुऽमृडीका । सरस्वति ।

---

1 S' घर्मदुग्दोहा°. 2 So S'. The *Vaitâna Sûtra* (ed. Garbe and our own MSS. of it and the commentary of Somâditya) has: घर्मदुग्धोहायो°.

मा। ते। युयोम। सम्दृशः ॥ १ ॥

हे सरस्वति वर्णपदादिरूपेण प्रसरणवति वाग्देवते शिवा सर्वसुखरूपा त्वं नः अस्माकं शंतमा अत्यर्थं रोगनिर्हरणक्षमा भव। शं योरित्यत्र यास्केन शमनं च रोगाणां यावनं च भयानाम् [नि० ४. २१] इत्युक्तम्। यद्वा अत्यर्थं सुखप्रदा भव। सुमृळीका। "मृळीकम्" इति सुखनाम। शोभनसुखप्रदा भव। शंतमेति सुमृळीकेति पदद्वयेन फलविशेषेण सुखदाने तारतम्यम् उक्तम् इति मन्तव्यम्। हे सरस्वति ते तव संदृशः समीचीनाद् दर्शनाद् यथार्थस्वरूपज्ञानाद् मा युयोम पृथग्भूता मा भवेम। यौतेर्लोटि उत्तमबहुवचने शपः श्लुः। "अनित्यम् आगमशासनम्" इति आडभावः। व्यत्ययेन गुणः ॥

द्वितीया ॥

शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ॥१॥

शम्। नः। वातः। वातु। शम्। नः। तपतु। सूर्यः।
अहानि। शम्। भवन्तु। नः। शम्। रात्री। प्रति। धीयताम्। शम्।
उषाः। नः। वि। उच्छतु ॥ १ ॥

वातः बहिः संचरन् वायुः नः अस्माकं शं वातु सुखकरः सन् चरतु। तथा सूर्यः सुष्ठु सर्वस्य प्रेरक आदित्यः नः अस्माकं शम् सुखं तपतु संतापकारी मा भवतु। अहानि दिनानि च नः अस्माकं शं सुखं भवन्तु। अहस्सु सुखम् अस्माकं भवत्वित्यर्थः। रात्री। "रात्रेश्चाजसौ" इति ङीप्। जातावेकवचनम्। शम् सुखं प्रति धीयताम् प्रतिदधातु संदधातु। न इत्यनुषङ्गः। दधातेर्व्यत्ययेन कर्तरि कर्मप्रत्ययः। यद्वा। धीङ् आधारे इति दिवादौ पठ्यते। रात्री शम् सुखं यथा भवति तथा प्रति धीयताम्। प्रतितिष्ठत्वित्यर्थः। तथा उषाः उषःकालः। जातावेकवचनम्। उ-

षसः नः अस्माकं शम् सुखं यथा भवति तथा व्युच्छतु विवासिताः प्रकाशिता भवन्तु । ॥ उछी विवासे ॥

तृतीया ॥

यत् किं चासौ मनसा यच्च वाचा यज्ञैर्जुहोति हविषा यजुषा ।
तन्मृत्युना निर्ऋतिः संविदाना पुरा सत्यादाहुतिं हन्त्वस्य ॥ १ ॥

यत् । किम् । च । असौ । मनसा । यत् । च । वाचा । यज्ञैः । जुहोति । हविषा । यजुषा ।
तत् । मृत्युना । निःऽऋतिः । सम्ऽविदाना । पुरा । सत्यात् । आऽहुतिम् । हन्तु । अस्य ॥ १ ॥

असौ । अदःशब्दो विप्रकृष्टवाची । दूरस्थः शत्रुः यत् किं च कर्म शत्रुहननरूपं मनसा । कर्तुं ध्यायतीत्यध्याहारः । यच्च कर्म वाचा । करोमीति वदतीत्यध्याहारः । तथा यज्ञैः अभिचारकर्मभिः हविषा तदुचितेन द्रव्येण यजुषा मन्त्रेण जुहोति होमं करोति । अस्य प्रतिपक्षनिवारणार्थं मनोवाक्कायैरुपायं कुर्वतः शत्रोः तत् मनसा ध्यातं वाचा उक्तं कर्म आहुतिम् क्रियया निष्पाद्यमानं होमकर्म सत्यात् सत्यभूतात् कर्मफलात् पुरा पूर्वमेव निर्ऋतिः पापदेवता मृत्युना संविदाना ऐकमत्यं प्राप्ता सती हन्तु विनाशयतु । शत्रुणा करणत्रयेण अस्मद्विषये क्रियमाणम् अभिचारकर्म यावत् फलप्रदं भवति तस्मात् पूर्वमेव मृत्युसहिता पापदेवता तं शत्रुं विनाशयत्वित्यर्थः । ॥ संविदानेति । संपूर्वाद् वेत्तेः "समो गम्यृच्छि०" इति आत्मनेपदम् ॥

चतुर्थी ॥

यातुधाना निर्ऋतिरादु रक्षस्ते अस्य घ्नन्त्वनृतेन सत्यम् ।
इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथ्नन्तु मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति ॥ २ ॥

यातुऽधानाः । निःऽऋतिः । आत् । ऊं इति । रक्षः । ते । अस्य । घ्नन्तु । अनृतेन । सत्यम् ।

इन्द्रेऽइषिताः। देवाः। आज्यम्। अस्य। मन्नन्तु। मा। तत्। सम्। पादि। यत्। असौ। जुहोति ॥ २ ॥

यातुधानाः। यातवो यातनाः पीडास्तासां धानं निधानं यस्याम् अस्तीति सा यातुधाना परपीडाकारिणी निर्ऋतिः निकृष्टगमना पापराक्षसी। आदु। अपि चेत्यर्थः। रक्षः राक्षसः। ते निर्ऋतिराक्षसाः अस्य शत्रोः सत्यम् यथार्थं कर्मफलम् अनृतेन असत्येन फलेन मन्नन्तु विनाशयन्तु। यथा शत्रुणा अस्मद्विषये क्रियमाणम् अभिचारकर्म स्वोचितफलप्रदं न भवति किं तु विपरीतफलप्रदं भवति तथा कुर्वन्तु इत्यर्थः। फलप्रतिबन्धं प्रार्थ्य तदीयकर्मणो बाधां प्रार्थयते। इन्द्रेषिताः इन्द्रेण प्रेरिता देवाः अस्य शत्रोः [आज्यम्] आज्यसाधनं होमकर्म मन्नन्तु विनाशयन्तु। मन्थ विलोडने। क्र्यादिः। असौ शत्रुः यः जुहोति अस्मद्बाधार्थं यत् कर्म करोति तत् कर्म मा सं पादि मा संपन्नं भवतु। फलप्रदं न भवत्वित्यर्थः। यद्वा अङ्गविकलं भवतु। पद गतौ। "चिण् ते पदः" इति कर्तरि ङेश्चिण् आदेशः ॥

पञ्चमी ॥

अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविव।
आज्यं पृतन्यतो हतां यो नः कश्चाभ्यघायति ॥ ३ ॥

अजिरऽअधिराजौ। श्येनौ। संपातिनौऽइव।
आज्यम्। पृतन्यतः। हताम्। यः। नः। कः। च। अभिऽअघायति ॥ ३ ॥

अजिराधिराजौ। अज गतिक्षेपणयोः इत्यस्माद् अजिरशिशिर० [उ० १. ५३] इति सूत्रेण अजिरशब्दो निपातितः। शत्रुक्षेपणसमर्थः अजिरः। अधिको राजा अधिराजः। "राजाहःसखिभ्यष्टच्" इति टच् समासान्तः। एतन्नामानौ मृत्युदूतौ संपातिनौ आकाशमार्गाद् द्वेष्यस्य पक्षिण उपरि निष्पतनशीलौ श्येनौ एतन्नामधेयौ

१ S हता. B D हतान्. We with A K K R P P J V C. २ A B K K D R S P P J V Cs Cr °घायंति! We with Sâyaṇa.

पक्षिणाविव पृतन्यतः संग्रामेच्छोः पुरुषस्य आज्यम् घृतसाधनकं होमकर्म हताम् हिंस्ताम् । ✕हन हिंसागत्योः । लोटि तसस्ताम् आदेशः ✕ । पृतन्यच्छब्दार्थम् आह । यः कश्च शत्रुः नः अस्माकम् अभ्यघायति अभिमुखं हिंसारूपं पापं कर्तुम् इच्छति तस्य आज्यं हताम् इति संबन्धः । ✕अघशब्दात् "छन्दसि परेच्छायाम्" इति क्यचि "अश्वाघस्यात्" इति आत्त्वम् ✕ ॥

षष्ठी ॥

अपाञ्चौ त उभौ बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्देवस्य मन्युना तेन तेवधिषं हविः ॥ ४ ॥

अपाञ्चौ । ते । उभौ । बाहू इति । अपि । नह्यामि । आस्यम् ।
अग्नेः । देवस्य । मन्युना । तेन । ते । अवधिषम् । हविः ॥ ४ ॥

अनेन द्व्यृचेन शत्रुं संबोध्य ब्रूते । हे अस्मद्विषये अभिचारकर्तः ते तव उभौ बाहू होमकर्मणि व्यापृतौ पाणी अपाञ्चौ अपाञ्चनौ पृष्ठभागसंबद्धौ अपि नह्यामि बध्नामि । यथा होमकरणशक्तौ न भवतः तथा करोमि । तथा आस्यम् मन्त्रोच्चारणसमर्थं मुखम् अपि नह्यामि यथा वदनात् होमसाधनभूतमन्त्रा नोद्गच्छन्ति तथा करोमि । तेन बाह्वास्यबन्धनेन कारणेन देवस्य । ✕दीव्यतेर्विजिगीषार्थात् पचाद्यच् ✕ । देवस्य विजयमानस्य अग्नेः मन्युना तेजसा क्रोधेन वा ते तव हविः होतव्यं द्रव्यं तत्साधनकं कर्म अवधिषम् हनिष्यामि । ✕हन्तेश्छान्दसो लुङ् ✕ ॥

सप्तमी ॥

अपि नह्यामि ते बाहू अपि नह्याम्यास्यम् ।
अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेवधिषं हविः ॥ ५ ॥

अपि । नह्यामि । ते । बाहू इति । अपि । नह्यामि । आस्यम् ।
अग्नेः । घोरस्य । मन्युना । तेन । ते । अवधिषम् । हविः ॥ ५ ॥

---

१ $^{m}$S °स्यन्. २ A B अपि corrected from अपं. Cr अपि changed to अपं. $^{h}$B D K $^{m}$K $^{m}$S V Cs अपं. We with A B R P P J.

पूर्वमन्त्रसमानार्थत्वात् पूर्वेण व्याख्यातकल्पोयं मन्त्रः। घोरस्य भयंकरस्य इति विशेषः॥

अष्टमी॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः॥ १॥

परि। त्वा। अग्ने। पुरम्। वयम्। विप्रम्। सहस्य। धीमहि।
धृषत्ऽवर्णम्। दिवेऽदिवे। हन्तारम्। भङ्गुरऽवतः॥ १॥

हे सहस्य। सह इति बलनाम। तस्मै हित। ऋ"तस्मै हितम" इति यत्ऋ। सहसो बलाद् वा जात। मथनेन निष्पन्नत्वात्। ऋ"भवे छन्दसि" इति यत् प्रत्ययःऋ। तादृश हे अग्ने पुरम् पूरकं कर्मफलानां विप्रम्। मेधाविनामैतत्। मेधाविनं त्वा त्वां वयं परि धीमहि रक्षसाम् अपहननाय परितो धारयामः परिधिं वा कुर्मः। ऋदधातेर्लिङि द्विर्वचनाभावश्छान्दसः। शपो वा लुक्[1]ऋ। अग्निं विशिनष्टि। धृषद्वर्णम् धर्षकरूपं भङ्गुरावतः भङ्गशीलकर्मवतो रक्षसः दिवेदिवे अन्वहं हन्तारम् विनाशयितारम्॥

नवमी॥

उत् तिष्ठतावं पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्।
यदि श्रातं जुहोतन यद्यश्रातं ममत्तन॥ १॥

उत्। तिष्ठत। अव। पश्यत। इन्द्रस्य। भागम्। ऋत्वियम्।
यदि। श्रातम्। जुहोतन। यदि। अश्रातम्। ममत्तन॥ १॥

हे ऋत्विजः उत्तिष्ठत आसनाद् ऊर्ध्वं तिष्ठत नोपविशत। ऋऊर्ध्वकर्मत्वाद् आत्मनेपदाभावःऋ। उत्थाय च ऋत्वियम् ऋतौ वसन्तादिकाले भवम् इन्द्रस्य भागम् भजनीयं घर्मं पच्यमानम् अव पश्यत निरीक्षध्वम्। ऋऋतुशब्दाद् भवार्थे "छन्दसि घस्"। "सि-

1 S' लुग्वा.

ति च" इति पदसंज्ञया भसंज्ञाया बाधाद् ओर्गुणाभावः । भजेः कर्मणि घञन्तो भागशब्दः ॥ । श्रातम । हविःपरतया नपुंसकत्वम् । यदि स भागः श्रातः पक्वस्तर्हि जुहोतन इन्द्रार्थम् अग्नौ जुहुत । ॥"तन्नन्नन्नथनाश्च" इति तस्य तनबादेशः । पित्त्वाद् गुणः ॥ । अश्रातम् । अत्रापि हविःपरतया नपुंसकत्वम् । यदि अश्रातः अपक्वस्तर्हि ममत्तन पचत । तन्नानाम् अपां मदन्तीशब्दव्यवहारदर्शनाद् अत्र ममत्तनेति शब्दस्य तन्नं कुरुतेत्यर्थो युक्तः । यद्वा यदि अपक्वस्तर्हि पाकपर्यन्तं ममत्तन इन्द्रं स्तुतिभिर्मदयतेति । ॥श्रीञ् पाके इत्यस्माद् निष्ठा[याम्] "अपस्पृधेथाम् आनृचुः०" इति सूत्रे श्राभावो निपात्यते ॥ ॥

दशमी ॥

श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो वि मध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥ २ ॥

श्रातम् । हविः । ओ इति । सु । इन्द्र । प्र । याहि । जगाम । सूरः । अध्वनः । वि । मध्यम् ।

परि । त्वा । आसते । निधिऽभिः । सखायः । कुलऽपाः । न । व्राजऽपतिम् । चरन्तम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र हविः दधिघर्माख्यं त्वदीयं श्रातम् पक्वम् । ओ आ उ सु सुष्ठु प्रा याहि प्रकर्षेण शीघ्रम् आगच्छ । सूरः सूर्यः अध्वनः गन्तव्यस्य मार्गस्य वि मध्यम् विकलं मध्यम् ईषद् ऊनं मध्यभागं जगाम गतवान् । तव यागार्थं मध्याह्नो जात इत्यर्थः । सखायः समानख्याना ऋत्विजश्च निधिभिः निहितैः अभिषुत्य आसादितैः सोमैः सार्धं त्वा त्वा पर्यासते पर्युपासते । तत्र दृष्टान्तः । कुलपा न । कुलस्य वंशस्य रक्षकाः पुत्रा यथा व्राजपतिम् व्राजा गन्तव्या गृहास्तेषां पतिं चरन्तम् गच्छन्तम् उपासते तथेत्यर्थः । ॥व्रज गतौ । अस्मात् कर्मणि घञ् । "अजिव्रज्योश्च" इति कुत्वनिषेधः ॥ ॥

[इति] षष्ठेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

अग्निष्टोमे प्रवर्ग्ये हूयमानम् आज्यं "श्रातं मन्ये" इति सूक्तेन ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "उप ह्वये[७.७७.७] इति घर्मदुघाम्। घर्मसूक्तेन[७.७७] घर्मं हूयमानम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३.४]॥

अग्निष्टोमे माध्यन्दिनसवने दधिघर्महोमं "श्रातं मन्ये" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "श्रातं मन्य इति दधिघर्महोमम्। घर्मवद्धक्षः" इति वैतानसूत्रात् [वै० ३.११]॥

प्रवर्ग्ये होतृकर्तृकं वषट्कारम् अनुवषट्कारं च "स्वाहाकृतः" इति द्वाभ्या ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "स्वाहाकृत इति द्वाभ्यां घर्मस्य वषट्कृतेनुवषट्कृते" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३.४]॥

प्रवर्ग्ये दुह्यमानां घर्मदुघाम् "उप ह्वये" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। वैताने सूत्रितम्। "उप ह्वय इति घर्मदुघाम्" इति [वै० ३.४]॥

प्रवासं करिष्यन् "सूयवसात्" इत्यनया स्वकीयान् पशून् अभिमन्त्रयेत। "सूयवसाद् इति सूयवसे पशून् अभिमन्त्रयते" इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ० ३.७]॥

मधुपर्के उत्सृष्टां गाम् अनया अभ्यागतोनुमन्त्रयेत। "सूयवसाद् इति प्रतिष्ठमानाम्" इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ० १२.३]॥

तत्र प्रथमा॥

श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुशृतं मन्ये तदृतं नवीयः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दृभः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः॥ १॥

श्रातम्। मन्ये। ऊधनि। श्रातम्। अग्नौ। सुऽशृतम्। मन्ये। तत्। ऋतम्। नवीयः।

माध्यन्दिनस्य। सवनस्य। दृभः। पिब। इन्द्र। वज्रिन्। पुरुऽकृत्। जुषाणः॥ १॥

ऊधनि गोरूधसि एतद् दधिघर्माख्यं हविः पयोरूपेण श्रातम् पक्वम् इति मन्ये जाने। पुनश्च दुग्धं पयः अग्नावपि श्रातम् पक्वम्। इदानीं दध्यवस्थमपि अग्नौ पच्यते। श्रीञ् पाके इत्यस्मात् निष्ठा-

याम् "अपस्पृधेथाम्०" इति सूत्रे आभावो निपात्यते ॥ । अतः सुशृतम् सुपक्वम् इति मन्ये जाने. । ॥ आ पाके इत्यस्माद् आदादिकान्निष्ठायां कर्मकर्तरि "शृतं पाके" इति निपात्यते ॥ । अत एव तत् हविः ऋतम् सत्यभूतं नवीयः नवतरं प्रत्यग्रतरं भवति । हे वज्रिन् वज्रवन् हे पुरुकृत् बहुकर्मकृद् इन्द्र जुषाणः प्रीयमाणस्त्वं माध्यन्दिनस्य मध्यन्दिने भवस्य सवनस्य सूयमानस्य सोमस्य संबन्धिनो दध्नः । ॥ कर्मणि षष्ठी ॥ । दधि दधिघर्माख्यं हविः पिब ॥

द्वितीया ॥

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे मधु ।
वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥ १ ॥

समऽइद्धः । अग्निः । वृषणा । रथी । दिवः । तप्तः । घर्मः । दुह्यते । वाम् । इषे । मधु ।
वयम् । हि । वाम् । पुरुऽदमासः । अश्विना । हवामहे । सधऽमादेषु । कारवः ॥ १ ॥

एतदादीनाम् ऋचां प्रवर्ग्य एव लिङ्गानुसाराद् आश्वलायनेन विनियोग उक्तः । तत्र इयम् उत्तरा च दुह्यते इति लिङ्गेन घर्मदुघादोहनसमये विनियुक्ते । हे वृषणा वृषणौ अभिमतफलस्य वर्षितारौ हे अश्विनौ दिवः द्युलोकस्य । ॥ तात्स्थ्यात् ताच्छब्द्यम ॥ । द्युलोकस्थितस्य देवगणस्य रथी रथिकः । नेतेत्यर्थः । "अग्निमुखा वै देवाः" इति श्रुतेः । तादृशोग्निः समिद्धः सम्यग् दीप्तः । तेनाग्निना घर्मः महावीरपात्रस्थम् आज्यं तप्तः सम्यक् पक्वम् । अनन्तरं वाम् युवयोः । ॥ युष्मच्छब्दस्य षष्ठीद्विवचने वाम् इत्यादेशः ॥ । युवयोः इषे अन्नाय मधु मधुररसोपेतं मधुवत् प्रीणनकारि वा पयः दुह्यते । गौरध्वर्युभिः इति शेषः । ॥ दुह प्रपूरणे । कर्मणि यक् । दुहेर्द्विकर्मकत्वाद् "अकथितं च" इति मधुनः कर्मत्वे द्वितीया ॥ । हे अश्विना अश्विनौ वाम् युवाम् । ॥ युष्मदो द्वितीयाद्विवचने वाम्

आदेशः ॥ । पुरुदमासः । दम इति गृहनाम । बहुगृहाः । पृणातेः पुरुशब्दः । हविःपूर्णगृहा वा । कारवः स्तोतृनामैतत् । ॥ करोतेः कृवापाजिमि० इति [उ० १. १] उण् प्रत्ययः ॥ । स्तुतिकर्तारो वयं हि वयं खलु होतारः सधमादेषु । सह माद्यन्ति देवा अत्रेति सधमादा यज्ञाः । ॥ माद्यतेः अधिकरणे घञ् । "सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः ॥ । यज्ञेषु हवामहे आह्वयामः ॥

तृतीया ॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् ।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः ॥ २ ॥

समऽइद्धः । अग्निः । अश्विना । तप्तः । वाम् । घर्मः । आ । गतम् । दुह्यन्ते । नूनम् । वृषणा । इह । धेनवः । दस्रा । मदन्ति । वेधसः ॥ २ ॥

हे अश्विना अश्विनौ अग्निः समिद्धः संदीप्तः । तेन वाम् युवाभ्याम् । ॥ युष्मच्छब्दस्य चतुर्थीद्विवचने वाम् इति आदेशः ॥ । युवयोरर्थाय घर्मः महावीरस्थितम् आज्यं तप्तः सम्यग्दीप्तम् । अतः आ गतम् आगच्छतम् । घर्मरूपं हविर्भोक्तुम् इति शेषः । ॥ गमेश्छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुकि "अनुदात्तोपदेश०" इति अनुनासिकलोपे रूपम् । लोटि वा विकरणस्य लुक् ॥ । हे वृषणा वृषणौ अभिमतफलस्य वर्षितारौ युवयोरर्थाय इह प्रवर्ग्याख्ये कर्मणि धेनवः प्रीणयित्र्यो गावो नूनम् अत्यर्थं दुह्यन्ते पयः । ॥ दुहेर्द्विकर्मकत्वात् पय इति कर्मणा अन्येन भाव्यम् ॥ । अतः दस्रा दस्रौ शत्रूणाम् उपक्षपयितारौ अश्विनौ वेधसः । ॥ विध विधाने इत्यस्माद् असुन् ॥ । स्तुत्या परिचरन्तो होतारः मदन्ति मदयन्ति । स्तुतिभिरिति होतृणां परोक्षेण अभिधानम् । ॥ माद्यतेर्णिचि "मदी हर्षग्लपनयोः" इति मित्त्वेन ह्रस्वत्वम् । "छन्दस्युभयथा" इति श्नेः आर्धधातुकत्वेन णिलोपः ॥ ॥

चतुर्थी ॥

स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।

तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्रा रिहन्ति ॥ ३ ॥

स्वाहाऽकृतः । शुचिः । देवेषु । यज्ञः । यः । अश्विनोः । चमसः । देवऽपानः । तम् । ऊं इति । विश्वे । अमृतासः । जुषाणाः । गन्धर्वस्य । प्रति । आस्रा । रिहन्ति ॥ ३ ॥

स्वाहाकृतः इति लिङ्गाद् घर्मयागानन्तरम् इयं पठनीयेति आश्वलायनेनोक्ता । शुचिः दीप्तो यज्ञः प्रवर्ग्याख्यो देवेषु अश्विप्रभृतिषु । अथ वा देवशब्देन अश्विनावुच्येते । प्रवर्ग्यं तयोरेव यष्टव्यत्वात् । [1]बहुवचनं तु पूजायाम् । विषयसप्तमी[1] । देवविषये स्वाहाकृतः । स्वाहाशब्दो दानवाचकः । दत्त इत्यर्थः । न चात्र स्वाहाकारेण हविर्हूयते किं तु वषट्कारेण । देवपानः देवौ अश्विनौ पिबतः अत्रेति देवपानः । [1]अधिकरणे ल्युट्[1] । तादृशः अश्विनोश्चमसः । [1]चमतेर्भक्षणार्थाद् औणादिकः असप्रत्ययः[1] । भक्षणसाधनो य उपयमनाख्यः पात्रविशेषोस्ति तमु तमेव चमसं विश्वे सर्वे अमृतासः अमृताः अमरणधर्माणो देवा अन्यादयो जुषाणाः प्रीयमाणाः । [1]हेत्वर्थे जुषेः शानच् प्रत्ययः[1] । प्रीतेर्हेतोः गन्धर्वस्य । गां वेदरूपां वाचं धारयतीति गन्धर्वः आदित्यः । तथा च तैत्तिरीयके आदित्यस्य वेदसाहित्यं श्रूयते । "ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः । सामवेदेनास्तमये महीयते । वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः" इति [तै० ब्रा० ३. १२. ९. १] । [1]गोशब्दोपपदाद् धृञो "गवि गं धृञो वः" इति वप्रत्ययः गोशब्दस्य गम इत्यादेशः[1] । तस्यादित्यस्य । रात्रावादित्यस्य अग्नावनुप्रवेशात् तदभेदेन अग्निर्वा गन्धर्वः । तस्य आस्रा आस्येन । [1]"पदन्नः०" इत्यादिना आस्यशब्दस्य आसन् आदेशः[1] । प्रति रिहन्ति प्रत्येकं लिहन्ति आस्वादयन्ति । "त्वामग्न आदित्यास आस्यम्" इति हि [ऋ० २. १. १३] मन्त्रवर्णे अग्निरूपेण आस्येन देवा हविर्भक्षयन्तीति स्पष्टम् आम्नातम् ॥

१ P अस्रा.

1 S' inserts उपय after चमसः.

पञ्चमी ॥

यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोयं स वामश्विना भाग आ गतम्।
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥ ४ ॥

यत्। उस्रियासु। आऽहुतम्। घृतम्। पयः। अयम्। सः। वाम्। अश्विना। भागः। आ। गतम्।

माध्वी इति। धर्तारा। विदथस्य। सत्पती इति सतऽपती। तप्तम्। घर्मम्। पिबतम्। रोचने। दिवः ॥ ४ ॥

एषा ऋक् पिबतम् इति लिङ्गाद् घर्मयागे याज्यात्वेन आश्वलायनेन विनियुक्ता। उस्रियासु। गोनामैतत्। पयोनिवासस्थानभूतासु गोषु वर्तमानं घृतम् घृतवत् क्षरणशीलं घृतोत्पादकं वा यत् पयः क्षीरम् आहुतम् महावीरपात्रे अभिमुखं प्रक्षिप्तम्। हु दानादानयोः। कर्मणि निष्ठा। हे अश्विना अश्विनौ सोयं तद् इदं प्रक्षिप्तं पयः। भागविशेषणत्वात् तदिदंशब्दयोः पुंलिङ्गता। "निर्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरेकत्वम् आपादयन्ति सर्वनामानि पर्यायेण तल्लिङ्गताम् उपाददते" इति वचनात्। इदं तत् पयः वाम् युवयोर्भागः भजनीयोंशः। अतः आ गतम् आगच्छतम्। आगत्य च हे माध्वी। मधुशब्दाद् अणि स्त्रियाम् "ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि च्छन्दसि" इति यणादेशो निपात्यते। मधुसंबन्धिनी विद्या माध्वी। विद्यावेदित्रोरभेदोपचाराद् अश्विनावपि माध्वीशब्देन उच्येते। अत एव प्रगृह्यता। "माध्वी मम श्रुतं हवम्" इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० ५. ७५. १]। अश्विनोर्मधुविद्यावेदितृत्वं दाशतय्याम् आम्नायते। "आथर्वणायाश्विना दधीचेश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्। स वां मधु प्र वोचद् ऋतायन्" इति [ऋ० १. ११७. २२]। हे माध्वी मधुविद्यावेदितारौ विदथस्य। यज्ञनामैतत्। विदन्ति जानन्ति अनेन फलम् इति विदथो यज्ञः। तस्य धर्तारा धर्तारौ धारयितारौ। यज्ञस्वरूपनिर्वर्तका-

1 S' उकर्ण(for उवर्ण?)लोपो for यणादेशो, which is a conjectural emendation.

वित्यर्थः । द्रव्यदेवते हि यागस्य स्वरूपम् इति हि तद्विदः । हे सत्पती सतां महतां देवानां पालयितारौ आपन्निर्हरणत्वेन रक्षकौ । "अश्विनौ हि देवानां भिषजौ" इति [ऐ० ब्रा० १.१८] श्रुतेः । तादृशौ युवां दिवः द्युलोकस्य रोचने रोचके प्रकाशके अग्नौ तप्तम् शृतं घर्मम् आज्यं पिबतम् ॥

षष्ठी ॥

तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ५ ॥

तप्तः । वाम् । घर्मः । नक्षतु । स्वऽहोता । प्र । वाम् । अध्वर्युः । चरतु । पयस्वान् ।
मधोः । दुग्धस्य । अश्विना । तनायाः । वीतम् । पातम् । पयसः । उस्रियायाः ॥ ५ ॥

इयमपि वीतं पातम् इति लिङ्गाद् घर्मयाज्यात्वेन विनियुक्ता । हे [अश्विना] अश्विनौ वाम् युवां स्वहोता स्वाधीनहोतृकः । होत्रा सम्यग् अभिष्टुत इत्यर्थः । "ऋतश्छन्दसि" इति कमत्ययनिषेधः[1] । तप्तः सम्यग् रुचितः घर्मः महावीरपात्रस्थम् आज्यं नक्षतु । नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा इति यास्कः [निघ० २.१८] । नक्ष गतौ इति धातुः । व्याप्नोतु । तथा वाम् युवाभ्याम् । चतुर्थीद्विवचनस्य वाम् आदेशः । युवयोरर्थाय अध्वर्युः एतन्नामा ऋत्विक् प्रयस्वान्[2] । प्रीणतेः असुनि प्रयः । प्रीणनकारिपयोयुक्तः सन् प्र चरतु यजतु । हविर्ददात्वित्यर्थः । अथ अनन्तरम् हे अश्विना अश्विनौ तनायाः । तनोतेः पचाद्यजन्तात् स्त्रियां टापि तनेति भवति । पयोदध्याज्यरूपहविःप्रदानेन यज्ञं विस्तारयन्त्या उस्रियायाः । गोनामैतत् । घर्मदुघाया दुग्धस्य मधोः मधुररसोपेतस्य मधुवत्प्रीणनका-

1 S' नक्षयति°. 2 This also proves that Sâyana strictly adhered to his text. He could easily have improved upon his प्रयस्वान् if he had a mind to do so. With difficulty he makes it mean the same thing as पयस्वान्.

रिणो वा पयसः । ॥ कर्मार्थे षष्ठी ॥ । पयः वीतम् भक्षयतं पातम् पिबतं च । ॥ वी गतिप्रजननकान्त्यशनखादनेषु । अस्मात् लोटि अदादित्वात् शपो लुक् । पा पाने । "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् ॥ ॥

सप्तमी ॥

उप द्रव पयसा गोधुगोषमा घर्मे सिञ्च पय उस्रियायाः ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योनुप्रयाणमुषसो वि राजति ॥ ६ ॥

उप । द्रव । पयसा । गोऽधुक् । ओषम् । आ । घर्मे । सिञ्च । पयः । उस्रियायाः ।
वि । नाकम् । अख्यत् । सविता । वरेण्यः । अनुऽप्रयाणम् । उषसः । वि । राजति ॥ ६ ॥

एषा ऋक् पयसा उप द्रवेति लिङ्गाद् घर्मदुघापयसि आहियमाणे होत्रा पठनीयेति आश्वलायनेनोक्तम । हे गोधुक् घर्मदुघादोग्धरध्वर्यो त्वम् ओषम् तप्तं घर्मम् । ॥ उष मुष दाहे । अस्मात् कर्मणि घञ् ॥ । रुचितं घर्मं पयसा दुग्धेन सह उप द्रव निकटम् आगच्छ । ॥ द्रु गतौ । भौवादिकः ॥ । आगत्य च उस्रियायाः घर्मदुघाया धेनोः पयः क्षीरं घर्मे तप्ते आज्ये आ सिञ्च आक्षारय । यतः वरेण्यः वरणीयः सविता सर्वस्य प्रेरक आदित्यः नाकम् दुःखेन असंभिन्नं सुखरूपं स्वर्गं व्यख्यत् । प्रकाशयतीत्यर्थः । ॥ चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । अस्मात् लुङि ख्याजादेशे "अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ्" इति च्लेः अङ् आदेशः । ख्या प्रकथने इत्यस्माद् वा लुङि पूर्ववत् अङ् ॥ । स आदित्यः उषसः प्रयाणम् प्रकृष्टं गमनम् अनुलक्ष्य वि

---

१ A B P P$^{2}$ C$^{s}$ गोधुगोष°. We with D K K$^{m}$ R J V. २ B$^{h}$ वरेण्योनु°. D R वरेण्यानु° changed to वरेण्योनु°. We with A D K K$^{m}$ R S$^{m}$ V C$^{s}$. ३ P P$^{2}$ गोऽधुक्. We with J C$^{r}$. ४ P अनुऽप्रयानम् probably meant for अनु । प्रऽयानम्. If so the saṁhitâ ought to be वरेण्योनु प्रया° which B$^{h}$ actually reads. C$^{r}$ अनुऽप्रयाणम्. We with P$^{3}$ J.

1 S$^{r}$ आक्षारयतः for आक्षारय । यतः.

राजति विशेषेण दीप्यते । उषसोनन्तरं सूर्यः प्रादुर्भवतीत्यर्थः । तथा च आम्नातम् अन्यत्र । "सूर्यो देवीम् उषसं रोचमानां मर्यो न योषाम् अभ्येति पश्चात्" इति [ऋ०१.११५.२.] । यस्माद् उदितः सूर्यः द्युलोकं स्वतेजसा प्रकाशयति अतः पयसा सह आगच्छ । आगत्य तत् पयः घर्मे आसिञ्च इति होता अध्वर्युं ब्रूते ॥

अष्टमी ॥

उप॑ ह्वये सु॒दुघां॑ धे॒नुमे॒तां सु॒हस्तो॑ गो॒धुगु॒त दो॑हदेनाम् ।
श्रेष्ठं॑ सवं सवि॒ता सा॑विषन्नो॒भी॒३॒॑दो घ॒र्मस्तदु॒ षु प्र वो॑चत ॥ ७ ॥

उप॑ । ह्व॒ये॒ । सु॒ऽदुघा॑म् । धे॒नुम् । ए॒ताम् । सु॒ऽहस्तः॑ । गो॒ऽधुक् । उ॒त । दो॒ह॒त् । ए॒ना॒म् ।
श्रेष्ठ॑म् । सव॑म् । स॒वि॒ता । सा॒वि॒ष॒त् । नः॒ । अ॒भिऽइ॑द्धः । घ॒र्मः । तत् । ऊं॒ इति॑ । सु । प्र । वो॒च॒त् ॥ ७ ॥

एषा ऋक् उप ह्वये इति लिङ्गाद् दोहार्थं घर्मदुघाह्वाने विनियुक्ता । सुदुघाम् दोग्धुं सुशकाम् । दोग्धेः "ईषद्दुःसुषु०" इति खल् प्रत्ययः । हकारस्य घकारोपजनश्छान्दसः । एतां पुरोवर्तिनीं धेनुम् उप ह्वये आह्वयामि । ह्वयतेः "निसमुपविभ्यो ह्वः" इति आत्मनेपदम् । उत अपि च एनाम् आहूतां धेनुं सुहस्तः कल्याणहस्तः गोधुक् गोर्दोग्धा अध्वर्युः दोहत् दोग्धु । दुहेः पञ्चमलकारे "लेटोडाटौ" इति अडागमः । श्रेष्ठम् प्रशस्यतमम् । "प्रशस्यस्य श्रः" इति श्रादेशः । सवम् । सूयते प्रेर्यत इति सवः पयः । एष हि श्रेष्ठः [सर्वेषां] सवानां यद् उदकं यद् वा पय इति हि यास्कः [नि०११.४३] । षू प्रेरणे इत्यस्मात् "जवसवौ छन्दसि" इति अच् प्रत्ययः । तं सवं सविता सर्वस्य प्रेरको देवः नः अस्माकं साविषत् प्रेरयतु । षू प्रेरणे । अस्मात् लेटि "सिब्बहुलम्०"

१ $S^{m}$ प्र वो०. २ $P^{2}$ °हस्ताः.

1 S' खकारस्य.

इति सिप्। इडागमः। "सिब्बहुलं छन्दसि णित्" इति णिद्वद्भावाद् वृद्धिः। वृद्धौ आवादेशः ॥ । घर्मः प्रवर्ग्यः अभीद्धः अभिदीप्तः अभिरुचितः। तत्। ॥ सुपो लुक् ॥ । उ इति अवधारणे। तमेव दीप्तं घर्मं सु सुष्ठु प्र वोचत् प्रब्रवीति अभिष्टौति। अथ वा यस्माद् अभीद्धो घर्मः तत् तस्माद् घर्मे पय आसेचयितुं सुष्ठु प्रब्रवीति धेनुम् इति होतुः परोक्षेण अभिधानम्। ॥ ब्रूञश्छान्दसो लुङ्। "०अमाङ्योगेपि" इति अडभावः ॥ ॥

नवमी ॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ८ ॥

हिङ्ऽकृण्वती। वसुऽपत्नी। वसूनाम्। वत्सम्। इच्छन्ती। मनसा। निऽआगन्।
दुहाम्। अश्विऽभ्याम्। पयः। अघ्न्या। इयम्। सा। वर्धताम्। महते। सौभगाय ॥ ८ ॥

एषा ऋक् न्यागन्नित्यागमनलिङ्गाद् धेनौ आगच्छन्त्यां पठनीयेति आश्वलायनेनोक्तम्। हिङ्कृण्वती [हिं इति] शब्दानुकृतिः। हिं कुर्वन्ति हि वत्सं प्रति गावः। हिङ्कारं कुर्वती वसूनाम् धनानां वसुपत्नी वसूनां पालयित्री। ॥ वसूनां वसुपत्नीत्यत्र वृत्त्यवृत्तिभ्यां स्वामित्वं बहुत्वं च विवक्ष्यते ॥। एतादृशी धेनुः मनसा वत्सम् इच्छन्ती कामयमाना नि नितराम् आगन् आगच्छतु। ॥ गमेश्छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुकि "मो नो धातोः" इति नत्वम् ॥। आगता च इयम् अघ्न्या। गोनामैतत्। अहन्तव्या गौः अश्विभ्याम् देवताभ्याम्। प्रवर्ग्ये अश्विनावेव यष्टव्यौ। तयोरर्थाय पयः क्षीरं दुहाम् दुग्धाम्। ॥ दुहेर्लोटि "लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति तकारलोपः ॥। सा धेनुः स्वयं च अस्माकं महते प्रभूताय सौभगाय सौभाग्याय सुधनत्वाय वर्धताम् समृद्धा भवतु ॥

दशमी ॥

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्य शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ ९ ॥

जुष्टः । दमूनाः । अतिथिः । दुरोणे । इमम् । नः । यज्ञम् । उप । याहि । विद्वान् ।
विश्वाः । अग्ने । अभिऽयुजः । विऽहत्य । शत्रुऽयताम् । आ । भर । भोजनानि ॥ ९ ॥

हे अग्ने जुष्टः प्रीतः सर्वैः सेव्यमानो वा दमूनाः दान्त[मनाः] । ※दममना वा दानमना वा [दान्तमना वा] इति यास्कः [नि० ४. ४] ※ । तादृशः अतिथिः अतिथिवत् पूज्यः । यद्वा दुरोणे अतिथिरिति संबन्धः । ※दुरोण इति गृहनाम दुरवा भवन्ति दुस्तर्पाः इति हि निरुक्तम् [नि० ४. ५] ※ । सर्वेषु यज्वगृहेषु अतिथिः अतनशीलः विद्वान् जानन् मदीयां त्वद्विषयभक्तिं जानन् नः अस्मदीयम् इमं यज्ञम् उप याहि समीपे आगच्छ । आगत्य च हे अग्ने विश्वाः सर्वाः अभियुजः अभियोक्त्रीः परसेना विहत्य विशेषेण हत्वा शत्रूयताम् शत्रून् आत्मन इच्छतां परेषां भोजनानि भुज्यमानानि धनानि आ भर आहर । अस्मभ्यम् इति शेषः । ※"हृग्रहोर्भः" इति हरतेर्हकारस्य भकारः । शत्रूयताम् इति । शत्रुशब्दात् क्यचि "अकृत्सार्वधातुकयोः०" इति दीर्घः ※ ॥

एकादशी ॥

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ १० ॥

अग्ने । शर्ध । महते । सौभगाय । तव । द्युम्नानि । उत्ऽतमानि । सन्तु ।
सम् । जाःऽपत्यम् । सुऽयमम् । आ । कृणुष्व । शत्रुऽयताम् । अभि । तिष्ठ । महांसि ॥ १० ॥

---

१ P² °हन्यं. २ P² उत्ऽतं°. We with P J Cr.

हे अग्ने त्वम् अस्माकं महते सौभगाय सुधनत्वाय शर्ध। आर्द्रहृदयो भवेत्यर्थः। अस्मभ्यं धनं दातुं सुमना भवेति यावत्। ‡शृधु मृधु उन्दे। भौवादिकः। आमन्त्रितस्य अविद्यमानवत्त्वेन पादादित्वाद् अनिघातः‡। तव द्युम्नानि द्योतमानानि तेजांसि उत्तमानि उन्नततमानि सन्तु भवन्तु। किं च जास्पत्यम्। जाया च पतिश्च जास्पती तयोः कर्म जास्पत्यम्। ‡"पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्" इति यक्‡। तत् सुयमम् सुखंयमम् अनन्यश्लिष्टं समा कृणुष्व सम्यक्कुरु। यथा आवां जायापती त्वदेकपरिचरणवन्तौ भवाव तथा अनुगृहाणेत्यर्थः। ‡सुयमम् इति। यमेः खल् प्रत्ययः घश्च प्रत्ययो वा‡। अपि च शत्रूयताम् शत्रून् आत्मन इच्छतां परेषां महांसि तेजांसि अभि तिष्ठ आक्राम। अभिभवेत्यर्थः॥

द्वादशी॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती॥ ११॥

सुयवसऽअत्। भगऽवती। हि। भूयाः। अध। वयम्। भगऽवन्तः। स्याम। अद्धि। तृणम्। अघ्ये। विश्वऽदानीम्। पिब। शुद्धम्। उदकम्। आऽचरन्ती॥ ११॥

एषा ऋक् प्रवर्ग्ये परिधानीयात्वेन आश्वलायनेन विनियुक्ता। हे धर्मदुघे सूयवसात् शोभनतृणानि अदन्ती। ‡अद भक्षणे इत्यस्मात् कर्मोपपदात् "अदोनन्ने" इति विट् प्रत्ययः‡। शोभनं यवसम् अदन्ती त्वं भगवती धनवती भाग्यवती वा भूयाः। हीति पूरणः। ‡भवतेः आशीर्लिङि रूपम्‡। अध अनन्तरं वयं भगवन्तः धनवन्तः स्याम भूयास्म। हे अघ्ये अहिंस्ये गौः विश्वदानीम् सर्वदा। ‡कालार्थे "दानीं च" इति तदिदंशब्दाभ्यां विहितः छन्दोविषयत्वाद् विश्व-

१ P J सूय°. We with P[2] C[r].

1 S′ मृदु. 2 S′ सुखंयमम्.

शब्दादपि उत्पन्नः ✕ । सर्वदा तृणं घासम् अद्धि भक्षय । ✕अद् भक्षणे । लोटि "हुझल्भ्यो हेर्धिः" ✕ । तथा आचरन्ती सर्वतश्चरन्ती त्वं शुद्धम् निर्मलम् उदकं पिब च ॥

चतुर्थं सूक्तम् ॥

इत्यथर्वसंहिताभाष्ये वेदार्थप्रकाशे सप्तमकाण्डे षष्ठोनुवाकः ॥

सप्तमेनुवाके त्रीणि सूक्तानि । तत्र "अपचिताम्" इति आद्ये सूक्ते प्रथमाभ्याम् ऋग्भ्यां प्रत्यृचं गण्डमालाभैषज्यार्थं सूत्रोक्तलक्षणेन धनुषा शरेण च गण्डमालां विध्येत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि कृष्णोर्णास्तुकावज्वालितम् उदकम् आभ्याम् अभिमन्त्र्य उषःकाले व्याधितम् अवसिञ्चेत् ॥

सूत्रितं हि । "अपचिताम् इति वैणवेन दार्भूपेण[1] कृष्णोर्णाज्येन" इत्यादि [कौ० ४. ८] ॥

ईर्ष्याविनाशकर्मणि "त्वाष्ट्रेणाहम्" इत्येनाम् ईर्ष्यावन्तं दृष्ट्वा जपेत् ॥

तथा ईर्ष्यावते अनया सक्तुमन्थम् अभिमन्त्र्य दद्याद् ईर्ष्यावन्तं स्पृष्ट्वा वा जपेत् ॥

तद् उक्तं संहिताविधौ । "त्वाष्ट्रेणाहम् इति प्रतिजापप्रदानाभिमर्शनानि" इति [कौ० ४. १२] ॥

दर्शपूर्णमासयोः व्रतोपायने "व्रतेन त्वं व्रतपते" इत्येषा विनियुक्ता । "व्रतम् उपैति व्रतेन त्वं व्रतपते" इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ० १. १] ॥

"प्रजावतीः" इति द्व्यृचस्य गोपुष्टिकर्मणि विनियोग उक्तः ॥

"आ सुस्रसः" इति द्वाभ्यां गण्डमालाभैषज्यकर्मणि शङ्खं घृष्ट्वा अभिमन्त्र्य शुनकलालां वा अभिमन्त्र्य गण्डमालां प्रलिम्पेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन द्व्यृचेन जलूकां गृहगोधिकां वा अभिमन्त्र्य रुधिरमोक्षार्थं गण्डमालास्थाने संश्लेषयेत् ॥

तथा तत्रैव कर्मणि सैन्धवलवणं चूर्णयित्वा अनेन द्व्यृचेन अभिमन्त्र्य गण्डमालास्थाने विकीर्य तूष्णीं निष्ठीवेत् ॥

---

1 S' दार्भूपेण वा. *Kaus'ika*: दार्भ्यूपेण कृष्णा°.

सूत्रितं हि। "अपचिताम्[७. ७८] आ सुस्रसः[७. ८०] इति किंस्यादीनि लोहितलवणं संक्षुद्याभिनिष्ठीनति" इति [कौ० ४. ७]॥

तथा गण्डमालाभैषज्यकर्मण्येव "अपचितां लोहिनीनाम्" इत्यत्रोक्तानि कर्माण्यपि अनेन द्यूचेन कुर्यात्। सूत्रमपि तत्रैवोदाहृतम्॥

राजयक्ष्मभैषज्यार्थं "यः कीकसाः" इति तृचेन वीणातन्त्रीखण्डं वाद्यखण्डं शङ्खखण्डं वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात्। सूत्रितं हि। "यः कीकसा इति वीणातन्त्रीं बध्नाति" इत्यादि [कौ० ४. ८]॥

तत्र प्रथमा॥

अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम।
मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम्॥ १॥

अपऽचिताम्। लोहिनीनाम्। कृष्णा। माता। इति। शुश्रुम।
मुनेः। देवस्य। मूलेन। सर्वाः। विध्यामि। ताः। अहम्॥ १॥

दोषवशाद् अपाक् चीयमाना गलाद् आरभ्य अधस्तात् कक्षादिसंधिस्थानेषु प्रसृता गण्डमालाः अपचितः। यद्वा अपचिन्वन्ति पुरुषस्य वीर्यम् इति अपचितः। अपपूर्वात् चिनोतेः कर्तरि कर्मणि वा क्विप्। "ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्"। ताश्च लोहिन्यः लोहितवर्णाः। लोहितशब्दाद् "वर्णाद् अनुदात्तात् तोपधात् तो नः" इति ङीप्। तत्संनियोगेन तकारस्य नकारः। वर्णभेदविशिष्टा गण्डमालाप्रभेदाः षष्ठकाण्डे "अपचितः प्र पतत" इति[६. ८३] सूक्ते स्पष्टम् उक्ताः। लोहितवर्णानाम् अपचितां कृष्णा कृष्णवर्णा रोगनिदानभूता पिशाची माता जननी उत्पादयित्रीति शुश्रुम श्रुतवन्तः स्मः। शृणोतेर्लिटि उत्तमबहुवचने "कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि" इति इण्निषेधः। मातृकीर्तनेन अपचितः रोगान्तरवत् साधारणौषधादिना परिहरणीया न भवन्तीति प्रोह्यते। ताः पुर्वोक्तदुःसाधाः सर्वा अपचितः मुनेः मननीयस्य देवस्य द्योतमानस्य। अथर्वण इत्यर्थः। मूलेन। मूल प्रतिष्ठायाम् इति धातुजोयं शब्दः। अथर्वसंबन्धिना सर्वका-

रणभूतसामर्थ्येन । तदात्मना भावितेन शरेणेत्यर्थः । तेन शरेण अहं प्रयोक्ता विध्यामि विदारयामि । यद्वा मुनेर्देवस्य इति पदद्वयेन शरप्रकृतिभूतो वृक्षविशेष उच्यते । मुनेर्मननीयस्य स्तुत्यस्य देवस्य देवरूपस्य वनस्पतेः । तस्य देवतात्मकत्वम् "अञ्जन्ति त्वाम् अध्वरे देवयन्तः" [ऋ० ३.८.१] इत्यादिषु स्पष्टम् अवगम्यते । तस्य मूलेन मूलवत् सारभूतो यो वृक्षस्यांशस्तन्निर्मितेन मूलप्रदेशनिर्मितेन वा शरेण विध्यामि । अथ वा मुनेर्देवस्य इति पदद्वयेन धनुःप्रकृतिभूतो वेणुदार्भूषसंज्ञको वृक्ष उच्यते । तस्य मूलेन सामर्थ्याधायकेन शरेण विध्यामीति संबन्धः । अधिज्यस्य हि धनुषः सामर्थ्यम् इषुविसर्जनेन गम्यते इति तस्य मूलभूतः शर इत्युक्तम् । केचिद् आहुः । मुनेः मन्युमतः देवस्य । ॐ दीव्यतेर्विजिगीषार्थात् पचाद्यच् ॐ । विजयमानस्य क्रोधवतः क्रूरस्य । रुद्रस्य इत्यर्थः । तस्य मूलेन प्रधानभूतवीर्यरूपेण शत्रून्मूलनसाधनेन वा शरेण विध्यामि । गण्डमालावेधनसाधनभूतोयं शरः लौकिकः शरो न भवति किं तु असुरपुरनिर्भेदकस्य रुद्रस्य संबन्धी शरोयम् इति लौकिकशरस्य रुद्रशरात्मना भावनम् इति । रुद्रस्य पुरनिर्भेदनार्थम् इषुविसर्जनं तैत्तिरीये समाम्नायते । "त इषुं समस्कुर्वत । अग्निम् अनीकं "सोमं शल्यं विष्णुं तेजनम । तेब्रुवन् क इमाम् असिष्यतीति । रुद्र "इत्यब्रुवन् । रुद्रो वै क्रूरः । सोस्यतु" इति [तै० सं० ६.२.३.१] । एतद् उक्तं भवति । पापदेवतानिष्पादिता गण्डमाला अहं भैषज्यकर्ता लौकिकेन शरेण न विध्यामि किं तु रुद्रस्य शरेणेति ॥

द्वितीया ॥

विध्यामि आसां प्रथमां विध्यामि उत मध्यमाम् ।
इदं जघन्यामासामा च्छिनद्मि स्तुकामिव ॥ २ ॥

विध्यामि । आसाम् । प्रथमाम् । विध्यामि । उत । मध्यमाम् ।
इदम् । जघन्याम् । आसाम् । आ । छिनद्मि । स्तुकामऽइव ॥ २ ॥

दोषप्रकर्षसाम्यात्पत्वभेदेन गण्डमालास्त्रिविधाः । तासाम् अपसारणम्

1 S' अंजति.

अनया उच्यते । आसाम् अपचितां मध्ये प्रथमाम् मुख्यां दोषप्रकर्षेण उद्भूतां दुश्चिकित्सामपि गण्डमालां विध्यामि । मुनेर्देवस्य मूलेनेति संबन्धः अस्या अपि ऋचः शरेण वेधने विनियुक्तत्वात् । उत अपि च मध्यमाम् दोषसाम्येन उद्भूतां नातिदुःसाधाम् । सुसाधाम् इत्यर्थः । तादृशीम् अपचितं विध्यामि शरेण । तथा इदम् इदानीम् आसाम् अपचितां मध्ये जघन्याम् अल्पदोषसमुद्भूताम् ईषत्प्रयत्नेन निर्हरणीया गण्डमालाम् आ च्छिनद्मि सर्वतो विदारयामि । ✕ छिदिर् द्वैधीकरणे । रुधादिः ✕ । छेदने दृष्टान्तः स्तुकाम् इवेति । यथा ऊर्णास्तुका अनायासेन च्छिद्यते तथेति ॥

तृतीया ॥

त्वाष्ट्रेणाहं वचसा वि ते ईर्ष्याममीमदम् ।
अथो यो मन्युष्टे पते तमु ते शमयामसि ॥ ३ ॥

त्वाष्ट्रेण । अहम् । वचसा । वि । ते । ईर्ष्याम् । अमीमदम् ।
अथो इति । यः । मन्युः । ते । पते । तम् । ऊं इति । ते । शमयामसि ॥ ३ ॥

हे ईर्ष्योपेत पुरुष ते तव ईर्ष्याम् क्रोधं स्त्रीविषये क्रियमाणं त्वाष्ट्रेण । अवयवविभागकर्ता त्वष्टा । श्रूयते हि । "यावच्छो वै रेतसः सिक्तस्य त्वष्टा रूपाणि विकरोति तावच्छो वै तत् प्रजायते" इति [तै० सं० १. ५. ९. २] । तत्संबन्धि त्वाष्ट्रम् । तेन वचसा वाक्येन मन्त्रेण अहं प्रयोक्ता स्त्री वा व्यमीमदम् विगतमदां करोमि । निवारयामीत्यर्थः । ईर्ष्याया मदो नाम उद्रेकः । ईर्ष्याम् उद्रेकरहितां करोमीति यावत् । न केवलम् ईर्ष्योद्रेकशमनम् । अथो अपि तु हे पते वल्लभ ते तव यो मन्युः क्रोधः मद्विषयः [1] तव तं क्रोधं शमयामसि शमयामः । उ इत्यवधारणे । अत्रापि त्वाष्ट्रेण वचसा इति संबध्यते । यथा लोके दुर्वृत्ताः पुत्राः पितुराज्ञया दुर्व्यसनाद् निवर्तन्ते एवं पुरुषगतेर्ष्याविनाशने सर्वोत्पादकस्य त्वष्टुरुक्तिः करणत्वेनोक्ता ॥

१ A मन्युष्टे corrected to मन्युस्ते. R मन्युस्ते.

1 S' नातिदुःसाधात्मनि सुसाधा°.

चतुर्थी ॥

व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमनाः दीदिहीह ।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे ॥ ४ ॥

व्रतेन । त्वम् । व्रतऽपते । समऽअक्तः । विश्वाहा । सुऽमनाः । दीदिहि । इह ।
तम् । त्वा । वयम् । जातऽवेदः । समऽइद्धम् । प्रजाऽवन्तः । उप । सदेम । सर्वे ॥ ४ ॥

हे व्रतपते व्रतस्य कर्मणः पालयितः । कर्मफलप्रदातृत्वाद् व्रतपतित्वम् अग्नेः । "त्वं व्रतानां व्रतपतिरसि" इति [तै० सं० १.२.११.१] मन्त्रान्तरम् । व्रतेन अनुष्ठीयमानेन दर्शपूर्णमासादिकर्मणा समक्तः संस्कृतः संभावितः । सम्यग् इष्ट इत्यर्थः । ※अञ्जेः कर्मणि निष्ठा※ । एवंविधस्त्वं विश्वाहा विश्वेषु अहस्सु सर्वदा सुमनाः शोभनमनस्कः अस्मद्विषये अनुग्रहबुद्धियुक्तः सन् इह अस्मिन् अस्मदीये गृहे दीदिहि । ※दीदेतिर्दीप्तिकर्मेति यास्कः※ । दीप्यस्व । हे जातवेदः जातानां भूतानां वेदितः जातैर्विद्यमान ज्ञायमान वा जातप्रज्ञ जातधन वा हे अग्ने समिद्धम् सम्यग्दीप्तं तं पूर्वोक्तगुणं त्वा त्वां प्रजावन्तः प्रजायन्त इति प्रजाः पुत्रपौत्रादिसमेताः सर्वे वयम् उप सदेम उपसद्यास्म तव परिचरणं क्रियास्म । ※सदेः "लिङ्याशिष्यङ्" इति अङ् प्रत्ययः※ ॥

पञ्चमी ॥

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ १ ॥

प्रजाऽवतीः । सुऽयवसे । रुशन्तीः । शुद्धाः । अपः । सुऽप्रपाने । पिबन्तीः ।
मा । वः । स्तेनः । ईशत । मा । अघऽशंसः । परि । वः । रुद्रस्य । हेतिः ।
वृणक्तु ॥ १ ॥

प्रजावतीरित्येषा पञ्चमी व्याख्याता [४.२१.७] ॥

१ B B̈ K K̈ R S̈ V C$_s$ C$_r$ त्वां. We with A P P̈ J.

षष्ठी ॥

पदज्ञा स्थ रमतयः संहिता विश्वनाम्नीः।
उप मा देवीर्देवेभिरेत।
इमं गोष्ठमिदं सदो घृतेनास्मान्त्समुक्षत ॥ २ ॥

पदऽज्ञाः। स्थ। रमतयः। सम्ऽहिताः। विश्वऽनाम्नीः।
उप। मा। देवीः। देवेभिः। आ। इत।
इमम्। गोऽस्थम्। इदम्। सदः। घृतेन। अस्मान्। सम्। उक्षत ॥ २ ॥

हे रमतयः। गोनामैतत्। तद् उक्तम् आपस्तम्बेन। "चिद् असि मनासि धीरसि रन्ती रमतिः सूनुः सूनरीत्युच्चैरुपह्वे सप्त मनुष्यगवीः" [आप०४.१०.४] इति पयःप्रदानादिना रमयित्र्यो धेनवः। रमु क्रीडायाम्। औणादिकः अतिप्रत्ययः। पदज्ञाः सहचरीणां गवां पदानि जानत्यः स्थ भवथ। यद्वा पद्यते गम्यत इति पदं गृहं तज्जानत्यः स्थ। गोसंचरस्थाने चरित्वा पुनरस्मदीयमेव गृहं ज्ञात्वा आगच्छन्त्यो भवतेत्यर्थः। गा विशिनष्टि। संहिताः वत्सैः सहिताः अन्यगवीभिर्वा सहिताः परस्परम् आनुकूल्यं प्राप्ताः। विश्वनाम्नीः व्याप्तनामधेयाः। "वा छन्दसि" इति जसः पूर्वसवर्णदीर्घः। सर्वत्र प्रसिद्धसंज्ञाः बहुविधनामधेया वा। एकस्या गोरनेकसंज्ञासद्भावस्तैत्तिरीये समाम्नायते। "इडे रन्ते दिते सरस्वति प्रिये प्रेयसि महि विश्रुत्येतानि ते अग्निये नामानि" इति [तै०सं०७.१.६.८]। यद्वा विश्वं जगत् नमयन्ति स्वात्माभिमुखं कुर्वन्तीति विश्वनाम्न्यः। क्षीरादिलाभाय हि सर्वे धेनूः प्रार्थयन्ते। अत एव हे देवीः देव्यः दीव्यन्त्यो गावो यूयं देवेभिः देवैर्दीव्यद्भिः स्वकीयवत्सादिभिः सह मा मां पुष्टिकामम् उपैत समीपम् आगच्छत। इण् गतौ। लोटि मध्यमबहुवचने रूपम्। आगत्य च इमम् अस्मदीयं गोष्ठम् गावस्तिष्ठन्ति अत्रेति गोष्ठः गोनिवासस्थानम्। गोशब्दोपपदात् तिष्ठतेः अधिकरणे

१ B पदज्ञाः स्थ. २ P रमतयाः. ३ P omits the visarga. ४ P देवीः.

कः । "अम्बाम्बगोभूमि०" इति सकारस्य मूर्धन्यादेशः ॥ । इदम् अस्मदीयं सदः सीदन्त्यत्रेति सदो गृहम् अस्मान् गोष्ठगृहस्वामिनश्च घृतेन घृतोत्पादकेन पयसा घृतेन वा समुक्षत सम्यक् सिञ्चत । ॥ उक्ष सेचने ॥ । यथा गव्यसमृद्धिर्भवति तथा यूयम् अस्मद्गृहेषु समृद्धा भवतेत्यर्थः ॥

सप्तमी ॥

आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः ।
सेहोररसतरा लवणाद् विक्लेदीयसीः ॥ १ ॥

आ । सुऽस्रसः । सुऽस्रसः । असतीभ्यः । असत्ऽतराः ।
सेहोः । अरसऽतराः । लवणात् । विऽक्लेदीयसीः ॥ १ ॥

या ग्रैव्या अपचित इत्युत्तरमन्त्रेऽभिधानाद् अत्रापि अपचित एवोच्यन्ते । सुस्रसः अत्यर्थं स्रवन्त्यः सर्वदा पूयादिस्रवणशीलाः । ॥ सुपूर्वात् स्रंसतेः क्विप् । "अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति" इति नकारलोपः ॥ । अत एव असतीभ्यः सतीविरुद्धा असत्यः बाधिका रोगव्यक्तयस्ताभ्योपि असत्तराः अत्यर्थम् असत्यो बाधिका एवंविधा अपचिन्नामिका गण्डमालाः आसुस्रसः आ समन्ताद् निरवशेषं स्रवणशीला भवन्तु । मन्त्रौषधप्रयोगेण निःशेषं स्रवणेन विनश्यन्तु इत्यर्थः । अपचितो विशिनष्टि । शेहोः शेहुर्नाम विप्रकीर्णावयवः अत्यन्तं निःसारस्तूलादिरूपः पदार्थः तस्मादपि अरसतराः निःसारतराः । अपचितो हि पाकावस्थातः पूर्वम् अबाधिका इव दृश्यन्ते । पश्चात् कक्षादिसंधिप्रदेशेषु व्याप्ता व्रणरूपेण बाधन्ते । रोगप्रादुर्भावकाले स्वरूपापरिज्ञानेन अरसत्वम् उक्तम् । पाकोत्तरकालं कृत्स्नावयवव्याप्त्यनन्तरं लवणात् सर्वदा स्रवणशीलत्वेन प्रसिद्धात् एतन्नामधेयात् पदार्थादपि विक्लेदीयसीः अतिशयेन विविधं क्लेदनवत्यः । यथा लवणो यत्रकुत्रापि निहितोपि सर्वदा स्रवति तस्मादपि पाकावस्थोत्तरकालं सर्वाङ्गसंधिषु पूयादिस्रवणशीला भवन्ति । ए-

१ This is the reading of all our authorities. २ P °तरः. We with P J Cp.

1 S' प्रासङ्गायदतनाम°.

तादृश्योऽपचितः आसुस्रसो भवन्त्विति संबन्धः। ※ विक्लेदीयसीरिति। विविधः क्लेदो यासां ता विक्लेदाः अतिशयेन विक्लेदा विक्लेदीयस्यः। "द्विवचनविभज्योपपदे०" इति ईयसुन् प्रत्ययः। "टेः" इति टिलोपः। "वा छन्दसि" इति जसः पूर्वसवर्णदीर्घः ※ ॥

अष्टमी ॥

या ग्रैव्या अपचितोथो या उपपक्ष्याः।
विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः ॥ २ ॥

याः। ग्रैव्याः। अपऽचितः। अथो इति। याः। उपऽपक्ष्याः।
विऽजाम्नि। याः। अपऽचितः। स्वयमऽस्रसः ॥ २ ॥

ग्रैव्याः ग्रीवायां भवाः गलप्रदेशे उत्पन्नाः। ※ ग्रीवाशब्दात् "ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम्" इति "तत्र भवः" इत्यर्थे ञ्यप्रत्ययः। "ग्रीवाभ्योण् च" इति अण्प्रत्यये तु ङीपि यणादेशे च कृते ग्रैव्य इति भवति ※। ग्रीवाभवा या अपचितः। अथो अपि च उपपक्ष्याः उपपक्षे पक्षसमीपे उपकक्षे भवा या अपचितः। विजाम्नि विशेषेण जायते अपत्यम् अत्रेति विजामा गुह्यप्रदेशः। ※ जायतेः "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति मनिन्। "विड्वनोरनुनासिकस्यात्" इति प्रत्ययविशेषे विहितम् आत्त्वं छन्दोविषयत्वाद् अस्मिन्नपि भवति ※। विजाम्नि गुह्यप्रदेशे तदुपलक्षिते ऊरुसंधौ या अपचितः दोषवशाद् अपाक्चीयमाना गण्डमालास्ताः सर्वाः स्वयंस्रसः स्वयं स्रवणशीलाः मन्त्रौषधप्रयोगेण निरवशेषं स्रवन्त्यो भवन्तु इति तच्छब्दाध्याहारेण वाक्यं पूरणीयम्। यद्वा स्वयंस्रसः क्षाराद्यौषधप्रक्षेपाभावेपि दोषातिरेकवशाद् ग्रीवोपपक्षोरुसंधिस्थानेषु व्रणरूपेण पूयादिस्रवणशीला या अपचितः सन्ति ताः सर्वाः आसुस्रसो भवन्तु इति पूर्वमन्त्रेण संबन्धः। या ग्रैव्या इत्युत्तरमन्त्रे यच्छब्दश्रुतेः आसुस्रस इति पूर्वमन्त्रे तच्छब्दं विनापि वाक्यं पूर्यते ॥

---

१ B ग्रैव्या अप°. २ P J °पक्ष्याः. We with P C P.

नवमी ॥

यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति ।
निर्हास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः ॥ ३ ॥

यः । कीकसाः । प्रऽशृणाति । तलीद्यम् । अवऽतिष्ठति ।
निः । हाः । तम् । सर्वम् । जायान्यम् । यः । कः । च । ककुदि ।
श्रितः ॥ ३ ॥

यो राजयक्ष्माख्यो रोगः कीकसाः अस्थीनि प्रसृणाति प्रसरति व्याप्नोति । अस्थिपर्यन्तं व्याप्नोतीत्यर्थः । ※सरतेर्विकरणव्यत्ययः※ । यश्च रोगः तलीद्यम् । तलिद् इति अन्तिकनाम । अन्तिके भवं तलीद्यम् । ※"भवे छन्दसि" इति यत् । इकारस्य दीर्घश्छान्दसः※ । अस्थिसमीपगतं मांसम् अवतिष्ठति अवकृष्य तिष्ठति । मांसं शोषयतीत्यर्थः । यः कश्चित् दुःसाधो राजयक्ष्माख्यो रोगः ककुदि ककुन्नाम ग्रीवापरभागः तस्मिन् श्रितः संश्रितः ककुत्स्थानं तनूकुर्वन् यो रोगोस्ति तं सर्वं शरीरगतसर्वधातुशोषकं जायान्यम् निरन्तरजायासंभोगेन जायमानं क्षयरोगं निर्हाः निर्हरतु । मन्त्रसंस्कृतम् औषधम् अभ्यादिसंज्ञको वा देवः विनाशयतु । ※हरतेश्छान्दसे लुङि रूपम्※ । जायान्यशब्दो रोगविशेषपरः । स च जायासंबन्धेन प्राप्नोतीति तैत्तिरीयके समाम्नायते । "प्रजापतेस्त्रयस्त्रिंशद् दुहितर आसन् । ताः सोमाय राज्ञेददात् । तासां रोहिणीम् उपैत्" इति प्रक्रम्य समाम्नायते । "तासां रोहिणीम् "एवोपैत् । तं यक्ष्म आर्छत् । तद् राजयक्ष्मस्य जन्म । यत् पापीयान् "अभवत् तत् पापयक्ष्मस्य । यज्जायाभ्योविन्दत् तज्जायेन्यस्य । य एवम् "एतेषां जन्म वेद नैनम् एते यक्ष्मा विन्दन्ति" इति [तै० सं० २.३.५. २] । तत्र जायेन्य इति पठ्यते अत्र तु जायान्य इति आकारवत्त्वेन इति विशेषः ॥

---

१ B R omit the visarga. २ D J C[s] प्रसृ°. ३ B तलीद्यम°. ४ A B[h] B D K[m] K R S V C[s] निरास्तं. P निः । आस्तम्. P[2] J C[2] निः । आस्तम् ।. We with Sâyaṇa, who has doubtless preserved the genuine reading. ५ P जायान्यम्.

दशमी ॥

पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम्।
तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च ॥ ४ ॥

पक्षी। जायान्यः। पतति। सः। आ। विशति। पुरुषम्।
तत्। अक्षितस्य। भेषजम्। उभयोः। सुऽक्षतस्य। च ॥ ४ ॥

जायान्यः क्षयरोगः पक्षी पक्षवान् पतत्री भूत्वा पतति सर्वत्र चरति। स रोगः पूरुषम् पुरुषम् आ विशति सर्वतः प्रविशति। पुरुषस्य कृत्स्नं शरीरं व्याप्नोतीत्यर्थः। अक्षितस्य। ‘क्षि निवासगत्योः’। शरीरे चिरकालावस्थानरहितस्य। सुक्षितस्य चिरकालम् अवस्थितस्य। यद्वा। ‘क्षणु हिंसायाम्’ इति धातुः। इकारोपजनश्छान्दसः। अक्षितस्य अहिंसकस्य शरीरम् अशोषयतः सुक्षितस्य शरीरगतसर्वधातून् सुष्ठु निःशेषं शोषयतः। ‘चशब्दः समुच्चये’। उभयोः अक्षितसुक्षितयोः क्षयरोगयोः तत् प्रसिद्धं मन्त्राभिमन्त्रितं वीणातन्त्रीखण्डादिरूपं भेषजम् निवर्तनौषधं भवति ॥

[इति] सप्तमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

“विद्म वै ते” इत्यस्या ऋचो राजयक्ष्मभैषज्ये “यः कीकसाः” [७. ८०] इति द्व्यृचेन सह उक्तो विनियोगः ॥

सोमयागे माध्यन्दिनसवने “धृषत् पिब” इत्यनया द्रोणकलशस्थं सोमं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। “द्रोणकलशस्थम् अनुमन्त्रयते धृषत् पिबेति माध्यन्दिने” इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. ६] ॥

अभिचारकर्मणि “सांतपनाः” इति तृचेन विद्युद्धतवृक्षसमिध आदध्यात् ॥

तथा चातुर्मास्येषु साकमेधपर्वणि मध्यन्दिने काले सांतपनमरुद्यागं “सांतपनाः” इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। तद् उक्तं वैताने। “मध्यन्दिने सांतपनानां मरुतां सातपनाः” इति [वै० २. ५] ॥

1 S' अक्षतस्य, though its text has: अक्षितस्य, and though अक्षितस्य is what it reads at the beginning of the commentary.

सर्वव्याधिभैषज्यकर्मणि "वि ते मुञ्चामि" इत्यनया उदकघटं संपात्य अभिमन्त्र्य सूत्रोक्तप्रकारेण व्याधितम् आप्लावयेद् अवसिञ्चेद् वा । सूत्रितं हि । "सिनीवालि[७.४८] वि ते मुञ्चामि[७.८३] शुम्भनी [७.११७] इति मौञ्जैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिरापावयत्यवसिञ्चति" इति [कौ० ४.८] ॥

तथा दर्शपूर्णमासयोः मुच्यमानयोक्तां पत्नीम् अनया ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । तद् उक्तं वैताने । "वि ते मुञ्चामि[७.८३] अहं वि ष्या-"मि[१४.१.५७] प्र त्वा मुञ्चामि[१४.१.१९] इति पत्नीं योक्त्रेण वि-"मुच्यमानाम् अनुमन्त्रयते" इति [वै० १.४] ॥

दर्शपूर्णमासयोः "अस्मै क्षत्राणि" इत्यनया हविरासादनानन्तरम् इध्मम् उपसमादध्यात् । "अग्निर्भूम्याम्[१२.१.१९] इति तिसृभिरुपसमादधाति अस्मै क्षत्राणि[७.८३] एतम् इध्मम्"[१०.६.३५] इति [कौ० १.२] सूत्रात् ॥

"यत् ते देवा अकृण्वन्" इति चतसृभिः स्वाभिलषितफलकामः अमावास्यां यजेत उपतिष्ठेत वा । "बृहस्पतिर्नः[७.५३] यत् ते देवा अकृण्वन्[७.८४] पूर्णा पश्चात्"[७.८५] इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ० ७.१०] ॥

तथा दर्शयागे पार्वणहोमं "यत् ते देवा अकृण्वन्" इत्यनया कुर्यात् । "यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयम् इत्यमावास्यायाम्" इति कौशिकसूत्रात् [कौ० १.५] ॥

तथा श्रौतदर्शयागे "यत् ते देवा अकृण्वन्" इति कुहूदेवतां परिगृह्णीयात् । "कुहूं देवीं यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयम् इत्यमावास्यायाम्" इति वैतानं सूत्रम् [वै० १.१] ॥

तत्र प्रथमा ॥

विद्म[1] वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे ।
कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे ॥ १ ॥

---

१ S विद्या.

विद्म। वै। ते। जायान्य। जानम्। यतः। जायान्य। जायसे।
कथम्। ह। तत्र। त्वम्। हनः। यस्य। कृण्मः। हविः। गृहे ॥ १ ॥

हे जायान्य जायाभ्य आगत राजयक्ष्माख्य रोग ते तव जानम् जन्म उत्पत्तिनिदानं वा विद्म वै जानीमः खलु। वैशब्दः श्रुत्यन्तरप्रसिद्धिद्योतनार्थः। "यज्जायाभ्योविन्दत् तज्जायेन्यस्य" इति तैत्तिरीयश्रुतिः [तै० सं० २. ३. ५. २] उदाहृता। हे जायान्य जायासंबन्धाद् आगत रोग यतः यस्मान्निदानात् जायसे उत्पद्यसे तन्निदानं जानीम इति संबन्धः। एवं तवोत्पत्तिं जानाना वयं यस्य यजमानस्य गृहे हविः रोगनिर्हरणक्षमेन्द्रादिदेवतासंबन्धि आज्यादिरूपं कृण्मः कुर्मः देवतोद्देशेन तदुचितं हविः प्रक्षिपामः तत्र तस्मिन् यजमाने। ✕विषयसप्तमी✕। तद्विषये हे क्षयरोग त्वं कथं ह हनः केन गकारेण हन्याः। यद्रोगनिर्हरणार्थं यत्र देवता इज्यते तत्र स रोगो न बाधत इत्यर्थः। ✕हन इति। हन्तेः पञ्चमलकारे अडागमः। कृण्म इति। "लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः" इति उप्रत्ययलोपः✕ ॥

द्वितीया ॥

धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि ॥ २ ॥

धृषत्। पिब। कलशे। सोमम्। इन्द्र। वृत्रऽहा। शूर। समऽअरे। वसूनाम्।
माध्यन्दिने। सवने। आ। वृषस्व। रयिऽस्थानः। रयिम्। अस्मासु। धेहि ॥ २ ॥

हे इन्द्र धृषत् धृष्टः धर्षको वा शत्रूणाम्। ✕ञिधृषा प्रागल्भ्ये। शतरि व्यत्ययेन शः✕। कलशे द्रोणकलशाख्ये स्थितं सोमं पिब। किंनिमित्तम्। हे शूर विक्रान्त वृत्रहा वृत्रं हतवान् त्वं वसूनाम् ध-

१ P J C[P] हनः. We with P.

1 S' प्रक्षिपामतः for प्रक्षिपामः.

नाना समरे संगमे निमित्ते । अस्मान् धनं संयोजयितुं पिबेत्यर्थः । सं-पूर्वाद् अर्तेः "ऋदोरप्" । "थाथ°" इत्यादिस्वरेण अन्तोदात्तः । सोमपानस्य कालम् आह । माध्यन्दिने मध्यन्दिनसंबन्धिनि सवने । सूयते अभिषूयते सोमः अत्रेति सवनः कालः । तत्र आ वृषस्व सर्वतः सिञ्च । जठरे सोमम् इति शेषः । यद्वा । आवृषतिर्भक्षणकर्मा इति यास्कः । भक्ष च । सोमम् इति शेषः । ततः रयिस्थानः तिष्ठन्ति अस्मिन् धनानि इति स्थानः । अधिकरणे ल्युट् प्रत्ययः । धननिवासस्थानभूतः स त्वं रयिम् धनम् अस्मासु धेहि धारय ॥

तृतीया ॥

सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन ।
अस्माकोती रिशादसः ॥ १ ॥

साम्ऽतपनाः । इदम् । हविः । मरुतः । तत् । जुजुष्टन ।
अस्माक । ऊती । रिशादसः ॥ १ ॥

हे सांतपनाः संतापकारी संतपनः सूर्यः तत्संबन्धिनः । मध्यन्दिने हि सूर्यः संतपति । संतपनस्य इमे इति "तस्येदम्" इति अण् । "आमन्त्रितस्य च" इति षाष्ठिकम् आद्युदात्तत्वम् । यद्वा संतपनं संतापः । तस्येमे इति पूर्ववद् अण् । उभयत्रापि मध्यन्दिनकाले यष्टव्या इत्यर्थः । हे मरुतः इदं हविः । युष्मभ्यं कल्पितम् इति शेषः । हे मरुतः तत् हविः जुजुष्टन सेवध्वम् । जुषतेर्व्यत्ययेन श्नुः । अस्माक अस्माकम् ऊती । "सुपां सुलुक्°" इति चतुर्थ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः । ऊतये अस्मद्रक्षणार्थम् हे रिशादसः रिशन्ति हिंसन्तीति रिशाः । तेषाम् उपक्षपयितारः । दस्यतेः अन्तर्णीतण्यर्थात् किप् । यद्वा रिशानाम् अत्तारः । अद भक्षणे । इत्यस्माद् असुन् । दस्यतेरत्तेर्वा रूपम् इति अनवधारणाद् अनवग्रहः । अपादादित्वाद् आष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वम् । अस्मान् रक्षितुं शत्रूणां बाधका यूयं हविः सेवध्वम् इति संबन्धः ॥

चतुर्थी ॥

यो नो मर्तो मरुतो दुर्हणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां सस्तपिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥ २ ॥

यः । नः । मर्तः । मरुतः । दुःऽहृणायुः । तिरः । चित्तानि । वसवः । जिघांसति ।
द्रुहः । पाशान् । प्रति । मुञ्चताम् । सः । तपिष्ठेन । तपसा । हन्तन । तम् ॥ २ ॥

हे वसवः वासकाः । प्रशस्या इत्यर्थः । वसुप्रदा वा हे मरुतः यो मर्तः मरणधर्मा मनुष्यः दुर्हणायुः दुष्टं क्रुध्यन् तिरः तिरोभूतः अन्तर्हितः दृष्टिविषयम् अप्राप्तः सन् नः अस्माकं चित्तानि जिघांसति हन्तुम् इच्छति । क्षोभयतीत्यर्थः । स शत्रुः द्रुहः पापानां द्रोग्धुर्वरुणस्य पाशान् प्रति मुञ्चताम् धारयतु । वरुणपाशैर्बद्धो भवत्वित्यर्थः । तं जिघांसन्तं जनं तपिष्ठेन तापयितृतमेन तपसा तापकेन आयुधेन हन्तन हिंस्त हे मरुतः । ※ हन्तेर्लोटि तस्य तनबादेशः । पित्त्वाद् अनुनासिकलोपाभावः ※ ॥

पञ्चमी ॥

संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षया: सगणा मानुषासः ।
ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ॥ ३ ॥

सम्ऽवत्सरीणाः । मरुतः । सुऽअर्काः । उरुऽक्षयाः । सऽगणाः । मानुषासः ।
ते । अस्मत् । पाशान् । प्र । मुञ्चन्तु । एनसः । सामऽतपनाः । मत्सराः ।
मादयिष्णवः ॥ ३ ॥

संवत्सरीणाः संवत्सरं भाविनः वर्षेवर्षे प्रादुर्भविष्यन्तः । ※ "तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी" इत्यर्थे "संपरिपूर्वात् ख च" इति सं-

१ B D S[m] C s and Sâyaṇa's text सत[2] for सस्त[2]. We with A K K[m] R V. २ P मुञ्चताम्. ३ P प्रति. P प्र । तिमुंचंतु. J प्रति । corrected to प्र । We with J Cr.

पूर्वाद् वत्सरात् स्वप्रत्ययः ॥ । स्वर्काः । ॥ अर्कशब्दं यास्को बहुधा निरुवाच । अर्को मन्त्रो भवति यद् अनेनार्चन्ति अर्को देवो भवति यद् एनम् अर्चन्ति अर्कम् अन्नं भवति इत्यादि [नि० ५. ४] ॥ । सुमन्त्राः । मन्त्रैः सम्यक् स्तूयमाना इत्यर्थः । सूर्यरूपदेवसंबन्धिनो वा अन्नप्रदत्वेन शोभनान्ना वा । उरुक्षयाः । क्षयशब्दो निवासवाची । उरुर्विस्तीर्णः क्षयः अन्तरिक्षरूपो निवासो येषां ते । अन्तरिक्षसंचारिण इत्यर्थः । सगणाः । "सप्तगणा वै मरुतः" इति [तै० सं० २. २. ५. ७] श्रुतेः स्वीयस्वीयसंघयुक्ताः । मानुषासः वृष्टिनिमित्तत्वेन मनुष्यहितकारिणः । सांतपनाः शत्रूणां संतापकारिणः । मत्सराः माद्यन्तः मादयिष्णवः सर्वस्य संतोषकरणशीलाः । ते एवंगुणविशिष्टा मरुतः अस्मत् अस्मत्तः सकाशाद् एनसः पापकारिणः पाशान् बाधकान् प्र मुञ्चन्तु प्रमोचयन्तु ॥

षष्ठी ॥

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम् ।
इहैव त्वमजस्र एधग्ने ॥ १ ॥

वि । ते । मुञ्चामि । रशनाम् । वि । योक्त्रम् । वि । निऽयोजनम् ।
इह । एव । त्वम् । अजस्रः । एधि । अग्ने ॥ १ ॥

हे अग्ने ते तव त्वत्कर्तृकां रशनाम् व्यापिकां रज्जुम् । ॥ अशेरश च [उ० २. ७५] इति युच् प्रत्ययः ॥ । त्वत्कर्तृकां रुग्णविषयां कक्ष्यावस्थितां कण्ठबन्धनसाधनभूतां वा बाधिकां रज्जुं वि मुञ्चामि विमोचयामि प्रयोक्ता अहम् । तथा योक्त्रम् योजनोपयुक्तं रज्जुविशेषं मध्यप्रदेशबन्धनसाधनम् । वि मुञ्चामीति क्रियानुषङ्गः । तथा नियोजनम् नितरां योजनसाधनं नीचीनं वा बन्धनसाधनं सर्वावयवबन्धकं रज्जुविशेषम् । वि मुञ्चामीत्यनुषङ्गः । सर्वत्र क्रियानुषङ्गं द्योतयितुं वीत्युपसर्गश्रुतिः । अतः बन्धनमोचनात् हे अग्ने त्वम् इहैव अस्मिन्नेव रोगार्ते । ॥ विषयसप्तमी ॥ । रुग्णविषये अजस्रः । ॥ जसु हिंसायाम् इति

1 S' अंतरिक्षे. 2 S' तत्कर्तृ°.

धातुः। "नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः" इति ताच्छीलिको रप्रत्ययः॥ अबाधनशीलः एधि भव। ॥अस्तेर्लोटि हेर्धिभावे "ध्वसोरेद्धौ०" इति एकारादेशः॥ यद्वा रोगार्त एव संबोध्यते। हे रोगार्त ते तव संबन्धिनीं रशनाम् हननसाधनभूतं मृत्युपाशं वि मुञ्चामि। एवं योक्त्रनियोजनशब्दौ व्याख्येयौ। अतो रशनादिविमोकात् हे अग्ने। अग्निवद् अग्निः। अग्निवद् दीप्यमान रोगान्मुक्त पुरुष त्वम् इहैव अस्मिन्नेव लोके अजस्रः परैर्मृत्युना वा अबाधितः एधि भव। ॥अस्मिन् पक्षे कर्मणि रप्रत्ययो द्रष्टव्यः॥ पत्नी वा संबोध्यते॥

सप्तमी॥

अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन।
दीदिह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दा देवतासु॥ २॥

अस्मै। क्षत्राणि। धारयन्तम्। अग्ने। युनज्मि। त्वा। ब्रह्मणा। दैव्येन। दीदिहि। अस्मभ्यम्। द्रविणा। इह। भद्रम्। प्र। इमम्। वोचः। हविःऽदाम्। देवतासु॥ २॥

हे अग्ने अस्मै यजमानाय क्षत्राणि। बलनामैतत्। बलानि धारयन्तम्। प्रयच्छन्तम् इत्यर्थः। तादृशं त्वा त्वां दैव्येन देवसंबन्धिना ब्रह्मणा मन्त्रेण युनज्मि हविर्वहनार्थं योजयामि। अथ अस्मभ्यं [द्रविणा] द्रविणानि धनानि भद्रम् भन्दनीयं सुखं पुत्रादिलाभादिनिमित्तं च इह इदानीं दीदिहि। देहीति यावत्। ॥ददातेश्छान्दसं रूपम्॥। अथवा। ॥दीदेतिर्दीप्तिकर्मा इति यास्कः [निघ० १. १६]॥। अस्मभ्यं धनादिकं संदीपय। समर्धयेत्यर्थः। यद्वा धनं सुखं च अस्मभ्यं दातुम् इह इदानीं दीदिहि। इध्मेन दीप्यस्वेत्यर्थः। ततः हविर्दाम् चरुपुरोडाशादिरूपं हविः प्रयच्छन्तम्। ॥ददातेः क्विप्॥। ता-

१ A B इ for १.

1 S' योक्तृ°.

दृशम् इमं यजमानं देवतासु अग्नीन्द्रादिषु प्र वोचः प्रब्रूहि । असौ यजमानो हविषा देवता यजत इति तस्मै तस्मै यष्टव्यदेवतायै कथयेत्यर्थः ॥

अष्टमी ॥

यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ॥ १ ॥

यत् । ते । देवाः । अकृण्वन् । भागऽधेयम् । अमाऽवास्ये । सम्ऽवसन्तः । महिऽत्वा ।

तेन । नः । यज्ञम् । पिपृहि । विश्वऽवारे । रयिम् । नः । धेहि । सुऽभगे । सुऽवीरम् ॥ १ ॥

अमा सह वसतः सूर्यचन्द्रावस्याम् इति अमावास्या । "अमावस्यदन्यतरस्याम्" इति पक्षे ण्यत् प्रत्ययः । णित्त्वाद् उपधावृद्धिः । तस्याः संबुद्धिः । हे अमावास्ये ते तव महित्वा महत्त्वेन । तृतीयाया आकारादेशः । यद्वा महित्वा महत्त्वे । सप्तम्या आकारः । कर्मकालव्याप्तिपर्यन्तं संवसन्तः सम्यग्वसन्तः । हविरपेक्षया तिष्ठन्तो देवाः अग्नीन्द्रसोमादयः भागधेयम् हविषो भागम् अकृण्वन् अकुर्वन् । स्वीकृतवन्त इति यत् । "यत् ते देवा अदधुर्भागधेयम्" इति तैत्तिरीये श्रूयते [तै० सं० ३. ५. १. १] । यद्वा हे अमावास्ये ते तुभ्यं यद् भागधेयं हविषो भागम् अमावास्यायां यष्टव्यत्वेन संवसन्तो देवा अकृण्वन् अकुर्वन् प्रायच्छन् । दर्शे अमावास्याया अपि हविषो भागोस्ति । भागधेयम् इति । "रूपनामभागेभ्यो०" धेयप्रत्ययः । तेन हविर्भागस्वीकरणेन नः अस्मदीयं यज्ञं पिपृहि पूरय साङ्गं कुरु हे विश्ववारे विश्वैः सर्वैर्वरणीये । किं च हे सुभगे शोभनभाग्ययुक्ते अमावास्ये नः अस्मभ्यं सुवीरम् । वीराः कर्मणि कुशलाः पुत्रादयः । शोभनपुत्रादियुक्तं रयिम् धनं धेहि प्रयच्छ ॥

---

१ BKV अकृण्वद्भा°. We with ADK[m]RS[m]Cs.

नवमी ॥

अहमेवास्म्यमावास्याऽ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे ॥ २ ॥

अहम्। एव। अस्मि। अमाऽवास्या। माम्। आ। वसन्ति। सुऽकृतः।
मयि। इमे।
मयि। देवाः। उभये। साध्याः। च। इन्द्रऽज्येष्ठाः। सम्। अगच्छन्त।
सर्वे ॥ २ ॥

अत्र देवतावासस्थानभूतत्वेन अमावास्याशब्दनिष्पत्तिरिति देवता स्वयमेव स्वनाम निर्वक्ति। अहमेव अमावास्याभिमानिनी देवता अमावास्या अस्मि। न केवलं शब्दतः अपि तु अर्थतोपि एतन्नामिका भवामि। तद् दर्शयति पादत्रयेण। सुकृतः सुकर्माणो देवा मां मयि आ वसन्ति निवसन्ति यष्टव्यत्वेन अवतिष्ठन्ते। "उपान्वध्याङ्वसः" इति आङ्पूर्ववसिप्रयोगे माम् इत्यस्य कर्मता। आ मा वसन्ति देवा इति अमावास्याशब्दनिरुक्तिः। आङुसत्योर्मध्ये मा इति अस्मदो द्वितीयैकवचनस्य प्रयोगः। आङुपसर्गस्य ह्रस्वत्वम्। इति अमावास्याशब्दनिष्पत्तिः प्रदर्शिता। प्रत्ययस्तु पूर्वमेव उक्तः। माम् इति द्वितीयार्थमेव विवृणोति मयीमे इति। इमे देवाः मयि निवसन्ति इति आवासपदस्य अर्थकथनद्वारेणापि अमावास्याशब्दो निरुच्यते। साध्याः। चशब्दः अनुक्तसमुच्चयार्थः। सिद्धाश्च साध्यसिद्धनामका उभये द्विप्रकारा इन्द्रज्येष्ठाः इन्द्रप्रमुखाः सर्वे देवाः मयि समगच्छन्त संगच्छन्ते यष्टव्यत्वेन मिलिता भवन्ति। एतद् उक्तं भवति। माम् आ वसन्ति देवा मयि निवसन्ति यष्टव्यत्वेन मयि संगच्छन्ते इति अन्वर्थम् अमावास्याशब्दवाच्या भवामीति। अमा सह वसुरूप इन्द्रो वसति अस्यां तिथौ इति अमावास्याशब्दनिरुक्तिरिति तैत्तिरीये श्रूयते। "अमा वै नोद्य वसु वसतीति। इन्द्रो हि देवानां वसु। तद् अ-

१ DKKRŠVCs १ for ३. We with AB.

"मावास्याया अमावास्यत्वम्" इति [तै० सं० २. ५. ३. ६] ॥

दशमी ॥

आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् ॥ ३ ॥

आ । अगन् । रात्री । समऽगमनी । वसूनाम् । ऊर्जम् । पुष्टम् । वसु ।
आऽवेशयन्ती ।
अमाऽवास्यायै । हविषा । विधेम । ऊर्जम् । दुहाना । पयसा । नः । आ ।
अगन् ॥ ३ ॥

रात्री अमावास्याकालयुक्ता तिथिः वसूनाम् धनानां संगमनी संयोजयित्री । ॐविधेयविशेषणम् एतत्ॐ । अस्मान् धनं संयोजयितुम् आगन् आगच्छतु । ॐगमेश्छान्दसे लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक् । "मो नो धातोः" इति नत्वम्ॐ । तथा ऊर्जम् अन्नरसं पुष्टम् पोषं वसु धनं च आवेशयन्ती अस्मदभिमुखं प्रयच्छन्ती आगन्निति संबन्धः । अमावास्यां गोरूपेणाह । नः अस्माकम् ऊर्जम् अन्नरसं पयसा क्षीरेण सह दुहाना आगन् आगच्छतु । "अमावास्या सुभगा सुशेवा धेनुरिव भूय आप्यायमाना" इति शाखान्तरे श्रूयते [तै० ब्रा० ३. ७. ५. १३] । तादृश्यै अमावास्यायै तदर्थम् । यद्वा । ॐकर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थीॐ । अमावास्यां देवतां हविषा आज्यादिरूपेण विधेम परिचरेम ॥

[इति] सप्तमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"अमावास्ये न" इत्यस्याः सर्वाभिलषितकर्मणि "यत् ते देवा अकृण्वन्" इत्यत्र विनियोग उक्तः ॥

सर्वफलकामः "पूर्णा पश्चात्" इति द्वाभ्याम् "पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीत्" इत्यनया च पौर्णमासीं यजेत उपतिष्ठेत वा ॥

तस्मिन्नेव कर्मणि "प्रजापते न त्वत्" इत्यनया प्रजापतिं यजेत उपतिष्ठेत वा ॥

"यत् ते देवा अकृण्वन्[७. ८४] पूर्णा पश्चात्[७. ८५] प्रजापते" [७. ८५. ३] इति [कौ० ७. १०] सूत्रात् ॥

पूर्णमासयागे "पूर्णा पश्चात्" इति पूर्णमासीं देवतां परिगृह्णीयात्। "राकाम् अहम्[७. ५०] पूर्णा पश्चात्[७. ८५] इति पौर्णमास्याम्" इति [वै० १. १] वैतानसूत्रात् ॥

तत्रैव कर्मणि "पूर्णा पश्चात्" इति पार्वणहोमं जुहुयात्। "पूर्णा पश्चाद् इति पौर्णमास्याम्" इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ० १. ५.] ॥

दर्शपूर्णमासयोः संनतिहोमानन्तरं "प्रजापते न त्वत्" इत्यनया आज्यं जुहुयात्। "पृथिव्याम् अग्नये समनमन्[४. ३९] इति संनतिभिश्च प्रजापते न त्वद् एतान्यन्यः[७. ८५. ३] इति च" इति [कौ० १. ५] सूत्रात् ॥

तथा सर्वेषु श्रौतकर्मसु अनुमन्त्रणमन्त्रानादेशे "प्रजापते न त्वत्" इत्यनया अनुमन्त्रणं कुर्यात्। तद् उक्तं वैताने। "मन्त्रानादेशे लिङ्ग-"वतेति भागलिः। प्रजापते न त्वद् एतान्यन्य इति युवा कौशिकः। "यथादेवतम् इति माठरः" इति [वै० १. १] ॥

तथा दर्शपूर्णमासयोः प्राजापत्यम् आघारम् अनया ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "प्रजापते न त्वद् एतान्यन्य इति प्राजापत्यम् आघारम्" इति [वै० १. २] सूत्रात् ॥

तथा "मारुद्गणीं बलकामस्य" इति [न० क० १७] विहितायां महाशान्तौ "प्रजापते न त्वत्" इत्येनाम् ऋचम् आवपेत्। तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे। "मरुतां मन्वे[४. २७] प्रजापते न त्वद् एतान्यन्यः[७. ८५. ३] इति मारुद्गण्याम्" इति [न० क० १८] ॥

विवाहे "पूर्वापरम्" इति ऋचेन आज्यसमित्पुरोडाशादीनि जुहुयात्। सूत्रितं हि। "सत्येनोत्तभिता[१४. १] पूर्वापरम्[७. ८६] इत्युपदधीत" इति [कौ० १०. १] ॥

महाशान्तौ ग्रहयज्ञे "सोमस्यांशो युधां पते" इति चतुर्ऋचेन हविराज्यहोमसमिदाधानोपस्थानानि बुधाय कुर्यात्। तद् उक्तं शान्तिकल्पे।

1 S' संनिति°. 2 S' संनतिभ्यश्च. We with *Kaus'ika*.

"यद् राजानः[३.२९] सोमस्यांशो युधां पते[७.८६.३-६] इति बुधाय" इति [न०क०१५] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४ ॥

अमाऽवास्ये । न । त्वत् । एतानि । अन्यः । विश्वा । रूपाणि । परिऽभूः । जजान ।
यत्ऽकामाः । ते । जुहुमः । तत् । नः । अस्तु । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥ ४ ॥

हे अमावास्ये त्वत् त्वत्तः अन्यः कश्चिद् देवः एतानि इदानीं वर्तमानानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि । "शेश्छन्दसि बहुलम्" इति शेर्लोपः । रूपाणि रूप्यमाणानि भूतजातानि परिभूः । कृद्योगलक्षणषष्ठ्यभावश्छान्दसः । परिभूः । परिपूर्वो भवतिः परिग्रहार्थः । परिग्राहको व्यापको न जजान नोत्पन्नः । त्वमेव एतानि परिगृह्णासीत्यर्थः । जन जनने । लिटि रूपम् । यद्वा एतानि भूतजातानि त्वत्तः अन्यो देवः परिभूः व्यापकः सन् न जजान नोत्पादयामास । त्वमेव एतानि परिगृह्य स्रष्टुं शक्नोषीति भावः । जनी प्रादुर्भावे । ण्यन्तस्य लिटि मन्त्रविषयत्वाद् आमभावः । "णेरनिटि" इति णिलोपः । वयं च यत्कामाः यत्फलं कामयमानास्ते तुभ्यं जुहुमः हवींषि प्रयच्छामः तत् फलं नः अस्माकम् अस्तु भवतु । तथा वयं च रयीणाम् धनानां पतयः ईश्वराः स्याम भवेम ॥

द्वितीया ॥

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम ॥ १ ॥

पूर्णा । पश्चात् । उत । पूर्णा । पुरस्तात् । उत् । मध्यतः । पौर्णऽमासी । जिगाय ।

1 S' भूःपरि for परिभूः,

तस्याम्। देवैः। समऽवसन्तः। महिऽत्वा। नाकस्य। पृष्ठे। सम। इषा। मदेम ॥ १ ॥

पूर्णा पूर्णचन्द्रोपेता पौर्णमासी पश्चात् प्रतीच्यां दिशि जिगाय जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। उत अपि च पूर्णा पौर्णमासी पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि जिगाय। तथा मध्यतः प्राक्प्रतीच्योर्दिशोर्मध्ये आकाशमध्ये पौर्णमासी। पूर्णः संपूर्णो माश्चन्द्रः अस्मिन् पर्वणीति पौर्णमासी तिथिः। ※"सास्मिन् पौर्णमासीति संज्ञायाम्" इति अणन्तत्वेन निपातितः※। उज्जिगाय उज्जयति। पूर्णकलचन्द्रोपेता पौर्णमासी प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि मध्ये च प्रकाशयुक्ता वर्तत इत्यर्थः। अत्र जेतव्यस्याश्रवणाज्जयतिः उत्कर्षवाची। ※"सन्लिटोर्जेः" इति अभ्यासाद् उत्तरस्य जयतेः कवर्गादेशः※। तस्यां पौर्णमास्यां देवैः यष्टव्यैरग्नीषोमादिभिः सह महित्वा महत्त्वेन संवसन्तः संभूय निवसन्तो वयम्। यष्टृयष्टव्ययोः एकप्रदेशावस्थानात् संवसन्त इत्युक्तम्। नाकस्य दुःखरहितस्य स्वर्गस्य पृष्ठे उपरि भागे इषा अन्नेन सं मदेम संमाद्येम। ※माद्यतेः "लिङ्याशिष्यङ्"※। पौर्णमास्याम् अग्नीषोमादियागेन स्वर्गभोगप्राप्तिर्भवतीत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे।
स नो ददातवक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् ॥ २ ॥

वृषभम्। वाजिनम्। वयम्। पौर्णऽमासम्। यजामहे।
सः। नः। ददातु। अक्षिताम्। रयिम्। अनुपऽदस्वतीम् ॥ २ ॥

वृषभम् वर्षितारम् अभिमतफलानां प्रधानभूतं वा वाजिनम् अन्नवन्तम् अन्नसाधनत्वात् हविर्भिर्वा युक्तं पौर्णमासम्। ※पूर्णो माश्चन्द्रः अस्मिन्निति पूर्णमाः। प्रज्ञादित्वात् स्वार्थिकः अण्※। पौर्णमासं पर्व वयं यजामहे आहुत्या। स च अस्माभिरिष्टः पौर्णमासः नः अस्माकम् अक्षिताम् अविनाशितां परैरबाधिताम् अनुपदस्वतीम् उ-

पभोगेपि क्षयरहितां रयिम् रायं धनं दधातु । अक्षिताम् इत्यनेन परकृतः क्षयो निरस्यते । अनुपदस्वतीम् इत्यनेन उपभोगेन व्ययेपि क्षयराहित्यम् उच्यते । अक्षिताम् इति । क्षि क्षये । कर्मणि क्तः । "निष्ठायाम् अण्यदर्थे" इति पर्युदासाद् दीर्घाभावः । अत एव "यो दीर्घात्" इति निष्ठानत्वाभावश्च । अनुपदस्वतीम् इति । दसु क्षये । संपदादिलक्षणो भावे क्विप् । तदन्तान्मतुप् । "मादुपधाया°°" इति वत्वम् । "तसौ मत्वर्थे" इति भसंज्ञायां पदसंज्ञानिबन्धनरुत्वाभावः । अनुपदस्वतीम् इति । "नञ्" इति तत्पुरुषसमासः । "तत्पुरुषे तुल्यार्थ°" इति अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ॥

चतुर्थी ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ३ ॥

प्रजाऽपते । न । त्वत् । एतानि । अन्यः । विश्वा । रूपाणि । परिऽभूः । जजान ।
यत्ऽकामाः । ते । जुहुमः । तत् । नः । अस्तु । वयम् । स्याम । पतयः ।
रयीणाम् ॥ ३ ॥

एषा ऋक् "अमावास्ये न त्वदेतानि" [७. ८४. ४] इत्यनेन व्याख्याता । अमावास्यापदस्थाने प्रजापतिपदं विशिष्यते ॥

पञ्चमी ॥

पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः ॥ ४ ॥

पौर्णऽमासी । प्रथमा । यज्ञिया । आसीत । अह्नाम् । रात्रीणाम् । अतिऽशर्वरेषु ।
ये । त्वाम् । यज्ञैः । यज्ञिये । अर्धयन्ति । अमी इति । ते । नाके । सुऽकृतः ।
प्रऽविष्टाः ॥ ४ ॥

---

१ D P ते. We with A B $\overset{h}{B}$ K $\overset{m}{K}$ R $\overset{m}{S}$ $\overset{2}{P}$ J V $C_b$ $C_p$.

पौर्णमासी पूर्णचन्द्रवती एतन्नामिका तिथिः अह्नां रात्रीणाम् अहोरात्राणां मध्ये प्रथमा आदिभूता मुख्या वा यज्ञिया यज्ञार्हा आसीत् भवति। ※"यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ" इति घप्रत्ययः※। कस्मिन् विषय इति तद् आह। अतिशर्वरेषु। अतिक्रान्तानि शर्वरीम् अतिशर्वराणि। ※"अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" इति समासः※। रात्रिम् अतीत्य वर्तमानेषु सोमादिहविष्षु। यद्वा अतिशयिता शर्वरी येषु हविष्षु इति अतिशर्वराणि। तृतीयसवनव्यापिषु हविष्षु। यज्ञियासीद् इति संबन्धः। अयम् अर्थः। इष्टिपशुसोमानां दर्शपूर्णमासौ प्रकृतिभूतौ। तत्रापि पूर्णमासयागः प्रथमानुष्ठेयः। स च पौर्णमास्यामेव तिथौ क्रियत इति सर्वेषाम् अहोरात्राणां प्रथमत्वेन यज्ञार्हेति॥ हे यज्ञिये यज्ञार्हे पौर्णमासि त्वां ये ऋत्विग्यजमाना यज्ञैः दर्शपूर्णमासादिभिः अर्दयन्ति अभिमतफलं याचन्ते। ※अर्द गतौ याचने च※। अमी इष्टवन्तस्ते सुकृतः सुकर्माणो यजमानाः नाके दुःखरहिते स्वर्गलोके प्रविष्टाः स्थिता भवन्ति॥

षष्ठी॥

पूर्वापरं चरतो मायया॒तौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातो॑र्ण॒वम्।
विश्वान्यो भुव॑ना वि॒चष्ट ऋ॒तूँर॒न्यो वि॒दध॑ज्जायसे॒ नवः॥ १॥

पूर्व॑ऽअपरम्। चरतः। मायया। एतौ। शिशू इति। क्रीडन्तौ। परि। यातः। अर्णवम्।

विश्वा। अन्यः। भुवना। विऽचष्टे। ऋतून्। अन्यः। विऽदधत्। जायसे। नवः॥ १॥

कश्चित् पूर्वो गच्छति सूर्यः। अन्यस्तम् अनुचरति चन्द्रमाः। एवम् एतौ सूर्यचन्द्रौ पूर्वापरम्। क्रियाविशेषणम् एतत्। पौर्वापर्येण मायया सह चरतः द्युलोके गच्छतः। तौ शिशुवद् भ्रमणात् जायमानत्वाद् वा शिशू इत्युच्येते। शिशू सन्तौ क्रीडन्तौ विहरन्तौ अर्णवम्। अ-

१ R यातो अर्ण°. २ A B[h] °रण्यो. R °तूरन्यो. ३ D S[m] °यतु. We with A B[h] K K[m] R V C.

न्तरिक्षनामैतत्। अर्णांसि उदकानि अस्मिन् सन्तीति अर्णवः। "अर्णसः सलोपश्च" इति वप्रत्ययः सकारलोपश्च। अन्तरिक्षं परि यातः परि गच्छतः। तयोरन्यः आदित्यो [विश्वा] विश्वानि भुवना भुवनानि भूतजातानि विचष्टे पश्यति। "एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम्" इति निघातनिषेधः। "तिङि चोदात्तवति" इति गतेर्निघातः। अन्यश्चन्द्रमाः ऋतून् वसन्तादीन् तदवयवभूतान् मासान् अर्धमासांश्च विदधत् कुर्वन् नवः नूतनः जायते* उत्पद्यते। यद्यपि उभयोर्जनिरस्ति तथापि सूर्यस्य सर्वदा प्रवृद्धेः उदयो नाभिप्रेतः। चन्द्रस्य तु कलाह्रासवृद्धिसद्भावाद् नवो जायत इत्युक्तिर्युक्ता। "चन्द्रमा वै जायते पुनः" इत्यादिश्रुतेश्च [वा० सं० २३.१०] ॥

सप्तमी ॥

नवोनवो भवसि जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेष्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २ ॥

नवःऽनवः। भवसि। जायमानः। अह्नाम्। केतुः। उषसाम्। एषि। अग्रम्। भागम्। देवेभ्यः। वि। दधासि। आऽयन्। प्र। चन्द्रमः। तिरसे। दीर्घम्। आयुः ॥ २ ॥

हे चन्द्रमः त्वं जायमानः शुक्लपक्षप्रतिपदादिषु एकैककलाधिक्येन उत्पद्यमानः सन् नवोनवः पुनःपुनरभिनवो भवसि प्रतिदिनं नूतन एव भवसि। "अनुदात्तं च" इति द्वितीयो नवशब्दः अनुदात्तः। किं च अह्नाम् तिथीनां केतुः केतुवत् केतयिता ज्ञापयिता प्रतिपदादीनां तिथीनां चन्द्रकलाह्रासवृद्ध्यधीनत्वात्। तादृशस्त्वम् उषसाम् रात्रीणाम् अग्रम् एषि अग्रणीर्भवसि। रात्रीणां कर्तृत्वात्। यद्वा अह्नां केतुः अहरवसाने शुक्लपक्षे प्रतीच्यां दिशि दृश्यसे कृष्णपक्षे तु उषसाम् रात्रीणाम् अग्रम् अवसानम् एषि। प्राच्यां दिशि दृश्यस इत्यर्थः। केचन एतं पादम् आदित्यदेवत्यम् आहुः। तस्मिन् पक्षे अह्नां केतुत्वम् उषसाम् अग्रगतिश्च सूर्यस्य प्रसिद्धे। एवम् आयन् आगच्छन् प्रतिदिनं

ह्रासवृद्धिभ्यां पक्षान्तम् अभिगच्छन् हे चन्द्रमः त्वं देवेभ्यो भागम् हविर्भागं वि दधासि करोषि। तिथिविशेषरूपपर्वनिबन्धनत्वात् सर्वयागानाम्। एवमुक्तलक्षण हे चन्द्रमः त्वं दीर्घम् आयुः प्र तिरसे। ‡प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्धनार्थः‡। प्रवर्धयसि। ‡अत्र निरुक्तम्। नवोनवो भवसि जायमान इति पूर्वपक्षादिम् अभिप्रेत्य। अह्नां केतुरुषसाम् एत्यग्रम् इति अपरपक्षान्तम् अभिप्रेत्य। आदित्यदैवतो द्वितीयः पाद इत्येके। भागं देवेभ्यो विदधात्यायन्निति अर्धमासेज्याम् अभिप्रेत्य। प्रवर्धयते चन्द्रमा दीर्घम् आयुः इति [नि०११.६]‡॥

अष्टमी॥

सोमस्यांशो युधां पतेनूनो नाम वा असि।
अनूनं दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च॥ ३॥

सोमस्य। अंशो इति। युधाम्। पते। अनूनः। नाम। वै। असि। अनूनम्। दर्श। मा। कृधि। प्रऽजया। च। धनेन। च॥ ३॥

ह सोमस्यांशो सोमस्य चन्द्रमसः अंशभूत सोमपुत्र हे बुध हे युधां पते युद्धानां योधानां वा पालक। बुधग्रहबलेन हि युद्धजयो भवतीति प्रसिद्धम्। ‡आमन्त्रितद्वयेपि "सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे" इति सोमस्येति युधाम् इति च पदद्वयस्य आमन्त्रितानुप्रवेशः। तत्र सोमस्यांशो इत्यत्र "आमन्त्रितस्य च" इति षाष्ठिकम् आद्युदात्तत्वम्। युधां पते इत्यस्य "नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्" इति पूर्वामन्त्रितस्य अविद्यमानवत्त्वनिषेधात् "आमन्त्रितस्य च" इति आष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वम्‡। एवंगुणविशिष्ट सोमपुत्र हे बुध त्वम् अनूनः संपूर्णो नाम असि वै भवसि खलु। सर्वदा तेजस्वित्वेन अनूनत्वम्। अतः हे दर्श द्रष्टव्य बुध मा मां हविरादिना त्वां प्रीणयन्तं प्रजया पुत्रादिकया धनेन। परस्परसमुच्चयार्थौ चशब्दौ। अनूनम् संपूर्णं समृद्धं[3] कृधि कुरु॥ एवं विनियोगानुसारेण बुधग्रहपरतया व्याख्यातः।

1 S' अनिग°. 2 So S'. 3 S' समृद्धि.

मन्त्रार्थपर्यालोचनया सोम एव प्रतीयते । तस्मिन् पक्षे अयम् अर्थः । हे सोमस्यांशो सोमस्य संपूर्णकलस्य चन्द्रस्य अंशो अंशभूत एककलावच्छिन्न शुक्लप्रतिपदि दृश्यमान चन्द्र हे युधां पते त्वं नाम नाम्ना अनूनोसि संपूर्णकल इति प्रसिद्धोसि । चन्द्रस्य संपूर्णकलत्वमेव सहजो धर्मः । तत्र कलाह्रासवृद्धी सूर्यमरीचिसमाश्लेषतारतम्येनेति ज्योतिःशास्त्रविद आहुः । यतः संपूर्णकलः अतो हे दर्श द्रष्टव्य सर्वैरभिनन्दनीय त्वं मा मां तुभ्यं हविः प्रयच्छन्तम् । प्रजाधनाभ्यां संपूर्णं कुरु इति । सोमदेवत्योपि मन्त्रो जन्यजनकयोरभेदोपचाराद् बुधग्रहविषयहविर्दानादिषु विनियुज्यते । कृधीति । डुकृञ् करणे । लोटि हेः "श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि" इति धिरादेशः । विकरणस्य लुक् छान्दसः ॥

नवमी ॥

दर्शोसि दर्शतोसि समग्रोसि समन्तः ।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥ ४ ॥

दर्शः । असि । दर्शतः । असि । समऽअग्रः । असि । समऽअन्तः । समऽअग्रः । समऽअन्तः । भूयासम् । गोभिः । अश्वैः । प्रऽजया । पशुऽभिः । गृहैः । धनेन ॥ ४ ॥

हे सोम त्वं दर्शोसि सूर्येण सहैव द्रष्टव्यो भवसि । अमावास्यायां सूर्येण सह चन्द्रमा दृश्यते इति सा तिथिर्दर्शशब्देन उच्यते । यद्वा दर्शोसि शुक्लप्रतिपदि एककलात्मना द्रष्टव्यो भवसि । अनन्तरं दर्शतः तृतीयादिषु ततोपि स्फुटं दर्शनीयो भवसि । अथ समग्रः अष्टम्यादिषु ततोपि स्फुटतरं कलासमृद्धो भवसि । अनन्तरं समन्तः पौर्णमास्यां संगतान्तप्रदेशः सर्वकलापूर्णमण्डलो भवसि । यत एवम् अतोहं गवादिभिः समग्रः समृद्धः समन्तः संपूर्णश्च भूयासम् ॥

१ ADRADR दर्शतोसि.

1 S' अंशु°. 2 S' reads the passage from this word in the following manner: मा मां सोमदेवत्योपि मंत्रो जन्यजनकयोरभेदोपचाराद्बुधग्रहविषयहविर्दानादिषु विनियुज्यते । प्रजाधनाभ्यां संपूर्ण कुरु इति । कृधीति । डुकृञ्……छांदसः तुभ्यं हविः प्रयच्छंतम्.

दशमी ॥

यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व।
आ वयं प्याशिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥ ५ ॥

यः। अस्मान्। द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः। तस्य। त्वम्। प्राणेन। आ। प्यायस्व।

आ। वयम्। प्याशिषीमहि। गोभिः। अश्वैः। प्रऽजया। पशुऽभिः। गृहैः। धनेन ॥ ५ ॥

यः शत्रुः अस्मान् द्वेष्टि प्रातिकूल्यम् आचरति यं वा शत्रुं वयं द्विष्मः तस्य प्राणेन हे सोम त्वम् आ प्यायस्व आप्यायितो भव। शत्रोः प्राणम् अपहरेत्यर्थः। वयं च गवादिभिः आ प्याशिषीमहि आप्यायिता भूयास्म। ओप्यायी ओप्यायी वृद्धौ। आशिषि लिङि "सिब्बहुलम्०" इति बहुलवचनाद् अलेऽपि सिप्। "लोपो व्योर्वलि" इति यकारलोपः। "लिङः सीयुट्। इडागमः ॥

एकादशी ॥

यं देवा अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षिता भक्षयन्ति।
तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु भुवनस्य गोपाः ॥ ६ ॥

यम्। देवाः। अंशुम्। आऽप्याययन्ति। यम्। अक्षितम्। अक्षिताः। भक्षयन्ति।

तेन। अस्मान्। इन्द्रः। वरुणः। बृहस्पतिः। आ। प्याययन्तु। भुवनस्य। गोपाः ॥ ६ ॥

यम् अंशुम् एककलात्मकं सोमं देवा आप्याययन्ति शुक्लपक्षे प्रतिदिनम्

---

१ ADS$^{m}$C$_{s}$ have no kaṃpa. KRV have १ for ३. We with B$^{h}$K$^{m}$. २ So all our MSS. and vaidikas except K$^{m}$ which has प्यायिषी°.

1 S′ प्याशिषीमहि. The reading in the text of S′ also is प्राशिषीमहि. But see the grammatical note which follows.

एकैककलाप्रदानेन वर्धयन्ति यं च सोमम् अक्षितम् अविच्छिन्नं सर्वेष्वपि अहस्सु क्षयरहितं यं सोमम् अक्षिताः अक्षीणाः पित्रादयः भक्षयन्ति पिबन्ति । ✕ "वा क्रोशदैन्ययोः" इति पक्षे दीर्घाभावः ✕ । तेन सोमेन सह इन्द्रः परमैश्वर्यसंपन्नो देवानाम् अधिपतिः वरुणः पापनिवारको देवः बृहस्पतिः बृहतां महतां देवानां हितकारित्वेन पतिः पालयिता च देवः भुवनस्य भूतजातस्य गोपाः गोपायितारः प्रवृद्धिप्रदा इन्द्रादयः अन्ये वा विश्वे देवाः अस्मान् हविरादिना प्रीणयितॄन् आप्याययन्तु वर्धयन्तु ॥

## सप्तमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

### श्रीमद्राजाधिराजराजपरमेश्वरश्रीवीर[हरि]हरमहाराजप्रवर्तिते अथर्वसंहिताभाष्ये सप्तमकाण्डे सप्तमोनुवाकः ॥

अष्टमेनुवाके द्वे सूक्ते । तत्र "अभ्यर्चत" इति आद्ये सूक्ते आद्येन षड्चेन संपत्कामः सर्वफलकामो वा अग्निं यजेत उपतिष्ठेत वा । "समास्त्वाग्ने[२.६] अभ्यर्चत[७.८७] इत्यग्निं संपत्कामः" इति "अभ्यर्चत[७.८७] को अस्या नः"[७.१०८] इति च कौशिकं सूत्रम् [कौ०७.१०] ॥

अग्निचयने समिदाधानानन्तरम् "अभ्यर्चत" इति ब्रह्मा जपेत् । तद् उक्तं वैताने । "उदेनम् उत्तरं नय[६.५] इति समिध आधीयमानाः । चत्वारि शृङ्गा[ऋ०४.५८.३] अभ्यर्चत[७.८७] इति जपति" इति [वै०५.२] ॥

तथा "आग्नेयीम् अग्निभये सर्वकामस्य च" इति [न०क०१७] विहितायां महाशान्तौ "अभ्यर्चत" इति आवपेत् ॥

तथा वास्तोष्पत्याख्यायां महाशान्तौ "अभ्यर्चत" इत्यनेन औदुम्बरमणिं बध्नीयात् ॥

तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "अभ्यर्चतेत्याग्नेय्याम्" इति [न०क०१८] ॥ "अभ्यर्चतेत्यौदुम्बरम्" इति च [न०क०१९] ॥

ब्रह्मचारिणः स्वाग्निनाशप्रायश्चित्तार्थं "मय्यग्ने" इति पञ्चर्चेन पञ्च स-

मिध आदध्यात्। सूत्रितं हि। "मय्यग्र इति पञ्चप्रश्नेनादधाति" इति [कौ० ७. ८]॥

तथा आधाने मथिताग्निं "मय्यग्रे" इत्यनेन आज्येनाक्तं कुर्यात्। "मय्यग्र इत्येतयानक्ति" इति वैतानं सूत्रम् [वै० २. १]॥

दर्शपूर्णमासयोः "घृतं ते अग्ने" इत्यनया आज्यनिर्वापकाले अग्निं ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "घृतं ते अग्न इत्याज्ये निरुप्यमाणेग्निम्" इति वैतानं सूत्रम् [वै० १. २]॥

जलोदरभैषज्यार्थं नद्योः संगमे मण्डपं कृत्वा "अप्सु ते राजन्" इति चतुर्ऋचेन उष्णोदकं संपात्य अभिमन्त्र्य पिञ्जूलीभिस्तस्मिन् मण्डपे व्याधितम् आप्लावयेत्॥

तथा अनेन चतुर्ऋचेन अभिमन्त्रितशीतोदकेन तस्मिन् मण्डपे व्याधितं पिञ्जूलीभिः सह अवसिञ्चेद् वा॥

सूत्रितं हि। "अप्सु त इति वहन्त्योर्मध्ये विमिते पिञ्जूलीभिरात्मावयति। अवसिञ्चति। अत्युष्णाः संपातवतीरसंपाताः" इति [कौ० ४. ८]॥

तथा धूमकेतुदर्शनलक्षणाद्भुतप्रायश्चित्तार्थं वारुणपशोरवदानानि "अप्सु ते राजन्" इति चतुर्ऋचेन प्रत्यृचं जुहुयात्। तद् उक्तं कौशिकेन। "अप्सु ते राजन्निति चतसृभिर्वारुणस्य जुहुयात्" इति [कौ० १३. ३५]॥

पशुतन्त्रे हृदयशूलोद्वासनानन्तरम् "अप्सु ते राजन्" इत्यस्य जपे विनियोगः। "अप्सु ते राजन्निति जपन्ति" इति वैतानं सूत्रम् [वै० २. ६]॥

तथा अद्भुतमहाशान्तौ "अप्सु ते राजन्" इति वरुणं यजेत। तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे। "इन्द्रेमं प्रतरं कृधि [६. ५. २] इति इन्द्रस्य अप्सु ते राजन् [७. ८८] इति वरुणस्य" इति [न० क० १४]॥

तथा शवसंस्कारानन्तरम् उदकसमीपे ब्रह्मा "उदुत्तमम्" इति जपेत्॥

अन्त्येष्ट्यादिषु स्वस्त्ययनार्थं "प्रासत् पाशान्" इति जपेत्॥

तत्र प्रथमा॥

अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।

---

1 S' मंट०. 2 After this S' has a blank space of about twenty-four letters.

इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् ॥ १ ॥

अभि । अर्चत । सुऽस्तुतिम । गव्यम् । आजिम । अस्मासु । भद्रा । द्रविणानि । धत्त ।

इमम । यज्ञम । नयत । देवता । नः । घृतस्य । धाराः । मधुऽमत् । पवन्ताम ॥ १ ॥

सुष्टुतिम् सुस्तोत्रम् अग्निम् । ‘‘नञ्सुभ्याम्’’ इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । अभ्यर्चत । अर्चतिः स्तुतिकर्मा । अभिष्टुत । आपो गावो वा संबोध्यन्ते । कीदृशम् । गव्यम् गोसंबन्धिनम् आजिम् संघम् अभिलक्ष्य सुस्तुतिम् । गोसंघादिलाभार्थं स्तूयमानम् इत्यर्थः । ‘‘गोरजादौ तद्धिते यङ्क्तव्यः’’ इति यत् प्रत्ययः । ‘‘वान्तो यि प्रत्यये’’ इति वान्तादेशः । ‘‘यतोनावः’’ इति आद्युदात्तत्वम् । यद्वा गव्यम् गोभ्यो हितम् । हितार्थे यत् । आजिम् अभिगन्तव्यं यज्ञैः । अथवा आजिशब्देन विजिगीषूणां लक्ष्यदेशगमनम् उच्यते । आजिम् आजिधावनं प्रति सुस्तुतिम् इति संबन्धः । सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वम् अग्नेरेव निर्दिष्टदेशगमनात् । तथा च ऐतरेयके श्रूयते । ‘‘तासां वै देवतानाम् आजिं धावन्तीनाम् अभिसृष्टानाम् अग्निर्मुखं प्रथमः प्रत्यपद्यत’’ [इति] [ऐ० ब्रा० ४. ८] । किं च भद्रा भद्राणि भन्दनीयानि द्रविणानि धनानि अस्मासु धत्त निधत्त । तथा नः अस्मदीयम् इमं यज्ञं देवताः अग्न्यादिकाः नयत प्रापयत । अत एव घृतस्य क्षरणशीलस्य आज्यस्य धाराः प्रवाहा मधुमत् । क्रियाविशेषणम् एतत् । मधुररसोपेतं यथा तथा पवन्ताम् । पवतिर्गतिकर्मा । गच्छन्तु यष्टृत्या देवता इति । यद्वा मधुमत् मधुमत्यो धारा इति । ङीब्रसोर्लुक् छान्दसः ॥

द्वितीया ॥

मय्यग्ने अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।

---

१ B K मय्यग्ने.

1 S' गोरुत्क्षा for गोरजादौ.

मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥ २ ॥

मयि। अग्रे। अग्निम्। गृह्णामि। सह। क्षत्रेण। वर्चसा। बलेन।
मयि। प्रऽजाम्। मयि। आयुः। दधामि। स्वाहा। मयि। अग्निम् ॥ २ ॥

अग्रे प्रथमम् अग्निम् आहुताधारं मथ्यमानम् अग्निं मयि गृह्णामि धारयामि। मदधीनं करोमीत्यर्थः। केन सहेति तद् आह। क्षत्रेण बलेन वर्चसा तेजसा। यद्वा क्षत्रेण क्षतात् त्रायकेण वर्चसा बलेन शारीरेण सामर्थ्येन सह अग्निं गृह्णामि। क्षत्रतेजोबलार्थम् अग्निं स्वाधीनं करोमीत्यर्थः। तथा अग्निस्वाधीनीकरणेन प्रजाम् पुत्रादिलक्षणां मयि दधामि। पुत्रादिकं लभेयेत्यर्थः। आयुः जीवनं मयि दधामि। आयुष्मान् भूयासम् इति यावत्। तथा अग्निम् जाठरं वैश्वानरम् अग्निं मयि दधामि अन्नपाकादिजनितारोग्यार्थम् अग्निं धारयामि। स्वाहा इदं समिदादिरूपम् अग्नौ स्वाहुतम् अस्तु ॥

तृतीया ॥

इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः ॥ ३ ॥

इह। एव। अग्ने। अधि। धारय। रयिम्। मा। त्वा। नि। क्रन्। पूर्वऽचित्ताः। निऽकारिणः।
क्षत्रेण। अग्ने। सुऽयमम्। अस्तु। तुभ्यम्। उपऽसत्ता। वर्धताम्। ते।
अनिंऽस्तृतः ॥ ३ ॥

हे अग्ने इहैव अस्मास्वेव त्वां परिचरत्सु रयिम् धनम् अधि धारय अधिकं स्थापय। ॐ "अन्येषाम् अपि दृश्यते" इति दीर्घः ॐ। ये पूर्वचित्ताः अस्मत्तः पूर्वं त्वद्विषयमनस्का निकारिणः अस्मदपकारिणः ते त्वा त्वां मा नि क्रन् स्वाधीनं मा कार्षुः। एवं वा योजना। निकारिणः अस्मदपकारिणः पूर्वचित्ताः अस्मत्तः पूर्वमपि त्वद्विषययागकरणम-

१ P P̂ J Cp all give the visarga after अनिं°.

1 S' तद्विषय°.

नसोपि त्वां यागेन स्वाधीनं मा कार्षुरिति । ॥ करोतेः "मन्त्रे घ-स०" इति च्लेर्लुक् ॥ । हे अग्ने तुभ्यं तव । ॥ षष्ठ्यर्थे चतु-र्थी ॥ । क्षत्रेण बलेन सह । स्वरूपम् इति शेषः । सुयमम् अस्तु सुस्थितम् अस्तु येन अस्मान् अनुगृह्णासि । ॥ यमेः खलि "लि-ति" इति प्रत्ययात्पूर्वस्य उदात्तत्वम् । "तुभ्यमह्यौ ङयि" इति [तुभ्या-देशे "ङयि च" इति] आद्युदात्तत्वम् ॥ । अपि च ते तव उप-सत्ता उपसदनशीलः परिचारकोयं यजमानः वर्धताम् पूर्यतां कामैः । अनिस्तृतः केनचिदपि अहिंसितः अतिरस्कृतप्रभावः । ॥ स्तृणाति-हिंसाकर्मा छादनकर्मा वा । उपसत्तेति । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । अस्मात् तृचि "एकाचः०" इति इण्निषेधः ॥ ॥

चतुर्थी ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीननु द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ४ ॥

अनु । अग्निः । उषसाम् । अग्रम् । अख्यत् । अनु । अहानि । प्रथमः । जातऽवेदाः ।
अनु । सूर्यः । उषसः । अनु । रश्मीन् । अनु । द्यावापृथिवी इति । आ । विवेश ॥ ४ ॥

अग्निः अङ्गनादिगुणयुक्तो देवः उषसाम् अग्रम् प्रादुर्भावम् अनु अ-ख्यत् ख्याति प्रकाशते । दृश्यत इति यावत् । प्रथमं तावद् उषसां मु-खे अग्निः प्रकाशते । ॥ "लक्षणेत्थंभूत०" इत्यादिना अनोः कर्म-प्रवचनीयत्वम् । "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति ख्यातेर्लुङ् । "अस्यति-वक्तिख्यातिभ्योङ्" ॥ । अहानि च । अन्वख्यत् इति क्रियानुषङ्गः । अहान्यनु प्रतिप्रकाशते । प्रथमो मुख्यः । प्रथमानो वा । ॥ प्रथेर-मच् प्रत्ययः ॥ । महान् जातवेदाः जातानि वस्तूनि वेदयतीति जात-वेदाः जातानां वेदिता जातप्रज्ञो वा प्रकाशते । ॥ गतिकारकयोरपि पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च [उ०४.२२६] इति वेत्तेरसुन् ॥ । सूर्यात्मना अ-

ग्निः उत्तरार्धेन स्तूयते। सूर्यः सूर्यात्मकः। श्रूयते हि तैत्तिरीयके। "उ-"द्यन्तं वावादित्यम् अग्निरनुसमारोहति। तस्माद् धूम एवाग्नेर्दिवा दह-"शे" इति [तै० ब्रा० २. १. २. १०]। सूर्यात्मकोग्निः उषसोऽनु प्रकाश-ते। ततो रश्मीन् व्यापनशीलान् किरणान् अनु प्रकाशते। इत्थम् अनेन क्रमेण द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ अन्वा विवेश सर्वत्र द्यावापृ-थिव्योराविष्टः प्रकाशत इति। ✕"दिवसश्च पृथिव्याम्" इति द्या-वादेशः। द्वितीयाद्विवचनस्य "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः। "दे-वताद्वन्द्वे च" इति पूर्वोत्तरपदयोर्युगपत् प्रकृतिस्वरत्वम्✕॥

पञ्चमी॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान॥ ५॥

प्रति। अग्निः। उषसाम्। अग्रम्। अख्यत्। प्रति। अहानि। प्रथमः। जातऽवेदाः।
प्रति। सूर्यस्य। पुरुऽधा। च। रश्मीन्। प्रति। द्यावापृथिवी इति। आ। ततान॥ ५॥

पूर्वार्धं पूर्वमन्त्रेण व्याख्यातम्। अनोः स्थाने प्रति पदं विशिष्य-ते। ✕"लक्षण०" इत्यादिना प्रतेः कर्मप्रवचनीयत्वम्✕। किं च पुरुत्रा[1] पुरून् बहुरूपत्वाद् बहुधा प्रवृत्तान्। ✕"देवमनुष्य०" इत्यादिना त्राप्रत्ययः✕। सूर्यस्य रश्मींश्च प्रति अख्यत् प्रकाशते सू-र्यस्य रश्मीन् प्रति स्वयमेव प्रकाशते अग्निसूर्ययोः अत्यन्तभेदाभावात्। इत्थम् अनेन क्रमेण द्यावापृथिवी प्रत्या ततान सर्वत्र द्यावापृथिव्योरात-तो भवति। प्रकाशम् आत्मीयम् आतनोतीति यावत्॥

षष्ठी॥

घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे।

1 S' देवमनुष्येभ्य इत्यादिना.

घृतं ते देवीर्नप्त्यं[1] आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुहता गावो अग्ने ॥ ६ ॥

घृतम् । ते । अग्ने । दिव्ये । सधऽस्थे । घृतेन । त्वाम् । मनुः । अद्य । सम् । इन्धे ।

घृतम् । ते । देवीः । नप्त्यः । आ । वहन्तु । घृतम् । तुभ्यम् । दुहताम् । गावः । अग्ने ॥ ६ ॥

हे अग्ने ते तव संबन्धि घृतम् आज्यं दिव्ये दिवि भवे सधस्थे सहस्थाने देवैः सह निवासस्थाने । वर्तत इति शेषः । अद्य इदानीं मनुः एतत्संज्ञकः त्वां घृतेन क्षरणशीलेन दीपकेन वा आज्येन समिन्धे सम्यग् दीपयति । मनुर्नाम राजर्षिः इदानीमपि अग्निम् आज्याहुतिभिः समर्धयतीत्यर्थः । हे अग्ने ते तुभ्यं देवीः द्योतमानाः नप्त्यः न पातयित्र्यः नप्तृसंज्ञापत्यभूता वा । आप इत्यर्थः । घृतम् आज्यम् आ वहन्तु अभिमुखं प्रापयन्तु । उदकैरेव ओषध्यादिवृद्ध्या अपां न पातयितृत्वम् । "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिः" इति [म० स्मृ० ३. ७६] स्मृतेः अपां नप्तृसंज्ञकापत्यभूतत्वम् । किं च हे अग्ने तुभ्यं त्वदर्थं गावः धेनवः घृतं दुहताम् दुहताम् । ‡"बहुलं छन्दसि" इति रुडागमः‡ ॥

सप्तमी ॥

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मितः ।
ततो घृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥ १ ॥

अप्ऽसु । ते । राजन् । वरुण । गृहः । हिरण्ययः । मितः ।
ततः । घृतऽव्रतः । राजा । सर्वा । धामानि । मुञ्चतु ॥ १ ॥

हे राजन् सर्वेषां देवानां स्वामिन् वरुण पापनिवारक देव ते तव अप्सु उदकेषु उदकमध्ये मितः अनन्यसाधारणः परेषाम् अनभिगम्यो वा हिरण्ययः हिरण्मयः । ‡"ऋत्व्यवास्त्व्यवास्त्वमाध्वीहिरण्ययानि

---

१ ABBDS$^{h}$C$^{m}$s ३ for १. R has no kampa. We with KK$^{m}$V. २ So all our authorities. See Rw. ३ So all our authorities. See Rw.

"च्छन्दसि" इति मयटो मकारलोपो निपात्यते[1]। सुवर्णमयो गृहः निवासस्थानम् अस्ति यतः ततः तस्मात् कारणाद् धृतव्रतः। व्रतम् इति कर्मनाम। नियतकर्मा सत्यकर्मा राजा वरुणः सर्वा सर्वाणि धामानि स्थानानि अस्मदीयानि मुञ्चतु त्यजतु। धामानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानि जन्मानीति हि यास्कः [नि० ९. २८]। जलोदरादयो रोगा हि वरुणकर्तृकाः। तस्य हि जलमध्ये निवासस्थानम् अस्ति। अतः स्वेन गृहीतानि अस्मदीयावयवरूपाणि स्थानानि त्यक्त्वा स्वगृहे निवसत्वित्यर्थः॥

अष्टमी॥

धाम्नोधाम्नो राजन्नितो वरुण मुञ्च नः।
यदापो अह्या इति वरुणेति यदूचिम ततो वरुण मुञ्च नः॥ २॥

धाम्नःऽधाम्नः। राजन्। इतः। वरुण। मुञ्च। नः।
यत्। आपः। अह्याः। इति। वरुण। इति। यत्। ऊचिम। ततः।
वरुण। मुञ्च। नः॥ २॥

हे राजन् हे वरुण इतः अस्माद् धाम्नोधाम्नः सर्वस्माद् रोगस्थानात् नः अस्मान् मुञ्च मोचय। धाम्नोधाम्न इति। वीप्सायां द्विर्वचनम्। "अनुदात्तं च" इति आम्रेडितस्य अनुदात्तत्वम्। किं च हे वरुण ततोपि पापात् नः अस्मान् मुञ्च मोचय। हे आपः इति हे अह्याः इति हे वरुण इति यद् ऊचिम यच्छापवाक्यम् अवोचाम। यच्छापवाक्यवचनेन पापम् आर्जितं तस्मादपि मुञ्चेति संबन्धः। शापो हि प्रशस्तदेवतानामसंकीर्तनेन परेषाम् अनर्थाशंसनम्। यद्वा सत्यसति वा विषये "आपो वै सर्वा देवताः" [ऐ० ब्रा० २. १६] इति सर्वदेवतात्मिकानाम् अपां साक्षित्वेन प्रमाणीकरणम्; हविराधारभूताया गोर्वा जलाधिपतेर्वरुणस्य वा। उपलक्षणम् एतत् प्रशस्तदेवतानाम् अन्यासामपि। हे आपः यूयम् अस्मिन् सत्ये असत्ये वा विषये साक्षि-

---

१ So all our authorities. See Rw. The reading in Aśvalāyana (*Śrauta*, III. 6. 24) is also धाम्नोधाम्नः. २ P P J वरुणः. We with Cp.

भूता भवथ हे आपः युष्मभ्यं शपामहे इदम् इत्थम् इत्येवंविधं प्रशस्तदेवतानामधेयपुरःसरं यद् वाक्यं तेन पापम् आर्ज्यते । सत्येपि हि विषये शपथकरणेन धर्मस्यार्धं वैवस्वतो निकृन्तति किल असत्ये किमु वक्तव्यम् । अतो देवतानामधेयकीर्तनरूपशपथकरणजनितपापाद् अस्मान् मोचयेत्यर्थः । अत्र ऊचिमेति पदेन वचनमात्रं न विवक्षितं किं तु शपथरूपमेव । अत एव तैत्तिरीये "यदापो अभ्रिया इति वरुणेति शपामहे" [तै०ब्रा०२. ६. ६. २] इति समाम्नायते । ※आपो अभ्रिया वरुणेति श्रुताद्युदात्तानां मन्त्रपदानाम् इदम् अनुकरणम् । ततश्च सत्यपि पदात् परत्वे आमन्त्रितनिघातो न प्रवर्तते । अभ्रियाशब्दो यप्रत्ययान्तः अन्तोदात्तः । यथा "दुहाम् अश्विभ्यां पयो अभ्रियम्" [ऋ०१. १६४. २७] इति । तस्य आमन्त्रिताद्युदात्तत्वम् । वरुणेति । षाष्टिकम् आद्युदात्तत्वम् । ऊचिमेति । ब्रूञो लिटि वच्यादेशः । यजादित्वात् संप्रसारणम् । "लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्" इति अभ्यासस्य संप्रसारणम् ※ ॥

नवमी ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ३ ॥

उत् । उत्ऽतमम् । वरुण । पाशम् । अस्मत् । अव । अधमम् । वि । मध्यमम् । श्रथय ।
अध । वयम् । आदित्य । व्रते । तव । अनागसः । अदितये । स्याम ॥ ३ ॥

हे वरुण उत्तमम् ऊर्ध्वकायस्थितं पाशम् अस्मत् अस्मत्तः सकाशाद् उच्छ्रथय ऊर्ध्वम् उत्कृष्य नाशय । अधमम् अधःकायस्थितं पाशम् अव श्रथय अधस्ताद् अवकृष्य नाशय । मध्यमम् मध्यदेहस्थितं पाशं वि श्रथय विकृष्य नाशय । ※श्रथ दौर्बल्ये । चुरादिरदन्तः । वर्णव्यत्ययेन उपान्त्यस्य दीर्घत्वम् । यद्वा श्रन्थ प्रतिहर्षमोचनयोः । अस्मात् लोटि "शायच्छन्दसि सर्वत्र" इति श्नाप्रत्ययस्य शायजादेशः । "अतो हेः"

१ B K अथा. We with A $\overset{h}{B}$ D R $\overset{m}{S}$ P $\overset{g}{P}$ J V Cs. २ K अथ ।.

इति हेर्लुक्॥ अथ अनन्तरम् हे आदित्य अदितेः पुत्र। "दित्यदित्यादित्य०" इति ण्यप्रत्ययः॥ हे आदित्य वरुण तव व्रते कर्मणि। विषयसप्तमी॥ कर्मार्थं यागयोग्यतासिद्ध्यर्थम् अनागसः विमुक्तसर्वपाशा वयम् अदितये अखण्डितत्वाय अनभिशस्तये स्याम भवेम। अनागस इति। बहुव्रीहौ "नञ्सुभ्याम्" इत्येष स्वरो व्यत्ययेन न प्रवर्तते॥

दशमी॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्॥ ४॥

प्र। अस्मत्। पाशान्। वरुण। मुञ्च। सर्वान्। ये। उत्ऽतमाः। अधमाः। वारुणाः। ये।

दुःऽस्वप्न्यम्। दुःऽइतम्। निः। स्व। अस्मत्। अथ। गच्छेम। सुऽकृतस्य। लोकम्॥ ४॥

हे वरुण अस्मत् अस्मत्तः सर्वान् पाशान् प्र मुञ्च। ये वारुणाः वरुणस्य भवतः संबन्धिनः उत्तमा अधमाश्च ये पाशाः सन्ति। उद्भूताभिभूतशक्तिभेदाद् अधर्मपाशानां द्वैविध्यम्। "उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र" इति उञ्छादिषु पाठाद् उत्तमशब्दः अन्तोदात्तः॥ किं च दुष्वप्न्यं दुष्टे स्वप्ने भवं दुरितम् पापम् अरिष्टम् अस्मत् अस्मत्तः निः ष्व निस्सुव। निर्गमयेत्यर्थः। षू प्रेरणे। अस्मात् लोटि तुदादित्वात् शः। यणादेशो व्यत्ययेन॥ अथ पाशदुरितविमोचनानन्तरं सुकृतस्य सुष्ठु कृतस्य पुण्यस्य लोकं गच्छेम प्राप्नुयाम॥

[इति] अष्टमेनुवाके प्रथमं सूक्तम्॥

"अनाधृष्यो जातवेदाः" इति प्रथमाया ऋचः अग्न्युपस्थाने लैङ्गिको विनियोगः॥

---

१ B दुः°.

1 S' °सिद्ध्यर्थमित्थमनागसः. 2 S' दुष्वाप्नियं.

इन्द्रमहाख्यें उत्सवे "इन्द्र क्षत्रम" इत्यनया हविर्जुहुयात् । "इन्द्र क्षत्रम इति हविषो हुत्वा" इति हि [कौ०१४.४] सूत्रम ॥

अग्निचयने पुरीषाच्छन्नां चितिं "मृगो न भीमः" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "मृगो न भीमः[७.८९.३] वैश्वानरो न ऊतये[६.३५] इति चितिं पुरीषाच्छन्नाम्" इति हि वैतानं सूत्रम [वै०५.२] ॥

स्वस्त्ययनार्थं "त्यमू षु" "त्रातारम" इत्याभ्यां प्रत्येकम इन्द्रं यजेत उपतिष्ठेत वा । "त्यमू षु[७.९०] त्रातारम[७.९१] आ मन्द्रैः [७.१२२] इति स्वस्त्ययनकामः" इति हि [कौ०७.१०] सूत्रम ॥

तथा "त्यमू षु" "त्रातारम" इत्यनयोः स्वस्त्ययनगणे पाठाद् उपाकर्मणि आज्यहोमे विनियोगः । "स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्" इति [कौ० १४.३] सूत्रात् ॥

तथा अन्त्येष्ट्यादिषु स्वस्त्ययनार्थं "त्यमू षु" "त्रातारम" इति जपेत् ॥

तथा इन्द्रमहाख्योत्सवे "त्रातारम इन्द्रम" इत्यनया आज्यं जुहुयात् । "त्रातारम इन्द्रम[७.९१] इन्द्रः सुत्रामा[७.९६] इत्याज्यं हुत्वा" इति हि [कौ०१४.४] सूत्रम ॥

स्वस्त्ययनकामः "यो अग्नौ" इति ऋचा रुद्रान् यजेत उपतिष्ठेत वा । "यो अग्नाविति रुद्रान् स्वस्त्ययनकामः" इति हि [कौ०७.१०] सूत्रम ॥

तथा अन्त्येष्ट्यादिषु स्वस्त्ययनार्थम् एताम् ऋचं जपेत् ॥

तथा दर्शपूर्णमासयोः "यो अग्नौ" इत्यनया आग्नीध्रः संमार्गम् अग्नौ निक्षिपेत् । उक्तं वैताने । "आग्नीध्रः संमार्गं प्रहरति यो अग्नाविति" इति [वै०१.४] ॥

तथा चातुर्मास्येषु साकमेधपर्वणि त्रैयंम्बककर्मणि अस्या विनियोगः । उक्तं वैताने । "अथोदञ्चश्चतुष्पथे त्रैयंम्बकं यो अग्नाविति" इति [वै०२.५] ॥

तथा अग्निष्टोमे शालादहनानन्तरं "यो अग्नौ" इत्यनेन अग्नये नमस्कारं कुर्यात् । "यो अग्नाविति नमस्कृत्य तेनैव निक्रामन्ति" इति हि वैतानं सूत्रम [वै०३.१४] ॥

---

1 So S'. The *Vaitāna*: चितिंचितिं. 2 S' पुरीषच्छन्ना°. 3 S' त्रैय्य°. 4 S' त्रिय°.

सर्पविषभैषज्यार्थम् "अपेहि" इत्यनया तृणानि प्रज्वाल्य सर्पाभिमुखं प्रक्षिपेत्। दष्टस्थाने निक्षिपेद् वा। सूत्रितं हि। "अपेहीति तृणानि प्रगृह्य अहिम् अभि निरस्यति। यतो दष्टः" इति [कौ० ४. ५]॥

"परिमोक्षविधौ "अपो दिव्याः" इति चतसृभिः शान्त्युदकम् अभिमन्त्रयेत॥

तथा वेदव्रतादिषु "अपो दिव्याः" इति द्यृचेन "एधोसि" इत्यनया च तिस्रः समिध आदध्यात्॥

सूत्रितं हि। "अपो दिव्या इति पर्यवेतंव्रत उदकान्ते शान्त्युदकम् अभिमन्त्रयते। अस्तमिते समित्पाणिरेत्य तृतीयावर्जं समिध आदधाति" इति [कौ० ५. ६]॥

तथा आचार्यमरणे तत्संस्कारानन्तरम् "अपो दिव्याः" इति चतसृभिः ब्रह्मचारी स्नायात्। तद् उक्तं कौशिकेन। "त्रिरात्रम् अपर्यावर्तमानः शयीत। नोपशयीतेति कौशिकः। स्नानीयाभिः स्नायात्" इति [कौ० ५. १०]॥

तथा दर्शपूर्णमासयोः इडाभागप्राशनानन्तरम् "अपो दिव्याः" इति तिसृभिः प्रस्तरे मार्जनं कुर्यात्। तद् उक्तं वैताने। "अपो दिव्या इति तिसृभिः पवित्रवंति मार्जयते" इति [वै० १. ३]॥

तथा अग्निष्टोमे अवभृथस्नानानन्तरम् "अपो दिव्याः" इति आहवनीयाग्निम् उपतिष्ठेत। "अपो दिव्याः" इत्याहवनीयम् उपतिष्ठते" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. १४]॥

अग्निकार्ये ब्रह्मचारी "इदम् आपः" इति हस्तौ प्रक्षालयेत्। "इदम् आपः प्र वहत इति पाणी प्रक्षालयते" इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ० ७. ८]॥

तथा चातुर्मास्येषु वरुणप्रघासपर्वणि "इदम् आपः" इति मार्जनं कुर्यात्। "आषाढ्यां वरुणप्रघासः" इति प्रक्रम्य "इदम् आपः प्र वहतेति मार्जयते" इति वैताने सूत्रितम् [वै० २. ४]॥

---

1 S' वेदव्रत for पर्यवेतव्रत. We with *Kauśika*. 2 S' नोपरि for नोप° which we with *Kauśika*. 3 S' कौशिकस्ना°. 4 S' पवित्र इति for पवित्रवति.

दर्शपूर्णमासयोः दक्षिणाप्रतिग्रहानन्तरम् "एधोसि" इति मन्त्रेण आग्नीध्रः समिधम् आदध्यात् । तद् उक्तं वैताने । "संप्रेषित आग्नीध्र एधोसीति समुद्धृत्य समिधम् आधाय" इति [वै० १. ४] ॥

तथा स्मार्तदर्शपूर्णमासयोः संस्रावहोमानन्तरम् "एधोसि" इति मन्त्रेण द्वितीयां "समिदसि" इति मन्त्रेण तृतीयां समिधम् आदध्यात् । "तेजोसि" इति मन्त्रेण मुखं विमृज्यात् । सूत्रितं हि । "अग्नये स्वा-"हेति समिधम् आदधाति । एधोसीति द्वितीयां समिदसीति तृतीयां "तेजोसीति मुखं विमार्ष्टि" इति [कौ० १. ६] ॥

तथा अग्निकार्ये ब्रह्मचारी "एधोसि" इति हस्तम् अग्नौ प्रताप्य उष्माणं भक्षयेत् । "एधोसीत्युष्मभक्षं भक्षयति" इति हि [कौ० ७. ८] सूत्रम् ॥

जारोच्चाटनार्थं "अपि वृश्च" इति तृचेन जारं दृष्ट्वा वदेत् ॥

तथा अनेन पाषाणम् अभिमन्त्र्य जारसंगमस्थाने प्रक्षिपेत् ॥

सूत्रितं हि । "अपि वृश्चेति जायायै जारम् अन्वाह । [क्लीवपदे] बाधकं धनुर्विष्यति । आशयेश्मानं प्रहरति" इति [कौ० ४. १२] ॥

तत्र प्रथमा ॥

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह ।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् ॥१॥

अनाधृष्यः । जातऽवेदाः । अमर्त्यः । विऽराट् । अग्ने । क्षत्रऽभृत् । दीदिहि । इह ।
विश्वाः । अमीवाः । प्रऽमुञ्चन् । मानुषीभिः । शिवाभिः । अद्य । परि । पाहि । नः । गयम् ॥ १ ॥

हे अग्ने अनाधृष्यः ईषदपि धर्षयितुम् अशक्यः । धृषिधृषा प्रागल्भ्ये । "ऋदुपधाच्चाकॢपि चृतेः" इति क्यप् । "कृत्योकेणुक्०" इत्यादिना उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । जातवेदाः जातानां वेदिता जातधनो वा अमर्त्यः अमरणधर्मा विराट् विविधं राजमानः क्षत्रभृत् क्षत्रस्य

1 S' संप्रोषित°. 2 So S'. 3 S' जारायै. We with *Kaus'ika*. 4 S' अशक्यम्.

बलस्य भर्ता धारयिता ईदृशः सन् इह अस्मिन् कर्मणि स्थाने वा दीदिहि दीप्यस्व। ॥ दीदेतिर्दीप्तिकर्मा इति यास्कः। दीव्यतेर्वा "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः ॥ तथा दीप्तश्च त्वं विश्वाः सर्वा अमीवाः रोगान् प्रमुञ्चन् प्रकर्षेण मोचयन् विनाशयन् मानुषीभिः मानुषहिताभिः। ॥ "मनोर्जातावञ्यतौ०" इति अञ्प्रत्ययान्तो मानुषशब्दः। तस्मात् "तस्येदम्" इत्यर्थे अण्। "टिड्ढाणञ्०" इत्यादिना ङीप् ॥ शिवाभिः कल्याणकारिणीभिः ऊतिभिः अद्य इदानीं नः अस्माकं गयम् गृहं परि पाहि सर्वतो रक्ष ॥

द्वितीया ॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोजायथा वृषभ चर्षणीनाम।
अपानुदो जनममित्रायन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥ २ ॥

इन्द्र। क्षत्रम। अभि। वामम। ओजः। अजायथाः। वृषभ। चर्षणीनाम।

अप। अनुदः। जनम। अमित्रऽयन्तम। उरुम। देवेभ्यः। अकृणोः। ऊं इति। लोकम ॥ २ ॥

हे इन्द्र क्षत्रम क्षतात् त्रायकं वामम वननीयम ओजः बलम अभिलक्ष्य अजायथाः उत्पन्नोसि। हे वृषभ कामानां वर्षितः चर्षणीनाम मनुष्याणाम अस्माकम। ॥ "नाम अन्यतरस्याम्" इति नाम उदात्तत्वम ॥ उत्पत्त्यनन्तरम अमित्रयन्तम अमित्रः शत्रुः स इवाचरन्तं जनम अपानुदः अपागमयः। अपगमय्य च देवेभ्यः उरुम विस्तीर्णं लोकम स्वर्गाख्यम अकृणोः अकार्षीः सुखनिवासाय। ॥ उशब्दः समुच्चये ॥

तृतीया ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगम्यात् परस्याः।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ ३ ॥

मृगः । न । भीमः । कुचरः । गिरिष्ठाः । पराऽवतः । आ । जगम्यात् । परस्याः ।

सृकम् । सम्ऽशाय । पविम् । इन्द्र । तिग्मम् । वि । शत्रून् । ताढि । वि । मृधः । नुदस्व ॥ ३ ॥

कुचरः कुत्सितचरणः गिरिष्ठाः पर्वतनिवासी । ॥ तिष्ठतेर्विच् प्रत्ययः ॥ । मृगो न सिंह इव भीमः भयंकरो भवति इन्द्रः । स च परस्याः परावतः अतिशयेन दूराद् द्युलोकाद् आ जगम्यात् आगच्छतु । ॥ गमेर्विधिलिङि व्यत्ययेन शपः श्लुः ॥ ॥ अथ प्रत्यक्षकृत उत्तरोर्धर्चः । आगत्य च हे इन्द्र सृकम् सरणशीलं तिग्मम् तीक्ष्णं पविम् वज्रं संशाय सम्यक् तीक्ष्णीकृत्य । ॥ शो तनूकरणे । त्यपि रूपम ॥ । शत्रून् अस्मदीयान् वैरिणः वि ताळिह तेन वज्रेण विशेषेण विविधं वा ताडय । विनाशयेत्यर्थः । ॥ तड आघाते । अस्माण्ण्यन्तात् लोटि "छन्दस्युभयथा" इति हेः आर्धधातुकत्वात् णिलोपः ॥ । तथा मृधः संग्रामोद्युक्तान् युयुत्सून् अन्यानपि शत्रून् वि नुदस्व विशेषेण प्रेरय । तिरस्कुर्वित्यर्थः ॥

## चतुर्थी ॥

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।

अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥

त्यम् । ऊं इति । सु । वाजिनम् । देवऽजूतम् । सहःऽवानम् । तरुतारम् । रथानाम् ।

अरिष्टऽनेमिम् । पृतनाऽजिम् । आशुम् । स्वस्तये । तार्क्ष्यम् । इह । आ । हुवेम ॥ १ ॥

त्यमु तं प्रसिद्धमेव तार्क्ष्यम् तृक्षपुत्रं सुपर्णम् । ॥ तृक्षशब्दो गर्गादिषु पठ्यते ॥ । इह अस्मिन् कर्मणि स्वस्तये क्षेमाय सु सुष्ठु आ हुवेम आह्वयेम । ॥ "बहुलं छन्दसि" इति ह्वयतेः संप्रसार-

णम्। "लिङ्याशिष्यङ्"। यद्वा प्रार्थनायां लिङि व्यत्ययेन शः॥ कीदृशम्। वाजिनम् अन्नवन्तं बलवन्तं वा देवजूतम् देवैः सोमाहरणाय प्रेरितम्। ॥जु इति गत्यर्थः सौत्रो धातुः। अस्मात् कर्मणि निष्ठा। "तृतीया कर्मणि" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्॥ यद्वा देवैः प्रीयमाणं तर्प्यमाणम्। ॥यद् आह यास्कः। जूतिर्गतिः प्रीतिर्वा देवजूतं देवगतं देवप्रीतं वेति [नि० १०. २८]॥ सहोवानम् सहस्वन्तं बलवन्तम् अभिभवनशक्तिमन्तं वा। ॥"छन्दसीवनिपौ" इति वनिप्॥। अत एव रथानाम् अन्यदीयानां तरुतारम् संग्रामे तरीतारम्। यद्वा रंहणशीला इमे लोका रथाः। तेषां सोमाहरणसमये शीघ्रं तरीतारम्। श्रूयते हि। "एष हीमाँल्लोकान्त्सद्यस्तरति" इति [ऐ० ब्रा० ४. २०]। ॥तरतेस्तृचि "ग्रसितस्कभित०" इत्यादिसूत्रे उडागमो निपात्यते॥। अरिष्टनेमिम्। नेमिशब्देन तद्वान् रथो लक्ष्यते। अहिंसितरथम्। यद्वा नेमिः नमनशीलम् आयुधम् अतिरस्कृतायुधम्। अथ वा उपचाराज्जनके जन्यशब्दः। अरिष्टनेमेर्मम ऋषेर्जनकम्। पृतनाजम् पृतनानां शत्रुसेनानां प्राजितारं प्रगमयितारं जेतारं वा। ॥अज गतिक्षेपणयोः। अस्मात् क्विप्। "वलादावार्धधातुके विकल्प इष्यते" इति वचनाद् वीभावाभावः। जयतेर्वा डप्रत्ययः॥। आशुं शीघ्रगामिनम्॥

पञ्चमी॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणोतु॥ १॥

त्रातारम्। इन्द्रम्। अवितारम्। इन्द्रम्। हवेऽहवे। सुऽहवम्। शूरम्। इन्द्रम्।

हुवे। नु। शक्रम्। पुरुऽहूतम्। इन्द्रम्। स्वस्ति। नः। इन्द्रः। मघऽवान्। कृणोतु॥ १॥

1 S' त्वपतान् for तेषां.

त्रातारम् रक्षकम् इन्द्रं [हुवे] ह्वयामि । अवितारम् इन्द्रम् इति पुनरुक्तिः पातृतमत्वख्यापनार्था । यद्वा त्राणं नाम उपस्थितेभ्यो भयहेतुभ्यो रक्षणम् । अवनं तु उदेष्यतां निरोध इति विशेषः । अथ वा पारमैश्वर्यलक्षणम् अवनम् । हवेहवे सर्वेषु ह्वानेषु सुहवम् ह्वातुं सुशकं शूरम् समर्थम् इन्द्रं ह्वयामि । तथा शक्रम् शक्तं सर्वत्र पुरुहूतम् इन्द्रं नु क्षिप्रं हुवे ह्वयामि । स च मघवान् धनवान् इन्द्रः स्वस्ति क्षेमम् अविनाशं नः अस्माकं कृणोतु करोतु । ॥कृवि हिंसाकरणयोश्च । "धिन्विकृण्व्योर च" इति उप्रत्ययः॥ ॥

षष्ठी ॥

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥ १ ॥

यः । अग्नौ । रुद्रः । यः । अप्ऽसु । अन्तः । यः । ओषधीः । वीरुधः । आऽविवेश ।
यः । इमा । विश्वा । भुवनानि । चक्लृपे । तस्मै । रुद्राय । नमः । अस्तु । अग्नये ॥ १ ॥

यो रुद्रः रोदयति शत्रून् इति रुद्रः । ॥"रोदेर्णिलुक् च" [उ०२,२२] इति रक् प्रत्ययः । णेर्लुक्॥ । एतन्नामा देवः अग्नौ अन्तः मध्यम् आविवेश यष्टव्यत्वेन अग्निमध्यं प्रविष्टः । यश्च अप्सु अन्तः आविवेश वरुणात्मना प्रविष्टः । ॥"ऊडिदम्०" इत्यादिना अप्शब्दाद् उत्तरस्या विभक्तेरुदात्तत्वम्॥ । यश्च वीरुधः विशेषेण विविधं वा रोहन्तीः ओषधीः ओषः फलपाको धीयते निधीयते आस्विति ताः फलपाकान्ता लताः आविवेश सोमात्मना आविष्टः । ॥वीरुध इति । विपूर्वाद् रोहतेः क्विपि "नहिवृति०" इत्यादिना उपसर्गस्य दीर्घः । हकारस्य धकारोपजनश्छान्दसः॥ । किं बहुना यो

१ P P चक्लृपे. We with J Cp.

1 S' ज्ञातृ°.

रुद्रः इमा इमानि नामरूपात्मना परिदृश्यमानानि विश्वां विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भवन्ति भूतानि। स्रष्टुम् इति शेषः। चाकॢपे समर्थो भवति। ॐकृपू सामर्थ्ये। लिटि "कृपे रो लः" इति लत्वम्। अभ्यासस्य छान्दसः सांहितिको दीर्घः ॐ। तस्मै सर्वजगत्स्रष्ट्रे सर्वं जगद् अनुप्रविष्टाय रुद्राय रुद्रात्मने अग्नये नमः नमस्कारोस्तु। यद्वा अग्नये अङ्गनादिगुणविशिष्टाय रुद्राय नमोस्तु ॥

सप्तमी ॥

अपेह्यरिरस्यरिर्वा असि।
विषे विषमपृक्था विषमिद् वा अपृक्थाः।
अहिमेवाभ्यपेहि तं जहि ॥ १ ॥

अप। इहि। अरिः। असि। अरिः। वै। असि।
विषे। विषम्। अपृक्थाः। विषम्। इत्। वै। अपृक्थाः।
अहिम्। एव। अभिऽअपेहि। तम्। जहि ॥ १ ॥

अत्र सर्पविषं संबोध्यते। हे विष अपेहि अपगच्छ अस्माद् दष्टात् पुरुषात्। यतस्त्वम् अरिः शत्रुः असि भवसि। न केवलम् अस्यैव अरिरसि वै सर्वस्य शत्रुर्भवसि खलु। अतो विषे विषवति सर्पे। ॐअर्शआदित्वाद् अच् प्रत्ययः ॐ। विषम् अपृक्थाः संपर्चय संयोजय। एतदेव पुनराह। विषमित् विषमेव अपृक्थाः संयोजय। वैशब्दः अवधारणे। विषवति सर्प एव पुनर्विषमेव संयोजयेत्यर्थः। ॐपृची संपर्के। छान्दसे लुङि "एकाचः" इति इण्निषेधः। "झलो झलि" इति सिचो लोपः ॐ। उक्तार्थमेव विशदयति। हे विष त्वं यस्य विषं भवसि तम् अहिम् आहन्तारं सर्पमेव अभ्युपेहि अभिलक्ष्य समीपं गच्छ। गत्वा च तम् अहिं जहि विनाशय ॥

अष्टमी ॥

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १ ॥

अपः । दिव्याः । अचायिषम । रसेन । सम् । अपृक्ष्महि ।
पयस्वान् । अग्ने । आ । अगमम् । तम । मा । सम् । सृज । वर्चसा ॥ १ ॥

दिव्याः दिवि भवा अपः उदकानि । ऊ"ऊडिदम्०" इति शस उदात्तत्वम ऊ । अचायिषम पूजयामि । स्नानार्थम् अभिष्टौमीत्यर्थः । ऊचायृ पूजानिशामनयोः । लुङि रूपम ऊ । तासाम् अपां रसेन समपृक्ष्महि संगताः स्मः । रसेन संसिक्ता भवाम इत्यर्थः । वचनव्यत्ययो वा । समपृक्षि संगतोस्मि । ऊपृची संपर्के । "लिङ्चिावात्मनेपदेषु" इति सिचः कित्त्वम ऊ ॥ हे अग्ने अहं त्वां पयस्वान् अन्नवान् हविर्भिस्तद्वान् आगमम् आगतोस्मि । हविषा यष्टुं तव समीपम् आगतोस्मीत्यर्थः । ऊगमेर्लुङि लृदित्वाद् अङ् ऊ । तं तादृशं त्वत्समीपं प्राप्तं मा मां वर्चसा । ऊवर्चो वृणक्तेः ऊ । तेजोविशेषेण सं सृज संयोजय । "अग्ने यत् ते दिवि वर्चः पृथिव्याम्" इति हि निगमः [ऋ० ३.२२.२] ॥

नवमी ॥

सं मांग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ २ ॥

सम् । मा । अग्ने । वर्चसा । सृज । सम् । प्रऽजया । सम् । आयुषा ।
विद्युः । मे । अस्य । देवाः । इन्द्रः । विद्यात् । सह । ऋषिऽभिः ॥ २ ॥

हे अग्ने मा मां वर्चसा तेजसा बलेन वा सं सृज संयोजय । प्रजया पुत्रादिकया सं सृज । आयुषा जीवनेन च सं सृज । किं च अस्य एनम् । ऊअन्वादेशे इदमः अशादेशोऽनुदात्तः । विभक्तिः सुब्वाद् अनुदात्ता । अतः सर्वानुदात्तं पदम ऊ । एनं मे माम । ऊकर्मार्थे षष्ठ्यौ ऊ । देवा विद्युः असौ पूत इति जानीयुः । तथा ऋषिभिः अतीन्द्रियदर्शिभिर्मुनिभिः सह इन्द्रश्च विद्यात् मां पूतं जानी-

१ P Cr विद्यात्. We with P J.

1 S' inserts मा मां after वा again.

यात्। यद्वा अस्य एतादृशस्य मे अभिमतफलं साधयितुम् इन्द्रादयो विद्युरिति ॥

दशमी ॥

इदमापः प्र वहतावद्यं च मलं च यत्।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ॥ ३ ॥

इदम्। आपः। प्र। वहत। अवद्यम्। च। मलम्। च। यत्।
यत्। च। अभिऽदुद्रोह। अनृतम्। यत्। च। शेपे। अभीरुणम् ॥ ३ ॥

हे आपः इदं पापं प्र वहत अपनयत। यद् अवद्यम् गर्ह्यं निन्दारूपं यच्च मलम् दुरितं च मयि वर्तते यच्च अनृतम् असत्यम् अभिदुद्रोह पित्रादिभ्यः अयथार्थनिर्बन्धेन द्रोहम् अकार्षम् यच्च अभीरुणम्। उत्तमर्णाय देयं वस्तु रुणम् इत्युच्यते। तद् ऋणम् अभिप्राप्य शेपे अपलापाय शपथं कृतवान् अस्मि। तत् पापम् अपनयतेति संबन्धः। ※ अभिदुद्रोहेति। द्रुह जिघांसायाम्। लिटि उत्तमणलि रूपम्। "यद्वृत्तान्नित्यम्" इति निघातनिषेधः। "तिङि चोदात्तवति" इति गतेर्निघातः। शेपे इति। शप आक्रोशे। अस्माल्लिटि उत्तमैकवचने इटि "शप उपालम्भने" इति आत्मनेपदम्। वाचा शरीरस्पर्शनम उपालम्भः। यद्वृत्तयोगाद् अनिघातः※ ॥

एकादशी ॥

एधोऽस्येधिषीय[1] समिदसि समेधिषीय।
तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ ४ ॥

एधः। असि। एधिषीय[2]। समऽइत्। असि। सम्। एधिषीय।
तेजः। असि। तेजः। मयि। धेहि ॥ ४ ॥

हे अग्ने त्वम् एधः इद्धः दीप्तः असि भवसि। ※ जिइन्धी दी-

१ So all our MSS. and vaidikas. २ P J Cr आपः. We with P. ३ K [m] °धिषीय. ४ P [2] एधिषीय. We with J Cr.

म्नौ । घञि "अवोदैधौद्म्रप्रश्रथहिमश्रथाः" इति उपधानकारलोपो निपात्यते । यतस्त्वं समिदाधानेन दीप्तो भवसि अतः । यद्वा । एध वृद्धौ इत्यस्माद् उत्पन्न एधशब्दः । हविषा प्रवृद्धो भवसि । अतोहम् एधिषीय फलेन समृद्धो भूयासम् । जिइन्धी दीप्तौ । आशीर्लिङि व्यत्ययेन नकारलोपे गुणे च रूपम् । यद्वा एध वृद्धौ इत्यस्मात् आशीर्लिङि रूपम् । उभयत्र लिङः सीयुट् । वलादिलक्षण इट् । "इटोत्" इति अदादेशः । तथा हे अग्ने समित् समिद्धः समित्संबन्धिनी वा संदीपनी शक्तिरसि । इन्धेः कर्मणि करणे वा क्विपि उपधानकारलोपः । यतः अग्ने त्वं समिदसि अतोहं समेधिषीय फलैः समिद्धः संपूर्णो भूयासम् । अत्र इन्धेः आशीर्लिङि छान्दसं रूपं प्रदर्शितं भवति । हे अग्ने त्वं तेजोसि दीप्तिः तेजःसाधनं वा भवसि । अतस्त्वं तेजस्तादृशं मयि धेहि स्थापय ॥

द्वादशी ॥

अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितम् ।
ओजो दासस्य दम्भय ॥ १ ॥

अपि । वृश्च । पुराणऽवत् । व्रततेःऽइव । गुष्पितम् ।
ओजः । दासस्य । दम्भय ॥ १ ॥

हे अग्ने त्वं पुराणवत् । व्यत्ययेन द्वितीयार्थे वतिः । पुराणान् पुरातनान् शत्रूनिव इदानींतनमपि जाररूपं शत्रुं वृश्च छिन्धि । "पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु" इति निपातनात् तुडभावः । ओव्रश्चू छेदने । तुदादित्वात् शः । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् । यद्वा । पुराणवदिति "तत्र तस्येव" इति षष्ठ्यर्थे वतिः । पुराणानां पुरातनानां शत्रूणामिव नूतनस्यापि जाररूपशत्रोर्बलं वृश्च इति बलशब्दाध्याहारेण योजना । छेदने दृष्टान्तः व्रततेरिव गुष्पितम् इति । गुष्पतिर्गुल्फतिपर्यायो द्रष्टव्यः । यथा व्रततेर्लताया गुल्फं कुञ्जं शाखासमूहं वृश्चन्ति तद्वदिति । तदेवाह

तृतीयपादेन । दासस्य उपक्षपयितुः शत्रोर्जारस्य ओजः बलं प्रजननसमर्थं वीर्यं वा दम्भय विनाशय । ‡दम्भयतिर्वधकर्मा इति यास्कः‡ ॥

त्रयोदशी ॥

वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजामहै ।
म्लापयामि भ्रजः शिभ्रं वरुणस्य व्रतेन ते ॥ २ ॥

वयम् । तत् । अस्य । सम्ऽभृतम् । वसु । इन्द्रेण । वि । भजामहै ।
म्लापयामि । भ्रजः । शिभ्रम् । वरुणस्य । व्रतेन । ते ॥ २ ॥

अस्य पुरोवर्तिनो जारस्य शत्रोः संभृतम् एकत्र संपादितं तद् वसु धनम् इन्द्रेण सहायभूतेन वयं वि भजामहै विभक्तम् अपगतं करवामहै । यद्वा तस्य धनं वयं विशेषेण भजामहै । तस्य धनस्य वयं भागिनो भवाम इत्यर्थः ॥ उत्तरार्धे जारः संबोध्यते । हे जार ते तव शुभ्रम् श्वेतवर्णं भ्रजः दीप्तम् अपत्यप्रजननसमर्थं रेतः वरुणस्य वारकस्य देवस्य व्रतेन कर्मणा म्लापयामि क्षीणं करोमि । ‡ग्लै म्लै हर्षक्षये । ण्यन्तात् पुगागमः । भ्रजतेर्दीप्त्यर्थाद् असुनि रूपं भ्रज इति‡ ॥

चतुर्दशी ॥

यथा शेपो अपायातै स्त्रीषु चासदनावयाः ।
अवस्यस्य क्रदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः ।
यदातनवत तत् तनु यदुत्तनं नि तत् तनु ॥ ३ ॥

यथा । शेपः । अपऽअयातै । स्त्रीषु । च । असत् । अनावयाः ।
अवस्यस्य । क्रदिऽवतः । शाङ्कुरस्य । निऽतोदिनः ।
यत् । आऽतनम् । अव । तत् । तनु । यत् । उत्ऽतनम् । नि । तत् ।
तनु ॥ ३ ॥

---

१ The word **वसु** may not improbably be an ancient interpretation, though all our MSS. and vaidikas have it. २ So all our MSS. and vaidikas. ३ So all our MSS. and vaidikas. See **Rw.**

शेपः पुंस्प्रजननस्य नाम । ऋवृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुक् च [उ०पा० ४,२००] इति असुन् । पुडागमः ऋ । यथा येन प्रकारेण शेपः जारस्य व्यञ्जनम् अपायातै अपगच्छेत् । भोग्यायाः पतिवत्या नार्याः सकाशाद् अपगतं भवेत् । ऋअय पय गतौ । लेटि "लेटोडाटौ" इति आडागमः । "वैतोन्यत्र" इति एकारस्य ऐकारादेशः ऋ । च यथा च स्त्रीषु भोग्यासु अनावयाः । ऋवेतेर्गत्यर्थाद् असुन् । लिङ्गव्यत्ययः ऋ । अनागच्छद् असत् भवेत् । यथा जारस्य व्यञ्जनं स्त्रीषु संसक्तं न भवेदित्यर्थः । ऋअसत् इति । अस्तेर्लेटि रूपम् ऋ । यद्वा । आवयतिः अत्तिकर्मा । ऋआङ्पूर्वाद् वेतेर्भक्षणार्थाद् असुन् ऋ । अत्र भक्षणं भोगमात्रोपलक्षणम् । यथा च जारः स्त्रीषु परकीयासु अनावयाः अभोक्ता संभोगरहितः असत् भवेत् । अयम् अर्थः । यथा जारस्य शेपो भोग्यायाः स्त्रियाः सकाशाद् अपगच्छेत् भोक्तुं न क्षमेत यथा च स्त्रीव्यञ्जने संसक्तं जारो वा संभोक्ता न भवेत् तथा कुर्विति देवः प्रार्थ्यते । कस्य शेप इति तम् आह उत्तरेणार्धेन । अवस्थस्य स्त्रीसमीपे अवतिष्ठमानस्य । ऋअवपूर्वात् तिष्ठतेः "स्थः क च" इति कप्रत्ययः ऋ । अथ वा अवः अवस्तात् स्त्रिया अधःप्रदेशे संभोगाय तिष्ठतः । ऋ"पूर्वापराधराणाम् असिपुरधवश्चैषाम्" इति अधरशब्दस्य असिप्रत्यये अव् आदेशः । अवोपसृष्टात् तिष्ठतेः असिप्रत्ययान्ताधरशब्दपूर्वाद् वा तिष्ठते रूपम् इति व्युत्पत्त्यनवधारणाद् अनवग्रहः ऋ । स्त्रीसमीपे संभोगाय तिष्ठतः क्रदिवतः । ऋक्रदेः आह्वानार्थाद् औणादिको भावे इप्रत्ययः । रेफस्य नकारोपजनश्छान्दसः ऋ । संभोगार्थम् आह्वानवतः शाङ्कुरस्य शङ्कुरिव शङ्कुः पुंव्यञ्जनं तद्वान् शङ्कुरः । ऋरो मत्वर्थीयः ऋ । शङ्कुर एव शाङ्कुरः । ऋप्रज्ञादित्वाद् अण् ऋ । पुंव्यञ्जनवतः नितोदिनः नितरां संभोगेन नारीं व्यथयतः । ऋतुद व्यथने इत्यस्माद् "बहुलम् आभीक्ष्ण्ये" इति णिनिः ऋ । एतादृशस्य जारस्य आततम् आयामवत् यत् शेपोऽस्ति तत् शेपः अव ततु अवततं

दैर्घ्यरहितं कुरु। तथा उत्तमम् ऊर्ध्वं विस्तृतम् उन्नतं यत् शेपः तत् नि तनु नितनं नीचीनं कुरु ॥

अष्टमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

श्रीमद्राजाधिराजराजपरमेश्वरश्रीवीरमहाराजराज्यधुरंधरसायणार्यविरचिते माधवीये अथर्वसंहिताभाष्ये वेदार्थप्रकाशे सप्तमकाण्डे अष्टमोनुवाकः ॥

नवमेनुवाके द्वे सूक्ते। तत्र "इन्द्रः सुत्रामा" इत्याद्ये सूक्ते आद्येन तृचेन ग्रामकामः इन्द्रं यजेत उपतिष्ठेत वा ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि उदुम्बरपलाशकर्कन्धूनां समिदाधानसभोपस्तरणहोमादीनि कर्माणि अनेन कुर्यात् ॥

सूत्रितं हि। "इन्द्रः सुत्रामेति ग्रामकामो ग्रामसांपदानामप्ययः" इति [कौ० ७. १०] ॥

तथा इन्द्रमहाख्ये उत्सवे "इन्द्रः सुत्रामा" इत्यनया आज्यं जुहुयात्। सूत्रितं हि। "अर्वाञ्चम इन्द्रम[५. ३. ११] त्रातारम [इन्द्रम][७. ९१] इन्द्र सुत्रामा[७. ९६] इत्याज्यं हुत्वा" इति [कौ० १४. ४] ॥

अग्निष्टोमे ["ध्रुवं ध्रुवेण" इति ऋचा] आसन्दीं[1] नीयमानं सोमराजम [अनुमन्त्रयेत। उक्तं वैताने।] "ध्रुवं ध्रुवेणेति राजानं राजवहनाद् आसन्द्यां नीयमानम् अनुमन्त्रयते" इति [वै० ३. ३] ॥

तथा अग्निष्टोमे आग्निमारुतशस्त्रावसाने अवनीयमानं ध्रुवपात्रस्थसोमम् अनया ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "ध्रुवं ध्रुवेणेति ध्रुवम् अवनीयमानम् अनुमन्त्रयते" इति हि [वै० ३. १३] सूत्रम् ॥

आभिचारिके कर्मणि "उदस्य श्यावौ" इति तृचेन आज्यं जुहुयात्॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि सूत्रोक्तरीत्या अनेन तृचेन मण्डूकमुखम् अपनुदेत ॥

अभिचारकर्मणि "असदन् गावः" इति ऋचा रक्तशालितण्डुलैः क्षीरौदनं[2] कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य द्वेष्याय दद्यात् ॥

दर्शपूर्णमासयोः "यद् अद्य त्वा प्रयति" इत्यष्टर्चेन संस्थितहोमान्

1 S' आसंदी. 2 S' क्षीरोदनं.

जुहुयात् । "यद् अद्य त्वा प्रयति [७.१०२] इत्यष्टर्चेन संस्थितहोमाः । मनसस्पते [७.१०२.८] इत्युत्तमं चतुर्गृहीतेन" इति [कौ०१.६] सूत्रात् ॥

उपनयनकर्मणि ब्रह्मचारिणं "समिन्द्र णः" इत्यनया अष्टर्चेनाभिमन्त्रितम् उदपात्रम् अवेक्षयेत् । "उपनयनं" प्रक्रम्य सूत्रितम् । "उदपात्रं समवेक्षयेत् समिन्द्र णः" इति [कौ०७.६] ॥

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १ ॥

इन्द्रः । सुऽत्रामा । स्वऽवान् । अवःऽभिः । सुऽमृडीकः । भवतु । विश्वऽवेदाः । बाधताम् । द्वेषः । अभयम् । नः । कृणोतु । सुऽवीर्यस्य । पतयः । स्याम ॥ १ ॥

सुत्रामा सुष्ठु त्राता । ✕"आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च" इति मनिन् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् ✕ । स्ववान् धनवान् हितात्मा वा इन्द्रः अवोभिः रक्षणैः सुमृळीकः सुसुखः सुष्ठु सुखयिता भवतु । कीदृशः । विश्ववेदाः बहुधनः विश्वं विद्वान् वा । द्वेषः । ✕द्विष अप्रीतौ । असुन् । शेर्लुक् ✕ । द्वेषांसि द्वेष्टॄन् बाधताम् हिनस्तु । अभयं च नः अस्माकं कृणोतु करोतु । वयं सुवीर्यस्य शोभनवीर्योपेतस्य धनादिकस्य पतयः स्वामिनः स्याम भूयास्म । ✕सुवीर्यस्येति । "वीरवीर्यौ च" इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ✕ ॥

द्वितीया ॥

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ १ ॥

सः । सुऽत्रामा । स्वऽवान् । इन्द्रः । अस्मत् । आरात् । चित् । द्वेषः । सनुतः । युयोतु ।

१ hBDCs and Sâyaṇa's text: स्ववे. mS स्ववं changed to स्ववां. We with AKmKRV.
२ P सुत्रा°. ३ A °वे changed to °वो. DmSCs स्ववां. Sâyaṇa's text: स्ववं. We with hB KmKRV.

तस्य। वयम्। सुऽमतौ। यज्ञियस्य। अपि। भद्रे। सौमनसे। स्याम ॥ १ ॥

सुत्रामा सुष्ठु त्राता स्ववान् धनवान् सः प्रसिद्ध इन्द्रः अस्मत् अस्मतः आराच्चित् दूरादेव द्वेषः द्वेष्टॄन्। ✕द्विषतेर्व्यत्ययेन विच् प्रत्यये गुणः। द्वितीयाबहुवचनं शस्✕। सनुतः। अन्तर्हितनामैतत्। तिरोहितान् गूढान् युयोतु पृथक् करोतु। ✕यु मिश्रणामिश्रणयोः। "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लुः✕। यज्ञियस्य यज्ञार्हस्य तस्य इन्द्रस्य सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहबुद्धौ वर्तमाना वयं तस्यैव भद्रे कल्याणे सौमनसे सुमनसो भावे अपि स्याम विषयभूता भवेम। ✕सौमनस इति। सुमनःशब्दाद् भावे अण् प्रत्ययः✕ ॥

तृतीया ॥

इन्द्रेण मन्युना वयमभि ष्याम पृतन्यतः।
घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति ॥ १ ॥

इन्द्रेण। मन्युना। वयम्। अभि। स्याम। पृतन्यतः।
घ्नन्तः। वृत्राणि। अप्रति ॥ १ ॥

इन्द्रेण सहायेन मन्युना तदीयेन कोपेन। यद्वा मन्यतिर्दीप्तिकर्मा। मन्युमता इन्द्रेण सहायेन वयं पृतन्यतः पृतनां संग्रामम् इच्छतः युयुत्सून् शत्रून् अभि ष्याम अभिभवेम। ✕"कप्यध्वरपृतनस्यर्चिलोपः" इति क्यचि पृतनाशब्दस्य अन्त्यलोपः। अभि ष्यामेति। "उपसर्गप्रादुर्भ्याम् अस्तिर्यच्परः" इति षत्वम्✕। किं कुर्वन्तः वयम्। वृत्राणि आवारकाणि पापानि। शत्रून् इत्यर्थः। अप्रति अप्रतिपक्षं घ्नन्तः यथा प्रतिपक्षशेषो न भवति तथा घ्नन्तः। निःशेषं हिंसन्त इत्यर्थः ॥

चतुर्थी ॥

ध्रुवं ध्रुवेण हविषा सोमं नयामसि।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत् ॥ १ ॥

---

१ A B $^{h}$B K स्याम. We with D K$^{m}$ R S$^{m}$ V Cs.

1 S' यत्प्रसिद्ध for स प्रसिद्ध.

ध्रुवम् । ध्रुवेण । हविषा । अव । सोमम् । नयामसि ।
यथा । नः । इन्द्रः । केवलीः । विशः । समऽमनसः । करत् ॥ १ ॥

ध्रुवेण स्थिरेण सुप्रतिष्ठितेन हविषा पुरोडाशादिना युक्तं ध्रुवम् ध्रुवग्रहस्थं सोमम् अव नयामसि अवाङ्मुखं निनयामः । यद्वा ध्रुवम् स्थिरं सोमं राजवहनाद् अनसः सकाशाद् आसन्दीं प्रति अवतारयामः । यथा येन प्रकारेण इन्द्रो नः अस्माकं विशः प्रजाः केवलीः असाधारणाः संमनसः संगतमनस्काः समानमनस्काश्च करत् करोतु । तथा अव नयामसीति संबन्धः । ॐ "केवलमामकभागधेय०" इति केवलशब्दाद् ङीप् । करत् इति । करोतेर्लेटि अडागमः ॐ ॥

पञ्चमी ॥

उदस्य श्यावौ विथुरौ गृध्रौ द्यामिव पेततुः ।
उच्छोचनप्रशोचनावस्योच्छोचनौ हृदः ॥ १ ॥

उत् । अस्य । श्यावौ । विथुरौ । गृध्रौ । द्याम्ऽइव । पेततुः ।
उच्छोचनऽप्रशोचनौ । अस्य । उतऽशोचनौ । हृदः ॥ १ ॥

अस्य मण्डूकात्मना भावितस्य शत्रोः संबन्धिनौ विथुरौ । ॐ व्यथ भयचलनयोः इत्यस्माद् औणादिकः कुरच् प्रत्ययः । छान्दसं संप्रसारणम ॐ । संततं चलनशीलौ श्यावौ श्याववर्णौ ओष्ठौ उत्पेततुः उत्पतताम् उद्गच्छताम् । मण्डूकमुखापनोदनेन शत्रोरोष्ठौ विदारितौ भवताम् इत्यर्थः । यद्वा । ॐ श्यैङ् गतौ इत्यस्माद् उत्पन्नः श्यावशब्दः ॐ । श्यावौ परस्परसंसक्तौ शत्रुरूपेण भावितस्य मण्डूकस्य प्राणापानौ विथुरौ व्यथनशीलौ भयवन्तौ सन्तौ उत्पताम् इति । श्याववर्णौ वा प्राणापानौ । तौ हि वायोर्वृत्तिभेदौ । वायोर्हि धूम्रवर्णत्वं मन्त्रशास्त्रप्रसिद्धम् । उद्गमने दृष्टान्तः । गृध्रौ द्यामिवेति । यथा गृध्रौ तार्क्ष्यौ द्याम् दिवम् उत्पततः । ॐ "औतोमशसोः" इति द्योशब्दस्य अमि परत आकारादेशः । पेततुरिति । छान्दसो लिट् ॐ । किं च उच्छोचनप्रशोचनौ । उच्छोचयति ऊर्ध्वम् उत्कृष्य उत्कृष्टं वा शोकं

करोतीति उच्छोचनः। प्रकर्षेण शोचयतीति प्रशोचनः। एतत्संज्ञकौ मृत्युदूतौ अस्य पुरोवर्तिमण्डूकरूपेण भावितस्य शत्रोः हृदः हृदयस्य उच्छोचनौ उत्कर्षेण शोचयितारौ। भवत इति शेषः। शोचयतेर्नन्द्यादित्वात् ल्युः ॥

षष्ठी ॥

अहमेनावुदतिष्ठिपं गावौ श्रान्तसदाविव।
कुर्कुराविव कूजन्तावुदवन्तौ वृकाविव ॥ २ ॥

अहम्। एनौ। उत्। अतिष्ठिपम्। गावौ। श्रान्तसदौऽइव।
कुर्कुरौऽइव। कूजन्तौ। उत्ऽअवन्तौ। वृकौऽइव ॥ २ ॥

एनौ पूर्वमन्त्रोक्तौ श्यावौ ओष्ठौ प्राणापानौ वा शत्रुसंबन्धिनौ। इदंशब्दस्य अन्वादेशे "द्वितीयाटौस्स्वेनः" इति एनादेशः अनुदात्तः। अहं प्रयोक्ता उदतिष्ठिपम् उत्थापयामि उन्नमयामि। बलान्निःसारयामीत्यर्थः। तिष्ठतेर्ण्यन्तात् लुङि चङि "तिष्ठतेरित्" इति इत्त्वम्। बलात्कारेण उत्थापने दृष्टान्तत्रयं गावावित्यादि। यथा श्रान्तसदौ श्रान्तौ श्रमवन्तौ सीदन्तौ गोष्ठे श्रमेण निषीदन्तौ गावौ वालदण्डमूलनितोदनादिना बलाद् उत्थापयन्ति। यथा च कूजन्तौ ध्वनिं कुर्वन्तौ कुर्कुरौ श्वानौ पाषाणप्रहरणादिना बलाद् अपसारयन्ति। यथा च वृकौ। अरण्यश्वा वृक इत्युच्यते। उदवन्तौ गोयूथमध्ये वत्सान् उद्गृह्य गच्छन्तौ धावन्तौ वृकौ यथा गोपालाः बलाद् यूथाद् अपसारयन्ति तद्वत्। ओष्ठयोः प्राणापानयोर्वा द्वित्वाद् द्वित्वसंख्यावन्तौ गावौ श्वानौ वृकौ दृष्टान्तत्वेन उपन्यस्तौ। अवतेर्धातो रक्षणाद्यनेकार्थस्मरणाद् अत्र गत्यर्थः अवतिः ॥

सप्तमी ॥

आतोदिनौ नितोदिनावथो संतोदिनावुत।

---

१ K अतो°. K अतो°. R आतो°.

1 S' inserts यथा again before श्रान्तौ. 2 S' °दंडवलांमूलनि°.

अपि नह्याम्यस्य मेढ्रं य इतः स्त्री पुमान् जभार ॥ ३ ॥
आऽतोदिनौ । निऽतोदिनौ । अथो इति । समऽतोदिनौ । उत ।
अपि । नह्यामि । अस्य । मेढ्रम् । यः । इतः । स्त्री । पुमान् । ज-
भार ॥ ३ ॥

अत्र शत्रोरोष्ठौ प्राणापानौ वा उत्क्रमणवेलायाम् एतदेतदवस्थापन्नौ करोतीति पूर्वार्धेन उच्यते । आतोदिनौ सर्वतो व्यथनशीलौ शत्रोः सर्वावयवसंक्लेशकारिणौ । उत्थापयामीति पूर्वमन्त्रोक्तक्रियानुषङ्गः । तथा नितोदिनौ नितरां निकृष्टं वा व्यथयन्तौ अतिकष्टं बाधाकारिणौ । अथो अनन्तरम् उत अपि च संतोदिनौ संभूय व्यथाकारिणौ । उद्गमयामीति संबन्धः । किं च यः स्त्री पुमान् वा द्वेष्यः इतः अस्मदीयात् स्थानात् जभार जहार । आस्माकीनं धनम् इति शेषः । यद्वा इतः अस्मिन् प्रदेशे जहार प्रहृतवान् अस्मान् बाधितवान् । अस्य शत्रोः मेढ्रम् । मर्मस्थानोपलक्षणम् एतत् । अपि नह्यामि बध्नामि । यथा मर्मस्थानबन्धनेन मरिष्यति तथा करोमीत्यर्थः ॥

अष्टमी ॥

असदन् गावः सदनेऽपद्यत वसतिं वयः ।
आस्थाने पर्वता अस्युः स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम ॥ १ ॥
असदन् । गावः । सदने । अपद्यत । वसतिम् । वयः ।
आऽस्थाने । पर्वताः । अस्युः । स्थाम्नि । वृक्कौ । अतिष्ठिपम ॥ १ ॥

सदने । सीदन्ति अत्रेति सदनम् । ☒ अधिकरणे ल्युट् ☒ । यथा गावः गोष्ठे असदन् सीदन्ति निषीदन्ति । ☒ सदेश्छान्दसे लुङि ल्रदित्त्वात् ह्लेः अङ् आदेशः ☒ । यथा च वयः पक्षी वसतिम् स्वकीयं नीडम् अपद्यत पतति गच्छति । प्रविशतीत्यर्थः । ☒ पतेर्लुङि

१ A B K K R V omit the visarga. We with D S C s. ३ R मांज°. We with A B B D K K S V C s. ३ A अस्थुस्था°. ४ D वृकावं°. ५ P अपतत्, P अपत्तत्. We with J C r.

1 S' सदेर्लदित्वाच्छांदसे लुङि च्लेरङादेशः.

पूर्ववत् अङ्। "पतः पुम्" इति पुम् आगमः॥ । यथा च पर्वताः गिरयः स्थाने स्वकीये आस्युः आतिष्ठन्ति । ॥तिष्ठतेर्लुङि "गातिस्था०" इति सिचो लुक्। "आतः" इति झेर्जुस्॥ । यथा गवादिकाः स्वेस्वे सदने सुखेन निवसन्ति तथा स्थाम्नि । तिष्ठन्ति अत्रेति स्थाम गृहम् । ॥तिष्ठतेः अधिकरणे मनिन् प्रत्ययः॥ । शत्रोर्गृहे वृकौ वृकश्च वृकी च एतौ । ॥"पुमान् स्त्रिया" इति पुंस एकशेषः॥ । दम्पतिभूतौ वृकौ अतिष्ठिपम् स्थापयामि निदधामि । शत्रुगृहं वृकावासस्थानं करोमि । आगन्तुकवृकप्रवेशशङ्कानिरासाय वृकाविति स्त्रीपुंसौ निर्दिष्टौ यथा वृकः स्त्रीपुत्रादिभिः शत्रोर्गृहे वर्तते तथा करोमीति । अनेन शत्रुं निःशेषं हत्वा तद्गृहम् अरण्यं करोमीत्यर्थ उक्तो भवति ॥

नवमी ॥

यद॒द्य त्वा॑ प्रय॒ति॑ य॒ज्ञे अ॒स्मिन् होत॑श्चिकित्वन्वृणीमहीह ।
ध्रु॒वमया॑ ध्रु॒वमु॒ता शं॑विष्ठ प्रवि॒द्वान् य॒ज्ञमुप॑ याहि॒ सोम॑म् ॥ १ ॥

यत्। अ॒द्य। त्वा॒। प्र॒ऽय॒ति॑। य॒ज्ञे। अ॒स्मिन्। होतः॑। चि॒कि॒त्व॒न्। अवृ॑णीमहि। इ॒ह॒।

ध्रु॒वम्। अयः॑। ध्रु॒वम्। उ॒त। श॒वि॒ष्ठ॒। प्र॒ऽवि॒द्वान्। य॒ज्ञम्। उप॑। याहि॑। सोम॑म् ॥ १ ॥

हे होतः देवानाम् आह्वातः यष्टर्वा । ॥ह्वयतेर्जुहोतेर्वा रूपम् एतत्॥ । हे चिकित्वन् ज्ञानवन् । ॥कित ज्ञाने । अस्माद् यङ्लुगन्तात् मतुप् । अभ्यासस्य गुणाभावश्छान्दसः । "नामन्त्रिते समानाधिकरणे०" इति पूर्वामन्त्रितस्य अविद्यमानवत्त्वनिषेधेन पदात् परत्वात् सर्वानुदात्तत्वम्॥ । एवंगुणक हे अग्ने त्वा त्वाम् अद्य इदानीं प्रयति प्रवर्तमाने । विच्छेदेन विना क्रियमाण इत्यर्थः । अस्मिन् य-

१ BK प्रयती. २ PJ °यती. We with PCp.

1 S' वृकश्च वृकाक्यैतौ.

ज्ञे इह अस्मिन् प्रयोजने यत् यस्माद् अवृणीमहि होतृत्वेन वयं वृतवन्तः । ※वृङ् संभक्तौ । क्र्यादित्वात् श्ना प्रत्ययः । यङ्वृत्तयोगाद् अनिघातः । प्रयतीति । प्रपूर्वाद् एतेः शतरि यणादेशः । "शतुरनुमो नद्यजादी" इति सप्तम्या उदात्तत्वम※ । यस्माद् वयं होतृत्वेन त्वां वृतवन्तः तस्माद् ध्रुवम् सर्वथा अयः अयाक्षीः यज । यष्टव्यान् देवान् इति शेषः । "ऋधग् अयाड् ऋधग् उताशमिष्ठाः" इति तैत्तिरीयश्रुतेः [तै० सं० १. ४. ४४. २] । ※यजतेः "छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति लङि छान्दसी रूपसिद्धिः※ । उत अपि च ध्रुवम् अँशमिष्ठाः शमय । कर्मणो वैगुण्यम् इति शेषः । किं च प्रविद्वान् प्रकर्षेण जानन् सोमम् सोमवन्तं यज्ञम् उप याहि समीपम् आगच्छ । यद्वा यज्ञं प्रविद्वान् अस्मदभिमतफलोपायत्वेन प्रजानन् सोमम् अस्माभिर्दीयमानं हविः उप याहि उपगच्छेति ॥ अथ वा यत् यस्मात् त्वां वृतवन्तः तस्माद् यज्ञम् उप याहि । आगत्य च ध्रुवम् अयाक्षीः यष्टव्यान् देवान् ध्रुवम् अँशमिष्ठाः यज्ञं संस्थापितवान् असीति ॥ ※भूतार्थे एव लुङ् प्रत्ययः※ ॥

दशमी ॥

समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥ २ ॥

सम । इन्द्र । नः । मनसा । नेष । गोभिः । सम । सूरिऽभिः । हरिऽवन् । सम । स्वस्त्या ।

सम । ब्रह्मणा[3] । देवऽहितम । यत । अस्ति । सम । देवानाम । सुऽमतौ । यज्ञियानाम ॥ २ ॥

हे इन्द्र नः अस्मान् मनसा गोभिः शब्दैः स्तुतिलक्षणैश्च सं नेष संनय संयोजय । मनस्विनो वाग्मिनश्च कुरु । त्वां स्तोतुम् इत्यर्थः ।

१ R णा. Sâyaṇa's reading of the text is also णा. २ K स्वस्त्या. ३ B B D K K R S V Cs ब्रह्मणा. P P J CP ब्रह्मणाम्. We with A.

यद्वा गोभिः पशुभिः संनय। ※नयतेर्लोटि शप्। "सिब्बहुलम०" इति सिप्। "अतो हेः" इति हेर्लोपः※। किं च हे हरिवः। हरिसंज्ञकौ अश्वौ। ※हरी इन्द्रस्येति यास्कवचनात् [निघ० १. १५]※। तद्वन् हे इन्द्र सूरिभिः विद्वद्भिः। संनयेति क्रियानुषङ्गः। स्वस्त्या अविनाशेन संनय। किं च ब्रह्मणा वेदेन वेदार्थज्ञानेन तदर्थानुष्ठानेन वा संनय। यच्च देवहितम् देवेभ्यो हितम् अस्ति अग्निहोत्रादि कर्म तेनापि संनय। ※"क्ते च" इति चतुर्थ्यन्तपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम※। तथा यज्ञियानाम् यज्ञार्हाणां देवानाम् अग्न्यादीनां सुमतौ शोभनायां बुद्धौ अनुग्रहात्मिकायां संनय अस्मान्। ※सुमतौ इति। "मन्त्रे वृषेष०" इति क्तिन उदात्तत्वम्। "मन्क्तिन्व्याख्यान०" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम※॥

[इति] नवमेनुवाके प्रथमं सूक्तम्॥

दर्शपूर्णमासयोः संस्थितहोमेषु "यान् आवहः" इत्यादीनां षण्णाम् ऋचाम् "यदद्य त्वा प्रयति" इत्यत्र विनियोग उक्तः॥

तथा श्रौतदर्शपूर्णमासयोः "यान् आवहः" इति षड्ऋचेन संस्थितहोमान् जुहुयात्। उक्तं वैताने। "यान् आवह इति षड्भिः संस्थितहोमान् जुहोति मनसस्पत इत्यासाम् उत्तमा" इति [वै० १. ४]॥

दर्शपूर्णमासयोः प्रहियमाणप्रस्तरानुमन्त्रणं "सं बर्हिरक्तम्" इत्यनया ब्रह्मा कुर्यात्। "सं बर्हिरक्तम् इति प्रस्तरं प्रहियमाणम्" इति [वै० १. ४]॥

स्मार्तदर्शपूर्णमासयोः "सं बर्हिरक्तम्" इत्यनया बर्हिःप्रहरणं कुर्यात्। "बर्हिराज्यशेषेणानक्ति" इति प्रक्रम्य सूत्रितम्। "सं बर्हिरक्तम् इत्यनुप्रहरति" इति [कौ० १. ६]॥

श्रौतदर्शपूर्णमासयोः वेदिं परिस्तृणन्तम् अध्वर्युम् "परि स्तृणीहि" इत्यनया ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत। "परि स्तृणीहीति वेदिं परिस्तृणन्तम्" इति वैतानसूत्रात् [वै० १. २]॥

दुःस्वप्नदर्शननिमित्तदोषपरिहारार्थम् "पर्यावर्ते" इति ऋचं जपन् पर्यावर्तेत॥

स्वप्ने अन्नभक्षणनिमित्तदोषपरिहारार्थं "यत् स्वप्ने" इति ऋचं जपेत् ॥

सूत्रितं हि । "पर्यावर्ते[७.१०५] इति पर्यावर्तते । यत् स्वप्ने[७.१०६] इत्यश्नात्यवेक्षते" इति [कौ० ५.१०] ॥

स्वस्त्ययनार्थं "नमस्कृत्य" इत्यनया मान्त्रवर्णिकीभ्यो देवताभ्यो नमस्कारम् उपस्थानं वा कुर्यात् । "नमस्कृत्येति मन्त्रोक्तम्" इति हि सूत्रम् [कौ० ७.३] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यानावह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ॥ ३ ॥

यान् । आऽअवहः । उशतः । देव । देवान् । तान् । प्र । ईरय । स्वे । अग्ने । सधऽस्थे ।
जक्षिऽवांसः । पपिऽवांसः । मधूनि । अस्मै । धत्त । वसवः । वसूनि ॥ ३ ॥

हे देव दीप्यमान हे अग्ने त्वम् उशतः हवींषि कामयमानान् यान् देवान् आवहः आवाहितवान् आहूतवान् असि । वहेर्लङि यङ्लुत्तयोगाद् अनिघातः । उशत इति । वशेः शतरि अदादित्वात् शपो लुक् । "ग्रहिज्या०" इत्यादिना संप्रसारणम् । "शतुरनुमः०" इति द्वितीयाया उदात्तत्वम् । तान् आहूतान् देवान् स्वे स्वकीये सधस्थे सहस्थाने यत्र ते सह तिष्ठन्ति तत्र प्रेरय प्रस्थापय । "सुपि स्थः" इति तिष्ठतेः अधिकरणार्थेपि को द्रष्टव्यः । "सध मादस्थयोः०" इति सहस्य सधादेशः ॥ ते देवाः संबोध्यन्ते । जक्षिवांसः पुरोडाशादीन् भक्षितवन्तः मधूनि मधुररसोपेतानि आज्यादीनि पपिवांसः पीतवन्तः हे वसवः लोकानां वासयितारः यूयं वसूनि धनानि अस्मै यजमानाय धत्त । प्रयच्छतेत्यर्थः । जक्षिवांस इति । लिडादेशे क्वसौ "लिट्यन्यतरस्याम्" इति अदेर्घस्लादेशः । "गमहन०" इति उपधालोपः । पपिवांस इत्यत्रापि लिटः क्वसुः । उभयत्र "वस्वे-

१ P अस्मै.

1 Observe that Sayaṇa takes जक्षिवांसः and पपिवांसः as vocatives.

काजाद्यसाम्" इति इडागमः। वसव इति। "आमन्त्रितस्य च" इति आष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वम् ॥

द्वितीया ॥

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ॥ ४ ॥

सुऽगा। वः। देवाः। सदना। अकर्म। ये। आऽजग्म। सवने। मा। जुषाणाः।
वहमानाः। भरमाणाः। स्वा। वसूनि। वसुम्। घर्मम्। दिवम्। आ। रोहत। अनु ॥ ४ ॥

हे देवाः वः युष्माकं सदना सदनानि स्थानानि सुगा सुगानि सुगमनानि सुखेन गन्तव्यानि अकर्म अकार्ष्म। सुपूर्वाद् गमेः "गमश्च" इति डः। अत्र सदनेत्यत्रापि "शेश्छन्दसि०" इति शेर्लोपः। अकर्मेति। करोतेः "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्। "छन्दस्युभयथा" इति तिङ आर्धधातुकत्वेन ङित्त्वाभावाद् गुणः। देवा विशेष्यन्ते। जुषाणाः हवींषि सेवमानाः तैः प्रीयमाणा वा ये यूयम् इमाँ इमानि सवनाँ सवनानि आजग्म आगताः स्थ। गमेर्लिटि मध्यमबहुवचने "गमहन०" इति उपधालोपः। यतः युष्मदर्थं सदनानि अकार्ष्म अतः यूयं स्वा स्वानि स्वकीयानि वसूनि धनानि वहमानाः प्रापयन्तः अस्मान्। तथा भरमाणाः पोषयन्तः अस्मदर्थं धनानि हस्तैर्धारयन्तो वा वसुम् सर्वस्य लोकस्य वासयितारं घर्मम् आदित्यम् आ रोहत आतिष्ठत। अनु अनन्तरं दिवम् द्युलोकम् आ रोहत आतिष्ठत। रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे। अस्मभ्यं धनानि दत्त्वा स्वीयं स्थानं गच्छतेत्यर्थः ॥

१ All our MSS. and vaidikas omit the visarga, except Cp which we follow. २ P P² J omit the visarga. We with Cp.

1 Sâyaṇa's text in S' has सवनेमा, i.e. सवना इमा.

तृतीया ॥

यज्ञं यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ । स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥ ५ ॥

यज्ञं । यज्ञम । गच्छ । यज्ञऽपतिम । गच्छ ॥ स्वाम । योनिम । गच्छ । स्वाहा ॥ ५ ॥

हे यज्ञ त्वं यज्ञम यष्टव्यं परमात्मानं विष्णुं गच्छ येन त्वं प्रतिष्ठितो भवेः । अनन्तरं यज्ञपतिम यज्ञस्य पालयितारं यजमानं गच्छ फलप्रदानेन प्राप्नुहि । ॥ "पत्यावैश्वर्ये" इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम ॥ । अनन्तरं स्वाम आत्मीयां योनिं गच्छ । योनिः कारणम सर्वजगत्कारणभूता पारमेश्वरी शक्तिः । तां प्राप्नुहि । स्वाहा स्वाहुतम इदम आज्यं तवास्त्विति ॥

चतुर्थी ॥

एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः । सुवीर्यः स्वाहा ॥ ६ ॥

एषः । ते । यज्ञः । यज्ञऽपते । सहऽसूक्तवाकः ॥ सुऽवीर्यः । स्वाहा ॥ ६ ॥

हे यज्ञपते यजमान एष यज्ञः सहसूक्तवाकः । सूक्तं वक्तीति सूक्तवाकः यथाक्रमं यष्टव्यदेवतानामकीर्तनपरः प्रैषः । तत्सहित एष यज्ञः । अथ वा सूक्तवचनसहितः विविधस्तोत्रकः सुवीर्यः सुबलः शोभनपुत्रपौत्रादिकर्मयुक्तो वा ते तव । श्रेयसे कल्पताम इत्यर्थः । स्वाहा स्वाहुतम इदम आज्यम अग्नयेस्तु ॥

पञ्चमी ॥

वषड्हुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ॥ ७ ॥

वषट् । हुतेभ्यः । वषट् । अहुतेभ्यः ॥ देवाः । गातुऽविदः । गातुम । वित्त्वा । गातुम । इत ॥ ७ ॥

हुतेभ्यः इष्टेभ्यो देवेभ्यः वषट् । प्रदानवाची वषट् शब्दः । इदम आज्यं हुतम अस्तु । अहुतेभ्यः पूर्वम अनिष्टेभ्यो देवेभ्यो वषट् इदम आज्यं वषट् हुतम अस्तु । अस्य संस्थितहोमत्वात् पूर्वं हविःप्रदानेन प्रीणि-

ता अपि देवा हूयन्ते किल किम् उत पूर्वम् अहुता देवा इत्युभयत्र वषट्कारप्रयोगः। ॥ "नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च" इति हुताहुतशब्दाभ्यां चतुर्थी ॥। हे गातुविदः गातुर्मार्गस्तं जानाना हे देवाः यूयम्। ॥ "विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम्" इति पूर्वस्यामन्त्रितस्य अविद्यमानवनिषेधाद् द्वितीयस्य निघातः ॥। गातुम् मार्गं वित्त्वा लब्ध्वा अस्मदीयं यज्ञं प्रति आगमनकाले येन मार्गेण आगतास्तमेव मार्गं लब्ध्वा गातुम् इत समाप्ते कर्मणि पुनः स्वकीयगृहगमनाय तमेव मार्गं तेनैव मार्गेण प्रतिनिवर्तध्वम्। ॥ वित्त्वेति। विदेर्लाभार्थात् क्त्वाप्रत्यये "एकाचः०" इति इट्प्रतिषेधः। ज्ञानार्थात तु निषेधाभावाद् इड्वत्येव। तस्मादेव वा "अनित्यम् आगमशासनम्" इति इडभावः। गातुं वित्त्वा विदित्वा ज्ञात्वेति तत्रार्थः। इतेति। इण् गतौ। लोटि मध्यमबहुवचने अदादित्वात् शपो लुक् ॥॥

षष्ठी ॥

मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम्।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ॥ ८ ॥

मनसः। पते। इमम्। नः। दिवि। देवेषु। यज्ञम्।
स्वाहा। दिवि। स्वाहा। पृथिव्याम्। स्वाहा। अन्तरिक्षे। स्वाहा। वाते।
धाम्। स्वाहा ॥ ८ ॥

हे मनसस्पते सर्वभूतानाम् अन्तरात्मतया मनसोपि पते हे देव। ॥ "सुबामन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे" इति मनस इति शब्दस्य आमन्त्रितानुप्रवेशाद् मनसस्पत इति षष्ठ्यामन्त्रितसमुदायस्य "आमन्त्रितस्य च" इति षाष्ठिकम् आद्युदात्तत्वम् ॥। नः अस्मदीयम् इमं यज्ञं दिवि द्युलोके वर्तमानेषु देवेषु अग्न्यादिषु धाम्। ॥ पुरुषव्यत्ययः ॥। धाः धेहि स्थापय। इति स्वाहा सरस्वती। अब्रवीद् इत्यर्थः। मन्त्रमध्यवर्तिनां स्वाहाशब्दानां प्रदानार्थत्वाभावात्। वस्तुतश्च

1 S' तत्रमार्गं तवैव मार्गता. 2 S' समुदायषष्ठ्या°.

स्वाहाशब्दस्य वाक्कर्तृकवचनरूपेयं निरुक्तत्वात् । स्वा स्वकीया प्रजापति-संबन्धिनी वाग् आह अब्रवीत् इति स्वाहाशब्दस्य अर्थ उक्तः । तथा च तैत्तिरीयके वाक्प्रजापत्योरुक्तिप्रत्युक्तिरूपं वाक्यम् एवं श्रूयते । "तं वाग् "अभ्यवदज्जुहुधीति । कंस्वम् इत्यब्रवीत् । स्वैव ते वाग् इत्यब्रवीत् । सो-"जुहोत् स्वाहेति । तत् स्वाहाकारस्य जन्म" इति [तै० ब्रा० २.१.२.३] । एवम् उत्तरे त्रयः स्वाहाशब्दा व्याख्येयाः । अनन्तरं द्युपृथिव्यन्तरिक्षलो-केषु अस्मदीयं यज्ञं धाः स्थापयेति सरस्वत्याहेति । ततः इमम् अस्मदीयं यज्ञं वाते सर्वकर्माधारे धाः स्थापय । यस्माद् अयं यज्ञः प्रयुक्तः तत्रैव वाते स्थापय । "वाताद् अध्वर्युर्यज्ञं प्रयुङ्क्ते" इति श्रुतेः[तै० ब्रा० ३.३.९.१२] । "मनसस्पतिना देवेन वातात्[3] यज्ञः प्रयुज्यताम्" इति च [तै० ब्रा० ३.७.४.१] । स्वाहा इदम् आज्यं स्वाहुतम् अस्तु इति अन्तिमस्वा-हाशब्दस्य प्रदानार्थता । ॐ दिवीति । "ऊडिदम्०" इति सप्तम्या उदात्तत्वम् । पृथिव्याम् इति । "उदात्तयणो हल्पूर्वात्" इति विभक्तेरु-दात्तत्वम् । धाम् इति । दधातेर्लेटि "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् । "तिङां तिङो भवन्ति" इति सिपो मिबादेशः । "इतश्च लो-पः परस्मैपदेषु" इति इकारलोपः ॐ ॥

सप्तमी ॥

सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन समिन्द्रेण वसुना सं मरुद्भिः ।
सं देवैर्विश्वदेवेभिरक्तमिन्द्रं गच्छतु हविः स्वाहा ॥ १ ॥

सम् । बर्हिः । अक्तम् । हविषा । घृतेन । सम् । इन्द्रेण । वसुना । सम् । मरुत्ऽभिः ।

सम् । देवैः । विश्वऽदेवेभिः । अक्तम् । इन्द्रम् । गच्छतु । हविः । स्वाहा ॥ १ ॥

बर्हिः स्रुगाद्यासादनस्थानभूतं हविषा पुरोडाशादिना घृतेन आज्येन च समक्तम् सम्यग् अभ्यक्तम् अभूत् । ॐ अञ्जू व्यक्तिमृक्षणादिषु । कर्मणि निष्ठा ॐ । तथा वसुना वासकेन वस्वाख्यदेवसहितेन वा इन्द्रे-

1 So S'. सोब्रवीत् कस्त्वमसीति is the reading of the vaidikas. 2 S' यज्ञं. 3 S' स्याताद्यज्ञं for वाताद् यज्ञः.

ण समक्तम् इत्यनुषङ्गः। मरुद्भिश्च समक्तम्। तथा विश्वेदेवेभिः विश्वदेवैः एतत्संज्ञकैः देवैः[1] गणदेवैः समक्तम् अभूत्। तादृशं सर्वदेवाधिष्ठितं हविरासादनाधारभूतं बर्हिः इन्द्रम् सर्वदेवप्रमुखं गच्छतु प्राप्नोतु। स्वाहा इदं बर्हिः स्वाहुतम् अस्तु॥

अष्टमी॥

परि स्तृणीहि परि धेहि वेदिं मा जामिं मोषीरमुया शयानाम्।
होतृषदनं हरितं हिरण्ययं निष्का एते यजमानस्य लोके॥ १॥

परि। स्तृणीहि। परि। धेहि। वेदिम्। मा। जामिम्। मोषीः। अमुया। शयानाम्।

होतृऽसदनम्। हरितम्। हिरण्ययम्। निष्काः। एते। यजमानस्य। लोके॥ १॥

अत्र आस्तीर्यमाणो दर्भस्तम्बः संबोध्यते। हे दर्भस्तम्ब परि स्तृणीहि वेदिं परित आस्तीर्णो भव आच्छादय वा। ✕स्तृञ् छादने। क्र्यादिः✕। एतदेवाह। वेदिं परि धेहि वेदिम् आच्छादय। अमुया अनया वेद्या सह शयानाम् तिष्ठन्तीम्। वेद्या यजमानसंमितत्वात् तत्समानाकृतित्वं यजमानस्यास्तीति शयानाम् इत्युक्तम्। ✕शीङः शानच्। लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः✕। अथ वा। ✕सप्तम्या याजादेशः✕। अमुष्यां वेद्याम्। ✕विषयसप्तमी✕। वेदिविषये शयानाम्। परिचरन्तीम् इत्यर्थः। यद्वा। ✕द्वितीयाया याजादेशः✕। अमूं वेदिं शयानाम्। उपवसन्तीम् इत्यर्थः। जामिम् जायत इति जामिः प्रजा तां बन्धुभूतां यजमानं मा मोषीः। मा हिंसीरित्यर्थः। ✕मुष स्तेये। "माङि लुङ्"✕। कीदृशो दर्भः संबोधितः तं दर्शयति। होतृषदनम्। ✕होता सीदति अत्रेति अधिकरणे ल्युट्✕। दर्भरूपवस्त्वपेक्षया नपुंसकत्वम्। दर्भकदम्बकापेक्षया वा। हरितम् हरिद्वर्णं हिरण्ययम् हिरण्मयं शोभनवर्णं

1 S' एतत्संज्ञकैर्देवगणदेवैः.

हितरमणीयं वा एतादृशम् हे दर्भरूप वस्तु । त्वं परि स्तृणीहीति पूर्वत्र संबन्धः ॥ अथ परोक्षकृतश्चरमः पादः । एते आस्तीर्यमाणा दर्भाः यजमानस्य लोके पुण्यभोगस्थाने निष्काः सुवर्णमया अलंकारा भवन्तु ॥

नवमी ॥

पर्यावर्ते दुष्वप्न्यात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥ १ ॥

परिऽआवर्ते । दुःऽस्वप्न्यात् । पापात् । स्वप्न्यात् । अभूत्याः ।
ब्रह्म । अहम् । अन्तरम् । कृण्वे । परा । स्वप्नऽमुखाः । शुचः ॥ १ ॥

दुष्वप्न्यात् दुष्टस्वप्नप्रभवात् पापात् पर्यावर्ते प्रतिनिवृत्तो भवामि । अपसरामीत्यर्थः । ✕वृतु वर्तने । लटि उत्तमे रूपम् ✕ । तथा स्वप्नात् । पापाद् इति अनुषज्यते । दुष्टात् स्वप्नात् । जनिताया इति शेषः । अभूत्याः असंपदः अश्रेयसः । पर्यावर्त इति संबन्धः । किं च अहं ब्रह्म मन्त्रम् अन्तरम् दुःस्वप्ननिवारकं व्यवधायकं कृण्वे कुर्वे । यथा दुःस्वप्नजनितं दुरितं मां न प्राप्नोति तथा तन्निर्हरणसमर्थं मन्त्रसंघं कवचं करोमीत्यर्थः । तेन व्यवधिकरणेन स्वप्नमुखाः । मुखशब्द उपाये वर्तते स्वप्नद्वारिकाः दुःस्वप्ननिबन्धनाः शुचः शोकाः परा । भवन्तु इति क्रियाध्याहारः ॥

दशमी ॥

यत् स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा ॥ १ ॥

यत् । स्वप्ने । अन्नम् । अश्नामि । न । प्रातः । अधिऽगम्यते ।
सर्वम् । तत् । अस्तु । मे । शिवम् । नहि । तत् । दृश्यते । दिवा ॥ १ ॥

यद् अन्नं स्वप्ने अश्नामि भक्षयामि । ✕अश भोजने । क्त्या-

१ B B̈ K K̈ R S̈ परा:. We with A D P P̈ J V C Cr.

1 S' °धारकं.

दिः ✕ । तद् अन्नं प्रातर्नाधिगम्यते न दृश्यते । हि यस्मात् तद् अन्नं दिवा अहनि न दृश्यते अतः तत् स्वप्ने अन्नभोजनं सर्वम् अन्नभोजनसदृशम् अखाद्यभक्षणादिकं मे मम शिवम् मङ्गलकारि अस्तु भवतु । स्वप्ने अन्नभोजनेन यद् अरिष्टं भवति तद् अनेन मन्त्रजपेन शाम्यतु प्रत्युत कल्याणकारि भवत्वित्यर्थः ॥

एकादशी ॥

नमस्कृत्य द्यावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।
मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन् मा मां हिंसिषुरीश्वराः ॥ १ ॥

नमःऽकृत्य । द्यावापृथिवीभ्याम् । अन्तरिक्षाय । मृत्यवे ।
मेक्षामि । ऊर्ध्वः । तिष्ठन् । मा । मा । हिंसिषुः । ईश्वराः ॥ १ ॥

द्यावापृथिव्यादिभ्यो नमस्कृत्य नमस्कारं कृत्वा तिष्ठन् आसीनोहम् [ऊर्ध्वः] ऊर्ध्ववत् ऊर्ध्वमुखो मैष्यामि । ऊर्ध्वलोकं मा गमिष्यामीत्यर्थः । यद्वा नमस्कारेण ऊर्ध्वो मा गमिष्यामि । किं तु तिष्ठन् इह लोके चिरकालावस्थायी । भवामीति शेषः । ✕ मैष्यामीति । "अमानोवाः प्रतिषेधे" इति प्रतिषेधवाचिनो मा इति निपातस्य ग्रहणं न तु ङितो माशब्दस्य । यदि माऽस्तर्हि "माङि लुङ्" स्यात् । तस्य सर्वलकाराणाम् अपवादत्वात् । एतेर्लेट् । "स्यतासी०" इति स्यः ✕ । ईश्वराः स्वामिनः द्युपृथिव्यन्तरिक्षदेवता अग्निवायुसूर्या मृत्युश्च मा मां मा हिंसिषुः मा वधिषुः । चिरकालम् इह लोके माम् अवस्थापयन्तु इत्यर्थः ॥

नवमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति माधवीये अथर्वसंहिताभाष्ये वेदार्थप्रकाशे
सप्तमकाण्डे नवमोनुवाकः ॥

१ B B̈ K K̈ D R S̈ V P P̌ J C$^{s}$ C$^{p}$ मेक्षा°. A मेष्या° changed to मेक्षा°. Rw have altered मेक्षा° read by their MSS. to मेष्या°. Sāyaṇa's मैष्यामि would be accented मैष्याम्यूर्ध्व°. We adhere to the traditional reading. २ A B B̈ K K̈ D R V C$^{s}$ °स्तिष्ठ्°. P J C$^{p}$ तिष्ठन्. We with S̈ P.

दशमेनुवाके त्रीणि सूक्तानि । तत्र "को अस्या नः" इति आद्ये सूक्ते आद्याभ्याम् ऋग्भ्यां सर्वफलकामः प्रजापतिं यजेत उपतिष्ठेत वा । "को अस्या न इति प्रजापतिम्" इति हि [कौ० ७. १०] सूत्रम् ॥

"कः पृश्निम्" इत्येषा उर्वराख्ये सवयज्ञे विनियुक्ता । "कः पृश्निम् इत्युर्वराम्" इति [कौ० ८. ७] सूत्रात् ॥

उपनयने आदित्यवीक्षणानन्तरम् "अपक्रामन्" इत्यनया माणवकं प्राङ्मुखम् उपवेशयेत् । सूत्रितं हि । "अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणान इत्येनं बाहुगृहीतं प्राञ्चम् अवस्थाप्य" इति [कौ० ७. ६] ॥

ग्रामगृहादिषु अन्योक्तसंदेशाकथने तत्प्रायश्चित्तार्थं "यद् अस्मृति" इत्यनया अग्निम् उपतिष्ठेत । "यद् अस्मृतीति संदेशम् अपर्याप्य" इति हि [कौ० ५. १०] सूत्रम् ॥

तथा दर्शपूर्णमासयोः "यद् अस्मृति" इत्यनया कर्मविस्मरणप्रायश्चित्तार्थं जुहुयात् । "यन्मे स्कन्नम् यद् अस्मृति[१११] इति च स्कन्नास्मृतिहोमौ" इति [कौ० १. ६] सूत्रितम् ॥

अग्निष्टोमे दीक्षानियमलोपप्रायश्चित्तार्थम् अनया अग्निम् उपतिष्ठेत । "व्रतलोपे यदस्मृतीत्यग्निम् उपतिष्ठते" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. २] ॥

कासश्वेष्मभैषज्यार्थम् "अव दिवस्तारयन्ति" इति ऋचा अन्नं सक्तुमन्थं वा अभिमन्त्र्य भक्षयेद् उदकं वा अभिमन्त्र्य आचामयेत् सूर्योपस्थानं वा कुर्यात् । "यथा मनः[६. १०५] अव दिवः [७. ११२] इत्यरिष्टेन" इति [कौ० ४. ७] सूत्रात् ॥

अभिचारकर्मणि "यो नस्तायत्" इति द्व्यृचेन अशनिहतवृक्षसमिध आदध्यात् ॥

द्यूतजयकर्मणि "इदम् उग्राय" इति सप्तर्चेन दधिमधुनोस्त्रिरात्रं वासितान् अक्षान् अभिमन्त्र्य द्यूतक्रीडां कुर्यात् । "इदम् उग्रायेति वासितान् अक्षान् निवपति" इति हि कौशिकं सूत्रम् [कौ० ५. ५] ॥

---

1 S' इत्येवं. 2 S' पर्यासेति for अपर्याप्य इति. 3 This is a sautra mantra. See *Kausika* I. 6. 4 S' अशनिहसमिधवृक्ष°.

अभ्याधाने "इदम् उग्राय" इति घृतेन अभ्यक्तान् अक्षान् अध्वर्यवे दद्यात्। तद् उक्तं वैताने। "इदम् उग्रायेत्यन्वक्तान् अक्षान् विदेवनायाध्वर्यवे प्रयच्छति" इति [वै०२.२]॥

तत्र प्रथमा॥

को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्या उन्नेष्यति क्षत्रियो वस्य इच्छन्।
को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः को देवेषु वनुते दीर्घमायुः॥ १॥

कः। अस्याः। नः। द्रुहः। अवद्यऽवत्याः। उत्। नेष्यति। क्षत्रियः। वस्यः। इच्छन्।

कः। यज्ञऽकामः। कः। ऊं इति। पूर्तिऽकामः। कः। देवेषु। वनुते। दीर्घम्। आयुः॥ १॥

अस्मिन् द्व्यृचे प्रश्नवाचिना किंशब्देन प्रजापतिरुच्यते। अनिरुक्तत्वात् तस्य। श्रूयते हि तैत्तिरीयके। "कोहं स्याम इत्यब्रवीत् एतत् प्रदायेति। एतत् स्या इत्यब्रवीद् यद् एतद् ब्रवीषीति" इति [तै०ब्रा०२.२.१०.२]। को ह वै नाम प्रजापतिरिति प्रश्नवाचिन एव किंशब्दस्य प्रजापतिवाचकत्वं युक्तम्। अन्यथा "कस्मै देवाय हविषा विधेम" [ऋ०१०.१२१.१] इत्यत्र स्मै इति आदेशो न स्यात्। अयम् अस्या ऋचोर्थः। वस्यः वसीयः प्रशस्तं फलम्। ✕वसुशब्दाद् ईयसुनि ईकारलोपश्छान्दसः✕। इच्छन् अस्मभ्यं प्रदातुं कामयमानः कः क्षत्रियः क्षत्रियजात्यभिमानी को राजा। ✕"क्षत्राद् घः" इति घः✕। अस्याः इदानीं बाधिकाया अवद्यवत्याः। गर्ह्यम् अवद्यम्। ✕"अवद्यपण्यवर्या०" इति गर्ह्यार्थे अवद्यशब्दो यत्प्रत्ययान्तत्वेन निपातितः✕। निन्द्यरूपादियुक्ताया द्रुहः द्रोग्ध्याः। ✕द्रुह जिघांसायाम। किप्✕। अहितकारिण्याः पिशाच्याः दुर्गतेः सकाशात् नः अस्मान् उन्नेष्यति उद्धरिष्यति। को वा यज्ञकामः अस्माभिरनुष्ठीयमानं यज्ञं कामयमानो भ-

१ A B R द्रुहोव°. We with D K K S V.

1 S' इदमुग्रायेत्यन्वाक्तेत्यन्वक्तानक्षा°. We with the *Taittâva*. 2 S' om. इति here.

वति । उशब्दः वार्थे । पूर्तिकामः अस्माकं धनादिपूर्तिम् अभिवाञ्छन् भवति । को वा देवेषु मध्ये दीर्घम् चिरकालभावि आयुः जीवनं वनते संभजते । वन षण संभक्तौ । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । यद्वा । वनतिर्दानार्थवाची । धातूनाम् अनेकार्थत्वात् । देवेषु मध्ये को वा दीर्घम् आयुः प्रयच्छति ॥ अत्रोक्तानां प्रश्नवाक्यानां कः प्रजापतिरेव अस्मान् दुर्गताद् उद्धरिष्यति अस्मदीयं यज्ञं पूर्तिं च कामयते आयुश्च प्रयच्छति इत्युत्तरं भवति । किंशब्देन प्रजापतिरुच्यते इत्युक्तत्वात् ॥

द्वितीया ॥

कः पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् ।
बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति ॥ १ ॥

कः । पृश्निम् । धेनुम् । वरुणेन । दत्ताम् । अथर्वणे । सुऽदुघाम् । नित्यऽवत्साम् ।

बृहस्पतिना । सख्यम् । जुषाणः । यथाऽवशम् । तन्वः । कल्पयाति ॥ १ ॥

पृश्निम् प्राप्तवर्णाम् । पृश्निः प्राप्नुत एनं वर्ण इति नैरुक्ता इति हि यास्कः [नि० २, १४] । लोहितादिवर्णोपेतां सुदुघाम् सुष्ठु दोग्ध्रीम् । "दुहः कब्घश्च" इति कप् प्रत्ययः । घकारश्च अन्तादेशः । दोग्धुं सुशकां वा । "ईषद्दुःसुषु०" इति खल् । वर्णोपजनश्छान्दसः । "लिति" इति प्रत्ययात् पूर्वस्य उदात्तत्वम् । नित्यवत्साम् सर्वदा वत्सोपेताम् । अनेन सर्वदा नवप्रसूतत्वम् उक्तं भवति । अथर्वणे वरुणेन दत्तां धेनुम् । वरुणेनाथर्वणे गौर्दत्तेति पञ्चमकाण्डे स्पष्टम् आम्नातम् । "कथं महे असुरायाब्रवीरिह "कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः । पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं "मनसाचिकित्सीः" इति [५. ११] । एतादृशीं धेनुं बृहस्पतिना बृहता

१ DKKPV सख्यं जु°. We with ABRSPJCp.

1 S' उशब्दार्थे वा for उशब्दः वार्थे. 2 S' वर्णमित.

महतां देवानां पालकेन देवेन सख्यम् सौहार्दं जुषाणः सेवमानः को देवः यथावशम् यथाकामम्। ※पदार्थानतिवृत्तौ अव्ययीभावः※। तन्वः तनूः कल्पयाति कल्पयेत् समर्थानि कुर्यात्। ※कल्पयतेर्लेटि आडागमः※। कः कल्पयेत् इति प्रश्नस्य प्रजापतिरेव कल्पयतीत्युत्तरं भवति ॥

तृतीया ॥

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥ १ ॥

अपऽक्रामन्। पौरुषेयात्। वृणानः। दैव्यम्। वचः।
प्रऽनीतीः। अभिऽआवर्तस्व। विश्वेभिः। सखिऽभिः। सह ॥ १ ॥

हे माणवक त्वं पौरुषेयात् पुरुषेभ्यो हितं तत्र वर्तमानं कामवादभक्षणादिकं लौकिकं कर्म तस्मात्। ※"सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ" इति ढञ् प्रत्ययः। ढस्य एय् आदेशः※। तस्मात् लौकिकात् कर्मणः अपक्रामन् अपगच्छन् दैव्यम् देवसंबन्धि। ※"देवाद् यञञौ" इति यञ् प्रत्ययः※। तद् वचः वाक्यं वेदलक्षणं वृणानः संभजमानः। ※वृङ् संभक्तौ। क्र्यादिः। हेतौ शानच् प्रत्ययः※। स्वाध्यायसंभजनाद्धेतोः प्रणीतीः प्रकृष्टनयनादिवेदब्रह्मचर्यनियतीः अभ्यावर्तस्व अभिगच्छ। विश्वेभिः सर्वैः सखिभिः समानख्यानैः सब्रह्मचारिभिः सह। अभ्यावर्तस्वेति ॥

चतुर्थी ॥

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥ १ ॥

यत्। अस्मृति। चकृम। किम्। चित्। अग्ने। उपऽआरिम। चरणे।
जातऽवेदः।

1 S' प्रकृष्टनयनादेवेदब्रह्म°.

ततः । पाहि । त्वम् । नः । प्रऽचेतः । शुभे । सखिऽभ्यः । अमृतऽत्वम् ।
अस्तु । नः ॥ १

हे अग्ने वयम् अस्मृति स्मरणरहितं पूर्वोत्तरकर्मानुसंधानरहितं यत् किंचित् कर्म चकृम अकार्ष्म । सांतत्येन क्रियमाणे कर्मणि मध्ये यत् किंचित् कर्म अनुष्ठेयं विस्मृतवन्तः अन्योक्तं वा संदेशादिकं तदीयाय जनाय न कथितवन्तो वा । तथा हे जातवेदः जातानां वेदितः जातैः भूतैर्ज्ञायमान वा चरणे अनुष्ठाने उपारिम यत् कर्म उपार्तं लुप्तम् अकार्ष्म । यत्कर्मानुष्ठाने मूढा अभूमेत्यर्थः । ✕चकृमेति । करोतेर्लिटि ऋादिनियमात् इण्निषेधः । उपारिमेति । उपपूर्वाद् अर्तेः "इडत्यर्ति-व्ययतीनाम्" इति इडागमः । यद्वृत्तयोगाद् अनिघाते "तिङि चोदात्त-वति" इति गतेर्निघातः ✕ । हे प्रचेतः प्रकृष्टज्ञान अग्ने त्वं ततः तस्माद् विस्मरणनिबन्धनात् पापात् नः अस्मान् पाहि पालय । ततः सखिभ्यः समानख्यानेभ्यः प्रियभूतेभ्यो नः अस्मभ्यं त्वदनुग्रहात् शुभे शोभने साङ्गे कर्मणि । संपन्ने इति शेषः । अमृतत्वम् अविनाशित्वम् अस्तु ॥

पञ्चमी ॥

अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।
आपः समुद्रिया धारास्तास्ते शत्यमसिस्रसन् ॥ १ ॥

अव । दिवः । तारयन्ति । सप्त । सूर्यस्य । रश्मयः ।
आपः । समुद्रियाः । धाराः । ताः । ते । शत्यम् । असिस्रसन् ॥ १ ॥

एकस्य हि सूर्यस्य अंशभूताः सप्त सूर्या विद्यन्ते । तत्र प्रधानभूतः कश्यपसंज्ञकः सर्वदा महामेरौ वर्तते । इतरे तदंशभूता आरोगादिनामानो विश्वस्य प्रकाशकाः प्रवर्षकाश्च भवन्ति । श्रूयते हि तैत्तिरीयके । "आरोगो भ्राजः पटरः पतङ्गः स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः । ते अस्मै सर्वे दिवम् आतपन्ति" इति । "कश्यपोष्टमः । स महामेरुं न जहाति" इति । यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकम्" इति च [तै० आ० १.७.१] ॥ तथा चास्या ऋचः अयम् अर्थः । सूर्यस्य कश्य-

पनाम्नः संबन्धिनः सप्त सप्तसंख्याका रश्मयः व्यापकाः किरणा आरोगादयः सूर्याः समुद्रियाः। समुद्रम् अन्तरिक्षम्। ✠समुद्रवन्त्यस्माद् आप इति हि यास्कः [नि० २. १०]। तत्र भवाः। "समुद्राभ्राद् घः" इति घः✠। अन्तरिक्षभवा धारारूपा आपः। ✠द्वितीयार्थे प्रथमा✠। अपः दिवः द्युलोकाद् अव तारयन्ति अवपातयन्ति। प्रवर्षन्तीत्यर्थः। ताः सूर्यरश्मिभिरवतारिता आपः हे रुग्ण ते तव शल्यवत् शल्यम् पीडाकारिणं कासश्लेष्मादिरोगम् असिस्रसन् स्रंसयन्तु विनाशयन्तु। ✠स्रंसु गतौ। ण्यन्तात् लुङि चङि "अनिदिताम्०" इति उपधानकारलोपः। "सन्वल्लघुनि०" इति सन्वद्भावात् "सन्यतः" इति अभ्यासस्य इत्त्वम्✠॥

षष्ठी॥

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विदानरणो वा नो अग्ने।
प्रतीच्येत्वरणी दृतवती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम्॥ १॥

यः। नः। तायत्। दिप्सति। यः। नः। आविः। स्वः। विद्वान्। अरणः। वा। नः। अग्ने।
प्रतीची। एतु। अरणी। दृतवती। तान्। मा। एषाम्। अग्ने। वास्तु। भूत्। मो इति। अपत्यम्॥ १॥

हे अग्ने यः शत्रुः नः अस्मान् तायत्। अन्तर्हितनामैतत्। अन्तर्हितम् अप्रकाशं दिप्सति दम्भितुं हिंसितुम् इच्छति। ✠"दन्भ इच्च" इति सन्प्रत्यये इकारादेशः। "अत्र लोपोभ्यासस्य" इति अभ्यासलोपः✠। यश्च शत्रुः नः अस्मान् आविः प्रकाशं दिप्सति। तथा विद्वान् परबाधनोपाय जानन् स्वः स्वीयः बन्धुर्वा नः अस्मान् दिप्सति। अरणः। ✠अर्तेः अरणः✠। अरातिर्वा नः अस्मान्

---

१ B °स्तायु°. We with A D K K̆ R S̆ V Cs. २ B K K̆ R S̆ Cs omit the visarga in आविः. We with A V. ३ A K K̆ R तां मै°. We with B D S̆ V Cs. ४ P P̆ J Cr स्तायत्. We with Sâyaṇa. See also IV. 16. 1.

हन्तुम् इच्छति । तान् अप्रकाशहननोद्युक्तादीन् शत्रून् दत्वती दन्तोपेता । ॐ "छन्दसि च" इति दन्तशब्दस्य दतृ आदेशः ॐ । अरणी आर्तिकारिणी राक्षसी प्रतीची प्रत्यगञ्चना एतु प्राप्नोतु । दन्ताभ्यां तान् भक्षयितुम् अभिगच्छतित्यर्थः । निःशेषहननाय दत्वतीति विशेषणम् । किं च हे अग्ने एषां पूर्वोक्तानाम् अन्तर्हितघातकादीनां वास्तु गृहं मा भूत् । अपत्यम् पुत्रादिकं मो मैव भूत् ॥

सप्तमी ॥

यो नः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास्तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः ॥ २ ॥

यः । नः । सुप्तान् । जाग्रतः । वा । अभिऽदासात् । तिष्ठतः । वा । चरतः । जातऽवेदः ।
वैश्वानरेण । सऽयुजा । सऽजोषाः । तान् । प्रतीचः । निः । दह । जातऽवेदः ॥ २ ॥

यः शत्रुः सुप्तान् निद्राणान् नः अस्मान् अभिदासात् अभिदासयेत् अभितः उपक्षपयेत् अभिमुखं वा हिंस्यात् । ॐ दसु उपक्षये । ण्यन्तात् लेटि आडागमः । "छन्दस्युभयथा" इति तिप आर्धधातुकत्वात् णिलोपः ॐ । यः शत्रुः जाग्रतः प्रबुध्यमानान् नः अस्मान् अभिदासयेत् । ॐ जागृ निद्राक्षये । शतरि अदादित्वात् शपो लुक् । "जक्षित्यादयः षट्" इति अभ्यस्तसंज्ञायाम् "अभ्यस्तानाम् आदिः" इति आद्युदात्तत्वम् ॐ । तथा हे जातवेदः जातप्रज्ञ हे अग्ने तिष्ठतः सुखेन एकत्रासीनान् अस्मान् यो हिंस्यात् चरतः कार्येषु व्याप्रियमाणान् वा अस्मान् यः शत्रुः उपक्षपयेत् [१] ॐ तिष्ठतश्चरत इत्युभयत्र लसार्वधातुकानुदात्तत्वे धातुस्वरः ॐ । हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने त्वं वैश्वानरेण विश्वनरसंबन्धिना एतत्संज्ञकेन जाठराग्निना । ॐ "नरे संज्ञायाम्" इति विश्वशब्दस्य दीर्घः ॐ । तेन अग्निना सयुजा स-

१ A $\overset{m}{K}$ R सुप्तांजा . We with B D K $\overset{m}{S}$ V C$^{s}$. २ P $\overset{2}{P}$ J C$^{p}$ सुप्ताम्.

हयोक्ता सहायेन सजोषाः समानप्रीतिः सन् प्रतीचः स्वप्नजागरणाद्यवस्थापन्नान् अस्मान् उपक्षपयितुं प्रतिमुखम् आगच्छतस्तान् शत्रून् निर्दह निःशेषेण भस्मसात् कुरु। जाठराग्निः अन्तर्दहतु त्वं तु बहिर्दहेत्यर्थः॥

अष्टमी॥

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी।
घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे॥ १॥

इदम्। उग्राय। बभ्रवे। नमः। यः। अक्षेषु। तनूऽवशी।
घृतेन। कलिम्। शिक्षामि। सः। नः। मृडाति। ईदृशे॥ १॥

उग्राय उद्गूर्णबलाय बभ्रवे बभ्रुवर्णाय एतत्संज्ञकाय द्यूतजयकारिणे देवाय इदं नमः नमस्करणम्। भवतु इति शेषः। ☒"नमःस्वस्ति०" इति नमःशब्दयोगे बभ्रव इति चतुर्थी☒। यो बभ्रुः अक्षेषु देवनसाधनेषु तनूवशी यथाकामी। स्वेच्छाधीनजय इत्यर्थः। घृतेन आज्येन मन्त्राभिमन्त्रितेन कलिम्। पराजयहेतुः पञ्चसंख्यायुक्तोक्षविषयोऽयः कलिरित्युच्यते। तं शिक्षामि ताडयामि। हन्मीत्यर्थः। एकादयः पञ्चसंख्यान्ता अक्षविषया अयाः। तत्र पञ्चानां कलिरिति संज्ञा। तथा च तैत्तिरीयकम्। "ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत्। अथ ये पञ्च कलिः सः" इति [तै० ब्रा० १. ५. ११. १]। तत्र कलिशब्दवाच्यस्य अयस्य आगमने पराजयो भवति। तम् अनेन आज्येन विनाशयामि। अहम् अन्यैर्न पराजीये किं तु अन्यान् अहमेव जयामीत्यर्थः। ☒शिक्षतिर्विद्योपादानवाची। तच्च विद्याग्रहणम् अध्यापककर्तृककशाताडनं विना न भवतीति अत्र लक्षणया ताडनमात्रं विवक्ष्यते। व्यत्ययेन परस्मैपदम्☒। यद्वा। ☒शकेः सनि प्रत्यये "सनि मीमा०" इति इस् आदेशः। "अत्र लोपः०" इति अभ्यासलोपः☒। कलिं शिक्षामि[1] शक्तं समर्थं कर्तुम् इच्छामि। यथा कलिः स्वयं[2] पराजयसमर्थः पराजयवान् भवति तथा करोमीत्यर्थः। अस्मिन्नर्थे देवतानुग्रहम् आ-

1 S' शिक्षयामि. 2 S' ययं for स्वयं.

शास्ते । स नमस्कृतः अक्षद्यूतदेवता वभ्रुः ईदृशे देवननिबन्धने कलिपराभावनरूपे जयलक्षणे च फले नः अस्मान् मृळाति मृडयतु सुखयतु । ✕मृड सुखने । लेटि आडागमः✕ ॥

नवमी ॥

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसून्क्षेभ्यः सिकता अपश्च ।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २ ॥

घृतम् । अप्सराभ्यः । वह । त्वम् । अग्ने । पांसून् । अक्षेभ्यः । सिकताः । अपः । च ।

यथाऽभागम् । हव्यऽदातिम् । जुषाणाः । मदन्ति । देवाः । उभयानि । हव्या ॥ २ ॥

हे अग्ने त्वम् अप्सराभ्यः । अप्सु सरन्त्यश्चरन्त्यः अन्तरिक्षचारिण्यो वा । ताभ्यः तदर्थं घृतम् अक्षाभ्यञ्जनसाधनम् आज्यं वह प्रापय । अस्माकं जयार्थम् इति शेषः । तथा अक्षेभ्यः । अक्षशब्देन तैर्दीव्यन्तः प्रतिकितवा उच्यन्ते । अक्षहस्तेभ्यः प्रतिकितवेभ्यः पांसून् सूक्ष्मान् भूरजःकणान् सिकताः शर्कराः अपः उदकानि च प्रापय । यथा तेषां पराजयो भवति तथा तन्मुखेषु पांस्वादीन् प्रक्षिपेत्यर्थः ॥ किं च यथाभागम् भागम् अनतिक्रम्य स्वीयस्वीयभागानुसारेण हव्यदातिम् हविषः प्रदानं जुषाणाः सेवमाना देवाः इन्द्राद्या उभयानि द्विप्रकाराणि औषधपाशुकभेदेन सोमाज्यभेदेन श्रौतस्मार्तकर्मभेदेन वा द्विविधानि हव्या हव्यानि हवींषि । आस्वाद्येति शेषः । मदन्ति माद्यन्ति तृप्ता भवन्ति । ते देवा अपि अस्माकं द्यूतजयं कुर्वन्तु इति प्रार्थना ॥

दशमी ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु ॥ ३ ॥

---

१ BDSC[h][m]पांशन°. P[2]PJ पांशून्. We with AKRVJCp. २ RPP[2]J मदंतु. ३ P हव्यां.

अप्सरसः। सधऽमादम्। मदन्ति। हविःऽधानम्। अन्तरा। सूर्यम्। च।
ताः। मे। हस्तौ। सम्। सृजन्तु। घृतेन। सऽपलम्। मे। कितवम्।
रन्धयन्तु ॥ ३ ॥

अप्सरसः द्यूतक्रियादेवताः सधमादम् सह संभूय मादः मादनं यस्मिन् मदनकर्मणि तत्। ✕माद्यतेर्घञ् व्यत्ययेन। "सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधादेशः✕। सहमदनं यथा भवति तथा मदन्ति माद्यन्ति। कुत्रेति तद् उच्यते। हविर्धानम् हविर्धीयते अत्रेति हविर्धानो भूलोकः। ✕अधिकरणे ल्युट्✕। तं सूर्यम् सूर्याधिष्ठितं द्युलोकं तं च अन्तरा। ✕"अन्तरान्तरेण युक्ते" इति द्वितीया✕। द्यावापृथिव्योर्मध्ये अन्तरिक्षलोके माद्यन्ति। ताः अप्सरसः मे मम हस्तौ देवनसाधनौ पाणी घृतेन घृतवत् सारभूतेन जयलक्षणेन फलेन सं सृजन्तु संयोजयन्तु। तथा सपलम् प्रतिदीव्यन्तं कितवं मे मम रन्धयन्तु। ✕रध्यतिर्वशगमने इति यास्कः [नि०१०, ४०]✕। वशयन्तु स्वाधीनं कुर्वन्तु। ✕रध हिंसासंराध्योः। णिचि "रधिजभोरचि" इति नुम् आगमः✕ ॥

[इति] दशमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"आदिनवं प्रतिदीव्ने" इति चतुर्ऋचस्य द्यूतजयकर्मणि "इदम् उग्राय" इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

परसेनाजयार्थम् "अग्न इन्द्रश्च" इति द्वाभ्यां नवरथं संपाद्य अभिमन्त्र्य ससारथिं राजानम् आरोहयेत्। तद् उक्तं कौशिकेन। "अग्न "इन्द्रः[७,११५] दिशश्चतस्रः[८,८,२२] इति नवं रथं राजानं ससा- "रथिम् आस्थापयति" इति [कौ०२,६] ॥

तथा सर्वफलकामः "अग्न इन्द्रश्च" इति तिसृभिः अग्नीन्द्रौ यजेत उपतिष्ठेत वा। "अग्न इन्द्रश्चेति मन्त्रोक्तान् सर्वकामः" इति हि [कौ०७,१०] सूत्रम् ॥

1 S' नवरथं. We with *Kausika*. 2 S' मंत्रोक्तां. We with *Kausika*.

आग्रयणेष्टौ "अग्न इन्द्रश्च" इति आग्नेन्द्रपुरोडाशयागम् अनुमन्त्रयते । "अग्न इन्द्र इत्याग्नेन्द्रम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० २. ४] ॥

वृषोत्सर्गे "इन्द्रस्य कुक्षिः" इत्यनया वृषभं संपात्य अभिमन्त्र्य विसृजेत् । "इन्द्रस्य कुक्षिः[७. ११६] साहस्रः[९. ४] इत्यृषभं संपातवन्तम् अतिसृजति" इति कौशिकसूत्रात् [कौ० ३. ७] ॥

अग्निष्टोमे प्रातःसवने सोमसहितं पूतभृत्पात्रम् "इन्द्रस्य कुक्षिः" इति ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । "इन्द्रस्य कुक्षिरित्यासिक्ते सोमे पूतभृतम्" इति हि वैतानं सूत्रम् [वै० ३. ७] ॥

सर्वव्याधिभैषज्यार्थं "शुम्भनी" इति व्यृचेन उदकघटं संपात्य अभिमन्त्र्य मौञ्जैः पाशैः संधिषु बद्धं व्याधितं दर्भपिञ्जूलीभिः आप्लावयेद् अवसिञ्चेद् वा । सूत्रितं हि । "शुम्भनी इति मौञ्जैः पाशैः पर्वसु बद्ध्वा पिञ्जूलीभिरात्मावयत्यवसिञ्चति" इति [कौ० ४. ८] ॥

तथा "शुम्भनी" इत्यस्या अंहोलिङ्गगणे पाठात् "ओषधिवनस्पतीनाम् अनूक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानाम् अंहोलिङ्गाभिः" इत्यादौ [कौ० ४. ८] विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

विवाहे "शुम्भनी" इत्यनया आज्यं हुत्वा वरवध्वोर्मूर्धोः संपातान् आनयेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनयर्चा वरवध्वोरञ्जल्योः उदपात्रोदकं निनयेत् ॥

सूत्रितं हि । "तुभ्यम् अग्रे[१४. २] शुम्भनी[७. ११७] अग्निर्जनित्र[1] इति मूर्धोः संपातान् आनयति । उदपात्र उत्तरान् शुम्भन्यञ्जल्योर्निनयति" इति [कौ० १०. ४]

तत्र प्रथमा ॥

आदिनवं प्रतिदीने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।
वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ॥ ४ ॥

1 S. इंद्राग्नेंद्रम् for इत्याग्नेन्द्रम्. 2 This is a sautra mantra. See *Kaus'ika ad loc.*

आदि॑नवम॑ । प्रति॑ऽदीव्ने । घृ॒तेन॑ । अ॒स्मान् । अ॒भि । क्ष॒र॒ ।
वृ॒क्षमऽइ॑व । अ॒शन्या॑ । ज॒हि॒ । यः । अ॒स्मान् । प्रति॑ऽदीव्यति ॥ ४ ॥

प्रतिदीव्ने प्रतिकूलं दीव्यते प्रतिकितवाय । "क्रियार्थोपपदस्य०" इति चतुर्थी । प्रतिदिवानं जेतुम् आदिनवम् आदीव्यामि अक्षैः आदीवनं करोमि । आङ्पूर्वाद् दीव्यतेश्छान्दसे लङि व्यत्ययेन श्नुः । "लोपो व्योर्वलि" इति वकारलोपः । "तस्थस्थमिपाम्०" इति अम् आदेशो गुणश्च । यद्वा । लङि व्यत्ययेन श्नम् । प्रतिपूर्वाद् दीव्यतेः कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः इति [उ० १. १५४] कनिन् प्रत्ययः । चतुर्थ्येकवचने अल्लोपे कृते "हलि च" इति दीर्घः । अस्मान् आदीव्यतः घृतेन घृतवत्सारभूतेन जयलक्षणेन फलेन अभि क्षर संयोजय । देवनक्रियाभिमानी देवः संबोध्यते । यः कितवः अस्मान् प्रतिदीव्यति जेतुं प्रतिकूलं द्यूतं करोति तम् अशन्या विद्युता वृक्षम् शुष्कं तरुमिव जहि तिरस्कुरु । "हन्तेर्जः" इति जादेशः ॥

द्वितीया ॥

यो नो॑ द्यु॒वे धन॑मिदं च॒कार॒ यो अ॒क्षाणां॒ ग्लह॑नं॒ शेष॑णं च ।
स नो॑ दे॒वो ह॒विरि॒दं जु॑षा॒णो ग॑न्ध॒र्वेभिः॑ सध॒मादं॑ मदेम ॥ ५ ॥

यः । नः॒ । द्यु॒वे । धन॑म् । इ॒दम् । च॒कार॑ । यः । अ॒क्षाणा॑म् । ग्लह॑नम् ।
शेष॑णम् । च॒ ।
सः । नः॒ । दे॒वः । ह॒विः । इ॒दम् । जु॒षा॒णः । ग॒न्ध॒र्वेभिः॑ । स॒ध॒ऽमाद॑म् ।
म॒दे॒म॒ ॥ ५ ॥

यो देवः नः अस्माकं द्युवे द्यूताय तदर्थम् । यद्वा द्युवे दीव्यते नः । वचनव्यत्ययः । मह्यम् । अथवा नः अस्मदीयाय द्युवे दीव्यते पुरुषाय इदं प्रतिकितवसंबन्धि धनं चकार जयेन संपादितवान् । द्युव इति । दीव्यतेः कर्तरि भावे वा किप् । "च्छ्वोः

१ P P̆ J Cp आदि॑ऽनवम्. We with the grammar of Sâyana. It is impossible to say what the pada form of Sâyana's reading was.

"शूडनुनासिके च" इति वकारस्य ऊठ् । यण् आदेशः ॥ । यश्च देवः अक्षाणां परकीयानां ग्लहनम् ग्रहणं स्वकीयैरक्षैर्जित्वा स्वीकरणं शेषणम् स्वीयानाम् अक्षाणां जयाह्वस्थाने अवशेषणं च कृतवान् । ॥ ग्लहनम् इति । ग्लहु ग्लहे इति धात्वन्तरम् अन्यैर्भूवादौ पठ्यते । तस्मात् ल्युट् । गृह्णातेर्वा । रेफस्य लत्वं छान्दसम् ॥ । स देवः द्यूताभिमानी नः अस्मदीयम् इदं हविः जुषाणः सेवमानो भवतु । वयं च गन्धर्वेभिः गन्धर्वैः अक्षाधिष्ठायकैः सधमादम् सहमदनं यथा तथा मदेम हृष्यास्म । ॥ माद्यतेः "लिङ्याशिष्यङ्" इति अङ् प्रत्ययः ॥ ॥

तृतीया ॥

संवसव इति वो नामधेयमुग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः ।
तेभ्यो व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

समऽवसवः । इति । वः । नामऽधेयम् । उग्रम्ऽपश्याः । राष्ट्रऽभृतः । हि । अक्षाः ।
तेभ्यः । वः । इन्दवः । हविषा । विधेम । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥ ६ ॥

हे गन्धर्वाः अक्षा वा यूयं संवसव इति संप्राप्तधनाः संप्रापितधना यतो भवथ अतो वः युष्माकं संवसव इति नामधेयं भवति । हि यस्माद् उग्रंपश्याः[2] । ॥ षष्ठ्या लुक् ॥ । उग्रंपश्यायाः राष्ट्रभृतः । इदं द्वयम् अप्सरोविशेषनामधेयम् । तयोः संबन्धिनो भवन्ति अक्षाः । अक्षाणाम् एतत्संबन्धित्वं तैत्तिरीये श्रूयते । "उग्रंपश्ये राष्ट्रभृच्चाचराणि यद् अक्षवृत्तम् अनुवृत्तम् एतत्[3]" इति [तै० आ० २. ४. १] । तेभ्यः गन्धर्वाप्सरोभ्यः तदधिष्ठितेभ्यः अक्षेभ्यो वा वः युष्मभ्यं युष्मदर्थम् इन्द-

१ Such is the reading of all our MSS. and vaidikas except V who: व इदं वो though his padas are वः । इदम् । वः । Sâyana's commentary would require the accent to be व इन्दवो. २ P[2] उग्रम् । प°. We with P J Cp. ३ P[2] इंदवः.

1 S' जयांह्वस्थाने. 2 S उग्रंपश्याः, doubtless a slip of the copyist. 3 So S'. The traditional reading is: उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनुदत्तमेतत्.

वः। ※लुप्तमत्वर्थीयः※। इन्दुमन्तः सोमवन्तः सोमोपलक्षित-हविर्युक्ता वयं हविषा उचितेन विधेम परिचरेम। ※विध विधाने। तौदादिकः※। अनन्तरं वयं दीव्यन्तः रयीणाम् धनानां पतयः स्वामिनः स्याम भवेम। द्यूते प्रतिकितवजयेन धनवन्तः स्यामेत्यर्थः॥

चतुर्थी॥

देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम।
अक्षान् यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे॥ ७॥

देवान्। यत्। नाथितः। हुवे। ब्रह्मऽचर्यम्। यत्। ऊषिम।
अक्षान्। यत्। बभ्रून्। आऽलभे। ते। नः। मृडन्तु। ईदृशे॥ ७॥

नाथितः उपतप्तः। ※नाथृ नाधृ याञ्चोपतापैश्वर्याशीःषु। अस्मात् निष्ठा※। देवान् अग्न्यादीन् हुवे आह्वयामि धनलाभार्थम् इति यत्। ※ह्वयतेर्व्यत्ययेन शपः शः※। ब्रह्मचर्यम् वेदग्रहणार्थं ब्रह्मचारिनियमम् ऊषिम उषितवन्त इति यत्। ※वसेर्निवासार्थात् लिटि उत्तमबहुवचने धातोरभ्यासस्य च संप्रसारणे "शासिवसिघसीनां च" इति षत्वे रूपम※। बभ्रून् बभ्रुवर्णान् बभ्रुणा अक्षाभिमानिना देवेन अधिष्ठितान् वा अक्षान् देवनसाधनभूतान् आलभे देवितुं स्पृशामीति यत्। ※आङ्पूर्वो लभिः स्पर्शार्थः। तस्माद् वर्तमाने लटि उत्तमे रूपम※। तेन कारणेन ते देवादयः ईदृशे जयलक्षणे फले नः अस्मान् मृडन्तु सुखयन्तु॥

पञ्चमी॥

अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतं वृत्राण्यप्रति। उभा हि वृत्रहन्तमा॥ १॥

अग्ने। इन्द्रः। च। दाशुषे। हतः। वृत्राणि। अप्रति॥ उभा। हि। वृत्रहन्ऽतमा॥ १॥

हे अग्ने इन्द्रश्च युवां दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय तदर्थं वृत्राणि

१ P हुवे. २ This is what our MSS. and vaidikas read.

आवरकाणि शत्रुरूपाणि दुरितानि अप्रति अप्रतिपक्षम् । निःशेषम् इत्यर्थः । हथः हिंस्थः । हन्तेर्वर्तमाने लटि मध्यमद्विवचने रूपम् । हि यस्माद् उभा उभौ अग्नीन्द्रौ वृत्रहन्तमा वृत्रहन्तमौ अतिशयेन वृत्रं हतवन्तौ । "ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु०" इति क्विप् । तदन्ताद् आतिशायनिकस्तमप् । "नाद् घस्य" इति नुडागमः ॥

षष्ठी ॥

याभ्यामजयन्त्स्वरग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा ।
प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेहम् ॥ २ ॥

याभ्याम् । अजयन् । स्वः । अग्रे । एव । यौ । आऽतस्थतुः । भुवनानि । विश्वा ।

प्रचर्षणी इति प्रऽचर्षणी । वृषणा । वज्रबाहू इति वज्रऽबाहू । अग्निम् । इन्द्रम् । वृत्रऽहना । हुवे । अहम् ॥ २ ॥

अग्रे पूर्वं याभ्याम् अग्नीन्द्राभ्यामेव स्वः स्वर्गम् अजयन् स्वाधीनीकृतवन्तो देवाः । यौ च अग्नीन्द्रौ विश्वा विश्वानि भुवनानि भवन्ति भूतजातानि आतस्थतुः स्वमहिम्ना आक्रान्तवन्तौ व्याप्तवन्तौ । यौ च प्रचर्षणी प्रकर्षेण द्रष्टारौ । स्वोपासकसंबन्धिकर्मफलस्येति शेषः । यद्वा चर्षणय इति मनुष्यनाम । प्रकृष्टाश्चर्षणयो मनुष्या ययोर्यष्टृत्वेन सन्तीति तौ । वृषणा वृषणौ वर्षितारौ अभिमतफलस्य । वज्रबाहू । वज्रो बाह्वोर्ययोरिति व्यधिकरणबहुव्रीहिः । वज्रः वर्जकम् आयुधम् । आयुधपाणी अत एव वृत्रहणा वृत्रहणौ वृत्रं हतवन्तौ । तादृशम् अग्निम् इन्द्रं च अहं जयकामः हुवे आह्वयामि ॥

सप्तमी ॥

उप त्वा देवो अग्रभीच्चमसेन बृहस्पतिः ।
इन्द्रं गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

---

१ A B ३ for १. R has no kampa. We with $^{h}$B D K $^{m}$K $^{m}$S V Cs.

उप॑ । त्वा । देवः । अग्रभीत् । चमसेन । बृहस्पतिः ।
इन्द्र॑ । गीःऽभिः । नः । आ । विश । यजमानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां बृहस्पतिः बृहतां महतां देवानां पतिः हिताचरणेन पालयिता एतन्नामा देवः चमसेन । चमन्ति अदन्ति अत्र सोमम् इति चमसः सोमपात्रम् । तेन उपाग्रभीत् उपगृहीतवान् । अन्यत्र यथा न गच्छसि तथा स्वाधीनं कृतवान् इत्यर्थः । ग्रहेर्लुङ् । "हग्रहोर्भः०" । अतो बृहस्पतिपरिग्रहात् हे इन्द्र सुन्वते सोमम् अभिषुण्वते यजमानाय । "क्रियार्थोपपदस्य०" इति चतुर्थी । यजमानं धनादिना पोषयितुं नः प्रयोक्तृणाम् अस्माकं गीर्भिः स्तुतिभिः आ विश । स्तूयमान आगच्छेत्यर्थः ॥

अष्टमी ॥

इन्द्र॑स्य कु॒क्षिर॑सि सोम॒धान॑ आ॒त्मा दे॒वाना॑मु॒त मानु॑षाणाम् ।
इ॒ह प्र॒जा ज॑नय॒ यास्ते॑ आ॒सु या अ॒न्यत्रे॒ह तास्ते॑ रमन्ताम् ॥ १ ॥
इन्द्र॑स्य । कु॒क्षिः । अ॒सि॒ । सो॒म॒ऽधानः॑ । आ॒त्मा । दे॒वाना॑म् । उ॒त । मानु॑षाणाम् ।
इ॒ह । प्र॒ऽजाः॑ । ज॒न॒य॒ । याः । ते॒ । आ॒सु । याः । अ॒न्यत्र॑ । इ॒ह । ताः ।
ते॒ । रम॒न्ता॒म् ॥ १ ॥

अत्र अतिसृज्यमानो वृषभः पूतभृत्पात्रं वा संबोध्यते । हे वृषभ हे पूतभृत्कलश वा त्वं सोमधानः । सोमो धीयते निधीयतेत्रेति सोमधानः । अधिकरणे ल्युट् । सोमाधारभूतः इन्द्रस्य कुक्षिः जठरम् असि । तथा । उतशब्दः चार्थे । देवानां मानुषाणां च आत्मा शरीरम् असि । किं च इह लोके प्रजाः पुत्रादिका जनय उत्पादय । आसु पुरोवर्तिनीषु गोषु. यजमानादिरूपासु वा विक्षु ते त्वदर्थं या विद्यन्ते अन्यत्र अन्यस्मिन् देशे या गावो यजमानादिरूपा वा प्रजा विद्यन्ते ताः प्रजा इह अस्मिन् लोके ते त्वदर्थं रमन्ताम् सुखेन विहर-

१ P आशु. We with P J Cr.

न्तु । यद्वा इह आसु गोषु प्रजासु वा प्रजाः जनय यास्वदर्थम् आसु वभूवुः । तथा अन्यत्र च या भवन्ति ता इह अस्मिन् प्रदेशे त्वदर्थं रमन्ताम् । ✕आसु । "ऊडिदम्०" इति विभक्तेरुदात्तत्वम् । यद्वा । अस्तेर्लिटि प्रथमपुरुषबहुवचने उसि अन्त्यलोपश्छान्दसः । भूभावो व्यत्ययेन न प्रवर्तते । यद्वृत्तयोगाद् अनिघाते प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तत्वम् । अस गतिदीप्त्यादानेषु । अस्माद् वा लिट् । सुबन्तपक्षे तिङन्तपक्षे च स्वरः समानः✕ ॥

नवमी ॥

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥

शुम्भनी इति । द्यावापृथिवी इति । अन्तिसुम्ने इत्यन्तिऽसुम्ने । महिव्रते इति महिऽव्रते ।

आपः । सप्त । सुस्रुवुः । देवीः । ताः । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ १ ॥

शुम्भनी शुम्भन्यौ । ✕शुभ शुम्भ शोभार्थे । अस्मात् ल्युट्✕ । सर्वस्य शोभाकारिण्यौ । द्यावापृथिव्योर्मध्ये विश्वस्यावस्थानात् । अन्तःसुम्ने । स्वपन्तीति स्वप्नाः अज्ञानावृता जनाः । ✕"स्वपो नन्" इति नन् प्रत्ययः कर्तरि व्यत्ययेन भवति✕ । स्वप्नाः अचेतनाश्चेतनाश्च ययोरन्तः मध्ये वर्तन्ते तादृश्यौ महिव्रते महद् व्रतं कर्म ययोस्ते द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ । वर्तेते इति शेषः । तथा सप्त सर्पणस्वभावाः सप्तसंख्याका वा देवीः देव्यः द्योतमाना आपः सुस्रुवुः स्रवन्ति । ✕स्रु गतौ✕ । ताः द्यावापृथिव्यौ आपश्च अंहसः पापाद् नः अस्मान् मुञ्चन्तु मोचयन्तु पृथक् कुर्वन्तु ॥

दशमी ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत ।

---

१ K K V सुस्रुवुर्देवी°.

---

1 S' wrongly आसुः.

अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ २ ॥

मुञ्चन्तु । मा । शपथ्यात् । अथो इति । वरुण्यात् । उत ।

अथो इति । यमस्य । पड्वीशात् । विश्वस्मात् । देवऽकिल्बिषात् ॥ २ ॥

"मुञ्चन्तु मा शपथ्यात्" इत्येषा पूर्वमेव व्याख्याता [ ६. ९६. २ ] ॥

[इति] दशमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

स्त्रीपुरुषयोः परस्परविद्वेषणार्थं बाणपर्ण्याख्यौषधिचूर्णं लोहिताजायाः क्षीरद्रप्सेन संमिश्र्य "तृष्टिके" इति द्व्यृचेन अभिमन्त्र्य शय्यायां परिकिरेत् ॥

तथा दौर्भाग्यकरणार्थम् "आ ते ददे" इत्यनया मन्त्रोक्तान् अवयवान् स्पृशन् अभिमन्त्रयेत विद्वेषिणं दृष्ट्वा जपेद् वा ॥

सूत्रितं हि । "तृष्टिके[ ७. ११८ ] इति बाणपर्णीम् । आ ते ददे[ ७. ११९ ] इति मन्त्रोक्तानि संस्पृशति । अपि चान्वाह" इति [ कौ० ४. १२ ] ॥

रक्षोग्रहादिभैषज्यार्थं "प्रेतो यन्तु" इत्यनया आज्यसमित्पुरोडाशादिशष्कुल्यन्तद्रव्याणां त्रयोदशानाम् अन्यतमं जुहुयात् । "प्राग्नये[ ६. ३४ ] प्रेतः[ ७. ११९. २ ] इत्युपदधीत" इति हि [ कौ० ४. ७ ] सूत्रम् ॥

नैर्ऋतकर्मसु चतुर्थे कर्मणि काकस्य जङ्घायां सपुरोडाशं लोहकण्टकं बद्ध्वा "प्र पतेतः" इत्यनया तं काकं विसृजेत् ॥

पञ्चमे नैर्ऋतकर्मणि सूत्रोक्तलक्षणैर्वस्त्रैः परिधानाच्छादनशिरोवेष्टनानि कर्ता कृत्वा "या मा लक्ष्मीः" इत्यनया लोहितखण्डसहितम् उष्णीषम् उदके प्रक्षिपेत् ॥

"एकशतं लक्ष्म्यः" इत्यनया आच्छादनवस्त्रं लोहखण्डेन सह अप्सु प्रक्षिपेत् ॥

"एता एनाः" इत्यृचा परिधानीयं लोहेन सह अप्सु प्रक्षिपेत् ॥

तद् उक्तं संहिताविधौ । "कृष्णचैलपरिहितः । निर्ऋतिकर्माणि प्रयुङ्क्ते" इति प्रक्रम्य "कृष्णशकुनेः सव्यजङ्घायाम् अङ्कम् अनुग्रथ्य अङ्के पुरोडाशं

१ See VI. 96. 2.

1 S' बाणप°. We with *Kausika*. 2 S' °स्पृशं°. 3 S' परिहतो. 4 S' प्रयुक्त इति for प्रयुङ्क्ते इति. We with *Kausika*.

"प्र पतेत इत्यनावृतं प्रपातयति । नीलं संधाय लोहितम् आच्छाद्य शुक्लं "परिणह्य द्वितीययोर्णीषम् अङ्केनोपसाद्य सव्येन सहाङ्केन अवाङ् अप्सु "प्रविध्यति । तृतीययाच्छन्नं चतुर्थ्या संवीतम्" इति [कौ० ३. १] ॥

काम्यकर्मसु विघ्नरूपदुःस्वप्नदर्शनदोषपरिहारार्थं "प्र पतेतः पापि लक्ष्मि" इति चतसृभिर्दुःस्वप्नदर्शनम् अभिषिञ्चेत् । "चत्वारः खलु विनायका भवन्ति" इति [शा० क० ४] प्रक्रम्य शान्तिकल्पेऽभिहितम् । "ताभिष्ट्वाम् अभिषिञ्चामि पावमानीः पुनन्तु त्वा । प्र पतेतः पापि लक्ष्मीति चतस्रः" इति [शा० क० ६. १६] ॥

सर्वज्वरभैषज्यार्थं सूत्रोक्तप्रकारेण मण्डूकं बद्ध्वा खट्वाया अधः संस्थाप्य तस्या उपरि स्थितं व्याधितं "नमो रूराय" इति द्व्यृचाभिमन्त्रितोदकेन अवसिञ्चेत् । सूत्रितं हि । "नमो रूरायेति शयने निवेश्य इषीकाचितं मंण्डूकं नीललोहिताभ्यां सूत्राभ्या सकक्षं बद्ध्वा" इति [कौ० ४. ८] ॥

स्वस्त्ययनकामः "आ मन्द्रैः" इति द्व्यृचेन इन्द्रस्य यागम् उपस्थानं वा कुर्यात् । "त्युमू षु[७. ९०] त्रातारम[७. ९१] आ मन्द्रैः[७. १२२] इति स्वस्त्ययनकामः" इति हि [कौ० ७. १०] सूत्रम् ॥

शवसंस्कारानन्तरं कर्ता प्रतिदिनं स्वस्त्ययनार्थम् "आ मन्द्रैः" इति जपेत् ॥

तथा अग्निष्टोमे हारियोजनग्रहहोमानुमन्त्रणम् "आ मन्द्रैः" इति कुर्यात् । "हारियोजनहोमम् आ मन्द्रैः" इति वैतानसूत्रात् [वै० ३. १३] ॥

परसेनात्रासनार्थं "मर्माणि ते" इत्यनया कवचम् अभिमन्त्र्य धारणार्थं राज्ञे दद्यात् । "मर्माणि त इति क्षत्रियं संनाहयति" इति हि [कौ० २. ७] सूत्रम् ॥

महाव्रते दुन्दुभ्याहननानन्तरं "मर्माणि ते" इति राजानं संनाहयेत् ।

---

1 So S'. *Kausika*: प्रपादयति. 2 S' शुक्लं. 3 So S'. *Kausika*: अपविध्यति. Darila with Sâyaṇa. 4 S' °प्रदोष°. 5 S' °कल्पोहितम्. 6 So S'. *Kausika*: शकुनीनिवपीकांजिमंडूकं where Dârila observes: * * * बध्वा शकुनीकरोति । मंत्रोक्तान् । अधस्तल्पे हरितसूत्रेण सव्यजघासु बध्वेत्यादिवत् । वपीकांजिमंडूकं (*sic*) करोति । इषीकेव रेषा यस्य स इषीकांजिः । तान् &c. 7 S' क्षत्रियसंनाह°.

उक्तं वैताने। "तीर्थदेशे राजानम् अन्यं वा मर्माणि 'त इति संनद्धम्" इति [वै० ६. ४] ॥

तत्र प्रथमा ॥

तृष्टिके तृष्टवन्दन उदमूं छिन्धि तृष्टिके।
यथा कृतद्विष्टासोमुष्मै शेप्यावते ॥ १ ॥

तृष्टिके। तृष्टऽवन्दने। उत्। अमूम्। छिन्धि। तृष्टिके।
यथा। कृतऽद्विष्टा। असः। अमुष्मै। शेप्याऽवते ॥ १ ॥

हे तृष्टिके। कुत्सिता तृष्टा तृष्टिका। "कुत्सिते" इति कप्रत्ययः। ञितृष पिपासायाम् इत्यस्मात् तृष्टशब्दः। अतिपिपासया अन्तः शरीरे दाहो जन्यते। अत्र जन्ये जनकशब्दः। अतः तृष्टशब्दस्य दाहजनकत्वमात्रमेव अत्रार्थो विवक्षितः। हे कुत्सिते दाहजनिके हे बाणपर्ण्याख्यौषधे हे तृष्टवन्दने। वन्दना नाम लतानां वृक्षाणां चोपरि प्ररूढास्तदीयशाखाम् आवेष्टमाना विभिन्नपर्णलताविशेषाः। तृष्टाः दाहजनिका वन्दना लताविशेषा यस्याः सा ओषधिः स्वयमपि दाहजनिका दाहकलतोपेता च। एतादृशि अतिरुक्षे ओषधे त्वम् अमूं स्त्रियम् उच्छिन्धि उद्गृह्य विभिन्नां कुरु। भोक्तुः पुरुषाद् बलात्कारेण पृथक्कुर्वित्यर्थः। उच्छेदनप्रकारमेवाह। हे तृष्टिके कोपजनिके हे ओषधे शेप्यावते। शेप इति पुंस्प्रजननस्य नाम। तत्र भवं शेप्यं वीर्यं तद्वते प्रजननसामर्थ्यवते संभोगक्षमाय अमुष्मै पुरुषाय यथा कृतद्विष्टा कृतं संपादितं द्विष्टं द्वेषणं क्रोधो यया द्वेषकारिणी यथा येन प्रकारेण असः भवेः। अस्तेर्भेटि अडागमः। योषिदोषध्योः अभेदविवक्षया भवेरिति मध्यमपुरुषप्रयोगः। यद्वा। अस इति। तिप स्थाने व्यत्ययेन सिप्। यथा असौ योषित् पुरुषाय द्विष्टा भवेत् तथा अमूम् उच्छिन्धीति ॥

१ K K$^{m}$ V शेय्या°. We with A B B$^{n}$ D R S$^{m}$ P P$^{2}$ J Cs. २ P छंधि. We with P J Cr. ३ P$^{2}$ शेष्या°. We with P J Cr.

1 S′ तीर्व° for तीर्थ°. 2 S′ बाणप°.

द्वितीया ॥

तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि ।
परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव ॥ २ ॥

तृष्टा । असि । तृष्टिका । विषा । विषातकी । असि ।
परिऽवृक्ता । यथा । असंसि । ऋषभस्य । वशाऽइव ॥ २ ॥

हे ओषधे तृष्टिका कुत्सिता दाहजनिका त्वं तृष्टा दाहजनकस्वभावा असि भवसि । तृतीयपादगतो यथाशब्दः अत्रापि अनुषज्यते । यथा तृष्टासि । यथा च विषा विषस्वरूपा त्वं विषातकी । ※तकि कृच्छ्रजीवने※ । विषम् आतङ्कयति संयोजयतीति विषातकी । विषस्य संयोजयित्री असि । यथा च परिवृक्ता सर्वैः परिवर्जिता अससि भवसि । स्प्रष्टुम् अयोग्यासि । चरमः पादो दृष्टान्तः । ऋषभस्य पुंगवस्य वशेव यथा वशा वन्ध्या गौः पुंगवस्य परिवर्जनीया भवति एवम् इयं योषिदपि भोगयोग्या च न भवेत् ॥ यद्वा एकं विशेषणम् ओषधिपरतया द्वितीयं योषित्परतया व्याख्येयम् । यथा ओषधे त्वं तृष्टासि एवम् इयं योषित् तृष्टिका पुरुषस्य क्रोधरूपदाहजनिका भवेत् । यथा च ओषधे त्वं विषातक्यसि एवम् इयं योषित् विषा पुरुषस्य विषरूपिणी स्यात् । यथा विषम् अभोज्यम् एवम् इयम् इति विषेत्युक्तम् । यथा च ओषधे त्वं परिवृक्ता सर्वैः प्राणिभिः परिवर्जिता असंसि भवसि एवम् इयं योषित् स्वपुरुषस्य परिवृक्ता संभोगेन त्यक्ता भवेत् । तत्र दृष्टान्तः । ऋषभस्य वशेवेति । यथा पुंगवस्य वन्ध्या गौर्भोग्या न भवति एवम् इयं पुरुषस्य भोग्या न स्याद् इति ॥

तृतीया ॥

आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेहं हृदयाद् ददे ।
आ ते मुखस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे ॥ १ ॥

आ । ते । ददे । वक्षणाभ्यः । आ । ते । अहम् । हृदयात् । ददे ।
आ । ते । मुखस्य । समऽकाशात् । सर्वम् । ते । वर्चः । आ । ददे ॥१॥

हे नारि ते तव वक्षणाभ्यः। ऊरुसंधिर्वङ्क्षण इत्युच्यते[1]। तेन स्त्रीप्रजननं लक्ष्यते। स्त्रीलिङ्गत्वं योनिशब्दापेक्षया बहुवचनं तु अवयवबहुत्वापेक्षया। यद्वा। वक्ष रोधे इति धातुः। रुध्यते पुरुषो यैरिति। वक्षणाः। व्यत्ययेन टाप्। कटिविकट्यूरुपादेभ्य इत्यर्थः। तेभ्योऽङ्गेभ्यः वर्चः सौभाग्यलक्षणं तेजः आ ददे स्वीकरोमि। अपहरामीत्यर्थः। तथा हे नारि ते तव हृदयात् समीचीनपदार्थध्यायिनो धीरान्मनसः सकाशाद् वर्चः साधुपुरुषध्यानरूपं तेजः अहम् आ ददे। नारीविषयदौर्भाग्यकामोहम् अपहरामीत्यर्थः। तथा ते तव मुखस्य विश्वाह्लादकस्य वदनस्य संकाशाद् वर्चः विश्वसंमोहनरूपं तेजः। आ इति उपसर्गश्रुतेर्ददे इत्यनुषङ्गः। किं बहुना ते तव सर्वम् सर्वावयववर्ति वर्चः सौभाग्यलक्षणं तेजः आ ददे अपहरामि। "आङो दोनास्यविहरणे" इति आत्मनेपदम्॥ अयं मन्त्रः प्रकरणात् स्त्रीविषयदौर्भाग्यकरणे विनियुज्यते॥

चतुर्थी॥

प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः।
अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः॥ २॥

प्र। इतः। यन्तु। विऽआध्यः। प्र। अनुऽध्याः। प्रो इति। अशस्तयः। अग्निः। रक्षस्विनीः। हन्तु। सोमः। हन्तु। दुरस्यतीः॥ २॥

व्याध्यः आधयो मानस्यः पीडाः। विविधा मनोनिष्ठाः पीडा व्याधयः रोगा वा। इतः अस्माद् रक्षोग्रहादिगृहीतात् पुरुषात् प्र यन्तु प्रगच्छन्तु। व्याङ्पूर्वाद् दधातेः किः। "संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः" इति "जसि च" इति विहितस्य गुणस्याभावे यण् आदेशः। यद्वा विविधानि आध्यानानि दुश्चिन्तनानि प्रगच्छन्तु। व्याङ्पूर्वाद् ध्यायतेः "अन्येभ्योपि दृश्यते" इति किपि संप्रसारणे च यण् आदेशः। तथा अनुध्याः अनुध्यानानि रक्षोग्रहादिविषयाणि अनुग-

१ P om. the avagraha.

तानि संततानि स्मरणानि प्र । यन्तु इति अनुषङ्गः । तथा अशस्तयः अस्तुतयः परकृता निन्दाः हिंसा वा प्रो प्रैव यन्तु । किं च अग्निर्देवः रक्षस्विनीः रक्षो राक्षसः तद्वतीः तत्सहिताः पिशाचीः हन्तु विनाशयतु । सोमश्च दुरस्यतीः दुष्टं परेषाम् इच्छन्तीः हन्तु । ॥ "दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति" इति दुष्टशब्दस्य क्यचि दुरस्भावो निपात्यते । तदन्तात् शतृप्रत्ययः । "उगितश्च" इति ङीप् ॥

पञ्चमी ॥

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत ।
अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि ॥ १ ॥

प्र । पत । इतः । पापि । लक्ष्मि । नश्य । इतः । प्र । अमुतः । पत ।
अयस्मयेन । अङ्केन । द्विषते । त्वा । आ । सजामसि ॥ १ ॥

हे पापि पापरूपिणि लक्ष्मि । अलक्ष्मीत्यर्थः । ॥ "केवलमामक०" इत्यादिना पापशब्दात् ङीप् । पापि लक्ष्मि इत्युभयत्र "अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः" इति ह्रस्वत्वम् ॥ । इतः अस्मात् प्रदेशात् प्र पत प्रगच्छ । तथा इतः अस्मिन् प्रदेशे । ॥ सप्तम्यर्थे तसिः ॥ । नश्य अदृष्टा विनष्टा भव । ॥ णश अदर्शने । दैवादिकः ॥ । किं च अमुतः । अदःशब्दो विप्रकृष्टवाची । अतिदूराद् देशादपि प्र पत प्रगच्छ । अपि च हे अलक्ष्मि अतिदूराद् देशादपि प्रगच्छन्तीं त्वा त्वाम् अयस्मयेन अयोमयेन अङ्केन कण्टकेन सह द्विषते शत्रवे सचामसि संबध्नीमः । ॥ षच समवाये । अयस्मयेनेति । "अयस्मयादीनि च्छन्दसि" इति निपातनाद् भसंज्ञायां पदसंज्ञानिबन्धनरुत्वाभावः ॥

षष्ठी ॥

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥ २ ॥

1 S' च for च्छन्दसि.

या। मा। लक्ष्मीः। पतयालूः। अजुष्टा। अभिऽचस्कन्द। वन्दनाऽइव। वृक्षम्।

अन्यत्र। अस्मत्। सवितः। ताम्। इतः। धाः। हिरण्यऽहस्तः। वसु। नः। रराणः॥ २॥

पतयालूः पातयित्री दौर्गत्यकारिणी। पत गत्याम् इति चुरादौ अदन्तः पठ्यते। तस्माद् आलुच् प्रत्ययः। अजुष्टा अप्रिया निन्द्या या लक्ष्मीः मा माम् अभिचस्कन्द अभितो व्याप्ता वर्तते। तत्र दृष्टान्तः वन्दनेव वृक्षम् इति। वन्दना लताविशेष इति "तृष्टिके तृष्टवन्दने" इत्यत्र [११८] उक्तम्। सा यथा वृक्षम् अभित आवेष्ट्य वर्तते। स्कन्दिर्गतिशोषणयोः। अलक्ष्मीः मा मां शोषयामास वा। यथा वृक्षं वन्दना शोषयति। प्ररूढवन्दनस्तरुः शुष्यतीति प्रसिद्धम्। हे सवितः सर्वस्य प्रेरक देव ताम् अलक्ष्मीम् अस्मत् अस्मत्तः इतः अस्माद् अन्यत्र प्रदेशे धाः धेहि स्थापय। दधातेर्लेटि "इतश्च लोपः०" इति सिप इकारलोपः। किं कुर्वन्। हिरण्यहस्तः सुवर्णयुक्तपाणिः हिरण्मयपाणिर्वा नः अस्माकं वसु धनं रराणः प्रयच्छन्। रा दाने। लिटः कानच्। "हिरण्यपाणिम् ऊतये सवितारम् उप ह्वये" [ऋ०१.२२.५] इत्यादौ सवितुर्हिरण्यहस्तत्वम् आम्नायते॥

सप्तमी॥

एकशतं लक्ष्म्यो३ मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोधि जाताः।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ॥ ३॥

---

१ P पतय। लू। P² J C¹ पत्य। लूः। We with Sâyaṇa. २ P P² J C¹ वंदनः°. We with Sâyaṇa. ३ B D K K¹ R S¹ V C₂ १ for ३. We with Λ.

1 S′ simply has यालक्ष्मीः, which we could read either as या लक्ष्मीः or as या अलक्ष्मीः. The fact that Sâyaṇa has अलक्ष्मीः and अलक्ष्मीम् below does not help us in deciding whether he read लक्ष्मीः or अलक्ष्मीः in his text. 2 S′ omits the words इतश्च.

एकऽशतम् । लक्ष्म्यः । मर्त्यस्य । साकम् । तन्वा । जनुषः । अधि । जाताः ।
तासाम् । पापिष्ठाः । निः । इतः । प्र । हिण्मः । शिवाः । अस्मभ्यम् ।
जातऽवेदः । नि । यच्छ ॥ ३ ॥

एकशतम् एकाधिकशतसंख्याका लक्ष्म्यः मर्त्यस्य मरणधर्मणः मनुष्यस्य तन्वा शरीरेण साकम् सह जनुषः । ॐ अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी ॐ । जन्मनः उत्पत्तिप्रभृति जाताः उत्पन्नाः । मनुष्यस्य शरीरोत्पत्तिसमकाल एव एकशतं लक्ष्म्य उत्पन्नाः । तासां लक्ष्मीणां मध्ये पापिष्ठाः अतिशयेन पापीः अलक्ष्मीः इतः अस्मात् प्रदेशाद् निः निःशेषं प्र हिण्मः प्रेषयामः अपसारयामः । ॐ हि गतौ वृद्धौ च । स्वादित्वात् श्नुः । "हिनु मीना" इति णत्वम् । "लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः" इति उकारलोपः ॐ । हे जातवेदः जातानां वेदितः अग्ने तासां मध्ये याः शिवाः मङ्गलकारिण्यो लक्ष्म्यः ताः अस्मभ्यं नि यच्छ नियमय । स्थापयेत्यर्थः । ॐ यमेः "इषुगमियमां छः" इति छादेशः ॐ । यद्वा नि यच्छ नितरां प्रयच्छ । ॐ दाण् दाने । "पाघ्रा०" इत्यादिना यच्छादेशः ॐ ॥

अष्टमी ॥

एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव ।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ॥ ४ ॥

एताः । एनाः । विऽआकरम् । खिले । गाः । विस्थिताःऽइव ।
रमन्ताम् । पुण्याः । लक्ष्मीः । याः । पापीः । ताः । अनीनशम् ॥ ४ ॥

एताः निर्दिष्टा एनाः एकशतं लक्ष्म्य इत्यन्वादिष्टा लक्ष्मीः व्याकरम् विविच्य आकरोमि द्विधा करोमि । ॐ करोतेर्लुङि "कृमृदरुहिभ्यः०" इति च्लेः अङ् । "ऋदृशोऽङि गुणः" इति गुणः ॐ । तत्र द-

१ So A B B D K K R S P P J V C- Cr. Only, A K R have the anusvâra, the others have °म्. At first the anusvâra may have stood, as it often wrongly stands, for °न्, and then the °म् may have been substituted for the mistaken anusvâra.

ष्टान्तः। यथा खिले व्रजे विष्ठिताः विशेषेण संभूय स्थिता एकत्र प्रदेशेवस्थिता गा यथा विविञ्चन्ति गोपालास्तत्तत्कार्यकरणाय ॥ तत्र पुण्याः कल्याण्यो लक्ष्मीः लक्ष्म्यः रमन्ताम् मयि सुखेन निवसन्तु। याः पापीः पापकारिण्यो दुर्लक्ष्म्यः ताः सर्वा अनीनशन्। नश्यन्तु इत्यर्थः। स्वार्थिको णिच्। नाशयन्तु वा देवाः ॥

नवमी ॥

नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे।
नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने ॥ १ ॥

नमः। रूराय। च्यवनाय। नोदनाय। धृष्णवे।
नमः। शीताय। पूर्वकामऽकृत्वने ॥ १ ॥

च्यवनाय। च्युङ् मुङ् गतौ। "अनुदात्तेतश्च हलादेः" इति युच्। च्यावयित्रे शारीरस्वेदपातयित्रे नोदनाय। नुद प्रेरणे। इतस्ततः प्रेरकाय विक्षेपयित्रे धृष्णवे। धृष प्रसहने इति चुरादौ पठ्यते। "आधृषाद् वा" इति विकल्पितो णिच्। "त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः [क्नुः]" इति क्नुः। प्रसहनकारिणे रूराय उष्णज्वराय ज्वराभिमानिने देवाय नमः नमस्कारोस्तु। तथा पूर्वकामकृत्वने पूर्वेषाम् अभिलाषाणां कर्तित्रे छेत्त्रे शीताय ज्वराय शीतज्वराभिमानिने नमः नमस्कारोस्तु। शीतज्वरो हि इदं करोमि इदं करोमीति पूर्वं काम्यमानम् अभिलाषं निकृन्तति चिरकालं बाधाकारित्वात्। कृती छेदने। "अन्येभ्योपि दृश्यन्ते" इति क्वनिप्। "नेड्वशि कृति" इति इण्निषेधः ॥

दशमी ॥

यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येतीमं मण्डूकमभ्येत्यव्रतः ॥ २ ॥

यः। अन्येद्युः। उभयऽद्युः। अभिऽएति। इमम्। मण्डूकम्। अभि। एतु। अव्रतः ॥ २ ॥

१ A B K K̈ R P P̈ J V C s चोद्°. We with D S̈. २ P रूरा°. We with P J C p.

यो ज्वरः अन्येद्युः अन्यस्मिन् दिवसे इमं पुरुषम् अभ्येति अभिगच्छति । यश्च उभयेद्युः उभयोर्दिवसयोः । अतीतयोरिति शेषः । अभ्येति । चातुर्थिकज्वर इत्यर्थः । इदम् अनियतकालागामिनो ज्वरस्य उपलक्षणम् । ॥ "सद्यः परुत् परार्यैषमः०" इति सूत्रे अन्येद्युरुभयेद्युरिति शब्दौ निपातितौ ॥ । अव्रतः । व्रतशब्दो नियमवाची । अनियतकालः स ज्वरः मण्डूकम् भेकम् अभ्येतु अभिगच्छतु ॥

एकादशी ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिद् वि यमन् विं न पाशिनोति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥

आ । मन्द्रैः । इन्द्र । हरिऽभिः । याहि । मयूररोमऽभिः ।
मा । त्वा । के । चित् । वि । यमन् । विम् । न । पाशिनः । अति । धन्वऽइव । तान् । इहि ॥ १ ॥

हे इन्द्र मन्द्रैः मदशीलैः स्तुत्यैर्वा मयूररोमभिः मयूररोमसदृशरोमयुक्तैः श्यामवर्णैः हरिभिः अश्वैः आ याहि आगच्छ । हे इन्द्र त्वा त्वां के चित् स्तोतारः मा वि यमन् स्तुतिभिर्मा विशेषेण नियच्छन्तु । मा निरौत्सुरित्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः विं न पाशिन इति । नशब्द उपमार्थे । यथा विम् पक्षिणं पाशिनः पाशवन्तो व्याधाः पाशैर्बध्नन्ति तद्वत् । तान् अन्यान् स्तोतॄन् अति । ॥ अतिक्रमणे अतिः कर्मप्रवचनीयः ॥ । अतीत्य इहि गच्छ अस्मान् । तत्र दृष्टान्तः धन्वेवेति । यथा धन्व निर्जलं मरुप्रदेशं पिपासिताः पान्थाः शीघ्रम् अतियन्ति तद्वत् । मद्व्यतिरिक्तान् अन्यान् स्तोतॄन् अतीत्य अस्मान् एव शीघ्रम् आगच्छेत्यर्थः ॥

द्वादशी ॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।

---

१ A B D K K R S C[s] °र्याहि for °र्याहि. We with P J. २ P C[p] याहि.
1 S' अभ्यैति.

उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥[1] १ ॥

मर्माणि। ते। वर्मणा। छादयामि। सोमः। त्वा। राजा। अमृतेन। अनु। वस्ताम्।

उरोः। वरीयः। वरुणः। ते। कृणोतु। जयन्तम्। त्वा। अनु। देवाः। मदन्तु ॥ १ ॥

हे जयकाम राजन् ते त्वदीयानि मर्माणि मर्मस्थानानि वर्मणा कवचेन छादयामि प्रयोक्ता अहं संवृणोमि। सोमो राजा त्वा त्वाम् अमृतेन अविनाशिना तेजसा वा अनु वस्ताम् मर्मच्छादनानन्तरम् आच्छादयतु। ✕वस आच्छादने। आदादिकः। अनुदात्तेत्। लोटि "आम एतः" इति आम् आदेशः✕॥ तथा उरोः बहोरपि वरीयः उरुतरं सुखं वरुणः शत्रुनिवारकः एतन्नामा देवः ते तुभ्यं कृणोतु करोतु। ✕वरीय इति। उरुशब्दाद् ईयसुन्। "प्रियस्थिर०" इत्यादिना वर् आदेशः✕॥ तथा देवाः इन्द्राद्याः सर्वे जयन्तम् परसेनां त्रासयन्तं [त्वा] त्वाम् अनु मदन्तु अनुहृष्यन्तु। जहि भिन्धि इत्येवंविधैर्वाक्यैः प्रोत्साहयन्तु इत्यर्थः ॥

तृतीयं सूक्तम्।

सप्तमकाण्डे दशमोनुवाकः।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

श्रीमद्राजाधिराजराजपरमेश्वरश्रीवीरहरिहरमहाराजधुरंधरेण सायणार्येण विरचिते अथर्वसंहिताभाष्ये सप्तमकाण्डः समाप्तः ॥

[1] S' inserts इंद्राद्याः after त्वाम् again.

श्रीगणाधिपतये नमः ॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानाम् उपक्रमे ॥
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥
यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ॥
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

अष्टमकाण्डे पञ्चानुवाकाः । तत्र आद्येनुवाके पञ्च सूक्तानि । तेषु "अन्तकाय मृत्यवे" इत्यादिसूक्तद्वयम् अर्थसूक्तम् इत्युच्यते । अनेन उपनयनकर्मणि माणवकस्य नाभिं संस्पृश्य आचार्यो जपं कुर्यात् । "उपनयनम्" प्रक्रम्य सूत्रितम् । "दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशे संस्तभ्य जपति अन्तकाय मृत्यवे[८.१] आ रभस्व"[८.२] इति [कौ० ७.६] ॥

तथा आयुष्कामस्य "अन्तकाय" इति सूक्तद्वयेन शरीरम् अभिमन्त्रयेत ॥

तथा ऋषिहस्तेन आयुष्कामस्य शरीरम् अभिमन्त्रयेत ॥

सूत्रितं हि । "उप प्रियम्[७.३३] अन्तकाय मृत्यवे[८.१] आ रभस्व"[८.२] इति [कौ०७.९] ॥

तथा अस्य अर्थसूक्तस्य आयुष्यगणे पाठाद् "विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्" [कौ०१४.३] इत्यादिषु विनियोगोनुसंधेयः ॥

तथा त्रिंशन्महाशान्तितन्त्रभूतायां महाशान्तौ "अन्तकाय" इत्यनेन जपं कुर्यात् । उक्तं नक्षत्रकल्पे । "पुनस्तदेव जप्यं तु शंतातीयम् अथावतः । अन्तकाया रभस्वेति" इति [न०क०२३] ॥

---

1 S' °देशसं°. 2 S' आयुष्कामांतकायेति.

तत्र प्रथमा ॥

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥ १ ॥

अन्तकाय । मृत्यवे । नमः । प्राणाः । अपानाः । इह । ते । रमन्ताम् । इह । अयम् । अस्तु । पुरुषः । सह । असुना । सूर्यस्य । भागे । अमृतस्य । लोके ॥ १ ॥

आयुष्कामस्य आयुर्वृद्धिः मृत्योरधीनेति तन्नमस्कार आदौ क्रियते । अन्तकाय अन्तं करोतीत्यन्तकस्तस्मै सर्वप्राणिनाशकर्त्रे मृत्यवे प्राणिवियोजकाय एतन्नामकाय देवाय नमः नमस्कारः । अस्त्विति शेषः । हे आयुष्काम माणवकादे ते तव प्राणाः । प्राणन्तीति प्राणाः बहिर्मुखसंचारिणो वायवः । अपानाः । अप अनन्तीत्यपानाः अवाङ्मुखसंचारिणः । ते च अन्तकानुग्रहाद् इह अस्मिन् शरीरे रमन्ताम् क्रीडन्तु । प्राणापहर्तुर्मृत्योर्नमस्कारेण प्रीतत्वात् तद्विषयभीतिम् अपहाय सुखेन संचरन्तु इत्यर्थः । प्राणापानयोर्व्यापारवृत्तेर्बहुत्वाद् बहुवचनप्रयोगः । एवं प्राणापानयोरनपगमम् आशास्य इदानीं तत्सहितस्य पुरुषस्य अनपगतिम् आशास्ते । अयं प्राणप्रच्युतिं शङ्कमानः पुरुषः असुना प्राणेन । वृत्तिबहुत्वानपेक्ष्यात् सामान्याभिप्रायेण एकवचनम् । तेन सह सर्वदा अविनाभूतः सन् इह भूलोक एवास्तु भवतु । इह अस्त्विति यद् उक्तं तद् विशिनष्टि । सूर्यस्य आदित्यस्य भागे प्रदेशविशेषे भूलोके । सूर्यव्याप्तेर्विषयभूतास्त्रयो भागाः द्यौरन्तरिक्षं भूश्च । तत्र अपेक्षितत्वाद् इह भागशब्देन भूलोकः परिगृह्यते । तम् एव विशिनष्टि । अमृतस्य लोके । अमृतशब्देनात्र पौत्रादिरूपेणावस्थानम् अभिधीयते मनुष्यैराशास्यमानत्वात् । श्रूयते हि । "प्रजाम् अनु प्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम्" इति [तै० ब्रा० १.५.५.६] । तथाविधस्य अमृतस्य लोके । लोक्यत इति लोकः स्थानं भूलोक इत्युक्तं भवति ॥

1 S' °पारावृत्ते°. 2 S' नपगतिम्. 3 S' °बहुत्वानपेक्षात्सामान्या°. 4 S' °वस्थानावस्थानमभि°. 5 S' प्रजायस्व.

द्वितीया ॥

उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान्।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ २ ॥

उत्। एनम्। भगः। अग्रभीत्। उत्। एनम्। सोमः। अंशुऽमान्।
उत्। एनम्। मरुतः। देवाः। उत्। इन्द्राग्नी इति। स्वस्तये ॥ २ ॥

भगो नाम आदित्यमूर्तिविशेषः। "अंशश्च भगश्च" [तै० आ० १. १३. ३] इति अदितिपुत्राणां मध्ये श्रवणात्। सर्वप्राणिभिर्भजनीयो भगो देवः एनं मूर्च्छालक्षणे अन्धे तमसि प्रविशन्तं पुरुषम् उद् अग्रभीत् उद्धृतवान्। "हृग्रहोर्भश्छन्दसि" इति भत्वम्॥ तथा अंशुमान् अमृतमयैरंशुभिस्तद्वान् सोमो देवः। एनम् उत्। अग्रभीत् इत्यनुषज्यते। एवं मरुतः एकोनपञ्चाशत्संख्याका देवा एनम् उत्। अग्रभीषुरिति वचनविपरिणामेन अनुषङ्गः कर्तव्यः। एवम् इन्द्राग्नी इन्द्रश्च अग्निश्च उभावपि मुख्यौ देवौ उदग्रहीष्टाम्। अत्र द्विवचनविपरिणामः। किमर्थम् उद्ग्रहणम् इति तत्राह। स्वस्तये। सु अस्तीति स्वस्तिः। क्षेमायेत्यर्थः॥

तृतीया ॥

इह तेसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः।
उत् त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥ ३ ॥

इह। ते। असुः। इह। प्राणः। इह। आयुः। इह। ते। मनः।
उत्। त्वा। निःऽऋत्याः। पाशेभ्यः। दैव्या। वाचा। भरामसि॥ ३ ॥

हे आयुरर्थयमान पुरुष ते असुः मुख्यः प्राणश्चक्षुरादिः इह शरीरे अस्तु। तथा ते प्राणः पञ्चवृत्त्यात्मको वायुरपि इह अस्तु। एवं ते आयुरपि इह अस्तु। तथा ते मनोपि इह अस्तु। एते सर्वेपि त्वां विहाय अन्यत्र मापसरन्तु। हे गतासो पुरुष त्वा त्वां निर्ऋत्याः एतन्नामिकायाः पापदेवतायाः पाशेभ्यः बन्धनरज्जुभ्यः सकाशाद् दैव्या दे-

वसंबन्धिन्या वाचा मन्त्ररूपया उद्क्रामसि ऊर्ध्वं भरामः हरामः नयामः ॥

चतुर्थी ॥

उत् क्रामातः पुरुष मावं पत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ।
मा च्छित्था अस्मालोकाद्ग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥ ४ ॥

उत् । क्राम । अतः । पुरुष । मा । अवं । पत्थाः । मृत्योः । पड्वीशम् । अवऽमुञ्चमानः ।
मा । छित्थाः । अस्मात् । लोकात् । अग्नेः । सूर्यस्य । समऽदृशः ॥ ४ ॥

हे पुरुष त्वम् अतः अस्माद् मृत्युपाशनिचयाद् उत्क्राम उत्क्रमणं कुरु । माव पत्थाः अवपतनं मा कार्षीः । ✕पद गतौ इत्यस्मात् लुङि "एकाच उपदेशेनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः । "झलो झलि" इति सिचो लोपः ✕ । बद्धस्य कथम् उत्क्रमणं घटत इत्यत आह । मृत्योः हिंसकस्य देवस्य पड्वीशम् पादबन्धनपाशम् अवमुञ्चमानः विच्छिन्दन् अस्माद् भूलोकाद् मा च्छित्थाः छिन्नो मा भूः । ✕छिदेर्लुङि पूर्ववद् इट्प्रतिषेधः ✕ । किमर्थम् इति चेद् उच्यते । अग्नेः सूर्यस्य च संदृशः संदर्शनाद्धेतोः अग्निसूर्ययोश्चिरकालसंदर्शनाय । चिरजीवनायेत्यर्थः । "ज्योक् च सूर्यं दृशे" इति हि श्रुतिः [ऋ० १०. ९. ७] । ✕संपूर्वाद् दृशेः संपदादित्वाद् भावे क्विप् ✕ ॥

पञ्चमी ॥

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।
सूर्यस्ते तन्वे३ शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः ॥ ५ ॥

तुभ्यम् । वातः । पवताम् । मातरिश्वा । तुभ्यम् । वर्षन्तु । अमृतानि । आपः ।

---

१ B पड्वी°. K V पड्वि°. A R S[m] पड्वी°. We with B D K[m] Cs. २ B D S[h] V Cs अस्मांल्लो°. We with A K K[m] R. ३ P P[2] पथा.. J पत्थाः corrected into पथाः. We with Cp.

सूर्यः। ते। तन्वे। शम्। तपाति। त्वाम्। मृत्युः। दयताम्। मा। प्र। मेष्ठाः॥ ५॥

पुनः मरणाभावं सोपपत्तिकम् आशास्ते। हे मुमूर्षो पुरुष तुभ्यं त्वदर्थं मातरिश्वा। माता अन्तरिक्षम् निर्मीयन्तेस्मिन् भूतानीति व्युत्पत्तेः। तस्मिन् श्वसितीति मातरिश्वा। तादृशो वातः वायुस्तव सुखाय पवताम्। ※पवतिर्गतिकर्मा※। संचरतु। तथा आपश्च तुभ्यं त्वदर्थम् अमृतानि वर्षन्तु सिञ्चन्तु। तथा सूर्यो देवस्ते तव तन्वे शरीराय शम् सुखं यथा भवति तथा तपाति तपतु। ※तप संतापे। अस्मात् लेट्। "लेटोडाटौ" इति आडागमः※। एतत् सर्वं मृत्योरनुग्रहम् अन्तरेण न घटत इति तदनुग्रहम् आशास्ते। हे पुरुष त्वां मृत्युर्देवो दयताम् रक्षां करोतु। अतस्त्वं मा प्र मेष्ठाः मृतिं मा गाः। ※मीङ् हिंसायाम्। लुङि पूर्ववद् इट्प्रतिषेधः※॥

षष्ठी॥

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥ ६॥

उत्ऽयानम्। ते। पुरुष। न। अवऽयानम्। जीवातुम्। ते। दक्षऽतातिम्। कृणामि।
आ। हि। रोह। इमम्। अमृतम्। सुऽखम्। रथम्। अथ। जिर्विः। विदथम्। आ। वदासि॥ ६॥

हे पुरुष ते तव उद्यानम् उन्नमनमेव। मृत्युपाशाद् इति शेषः। अवयानम् अवाग्गमनं नैवास्ति। तत् कथम् एतत् संपत्स्यत इति तत्राह। ते तव जीवातुम् जीवनौषधं कृणोमि करोमि। केवलं जीवनमेव न किं तु दक्षतातिम्। ※स्वार्थिकस्तातिः※। दक्षं बलं च कृणोमि। त्वं च आ रोह अधितिष्ठ इमम् अमृतम् अमरणधर्मकं सुखम् इन्द्रियेभ्योनुकूलं रथम् यानम्। देहो वा रथत्वेन उपचर्यते।

१ So we with all our authorities. See Rw.

अतो जीवात्मनो देहेवस्थानं प्रार्थ्यते । आरुह्य च अँजिर्विः अजीर्णः सन् । ॐजृष् वयोहानौ । औणादिको विन् प्रत्ययः । "ऋत इद्धातोः" इति इत्त्वम् ॐ । विदथम् वेदनम् आ वदासि आवद । लब्धसंज्ञोस्मीति आचक्ष्वेत्यर्थः ॥

सप्तमी ॥

मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥ ७ ॥

मा । ते । मनः । तत्र । गात् । मा । तिरः । भूत् । मा । जीवेभ्यः । प्र ।
मदः । मा । अनु । गाः । पितॄन् ।
विश्वे । देवाः । अभि । रक्षन्तु । त्वा । इह ॥ ७ ॥

तत्र तस्मिन् यमविषये ते मनो मा गात् गतं मा भूत् । तथा मा तिरो भूत् अन्तर्हितं विलीनमपि मा भूत् । किं च त्वं जीवेभ्यः बन्धुभ्यस्तेषाम् अर्थाय [मा] प्र मदः अनवधानं माप्नुहि । ॐमदी हर्षे । पुषादित्वाद् अङ् । मदिः प्रोपसृष्टः अनवधाने वर्तते ॐ । पितॄन् मृतान् पूर्वपुरुषान् मानु गाः अनुगतिं मा कार्षीः । विश्वे देवाः इन्द्राद्या इन्द्रियाणि वा त्वा त्वाम् अभि रक्षन्तु सर्वतः पालयन्तु । कुत्रेति चेद् उच्यते । इह अस्मिन्नेव शरीरे इह भूतले वा ॥

१ P मा. We with P̈ J Cr.

1 Sâyaṇa's text is: रथमजिर्वि° in place of रथमथ जिर्वि°, where the थ of the word अथ would appear to have been lost through a slip of the writer. The accidental loss of थ would then seem to be the origin of the reading अजिर्विः in place of अथ जिर्विः. We can hardly suppose that Sâyaṇa had nothing more than an indifferent MS. of the saṃhitâ before him when he wrote his commentary. If so the strange *varietas lectionis* due to the slip of a scribe must be much older than Sâyaṇa's time. That various readings arose from bad MSS. is rendered further probable by Sâyaṇa's reading रथजिते धीनाम् in VI. 130, 1 instead of रथजितेयीनाम्. The fact that the pada MSS. there read रथजिते । यीनाम् । would also indicate that these corrupt readings which owe their origin to careless copyists were older than the time of Sâyaṇa.

अष्टमी ॥

मा गतानामा दीधीथा ये नयंन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥ ८ ॥

मा । गतानाम् । आ । दीधीथाः । ये । नयन्ति । पराऽवतम् ।
आ । रोह । तमसः । ज्योतिः । आ । इहि । आ । ते । हस्तौ । रभामहे ॥ ८ ॥

गतानाम् पितृलोकं प्राप्तानाम् । मार्गम् इति शेषः । मा दीधीथाः तं प्रति देवनं मा कार्षीः । दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः । लुङ् । छान्दसः सिचो लुक् । अथ वा गतमार्गं मा ध्याय । ध्यै चिन्तायाम् । छान्दसी रूपसिद्धिः । अथ वा । गतानाम् इति कर्मणि षष्ठी । मृतान् मा चिन्तयेत्यर्थः । ते विशेषयन्ते । ये गतास्त्वामपि परावतम् दूरदेशं नयन्ति । यथा त्वं पुनर्नायासि तथा प्रापयन्तीत्यर्थः । अतस्त्वं तमसः । म्रियमाणस्य पुरुषस्य समस्तस्यापि ज्ञानस्य नाशात् तमःप्रवेश इव भवति अतस्तमसः सकाशात् ज्योतिः । ज्योतिः [प्रकाशः] । प्रकाशं ज्ञानम् आ रोह अधितिष्ठ । आश्रयेत्यर्थः । अन्धकारप्रविष्टस्य कथम् आरोहणम् इति तत्राह । ते तव हस्तौ आ रभामहे गृह्णीमः । आरोहणानुकूलप्रयत्नं कुर्म इत्यर्थः ॥

नवमी ॥

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥ ९ ॥

श्यामः । च । त्वा । मा । शबलः । च । प्रऽइषितौ । यमस्य । यौ । पथिरक्षी इति पथिऽरक्षी । श्वानौ ।
अर्वाङ् । आ । इहि । मा । वि । दीध्यः । मा । अत्र । तिष्ठः । पराङ्ऽमनाः ॥ ९ ॥

१ B S नयंति. C नयंति corrected to नयँति. २ P P Cr. पथिऽ°. We with J.

1 Sâyaṇa omits to interpret the words एहि (आ इहि) which are omitted in his text also. This shows that Sâyaṇa followed a redaction in which the phrase एहि did not form part of the line. The metre does not want it.

हे मुमूर्षो पुरुष त्वा त्वां श्यामश्च एतन्नामा श्वा । वर्णप्रयुक्तेयं संज्ञा । मा । बाधताम् इति शेषः । एवं शबलश्च श्वा मा बाधताम् । चित्रवर्णत्वात् शबल इति संज्ञा । तौ विशेष्येते । यमस्य सर्वप्राणिप्राणापहर्तुर्देवस्य पथिरक्षी मार्गरक्षकौ यौ श्वानौ स्तः । तत्र श्यामश्च शबलश्चेति संबन्धः । श्वभ्याम् असंदृष्टः सन् अर्वाङ् अस्मदभिमुखः एहि आगच्छ । मा वि दीध्यः ध्यानं मा कार्षीः । किम् इत्याशङ्कायां मृतानां मार्गम् इत्यवतिष्ठते । तदेव भङ्ग्यन्तरेणाह । अत्र अस्मिन् भूलोके वर्तमानः सपदि पराङ्मनाः अप्रतिनिवृत्तिचित्तविषयध्यानोपेतः सन् मा तिष्ठः मा वर्तस्व ॥

दशमी ॥

मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वे नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक् ॥ १० ॥ (१)

मा । एतम् । पन्थाम् । अनु । गाः । भीमः । एषः । येन । पूर्वम् । न ।
इयथ । तम् । ब्रवीमि ।
तमः । एतत् । पुरुष । मा । प्र । पत्थाः । भयम् । परस्तात् । अभयम् ।
ते । अर्वाक् ॥ १० ॥ (१)

हे गतासो पुरुष त्वम् एतं पूर्वोक्तं पन्थाम् पन्थानं मृता येन गच्छन्ति तं मानु गाः अनुसृत्य मा याहि । अनुगमननिषेधस्य कारणम् आह । एष मार्गो भीमो भयहेतुः । एतच्छब्दार्थम् आह । येन मार्गेण पूर्वम् मृतेः प्राक्काले नेयथ न गच्छसि । ✕वचनव्यत्ययः✕ । [तं] मार्गं ब्रवीमि । मानु गा इति निषेधप्रतियोगितया वच्मीत्यर्थः । एतत् मरणलक्षणं तमः अन्धकारम् अज्ञानं मा प्र पत्थाः प्रपदनं मा कार्षीः । पुरस्तात् पूर्वदेशे यमपुरप्रदेशे भयम् । भवतीति शेषः । अर्वाक्

1 S' शामश्च which is the reading in the text also of S'. 2 Sâyaṇa omits to comment on प्रेषितौ which is omitted in his text also. See the last but one note. 3 S' शामश्च. 4 S' °दुष्टः. 5 S' °विषम° for °विषय° which is a conjectural emendation. 6 S' एवं. 7 S' यच्छब्दा°.

अस्मदभिमुखागमनमार्गे [ते तव] अभयम् भयाभावः । क्षेमं भवतीत्यर्थः ॥

इत्यष्टमकाण्डे प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"रक्षन्तु त्वा" इत्यस्य सूक्तस्य उपनयनकर्मादिषु पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा हिरण्यगर्भाख्ये महादाने "रक्षन्तु त्वा" इत्यनेन कर्तृ रक्षां कुर्यात् । "हिरण्यगर्भविधिम् अनुक्रमिष्यामः" इति प्रक्रम्य उक्तं परिशिष्टे । "यदाबध्नन् [१.३५] इति हिरण्यस्रजम् आग्रथ्य रक्षन्तु त्वा [८.२.११-२१] इति रक्षां कृत्वा" इति [प०१३.१] ॥

तथा अश्वरथाख्यमहादाने अनेन यजमानम् अभिमन्त्रयेत । "अथाश्वरथदानविधिः" इति प्रक्रम्य उक्तं परिशिष्टे । "पुनन्तु मा [६.१९] "इत्यात्मानम् आलभ्य जपेद् रक्षन्तु त्वाग्नयः [८.२] इति यजमानम् "अभिमन्त्र्य" इति [प०१४.१] ॥

तत्र प्रथमा ॥

रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ता रक्षन्तु त्वा मनुष्याऽ यमिन्धते ।
वैश्वानरो रक्षतु जातवेदा दिव्यस्त्वा मा प्र धाग् विद्युता सह ॥ ११ ॥

रक्षन्तु । त्वा । अग्नयः । ये । अप्ऽसु । अन्तः । रक्षन्तु । त्वा । मनुष्याः । यम । इन्धते ।

वैश्वानरः । रक्षतु । जातऽवेदाः । दिव्यः । त्वा । मा । प्र । धाक् । विऽद्युता । सह ॥ ११ ॥

अप्सु अन्तः उदकेषु मध्ये ये अग्नयो वाडवादिरूपेण वर्तन्ते तेऽग्नयः त्वा त्वाम् हे रक्षाकाम राजादे रक्षन्तु पालयन्तु । उदकेष्वग्निसद्भावम् आह मन्त्रः । "अप्स्वग्ने सधिष्टव" [ऋ० ८.४३.९] "अग्निं च वि-

१ B ३ for १. २ B D R S C- १ for ३. We with A K V ३ So we with all our authorities except B which has मा प्रा धा°. See Rw. ४ P ॰ग्नु. We with P J C. ५ P °वेदः.

1 S' कर्तुरक्षाकुर्यात्. 2 S' तथा°. We with the *Pariśishṭa*.

श्वशंभुवम्" [ऋ० १०. ९. ६] इत्यादिकः । "सोपः प्राविशत् [तै० सं० २. ६. ६. १] इति च । अवधिष्ठानबहुत्वम् अपेक्ष्य अग्नीनां बहुत्वाभिधानम् । यद्वा अग्नीषोमयोरखिलजगत्कारणत्वेन विकारेषु सर्वेष्वपि अग्निसंभवाद् बहुत्वाभिधानम् । तथा यम् अग्निं मनुष्या आहवनीयादिरूपेण वर्तमानं वा पाकाद्यर्थम् अवस्थापितं वा इन्धते दीप्तं कुर्वन्ति सोपि त्वां रक्षतु । ✕अन्ता रक्षत्वित्यत्र "दूलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" इति दीर्घः✕ । एवं वैश्वानरः विश्वेषां नराणां संबन्धी जाठरोग्निः स च जातवेदाः जातप्रज्ञो जातधनो वा त्वां रक्षतु । तथा दिव्यः दिवि भवो वैद्युतो विद्युता स्वशरीरेण सह सहितः सन् त्वां मा प्र धाक् प्रकर्षेण मा दहतु । ✕दह भस्मीकरणे । "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्✕ ॥

द्वितीया ॥

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर ।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च ।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥ १२ ॥

मा । त्वा । क्रव्यऽअत् । अभि । मंस्त । आरात् । समऽकंसुकात् । चर ।
रक्षतु । त्वा । द्यौः । रक्षतु । पृथिवी । सूर्यः । च । त्वा । रक्षताम् । चन्द्रमाः । च ।
अन्तरिक्षम् । रक्षतु । देवऽहेत्याः ॥ १२ ॥

क्रव्यात् मांसाशनोग्निः । ✕"क्रव्ये च" इति अदेर्विट्✕ । स च त्वा त्वां माभि मंस्त मम त्वम् आहार इत्यभिमानं मा करोतु । "नास्य रुद्रः पशून् अभिमन्यते" [तै० सं० १. ६. ७. ४] इत्यादौ तथा दर्शनात् । ✕मन ज्ञाने । लुङि सिचि "एकाच उपदेशेनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः✕ । त्वं च संकुसुकात् शवभक्षकाद् एतन्नामकाद्

१ So we with all our MSS. and vaidikas. See Rw. २ P मांस्त. Cp. मंस्त. We with P̂ J.

1 S' मममत्वम् for मम त्वम्. 2 Sâyaṇa's text also is संकुसुकात्.

अग्नेः आरात् दूरदेश एव चर। तथा द्यौः पृथिवी सूर्यश्चन्द्रमाश्च प्रत्येकं स्वस्वसंबन्धिनो भयात् त्वा त्वां रक्षतु। अन्तरिक्षमपि त्वां देवहेत्याः देवप्रेरिताद् आयुधाद् रक्षतु ॥

तृतीया ॥

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥ १३ ॥

बोधः। च। त्वा। प्रतिऽबोधः। च। रक्षताम्। अस्वप्नः। च। त्वा। अनवऽद्राणः। च। रक्षताम्।
गोपायन्। च। त्वा। जागृविः। च। रक्षताम् ॥ १३ ॥

[बोधप्रतीबोधौ नाम ऋषी]। "ऋषी बोधप्रतीबोधौ" इति प्रागुक्तत्वात् [५. ३०. १०]। तत्सहप्रपाठाद् अत्रोक्ताः षडपि ऋषयः। बोधः सर्वदा प्रतिबुध्यमानः। प्रतीबोधः प्रतिवस्तु प्रतिक्षणं वा बुध्यमानः। अस्वप्नः स्वप्नरहितः। अनवद्राणः निद्रारहितः। गोपायन् सर्वदा देहस्य गोपायिता। जागृविः जागरणशीलः। एते सर्वे देहाश्रयाः प्राणापानमनोबुद्धिचक्षुर्द्वयरूपा इन्द्रियाभिमानिदेवा यथोचितं बोद्धव्याः। ते युग्मशस्त्वां रक्षन्त्वित्यर्थः ॥

चतुर्थी ॥

ते त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

ते। त्वा। रक्षन्तु। ते। त्वा। गोपायन्तु। तेभ्यः। नमः। तेभ्यः। स्वाहा ॥ १४ ॥

ते बोधाद्याः त्वा त्वां रक्षन्तु पालयन्तु। ते[2] त एव त्वा गोपायन्तु। गोपायनं सर्वतो रक्षणम्। तेभ्यः बोधादिभ्यो देवेभ्यो नमः नमस्कारोस्तु। तेभ्यः स्वाहा। इदं द्रव्यं स्वाहुतम् अस्तु ॥

जीवेभ्यस्त्वा समुदे वायुरिन्द्रो धाता दधातु सविता त्रायमाणः।
मा त्वा प्राणो बलं हासीदसुं तेनु ह्वयामसि ॥ १५ ॥

---

१ B तेनुह्व° for तेनु ह्व°.

1 S' रक्षत्वित्यर्थः. 2 S' ते तत एव for ते त एव.

जीवेभ्यः । त्वा । समऽउदे । वायुः । इन्द्रः । धाता । दधातु । सविता ।
त्रायमाणः ।
मा । त्वा । प्राणः । बलम् । हासीत् । असुम् । ते । अनु । ह्वयामसि ॥ १५ ॥

मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः ।
उत् त्वादित्या वसवो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥ १६ ॥

मा । त्वा । जम्भः । समऽहनुः । मा । तमः । विदत् । मा । जिह्वा । आ ।
बर्हिः । प्रऽमयुः । कथा । स्याः ।
उत् । त्वा । आदित्याः । वसवः । भरन्तु । उत् । इन्द्राग्नी इति । स्वस्तये ॥ १६ ॥

उत् त्वा द्यौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रभीत् ।
उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥ १७ ॥

उत् । त्वा । द्यौः । उत् । पृथिवी । उत् । प्रजाऽपतिः । अग्रभीत् ।
उत् । त्वा । मृत्योः । ओषधयः । सोमऽराज्ञीः । अपीपरन् ॥ १७ ॥

पञ्चमी ॥ जीवेभ्यः । अत्र जीवोपयुक्तानि इन्द्रियाणि जीवशब्दव्यपदेशं भजन्ते । तेषाम् अर्थाय । अथ वा जीवाः पोषणीयाः पुत्रभार्यादासादयः । तेषाम् अर्थाय । तादर्थ्यं विशिनष्टि । समुदे तेषां संमोदाय त्वां वाय्वादयः प्रत्येकं समुदायो वा दधातु स्थापयतु मृत्योराकृष्य प्रयच्छतु । त्रायमाण इति सवितुर्विशेषणम् । त्वां पालयमानः ॥ किं च त्वा त्वां प्राणः शरीरबलं च मा हासीत् मा त्याक्षीत् । ते असुम् अनु ह्वयामसि आनुकूल्येन आह्वयाम ॥ किं च त्वा त्वां संहनुः संहतदन्तो जम्भः असुरः । अथ वा संहनुः संहतहनुर्जम्भः अस्थूलदन्तो मा विदत् मा विन्दतु । भक्षयितुम् इति शेषः । "तं वो जम्भे दधामि" [तै० सं० ४. ५. ११. २] इत्यादिमन्त्रदर्शनात् । तथा तमः अज्ञानमपि मा विदत् । एवं बर्हिः बर्हिरिव आयामविस्तारोपेता उह्यमाना जिह्वा रक्षःप्रभृतेः सं-

१ P विदन्.

1 S' वायारयंसमुदयंयत्वा प्रत्येकं. 2 S' इत्यादिभिर्मन्त्र°. 3 S' is corrupt here, reading बर्हिर्विक्षयामविस्तारोपेता उह्यमाजिव्हा &c. The emendation is conjectural.

बन्धिनी मा विदत्। किमर्थम् एवं प्रार्थ्यत इति चेत् तत्राह। कथा केन प्रकारेण त्वं प्रमयुः प्रगतहिंसः प्रगतहिंसको वा स्याः भवेः। एवमर्थं जम्भादि मा विददित्यर्थः॥

षष्ठी॥ आदित्याः अदितेः पुत्रा देवा धात्रादयः त्वा त्वाम् उज्जरन्तु ऊर्ध्वं हरन्तु मृत्योर्मुखात्। तथा वसवः अष्टसंख्याकाः धरादयः उज्जरन्तु। इन्द्राग्नी। इन्द्रश्च अग्निश्च देवौ उज्जरताम्। किमर्थम्। स्वस्तये क्षेमाय। तथा द्यौः द्युदेवता त्वाम् उज्जरतु पृथिवी च उज्जरतु। किं बहुना। प्रजापतिः सर्वेषां देवानां पिता उदग्रभीत् उद्ग्रहणम् अकार्षीत् उज्जहातु। सोमराज्ञीः सोमस्य पत्न्यः ओषधयो देव्यो मृत्योः सकाशात् त्वाम् उदपीपरन् अपालयन्॥

सप्तमी॥

अयं देवा इहैवास्त्वयं मामुत्र गादितः।
इमं सहस्रवीर्येण मृत्योरुत् पारयामसि॥ १८॥

अयम्। देवाः। इह। एव। अस्तु। अयम्। मा। अमुत्र। गात्। इतः। इमम्। सहस्रऽवीर्येण। मृत्योः। उत्। पारयामसि॥ १८॥

हे देवाः आदित्याद्या अयं पुरुषः इहैव भूलोके अस्तु भवतु। एतदेव व्यतिरेकमुखेनाह। अयम् इतः अस्माद् भूलोकाद् अमुत्र स्वर्गे मा गात्। वयं रक्षाकर्तारः इमं पुरुषं सहस्रवीर्येण अपरिमितसामर्थ्येन रक्षाविधानेन मृत्योः सकाशाद् उत्पारयामसि उत्पारयामः॥

अष्टमी॥

उत् त्वा मृत्योरपीपरं सं धमन्तु वयोधसः।

१ P गात्. We with P J Cr. २ So all our vaidikas and MSS. (the pada authorities °परम्). But it is probable अपीपरं was at first miswritten for अपीपरन्, the anusvâra often standing for न् in Atharva MSS.; and that the pada-writers mistook the anusvâra of the saṁhitâ for the usual product of a म् and accordingly replaced the latter in the pada-text.

1 S' प्रमत°. 2 S' भवेत्. 3 S' स्तवोमसंख्याका. 4 S' द्यना for द्युदेवता.

मा त्वा व्यस्तकेश्यो[1] मा त्वाघरुदो रुदन् ॥ १९ ॥

उत् । त्वा । मृत्योः । अपीपरम् । सम् । धमन्तु । वयःऽधसः ।
मा । त्वा । व्यस्तऽकेश्यः । मा । त्वा । अघऽरुदः । रुदन् ॥ १९ ॥

हे आयुष्काम पुरुष त्वा त्वां मृत्योरुदपीपरन्* पालयन्तु वयोधसः अन्नस्य आयुष्यस्य वा धातारो देवाः सं धमन्तु संधानं कुर्वन्तु [च]। ॐ धमतिर्गतिकर्मा ॐ । त्वा त्वां प्रति व्यस्तकेश्यः कीर्णकेशा बन्धुयोषितो मा रुदन् अश्रुविमोकं मा कार्षुः । तथा अघरुदः अघे व्यसने दुःखे बान्धवेन रोदनकर्तारो मा रुदन् ॥

नवमी ॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः[3] ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेविदम्[2] ॥ २० ॥

आ । अहार्षम् । अविदम् । त्वा । पुनः । आ । अगाः । पुनःऽनवः ।
सर्वऽअङ्ग । सर्वम् । ते । चक्षुः । सर्वम् । आयुः । च । ते । अविदम् ॥ २० ॥

हे मृत्युग्रस्त पुरुष त्वा त्वाम् आहार्षम् मृत्युमुखाद् आहृतवान् अस्मि । आहृत्य च त्वां* त्वाम् अविदम् लब्धवानस्मि । हे पुनर्नव पुनरुत्पन्न त्वं पुनरागाः पुनरागतोसि । पुनर्जीवलाभात् पुनर्नवत्वव्यपदेशः । हे सर्वाङ्ग केनचिदपि चक्षुराद्यङ्गेन अविकल संपूर्णाङ्ग । मृत्यभावेपि प्रायेण अङ्गवैकल्यं दृढरोगग्रस्तस्य भवतीत्यभिप्रायेण एवम् आह । ते तव सर्वं चक्षुः । चक्षुर्विषयम् इत्यर्थः । सर्वमपि इन्द्रियजातं स्वविषयप्रकाशकम् । भवत्विति शेषः । ते तव सर्वम् शतसंवत्सरलक्षणम् आयुः अविदम् लब्धवान् अस्मि ॥

---

१ R ३ for ३. २ See foot-note २ on the previous page. ३ So we with all our MSS. and vaidikas. Sâyaṇa (in S′) reads and explains पुनरागाः पुनर्णव (पुनरागाः पुनर्णव?) as in *Rigveda*. S′ at XX. 96. 10 has पुनरागाः पुनर्णव. * B[m] D °विदन्. We with A K K[m] R S[m] V.

1 Sâyaṇa's text in S′ is: आहार्षं त्वाविदं त्वा instead of आहार्षमविदं त्वा.

दशमी ॥

व्यवात् ते ज्योतिरभूदप त्वत् तमो अक्रमीत्।
अप त्वन्मृत्युं निर्ऋतिमप यक्ष्मं नि दध्मसि ॥ २१ ॥ (२)

वि। अवात्। ते। ज्योतिः। अभूत्। अप। त्वत्। तमः। अक्रमीत्।
अप। त्वत्। मृत्युम्। निःऽऋतिम्। अप। यक्ष्मम्। नि। दध्मसि॥ २१॥ (२)

हे विसंज्ञ पुरुष ते व्यवात् व्यौच्छत् तमोविवासनम् अभूत्। अत एव ज्योतिः संज्ञानम् अभूत्। तथा [त्वत्] त्वत्तः सकाशात् तमः कृत्स्नम् अपाक्रमीत् अपक्रान्तम् अभूत्। कुतो हेतोरिति तत्राह। त्वत् त्वत्तः मृत्युम् प्राणापहर्त्रीं देवतां निर्ऋतिम् पापदेवताम् अप। नि दध्मसीति उत्तरक्रियानुषङ्गः। तथा यक्ष्मम् बाह्यम् आभ्यन्तरं च रोगम् अप नि दध्मसि अपनिदध्मः त्वत्तः प्रच्यावयामः ॥

इत्यष्टमकाण्डे प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"आ रभस्व" इति सूक्तत्रयम् अर्थसूक्तम्। तेन उपनयनकर्मणि माणवकस्य नाभिं संस्पृश्य आचार्यो जपं कुर्यात्। "उपनयनं" प्रक्रम्य सूत्रितम्। "दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशे संस्तभ्य जपति अन्तकाय मृत्यवे[८.१] आ रभस्व"[८.३] इति [कौ० ७. ६] ॥

तथा आयुष्कामः "आ रभस्व" इति सूक्तत्रयेण शरीरम् अभिमन्त्रयेत ॥

तथा ऋषिहस्तेन आयुष्कामस्य शरीरम् अनेनाभिमन्त्रयेत ॥

सूत्रितं हि। "आ रभस्व[८.१] प्राणाय नमः[११.४] विषासहिम् [१७.१] इत्यभिमन्त्रयते" इति [कौ० ७. ९] ॥

तथा अस्यार्थसूक्तस्य आयुष्यगणे पाठाद् "विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्" [कौ० १४. ३] इत्यादिषु विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तथा नामकरणाख्ये कर्मणि अनेनार्थसूक्तेन कुमारस्य हस्ते अविच्छिन्नाम् उदकधारां निनयेत् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेनार्थसूक्तेन देवदारुमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य

1 S' अपि for अप. 2 S' °देशसंस्तभ्य. We with *Kausika* 3 S' अव°.

बध्नीयात् । तस्यैव मणिं निघृष्य पायनं च कुर्यात् । तद् उक्तं कौशिकेन । "अथ नामकरणम् आ रभस्वेमाम् इत्यविच्छिन्नाम् उदकधाराम् आलम्भयति । पूतिदारुं बध्नाति । पाययति" इति [कौ० ७. ९] ॥

अन्त्येष्टौ "आ रभस्व" इति त्रिभिः प्रेताग्निम् आदीपयेत् ॥

त्रिंशन्महाशान्तितन्त्रभूतायां महाशान्तौ "आ रभस्व" इत्येतज्जपेत् । उक्तं नक्षत्रकल्पे ॥

पुनस्तदेव जप्यं तु शंतातीयम् अथावतः ।
अन्तकाया रभस्वेति [न० क० २३] ॥

तथा "वैश्वदेवीं गतायुषाम्" इति [न० क० १७] विहितायां महाशान्तौ देवदारुमणिबन्धनम् अनेन कुर्यात् । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "आ रभस्वेति पूतिदारुं वैश्वदेव्याम्" इति [न० क० १९] ॥

तत्र आ रभस्वेति प्रथमसूक्ते प्रथमा ॥

आ रभस्वेमाममृतस्य श्रुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ।
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठाः ॥ १ ॥

आ । रभस्व । इमाम् । अमृतस्य । श्रुष्टिम् । अच्छिद्यमाना । जरत्ऽअष्टिः । अस्तु । ते ।

असुम् । ते । आयुः । पुनः । आ । भरामि । रजः । तमः । मा । उप । गाः । मा । प्र । मेष्ठाः ॥ १ ॥

हे आयुष्काम पुरुष इमाम् अस्माभिः क्रियमाणाम् अमृतस्य अमरणत्वस्य श्रुष्टिम् प्रस्तुतिम् आ रभस्व उपक्रमस्व । अनुभवितुम् इति शेषः । यद्वा कुमारस्य हस्ते अविच्छिन्नाम् उदकधारां निनयेदिति विनियोगाद् अमृतशब्देन उदकम् उच्यते । तस्य श्रुष्टिम् । उदकधाराम् इत्यर्थः । अच्छिद्यमाना परैरविच्छेत्तुम् अनर्हा जरदष्टिः जरावस्थापर्यन्तम्

---

१ So all our vaidikas and MSS. except R which reads स्रु°. २ P P J मा.

1 S' अथाभ्रामकरण°. 2 S' आलिपयति. We with *Kausika*. 3 So S'. The *Nakshatra-kalpa*: पूतु°. 4 S' स्रुष्टिम्. 5 S' inserts एषा अमृतस्रुष्टिम् before अच्छिद्य°.

अष्टिः अशनं जरदष्टिः । सा ते अस्तु भवतेस्तु । तदर्थं ते तव असुम् प्राणं मृत्युना अपहृतम् आयुश्च पुनः आ भरामि आहरामि । त्वं च रजः रागम् अस्माकं सत्त्वगुणप्रतिबन्धकं मोप गाः मा प्राप्नुहि । इण् गतौ । "इणो गा लुङि" इति गादेशः[1] । एवं तमः आवरकं हिताहितविवेकप्रतिरोधकं तमआख्यगुणं[2] मोप गाः । न केवलं रजस्तमसोरप्राप्तिरेव प्रार्थ्यते किं तु मृतिनिवारणमपि मा प्र मेष्ठा इति । हिंसां च मा प्राप्नुहि । मीङ् हिंसायाम् । लुङि रूपम[3] ॥

द्वितीया ॥

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि ॥ २ ॥

जीवताम् । ज्योतिः । अभिऽएहि । अर्वाङ् । आ । त्वा । हरामि । शतऽशारदाय ।

अवऽमुञ्चन् । मृत्युऽपाशान् । अशस्तिम् । द्राघीयः । आयुः । प्रऽतरम् । ते । दधामि ॥ २ ॥

हे पुरुष त्वं जीवताम् मनुष्याणां ज्योतिः दीप्तिं ज्ञानम् अर्वाङ् अस्मदभिमुखः अभ्येहि अभ्यागच्छ । अहं तु त्वा त्वाम् आ हरामि । मृत्युसकाशाद् इति शेषः । किमर्थम् । शतशारदाय । शतसंख्याकशरदवधिकम् आयुः शतशारदम् । शतायुषे । चिरकालजीवनायेत्यर्थः । मृत्युपाशबद्धस्य कथम् आगमनम् इति तत्राह । मृत्युपाशान् मृत्योः ज्वरशिरोरोगादिनानाविधान् पाशान् अवमुञ्चन् उत्सृजन् । तथा अशस्तिम् निन्दाम् अवमुञ्चन् । सा हि कोश इव आच्छादयति । एतत् सर्वं सत्यायुषि संभवतीत्याशङ्क्याह । द्राघीयः अतिदीर्घं शतसंवत्सरलक्षणम् आयुः । "प्रियस्थिर०" इत्यादिना दीर्घशब्दस्य द्राघादेशः । [ते] त्वदर्थं प्रतरम् प्रकृष्टतरं दधामि स्थापयामि ॥

१ A B B̄ R °रभ्येह्य°. C[s] °रभ्येहि°. We with D K K̄[m] S̄[m] V

1 S' रागः. 2 S' °आख्यागुणं. 3 S' हिंसा.

तृतीया ॥

वातात् ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव ।
यत् ते मनस्त्वयि तद् धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन् ॥ ३ ॥

वातात् । ते । प्राणम् । अविदम् । सूर्यात् । चक्षुः । अहम् । तव ।
यत् । ते । मनः । त्वयि । तत् । धारयामि । सम् । वित्स्व । अङ्गैः । वद ।
जिह्वया । अलपन् ॥ ३ ॥

हे गतासो पुरुष ते तव प्राणं वातात् स्वाश्रयभूताद् बाह्यवायोः सकाशाद् अविदम लब्धवान् अस्मि । प्राणवायोर्मरणावस्थायां वायुप्राप्तेः उत्पत्त्यवस्थायां तत एवोत्पत्तेश्च एवम् उच्यते । तथा च श्रूयते । "वातं प्राणम् अन्ववसृजतात्" इति [ऐ० ब्रा० २. ६] "वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्" [ऐ० आ० २. ४. २] इति च । अहं तव चक्षुश्च सूर्याद् अविदम । पूर्ववन्मृतिसमये चक्षुषः सूर्यप्राप्तेः उत्पत्तिसमयेपि सूर्यादेवोत्पत्तेश्च एवम् उच्यते । "सूर्यं चक्षुर्गमयतात्" इति [ऐ० ब्रा० २. ६] "आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्" [ऐ० आ० २. ४. २] इति च । किं च यत् ते मनः उत्क्रमणसमये निर्गतं तत् त्वय्येव धारयामि स्थापयामि । त्वं तु यत एवम् अतो विश्वाङ्गैः[1] कृत्स्नैरङ्गैरुपेतः सन् जिह्वया आलपन् व्यक्तम् उच्चरन् वद वाचम् उदीरय । जीवनस्य अभिवदनं स्पष्टं लिङ्गम् इति तत् प्रार्थ्यते ॥

चतुर्थी ॥

प्राणेन त्वा द्विपदां चतुष्पदामग्निमिव जातमभि सं धमामि ।
नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेकरम् ॥ ४ ॥

प्राणेन । त्वा । द्विऽपदाम् । चतुःऽपदाम् । अग्निमऽइव । जातम् । अभि ।
सम् । धमामि ।
नमः । ते । मृत्यो इति । चक्षुषे । नमः । प्राणाय । ते । अकरम् ॥ ४ ॥

१ P J वित्स्व. We with P.

1 Sâyaṇa's text in S' is also विश्वाङ्गैः, and not वित्स्वाङ्गैः.

हे निर्यत्प्राण त्वा त्वा द्विपदाम् पुरुषादीनां चतुष्पदाम् गवाश्वादीनां च प्राणेन। सर्वप्राणिनां प्राणेनेत्यर्थः। तेन जातम् मथनाद् उत्पन्नम् अग्निमिव तं यथा अणीयांसं सन्तं नोत्यादिसाधनेन मुखवायुना अभिसंधमति तद्वद् अल्पप्राणं सन्तं सर्वप्राणिप्राणेन अभि सं धमामि संयोजयामि प्रभूतप्राणं करोमि। हे मृत्यो ते तव चक्षुषे क्रूराय नमः अकरम्। तथा ते प्राणाय प्रकृष्टाय बलायापि नमः अकरम् करोमि। ॥ करोतेर्लुङि "कृमृदरुहिभ्यश्छन्दसि" इति अङ् ॥

पञ्चमी ॥

अयं जीवतु मा मृतेमं समीरयामसि।
कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥ ५ ॥

अयम। जीवतु। मा। मृत। इमम। सम्। ईरयामसि।
कृणोमि। अस्मै। भेषजम्। मृत्यो इति। मा। पुरुषम्। वधीः ॥ ५ ॥

अयं गतासुः पुरुषो जीवतु। मा मृत मरणं मा प्राप्नुयात्। ॥ मृङ् प्राणत्यागे। "लुङ्"। "उश्च" इति सिचः कित्त्वम्। "हस्वाद् अङ्गात्" इति सिचो लोपः ॥। इमं पुरुषं समीरयामसि सम्यक् प्रेरयामः। यथा चेष्टते तथा प्रयतामहे। तद् एव एकवद् आह। अस्मै मुमूर्षवे पुरुषाय भेषजम् चिकित्सां कृणोमि करोमि। हे मृत्यो त्वं तु पुरुषम् अमुं मा वधीः मा जहि ॥

षष्ठी ॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्।
त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवेस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥

जीवलाम। नघऽरिषाम। जीवन्तीम। ओषधीम्। अहम।

---

१ A B $^{h}$B D K $^{m}$C$^{s}$ मृत्यो. We with K R $^{m}$S J V. २ P $^{2}$P C$^{p}$ मृत्यो°. We with J. ३ So we with all our saṁhitâ authorities. Sâyaṇa's text in S′ °ऋषां. See the next note. ४ P $^{2}$P J K °ऋषाम्. We with C$^{p}$.

1 S′ चक्षुष्पदां both here and in the text. 2 S′ न्वा° for ना°.

त्रायमाणाम् । सहमानाम् । सहस्वतीम् । इह । हुवे । अस्मै । अरिष्टऽतातये ॥ ६ ॥

जीवलाम् । ✕मत्वर्थीयो लः✕ । जीवंवतीम् । जीवप्रदाम् इत्यर्थः । नधंरुषाम् । न हन्तीति नघा । नघा रुषा रोषोऽस्यां सा नघरुषा । यस्याः कोपोपि न घातकस्तादृशीम् इत्यर्थः । अथ वा घर्षरहिताम् अघकारिरोषरहितां वा । स्वयं जीवन्तीम् । कदाचिदपि अशुष्काम् इत्यर्थः । अथ वा सजीवाम् । त्रायमाणाम् रक्षन्तीं स्वसेविनां रोगपरिहारेण रक्षाकर्त्रीम् । सहमानाम् रोगस्याभिभवित्रीम् । सहस्वतीम् सहो बलं तद्वतीम् । एवंमहिमोपेताम् ओषधीम् पाठाख्याम् अहं व्याधिनाशकामः इह अस्मिन् शान्तिकर्मणि हुवे आह्वयामि । कस्मै प्रयोजनाय । उच्यते । अस्मै संनिहिताय पुरुषाय । [रिष्टं] हिंसा तदभावाय अरिष्टतातये अरिष्टकरणाय । उत्तरमन्त्रे अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीति मृत्युशब्दश्रवणाद् अत्रापि मृत्युः संबोध्यः । ✕"शिवशमरिष्टस्य करे" इति करोत्यर्थे तातिल्✕ । अथ वा जीवलादयः प्रत्येकम् ओषधिविशेषाः । ओषधीम् इत्येतत् प्रत्येकं संबध्यते । इह हुवे इति सर्वत्रान्वयः ॥

सप्तमी ॥

अधि ब्रूहि मा रभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ।
भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्यं दुरितं धत्तमायुः ॥ ७ ॥

अधि । ब्रूहि । मा । आ । रभथाः । सृज । इमम् । तव । एव । सन् । सर्वऽहायाः । इह । अस्तु ।

भवाशर्वौ । मृडतम् । शर्म । यच्छतम् । अपऽसिध्यं । दुःऽइतम् । धत्तम् । आयुः ॥ ७ ॥

हे मृत्यो त्वम् अधि ब्रूहि । पक्षपातेन वचनम् अधिवचनम् । मदीयोयम् इति वद । मा आ रभथाः आरम्भं मा कार्षीः । हन्तुम्

1 S' जीवतीम्. 2 S' तघऋषाम्. 3 S' ऋषा. 4 S' has the words अरिष्टकरणाय inserted after मृत्युः संबोध्यः instead of after अरिष्टतातये.

इति शेषः। हननोद्योगो निषिध्यते। तवैव अयं जनस्तवैव। स्वम् इति शेषः। अतः इमं सं[1] सृज। प्राणैरिति शेषः। अयम् इह अस्मिन् भूलोके सर्वहायाः सर्वगतिरस्तु। वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि [उ० ४. २२०] इति असुनि णिद्वद्भावाद् युगागमः। किं च हे भवाशर्वौ युवाम् भवश्च शर्वश्च भवाशर्वौ ईश्वरमूर्तिभेदौ। "आनङ् ऋतो द्वन्द्वे" इति आनङ्। मृडतम् सुखयतम् अमुष्मै शर्म सुखं यच्छतम् दत्तम्। "पाघ्रा०" इत्यादिना यच्छादेशः। शर्म यच्छतम् इत्युक्तम् अर्थं विवृणोति। दुरितम् उपस्थितं व्याध्यादिलक्षणं पापम् अपसिध्य निराकृत्य आयुः धत्तम् स्थापयतं प्रयच्छतम्॥

अष्टमी॥

अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितोऽयमेतु।
अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम्॥ ८॥

अस्मै। मृत्यो इति। अधि। ब्रूहि। इमम्। दयस्व। उत्। इतः। अयम्। एतु। अरिष्टः। सर्वऽअङ्गः। सुऽश्रुत्। जरसा। शतऽहायनः। आत्मना। भुजम्। अश्नुताम्॥ ८॥

हे मृत्यो त्वम् अस्मै त्वतो मृतिम् आशङ्कमानाय अधि ब्रूहि असौ मदनुग्रहार्ह इति शब्दं कुरु। इमं प्रति दयस्व दयां कुरु इमं रक्ष वा। अयम् इतः अस्माद् मृत्योः उदेतु उज्जच्छतु। उक्तम् अर्थं स्पष्टम् आह। अरिष्टः अहिंसितः सर्वाङ्गः सर्वैरङ्गैश्चक्षुरादिभिः संपन्नः सुश्रुत् सुष्ठु श्रोता जरसा वार्धकावस्थया शतहायनः शतं हायना अस्य स तथोक्तः शतसंवत्सरं जीवन् आत्मना अनन्यापेक्षः सन् भुजम् भोगम् अश्नुताम् प्राप्नोतु॥

नवमी॥

देवानां हेतिः परि त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजस उत त्वा मृत्योरपीपरम्।

1 The text also in S' is सं सर्व°, and not सन्त्सर्व°.

आरादग्निं क्रव्यादं निरूहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥ ९ ॥

देवानाम् । हेतिः । परि । त्वा । वृणक्तु । पारयामि । त्वा । रजसः । उत् । त्वा । मृत्योः । अपीपरम् ।

आरात् । अग्निम् । क्रव्यऽअदम् । निःऽऊहन् । जीवातवे । ते । परिऽधिम् । दधामि ॥ ९ ॥

देवानाम् रुद्रादीनां हेतिः आयुधं त्वा त्वां परि वृणक्तु परिवर्जयतु हिंसां मा कुर्यात् । त्वा त्वां रजसः मूर्छालक्षणाद् आवरणात् पारयामि पालयामि वा । किं च त्वा त्वां मृत्योः सकाशाद् उदपीपरम उद्धरामि । [X] पॄ पालनपूरणयोः । ण्यन्तस्य लुङि रूपम् [X] । आरात् दूरदेश एव क्रव्यादम् मांसाशनम् अग्निं निरौहम् निरूहामि निर्गमयामि च । ते तव जीवातवे जीवनाय परिधिम् प्राकारं दधामि स्थापयामि च । देवयजनम् अग्निम् इति शेषः । परिधिं दधामि ॥

दशमी ॥

यत् ते नियानं रजसं मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।

पथ इमं तस्माद् रक्षन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि ॥ १० ॥ (३)

यत् । ते । निऽयानम् । रजसम् । मृत्यो इति । अनवऽधर्ष्यम् ।

पथः । इमम् । तस्मात् । रक्षन्तः । ब्रह्म । अस्मै । वर्म । कृण्मसि ॥ १० ॥ (३)

हे मृत्यो ते तव संबन्धि यत् नियानम् नियान्त्यत्रेति नियानं मार्गः । कीदृक् । रजसम् रजोमयम् अनवधृष्यम् केनापि धर्षितुम् अशक्यम् । तस्माद् उक्तलक्षणात् पथः मार्गाद् इमं मुमूर्षुं पुरुषं रक्षन्तो वयम् अस्मै मुमूर्षवे ब्रह्म परिवृढं शान्तिरूपं कर्म उदीरितलक्षणं मन्त्रसमूहं वा वर्म तनुत्रं कृण्मसि कृण्मः कुर्मः ॥

इत्यष्टमकाण्डे प्रथमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

---

१ So all our saṁhitā authorities. २ P मृत्यो°. P² मृत्यो°. We with J Cp.

1 The text in S′ is निरोहं.

"कृणोमि ते प्राणापानौ" इति सूक्तस्य "आ रभस्व" [८. २] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

कलहरूपनिर्ऋतिगृहीते कुले तच्छान्त्यर्थम् "आरादरातिम्" इति द्व्यृचेन आज्यं जुहुयात्। सूत्रितं च। "अथ यत्रैतत् कुलं कलहि भवति तन्निर्ऋतिगृहीतम् इत्याचक्षते। तत्र जुहुयाद् आरादरातिम् इति द्वे" इति [कौ० १३. ५] ॥

नैर्ऋतकर्मणि अनेन द्व्यृचेन इङ्गिडाज्यादीनि शर्करामिश्राणि कृत्वा जुहुयात्। "अथातो नैर्ऋतं कर्म" इति प्रक्रम्य नक्षत्रकल्पे सूत्रितम्। "आरादरातिम् इति द्वे। अपेत एतु निर्ऋतिरित्येतैः सममांसम इङ्गिडम् आज्यम्" इत्यादि [न० क० १५] ॥

गोदानादिषु संस्कारकर्मसु "शिवे ते स्ताम्" इति द्व्यृचेन व्रीहियवशमीरभिमन्त्र्य कुमारस्य मूर्ध्नि दद्यात्। सूत्रितं हि। "शिवे ते स्ताम् [१४] इति द्यावापृथिवीभ्यां परिददाति" इति "शिवे ते स्ताम् इति परिदानान्तानि" इति च [कौ० ७. ५] ॥

बालकस्य निष्क्रमणकर्मणि "शिवे ते स्ताम्" इति द्व्यृचेन बालकं निष्क्रमयेत्। सूत्रितं हि। "शिवे ते स्ताम् इति कुमारं प्रथमं निर्णयति" इति [कौ० ७. ९] ॥

अद्भुतमहाशान्तौ "शिवास्ते सन्त्वोषधयः" इत्यृचा सूर्याचन्द्रमसौ यजेत्। तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे। "'उरु विष्णो वि क्रमस्व' [७. २७. ३] इति विष्णोः 'शिवास्ते सन्त्वोषधयः' [८. २. १५] इति सूर्याचन्द्रमसोः" इति [न० क० १४] ॥

तथा मिथ्याभिशापनिवृत्त्यर्थं "शिवास्ते" इत्यनया सक्तुमन्थम् ओदनं वा अभिमन्त्र्य अभ्याख्याताय दद्यात् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि द्रुघणमणिं पलाशायोलोहहिरण्यानाम् अन्यतमं वा मणिम् अनया संपात्य अभिमन्त्र्य निन्दिताय बध्नीयात् ॥

---

1 S' एतो. We with the *Nakshatra-kalpa*. For the mantra अपेत एतु &c. see *Kausika* XIII. 5. 2 So S'. The *Nakshatra-kalpa*: स्वापुर्मासम्. 3 This is not found in *Kausika*, but refers to the *Kesarî* VII. 9 शिवे ते स्तामिति द्वाभ्यां पार्थिवस्येति द्वे मा प्र गामेति द्वे एताभिर्ऋग्भिर्व्रीह्यादि मूर्ध्नि ददाति। द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि &c. 4 S' निर्नयतेति. We with *Kausika*. 5 So S'. The *Nakshatra-kalpa*: °चंद्रमसाविति.

सूत्रितं हि । "उतामृतासुः[५.१.७] शिवास्ते[८.२.१५] इत्यभ्या-"ख्याताय प्रयच्छति । द्रुघणशिरो रज्ज्वा बध्नाति । प्रतिरूपं पलाशायोलो-"हहिरण्यानाम्" इति [कौ०५.१०] ॥

नामकरणे "यत् ते वासः" इत्यनया बालकं वस्त्रेण आच्छादयेत् । "यत् ते वास इत्यहतेनाच्छादयेत्" इति सूत्रम [कौ०७.९] ॥

गोदानाख्यसंस्कारकर्मणि चौले उपनयने च "यत् क्षुरेण" इत्यनया क्षुरस्य अभ्युक्षणं मार्जनं च कुर्यात् । "यत् क्षुरेणेत्युदक्पत्रं क्षुरम् अभ्यु-क्ष्य त्रिः प्रमार्ष्टि" इति [कौ०७.४] "यत् क्षुरेणेत्युक्तम्" इति च कौशिकसूत्रम [कौ०७.६] ॥

अन्नप्राशनकर्मणि "शिवौ ते स्तां व्रीहियवौ" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां व्रीहियवौ पिष्ट्वा अभिमन्त्र्य बालकं प्राशयेत् । "शिवौ ते स्ताम्" इति व्रीहियवौ प्राशयति" इति सूत्रम [कौ०७.९] ॥

तथा आभ्याम् ऋग्भ्यां व्रीहियवावभिमन्त्र्य गोदानादिषु कुमारस्य मूर्ध्नि परिदद्यात् । "शिवौ ते स्ताम् इति व्रीहियवाभ्याम्" इति ॥

गोदानादिषु संस्कारकर्मसु "अह्ने च त्वा" इत्यनया व्रीहियवावभि-मन्त्र्य कुमारस्य मूर्ध्नि दद्यात् । "अह्ने च त्वेत्यहोरात्राभ्यां परिददाति" इति हि सूत्रम [कौ०७.९] ॥

तत्र प्रथमा ॥

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोप सेधामि सर्वान् ॥ ११ ॥

कृणोमि । ते । प्राणापानौ । जराम् । मृत्युम् । दीर्घम् । आयुः । स्वस्ति । वैवस्वतेन । प्रऽहितान् । यमऽदूतान् । चरतः । अप । सेधामि । सर्वान् ॥ ११ ॥

हे आयुष्काम पुरुष ते तव प्राणापानौ शरीरे ऊर्ध्वाधःसंचारिणौ वायू कृणोमि । प्रतिपदं कृणोमि त इति यथोचितं तत्तद्वाक्यशेषोऽ-

1 S' द्रघणं शिरो बध्नाति. We with *Kaus'ika*. 2 S' संस्काराख्यकर्मणि. 3 S' °सूत्रम् corrected into °सूत्रितम्. 4 Not found in *Kaus'ika* but in the *Kes'avî* VII. 9. See note 3 on the previous page. 5 S' °दधाति. We with *Kaus'ika*. 6 S' inserts before प्रतिपदं the words अविनाशिनामैतत्, which we have transferred to the proper place lower down. 7 S' कृणोमीत्येवेति for कृणोमि त इति.

ध्याहर्तव्यः। ते प्राणापानौ स्थिरौ कृणोमि। जरां मृत्युं च। त्वां यथा न स्पृशतस्तथा कृणोमि। दीर्घम् आयुश्च ते कृणोमि। तथा कृत्वा स्वस्ति। अविनाशिनामैतत्। अविनाशं कृणोमि। कथम् एतत् सर्वं घटते यमदूतेष्वासन्नेषु इति तत्राह। वैवस्वतेन यमेन प्रहितान् प्रेषितान् चरतः आनयनाय व्यापारयतः सर्वान् यमदूतान् अप सेधामि दूरे निराकरोमि। मन्त्रसामर्थ्याद् इत्यभिप्रायः॥

द्वितीया॥

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवापं हन्मसि॥ १२॥

आरात्। अरातिम्। निःऽऋतिम्। परः। ग्राहिम्। क्रव्यऽअदः। पिशाचान्।

रक्षः। यत्। सर्वम्। दुःऽभूतम्। तत्। तमःऽइव। अप। हन्मसि॥१२॥

अरातिम् अदात्रीं शत्रुभूतां वा पुरोग्राहिम् पुरस्ताद् ग्रहणशीलाम् एवंविधां निर्ऋतिम् पापदेवतां कलहोत्पादिकाम्। "यत्रैतत् कुलं कलहि भवति तन्निर्ऋतिगृहीतम् इत्याचक्षते" इति सूत्रकारवचनात् [कौ०१३. ५]। आरात् हन्मसीति संबन्धः। निकृष्टं हन्मः। तथा क्रव्यादः मांसाशनान् पिशाचान् अप हन्मसि। एवं दुर्भूतम् दुष्टत्वम् आपन्नं यत् सर्वं रक्षोस्ति राक्षसजातिरस्ति। अथ वा दुष्टं च तद् भूतं च दुर्भूतं तादृग् रक्षः तत् तम एव तमोवद् आवरकमेव। तद् अप हन्मः॥

तृतीया॥

अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम्॥१३॥

अग्नेः। ते। प्राणम्। अमृतात्। आयुष्मतः। वन्वे। जातऽवेदसः।

यथा। न। रिष्याः। अमृतः। सऽजूः। असः। तत्। ते। कृणोमि। तत्। ऊं इति। ते। सम्। ऋध्यताम्॥ १३॥

---

१ P P² J ऋष्याः. We with Cp.

अमृतात् अमरणाद् देवाद् आयुष्मतः चिरजीविनः । "अग्निरायुष्मान्" इति हि श्रुतिः [तै० सं० २. ३. १०. ३] । तथाविधमाहात्म्यवतः अग्नेः सकाशात् हे निर्ऋत्यादिना अपहतप्राण पुरुष ते प्राणं वन्वे याचे । पुनः कीदृशाद् अग्नेः । जातवेदसः जातप्रज्ञात् जातधनाद् वा । हे पुरुष त्वं च यथा न रिष्याः हिंसितो न भवेः । रुष रिष हिंसायाम् । अस्माद् दैवादिकात् लेटि आडागमः । अमृतः अमरणः सजूः सह म्रीयमाणश्च असः भवेः । अस्तेर्लेटि अडागमः । तत् तादृक् शान्तिकर्म ते त्वदर्थं कृणोमि करोमि । तदु तदेव ते तव समृध्यताम् समृद्धं भवतु ॥

चतुर्थी ॥

शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ १४ ॥

शिवे इति । ते । स्ताम् । द्यावापृथिवी इति । असंतापे इत्यसंऽतापे । अभिऽश्रियौ ।
शम् । ते । सूर्यः । आ । तपतु । शम् । वातः । वातु । ते । हृदे ।
शिवाः । अभि । क्षरन्तु । त्वा । आपः । दिव्याः । पयस्वतीः ॥ १४ ॥

हे कुमार [ते] तव निष्क्रमणसमये । यद्वा गोदानादिभिः कर्मभिः संस्क्रियमाण पुरुष । ते तव द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ देव्यौ शिवे मङ्गले कल्याणकारिण्यौ स्ताम् भवताम् । तथा असंतापे संतापम् अकुर्वत्यौ स्ताम् । अभिश्रियौ प्राप्तश्रीके श्रीप्रदे स्ताम् । तथा सूर्यश्च ते त्वदर्थं शम् सुखं यथा भवति तथा आ तपतु प्रकाशयतु । एवं ते हृदे हृदयाय मनोनुकूलतायै वातः वायुः शम् सुखं यथा भवति तथा वातु संचरतु । तथा त्वा त्वां प्रति दिव्याः दिवि भवाः पयस्वतीः बहुभिः पयोभिः स्वाङ्गशैरुपेता आपः शिवाः सत्यः अभि क्षरन्तु अभि स्रवन्तु ॥

१ P इत्यसम्ऽतापे.

पञ्चमी ॥

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥ १५ ॥

शिवाः । ते । सन्तु । ओषधयः । उत् । त्वा । अहार्षम् । अधरस्याः । उत्तराम् । पृथिवीम् । अभि ।
तत्र । त्वा । आदित्यौ । रक्षताम् । सूर्याचन्द्रमसौ । उभा ॥ १५ ॥

हे कुमार ते [तव] ओषधयः आहारार्थम् उपयुज्यमाना व्रीह्यादयः शिवाः सुखकराः सन्तु भवन्तु । त्वा त्वाम् अधरस्याः पृथिव्याः सकाशाद् उत्तरां पृथिवीम् अभिलक्ष्य उदाहार्षम् उद्धरणम् अकार्षम् । पृथिव्या एकस्या अपि अधरोत्तरभावः अंशभेदेन त्रित्वाद् उपपद्यते । "तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून्" [ऋ० २. २७. ८] "तिस्रो महीरुपराः" [ऋ० ७. ८७. ५] इत्यादिमन्त्रेषु त्रित्वस्याम्नानात् । अवममध्यमोत्तमभेदेन पृथिव्यास्त्रैविध्यम आम्नायते मन्त्रान्तरे । "यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्याम उत स्थः" इति [ऋ० १. १०८. ९] । अतः अवमस्याः सकाशात् परमाम् पृथिवीम् अभिलक्ष्य उद्धरणम् अत्र अभिधीयते । तत्र उत्तरस्यां पृथिव्याम् हे बालक त्वा त्वाम् आदित्यौ अदितेः पुत्रौ देवौ रक्षताम् पालयताम् । कौ तावादित्यौ इति तौ दर्शयति । उभा उभौ सूर्याचन्द्रमसौ । ✕ "देवताद्वन्द्वे च" इति आनङ् आदेशः ✕ ॥

षष्ठी ॥

यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे[1] तत् कृण्मः संस्पर्शेदृष्णमस्तु ते ॥ १६ ॥

यत् । ते । वासः । परिधानम् । याम् । नीविम् । कृणुषे । त्वम् ।
शिवम् । ते । तन्वे । तत् । कृण्मः । समऽस्पर्शे । अदृष्णम् । अस्तु ।
ते ॥ १६ ॥

---

१ So we with all our authorities. See Rw.

हे बालक ते तव परिधानम् उपरि आच्छादनीयं यद् वासोस्ति त्वं च यां नीविं कृणुषे । नाभिदेशे संबद्धं वस्त्रं नीविरित्युच्यते । मध्यदेशाच्छादनम् इत्यर्थः । नीव्यपेक्षया याम् इति स्त्रीलिङ्गव्यपदेशः । तत् द्विप्रकारकं वस्त्रं ते तन्वे तव शरीराय शिवम् सुखकरं कृण्मः । तच्च वस्त्रं संस्पर्शे विषये अदूदृणम् अरूक्षं यथा मार्दवम् अश्नुते व्याप्नोति गच्छति तथा कृण्मः ॥

सप्तमी ॥

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ १७ ॥

यत् । क्षुरेण । मर्चयता । सुऽतेजसा । वप्ता । वपसि । केशऽश्मश्रु ।
शुभम् । मुखम् । मा । नः । आयुः । प्र । मोषीः ॥ १७ ॥

यत् यदा हे देव सवितः संस्कारक पुरुष वा त्वं वप्ता केशानां छेत्ता नापितः सन् मर्चयता व्यापारयता सुतेजसा शोभनतेजोयुक्तेन क्षुरेण केशश्मश्रु शिरोरोमाणि मुखरोमाणि च वपसि । यद्यपि वपतिधातुर्बीजसंतानार्थस्तथापि केशसमभिव्याहारात् छेदने वर्तते । तदा वपनं कुर्वन् मुखम् गोदानचौलोपनयनैः संस्क्रियमाणस्य बालस्य मुखं शुभम् दीप्तं तेजस्वि कुरु । वपने सति मुखविकाशभावाद् एवं प्रार्थ्यते । नः अस्माकं पुत्रस्य आयुर्मा प्र मोषीः ॥

अष्टमी ॥

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥ १८ ॥

शिवौ । ते । स्ताम् । व्रीहियवौ । अबलासौ । अदोमधौ ।
एतौ । यक्ष्मम् । वि । बाधेते इति । एतौ । मुञ्चतः । अंहसः ॥ १८ ॥

---

१ BDRCs शुभं. We with AKKSPPJ. २ BDKSCs आयुष्प्र for आयुः प्र. We with ABKRV. ३ JCr शुंभम्. We with PP.

1 S' यत् for तव. 2 Sâyana's text in S', however, has अस्तुते.

हे अन्नम् अश्नन् बालक ते तव व्रीहियवौ अन्नत्वेन कल्पितौ शिवौ स्ताम् मङ्गलौ सुखकरौ भवताम्। अबलासौ शारीरबलस्य अक्षेप्तारौ। बलकरावित्यर्थः। तथाविधौ स्ताम्। तथा अदोमधूं उपयोगानन्तरं मधुरौ॥ एवम् इष्टप्राप्तिम् आशास्य अरिष्टपरिहारम् आशास्ते। एतौ व्रीहियवौ यक्ष्मम् शरीरगतं रोगं वि बाधेते विशेषेण पीडयतः। एतावेव व्रीहियवौ कुमारम् अंहसः पापाद् मुञ्चतः मोचयतः॥

नवमी॥

यद॒श्नासि॒ यत् पिब॑सि धा॒न्य॑ं कृ॒ष्याः पयः।
यदा॒द्य॑१ यद॑ना॒द्यं सर्वं॑ ते अन्न॒मवि॑षं कृणोमि॥ १९॥

यत्। अ॒श्नासि। यत्। पिब॑सि। धा॒न्य॑म्। कृ॒ष्याः। पयः।
यत्। आ॒द्य॑म्। यत्। अ॒ना॒द्यम्। सर्व॑म्। ते॒। अन्न॑म्। अ॒वि॒ष॒म्।
कृ॒णो॒मि॒॥ १९॥

हे कुमार त्वं यद् धान्यं कृच्छ्रा॑द् अश्नासि अभ्यवहरसि। तथा यद् धान्यं कृच्छ्रा॑त् पयः पयोवत्सारभूतं पिष्टमयम् अन्नं पयोमिश्रितं वा धान्यम् व्रीह्यादिरूपं पिबसि। यद् आद्यम् अदनीयं सुखेन भक्षणीयम् यच्च अनाद्यम् अदनानर्हं कठिनद्रव्यम्। अत्यन्तकटुतिक्तत्वाद् वा अनाद्यम्। सर्वम् यद् अश्नासीत्यादिना उक्तम् अन्नम् अविषम् निर्विषम् अमृतं कृणोमि करोमि॥

दशमी॥

अह्ने॑ च त्वा रात्र॑ये चो॒भाभ्यां॑ परि॑ दद्मसि।
अरा॑येभ्यो जिघ॒त्नुभ्य॑ इ॒मं मे॒ परि॑ रक्षत॥ २०॥ (४)

अह्ने॑। च॒। त्वा॒। रात्र॑ये। च॒। उ॒भाभ्या॑म्। परि॑। द॒द्म॒सि॒।

---

१ So all our vaidikas and MSS. except P which has कृष्याः. २ B B$^{h}$ D S$^{m}$ Cs ३ for १. We with A K K$^{m}$ R V. ३ P J Cp अनाद्यम्. We with P$^{2}$. ४ B D K$^{m}$ R दध्मसि. Cs दध्मसि corrected into दद्मसि. We with A B$^{h}$ S$^{m}$ V. ५ So P P$^{2}$ J Cp.

1 Sâyaṇa's text too reads कृच्छ्रात्पयः, and not कृष्याः पयः.

अरायेभ्यः । जिघत्सुऽभ्यः । इमम् । मे । परि । रक्षत ॥ २० ॥ (४)

हे कुमार त्वा त्वाम् अह्ने अहर्देवतायै रात्रये रात्रिदेवतायै च उभाभ्यां देवताभ्यां परि दधामि परिदद्मः । रक्षार्थं प्रयच्छामः । उक्तकालद्वयव्यतिरेकेण कालान्तराभावात् तदुभयाभिमानिदेवताके रक्षणे सति सर्वदा बालस्य रक्षा भवतीत्यभिप्रायः । परिदानप्रकार उच्यते । अरायेभ्यः अधनेभ्यो धनापहर्तृभ्यो वा जिघत्सुभ्यः अदनेच्छावद्भ्यो भक्षकेभ्यः रक्षःपिशाचादिभ्यः सकाशाद् इमं मे मदीयं बालं परि रक्षत परितः पालयत हे विश्वे देवाः अह्नि संचरद्भ्यो रात्रौ संचरद्भ्यश्च । [1]जिघत्सुभ्य इति । अदेः "लुङ्सनोर्घस्लृ" इति घस्लादेशे "एकाच उपदेशेनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः । "सस्यार्धधातुके" इति तत्वम्[2] ॥

इत्यष्टमकाण्डे प्रथमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

"शतं तेयुतम्" इत्यस्य सूक्तस्य "आ रभस्व"[८.२] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

गोदानादिषु कर्मसु व्रीहियवौ "शरदे त्वा" इत्यभिमन्त्र्य कुमारस्य मूर्ध्नि दद्यात् । "शरदे त्वेत्यृतुभ्यः" इति हि सूत्रम्[७.९] ॥

तत्र प्रथमा ॥

शतं तेयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ २१ ॥

शतम् । ते । अयुतम् । हायनान् । द्वे इति । युगे इति । त्रीणि । चत्वारि । कृण्मः ।
इन्द्राग्नी इति । विश्वे । देवाः । ते । अनु । मन्यन्ताम् । अहृणीयमानाः ॥२१॥

हे बालक ते तव शतं हायनान् शतसंख्याकान् संवत्सरान् । "शतायुः पुरुषः" [तै० ब्रा० १.७.६.२] इति श्रुतिविहितान् अयुतम् अयुतसंख्याकान् कृण्मः कुर्मः । तथा ते द्वे युगे । जायापतिलक्षणम् ए-

1 S' °देवताकं. 2 S' तृतीयं.

कं युगम् । स्त्रयपत्यपुमपत्यलक्षणम् अपरं युगम् । एवं द्वे युगले । त्रीणि युगानि चत्वारि युगानि च कुर्मः । उपलक्षणम् एतत् । पुत्रपौत्रादिद्वारा अनेकयुगलानि कुर्मः । यद्यपि एकशतपर्यन्तं जीवनमपि मनुष्याणां न संभवति तथापि आकल्पं जीव कल्यायुष्यम् अस्तु इत्याद्याशीर्दर्शनाद् दीर्घायुषि तात्पर्यं न विरुध्यते । अथवा एवं योजना । हे बालक ते शतं हायनान् कृण्मः । तानेव अयुतं च हायनान् कृण्मः । तानेव द्वे युगे कृण्मः । त्रीणि च युगानि कृण्मः । चत्वारि युगानि कृण्म इति । अयम् अभिप्रायः । तव प्रथमं क्रियमाणेन संस्कारविशेषेण सर्वमनुष्यसाधारणान् शतसंवत्सरान् कुर्मः । तानेव अयुतसंख्याकान् कुर्मः । चतुर्णां युगानां संधिसंवत्सरान् विहाय युगचतुष्टयस्य मिलित्वा अयुतं संवत्सराः स्युः । तान् विभज्य [द्वे] कलिद्वापराख्ये । त्रीणि त्रेतासहितानि । चत्वारि कृतयुगसहितानि कुर्म इति आशास्यते । एवंरूपां प्रार्थनां ते प्रसिद्धा इन्द्राग्नी विश्वे च देवा अह्नणीयमानाः ईदृक्प्रार्थना कथं कर्तुं युज्यत इति ह्नणां लज्जां क्रोधं वा अकुर्वाणाः सन्तः [अनु] मन्यन्ताम् अनुमतिं कुर्वताम् ॥

द्वितीया ॥

शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥ २२ ॥

शरदे । त्वा । हेमन्ताय । वसन्ताय । ग्रीष्माय । परि । दद्मसि ।
वर्षाणि । तुभ्यम् । स्योनानि । येषु । वर्धन्ते । ओषधीः ॥ २२ ॥

हे बालक त्वा त्वां शरदे ऋतवे परि दद्मसि परिदद्मः । परिदानं रक्षार्थं दानम् । हे शरदृतो अमुं रक्षेति प्रयच्छाम इत्यर्थः । तावत्पर्यन्तं जीवन्तं हेमन्ताय परिदद्मः । ततो वसन्ताय । ततो ग्रीष्माय च परिदद्मः । उपलक्षणम् एतत् । सर्वेभ्योपि ऋतुभ्यः प्रयच्छामीत्युक्तं भवति । सर्वेष्वपि ऋतुषु जीवनस्य अपेक्षितत्वात् । हे बालक तुभ्यं व-

1 S' तात्पर्यान्न विरुध्यते. 2 S' मित्वा.

र्षाणि जीवनकालमध्यपातीनि षष्ट्युत्तरशतत्रयदिनसंख्याकानि प्रभवादिरूपाणि स्योनानि सुखकराणि । भवन्विति शेषः । येषु वर्षेषु ओषधीः ओषध्यः भोगसाधनभूतव्रीह्यादयो वर्धन्ते अभिवृद्धिं प्राप्नुवन्ति । तानि वर्षाणीति पूर्वत्र संबन्धः । वर्षाणि स्वीयाभिरभिवृद्धाभिरोषधीभिस्तव सुखकराणि सन्तु इत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्धरामि स मा बिभेः ॥ २३ ॥

मृत्युः । ईशे । द्विऽपदाम् । मृत्युः । ईशे । चतुःऽपदाम् ।
तस्मात् । त्वाम् । मृत्योः । गोऽपतेः । उत् । धरामि । सः । मा । बिभेः ॥२३॥

द्विपदाम् पदद्वयभूतानां मनुष्यपक्ष्यादीनां मृत्युः सर्वप्राणिसंहर्ता देवः ईशे ईष्टे स्वामी भवति । तथा चतुष्पदाम् गवाश्वादीनां मृत्युरेव ईष्टे । न हि मृत्युम् अपलपन् कश्चिदपि प्राणन् दृश्यते ऋते मुमुक्षोः । यस्मादेवं तस्मात् त्वां गोपतेः । गावः पराधीनत्वाद् यथा गोपालं नातियन्ति एवम् एतेपि मृत्योर्वशगा इति मृत्युर्गोपतिरित्युच्यते । अथवा गोशब्देनात्र पशवोऽभिधीयन्ते । पशवो द्विपादश्चतुष्पादश्च । तेषाम् उभयेषां पतिः । तादृशाद् मृत्योः सकाशाद् उद्धरामि उद्धरामि । मन्त्रवीर्याद् इत्यभिप्रायः । स मृत्युभीतस्त्वं मा बिभेः भीतिं मा कार्षीः ॥

चतुर्थी ॥

सो अरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः ।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ॥ २४ ॥

सः । अरिष्ट । न । मरिष्यसि । न । मरिष्यसि । मा । बिभेः ।
न । वै । तत्र । म्रियन्ते । नो इति । यन्ति । अधमम् । तमः ॥ २४ ॥

हे अरिष्ट । न विद्यते रिष्टं दैवं यस्य सः अरिष्टः । दैवविमुख इत्य-

1 S' गोपतेर्गाव इव for गोपतेः.

र्थः। स संबोध्यते। अथवा रिष्टं रेषो हिंसा सा यस्य नास्ति सः अरिष्टः। निरस्तहिंस इत्यर्थः। मृत्युकर्तृकहिंसारहित इति यावत्। तादृशं त्वं न मरिष्यसि मृतिं न प्राप्नोषि। दार्ढ्याय पुनराह। न मरिष्यसि त्वम् अतो मा बिभेः मरिष्यामीति भीतिं मा प्राप्नुहि। भीत्यभावे कारणम् आह न वै तत्रेति। तत्र तस्मिन् शान्तिकर्मविषये तस्मिन् शान्तिकर्मयुक्ते देशे वा। उत्तरमन्त्रे "यत्रेदं ब्रह्म क्रियते" इति वक्ष्यमाणत्वात्। न म्रियन्ते वै न प्राणं त्यजन्ति खलु। वैशब्दः प्रसिद्धौ। सा च महाशान्तिकृत्सु पुरुषेषु सार्वजनीना। मा भून्मृतिः। अधमतमःप्राप्तिः किम् अस्ति सापि नेत्याह नो यन्त्यधमं तम इति। अधमं तमः मरणकालीना दुःसहा मूर्छा। तामपि नैव प्राप्नुवन्ति। [यद्वा] मृत्यनन्तरं दुष्कर्मभिः प्राप्तव्यं सवितृप्रकाशशून्यम् अधोलोकस्थं तमिस्रम्। तस्य प्राप्तिर्नैवेत्यर्थः॥

पञ्चमी॥

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्॥ २५॥

सर्वः। वै। तत्र। जीवति। गौः। अश्वः। पुरुषः। पशुः।
यत्र। इदम्। ब्रह्म। क्रियते। परिधिः। जीवनाय। कम्॥ २५॥

पूर्वमन्त्रे सोरिष्ट न मरिष्यसि न वै तत्र म्रियन्त इति यद् उक्तं तदेव अस्मिन् मन्त्रे सोपपत्तिकं विस्पष्टीक्रियते। अर्थस्तु स्पष्ट एव। सर्वशब्दस्य विवरणं गौरश्व इत्यादि। ब्रह्म परिवृढं महाशान्त्याख्यं कर्म। परिधिः रक्षःपिशाचादिनिवारकः प्राकारः। यथा यज्ञे अग्नेः परिधिः एवम्। तच्च परिधानं किमर्थम् इति तत्राह जीवनाय कम् इति। जीवनायेत्येतावतो नाधिकम् कम् इत्यस्य पूरणार्थत्वात्। तथा च

१ P इमम्.

1 S' तादृशस्त्वं for तादृश त्वम्. 2 S' शांतिकमपिविषये. 3 S' शून्यमध्येलोकस्थतमिस्रं. 4 S' म्रियत इति.

यास्कः । "मिताक्षरेष्वनर्थकाः कमीमिदु" इत्युक्त्वा उदाजहार । "शिशिरं जीवनाय कम् इति शिशिरं जीवनाय" इति [नि० १. १०] ॥ ॥

षष्ठी ॥

परि त्वा पातु समानेभ्योभिचारात् सबन्धुभ्यः ।
अमम्रिर्भवामृतोतिजीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ॥ २६ ॥

परि । त्वा । पातु । समानेभ्यः । अभिऽचारात् । सबन्धुऽभ्यः ।
अमम्रिः । भव । अमृतः । अतिऽजीवः । मा । ते । हासिषुः । असवः ।
शरीरम् ॥ २६ ॥

हे शान्त्यर्थिन् पुरुष त्वा त्वां मया कृतं शान्तिकर्म परि परितः पातु पालयताम् । कुतः सकाशात् । समानेभ्यः विद्यैश्वर्यपराक्रमैः सदृशेभ्योऽन्येभ्यः । तथा सबन्धुभ्यः समानबन्धुभ्यः । अभिचारात् तत्कृतात् हिंसाप्रयोगात् । त्वं च अमम्रिः अमरणशीलो भव । तथा अमृतः मृतिरहितः अतिजीवः अतिशयितजीवो भव । ते तव शरीरम् असवः प्राणाः चक्षुरादीन्द्रियरूपा अमुख्यप्राणाः प्रसिद्धा मुख्यप्राणाश्च मा हासिषुः मा जह्युः ॥

सप्तमी ॥

ये मृत्यव एकशतं या नाष्ट्रा अतितार्याः ।
मुञ्चन्तु तस्मात् त्वां देवा अग्नेर्वैश्वानरादधि ॥ २७ ॥

ये । मृत्यवः । एकऽशतम् । याः । नाष्ट्राः । अतिऽतार्याः ।
मुञ्चन्तु । तस्मात् । त्वाम् । देवाः । अग्नेः । वैश्वानरात् । अधि ॥ २७ ॥

ये प्रसिद्धा मृत्यवः हिंसका यमस्य हेतयः ज्वरशिरोव्यथादयः एकशतम् एकशतसंख्याका मुख्यभूताः सन्ति । याश्च नाष्ट्राः नाशकारिण्यः अतितार्याः अतितरीतव्या लङ्घनीया हिंसिकाः सन्ति । तस्मात् उक्ताद् द्वि-

१ B $\overset{h}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ $\overset{m}{S}$ C$^{s}$ अमॅम्रि°. We with A R V. २ P C$^{p}$ अमॅम्रिः. We with $\overset{2}{P}$ J.

1 S′ तयः for हेतयः. 2 S′ याश्चतानाष्ट्राः for याश्च नाष्ट्राः.

विधाद् मृत्युरूपाद् नाष्ट्रारूपाच्च त्वां देवाः इन्द्रादयो मुञ्चन्तु मोचयन्तु। तथा वैश्वानराद् अग्नेरधि। ✕अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी✕। अग्नेः सकाशात् त्वां मुञ्चन्तु ॥

अष्टमी ॥

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णुं रक्षोहासि सपत्नहा।
अथो अमीवचातनः पूतुद्रुर्नाम भेषजम् ॥ २८ ॥ (५)

अग्नेः। शरीरम्। असि। पारयिष्णु। रक्षःऽहा। असि। सपत्नऽहा।
अथो इति। अमीवऽचातनः। पूतुद्रुः। नाम। भेषजम् ॥ २८ ॥ (५)

अनेन मन्त्रेण पूतद्रुनामकः सर्वारिष्टनिवर्तको रक्षामण्युपादानभूतो वृक्षविशेषः कथ्यते। हे पूतद्रो त्वम् अग्नेः पारयिष्णु पारप्रापकं शरीरम् असि। वृक्षस्यान्तः अग्नेरवस्थानात् शरीरत्वव्यपदेशः। विशेषतः अस्य वृक्षस्य शरीरत्वाभिधानम्। अथवा पारयिष्णुरिति पृथग्विशेषणम्। स्वनिर्दिष्टव्यापारस्य पारप्रापकः रक्षोहा रक्षसां हन्ता असि भवसि। सपत्नहा शत्रुहन्ता च असि। अथो अपि च अमीवचातनः रोगस्य प्रच्यावकः। एवंमहिमा त्वं पूतद्रुनाम पूतद्रुसंज्ञकं भेषजम् औषधम्। तादृशस्त्वम् अभिमतं साधयेति शेषः ॥

इत्यथर्वसंहिताभाष्ये अष्टमकाण्डे प्रथमोनुवाकः ॥

द्वितीयेनुवाके षट् सूक्तानि। अस्यानुवाकस्य चातनगणे पाठात् "चातनानाम् अपनोदनेन व्याख्यातम्" [कौ० ४. १] इत्युक्तेषु कर्मसु विनियोगः। तानि कर्माणि कथ्यन्ते। रक्षोग्रहपिशाचादिभैषज्यार्थम् अनेनानुवाकेन फलीकरणतुषवृक्षशकलानाम् अन्यतमं जुहुयात्। एतैरेव धूपयेद् वा ॥

तथा अनेनानुवाकेन पिशाचादिग्रस्तं पुरुषम् अनुब्रूयात् ॥

---

१ A °यिष्णु changed to °यिष्णू. R °यिष्णू. We with B B[h] K K[m] S[m] Cs. २ A पूतुर्द्रु°. S[m] पूतद्रु°. We with B[h] D K K[m] R P P[2] J V Cs. ३ So P P[2] J Cr.

1 S' अयं for अधिः. 2 S' परोक्षो° for रक्षो°. The emendation is conjectural. 3 S' °करणं.

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेनानुवाकेन त्रपुसमुसलखदिरसर्षपाणाम् अन्यतमस्य समिध आदध्यात् ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि खादिरान् शङ्कून् लोहमयान् ताम्रमयान् वा विषमसंख्यान् निखननार्थं "रक्षोहणम" इत्यनुवाकेन अभिमन्त्रयेत । तप्तशर्करा अभिमन्त्र्य शयनादौ परिकिरेद् वा ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेनानुवाकेन सूत्रोक्तरीत्या यवसक्तून् जुहुयात् ॥

तथा असाध्यग्रहवशीकरणार्थम् अनेनानुवाकेन वीरणतूलसहितम् इङ्गिडाज्यं पलाशपर्णपृष्ठभागेन जुहुयात् ॥

तथा गृहादौ ग्रहपिशाचादिसद्भावासद्भावशङ्कायाम् अनेनानुवाकेन सर्षपेध्मं शरमयं बर्हिश्च अभिमन्त्र्य गृहस्योपरि स्थापयेत् । प्रभाते इध्मा-बर्हिषोर्विकारे ग्रहास्तित्वं जानीयात् ॥

तस्मिन्नेव कर्मणि वैश्रवणनमस्कारानन्तरम् अनेनानुवाकेन उदकम् अभिमन्त्र्य ग्रहगृहीतम् आचामयेत् प्रोक्षयेद् वा रात्रौ उल्मुकद्वयम् अभिमन्त्र्य संघर्षयेद् वा ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "चातनानाम् अपनोदनेन व्याख्यातम् । त्रपुस-"मुसलखदिरतार्ष्टीघानाम् आदधाति । अयुग्मान् खादिरान् शङ्कून् अं-"ह्यौ नि विध्य[५.२९.४] इति पश्चाद् अग्नेः समं भूमिं निखन-"ति । एवम् [आयस]लोहान् । तप्तशर्कराभिः शयनं राशिपत्यानि परि-"किरति । अमावास्यायां सकृद्गृहीतान् यवान् अनपहतान् अप्रतीहार-"पिष्टान् आभिचारिकं परिस्तीर्य तार्ष्टीघेध्म आवपति । य आगच्छेत् "तं ब्रूयाच्छणशुल्बेन जिह्वां निर्मृजानः शालायाः प्रस्कन्देति । तथाऽकु-"र्वन्ननाः । अघे हुवाने । वीरिणतूलमिश्रम इङ्गिडं प्रपुटेन जुहोति । इध्माबर्हिः शालायाम् आसजति । अपरेद्युर्विकृतौ पिशाचतो रुजति ।

---

1 S' सप्त°. 2 So S'. 3 S' °त्वाष्ट्राघा°. We with *Kaus'ika*. 4 S' वृक्षौ. 5 S' सत्वशर्कराभिशयनराशि°. We with *Kaus'ika* and Dârila. 6 S' शयनराशि° with the *Kes'avî*. We with *Kaus'ika* and Dârila. 7 S' परिचरत्यमा°. We with *Kaus'ika*. 8 S' °यवाननपहिता°. We with *Kaus'ika*. 9 S' °हारं. We with *Kaus'ika*. 10 S' त्वाष्ट्राघेध्म. We with *Kaus'ika*. 11 S' °च्छरण°. We with *Kaus'ika*. 12 S' जुव्हा. We with *Kaus'ika*. 13 S' व्रस्कंनिति. 14 S' °कुर्वन्नघानेनवाने. *Kaus'ika*: कुर्वेननाघेन्नुवाने. 15 So S' and *Kaus'ika*. 16 S' पिशाचा आगुरिति for पिशाचतो रुजति.

"उक्तो होमः । वैश्रवणमयाञ्जलिं कृत्वा जपन्नाचामत्यभ्युक्षति । निश्यु-
"ल्मुके संघर्षति" इति [कौ० ४. १] ॥

तथा शान्त्युदकाभिमन्त्रणे "चातनैर्मातृनामभिर्जुहुयात्" [शा० क० १६] इत्यादिषु च अस्यानुवाकस्य गणप्रयुक्तो विनियोगोनुसंधेयः ॥

तथा वशाशमनकर्मणि पशुसंज्ञपनानन्तरं "रक्षोहणम्" इत्यनुवाकं जपेत् । सूत्रितं हि । "अथ प्राणान् आस्थापयति प्रजानन्तः [२. ३४. ५] इति । दक्षिणतस्तिष्ठन् रक्षोहणम् [८. ३] जपति" इति [का० ५. ८] ॥

तथा घृतकम्बलाख्ये महाभिषेके अभिषेकानन्तरं "रक्षोहणम्" इत्यनुवाकं जपेत् । "बृहस्पतिर्महेन्द्राय चकार घृतकम्बलम्" इति प्रक्रम्य उक्तम् अथर्वपरिशिष्टे ।

ब्राह्मणाः स्वस्ति वाच्यांथ प्राङ्मुखः संविशेत् ततः ।
रक्षोहणम् अनुवाकं जपेत् कर्ताथ ऋत्विजः । इति ॥

तत्र प्रथमा ॥

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ १ ॥

रक्षःऽहनम् । वाजिनम् । आ । जिघर्मि । मित्रम् । प्रथिष्ठम् । उप । या-
मि । शर्म ।
शिशानः । अग्निः । क्रतुऽभिः । समऽइद्धः । सः । नः । दिवा । सः ।
रिषः । पातु । नक्तम् ॥ १ ॥

एतदनुवाकविनियोजकसूत्रोक्तफलकामोहं रक्षोहणम् रक्षसाम् अपहन्तारं वाजिनम् वाजो बलं तत्साधनम् अन्नं वा तद्वन्तम् अग्निम् आ जिघर्मि घृतं सर्वतः क्षारयामि । जुहोमीत्यर्थः । यद्वा दीपयामि समिन्धे । आज्यादिनेति शेषः । तथा कृत्वा मित्रम् सखिभूतं प्रथिष्ठम् पृथुतरं तम्

१ P प्रथिष्टम्. We with P J Cp. २ P P J Cp ऋषः.

1 S' दक्षिणस्तिष्ठन्. We with *Kaus'ika*. 2 So S'. The *Ghritakambalavidhi* in my MS. of the *Paris'ishta* does not contain the verse. 3 S' समेधम्याज्यादिनेति.

अग्निं शर्म शरणम् उप यामि उपगच्छामि । अथ वा शर्म सुखम् । लब्धुम् इति शेषः । सोऽग्निः शिशानः ज्वालास्तीक्ष्णीकुर्वन् । ‡ "बहुलं छन्दसि" इति शपः श्लौ अभ्यासस्य इत्त्वम् । आत्वम् । शानच् ‡ । क्रतुभिः ऋत्वङ्गभूतैराज्यादिभिः कर्मभिर्वा समिद्धः सम्यग्दीप्तः । भवत्विति शेषः । स तादृशो रक्षोहा अग्निः नः अस्मान् रिषः हिंसकाद् दिवा अहनि पातु रक्षतु । स एव अग्निः नक्तम् रात्रौ रिषः सकाशात् पातु । सर्वेष्वहःसु सर्वासु च रात्रिषु पात्वित्यर्थः ॥

द्वितीया ॥

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृष्ट्वापि धत्स्वासन् ॥ २ ॥

अयःऽदंष्ट्रः । अर्चिषा । यातुऽधानान् । उप । स्पृश । जातऽवेदः । समऽइद्धः । आ । जिह्वया । मूरऽदेवान् । रभस्व । क्रव्यऽअदः । वृष्ट्वा । अपि । धत्स्व । आसन् ॥ २ ॥

हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने समिद्धः अस्मद्दत्तैराज्यादिभिः सम्यग्दीप्तस्त्वम् अयोदंष्ट्रः अयोमयदन्तयुक्तः सन् अर्चिषा ज्वालया क्रूरया यातुधानान् यातवो यातनास्ता एषु धीयन्ते यातुधानाः तान् उप स्पृश । संदहेत्यर्थः । तथा मूरदेवान् मूलेन औषधेन दीव्यन्ति परेषां हननाय क्रीडन्तीति मूरदेवाः तान् । अभिचरत इत्यर्थः । अथ वा "मूरा अमूर" इत्यत्र यास्केन "मूढा वयं स्मोऽमूढस्त्वम् असि" [नि० ६. ८] इत्युक्तत्वात् मूढाः कार्याकार्यविभागबुद्धिशून्याः सन्तो ये दीव्यन्ति ते मूरदेवाः तान् जिह्वया ज्वालया आ रभस्व स्पृश । दहेत्यर्थः । तथा क्रव्यादः मांसभक्षकान् रक्षःपिशाचादीन् धृष्ट्वा धर्षित्वा । ‡ इडभावश्छान्दसः ‡ । "आसन् तव आस्ये । ‡ "पदन०" इत्यादिना आस्यशब्दस्य आसन् आदेशः ‡ । अपि धत्स्व अपिधानं कुरु ओष्ठाभ्याम् आच्छादय । भक्षयेत्यर्थः ॥

---

१ So all our MSS. and vaidikas. २ P दृष्ट्वा. We with P J CP.

---

1 S' °क्षणकुर्वन्.

तृतीया ॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रौ हिंस्रः शिशानोवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याह्यग्ने जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥ ३ ॥

उभा । उभयाविन् । उप । धेहि । दंष्ट्रौ । हिंस्रः । शिशानः । अवरम् । परम् । च ।
उत । अन्तरिक्षे । परि । याहि । अग्ने । जम्भैः । सम् । धेहि । अभि । यातुऽधानान् ॥ ३ ॥

हे उभयाविन् उभयवन् अयं रक्षणीयः अयं हन्तव्यः इत्युभयविधजननपरिज्ञानवन् । यद्वा अवरं परं चेति वक्ष्यमाणौ अवरपरौ उभयशब्देन उच्येते । तदुभयवन् हिंस्रः हिंसनशीलः शिशानः तीक्ष्णज्वालस्तीक्ष्णदन्तो वा अवरम् अस्मत्तो निकृष्टं द्वेष्यं परं च अस्मत्तोधिकं द्वेष्यं च उभा दंष्ट्रौ उभे दंष्ट्रे उप धेहि उप्रहिते कुरु दंष्ट्रान्तर्वर्तिनौ कुरु । खादेत्यर्थः ॥ उत अपि च अन्तरिक्षे आकाशे परि याहि संचर । हे अग्ने संचर्य च मम बाधनाय तत्र संचरतो यातुधानान् रक्षःप्रभृतीन् जम्भैः दन्तैः अभि सं धेहि अभिसंहितान् संदष्टान् कुरु । यद्वा यातुधानान् अभि अन्तरिक्षे परि याहि । तान् एव जम्भैः सं धेहि ॥

चतुर्थी ॥

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोत्वेनम् ॥ ४ ॥

अग्ने । त्वचम् । यातुऽधानस्य । भिन्धि । हिंस्रा । अशनिः । हरसा । हन्तु । एनम् ।
प्र । पर्वाणि । जातऽवेदः । शृणीहि । क्रव्यऽअत् । क्रविष्णुः । वि । चिनोतु । एनम् ॥ ४ ॥

---

१ K शिशानो°. २ P शिशानः. We with P J Cp. ३ P याहि. We with P J. ४ P एनम्. We with P J.

---

1 S' उच्यते. 2 S' संचरित्वा for संचर्य.

हे अग्ने त्वं यातुधानस्य रक्षआदेः त्वचम् बाह्यधातुं भिन्धि छिन्धि भिन्नां कुरु । तव च हिंस्रा अशनिः हिंसको वज्रो हरसा तापेन एनं यातुधानं हन्तु हिनस्तु । पूर्वं त्वचः कर्तनं प्रार्थ्य तावता अपरितुष्टमना आह प्र पर्वाणीति । हे जातवेदः जातधन जातप्रज्ञ वा अग्ने यातुधानस्य पर्वाणि शरीरग्रन्थीन् प्र शृणीहि प्रकर्षेण भिन्नानि कुरु । तथा कृते क्रव्यात् मांसभक्षको वृकादिः क्रविष्णुः क्रव्यम् इच्छन् एनं यातुधानं वि चिनोतु इतस्ततो भक्षणाय आकृष्य विप्रकीर्णं करोतु ॥

पञ्चमी ॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
उतान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥ ५ ॥

यत्र । इदानीम् । पश्यसि । जातऽवेदः । तिष्ठन्तम् । अग्ने । उत ।
वा । चरन्तम् ।
उत । अन्तरिक्षे । पतन्तम् । यातुऽधानम् । तम् । अस्ता । विध्य ।
शर्वा[1] । शिशानः ॥ ५ ॥

हे जातवेदः अग्ने त्वं यत्र यस्मिन् देशे इदानीम् अस्मिन् काले अस्मदुपद्रवकाले पश्यसि यातुधानम् अस्मदुपद्रवकारिणं राक्षसादिकम् । कथंभूतम् इति तत्राह । तिष्ठन्तम् कस्मिंश्चिद् देशे स्थितिं कुर्वाणम् उत वा अपि वा चरन्तम् एकत्र अवस्थितिम् अकुर्वाणम् उत अपि च अन्तरिक्षे आकाशे पतन्तम् गच्छन्तं तं यातुधानम् अस्ता क्षेप्ता त्वं शिशानः तीक्ष्णः सन् शर्वा शरुणा [विध्य] ताडय ॥

षष्ठी ॥

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहूंन् प्रति भङ्ग्धेषाम् ॥ ६ ॥

यज्ञैः । इषूः । सम्ऽनममानः । अग्ने । वाचा । शल्यान् । अशनिऽभिः ।
दिहानः ।

---

१ D सर्वा. २ P P[2] J C[1] सर्वी. We with the saṁhitâ.

ध्याहर्तव्यः। ते प्राणापानौ स्थिरौ कृणोमि। जरां मृत्युं च। त्वां यथा न स्पृशतस्तथा कृणोमि। दीर्घम् आयुश्च ते कृणोमि। तथा कृत्वा स्वस्ति। अविनाशिनामैतत्। अविनाशं कृणोमि। कथम् एतत् सर्वं घटते यमदूतेष्वासन्नेषु इति तत्राह। वैवस्वतेन यमेन प्रहितान् प्रेषितान् चरतः आनयनाय व्यापारयतः सर्वान् यमदूतान् अप सेधामि दूरे निराकरोमि। मन्त्रसामर्थ्याद् इत्यभिप्रायः॥

द्वितीया॥

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तम इवापं हन्मसि॥ १२॥

आरात्। अरातिम्। निःऽऋतिम्। परः। ग्राहिम्। क्रव्यऽअदः। पिशाचान्।
रक्षः। यत्। सर्वम्। दुःऽभूतम्। तत्। तमःऽइव। अप। हन्मसि॥१२॥

अरातिम् अदात्रीं शत्रुभूतां वा पुरोग्राहिम् पुरस्ताद् ग्रहणशीलाम् एवंविधां निर्ऋतिम् पापदेवतां कलहोत्पादिकाम्। "यत्रैतत् कुलं कलहि भवति तन्निर्ऋतिगृहीतम् इत्याचक्षते" इति सूत्रकारवचनात् [कौ०१३. ५]। आरात् हन्मसीति संबन्धः। निकृष्टं हन्मः। तथा क्रव्यादः मांसाशनान् पिशाचान् अप हन्मसि। एवं दुर्भूतम् दुष्टत्वम् आपन्नं यत् सर्वं रक्षोस्ति राक्षसजातिरस्ति। अथ वा दुष्टं च तद् भूतं च दुर्भूतं तादृग् रक्षः तत् तम एव तमोवद् आवरकमेव। तद् अप हन्मः॥

तृतीया॥

अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत् ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम्॥१३॥

अग्नेः। ते। प्राणम्। अमृतात्। आयुष्मतः। वन्वे। जातऽवेदसः।
यथा। न। रिष्याः। अमृतः। सऽजूः। असः। तत्। ते। कृणोमि। तत्।
ऊं इति। ते। सम्। ऋध्यताम्॥ १३॥

---

१ P P² J ऋष्याः. We with Cr.

अमृतात् अमरणाद् देवाद् आयुष्मतः चिरजीविनः । "अग्निरायुष्मान्" इति हि श्रुतिः [तै० सं० २. ३. १०. ३] । तथाविधमाहात्म्यवतः अग्नेः सकाशात् हे निर्ऋत्यादिना अपहृतप्राण पुरुष ते प्राणं वन्वे याचे । पुनः कीदृशाद् अग्नेः । जातवेदसः जातप्रज्ञात् जातधनाद् वा । हे पुरुष त्वं च यथा न रिष्याः हिंसितो न भवेः । ☒ रुष रिष हिंसायाम् । अस्माद् दैवादिकात् लेटि आडागमः ☒ । अमृतः अमरणः सजूः सह प्रीयमाणश्च असः भवेः । ☒ अस्तेर्लेटि अडागमः ☒ । तत् तादृक् शान्तिकर्म ते त्वदर्थं कृणोमि करोमि । तदु तदेव ते तव समृध्यताम् समृद्धं भवतु ॥

## चतुर्थी ॥

शिवे ते स्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ ।
शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे ।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ १४ ॥

शिवे इति । ते । स्ताम् । द्यावापृथिवी इति । असंतापे इत्यसंऽतापे । अभिऽश्रियौ ।
शम् । ते । सूर्यः । आ । तपतु । शम् । वातः । वातु । ते । हृदे ।
शिवाः । अभि । क्षरन्तु । त्वा । आपः । दिव्याः । पयस्वतीः ॥ १४ ॥

हे कुमार [ते] तव निष्क्रमणसमये । यद्वा गोदानादिभिः कर्मभिः संस्क्रियमाण पुरुष । ते तव द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ देव्यौ शिवे मङ्गले कल्याणकारिण्यौ स्ताम् भवताम् । तथा असंतापे संतापम् अकुर्वत्यौ स्ताम् । अधिश्रियौ प्राप्तश्रीके श्रीप्रदे स्ताम् । तथा सूर्यश्च ते त्वदर्थं शम् सुखं यथा भवति तथा आ तपतु प्रकाशयतु । एवं ते हृदे हृदयाय मनोनुकूलतायै वातः वायुः शम् सुखं यथा भवति तथा वातु संचरतु । तथा त्वा त्वां प्रति दिव्याः दिवि भवाः पयस्वतीः बहुभिः पयोभिः स्वाङ्गशैरुपेता आपः शिवाः सत्यः अभि क्षरन्तु अभि स्रवन्तु ॥

१ P इत्यसम्ऽतापे.

पञ्चमी ॥

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत् त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसावुभा ॥ १५ ॥

शिवाः । ते । सन्तु । ओषधयः । उत् । त्वा । अहार्षम् । अधरस्याः । उत्तराम् । पृथिवीम् । अभि ।
तत्र । त्वा । आदित्यौ । रक्षताम् । सूर्याचन्द्रमसौ । उभा ॥ १५ ॥

हे कुमार ते [तव] ओषधयः आहारार्थम् उपयुज्यमाना व्रीह्यादयः शिवाः सुखकराः सन्तु भवन्तु । त्वा त्वाम् अधरस्याः पृथिव्याः सकाशाद् उत्तरां पृथिवीम् अभिलक्ष्य उदाहार्षम् उद्धरणम् अकार्षम् । पृथिव्या एकस्या अपि अधरोत्तरभावः अंशभेदेन त्रित्वाद् उपपद्यते । "तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून्" [ऋ० २. २७. ८] "तिस्रो महीरुपराः" [ऋ० ७. ८७. ५] इत्यादिमन्त्रेषु त्रित्वस्याम्नानात् । अवममध्यमोत्तमभेदेन पृथिव्यास्त्रैविध्यम् आम्नायते मन्त्रान्तरे । "यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्याम उत स्थः" इति [ऋ० १. १०८. ९] । अतः अवमस्याः सकाशात् परमाम् पृथिवीम् अभिलक्ष्य उद्धरणम् अत्र अभिधीयते । तत्र उत्तरस्यां पृथिव्याम् हे बालक त्वा त्वाम् आदित्यौ अदितेः पुत्रौ देवौ रक्षताम् पालयताम् । कौ तावादित्यौ इति तौ दर्शयति । उभा उभौ सूर्याचन्द्रमसौ । ※"देवताद्वन्द्वे च" इति आनङ् आदेशः※ ॥

ष्ठी ॥

यत् ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम् ।
शिवं ते तन्वे[1] तत् कृण्मः संस्पर्शेदृक्षणमस्तु ते ॥ १६ ॥

यत् । ते । वासः । परिऽधानम् । याम् । नीविम् । कृणुषे । त्वम् ।
शिवम् । ते । तन्वे । तत् । कृण्मः । सम्ऽस्पर्शे । अदृक्षणम् । अस्तु ।
ते ॥ १६ ॥

---

१ So we with all our authorities. See Rw.

हे बालक ते तवं परिधानम् उपरि आच्छादनीयं यद् वासोस्ति त्वं च यां नीविं कृणुषे । नाभिदेशे संबद्धं वस्त्रं नीविरित्युच्यते । मध्यदेशाच्छादनम् इत्यर्थः । नीव्यपेक्षया याम् इति स्त्रीलिङ्गव्यपदेशः । तत् द्विप्रकारकं वस्त्रं ते तन्वे तव शरीराय शिवम् सुखकरं कृण्मः । तच्च वस्त्रं संस्पर्शे विषये अदूष्णम् अरूक्षं यथा मार्दवम् अश्नुते व्याप्नोति गच्छति तथा कृण्मः ॥

सप्तमी ॥

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ १७ ॥

यत् । क्षुरेण । मर्चयता । सुऽतेजसा । वप्ता । वपसि । केशऽश्मश्रु ।
शुभम् । मुखम् । मा । नः । आयुः । प्र । मोषीः ॥ १७ ॥

यत् यदा हे देव सवितः संस्कारक पुरुष वा त्वं वप्ता केशानां छेत्ता नापितः सन् मर्चयता व्यापारयता सुतेजसा शोभनतेजोयुक्तेन क्षुरेण केशश्मश्रु शिरोरोमाणि मुखरोमाणि च वपसि । यद्यपि वपतिधातुर्बीजसंतानार्थस्तथापि केशसमभिव्याहारात् छेदने वर्तते । तदा वपनं कुर्वन् मुखम् गोदानचौलोपनयनैः संस्क्रियमाणस्य बालस्य मुखं शुभम् दीप्तं तेजस्वि कुरु । वपने सति मुखविकाशभावाद् एवं प्रार्थ्यते । नः अस्माकं पुत्रस्य आयुर्मा प्र मोषीः ॥

अष्टमी ॥

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥ १८ ॥

शिवौ । ते । स्ताम् । व्रीहियवौ । अबलासौ । अदोमधौ ।
एतौ । यक्ष्मम् । वि । बाधेते इति । एतौ । मुञ्चतः । अंहसः ॥ १८ ॥

---

१ $^{h}$BDRC$_{s}$ शुंभं. We with AK$^{m}$K$^{m}$SPP$^{2}$J. २ $^{h}$BDK$^{m}$K$^{m}$SC$_{s}$ आयुष्प्र for आयुः प्र. We with ABKRV. ३ JC$_{r}$ शुंभम्. We with PP$^{2}$.

1 S′ यत् for तव. 2 Sâyaṇa's text in S′, however, has अस्तुते.

हे अन्नम अश्नन् बालक ते तव व्रीहियवौ अन्नत्वेन कल्पितौ शिवौ स्ताम् मङ्गलौ सुखकरौ भवताम् । अबलासौ शारीरबलस्य अक्षेत्तारौ । बलकरावित्यर्थः । तथाविधौ स्ताम् । तथा अदोमधूं उपयोगानन्तरं मधुरौ ॥ एवम् इष्टप्राप्तिम् आशास्य अरिष्टपरिहारम् आशास्ते । एतौ व्रीहियवौ यक्ष्मम् शरीरगतं रोगं वि बाधेते विशेषेण पीडयतः । एतावेव व्रीहियवौ कुमारम् अंहसः पापाद् मुञ्चतः मोचयतः ॥

नवमी ॥

यद्श्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः ।
यदाद्यं१ यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥ १९ ॥

यत् । अश्नासि । यत् । पिबसि । धान्यम् । कृष्याः । पयः ।
यत् । आद्यम् । यत् । अनाद्यम् । सर्वम् । ते । अन्नम् । अविषम् ।
कृणोमि ॥ १९ ॥

हे कुमार त्वं यद् धान्यं कृच्छ्रात्[1] अश्नासि अभ्यवहरसि । तथा यद् धान्यं कृच्छ्रात् पयः पयोवत्सारभूतं पिष्टमयम् अन्नं पयोमिश्रितं वा धान्यम व्रीह्यादिरूपं पिबसि । यद् आद्यम् अदनीयं सुखेन भक्षणीयम् यच्च अनाद्यम् अदनानर्हं कठिनद्रव्यम् । अत्यन्तकटुतिक्तत्वाद् वा अनाद्यम् । सर्वम् यद् अश्नासीत्यादिना उक्तम् अन्नम् अविषम् निर्विषम् अमृतं कृणोमि करोमि ॥

दशमी ॥

अह्ने च त्वा रात्र्ये चोभाभ्यां परि दद्मसि ।
अरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ॥ २० ॥ (४)

अह्ने । च । त्वा । रात्र्ये । च । उभाभ्याम् । परि । दद्मसि ।

१ So all our vaidikas and MSS. except **P** which has ऋष्याः. २ **B**$^{h}$**B**$^{m}$**D**$^{m}$**S**$^{m}$**C**s ३ for १. We with **A K K**$^{m}$**R V**. ३ **P J C**P अनाद्यम्. We with **P**$^{2}$. ४ **B D K**$^{m}$**R** दध्मसि. **C**s दध्मसि corrected into दद्मसि. We with **A B**$^{h}$**S**$^{m}$**V**. ५ So **P P**$^{2}$ **J C**P.

1 Sâyaṇa's text too reads कृच्छ्रात्पयः, and not कृष्याः पयः.

अरायेभ्यः । जिघत्सुभ्यः । इमम् । मे । परि । रक्षत ॥ २० ॥ (४)

हे कुमार त्वा त्वाम् अह्ने अहर्देवतायै रात्रये रात्रिदेवतायै च उभाभ्यां देवताभ्यां परि दध्मसि परिदद्मः । रक्षार्थं प्रयच्छामः । उक्तकालद्वयव्यतिरेकेण कालान्तराभावात् तदुभयाभिमानिदेवताके रक्षणे सति सर्वदा बालस्य रक्षा भवतीत्यभिप्रायः । परिदानप्रकार उच्यते । अरायेभ्यः अधनेभ्यो धनापहर्तृभ्यो वा जिघत्सुभ्यः अदनेच्छावद्भ्यो भक्षकेभ्यः रक्षःपिशाचादिभ्यः सकाशाद् इमं मे मदीयं बालं परि रक्षत परितः पालयत हे विश्वे देवाः अह्नि संचरद्भ्यो रात्रौ संचरद्भ्यश्च । ✕ जिघत्सुभ्य इति । अदेः "लुङ्सनोर्घस्लृ" इति घस्लादेशे "एकाच उपदेशेनुदात्तात्" इति इट्प्रतिषेधः । "सस्यार्धधातुके" इति तत्वम् ✕ ॥

इत्यष्टमकाण्डे प्रथमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

"शतं तेयुतम्" इत्यस्य सूक्तस्य "आ रभस्व"[८.२] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

गोदानादिषु कर्मसु व्रीहियवौ "शरदे त्वा" इत्यभिमन्त्र्य कुमारस्य मूर्ध्नि दद्यात् । "शरदे त्वेत्यृतुभ्यः" इति हि सूत्रम्[७.९] ॥

तत्र प्रथमा ॥

शतं तेयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ २१ ॥

शतम् । ते । अयुतम् । हायनान् । द्वे इति । युगे इति । त्रीणि । चत्वारि । कृण्मः ।
इन्द्राग्नी इति । विश्वे । देवाः । ते । अनु । मन्यन्ताम् । अहृणीयमानाः ॥२१॥

हे बालक ते तव शतं हायनान् शतसंख्याकान् संवत्सरान् । "शतायुः पुरुषः" [तै० ब्रा० १.७.६.२] इति श्रुतिविहितान् अयुतम् अयुतसंख्याकान् कृण्मः कुर्मः । तथा ते द्वे युगे । जायापतिलक्षणम् ए-

1 S' °देवताकं. 2 S' तृतीयं.

कं युगम् । स्त्रयपत्यपुमपत्यलक्षणम् अपरं युगम् । एवं द्वे युगले । त्रीणि युगानि चत्वारि युगानि च कुर्मः । उपलक्षणम् एतत् । पुत्रपौत्रादिद्वारा अनेकयुगलानि कुर्मः । यद्यपि एकशतपर्यन्तं जीवनमपि मनुष्याणां न संभवति तथापि आकल्पं जीव कल्पायुष्यम् अस्तु इत्याद्याशीर्दर्शनाद् दीर्घायुषि तात्पर्यं न विरुध्यते । अथवा एवं योजना । हे बालक ते शतं हायनान् कृण्मः । तानेव अयुतं च हायनान् कृण्मः । तानेव द्वे युगे कृण्मः । त्रीणि च युगानि कृण्मः । चत्वारि युगानि कृण्म इति । अयम् अभिप्रायः । तव प्रथमं क्रियमाणेन संस्कारविशेषेण सर्वमनुष्यसाधारणान् शतसंवत्सरान् कुर्मः । तानेव अयुतसंख्याकान् कुर्मः । चतुर्णां युगानां संधिसंवत्सरान् विहाय युगचतुष्टयस्य मिलित्वा अयुतं संवत्सराः स्युः । तान् विभज्य [द्वे] कलिद्वापराख्ये । त्रीणि त्रेतासहितानि । चत्वारि कृतयुगसहितानि कुर्म इति आशास्यते । एवंरूपां प्रार्थनां ते प्रसिद्धा इन्द्राग्नी विश्वे च देवा अह्नणीयमानाः ईदृक्प्रार्थना कथं कर्तुं युज्यत इति ह्नणां लज्जां क्रोधं वा अकुर्वाणाः सन्तः [अनु] मन्यन्ताम् अनुमतिं कुर्वताम् ॥

द्वितीया ॥

शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्मसि ।
वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधीः ॥ २२ ॥

शरदे । त्वा । हेमन्ताय । वसन्ताय । ग्रीष्माय । परि । दद्मसि ।
वर्षाणि । तुभ्यम् । स्योनानि । येषु । वर्धन्ते । ओषधीः ॥ २२ ॥

हे बालक त्वा त्वां शरदे ऋतवे परि दद्मसि परिदद्मः । परिदानं रक्षार्थं दानम् । हे शरदृतो अमुं रक्षेति प्रयच्छाम इत्यर्थः । तावत्पर्यन्तं जीवन्तं हेमन्ताय परिदद्मः । ततो वसन्ताय । ततो ग्रीष्माय च परिदद्मः । उपलक्षणम् एतत् । सर्वेभ्योपि ऋतुभ्यः प्रयच्छामीत्युक्तं भवति । सर्वेष्वपि ऋतुषु जीवनस्य अपेक्षितत्वात् । हे बालक तुभ्यं व-

1 S' तात्पर्यान्न विरुध्यते. 2 S' मित्वा.

र्षाणि जीवनकालमध्यपातीनि षष्ट्युत्तरशतत्रयदिनसंख्याकानि प्रभवादिरूपाणि स्योनानि सुखकराणि । भवन्त्विति शेषः । येषु वर्षेषु ओषधीः ओषध्यः भोगसाधनभूतव्रीह्यादयो वर्धन्ते अभिवृद्धिं प्राप्नुवन्ति । तानि वर्षाणीति पूर्वत्र संबन्धः । वर्षाणि स्वीयाभिरभिवृद्धाभिरोषधीभिस्तव सुखकराणि सन्तु इत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम् ।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद्धरामि स मा बिभेः ॥ २३ ॥

मृत्युः । ईशे । द्विऽपदाम् । मृत्युः । ईशे । चतुःऽपदाम् ।
तस्मात् । त्वाम् । मृत्योः । गोऽपतेः । उत् । धरामि । सः । मा । बिभेः ॥२३॥

द्विपदाम् पदद्वयभूतानां मनुष्यपक्ष्यादीनां मृत्युः सर्वप्राणिसंहर्ता देवः ईशे ईष्टे स्वामी भवति । तथा चतुष्पदाम् गवाश्वादीनां मृत्युरेव ईष्टे । न हि मृत्युम् अपलपन् कश्चिदपि प्राणन् दृश्यते ऋते मुमुक्षोः । यस्मादेवं तस्मात् त्वां गोपतेः । गावः पराधीनत्वाद् यथा गोपालं नातियन्ति एवम् एतेपि मृत्योर्वशगा इति मृत्युर्गोपतिरित्युच्यते । अथवा गोशब्देनात्र पशवोऽभिधीयन्ते । पशवो द्विपादश्चतुष्पादश्च । तेषाम् उभयेषां पतिः । तादृशाद् मृत्योः सकाशाद् उद्धरामि उद्धरामि । मन्त्रवीर्याद् इत्यभिप्रायः । स मृत्युभीतस्त्वं मा बिभेः भीतिं मा कार्षीः ॥

चतुर्थी ॥

सोरिष्ट न मरिष्यसि न मरिष्यसि मा बिभेः ।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ॥ २४ ॥

सः । अरिष्ट । न । मरिष्यसि । न । मरिष्यसि । मा । बिभेः ।
न । वै । तत्र । म्रियन्ते । नो इति । यन्ति । अधमम् । तमः ॥ २४ ॥

हे अरिष्ट । न विद्यते रिष्टं दैवं यस्य सः अरिष्टः । दैवविमुख इत्य-

1 S' गोपतेर्गाव इव for गोपतेः.

मृणसि हंसि । तथापि त्वा त्वां रक्षांसि केपि राक्षसाः पृतनासु संग्रामेषु न जिग्युः न जितवन्तः । अतस्त्वं क्रव्यादः मांसाशनान् राक्षसान् सहमूरान् मूलसहितान् अनु दह क्रमेण भस्मीकुरु । तेपि दैव्यायाः देवस्य तव संबन्धिन्याः ते तव हेत्याः आयुधाद् मा मुक्षत मुक्ता मा भूवन् तद्वशं प्राप्नुवन्तु ॥

नवमी ॥

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तस्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ष्ये ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥ १९ ॥

त्वम् । नः । अग्ने । अधरात् । उदक्तः । त्वम् । पश्चात् । उत । रक्ष । पुरस्तात् । प्रति । त्ये । ते । अजरासः । तपिष्ठाः । अघऽशंसम् । शोशुचतः । दहन्तु ॥ १९ ॥

हे अग्ने त्वं नः अस्मान् अधरात् अधोदिशः सकाशात् तत्रस्थेभ्यः पीडकेभ्यो राक्षसेभ्यः रक्ष पाहि । तथा उदक्तः उदग्दिशः सकाशात् तत्रत्येभ्यो [रक्ष] । एतद्दक्षिणदिशोप्युपलक्षणम् । अथवा अधरादित्यनेन अवाची दक्षिणा दिग् विवक्ष्यते । किं च त्वं पश्चात् प्रतीच्या दिशः सकाशाद् रक्ष । उत अपि च पुरस्तात् पूर्वस्या दिशः सकाशाद् रक्ष । तेषु तत्तद्देशेष्ववस्थितेषु कथं रक्षा भवतीत्याशङ्क्याह प्रति ते* त इति । ते तव संबन्धिनस्ते* प्रसिद्धास्तत्रतत्र वर्तमानाः स्फुलिङ्गाः । ज्वालारूपा इति शेषः । अघशंसम् अघं हिंसां शंसन्तं राक्षसं [प्रति] दहन्तु विनाशं कुर्वन्तु । कीदृशाः । अजरासः अजरा अजीर्णाः । तपिष्ठाः अतिशयेन तापकाः । शोशुचतः भृशं दीप्ताः ॥

दशमी ॥

पश्चात् पुरस्तादधरादुत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने ।
सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥ २० ॥ (७)

१ BKPV °पिष्टा. We with AIKRSPJC.

1 S' omit रक्ष. See note 3. 2 S' अवनतो for अवाची. 3 S' तव रक्ष for तव.

पश्चात् । पुरस्तात् । अधरात् । उत । उत्तरात् । कविः । काव्येन । परि ।
पाहि । अग्ने ।
सखा । सखायम् । अजरः । जरिम्णे । अग्ने । मर्तान् । अमर्त्यः । त्वम् ।
नः ॥ २० ॥ (७)

हे अग्ने त्वम् अस्मान् पश्चादित्यादिना उक्ताभ्यश्चतसृभ्यो दिग्भ्यः सकाशात् कविः क्रान्तप्रज्ञः । तत्र[तत्र] बाधमानान् राक्षसान् जानन्नित्यर्थः । काव्येन कवेः कर्म काव्यम् तेन कवेस्तव रक्षणव्यापारेण परि पाहि सर्वतो रक्ष । रक्षकं रक्षणीयं च उभावपि विशिनष्टि । सखा मम सखिभूतस्त्वं सखायम् तव सखिभूतं रक्ष । अजरः जरारहितः जरिम्णे अत्यन्तजीर्णाय मह्यम् । रक्षां कुर्विति शेषः । हे अग्ने अमर्त्यस्त्वं मर्त्यान् मरणधर्मणः नः अस्मान् । पाहीत्यन्वयः ॥

इत्यष्टमकाण्डे द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"तदग्ने चक्षुः" इति सूक्तस्य "रक्षोहणम्" इत्यत्रोक्ता विनियोगा अनुसंधेयाः ॥

अग्निरहितप्रदेशे अग्निदर्शनलक्षणे अद्भुते तच्छान्त्यर्थम् "अग्नी रक्षांसि" इत्यनया आज्यं जुहुयात् । "अथ यत्रैतद् अनग्नावाभासो भवति तत्र जुहुयात्" इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । "अग्नी रक्षांसि सेधतीति प्रायश्चित्तिः" इति [कौ०१३.३८] ॥

सशब्देऽग्नौ तच्छान्त्यर्थम् अनया अग्निम् उपतिष्ठेत । "अग्नी रक्षांसि सेधतीति सेधनम्" इति तत्र [कौ०५.१०] सूत्रम् ॥

अग्न्याधाने पावकगुणकाग्नियागम् अनया ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । तदुक्तं वैताने । "अग्नी रक्षांसि[८.३.२६] अदितिर्द्यौः[७.६.१]" इति [वै०२.२] ॥

तत्र प्रथमा ॥ १

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान् ।

1 So S'. *Kausika*: अग्नावभासो.

अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥ २१ ॥

तत्। अग्ने। चक्षुः। प्रति। धेहि। रेभे। शफऽआरुजः। येन। पश्यसि।
यातुऽधानान्।

अथर्वऽवत्। ज्योतिषा। दैव्येन। सत्यम्। धूर्वन्तम्। अचितम्। नि।
ओष ॥ २१ ॥

हे अग्ने त्वं रेभे शब्दं कुर्वते रक्षसे तत् चक्षुः प्रति धेहि स्थापय। दहेत्युक्तं भवति वह्निदृष्टेर्दाहकत्वात्। शफारुजः शफवत् शफाः। नखा इत्यर्थः। अथ वा पशुरूपधारिणां शफा अपि संभवन्ति। तैरारुजन्नीति शफारुजः। तादृशान् यातुधानान् येन पश्यसि तच्चक्षुरित्यर्थः। किं च अथर्ववत् अथर्वाख्यो महर्षिरिव। स एव प्रजापतिरिति ग्रन्थादौ च तस्य माहात्म्यं प्रतिपादितम्। स यथा तपोमन्त्रप्रभावाभ्यां कृत्स्नान् असुरान् निर्ददाह तद्वत् त्वमपि दैव्येन देवसंबन्धिना ज्योतिषा तेजसा सत्यम् यथार्थं धूर्वन्तम् हिंसन्तम् अचितम् अचेतारं संज्ञारहितं न्योष नितरां दह। ✕उष दाहे। लोण्मध्यमरूपम्✕ ॥

द्वितीया ॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावतः ॥ २२ ॥

परि। त्वा। अग्ने। पुरम्। वयम्। विप्रम्। सहस्य। धीमहि।
धृषत्ऽवर्णम्। दिवेऽदिवे। हन्तारम्। भङ्गुरऽवतः ॥ २२ ॥

व्याख्यातेयं प्राक्[७. ७४]। हे अग्ने सहस्य सहसे हित। अभिभवनशीलेत्यर्थः। अथवा सहो बलम् तेन जात। मथनाद् उत्पन्नत्वात्। [वयं त्वा] त्वां परि परितो धीमहि ध्यायेमहि परिधिं कुर्मो वा। कीदृशम्। पुरम् कामानां पूरकम्। विप्रम् मेधाविनं विविधं प्रीण-

१ B S °मर्चितं. We with A H K M R P P J V C. २ P शफा°. We with P J Cr.

1 S' तैरुरुजंति. 2 S' °प्रभवाभ्यां. 3 S' अचेतारं. 4 S' संज्ञानहितं. 5 S' त्वाविप्रं for विप्रम्.

यितारं वा । धृषद्वर्णम् धर्षकवर्णयुक्तम् । दिवेदिवे प्रतिदिनं भङ्गुरावताम् भङ्गस्वभावोपेतबलयुक्तानां राक्षसानां हन्तारम् प्रविनाशयितारम् । अग्नेर्दर्शनेनैव असुराणां बलानि भङ्गुराणि भवन्तीत्यभिप्रायः । यद्वा सर्वप्राणिबलानां भङ्गुरीकरणसामर्थ्यवताम् इत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

विषेण भङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिरर्चिभिः ॥ २३ ॥

विषेण । भङ्गुरऽवतः । प्रति । स्म । रक्षसः । जहि ।
अग्ने । तिग्मेन । शोचिषा । तपुःऽअग्राभिः । अर्चिऽभिः ॥ २३ ॥

हे अग्ने विषेण विषवद्विनाशकेन व्याप्तेन वा । एतत् शोचिषेत्यस्य विशेषणम् । तिग्मेन तीक्ष्णेन शोचिषा तेजसा भङ्गुरावतः । उक्तो भङ्गुरावच्छब्दार्थः । उक्तरूपान् रक्षसः राक्षसान् प्रति जहि । स्मेति पूरणः । तथा तपुरग्राभिः तापकाग्रोपेताभिः अर्चिभिः ज्वालाभिरपि जहि ॥

चतुर्थी ॥

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे[1] ॥ २४ ॥

वि । ज्योतिषा । बृहता । भाति । अग्निः । आविः । विश्वानि । कृणुते ।
महिऽत्वा ।
प्र । अदेवीः । मायाः । सहते । दुःऽएवाः । शिशीते । शृङ्गे इति । रक्षःऽभ्यः ।
विऽनिक्ष्वे ॥ २४ ॥

अयम् अग्निः बृहता महता ज्योतिषा तेजसा वि भाति प्रकाशते ॥ अथ प्रत्यक्षकृतः । हे अग्ने महित्वा महत्त्वेन तेजसाम् आधिक्येन विश्वानि

१ So we with all our authorities except **B** that reads विनिक्ष्वे.

1 S' °पेतंचलयुक्तास्या for °पेतबलयुक्तानां. 2 S' तंप्रवि for प्रवि°.

सर्वाण्यपि भूतजातानि आविष्कृणुषे* स्पष्टानि करोषि । विश्वानि प्रति आत्मानं वा आविष्कुरुषे प्रभूतेन तेजसा । अयम् अग्निः अदेवीः आसुरीः दुरेवाः दुःखेन गन्तव्या मायाः प्र सहते प्रकर्षेण अभिभवति । तथा रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे विनाशाय । ॠनिक्ष चुम्बने । तुमर्थे केन् प्रत्ययः । वकारोपजनश्छान्दसः ॠ । शृङ्गे विषाणे शिशीते तीक्ष्णे करोति ॥

पञ्चमी ॥

ये ते शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती ब्रह्मसंशिते ।
ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनं प्रत्यञ्चमर्चिषा जातवेदो वि निष्क्व ॥ २५ ॥

ये इति । ते । शृङ्गे इति । अजरे इति । जातऽवेदः । तिग्महेती इति तिग्मऽहेती । ब्रह्मसंशिते इति ब्रह्मऽसंशिते ।

ताभ्याम् । दुःऽहार्दम् । अभिऽदासन्तम् । किमीदिनम् । प्रत्यञ्चम् । अर्चिषा । जातऽवेदः । वि । निष्क्व ॥ २५ ॥

हे जातवेदः अग्ने ये प्रसिद्धे ते तव शृङ्गे विषाणे स्तः ताभ्याम् अर्चिषा प्रत्यञ्चं वि निष्क्व विनाशयेत्युत्तरत्र संबन्धः । किंगुणके शृङ्गे इति तत्राह । अजरे जरारहिते अविनश्वरे तिग्महेती तीक्ष्णायुधभूते तीक्ष्णहननसाधने ब्रह्मसंशिते ब्रह्मणा मन्त्रेण अस्माभिः प्रयुक्तेन तीक्ष्णभूते । उक्तलक्षणाभ्यां शृङ्गाभ्यां हन्तव्यः क इति तं सविशेषम् आह । दुर्हार्दम् दुष्टहृदयम् अभिदासन्तम् सर्वत उपक्षपयन्तं किमीदिनम् किम् इदानीम् इति वदन्तं किम् इदं किम् इदम् इत्यन्विष्य चरन्तं वा राक्षसादिकम् ॥

षष्ठी ॥

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः ।
शुचिः पावक ईड्यः ॥ २६ ॥ (८)

1 S' विनिक्षे.

अग्निः । रक्षांसि । सेधति । शुक्रऽशोचिः । अमर्त्यः ।
शुचिः । पावकः । ईड्यः ॥ २६ ॥ (८)

अनया सूक्तत्रयोक्तम् अर्थं संगृह्य अभिधत्ते । अयम् अग्निः रक्षांसि सर्वप्रकारेण बाधमानान् नानाप्रकारान् राक्षसान् सेधति निवारयति विनाशयति । अग्निर्विशेष्यते । शुक्रशोचिः दीप्तप्रकाशः । अमर्त्यः मरणधर्मरहितः । शुचिः शुद्धः । पावकः पावयिता शोधयिता । ईड्यः स्तुत्यः ॥

इत्यष्टमकाण्डे द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

"इन्द्रासोमा" इति सूक्तस्य "रक्षोहणम्" इत्यनेन [सह] उक्ता विनियोगाः ॥

अत्र ऋक्संहिताया बृहद्देवतानुक्रमणी ।

संवत्सरं तु मण्डूकान् ऐन्द्रासोमं परं तु यत् ।
ऋषिर्ददर्श राक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिप्लुतः ।
हते पुत्रशते क्रुद्धः सौदासैर्दुःखितस्तदा । इति ॥

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः ॥ १ ॥

इन्द्रासोमा । तपतम् । रक्षः । उब्जतम् । नि । अर्पयतम् । वृषणा । तमःऽवृधः ।
परा । शृणीतम् । अचितः । नि । ओषतम् । हतम् । नुदेथाम् । नि । शिशीतम् । अत्त्रिणः ॥ १ ॥

हे इन्द्रासोमा इन्द्रासोमौ इन्द्रश्च सोमश्च । ‡"देवताद्वन्द्वे च" इति आनङ् । आमन्त्रिताद्युदात्तः‡ । रक्षः । ‡जातावेकवचनम्‡ । रक्षांसि तपतम् संतापयतम् । ‡"आमन्त्रितं पू-

१ P अर्चितः. We with P J Cp. २ P नुदेथाम्. We with P J Cp.

1 S' मंडूकोनेंद्रा°. 2 S' सौदाश्चेर्दु°.

र्वम०'' इत्यविद्यमानत्वात् तपतम् इत्यस्य निघाताभावः ॥ । तथा उग्रतम् हिंस्तम् । ॥ उग्रतिर्हिंसाकर्मा । वाक्यादित्वान्निघाताभावः ॥ । हे वृषणा कामानां वर्षितारौ युवां न्यर्पयतम् नीचैर्गमयतम् । कान् । तमोवृधः तमसि रात्रौ अन्धकारे तमसा मायया वा वर्धमानान् । एवम् अचितः अचितान् अज्ञानिनो राक्षसान् परा शृणीतम् पराङ्मुखं हिंस्तम् । तथा न्योषतम् नितरां दहतम् । ॥ उष दाहे ॥ । तथा अत्त्रिणः भक्षकान् राक्षसान् हतम् । तथा नुदेथाम् हतांस्तान् अस्मत्तः प्रेरयेथाम् । ॥ तिङः परत्वात् निघाताभावः ॥ । एवं नि शिशीतम् नितरां तनूकुरुतम् ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥ २ ॥

इन्द्रासोमा । सम । अघऽशंसम । अभि । अघम । तपुः । ययस्तु । चरुः । अग्निमान्ऽइव ।

ब्रह्मऽद्विषे । क्रव्यऽअदे । घोरऽचक्षसे । द्वेषः । धत्तम । अनवायम । किमीदिने ॥ २ ॥

हे इन्द्रासोमौ अघशंसम् अघस्य अनर्थस्य शंसितारम् अघम् पापिनं सम्यग् अभि । ॥ उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः ॥ । भवतम् इति शेषः । तिरस्कुरुतम् इत्यर्थः । स राक्षसः तपुः तापं ययस्तु गच्छतु । चरुः ओदनः । कीदृशः । अग्निमान् इव अग्निसंयुक्त इव । अग्नौ क्षिप्तश्चरुरिव तापं प्राप्नोतु । किं च युवां ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणद्वेष्ट्रे क्रव्यादे मांसाशनाय घोरचक्षसे भयंकरदर्शनाय किमीदिने किम इदानीम् इति वा किम् इदं किम् इदम् इति चरते वा राक्षसाय । यास्केन उक्तोयम् अर्थः [नि० ६. १९.] । तादृशाय द्वेषः अप्रीतिम् अनवायम् अ-

१ A B $\overset{h}{B}$ D R $\overset{m}{S}$ Cs. ३ for १. We with K $\overset{m}{K}$ V. २ P $\overset{2}{P}$ चरुः. We with P J Cp.
1 S' अचिता for अचितः.

व्यवधानं यथा भवति तथा धत्तम् धारयतम् । सर्वदा तस्मिन्नहितं कुरुतम् ॥

तृतीया ॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ३ ॥

इन्द्रासोमा । दुःऽकृतः । वव्रे । अन्तः । अनारम्भणे । तमसि । प्र । विध्यतम् ।
यतः । न । एषाम् । पुनः । एकः । चन । उत्ऽअयत् । तत् । वाम् । अस्तु । सहसे । मन्युऽमत् । शवः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रासोमौ दुष्कृतः दुष्टकारिणो राक्षसान् वव्रे आवरके अनारम्भणे अनालम्बने तमसि अन्तः प्र विध्यतम् प्रवेश्य ताडयतम् । यतः यस्माद् अन्धकाराद् एषां पतितानां राक्षसानां दुष्कृतां मध्ये पुनः एकश्चन एकोपि न उदयत् नोज्जच्छेत् । ✕एतेर्लेटि अडागमः । "इतश्च लोपः०" इति इकारलोपः । गुणायादेशौ ✕ । तथा वाम् युवयोः [तत्] शवः बलं सहसे तेषाम् अभिभवाय मन्युमत् अस्तु क्रोधोपेतं भवतु ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत् तक्षतं स्वर्यं१ पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥ ४ ॥

इन्द्रासोमा । वर्तयतम् । दिवः । वधम् । सम् । पृथिव्याः । अघऽशंसाय । तर्हणम् ।
उत् । तक्षतम् । स्वर्यम् । पर्वतेभ्यः । येन । रक्षः । ववृधानम् । निऽजूर्वथः ॥ ४ ॥

---

१ A D S[m] दुःकृतो. २ B D S[m] ३ for १. B has no kampa. ३ P[2] omits the avagraha.

1 S' एकश्च for एकश्चन.

हे इन्द्रासोमौ दिवः अन्तरिक्षाद् द्युलोकाद् वा वधम् हननसाधनम् आयुधं सम् एकधैव वर्तयतम्। तथा पृथिव्याः सकाशादपि सं वर्तयतम्। किमर्थम्। अघशंसाय अघं शंसतीति अघशंसो राक्षसः तदर्थं तद्वधार्थम्। कीदृशं वधम्। तर्हणम् हिंसकम्। तद् वज्रम् उत्तक्षतम् उत्तेजनं तीक्ष्णं कुरुतम्। स्वर्यम् स्वरणार्हम् आयुधम्। पर्वतेभ्यः मेघेभ्यः सकाशाद् येन वज्रेण वधशब्दवाच्येन वावृधानम् वर्धमानं रक्षः राक्षसं निर्जूर्वथः हथः ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्नेभिर्युवमश्मंहन्मभिः।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥ ५ ॥

इन्द्रासोमा। वर्तयतम्। दिवः। परि। अग्निऽतप्नेभिः। युवम्। अश्मंहन्मऽभिः।
तपुःऽवधेभिः। अजरेभिः। अत्त्रिणः। नि। पर्शाने। विध्यतम्। यन्तु। निऽस्वरम् ॥ ५ ॥

हे इन्द्रासोमौ युवम् युवां वर्तयतम् इतस्ततः प्रेरयतम्। सामर्थ्याद् आयुधानीति गम्यते। कस्मिन् देशे। दिवस्परि द्युलोकस्य अन्तरिक्षस्य परितः। किंच अग्नितप्नेभिः अग्निना संतप्तैः अश्मंहन्मभिः अश्मा अयःसारः अयःसारमयैर्हननसाधनैः तपुर्वधेभिः संतापकैरायुधैः। पुनः कीदृशैः। अजरेभिः जरारहितैर्दृढैः अत्त्रिणः भक्षकान् असुरान् पर्शाने पार्श्वास्थिप्रदेशे नि विध्यतम्। ते च निःस्वरम् निःस्वनं निःशब्दं यथा भवति तथा यन्तु गच्छन्तु। म्रियन्ताम् इत्यर्थः ॥

षष्ठी ॥

इन्द्रासोमा परि वां भूत विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् ॥ ६ ॥

---

१ K K V नृपतीव. So also Sâyana's text in S'. We with A B B D R S C s.

1 S' °साधनयुधाम् for °सा नम्. 2 S' वर्धयमानं.

इन्द्रासोमा । परि । वाम् । भूतु । विश्वतः । इयम् । मतिः । कक्ष्या । अश्वाऽइव । वाजिना ।
याम् । वाम् । होत्राम् । परिऽहिनोमि । मेधया । इमा । ब्रह्माणि । नृपती इवेति नृपतीऽइव । जिन्वतम् ॥ ६ ॥

हे इन्द्रासोमौ वाम् युवाम् इयम् अस्माभिः कृता मतिः मन्यत इति मतिः स्तुतिः विश्वतः सर्वतः परि भूतु परिगृह्णातु । विषयीकरोत्वित्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः । कक्ष्या कक्षबन्धनसाधनभूता रज्जुः वाजिना वाजिनौ बलवन्तौ अश्वेव अश्वाविव । तौ यथा रज्जुर्गृह्णाति तद्वत् । मतिं विशिनष्टि । यां होत्राम् आह्वानार्हां मेधया धारणयुक्तया बुद्ध्या वाम् युवाभ्यां युवयोरर्थाय परिहिनोमि प्रेरयामि ॥ इदानीम् अवयवश आह । इमा इमानि ब्रह्माणि मन्त्रान् नृपतीव राजानाविव तौ यथा बन्दिकृतवाक्यानि श्रुत्वा प्रीणयतस्तद्वत् जिन्वतम् प्रीणयतम् ॥

सप्तमी ॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहुः ॥ ७ ॥

प्रति । स्मरेथाम् । तुजयत्ऽभिः । एवैः । हतम् । द्रुहः । रक्षसः । भङ्गुरऽवतः ।
इन्द्रासोमा । दुःऽकृते । मा । सुऽगम् । भूत् । यः । मा । कदा । चित् ।
अभिऽदासति । द्रुहुः ॥ ७ ॥

हे इन्द्रासोमौ युवां तुजयद्भिः बलवद्भिः एवैः गमनसाधनैरश्वैः प्रति स्मरेथाम् । स्मृतिरत्र आगमनपर्यन्तव्यापारा । प्रतिगच्छतम् इत्यर्थः । आगत्य च द्रुहः द्रोहकारिणो भङ्गुरावतः भङ्गनशीलान् रक्षसः राक्षसान् हतम् हिंस्तम् ॥ किं च हे इन्द्रासोमौ दुष्कृते दुष्टकारिणे राक्षसाय सुगम् सुगमनं जीवद्गमनं सुखं वा मा भूत् । दुष्कृतं विशिनष्टि ।

१ So P P̈ J Cp. २ A D S[m] दुःकृते. ३ K[m] द्रुहः. ४ P स्मरेथाम्. We with P̈ J Cp.

1 S' मंत्रानृपतीव for मन्त्रान् नृपतीव. 2 S' स्मृतितत्र.

यो दुष्कृत् द्रुहुः द्रोहशीलः सन् कदा चित् एकवारमपि मा माम् अभिदासति उपक्षपयति बाधते। तस्मा इति ॥

अष्टमी ॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८ ॥

यः। मा। पाकेन। मनसा। चरन्तम्। अभिऽचष्टे। अनृतेभिः। वचःऽभिः। आपःऽइव। काशिना। सम्ऽगृभीताः। असन्। अस्तु। असतः। इन्द्र। वक्ता ॥ ८ ॥

हे इन्द्र यो राक्षसादिः पाकेन परिपक्वेन मनसा। अन्यायाचरणस्यापि मनोमूलत्वात् मन एव अत्राभिधीयते। चरन्तम् प्रवर्तमानं मा माम् अनृतेभिः अनृतरूपैः अयं ब्राह्मणं हतवान् अयं ब्रह्मस्वं हृतवान् इत्येवमाद्यात्मकैः वचोभिः वचनैः अभिचष्टे अभिशापं करोति स राक्षसादिः काशिना मुष्टिना संगृभीताः संगृहीता आप इव ता यथा अङ्गुलिविवरेभ्यो गलन्ति तद्वत् असतः अविद्यमानस्य अकृतस्यार्थस्य वक्ता स्वयमपि असन्नस्तु शून्यो भवतु ॥

नवमी ॥

ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥ ९ ॥

ये। पाकऽशंसम्। विऽहरन्ते। एवैः। ये। वा। भद्रम्। दूषयन्ति। स्वधाभिः। अहये। वा। तान्। प्रऽददातु। सोमः। आ। वा। दधातु। निःऽऋतेः। उपऽस्थे ॥ ९ ॥

ये राक्षसाः पाकशंसम् परिपक्वशंसनं सत्यभाषिणं माम् एवैः प्राप्नव्यैरात्मीयैः कामैर्हेतुभिः विहरन्ते विशेषेण हरन्ति उपक्षपयन्ति। यथा-

१ P असम्. We with P J Cr. २ P वातान् for वा। तान्। We with P J Cr. ३ P omits the visarga in °ऋतेः. We with P J Cr.

कामं परिवदन्तीत्यर्थः । ये च भद्रम् कल्याणवर्तनं मां मदीयं भद्रम् भद्रं कर्म वा स्वधाभिः । स्वधेत्यन्ननाम । अन्नैर्निमित्तभूतैः दूषयन्ति तान् उभयविधान् अहये । सर्पे वृत्रासुरेऽप्यहिरित्यभिधानम् । वृत्राय सर्पाय वा प्रददातु प्रयच्छतु सोमः । वा अथवा निर्ऋतेः । निर्ऋतिः पापदेवता । हिंसित्र्याः पापदेवताया उपस्थे उत्सङ्गे आ दधातु आस्थापयतु ॥

दशमी ॥

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
रिपु स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि षः हीयतां तन्वा३ तना च ॥१०॥ (९)

यः १ नः । रसम् । दिप्सति । पित्वः । अग्ने । अश्वानाम् । गवाम् । यः । तनूनाम् ।

रिपुः । स्तेनः । स्तेयऽकृत् । दभ्रम् । एतु । नि । सः । हीयताम् । तन्वा३ । तना । च ॥ १० ॥ (९)

हे अग्ने यो राक्षसादिः नः अस्माकं रसम् मम शरीरसारं दिप्सति जिघांसति यश्च अश्वानां मदीयानां रसं दिप्सति यश्चापि गवां यो वा तनूनाम् आत्मीयपुत्रादिशरीराणां रसं दिप्सति स पूर्वोक्तप्रकारो रिपुः शत्रुः स्तेनः तस्करः स्तेयकृत् मोषकर्ता दभ्रम् एतु । दभि हिंसायाम् । हिंसां प्राप्नोतु । स एव तन्वा स्वकीयेन शरीरेण तना च तनयेन च निहीयताम् वियुक्तो भवतु ॥

इत्यष्टमकाण्डे द्वितीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

"परः सो अस्तु" इति सूक्तस्य "रक्षोहणम्" इत्यनुवाकप्रयुक्तो विनियोगो द्रष्टव्यः ॥

तत्र प्रथमा ॥

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।

---

१ A स. २ K R १ for ३. We with A D S V. ३ R १ for ३.

1 S' omit पाप°. 2 Sâyaṇa's text reads the second pâda thus: ये अश्वानां ये गवां यस्तनूनाम्. 3 S' निषहीयतांन्नियुक्तोभवतु.

प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११॥

परः। सः। अस्तु। तन्वा। तना। च। तिस्रः। पृथिवीः। अधः। अस्तु। विश्वाः।

प्रति। शुष्यतु। यशः। अस्य। देवाः। यः। मा। दिवा। दिप्सति। यः। च। नक्तम् ॥ ११ ॥

हे देवाः स राक्षसादिः तन्वा स्वकीयेन शरीरेण तना च पुत्रेण च। ✕उभयत्र व्यत्ययेन तृतीया✕। तनोः पुत्रस्य चेत्यर्थः। उभयोः परः अन्यः विरोधी अथवा परस्ताद् वर्तमानो वियुक्तः अस्तु। तथा विश्वाः व्याप्तास्तिस्रः पृथिवीः त्रिप्रकारा भूमीः। भूमेर्द्युलोकस्य च त्रैविध्यं मन्त्रान्तरेषु प्रसिद्धम्। "तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून्" [ऋ०२.२७.८]। "तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन् तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः" इति [ऋ०७.८७.५]। अधो अस्तु। तिसृणामपि पृथिवीनाम् अधस्तात् नरके वर्तमानोस्त्वित्यर्थः। अस्य पापिनो यशः अन्नं कीर्तिर्वा प्रति शुष्यतु विनश्यतु। यस्य ईदृशो विनाशः तं दर्शयति। यो द्वेष्टा दिवा अहनि मा मां दिप्सति हन्तुम् इच्छति यश्च नक्तम् रात्रौ दिप्सति। तस्येति संबन्धः ॥

द्वितीया ॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोवति हन्त्यासत् ॥ १२ ॥

सुऽविज्ञानम्। चिकितुषे। जनाय। सत्। च। असत्। च। वचसी इति। पस्पृधाते इति।

तयोः। यत्। सत्यम्[1]। यतरत्। ऋजीयः। तत्। इत्। सोमः। अवति। हन्ति। असत् ॥ १२ ॥

---

१ P अस्य. We with P̈ J Cr. २ P̈ देवाः. We with P J Cr.

1 S' अन्यविरोधी. 2 S' विनाश इतितंदर्शयति.

अस्याः "इन्द्रासोमा" इत्यादिसूक्तत्रयस्य ऋक्संहितायामपि समानत्वात् तदीयबृहद्देवतानुक्रमण्याम् उदाहृतं वचनम् एतत् ॥

हत्वा पुत्रशतं पूर्वं वसिष्ठस्य महात्मनः ।
वसिष्ठं राक्षसोसि त्वं वासिष्ठं रूपम् आस्थितः ॥
अहं वसिष्ठ इत्येवं जिघांसू राक्षसोब्रवीत् ।
अत्रोत्तरा ऋचो दृष्टा वसिष्ठेनेति नः श्रुतम् ॥

इति ॥ चिकितुषे विदुषे जनाय इदं सुविज्ञानम् विज्ञातुं सुशकं भवति । किं तत् । सच्च सत्यं च असच्च अनृतं च वचसी सत्यासत्यरूपे वचने पस्पृधाते मिथः स्पर्धेते । तयोः सदसतोर्मध्ये यत् सत्यम् यथार्थवचनं यतरच्च ऋजीयः ऋजुतरम् अकुटिलं तदित् तदेव सोमो देवः अवति रक्षति । असत् उक्तविलक्षणम् असत्यं हन्ति हिनस्ति । एवं सति आवयोर्मध्ये कोऽनृतवादीति विद्वद्भिः सुज्ञानम् इत्यर्थः । अतः अस्मासु असत्यभूतम् आरोपयन्तं राक्षसम् हे सोम त्वं घातयेत्यभिप्रायः ॥

तृतीया ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥ १३ ॥

न । वै । ऊं इति । सोमः । वृजिनम् । हिनोति । न । क्षत्रियम् । मिथुया । धारयन्तम् ।
हन्ति । रक्षः । हन्ति । असत् । वदन्तम् । उभौ । इन्द्रस्य । प्रऽसितौ । शयाते इति ॥ १३ ॥

सोमो देवः वृजिनम् । पापवाचिना वृजिनशब्देन तद्वान् लक्ष्यते । पापवन्तं राक्षसं न हिनोति वा उ । वैशब्दः प्रसिद्धौ । उशब्दः अवधारणे । नैव मुञ्चति अयं जीवतिति न परित्यजति । मिथुया मिथ्याभूतम् अनृतं धारयन्तं क्षत्रियम् क्षत्रं बलम् तद्वन्तं बलिनं राक्षसादिकं

१ D °विन्द्रश्च.

1 S' पूर्व. 2 S' रात्रोत्तरा. 3 S' ऋजुरं for ऋजुतरं.

च सोमो न हिनोति। तर्हि सोमः किं करोति। उच्यते। रक्षः राक्षसं वृजिनरूपं हन्ति हिनस्ति। तथा असत् अनृतं वदन्तं हन्ति। उभौ उक्तविधौ दुष्टौ इन्द्रस्य प्रसितौ बन्धनसाधने पाशे शयाते। अथवा प्रसितौ। ✕निष्ठान्तं पदम्✕। प्रकर्षेण बद्धौ सन्तौ शयाते। ✕षिञ् बन्धने इत्यस्मात् कर्मणि निष्ठा। "गतिरनन्तरः" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम्। क्तिन्पक्षे "तादौ च निति कृति०" इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम्✕॥

चतुर्थी॥

यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्॥ १४॥

यदि। वा। अहम्। अनृतऽदेवः। अस्मि। मोघम्। वा। देवान्। अपिऽऊहे। अग्ने।
किम्। अस्मभ्यम्। जातऽवेदः। हृणीषे। द्रोघऽवाचः। ते। निःऽऋथम्। सचन्ताम्॥ १४॥

हे [अग्ने] अहं यदि वा यद्यपि अनृतदेवः अनृतेन दीव्यतीत्यनृतदेवः अथ वा अनृताः असत्यभूता देवा अस्य। देवशून्य इत्यर्थः। तादृशोस्मि वा। अथ वा मोघम् व्यर्थं देवान् स्तोतव्यान् यष्टव्यांश्च अप्यूहे वहामि। उभयविधोपि न भवामीत्यर्थः। अतः कारणात् किम् कथंकारम् अस्मभ्यम् हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने हृणीषे क्रुध्यसि। क्रोधो न कार्यः। अस्मद्विलक्षणा द्रोघवाचः देवताद्रोहविषयवचनोपेताः ते* राक्षसाः निर्ऋथम् निकृष्टाम् आर्तिं नाशं सचन्ताम् समवयन्तु गच्छन्तु॥

पञ्चमी॥

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह॥ १५॥

---

१ B S[m] °देवो. We with A D K K[m] R V C. २ A R °चेष्ट. B °चेष्ट. ३ P अस्मि. We with P[2] J. ४ K[m] मरीय. K V मुरीय. We with A B[h] D K[h] S[m] P P[2] J. ५ A पुरुषस्य.

1 S' निराक्षसाः.

अद्य । मुरीय । यदि । यातुऽधानः । अस्मि । यदि । वा । आयुः । ततप । पुरुषस्य ।

अध । सः । वीरैः । दशऽभिः । वि । यूयाः । यः । मा । मोघम् । यातुऽधान । इति । आह ॥ १५ ॥

प्रायेण अयं मन्त्रः पूर्वश्च अराक्षसम् अहिंसकं त्वं हिंसको राक्षसोसीत्येवं यो मिथ्याभियोगं करोति तं प्रति मिथ्याभिशस्तस्य शपथरूपौ मन्त्रौ । हे आरोपक पुरुष अहं यदि यातुधानः यातनानां विधायकः[1] पीडाकृद् अस्मि । यदि वा पुरुषस्य आयुः जीवनं ततप संतापं हिंसाम् अकार्षम् । तर्हि अद्य अस्मिन्नेव दिने मुरीय म्रियेय । अध अथ मा अनागसं मां यस्त्वं मोघम् व्यर्थं यातुधानेति आह । पुरुषव्यत्ययः[2] । स त्वं च दशभिः दशसंख्याकैर्वीरैः पुत्रैः वि यूयाः वियुक्तो भवेः ॥

षष्ठी ॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥

यः । मा । अयातुम् । यातुऽधान । इति । आह । यः । वा । रक्षाः । शुचिः । अस्मि । इति । आह ।

इन्द्रः । तम् । हन्तु । महता । वधेन । विश्वस्य । जन्तोः । अधमः । पदीष्ट ॥ १६ ॥

यः अध्यारोपयिता मा माम् अयातुम् अराक्षसं सन्तम् हे यातुधान राक्षस इत्याह यो वा यश्च परमार्थतो रक्षाः राक्षसः शुचिः शुद्धोहम् अयातुः इत्याह ब्रूते तम् उभयविधम् असत्यवादिनम् इन्द्रो देवः महता अतिशयितप्रभाववता वधेन हननसाधनेन वज्रेण हन्तु हिनस्तु । स उभयविधो जनः विश्वस्य सर्वस्यापि जन्तोः प्राणिनः अधमः निकृष्टः सन् पदीष्ट पततु नश्यतु ॥

---

१ P अधा. We with P J.

---

1 S' नियायकः. 2 S' पुरुषवचनव्यत्ययः.

सप्तमी ॥

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहुस्तन्वं१ गूहमाना।
वव्रमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥ १७ ॥

प्र। या। जिगाति। खर्गलाऽइव। नक्तम्। अप। द्रुहुः। तन्वम्। गूहमाना।
वव्रम्। अनन्तम्। अव। सा। पदीष्ट। ग्रावाणः। घ्नन्तु। रक्षसः। उपब्दैः ॥ १७ ॥

या राक्षसी नक्तम् रात्रौ खर्गलेव उलूकीव प्र जिगाति प्रकृष्टं गच्छति अस्मान् हन्तुम्। या च द्रुहुः द्रोहकारिणी राक्षसी तन्वम् स्वकीया तनुं गूहमाना संवृण्वती अप्रकाशयन्ती [*उप]। ⁂उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः⁂। उपगच्छति। सा उक्तलक्षणा दुष्टराक्षसी अनन्तम् अन्तरहितम् अनवधिकम् असंख्यातं वा वव्रम् गर्तम् अव अवाङ्मुखं पदीष्ट पततु। किं च ग्रावाणः सोमम् अभिषुण्वन्तः पाषाणाः उपब्दैः स्वकीयैः सोमाभिषवध्वनिभिः रक्षसः राक्षसान् घ्नन्तु विनाशयन्तु ॥

अष्टमी ॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वी३च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ १८ ॥

वि। तिष्ठध्वम्। मरुतः। विक्षु। इच्छत। गृभायत। रक्षसः। सम्। पिनष्टन।
वयः। ये। भूत्वा। पतयन्ति। नक्तऽभिः। ये। वा। रिपः। दधिरे। देवे। अध्वरे ॥ १८ ॥

---

१ R द्रुह°. २ A B $\overset{h}{B}$ D $\overset{m}{S}$ C. ३ for १. Sâyaṇa's text: तन्वांगू°. We with K $\overset{m}{K}$ R V. ३ P जिगाती. ४ P $\overset{2}{P}$ वव्रिम C: वव्रम् corrected into वव्रिम्. We with J. ५ A विक्ष्वि१°. V विक्ष्वी१°. We with B $\overset{h}{B}$ $\overset{m}{K}$ D $\overset{m}{S}$ R Cs. Sâyaṇa's text too is: विक्ष्वी°, and not विक्ष्वि°.

1 S' नप्रजिगाति.

हे मरुतः यूयं विक्षु प्रजासु मध्ये वि तिष्ठध्वम् विविधं तिष्ठत । रक्षसः राक्षसान् इच्छत हन्तुम् इच्छां कुरुत । तदनन्तरं गृभायत गृह्णीत । गृहीत्वा च सं पिनष्टन सम्यक् चूर्णं यथा भवति तथा पेषणं कुरुत । ये वा राक्षसाः वयः पक्षिणो भूत्वा नक्तभिः रात्रिभिः रात्रिषु पतयन्ति गच्छन्ति संचरन्ति । ये वा ये च देवे दैवे देवसंबन्धिनि दीप्ते प्रकाशमाने वा अध्वरे यागे रिपः हिंसाः दधिरे धारयन्ति । तान् राक्षसान् संपिनष्टनेति संबन्धः ॥

नवमी ॥

प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तोऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १९ ॥

प्र । वर्तय । दिवः । अश्मानम् । इन्द्र । सोमऽशितम् । मघऽवन् । सम् । शिशाधि ।
प्राक्तः । अपाक्तः । अधरात् । उदक्तः । अभि । जहि । रक्षसः । पर्वतेन ॥१९॥

हे मघवन् इन्द्र दिवः द्युलोकाद् अन्तरिक्षाद् अश्मानम् अशनिलक्षणं वज्रं प्र वर्तय परिस्फारय । तदेव सोमशितम् सोमेन तीक्ष्णीकृतं यथा भवति तथा सं शिशाधि सम्यक् तीक्ष्णीकुरु । तादृशेन पर्वतेन पर्ववता वज्रेण प्राक्तः अपाक्तः अधरात् उदक्तः प्राक्पश्चाद्दक्षिणोत्तराभ्यो दिग्भ्यः । सर्वस्माद् देशाद् इत्यर्थः । रक्षसः राक्षसान् अभि जहि मारय ॥

दशमी ॥

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोदभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २० ॥ (१०)

एते । ऊं इति । त्ये । पतयन्ति । श्वऽयातवः । इन्द्रम् । दिप्सन्ति । दिप्सवः । अदाभ्यम् ।

---

१ A K R (and Sâyaṇa's text:) दिवो अश्मा°. २ K K R V १ for ३. We with A B D S C. ३ P पतयन्ति. We with P J C. ४ P दिप्सन्ति. We with P J C.

शिशीते। शक्रः। पिशुनेभ्यः। वधम्। नूनम्। सृजत्। अशनिम्। यातु-
मत्ऽभ्यः॥ २०॥ (१०)

त्ये। तच्छब्दसमानार्थस्त्यच्छब्दः। त्ये ते एते उक्तप्रकाराः श्वयातवः श्ववत् खादन्तो यातुधानाः श्वरूपधारिणः श्वसहिता [वा] पतयन्ति गच्छन्ति। आगत्य च दिप्सवः हिंसेच्छवः सन्तः अदाभ्यम् अहिंस्यम् इन्द्रं दिप्सन्ति जिघांसन्ति। स च शक्रः शक्त इन्द्रः पिशुनेभ्यः राक्षसेभ्योर्थाय तान् हन्तुं वधम् वज्रं शिशीते निशितं करोति। स एवेन्द्रः यातुमद्भ्यः हिंसावद्भ्यो राक्षसेभ्यो नूनम् निश्चयम् अशनिम् वज्रं सृजत् सृजनु सृजति वा॥

इत्यष्टमकाण्डे द्वितीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम्॥

"इन्द्रो यातूनाम्" इति सूक्तस्य "रक्षोहणम्" इत्यनुवाकेन उक्तो विनियोगः॥

तत्र प्रथमा॥

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः॥ २१॥

इन्द्रः। यातूनाम्। अभवत्। पराऽशरः। हविःऽमथीनाम्। अभि। आऽविवासताम्।
अभि। इत्। ऊं इति। शक्रः। परशुः। यथा। वनम्। पात्राऽइव। भिन्दन्। सतः। एतु। रक्षसः॥ २१॥

इन्द्रो देवः यातूनाम् हिंसकानां राक्षसानां पराशरः पराशातयिता प्रक्षिप्तशरो वा अभवत् भवतु। कीदृशाम्। हविर्मथीनाम् हवींषि देवतार्थानि पुरोडाशादीनि मथ्नतां तथा अभ्याविवासताम् अभिमुखं गच्छताम्। उ अपि च। इदिति पूरणः। शक्रः इन्द्रः राक्षसान् हन्तुम्

१ KRV १ for ३. २ ADK K̃ S̃ V एति. We with BB̂R. ३ P °शरा:. We with P̂JCp. ४ PP̂ भिदन्. We with JKCp. ५ PP̂J एति. We with Cp.

1 S' स्वरूप°. 2 S' स्वसहिताः. 3 S' हिंसारक्षो. 4 S' °विवसताम्.

अभ्येतु । यथा परशुः कुठारो वनम् वृक्षसमूहं छेत्तुम् एति । पात्रेव पात्राणि मृन्मयानीव भिन्दन् यथा लकुट एति । तद्वत् सतः प्राप्तान् रक्षसः राक्षसान् भिन्दन् । ‡तिरः सत इति प्राप्तस्येति यास्कः [नि° ३.२०]‡ । एतु गच्छतु ॥

द्वितीया ॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥

उलूकऽयातुम् । शुशुलूकऽयातुम् । जहि । श्वऽयातुम् । उत । कोकऽयातुम् । सुपर्णऽयातुम् । उत । गृध्रऽयातुम् । दृषदाऽइव । प्र । मृण । रक्षः । इन्द्र ॥२२॥

हे इन्द्र उलूकयातुम् उलूकैर्घूकैः परिवारैः सह यातयतीति वा उलूकैर्यातीति वा उलूकयातुः तं जहि विनाशय । तथा शिंशुलूकयातुम् अल्पोलूकाकारेण यान्तम् अल्पोलूकैः उलूकजातिविशेषैर्यान्तं वा जहि । एवं श्वयातुम् इत्यादीनि व्याख्येयानि । श्वा प्रसिद्धः । कोकश्चक्रवाकः । सुपर्णो गरुत्मान् पक्षिराट् । गृध्रस्तदवान्तरजातीयः । सर्वत्र जहीति संबन्धः । किं बहुना । दृषदा पाषाणेन मृत्पात्रमिव रक्षः नानाकारेण वर्तमानं राक्षसं प्र मृण प्रकर्षेण मारय । अत्र ऋक्संहितावृहद्देवतानुक्रमणिका ।

उलूकयातुं जह्येतान् नानारूपान् निशाचरान् ।
स्त्रीपुंरूपांश्च जह्येतान् जिघांसून् इन्द्र मे जहि ।

इति ॥

तृतीया ॥

मा नो रक्षो अभि नड् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

मा । नः । रक्षः । अभि । नट् । यातुऽमावत् । अप । उच्छन्तु । मिथुनाः । ये । किमीदिनः ।

---

१ A D S[m] धृप°. २ A K[m] °छतु.

1 S' स्त्रीरूपांश्च. The emendation is conjectural.

पृथिवी। नः। पार्थिवात्। पातु। अंहसः। अन्तरिक्षम्। दिव्यात्। पातु। अस्मान्॥ २३॥

नः अस्मान् यातुमावत् यातुमत् हिंसकं रक्षः राक्षसजातिः मा अभि नट् मा प्राप्नोतु। ✕ नशतिर्व्याप्तिकर्मा। तस्मात्लुङि "मन्त्रे घस०" इति च्लेर्लुक्। "न माड्योगे" इति अडभावः ✕। तथा किमीदिनः किम् इदानीम् इति वा किम् इदं किम् इदम् इति वा चरन्तो राक्षसा ये मिथुनाः मिथुनभूताः स्त्रीपुंसाः सन्ति ते अपोच्छन्तु अपगच्छन्तु। किं च पृथिवी देवी नः अस्मान् पार्थिवात् पृथिवीसंबन्धात् स्वसंबन्धिनः अंहसः रक्षःपिशाचादिकृतात् पीडनात् पापाद् वा [पातु] रक्षतु। एवम् अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षदेवता अस्मान् दिव्यात् दिवि भवात् स्वसंबन्धाद् अंहसः पातु॥

चतुर्थी॥

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्॥ २४॥

इन्द्र। जहि। पुमांसम्। यातुऽधानम्। उत। स्त्रियम्। मायया। शाशदानाम्। विऽग्रीवासः। मूरऽदेवाः। ऋदन्तु। मा। ते। दृशन्। सूर्यम्। उत्ऽचरन्तम्॥ २४॥

हे इन्द्र त्वं पुमांसम् पुंरूपधारिणं यातुधानम् यातनाकारिणं राक्षसं जहि नाशय। उत अपि च मायया परव्यामोहिन्या क्रियया शाशदानाम् हिंसतीं स्त्रियम् राक्षसीं जहि। किं च मूरदेवाः मारणक्रीडाः मूलेन विषौषध्या दीव्यन्तीति [वा] मूरदेवाः ते विग्रीवासः विच्छिन्नग्रीवाः सन्तः ऋदन्तु नश्यन्तु। ते मूरदेवाः उच्चरन्तं सूर्यं मा दृशन् मा द्राक्षुः॥

१ P Cr. ते. We with P J. २ P दृशन्. We with P J Cr.

1 S' रक्षः यातयता राक्षस° for रक्षः राक्षस°. 2 S' तस्य लुङि for तस्मात्लुङि. 3 S' विगतिछिन्न°.

पञ्चमी ॥

प्रति॑ चक्ष्व॒ वि च॑क्ष्वेन्द्र॑श्च सोम जागृतम् ।
रक्षो॑भ्यो व॒धमस्यतमश॑निं यातुम॒द्भ्यः ॥ २५ ॥ (११)

प्रति॑ । च॒क्ष्व॒ । वि । च॒क्ष्व॒ । इन्द्रः॑ । च॒ । सो॒म॒ । जा॒गृ॒त॒म् ।
रक्षः॑ऽभ्यः । व॒धम् । अ॒स्य॒त॒म् । अ॒श॒नि॑म् । या॒तु॒मत्ऽभ्यः॑ ॥ २५ ॥ (११)

हे सोम त्वम् इन्द्रश्च प्रत्येकं हिंसकराक्षसान् प्रति चक्ष्व प्रतिकूलं प्रत्येकं वा पश्य । तथा वि चक्ष्व विविधं विपरीतं वा राक्षसान् पश्य । युवां जागृतम् अस्मद्रक्षाविषये अप्रनिद्रौ भवतम् । किं च रक्षोभ्यो यातुमद्भ्यः हिंसावद्भ्यः अशनिम् अशनिलक्षणं वधम् हननसाधनम् आयुधम् अस्यतम् क्षिपतम् ॥

इत्यष्टमकाण्डे द्वितीयेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

समाप्तश्च द्वितीयोनुवाकः ॥

तृतीयेनुवाके पञ्च सूक्तानि । तत्र "अयं प्रतिसरः" इति सूक्तद्वयम् अर्थसूक्तम् अभिलषितार्थसिद्ध्यर्थम् । अनेनार्थसूक्तेन दध्नि मधुनि च त्रिरात्रं वासितं तिलकमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् । सूत्रितं हि । "आयमगन्[३.५] अयं प्रतिसरः[८.५] अयं मे वरणः[१०.३] अरातीयोः[१०.६] इति मन्त्रोक्तान् [वासितान्][2] बध्नाति" इति [कौ० ३.२] ॥

तथा अस्य सूक्तद्वयस्य कृत्याप्रतिहरणगणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणहोमादौ विनियोगः । सूत्रितं हि । "अयं प्रतिसरः[८.५] यां कल्पयन्ति[१०.१] इति महाशान्तिम् आवपते" इति [कौ० ५.३] । "अथ शान्तिकृत्यादूषणैश्चातनैर्मातृनामभिः" इति [शा० क० १६] । "कृत्यादूषण एव च । चातनो मातृनामा च" इति [न० क० २३] ॥

तथा "रौद्रीं रोगार्तस्य" [न० क० १७] इति विहितायां रौद्र्याख्यायां

1 S' क्षिप्तम्. 2 S' omits वासितान् which we supply from *Kaus'ika*.

महाशान्तौ तिलकमणिबन्धने एतत् सूक्तं विनियुक्तम्। तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे। "अयं प्रतिसर इति मन्त्रोक्तं रौद्र्याम्" इति [न० क० १९]॥

पिष्टरात्रीविधाने प्रतिसरबन्धनेपि एतत् सूक्तम्। "अथातः पिष्टरात्र्याः कल्पं व्याख्यास्यामः" इति उपक्रम्य उक्तम् अथर्वपरिशिष्टे। "अयं प्रतिसर इति प्रतिसरम् आबध्य" इति [प० ६. १]॥

तत्र प्रथमा॥

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते।
वीर्यवान्त्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः॥ १॥

अयम्। प्रतिऽसरः। मणिः। वीरः। वीराय। बध्यते।
वीर्यऽवान्। सपत्नऽहा। शूरऽवीरः। परिऽपानः। सुऽमङ्गलः॥ १॥

अयं तिलकवृक्षनिर्मितो मणिः प्रतिसरः प्रतिसरणसाधनः। यः कृत्याः करोति तं प्रति सरतीति प्रतिसरस्तादृशः। वीरः विविधम् ईरयति अपसारयति शत्रुप्रभृतीनि [इति] वीरः वीराय वीर्याय वीर्याख्याय[1] सामर्थ्याय विक्रान्ताय पुरुषाय वा बध्यते। मणिर्विशेष्यते। वीर्यवान् वीरस्य कर्म वीर्यम् तद्वान् अतिशयितवीर्यः। सपत्नहा शत्रुघातकः। शूरवीरः शूरान् वीरयति संग्रामे इति वा शूरश्चासौ वीरश्चेति वा शूरवीरः। परिपाणः परिपात्यनेन साधनेन प्रयोक्ता[2] यजमानम् इति परिपाणः परिरक्षासाधनभूतः परितो रक्षिता वा। ✕ परिपूर्वात् पातेः करणे ल्युट्। "वा[3] भावकरणयोः" इति णत्वविकल्पः। नन्द्यादित्वात् ल्युर्वा ✕। सुमङ्गलः शोभनेन मङ्गलेन उपेतः॥

द्वितीया॥

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
प्रत्यक् कृत्या दूषयन्नेति वीरः॥ २॥

अयम्। मणिः। सपत्नऽहा। सुऽवीरः। सहस्वान्। वाजी। सहमानः। उग्रः।
प्रत्यक्। कृत्याः। दूषयन्। एति। वीरः॥ २॥

---

1 S' वीराख्याय सामर्थ्यात्माय. 2 S' प्रयोक्तो. 3 S' घञि च for वा.

अयं स्रात्यो मणिः सपत्नहा वैरिघातकः सुवीरः शोभनैर्वीरैरुपेतः । पुत्रादिप्रदातेत्यर्थः । सहस्वान् बलवान् वाजी वेजनवान्[1] सहमानः शत्रूणाम् अभिभविता उग्रः उद्गूर्णबलः कृत्याः परोत्पादिताः प्रत्यक् कर्त्रभिमुखं दूषयन् विनाशयन् एति गच्छति बाहुदण्डम् आरोहति । अथ वा प्रत्यक् अस्मदभिमुखम् एति वीरः विविधम् ईरयिता शत्रूणाम् ॥

तृतीया ॥

अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्नेनासुरान् पराभावयन्मनीषी ।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत् प्रदिशश्चतस्रः ॥ ३ ॥

अनेन । इन्द्रः । मणिना । वृत्रम् । अहन् । अनेन । असुरान् । परा । अभावयत् । मनीषी ।
अनेन । अजयत् । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । इमे इति । अनेन । अजयत् । प्रऽदिशः । चतस्रः ॥ ३ ॥

अनेन स्रात्येन मणिना पूर्वम् इन्द्रः वृत्रम् असुरम् अहन् केनापि उपायेन जेतुम् अशक्यमपि अमुं मणिं बद्ध्वा तत्सामर्थ्येन हतवान् । तथा अनेनैव मणिना मणिबन्धनसामर्थ्येन मनीषी जयोपायज्ञानवान् इन्द्रः असुरान् अन्यान् पराभावयत् पराभूतान् विनष्टान् अकरोत् । किं च अनेनैव मणिना इमे प्रसिद्धे उभे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ अजयत् । द्यावापृथिव्योर्विजयो नाम तदाधिपत्यम् । किं च अनेनैव मणिना चतस्रः प्रदिशः प्रकृष्टा दिशः प्रागाद्याः अजयत् स्वाधीनं कृतवान् ॥

चतुर्थी ॥

अयं स्रात्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।
ओजस्वान् विमृधो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥ ४ ॥

अयम् । स्रात्यः । मणिः । प्रतिऽवर्तः । प्रतिऽसरः ।
ओजस्वान् । विऽमृधः । वशी । सः । अस्मान् । पातु । सर्वतः ॥ ४ ॥

---

1 S' वेजनवानवान् which probably stands for वेजनवान् अन्नवान् वा. 2 S' inserts ते before द्यावा°.

अयं स्वात्त्यः तिलकविकारो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिकूलं प्रतिमुखं वर्तयत्यनेनेति प्रतीवर्तः। प्रतिपूर्वाद् वृतेः करणे घञ्। "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः। "थाथघञ्" इत्यादिना उत्तरपदान्तोदात्तत्वम्। प्रतिसरः रोगादेः प्रतिसरणसाधनभूतः ओजस्वान् शत्रुनिरासक्षमतेजोयुक्तः विमृधः विगतसंग्रामः मणिधारकदर्शनेनैव शत्रूणां पलायनात् संग्रामस्यैव अभावात्। विमृधो विमर्दयिता वा। वशी सर्वस्य वशयिता स तादृशो मणिः अस्मान् सर्वतः सर्वस्मात् अभिभवात्[1] पातु रक्षतु॥

पञ्चमी॥

तद॒ग्निरा॑ह॒ तदु सोम॑ आह॒ बृह॒स्पति॑: सवि॒ता तदिन्द्रः॑।
ते मे॑ दे॒वाः पु॒रोहि॑ताः प्र॒तीचीः॑ कृ॒त्याः प्र॑ति॒सरै॑रजन्तु॥ ५॥

तत्। अ॒ग्निः। आ॒ह॒। तत्। ऊं॒ इति॑। सोमः॑। आ॒ह॒। बृ॒ह॒स्पतिः॑। स॒वि॒ता। तत्। इन्द्रः॑।
ते। मे॒। दे॒वाः। पु॒रःऽहि॑ताः। प्र॒तीचीः॑। कृ॒त्याः। प्र॒ति॒ऽसरैः॑। अ॒ज॒न्तु॒॥ ५॥

तत् वक्ष्यमाणं प्रतीचीः कृत्या इत्यादिकम् अग्निर्देवो मे आह उक्तवान्। प्राणिनः प्रतिसरैः प्रतिसरणसाधनैर्मणिभिः कृत्याः प्रतीचीः अजन्ति इत्येतत् मे मह्यम् अस्माकम् अग्निराहेत्यर्थः। तदु तद् एव सोमोप्याह। एवं बृहस्पतिः बृहतो मन्त्रजातस्य स्वामी एतन्नामको देवोप्याह। तथा सविता सर्वप्राणिनां प्रेरकः एतन्नामको देवोप्याह। किं बहुना। तत् साधनम् इन्द्रः मे आह। ते प्रसिद्धा अन्येपि देवाः पुरोहिताः पुरतः संनिधापिताः पुरोहितवत् हितकारिणो वा। आहुरिति विपरिणामः कर्तव्यः॥ अथ वा तत् स्वात्त्यमणिबन्धनस्य सर्वसंपत्साधनत्वम्[3] अग्निराह। तदु तद् एव सोमोप्याह। एवं बृहस्पत्यादिष्वपि योज्यम्। ते ये अभ्यादयो मणेः सर्वफलसाधनत्वम् आहुः त एव पुरोहिताः फलनिष्पादनविषये पुरतः स्थापिताः सन्तो मे मदर्थम् अन्यैरुत्पादिताः कृ-

1 S' अभिभयात्. 2 S' अजंतित्येतत् for अजन्ति इत्येतत्. 3 S' सर्वसंपत्साधनमग्नित्वम् अग्निराह for सर्वसंपत्साधनत्वम् अग्निराह.

त्याः प्रतिसरैः फलसाधनत्वेन अभिहितैर्मणिभिः साधनैः प्रतीचीः अजन्तु गमयन्तु इति व्याख्येयम् ॥

षष्ठी ॥

अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम् ।
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु ॥ ६ ॥

अन्तः । दधे । द्यावापृथिवी इति । उत । अहः । उत । सूर्यम् ।
ते । मे । देवाः । पुरःऽहिताः । प्रतीचीः । कृत्याः । प्रतिऽसरैः । अजन्तु ॥ ६ ॥

द्यावापृथिवी दिवं च पृथिवीं च अन्तर्दधे कृत्यायाश्च मम च अन्तरालदेशे दधे स्थापयामि व्यवधानं करोमि । उत अपि च अहरपि अन्तर्दधे । उत अपिच सूर्यमपि अन्तर्दधे । ते मे देवाः द्यावापृथिव्यादयः । शिष्टं पूर्ववत् ॥

सप्तमी ॥

ये स्राक्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते ।
सूर्य इव दिवमारुह्य वि कृत्या बाधते वशी ॥ ७ ॥

ये । स्राक्त्यम् । मणिम् । जनाः । वर्माणि । कृण्वते ।
सूर्यःऽइव । दिवम् । आऽरुह्य । वि । कृत्याः । बाधते । वशी ॥ ७ ॥

ये जनाः कृत्यापरिहारार्थिनो मनुष्याः स्राक्त्यम् मणिं वर्माणि तनुत्राणि कृण्वते कुर्वते । स मणिः सूर्य इव दिवम् आरुह्य दिवम् आरूढः सूर्यो यथा तमांसि बाधते एवं वशी वशयिता सन् कृत्याः अन्योत्पादिता वि बाधते विशेषेण नाशयति ॥

अष्टमी ॥

स्राक्त्येन मणिना ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतना वि मृधो हन्मि रक्षसः ॥ ८ ॥

स्राक्त्येन । मणिना । ऋषिणाऽइव । मनीषिणा ।

---

१ B $B^{h}$ $B^{m}$ K मणिना ऋ°. Sāyaṇa's text also has मणिना ऋ°. C: मणिना corrected into मणिन.

अजैषम्। सर्वाः। पृतनाः। वि। मृधः। हन्मि। रक्षसः॥ ८॥

अहं साधकः स्नात्येन तिलकवृक्षविकारेण मणिना मनीषिणा विपश्चिता ऋषिणेव अतीन्द्रियार्थद्रष्ट्रा अथर्वाख्येन महर्षिणा यथा तथा। अथ वा ऋषिर्मन्त्रः। उक्तरूपेण मन्त्रेणेव मन्त्रेण यथा तथा सर्वाः पृतना अजैषम् जितवान् अस्मि जयानि वा। तथा मृधः प्रमाथिनो रक्षसः राक्षसान् स्नात्येन मणिनैव वि हन्मि घातयामि॥

नवमी॥

याः कृत्या आङ्गिरसीर्याः कृत्या आसुरीर्याः कृत्याः स्वयंकृता या उ चान्येभिराभृताः।
उभयीस्ताः परा यन्तु परावतो नवतिं नाव्या३ अति॥ ९॥

याः। कृत्याः। आङ्गिरसीः। याः। कृत्याः। आसुरीः। याः। कृत्याः। स्वयमऽकृताः। याः। उ इति। च। अन्येभिः। आऽभृताः।
उभयीः। ताः। परा। यन्तु। पराऽवतः। नवतिम्। नाव्याः। अति॥ ९॥

आङ्गिरसीः आङ्गिरस्यः अङ्गिरसा प्रयुक्ता याः प्रसिद्धाः कृत्याः सन्ति। अङ्गिरसो महर्षेः कृत्याप्रयोगविधातृत्वम् आङ्गिरसकल्पाख्यसूत्रनिर्माणादेव प्रसिद्धम्। तथा आसुरीः आसुर्यः असुरैर्निर्मिता याः कृत्याः सन्ति। एवं स्वयंकृताः परार्थप्रयोगे सति केनचिद् वैकल्येन स्वस्मिन्नेव पर्यवसिताः स्वयंकृता इत्युच्यन्ते। स्वस्मिन्नेव कृत्यापर्यवसानम् "यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्" [शि० १०] इत्यादिषु प्रसिद्धम्। या उ च याः काश्चन अन्येभिः अन्यैर्मत्सरिभिः आभृताः आहृताः प्रयुक्ताः कृत्याः सन्ति ता उक्तरूपा उभयीः उभय्यः उभयप्रकारा अपि परावतः दूरदेशात् परा यन्तु परागच्छन्तु। ननु चतुष्प्रकारा निर्दिष्टाः कथम् उभयविधत्वम् इति चेत् उच्यते। आङ्गिरस्यः आसुर्यश्च अमानुष्यः एका कोटिः। स्वयं-

१ So we with all our authorities. See Rw. Sâyaṇa's text, however, has: आसुरीः। याः &c. २ A १ for ३. ३ P °कृत्या We with P J Cp.

1 S' प्रतिसिद्धाः. 2 S' °विविधात् त्वम्. 3 S' वैकल्प्येन. 4 S' परागच्छंतं.

कृता अन्यैः कृंताश्च मानुष्यः इत्यपरा इत्युभयविधत्वम् । परागमनस्य अवधिं दर्शयति नवतिम् इत्यादिना । नाव्याः नावा तार्यो महानद्यः । ताश्च नवतिसंख्याकाः । ता अति । अतिक्रम्येत्यर्थः ॥

दशमी ॥

अस्मै मणिं वर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।
प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥ १० ॥ (१२)

अस्मै । मणिम् । वर्म । बध्नन्तु । देवाः । इन्द्रः । विष्णुः । सविता । रुद्रः । अग्निः । प्रजाऽपतिः । परमेऽस्थी । विऽराट् । वैश्वानरः । ऋषयः । च । सर्वे ॥१०॥ (१२)

अस्मै यजमानाय कृत्यापरिहारादिफलकामाय मणिम् स्वात्मं वर्म परकृतकृत्यादिप्रहारपरिहारकं कवचं तत्स्थानीयं कृत्वा बध्नन्तु । के देवास्तान् विशिनष्टि इन्द्रो विष्णुरित्यादिना । प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा स च परमेष्ठी परमे निरतिशये स्थाने वर्तमानः विराट् कृत्स्नब्रह्माण्डाभिमानी देवः वैश्वानरः विश्वेषां नराणां हितो जाठरोग्निः हिरण्यगर्भो वा । स्पष्टम् अन्यत् ॥

इत्यष्टमकाण्डे तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"उत्तमो असि" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तत्र प्रथमा ॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम ॥ ११ ॥

उत्ऽतमः । असि । ओषधीनाम् । अनड्वान् । जगताम्ऽइव । व्याघ्रः । श्वपदाम्ऽइव ।

---

१ P omit the visarga. २ R अस्यौष°. ३ K °नड्वां जगं°. We with A B B D K R S V Cs. ४ We omit the vertical stroke from after °मिव and put it after श्वपदामिव with A B B D K R S V Cs. See Rw. ५ So we with all our MSS. and vaidikas. ६ So we with all our authorities. See Rw.

1 S' यातारा: for तार्यो.

यम्। ऐच्छाम। अविदाम। तम्। प्रतिऽस्पाशनम्। अन्तितम् ॥ ११ ॥

हे मणे मण्युपादान वृक्ष वा त्वम्. उत्तमोसि सर्वाभिमतफलसाधनत्वेन कतिपयफलसाधिकानाम् ओषधीनां मध्ये श्रेष्ठोसि। उत्तमत्वे दृष्टान्तम् आह। अनड्वान् अनोवहनसमर्थः पुंगवो जगतामिव गच्छतां चतुष्पदां मध्ये यथा उत्तमस्तद्वत्। अनडुह उत्तमत्वम् "अनड्वान् दाधार पृथिवीम्"[४. ११] इत्यत्र प्राग् उक्तम्। उपकारकत्वे दृष्टान्तम् अभिधाय शत्रुहिंसादिक्रूरकर्मणि दृष्टान्तम् आह व्याघ्रः श्वपदामिवेति। श्वपदः वृकसृगालाद्या अरण्यदुष्टमृगाः। तेषां मध्ये व्याघ्र इव। [x]व्याघ्रो व्याघ्राणाद् व्यादाय हन्तीति वेति यास्कः [नि० ३. १८][x]। यम् ईदृग्विधं सर्वपुरुषार्थसाधनाय ऐच्छाम तम् अविदाम लब्धवन्तः स्मः। अथ वा यं त्वया साध्यं पुरुषार्थम् ऐच्छाम तम् अविदाम। [x]विन्दतेर्लुङि च्लेः अङ्[x]। तं विशिनष्टि। प्रतिस्पाशिनम् अभिचरतः प्रतिमुखं बाधकम्। अन्तितम् अत्यन्तसंनिहितम्। अथवा तं तमेव प्रतिस्पाशिनं प्रतिकूलं बाधनावन्तं द्वेष्टारम् अन्ति अन्तिके अविदाम ॥

द्वितीया ॥

स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा।
अथो सपत्नकर्शनो यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ १२ ॥

सः। इत्। व्याघ्रः। भवति। अथो इति। सिंहः। अथो इति। वृषा। अथो इति। सपत्नऽकर्शनः। यः। बिभर्ति। इमम्। मणिम् ॥ १२ ॥

उपमाप्रधाना व्याघ्रादिनिर्देशाः। व्याघ्र इव सिंह इव च पराभिभवनशीलो भवति [स इत्]। स एवेत्यर्थः। अथो अपि च वृषेव स यथा गोषु स्वच्छन्दसंचारी भवति तद्वत् स भवतीत्यर्थः। अथो अपि च स एव सपत्नकर्षणः शत्रुविनाशकश्च भवति। स इत्युक्तम् क इत्याह। यः पुरुषः इमम् उक्तमहिमोपेतं मणिं बिभर्ति धारयति स इद् इति संबन्धः ॥

---

१ P अविदाम. We with P J Cp

1 Sâyaṇa's text in S', however, is उत्तमो अस्यो°. 2 S' °दृष्ट°. 3 S' बाधमानवंतं.

तृतीया ॥

नैनं घ्नन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।
सर्वा दिशो वि राजति यो बिभर्तीमं मणिम् ॥ १३ ॥

न । एनम् । घ्नन्ति । अप्सरसः । न । गन्धर्वाः । न । मर्त्याः ।
सर्वाः । दिशः । वि । राजति । यः । बिभर्ति । इमम् । मणिम् ॥१३॥

सर्वा दिशः प्रति । सर्वासु दिक्ष्वित्यर्थः । वि राजति । सर्वदिक्स्वामी भवतीत्यर्थः । स्पष्टम् अन्यत् ॥

कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।
अबिभस्त्वेन्द्रो मानुषे बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत् ।
मणिं सहस्रवीर्यं वर्मं देवा अकृण्वत ॥ १४ ॥

कश्यपः । त्वाम् । असृजत । कश्यपः । त्वा । सम् । ऐरयत् ।
अबिभः । त्वा । इन्द्रः । मानुषे । बिभ्रत् । सम्ऽश्रेषिणे । अजयत् ।
मणिम् । सहस्रंऽवीर्यम् । वर्मं । देवाः । अकृण्वत ॥ १४ ॥

चतुर्थी ॥ कश्यपः प्रजापतिः हे मणे त्वाम् असृजत सृष्टवान् । अनेन जन्मतः प्राशस्त्यम् उक्तम् । तथा स एव कश्यपः त्वा त्वां समैरयत् सर्वोपकारकत्वाय प्रेरितवान् । अनेन प्रयोक्तृगौरवद्वारा प्राशस्त्यम् उक्तं भवति । अथ धारयितृगौरवादपि प्राशस्त्यं दर्शयति अबिभस्त्वेन्द्र इति । हे प्रशस्तमणे त्वा त्वाम् इन्द्रः सर्वदेवाधिपतिः स्वकीयवृत्रहननादिसिद्धये स्वाराज्यप्राप्तये च अबिभः भरणं कृतवान् । यस्माद् एवं तस्मात् त्वां मानुषे । जातावेकवचनम् । मानुषेषु मध्ये बिभ्रत् पुरुषः संश्रेषणे परस्परसंश्लेषणसाधने संग्रामे अजयत् जयति ॥

पञ्चमी ॥ सहस्रवीर्यम् अपरिमितसामर्थ्यं मणिम् स्वात्मं देवाः पुरा वर्म कवचम् अकृण्वत कृतवन्तः वर्मवद् रक्षाकरम् अकुर्वन् ॥

१ K °श्रेषिणेऽजयत्. We with A B D K R S V C.

षष्ठी ॥

यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिर्यज्ञैर्यस्त्वा जिघांसति ।
प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण शतपर्वणा ॥ १५ ॥

यः । त्वा । कृत्याभिः । यः । त्वा । दीक्षाभिः । यज्ञैः । यः । त्वा । जिघांसति ।
प्रत्यक् । त्वम् । इन्द्र । तम् । जहि । वज्रेण । शतऽपर्वणा ॥ १५ ॥

हे शान्तिकाम पुरुष यः पुमान् त्वा त्वां कृत्याभिः हिंसाभिः क्रियाभिः जिघांसति हन्तुम् इच्छति यश्च त्वा त्वां दीक्षाभिः यज्ञियैर्वाग्यमनादिनियमविशेषैः जिघांसति । तथा यश्च त्वां यज्ञैः हिंसासाधनैः श्येनेष्वादिभिर्यागैः जिघांसति तं पुमांसं घातकम् हे इन्द्र इन्द्रात्मक त्वं शतपर्वणा शतसंधिकेन वज्रेण प्रत्यक् प्रतिमुखं जहि घातय ॥

सप्तमी ॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त ओजस्वान् संजयो मणिः ।
प्रजां धनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥ १६ ॥

अयम् । इत् । वै । प्रतिऽवर्तः । ओजस्वान् । सम्ऽजयः । मणिः ।
प्रऽजाम् । धनम् । च । रक्षतु । परिऽपानः । सुऽमङ्गलः ॥ १६ ॥

अयं मणिः प्रतीवर्त इद् वै कृत्यादिप्रतिवर्तनसाधन एव खलु । ✕प्रतिपूर्वाद् वृतेः करणे घञ् । "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः । "थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ✕ । ओजस्वान् अतिशयितौजाः संजयः संगतजयः सम्यग् जेता वा । स मणिः प्रजाम् पुत्रादिरूपां धनं च रक्षतु पालयतु । पुनर्विशेष्यते । परिपाणः परिपातीति परिपाणः मां परितो रक्षकः । ✕नन्द्यादित्वात् ल्युः । णत्वं छान्दसम् ✕ । सुमङ्गलः शोभनमाङ्गल्यसाधनभूतः ॥

अष्टमी ॥

असपत्नं नो अधरादसपत्नं न उत्तरात् ।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चा ज्योतिः शूर पुरस्कृधि ॥ १७ ॥

असपत्नम् । नः । अधरात् । असपत्नम् । नः । उत्तरात् ।
इन्द्र । असपत्नम् । नः । पश्चात् । ज्योतिः । शूर । पुरः । कृधि ॥१७॥

हे इन्द्र शूर त्वम् । मणिर्वा इन्द्रशब्देन उच्यते । नः अस्माकम् अधरात् । उत्तरसाहचर्याद् अत्र अधरशब्दो दक्षिणदेशवाची । "पश्चात् पुरस्ताद् अधरात्" इति हि प्रागुक्तम् [८.३.२०] । दक्षिणदिग्भागाद् असपत्नम् सपत्नविघातकम् । ज्योतिरिति संबन्धः । तत् पुरः पुरोदेशे कृधि कुरु । एवम् उत्तरात् पश्चात् इति वाक्यद्वयमपि व्याख्येयम् । अथ वा अधरात् उत्तरतः पश्चात् इति देशत्रयस्य उपादानात् पुरो ज्योतिरिति पूर्वदेशो विवक्षितः । अथ वा दिक्त्रयदेशेभ्योपि असपत्नम् सपत्नाभावम् पुरोदेशे ज्योतिश्च हे इन्द्र शूर त्वं कृधि कुर्विति व्याख्येयम् ॥

नवमी ॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः ।
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे ॥ १८ ॥

वर्म । मे । द्यावापृथिवी इति । वर्म । अहः । वर्म । सूर्यः ।
वर्म । मे । इन्द्रः । च । अग्निः । च । वर्म । धाता । दधातु । मे ॥१८॥

मे मह्यं द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ देवते वर्म तनुत्रं धत्ताम् कुरुताम् । तथा [अहः] अहरभिमानिदेवतापि मे वर्म दधातु । एवं सूर्येन्द्राग्निधातृवाक्यान्यपि योज्यानि ॥

दशमी ॥

ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे ।
तन्मे तन्वं त्रायतां सर्वतो बृहदायुष्मां जरदष्टिर्यथासानि ॥ १९ ॥

ऐन्द्राग्नम । वर्म । बहुलम । यत् । उग्रम । विश्वे । देवाः । न । अतिऽविध्यन्ति । सर्वे ।

१ Sāyaṇa's text omits this मे and reads वर्म इन्द्रश्च &c. २ P ऐन्द्रा अग्निम्.

1 S' व्याख्येयोज्यानि.

तत्। मे। तन्वम्। त्रायताम्। सर्वतः। बृहत्। आयुष्मान्। जरत्ऽअ-
ष्टिः। यथा। असानि ॥ १९ ॥

यत् मणिलक्षणम् ऐन्द्राग्नम् इन्द्राग्निदेवताकम् इन्द्राग्निभ्याम् अभिमानितं बहुलम् प्रभूतम् उग्रम् उद्गूर्णबलं वर्म कवचम् तद् विश्वे देवाः एतत्संज्ञया व्यवह्रियमाणा देवाः सर्वेपि नातिविध्यन्ति अतिवेधनं न कुर्वन्ति। किं तु सर्वेपि पालयन्तीत्यर्थः। तत् तथाविधं मणिलक्षणं वर्म मे तन्वम् तनूं शरीरं सर्वतः त्रायताम् पालयतु। कीदृक् तत्। बृहत् प्रभूतम्। अहं च यथा आयुष्मान् शतसंवत्सरेण आयुष्येण तद्वान् जरदष्टिः जीर्णावस्थापर्यन्तम् अशनवान् असानि भूयासं तथा त्रायताम् ॥

एकादशी ॥

आ मारुक्षद् देवमणिर्मह्या अरिष्टतातये।
इमं मेथिमभिसंविशध्वं तनूपानं त्रिवरूथमोजसे ॥ २० ॥

आ। मा। अरुक्षत्। देवऽमणिः। मह्यै। अरिष्टऽतातये।
इमम्। मेथिम्। अभिऽसंविशध्वम्। तनूऽपानम्। त्रिऽवरूथम्। ओजसे ॥ २० ॥

देवमणिः देवेन इन्द्रेण धृतत्वाद् वा देवैः इन्द्राग्न्यादिभिरभिमानितत्वाद् वा देवमणिः। स मा माम् आरुक्षत् भुजादिप्रदेशम् आरूढवान्। किमर्थम्। मह्यै महत्यै। मह्यम् इति वा। अरिष्टतातये। रिष्टं नाशस्तदभावः अरिष्टम् अरिष्टकरणाय। क्षेमायेत्यर्थः। किं च हे नराः यूयमपि इमं मेथिम् शत्रूणां विलोडयितारं विनाशयितारम्। यद्वा मेथी खले यथा उच्छिरा वर्तते एवम् अयमप्रीति मेथीवत् मेथिः। तम् अभिसंविशध्वम् अभितः सम्यग् आश्रयध्वम्। अथ वा इमं मेथीस्थानीयं मणिम् हे इन्द्रादिदेवा यूयम् अभिसंविशध्वम् अधितिष्ठत। कीदृशम्। तनूपानम् तन्वा[1] शरीरस्य पातारम् त्रिवरूथम् त्रिविधावर-

1 S' तन्वः. 2 S' धाता°.

णोपेतम् आद्यन्तमध्यभागैक्यात्मकं वा । किमर्थम् अभिसंवेशनम् इति उच्यते । ओजसे बलाय बलाभिवर्धनाय ॥

द्वादशी ॥

अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृम्णमिमं देवासो अभिसंविशध्वम् ।
दीर्घायुत्वाय शतशारदायायुष्मान् जरदष्टिर्यथासत् ॥ २१ ॥

अस्मिन् । इन्द्रः । नि । दधातु । नृम्णम् । इमम् । देवासः । अभिऽसंविशध्वम् ।

दीर्घायुऽत्वाय । शतऽशारदाय । आयुष्मान् । जरत्ऽअष्टिः । यथा । असत् ॥ २१ ॥

अस्मिन् मणौ इन्द्रो देवो नृम्णम् सुखम् अस्मदभिमतं नि दधातु स्थापयतु । इमं मणिम् हे देवासः देवा यूयम् अभिसंविशध्वम् अभितः अधितिष्ठत । किमर्थम् एवं प्रार्थनेति चेत् उच्यते । दीर्घायुत्वाय प्रभूतस्य आयुषः प्राप्तये । एतस्यैव व्याख्यानं शतशारदायेति । शरच्छब्देन तदुपलक्षितः संवत्सरोभिधीयते । शतसंख्याकाः शरदः शतशरदः । शतशरत्संख्यायुः शतशारदम् तस्मै । तस्यैव तात्पर्यम् आह । आयुष्मान् उक्तशतसंवत्सरलक्षणेन आयुष्येण युक्तः । न केवलम् आयुर्वृद्धिरेव पर्याप्ता किंतु तावत्कालम् अशिष्ठेनापि भवितव्यम् इत्यभिप्रेत्याह जरदष्टिरिति । उक्तो जरदष्टिशब्दार्थः । उक्तगुणद्वयविशिष्टो यथा येन प्रकारेण असत् भवेत् तथास्मिन्निन्द्रो नृम्णं दधातु । देवा अपि इमम् अभिसंविशध्वम् इति संबन्धः ॥

त्रयोदशी ॥

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
इन्द्रो बभातु ते मणिं जिगीवाँ अपराजितः सोमपा अभयंकरो वृषा ।

१ K$^{m}$ °युष्मांजर°. २ A R put a vertical stop after °जितः. We with A B B̈ D K K$^{m}$ S$^{m}$ V Cs.

1 S' आशिष्ठेन.

स त्वा रक्षतु सर्वतो दिवा नक्तं च विश्वतः ॥ २२ ॥ (१३)

स्वस्तिऽदाः। विशाम्। पतिः। वृत्रऽहा। विऽमृधः। वशी।
इन्द्रः। बभ्रातु। ते। मणिम्। जिगीवान्। अपराऽजितः। सोमऽपाः।
अभयमऽकरः। वृषा।
सः। त्वा। रक्षतु। सर्वतः। दिवा। नक्तम्। च। विश्वतः ॥ २२ ॥ (१३)

इन्द्रो देवः ते तव उक्तमहिमोपेतं मणिं बभ्रातु इति वाक्यार्थः। कीदृश इन्द्र इति तं विशिनष्टि। स्वस्तिदाः स्वभक्तानाम् अविनाशिलक्षणक्षेमप्रदाता। स्वयं च विशाम् देवमनुष्यादिलक्षणानां प्रजानां पतिः पालयिता स्वामी। वृत्रहा वृत्रस्य असुरस्य हन्ता। विमृधः विगतयुद्धः विविधं शत्रुविनाशकारी वा। वशी सर्वस्य वशयिता। जिगीवान् जयशीलः। अपराजितः स्वयम् अन्यैरनभिभूतः। सोमपाः सर्वेष्वपि सोमयागेषु स्वयमेव मुख्यत्वेन सोमस्य पाता। अभयंकरः अभयं भयराहित्यं तस्य कर्ता। वृषा सेक्ता अतिशयितपुंस्त्वस्य अभिमतफलस्य वर्षिता वा। स तादृशो देवो मणिं बद्ध्वा त्वा त्वां सर्वतः सर्वस्मादपि भयनिमित्ताद् रक्षतु। किम् एकदा। नेत्याह। दिवा नक्तं च। सर्वदेत्यर्थः। सर्वत इत्युक्तमेवार्थम् आदरार्थं पुनराह विश्वत इति ॥

इत्यष्टमकाण्डे तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

"यौ ते माता" इति सूक्तत्रयम् अर्थसूक्तम्। अस्य अर्थसूक्तस्य "दिव्यो गन्धर्वः[२.२] इमं मे अग्ने[६.१११] यौ ते माता[८.६] इति मातृनामानि" इति [कौ॰१.८] मातृगणे पाठात् शान्त्युदकाभिमन्त्रणाद्भुतहोमशान्तिहोमादौ गणप्रयुक्तो विनियोगोवगन्तव्यः। सूत्रितं हि। "वास्तोष्पत्यादीनि महाशान्तिम् आवपते" इति [कौ॰५.७]। "दिव्यो गन्धर्व इति मातृनामभिर्जुहुयात्" इति [कौ॰१३.२]। "चातनैर्मातृनामभिर्वास्तोष्पत्यैराज्यं जुहुयात्" इत्यादि [शा॰क॰१६] ॥

---

१ P P² रक्षन्तु. J रक्षन्तु changed to रक्षतु. We with Cr.

1 S' °पुंस्त्वम्. 2 S' विवस्वत° or विश्वत°. 3 S' °ष्पत्यादिमहा° &c. We with *Kausika*.

सीमन्तोन्नयनकर्मणि अनेन अर्थसूक्तेन श्वेतपीतसर्षपान् संपात्य अभिमन्त्र्य गर्भिण्या बध्नीयात् । तथा च सूत्रम् । ["यौ ते मातेति मन्त्रोक्तौ बध्नाति" इति] [कौ० ४. ११] ॥

तत्र प्रथमा ॥

यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ ।
दुर्णामा तत्र मा गृधद्लिंश उत वत्सपः ॥ १ ॥

यौ । ते । माता । उत्ऽममार्ज । जातायाः । पतिऽवेदनौ ।
दुःऽनामा । तत्र । मा । गृधत् । अलिंशः । उत । वत्सऽपः ॥ १ ॥

हे गर्भिणि जातायाः उत्पन्नाया उत्पत्तिसमनन्तरमेव ते तव माता जनयित्री यौ प्रसिद्धौ दुर्नामसुनामाख्यौ दुर्नामवत्सपाख्यौ वा पतिवेदनौ तव पत्युर्दुःखवेदनोत्पादकौ परिहियमाणौ सन्तौ पतिलम्भकौ वा । दुर्नामसुनामानाविति पक्षे सुनामा अनुकूलत्वात् पतिलम्भकः । दुर्नामा तु प्रतिक्रियया पतिलम्भक इति । पक्षान्तरे अलीश इत्येतद् वत्सपविशेषणम् । उक्तस्वरूपौ यौ उन्ममार्ज ऊर्ध्वमुखं मार्जनम् उन्मार्जनम् तत् कृतवती परिहृतवती । पत्युः परिग्रहायेति शेषः । तत्र तयोर्मध्ये दुर्नामा त्वग्दोषाख्यः मा गृधत् अभिकाङ्क्षां मा करोतु । गृधु अभिकाङ्क्षायाम् । माङि लुङि पुषादित्वाद् अङ् । तथा अलीशः अलयो भ्रमराकारेण वर्तमानाः केचन रोगाः तदभिमानिदेवा वा तेषाम् ईशः स्वामी वत्सपः वत्सानां पाता संवर्तव्याध्यभिमानी देवः । सोपि त्वां मा गृधत् । दुर्नामसुनामानौ यदि यच्छब्दार्थौ तदा उक्तव्यतिरिक्तः अलीशोपि त्वां मा गृधत् । उत अपि च वत्सपोपि मा गृधत् इति व्याख्येयम ॥

द्वितीया ॥

पलालानुपलालौ शर्कु कोकं मलिम्लुचं पलीजकम् ।

---

१ So all our MSS. and vaidikas. २ P मा. ३ S शर्कु. ४ So all our authorities.

1 S' °सुमनाख्यौ. 2 S' is uncertain between पतिक्रियया and प्रतिक्रियया. 3 S' परिग्राहायेति. 4 S' त्वग्दोषाख्य. 5 S' °मानि for °मानी. 6 S' यदिछनुदार्थौ for यदि यच्छम्दार्थौ which is conjectural.

आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥ २ ॥

पलालऽअनुपलालौ । शर्कुम् । कोकम् । मलिम्लुचम् । पलीजकम् । आऽश्रेषम् । वव्रिऽवाससम् । ऋक्षऽग्रीवम् । प्रऽमीलिनम् ॥ २ ॥

पलालानुपलालौ पलालवत् पलालः । अतितुच्छाङ्ग इत्यर्थः । अनुपलालोपि तादृशः । तौ द्वावपि नाशयामीति शेषः । शर्कुरेकः शर् शर् इति कौति शब्दयत इति शर्कुः । तं च विनाशयामि । एवम् उत्तरत्रापि । कोकम् । कोकश्चक्रवाकः । तदाकारेण वर्तमानः कोकः । यद्वा । ⁂कुक वृक आदाने । पचाद्यजन्तः⁂ । बलादेः आदातारं संहर्तारम् । मलिम्लुचः अत्यन्तमलिनः तं च । पलीचकम् पल्या पलितेन चकत इति पलीचकः जरठवद् वर्तमानः पलितकारी वा । आश्रेषम् आश्लिष्यतीत्याश्रेषः आश्लिष्य हन्तारं पीडयितारम् । वव्रिवाससम् वव्रिः रूपनाम । रूपोपेतवसनवन्तम् । ऋक्षग्रीवम् ऋक्षस्य वानरविशेषस्य ग्रीवेव ग्रीवा यस्य तादृशम् । प्रमीलिनम् प्रमीलः अक्षिसंकोचः । प्रतिक्षणं संकुचन्नेत्रम् इत्यर्थः । एते सर्वे गर्भिण्यादीनां पीडकाः । तान् प्रत्येकं नाशयामीत्यर्थः ॥

तृतीया ॥

मा सं वृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोन्तरा ।
कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ॥ ३ ॥

मा । सम् । वृतः । मा । उप । सृपः । ऊरू इति । मा । अव । सृपः । अन्तरा ।

कृणोमि । अस्यै । भेषजम् । बजम् । दुर्नामऽचातनम् ॥ ३ ॥

हे दुर्नामाख्यरोगाभिमानिन् अस्या ऊरू अन्तरा ऊर्वोर्मध्ये । ⁂"अन्तरान्तरेण युक्ते" इति द्वितीया⁂ । मा सं वृतः संवृतिं संकोचं वा मा कार्षीः । ⁂वृतु वर्तने । "श्नुग्रो लुङि" इति परस्मैप-

१ P मलिम्लुचम्. २ P मा. ³ So all our MSS. and vaidikas.

1 S' पलितकारि. 2 S' नाशयतीत्यर्थः. 3 S' अस्य for अस्याः.

दम् । द्युतादित्वाद् अङ् ✕ । तथा मोप सृपः उपसर्पणम् अन्तः-प्रवेशं मा कार्षीः । ✕ गम्लृ सृप्लृ गतौ । माङि लुङि लृदित्त्वात् च्लेः अङ् ✕ । तथा ऊरू अन्तरा मांव सृपः अवाक् सर्पणं मा कार्षीः । किमर्थम् एवम् इति चेद् उच्यते । अस्यै गर्भिण्यै दुर्नामचातनम् दुर्नामाख्यस्य दोषस्य विनाशकं बजम् श्वेतसर्षपरूपं भेषजम् औषधं कृणोमि करोमि । उत्तरत्र बजः पिङ्ग इति विशेष्यमाणत्वात् अत्र केवलबजग्रहणेपि श्वेतोभिमतः । श्वेतपीतोभयविधसर्षपाणां गर्भिण्या बन्धनं सूत्र उक्तम् ॥

चतुर्थी ॥

दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः ।
अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ॥ ४ ॥

दुःऽनामा । च । सुऽनामा । च । उभा । सम्ऽवृतम् । इच्छतः ।
अरायान् । अप । हन्मः । सुऽनामा । स्त्रैणम् । इच्छताम् ॥ ४ ॥

दुःखेन नमयितुं शक्यो दुर्नामा । सुखेन अल्पप्रयत्नेन नमयितुं वशीकर्तुं शक्यः सुनामा । सुभगो दुर्भगश्चेत्यर्थः । तौ उभा उभौ संवृतम संवर्तनं सहैव प्राप्तिं संचरणं वा इच्छतः । ✕ वृणोतेः संपदादिलक्षणः क्विप् ✕ । तत्र अरायान् न विद्यन्ते रायो येषां ते अराया अलक्ष्मीकास्तान् दुर्नामप्रभृतीन् अप हन्मः विनाशयामः । सुनामा द्वितीयः स्त्रैणम् स्त्रियाः संबन्ध्यङ्गं स्त्रीसमूहं वा इच्छताम् इच्छतु । ✕ स्त्रीशब्दात् "स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्" इति नञ् । इच्छताम् इति । "इषुगमियमां छः" । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ✕ ॥

पञ्चमी ॥

यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः[1] ।
अरायानस्या मुष्काभ्यां भंससोप हन्मसि ॥ ५ ॥

---

१ B अरायानप. २ P °नाम.

1 S' अव for माव. 2 S' बजः. 3 S' विद्यते. 4 S' स्त्रियः.

यः। कृष्णः। केशी। असुरः। स्तम्बऽजः। उत। तुण्डिकः।
अरायान्। अस्याः। मुष्काभ्याम्। भंससः। अप। हन्मसि ॥ ५ ॥

यः प्रसिद्धः कृष्णः कृष्णवर्णः केशी केशवान् प्रकृष्टकेशः एतन्नामा असुरः। तथा स्तम्बजः स्तम्बे जातः असुरः। उत अपि च तुण्डिकः तुण्डं मुखम्। कुत्सितमुखः एतन्नामा असुरः एते सर्वे अरायाः दुर्भगास्तान् अरायान् अस्या गर्भिण्याः मुष्काभ्याम्। स्त्रीणामपि मुष्कम् अस्ति। "व्यक्तं पुंसो न तु स्त्रियाः" इति स्मरणात्। मुष्काख्यप्रदेशाभ्यां तत्रापि भंससः कटिसंधिप्रदेशाद् अप हन्मसि अपहन्मः ॥

षष्ठी ॥

अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादमुत रेरिहम्।
अरायाञ्छ्वकिष्किणो बजः पिङ्गो अनीनशत् ॥ ६ ॥
अनुऽजिघ्रम्। प्रऽमृशन्तम्। क्रव्यऽअदम्। उत। रेरिहम्।
अरायान्। श्वऽकिष्किणः। बजः। पिङ्गः। अनीनशत् ॥ ६ ॥

[अनुजिघ्रम्]। अनुजिघ्रतीति अनुजिघ्रः। ग्रा गन्धोपादाने। "पाघ्राध्माधेट्दृशः शः" इति शः। "पाघ्रा०" इत्यादिना जिघ्रादेशः। आघ्रायैव हिंसकम् इत्यर्थः। तथा प्रमृशन्तम् प्रमृश्यैव हन्तारं क्रव्यादम् मांसभक्षकम्। उत अपि च रेरिहम् लीढ्वैव हन्तारम्। उक्तव्यतिरिक्तान् अन्यान् अरायान् अधनान् अलक्ष्मीकरांश्च। अरायविशेषणं किंष्किण इति। किष्किष् इति शब्दं कुर्वन्तस्तान्। यद्वा। किष्क हिंसायाम् इति चुरादौ पठ्यते। नित्यं हिंसकान् पिङ्गः पिशङ्गवर्णो बजः सर्षपः अनीनशत् भृशं नाशितवान् नाशयतु वा। "श्वेतांश्च पीतांश्च सर्षपान् संपात्य अभिमन्त्र्य गर्भिण्या बध्नीयात्" इति [कौ० ४. ११] विनियोगाभिधानाद् अत्र पीतसर्षपाणां विधानयोग उक्तः ॥

१ P तुण्डिकः. २ P अस्याः. ३ B अरायान्स्व°. We with A B D K K R S V C. ४ A R °किःकिणो. ५ So P P J C

1 Sâyaṇa's text in S' is: अरायांश्च किष्किणो. 2 S' श्वेतावन्पीताश्च. 3 So S'.

सप्तमी ॥

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
वज्रस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥ ७ ॥

यः । त्वा । स्वप्ने । निऽपद्यते । भ्राता । भूत्वा । पिताऽइव । च ।
वज्रः । तान् । सहताम् । इतः । क्लीबऽरूपान् । तिरीटिनः ॥ ७ ॥

हे गर्भिणि यो राक्षसादिः त्वा त्वां स्वप्ने निद्रावस्थायां भ्राता सहोत्पन्न इव भूत्वा विश्वासं जनयन् निपद्यते निपतति अभिगच्छति । तथा यश्च पितेव जनक इव तद्रूपधारी भूत्वा स्वप्ने त्वां निपद्यते । यद्वा तान् इति बहुवचनेन निर्देशात् यः कश्चित् स्वप्ने स्वकीयसहजरूपेण निपद्यते यश्च भ्राता भूत्वा यस्तु पितेव भूत्वेति योज्यम् । भ्रात्रादिरूपेण आगत्य गर्भध्वंसनम् अन्यत्राप्याम्नायते "यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तम् इतो नाशयामसि" इति [ऋ० १०. १६२. ५] । तान् सर्वान् वज्रः श्वेतसर्षपः सहताम् अभिभवतु इतः अस्माद् गर्भिणीसकाशात् । तथा क्लीबरूपान् षण्ढरूपं धृत्वा आगतान् तिरीटिनः अन्तर्धानेन अटतश्च । सहताम् इति संबन्धः ॥

अष्टमी ॥

यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।
छायामिव प्र तान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत् ॥ ८ ॥

यः । त्वा । स्वपन्तीम् । त्सरति । यः । त्वा । दिप्सति । जाग्रतीम् ।
छायामऽइव । प्र । तान् । सूर्यः । परिऽक्रामन् । अनीनशत् ॥ ८ ॥

हे गर्भिणि त्वा त्वां यः राक्षसादिः स्वपन्तीम् प्रबोधरहितां स्वापकाले चरति गच्छति । यश्च जाग्रतीम् प्रबुद्धां प्रबोधकाले दिप्सति दम्भितुम् इच्छति । दन्भु दम्भे । "सनीवन्तर्ध०" इत्यादिना इ-

१ R त्स्परति. २ P °क्रमन्.

1 S पश्चा.

ङ्विकल्पः। "दन्भ इच्च" इति अचः स्थाने इत्त्वम्[1]। अत्र तान् इति बहुवचननिर्देशाद् योयः स्वपन्तीम् योयो जाग्रतीम् इति वीप्सार्थो द्रष्टव्यः। तान् सर्वान् यथा सूर्यः परिक्रामन् आकाशे परिभ्रमन् छायाम् अन्धकारं नाशयति तद्वद् अयं सर्षपः सर्वम् अमङ्गलम् आक्रम्य प्रानीनशत् प्रकर्षेण विनाशितवान् नाशयतु वा ॥

नवमी ॥

यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम्।
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ॥ ९ ॥

यः। कृणोति। मृतऽवत्साम्। अवऽतोकाम्। इमाम्। स्त्रियम्।
तम्। ओषधे। त्वम्। नाशय। अस्याः। कमलम्। अञ्जिऽवम् ॥ ९ ॥

यो राक्षसादिः स्त्रियम् इमां गर्भिणीं मृतवत्साम् मृतपुत्रां कृणोति करोति। तथा अवतोकाम् अवपन्नगर्भां वा कृणोति तं दुष्टम् हे ओषधे सर्षपरूपे त्वं नाशय। अस्याः कमलम् गर्भद्वारम् अञ्जिवम् अभिव्यक्तिमत् म्लक्षणोपेतं वा। कुर्विति शेषः ॥

दशमी ॥

ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्त्रिमाः।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् वि नाशय ॥ १० ॥ (१४)

ये। शालाः। परिऽनृत्यन्ति। सायम्। गर्दभऽनादिनः।
कुसूलाः। ये। च। कुक्षिलाः। ककुभाः। करुमाः। स्त्रिमाः।
तान्। ओषधे। त्वम्। गन्धेन। विषूचीनान्। वि। नाशय ॥१०॥ (१४)

---

१ D K B K S V C: omit the visarga after करुमा. २ S B स्त्रिमाः. A स्तृमाः. We with B D K K R V C. ३ P J प्रति°, though J once reads परि°. We with Cr. ४ P ककुभाः.

---

1 S' इत्येत्यवस्थाने for इति अचः स्थाने. 2 S' सर्वमंगलम् for सर्वम् अमङ्गलम्.

ये पिशाचाः सायं समये गर्दभनादिनः गर्दभवद् आक्रोशन्तः सन्तः । ※"कर्तर्युपमाने" इति णिनिः※ । शालाः परिनृत्यन्ति शालानां गृहाणां परितो नृत्यन्ति । एवं ये च कुसूलाः कुसूलाकृतयः परिनृत्यन्ति । ये च कुक्षिलाः बृहत्कुक्षयः । ककुभाः अर्जुनवृक्षवद् भयंकराकृतयः । एवं खरुमाः श्रुमाश्च नानाकारैर्ध्वनिभिश्च विशिष्टाः सन्तः शालायाः परितो नृत्यन्ति तान् सर्वान् हे ओषधे गौरसर्षप पीतसर्षप वा त्वं गन्धेन तव परिमलेनैव विषूचीनान् विष्वगञ्चनान् कृत्वा वि नाशय ॥

इत्यष्टमकाण्डे तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

"ये कृकन्धाः" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तत्र प्रथमा ॥

ये कुकुन्धाः कुकूरभाः कृत्तीर्दूर्शानि बिभ्रति ।
क्लीबा इव प्रनृत्यन्तो वने ये कुर्वते घोषं तानितो नाशयामसि ॥११॥

ये । कुकुन्धाः । कुकूरभाः । कृत्तीः । दूर्शानि । बिभ्रति ।
क्लीबाःऽइव । प्रऽनृत्यन्तः । वने । ये । कुर्वते । घोषम् । तान् । इतः ।
नाशयामसि ॥ ११ ॥

ये प्रसिद्धाः कृकन्धाः एतत्संज्ञकाः पिशाचाः । कीदृशाः । कुकूरवाः कुकू इत्येवमात्मकेन रवेण युक्ताः कुकुटवद्ध्वनिं कुर्वाणाः कृत्यैः हिंसाकर्मभिः दूष्याणि दूषणीयानि हिंसारूपाणि कर्माणि बिभ्रति धारयन्ति । क्लीबा इव उन्मत्ता इव प्रनृत्यन्तः हस्तपादशिरआदिचालनं कुर्वन्तो ये च पिशाचाः वने अरण्ये घोषम् शब्दं कुर्वते तान् उभयविधानपि इतः गर्भिण्यादेः सकाशात् नाशयामसि नाशयामः ॥

द्वितीया ॥

ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः ।

१ So our MSS. and vaidikas. २ P कुकुधाः.

1 Sâyaṇa's text has खरुमा श्रमाः. 2 S' परिनृ° for परितो नृ°. 3 S' both here and in its text: दूष्यानि. 4 S' both here and in its text: कुर्वतो.

अरायान् बस्तवासिनो दुर्गन्धीँल्लोहितास्यान् मककान् नाशयामसि ॥ १२ ॥

ये। सूर्यम्। न। तितिक्षन्ते। आऽतपन्तम्। अमुम्। दिवः।
अरायान्। बस्तऽवासिनः। दुःऽगन्धीन्। लोहितऽआस्यान्। मककान्।
नाशयामसि ॥ १२ ॥

ये भूतविशेषा दिवः द्युलोकाद् आतपन्तम् सर्वतस्तापं कुर्वन्तम् अमुं सूर्यं न तितिक्षन्ते न सहन्ते। घूका इव रात्रौ गिरिगुहादौ वा वर्तन्त इत्यर्थः। तान् अरायान् अश्रीकान् बस्तवासिनः अविचर्मवसनान् दुर्गन्धीन् दुष्टेन पुराणकुणपादिसदृशेन गन्धेन उपेतान् लोहितास्यान् सर्वदा नवमांसभक्षणेन लोहितोपेतमुखान् लोहितवर्णमुखान् वा मककान्। [1]मस्कतिर्गत्यर्थः। सलोपश्छान्दसः[1]। कुत्सितगतीन् पिशाचान्। यद्वा। [1]मकिरलंकारार्थः। नुमभावः पूर्ववत्[1]। कुत्सितालंकारान् नाशयामसि नाशयामः ॥

तृतीया ॥

य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥ १३ ॥

ये। आत्मानम्। अतिऽमात्रम्। अंसे। आऽधाय। बिभ्रति।
स्त्रीणाम्। श्रोणिऽप्रतोदिनः। इन्द्र। रक्षांसि। नाशय ॥ १३ ॥

ये पिशाचाः स्त्रीणाम् आत्मानम् शरीरम्। कीदृशम् आत्मानम्। अतिमात्रम् गर्भिणीत्वाद् अतिस्थूलम् अंसे आधाय स्थापयित्वा बिभ्रति। अथ वा क्रियाविशेषणम् एतत्। अतिशयं बिभ्रतीत्यर्थः। अथ वा वस्तुतः अल्पमपि आत्मानम् अतिमात्रम् आकाशस्पर्शिनम् अंसे स्वस्कन्धप्रदेशे[3] आधाय मायाबलेन स्थापयित्वा बिभ्रति सर्वदा धारयन्ति। स्त्रीणां गर्भिणीनां श्रोणिप्रतोदिनः कटिप्रदेशं प्रकर्षेण व्यथयतस्तान् रक्षांसि राक्षसान् हे इन्द्र नाशय घातय ॥

1 S' अकिरलंकारीत्यर्थः. 2 S' छांसतालंकारान्. 3 S' अंसेवस्कंधप्रदेशे.

चतुर्थी ॥

ये पूर्वे वध्वो३ यन्ति हस्ते शृङ्गाणि बिभ्रतः ।
आपाकेष्ठाः प्रहासिन स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिस्तानितो नाशयामसि ॥१४॥

ये । पूर्वे । वध्वः । यन्ति । हस्ते । शृङ्गाणि । बिभ्रतः ।
आपाकेऽस्थाः । प्रऽहासिनः । स्तम्बे । ये । कुर्वते । ज्योतिः । तान् । इतः ।
नाशयामसि ॥ १४ ॥

ये पिशाचाः वध्वः वधूनां स्वस्त्रीणां पूर्वे पूर्वभाविनः सन्तो यन्ति सस्त्रीका गच्छन्ति । कथंभूताः । हस्ते स्वस्वहस्तेषु शृङ्गाणि विषाणानि [वादनार्थानि] पानार्थानि वा बिभ्रतः धारयन्तः । ये च आपाकेष्ठाः आपाकेषु पाकशालासु कुलालगृहेषु वा तिष्ठन्तीति आपाकेष्ठाः । प्रहासिनः प्रकृष्टहासयुक्ताः अट्टहासं कुर्वन्तः । ये च स्तम्बे आर्द्रेषु व्रीह्यादिस्तम्बेषु गृहस्तम्भेषु वा ज्योतिः अग्निरूपं कुर्वते उत्पादयन्ति तान् सर्वान् इतः अस्माद् गर्भिण्याद्यावासस्थानात् नाशयामसि नाशयामः ॥

पञ्चमी ॥

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरो मुखा ।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुष्का अयाशवः ।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय ॥ १५ ॥

येषाम् । पश्चात् । प्रऽपदानि । पुरः । पार्ष्णीः । पुरः । मुखा ।
खलऽजाः । शकधूमऽजाः । उरुण्डाः । ये । च । मट्मटाः । कुम्भऽमुष्काः । अयाशवः ।
तान् । अस्याः । ब्रह्मणः । पते । प्रतिऽबोधेन । नाशय ॥ १५ ॥

१ A B D R S C$_s$ बध्वो°. We with K K V *i. e.* with Sâyaṇa. २ A B K K S V C$_s$ °कस्थाः. We with B D R. ३ B K R °सिनः. We with A B D S V C$_s$. ४ P P J C$_r$ बध्वः. ५ A B B R पार्ष्णीः. We with K K S V C$_s$. ६ So all our MSS. and vaidikas except A R which omit the ण् and read उरुंडा. ७ P J C$_r$ मुखाः.

1 S′ स्वस्त्राका. 2 S′ कुर्वते.

येषा रक्षःप्रभृतीनां पश्चात् पश्चाद्भागे प्रपदानि पादाग्रप्रदेशाः पुरः पुरोभागे पार्ष्णीः पार्ष्ण्यः। ननु पश्चात् प्रपदानि सन्तु मुखान्यपि पश्चाच्चेत् किं वैकृतम् इति तत्राह। पुरः पूर्वस्मिन् देशे मुखा मुखानि प्रपदप्रतिकूलानि मुखानि। उक्तविकारान् तान्। तथा ये खलजाः खलो धान्यशोधनप्रदेशस्तत्र जाताः। ये च शकधूमजाः गवाश्वादिपुरीषपिण्डोत्पन्नाः। ये च अरुण्डाः रुण्डरहिता अशिरस्काः। ये च मुट्मुटाः मुट्मुट इति शब्दं कुर्वन्तः छिन्नसर्वावयवा इव वर्तमाना वा। कुम्भमुष्काः कुम्भोपमेन मुष्केण उपेताः। अयाशवः अयो वायुः वायुवद् आशुगामिनः। एवम् उक्तप्रकारा ये सन्ति तान् सर्वान् हे ब्रह्मणस्पते बृहतो वेदराशेः स्वामिन् एतन्नामक देव अस्या ओषधेर्बीजरूपायाः प्रतीबोधेन। प्रतीबोधसाधनेन सामर्थ्येनेत्यर्थः। प्रतिनियतेन ज्ञानेन [वा]। ✕"उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति दीर्घः✕। तेन नाशय विनष्टान् कुरु॥

पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः।
अव भेषज पादय य इमां संविवृत्सत्यपतिः स्वपतिं स्त्रियम्॥ १६॥

पर्यस्तऽअक्षाः। अप्रऽचङ्कशाः। अस्त्रैणाः। सन्तु। पण्डगाः।
अव। भेषज। पादय। यः। इमाम्। सम्ऽविवृत्सति। अपतिः। स्वपतिम्। स्त्रियम्॥ १६॥

पर्यस्ताक्षाः इतस्ततो विप्रकीर्णलोचनाः प्रचङ्कशाः प्रक्षीणोरुप्रदेशाः। यद्वा प्रगतमतयः। पन्नगाः पादेन न गच्छन्तः। एवंरूपा ये सन्ति ते अस्त्रैणाः स्त्रीसमूहविरोधिनः स्त्रीरहिताः सन्तु भवन्तु। अथ वा पन्नगाः सर्पा भवन्तु। किं च हे भेषज सर्षपरूपं त्वम् अव पातय अवाङ्मुखं विनाशय। कम्। यो राक्षसादिः इमां गर्भिणीं स्त्रियं संवि-

१ A °क्षा प्रचंकशा changed to °क्षा अप्रचंकशा. B D R S °क्षा अप्रचंकशा. K K V °क्षा अप्रचंकशा. २ So all our MSS. and vaidikas. Sâyan.'s reading is decidedly inferior. ३ P °चङ्काशाः. We with P J Cr.

वृत्सति संवर्तनं कर्तुम् इच्छति । यच्छब्दनिर्दिष्टं विशिनष्टि अपतिरिति । न विद्यते पतिः स्वामी यस्य स तथोक्तः अनियन्त्रितः । स्त्रियं विशिनष्टि स्वपतिम् इति । स्वाधीनपतिकाम् । यद्वा अपतिः पतिराहित्येन स्वपतीं निद्रां कुर्वतीम् इमां स्त्रियं संवर्तितुम् इच्छति । वर्ततेः सनि "वृज्यः स्यसनोः" इति परस्मैपदम् ॥

उद्ऋषिणं मुनिकेशं जम्भयन्तं मरीमृशम् ।
उपेषन्तमुदुम्बलं तुण्डेलमुत शालुडम् ।
पदा प्र विध्य पाण्र्यां स्यालीं गौरिव स्पन्दना ॥ १७ ॥

उत्ऽऋषिणम् । मुनिऽकेशम् । जम्भयन्तम् । मरीमृशम् ।
उप ऽएषन्तम् । उदुम्बलम् । तुण्डेलम् । उत । शालुडम् ।
पदा । प्र । विध्य । पाण्र्यां । स्यालीम् । गौःऽइव । स्पन्दना ॥ १७ ॥

यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयाति ते ।
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम् ॥ १८ ॥

यः । ते । गर्भम् । प्रतिऽमृशात् । जातम् । वा । मारयाति । ते ।
पिङ्गः । तम् । उग्रऽधन्वा । कृणोतु । हृदयाविधम् ॥ १८ ॥

सप्तमी ॥ उद्ऋषिणम् उत्कृष्टेन अतिप्रवृद्धेन धर्षणेन उपेतं मुनिकेशम् मुनिवज्जटात्मककेशवन्तम् एतन्नामानम् । तथा जम्भयन्तम् हिंसन्तं हिंस्रकं मरीमृशम् पुनःपुनः मृशन्तम् एतन्नामानं च । तथा उपेषन्तम् सर्वत इच्छन्तम् । गर्भिणी कुत्रास्त इत्यन्विष्यन्तम् इत्यर्थः । तथाविधम् उदुम्बलम् एतन्नामकं च । उत अपि च तुण्डेलम् प्रकृष्टतुण्डवन्तं शालुडम् एतन्नामानम् असुरम् । अथ वा उद्ऋषिप्रभृतीनि प्रत्येकं योगरूढानि असुरनामानि । पदा प्रविध्येत्युत्तरत्र संबन्धः ॥

१ So all our MSS. and vaidikas. Sâyaṇa's text alone has: उपेषंतम्. २ So all our MSS. and vaidikas. ३ K[m] C[s] स्पन्दना. We with A B B[b] D K[m] R S[3] V P P[2] J C[p].

1 Sâyaṇa's text also reads उपेषन्तम् and not उपेषन्तम्. See note १ above. 2 S' अन्वेष्य°. 3 Sâyaṇa's text also: शालडम्. 4 S' उद्ऋषिणं प्रभृतीनि.

अष्टमी ॥ सर्षपाख्यौषधिः पदा पादेन प्रविध्य सम्यक् ताडयित्वा प्रास्यात् प्रास्यतु । तत्र दृष्टान्तः । स्थालीम् दोहनसाधनं मृत्पात्रं गौरिव दुष्टा गौर्यथा स्पन्दनात् पश्चात्पादयोश्चालनात् । सा यथा पात्रं भिनत्ति तद्वत् । कं प्रति एवम् उच्यत इति तम् आह । यस्ते गर्भम् इति । यो राक्षसादिः हे गर्भिणि ते गर्भं प्रतिमृशात् प्रतिमृशेत् पीडयेत् यथा सजीवो न जायते तथा कुर्याद् वा । अथ वा जातम् उत्पन्नं ते पुत्रं मारयाति मारयेत् । तं पदा प्रविध्येति पूर्वत्रान्वयः । किं च पिङ्गः गौरसर्षपः तं गर्भघातकं राक्षसम् उग्रधन्वा । [illegible]धन्वतिर्गतिकर्मा[illegible] । ऊर्णुगतिः सन् हृदयाविधम् हृदयप्रदेशे विद्धं ताडितं कृणोतु करोतु । अथ वा वेधलिङ्गात् उग्रधन्वशब्दो भयंकरेण धनुषोपेतम् आचष्टे । सर्षपस्य औषधस्य देवताभिप्रायेण उग्रधन्वत्वं न विरुध्यते ॥

नवमी ॥

ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते ।
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु ॥ १९ ॥

ये । अम्नः । जातान् । मारयन्ति । सूतिकाः । अनुऽशेरते ।
स्त्रीऽभागान् । पिङ्गः । गन्धर्वान् । वातः । अभ्रमऽइव । अजतु ॥ १९ ॥

ये रक्षःपिशाचाद्याः अम्नो जातान् अर्धोत्पन्नान् गर्भान् मारयन्ति विनाशयन्ति ये च सूतिकाः अभिनवप्रसवा अनुशेरते स्वयमपि योषिद्रूपेण शयनं कुर्वन्ति तान् स्त्रीभागान् स्त्रियो गर्भिण्यो भागो येषां ते स्त्रीभागाः स्त्रीग्रहीतॄन् गन्धर्वान् रक्षःपिशाचाद्यान् पिङ्गः गौरसर्षपः वातः वायुः अभ्रमिव निरुदकं मेघमिव अजतु निरस्यतु ॥

दशमी ॥

परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत् ।

---

१ P J °भंगान्.

1 S' सर्षपाख्योपपदापीडन for स. रपाख्यौषधिः पदा पादेन. 2 Sâyana's text too has प्रास्यात् for पार्ष्ण्या. 3 S' पश्चात्पादयोः repeated.

गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीविभार्यौ[1] ॥ २० ॥ (१५)

परिऽसृष्टम् । धारयतु । यत् । हितम् । मा । अव । पादि । तत् ।
गर्भम् । ते । उग्रौ । रक्षताम् । भेषजौ । नीविऽभार्यौ[1] ॥ २० ॥ (१५)

परिशिष्टम् होमादिविनियोगावशिष्टं सर्षपद्वयं धारयतु न परित्यजतु गर्भिणी स्त्री । धारणस्य अभिप्रायम् आह । यत् यत् पुत्रादिलक्षणं वस्तु हितम् अभिमतं तत् माव पादि अवपन्नं विस्रस्तं मा भूत् । अनेन अभिप्रायेण धारयतु । हे गर्भिणि ते गर्भम् उग्रौ उङ्कूर्णबलौ भेषजौ भेषजरूपौ श्वेतपीतोभयविधसर्षपौ नीविभार्यौ नीव्यां भर्तव्यौ वस्त्राञ्चलेन धार्यौ रक्षताम् पालयताम् । "श्वेतपीतसर्षपौ संपात्य अभिमन्त्र्य गर्भिण्या बध्नीयात्" इति हि अत्र विनियोगः ॥

इत्यष्टमकाण्डे तृतीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

"पवीनसात्" इति सूक्तस्य "यौ ते माता"[८. ६] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

पवीनसात् तङ्क्ल्वाऽच्छायकादुत नग्नकात् ।
प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥ २१ ॥

पविऽनसात् । तङ्क्ल्वात् । छायकात् । उत । नग्नकात् ।
प्रऽजायै । पत्ये । त्वा । पिङ्गः । परि । पातु । किमीदिनः ॥ २१ ॥

पवीनसात् पविर्वज्रः । वज्रसदृशनासिकोपेतात् किमीदिनः असुरादेः सकाशात् तङ्क्ल्वात् एतन्नामकाच्च किमीदिनः सायकात् विनाशकारिणः सकाशात् उत अपि च नग्नकात् नग्नात् । एतन्नामकेभ्यः असुरेभ्यः सकाशात् हे गर्भिणि त्वा त्वां पिङ्गः पिङ्गवर्णः सर्षपः परि पातु परितो

---

१ R °भार्यौ. २ P मा. ३ We read छायका° with A B $\overset{m}{B}$ D K R $\overset{m}{S}$ P $\overset{2}{P}$ J V Cs Cr. ४ $\overset{m}{S}$ नग्नकात्.

1 This does not occur in *Kauśika*, but seems to refer to the *Kesarî*, यौ ते मातेत्यर्थसूक्तेन श्वेतपीतसर्षपान् संपात्य अभिमन्त्र्य पुण्याहान्ते बध्नाति IV. 11.

रक्षतु। कस्मै प्रयोजनायेति उच्यते। प्रजायै प्रजार्थं पुत्रलाभार्थं [पत्ये] पत्यर्थं पत्युरानुकूल्यार्थं च ॥

द्वितीया ॥

द्व्यास्याच्चतुरक्षात् पञ्चपादादनङ्गुरेः।
वृन्ताद्भि प्रसर्पतः परि पाहि वरीवृतात् ॥ २२ ॥

द्विऽआस्यात्। चतुःऽअक्षात्। पञ्चऽपादात्। अनङ्गुरेः।
वृन्तात्। अभि। प्रऽसर्पतः। परि। पाहि। वरीवृतात् ॥ २२ ॥

द्व्यास्यात् द्वे आस्ये पुरः पश्चाच्चेति वा पुरत एव वा यस्य स्तः स द्व्यास्यः। तस्मात्। यत एवम् अतोसौ चतुरक्षः अक्षचतुष्टयवान्। तस्मात्। पञ्चपादात् पादपञ्चकोपेतात् अनङ्गुरेः अङ्गुलिरहिताद् वृन्तात् लतापुञ्जात् अभिप्रसर्पतः अभिमुखं गच्छतः। अथ वा वृन्तात् वृन्तवद् वृन्तं शिरः पादाग्रं वा तस्मात्। अवाग्भूयाभिगच्छतः पश्चात् वरीवृतात् भृशं सर्वाङ्गं व्याप्य वर्तमानात् हे ओषधे त्वं परि पाहि परितो रक्ष। ✕ वृतु वर्तने। अस्माद् यङ्लुगन्तात् पचाद्यचि "रीगृदुपधस्य च" इत्यभ्यासस्य रीगागमः। "न धातुलोप आर्धधातुके" इति गुणप्रतिषेधः ✕ ॥

तृतीया ॥

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥ २३ ॥

ये। आमम्। मांसम्। अदन्ति। पौरुषेयम्। च। ये। क्रविः।
गर्भान्। खादन्ति। केशऽवाः। तान्। इतः। नाशयामसि ॥ २३ ॥

ये पिशाचा आमम् अपक्वं मांसम् अदन्ति भक्षयन्ति ये च पौरुषेयम् पुरुषस्य संबन्धि क्रविः। क्रविस्शब्दो मांसवचनः। "य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति" इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० १. १६२. १०]। म-

१ P P̊ J K Cp अनम्ऽगुरेः. We ..th Sāyaṇa.

1 S' अवङ्गूयाभि°.

नुष्यमांसभक्षणं न प्रचुरम् इत्यभिप्रेत्य पृथगभिधानम् । ये च केशवाः प्रकृष्टकेशाः पिशाचविशेषाः गर्भान् मायारूपेण प्रविश्य खादन्ति भक्षयन्ति तान् त्रिविधानपि इतः अस्मात् गर्भिण्यादेः सकाशात् नाशयामसि नाशयामः ॥

चतुर्थी ॥

ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव श्वशुरादधि ।
बजश्च तेषां पिङ्गश्च हृदयेधि नि विध्यताम् ॥ २४ ॥

ये । सूर्यात् । परिऽसर्पन्ति । स्नुषाऽइव । श्वशुरात् । अधि ।
बजः । च । तेषाम् । पिङ्गः । च । हृदये । अधि । नि । विध्यताम् ॥२४॥

ये पीडयितारः सूर्यात् सर्वस्य प्रेरकाद् देवाद् अनुज्ञाताः सन्तः परिसर्पन्ति परिगच्छन्ति भूलोकं गच्छन्ति पीडयितुम् । तत्र दृष्टान्तम् आह । स्नुषेव यथा स्नुषा श्वशुरादधि । ※अधिः पञ्चम्यर्थानुवादी※ । श्वशुरात् स्वपतेर्जनकाद् अनुज्ञाता त्वं पत्युः सकाशं गच्छ इत्येवम् अनुज्ञाता सती तत्समीपं परिसर्पति तद्वत् । तेषां सूर्याद् आगतानां हृदये हृदयदेशे बजश्च बजः श्वेतसर्षपः स च पिङ्गश्च गौरसर्षपश्च । उभयत्र चशब्दः परस्परापेक्षः । अधि नि विध्यताम् अधिष्ठाय ताडयताम् ॥

पञ्चमी ॥

पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं कृन् ।
आण्डादो गर्भान्मा दभन् बाधस्वेतः किमीदिनः ॥ २५ ॥

पिङ्ग । रक्ष । जायमानम् । मा । पुमांसम् । स्त्रियम् । कृन् ।
आण्डऽअदः । गर्भान् । मा । दभन् । बाधस्व । इतः । किमीदिनः ॥२५॥

हे पिङ्ग गौरसर्षप त्वं जायमानम् उत्पद्यमानं शिशुं रक्ष । जायमानम् इति सामान्येन अभिधाय विशेषेणाह । जायमानं पुमांसं जा-

१ B °सर्पन्ति स्नुषेव. २ K करन्. ३ P दभत्.

यमाना स्त्रियं वा मा ऋन् मा कुर्वन्तु । पीडायाम् इति शेषः । अथ वा जायमानं पुमांसं वस्तुतः पुंगर्भं स्त्रियं मा ऋन् स्त्र्यपत्यं मा कुर्वन्तु । यथा एवं न भवति तथा रक्ष । केचन भूतविशेषाः पुंगर्भं स्त्रीगर्भं कुर्वन्ति स्वसामर्थ्यात् । ॠ करोतेर्माङि लुङि "मन्त्रे घस०" इत्यादिना च्लेर्लुक् ॠ । किं च अपरे आण्डादः आण्डप्रदेशभक्षकाः । ॠ "अदोनन्ने" इति विट् ॠ । ते पिशाचाः गर्भान् मा दभन् मा हिंसन्तु । तान् उभयविधान् किमीदिनः किम् इदं किम् इदम् इति चरतो रक्षःप्रभृतीन् हे पिङ्ग इतः गर्भिणीसकाशाद् बाधस्व पीडय ॥

षष्ठी ॥

अप्रजास्त्वं मार्तवत्समाद् रोदमघमावयम् ।
वृक्षादिव स्रजं कृत्वाप्रिये प्रति मुञ्च तत् ॥ २६ ॥ (१६)

अप्रजाःऽत्वम् । मार्तऽवत्सम् । आत् । रोदम् । अघम् । आऽवयम् ।
वृक्षात्ऽइव । स्रजम् । कृत्वा । अप्रिये । प्रति । मुञ्च । तत् ॥२६॥ (१६)

हे पिङ्ग त्वम् अस्या गर्भिण्या यद् अप्रजास्त्वम् अपत्यविधुरत्वम् यच्च मार्तवत्सम् मृतवत्सत्वं दौर्भाग्यम् आत् अपि च रोदम् सर्वदा उत्पद्यमानं दुःखं हृद्रोदनं वा । अघवावयम् अघानां पापानां तत्फलभूतानां दुःखानां वा असकृद् वयनम् । एतानि सर्वाणि । वृक्षादिव स्रजं कृत्वा यथा वृक्षाद् बहूनि पुष्पाणि आदाय मालां निर्माय प्रियतमे प्रतिमुञ्चति तद्वत् अप्रजास्त्वादिकानां स्रजं कृत्वा तत् मात्यम् अप्रिये द्वेष्ये प्रति मुञ्च संयोजय ॥

इत्यष्टमकाण्डे तृतीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

समाप्तश्च तृतीयोनुवाकः ॥

1 S' पीडयाम् for पीडायाम्. 2 S' हृद्रोदनं.

यक्ष्मादिसर्वव्याधिभैषज्ये कर्मणि "या बभ्रवः" इत्यर्थसूक्तेन दशवृक्षशकलानां लाक्षाहिरण्येन वेष्टित मणिं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य पुनः सूक्तं जपित्वा बध्नाति। तद् उक्तं कौशिकेन। "उत्तमेन शाकलम्" इति [कौ० ४. २] ॥ पालाशः उदुम्बरः जम्बुः काम्पीलः स्रक् वह्निः शिरीषः खदिरः वरणः बिल्वः जह्निडः कुटकः गृध्रः गलावलः वेतसः शिम्बलः सिपुनः स्यन्दनः अरणिका अश्मयोक्तः तुन्युः पूतदारुरिति शान्ता वृक्षाः। एतेषां कतमानामपि दशानां शकलैर्निर्मितः शाकलो मणिः ॥

तथा सौत्रामणीयागे अनेन सूक्तेन ओषधीभिः संधीयमानां सुराम् अनुमन्त्रयेत। तद् उक्तं वैतानेन। "गसप्राशन्या [५. २. ३] या बभ्रव इत्योषधीभिः सुरां संधीयमानाम्" इति [वै० ५. ३] ॥

**या बभ्रवो याश्च शुक्रा रोहिणीरुत पृश्नयः।**
**असिक्नीः कृष्णा ओषधीः सर्वा अच्छावदामसि ॥ १ ॥**

याः। बभ्रवः। याः। च। शुक्राः। रोहिणीः। उत। पृश्नयः।
असिक्नीः। कृष्णाः। ओषधीः। सर्वाः। अच्छऽआवदामसि ॥ १ ॥

**त्रायन्तामिमं पुरुषं यक्ष्माद् देवेषितादधि।**
**यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ॥ २ ॥**

त्रायन्ताम्। इमम्। पुरुषम्। यक्ष्मात्। देवऽईषितात्। अधि।
यासाम्। द्यौः। पिता। पृथिवी। माता। समुद्रः। मूलम्। वीरुधाम्। बभूव ॥ २ ॥

**आपो अग्रं दिव्या ओषधयः।**
**तास्ते यक्ष्ममेनस्यमङ्गादङ्गादनीनशन् ॥ ३ ॥**

आपः। अग्रम्। दिव्याः। ओषधयः।
ताः। ते। यक्ष्मम्। एनस्यम्। अङ्गात्ऽअङ्गात्। अनीनशन् ॥ ३ ॥

**प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि।**
**अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥ ४ ॥**

प्रऽस्तृणतीः। स्तम्बिनीः। एकऽशुङ्गाः। प्रऽतन्वतीः। ओषधीः। आ। वदामि।
अंशुमतीः। काण्डिनीः। याः। विऽशाखाः। ह्वयामि। ते। वीरुधः। वैश्वऽदेवीः। उग्राः।
पुरुषऽजीवनीः ॥ ४ ॥

---

१ A R Dc द्यौः पिता. We with $^{h}$B D K $^{m}$K $^{m}$S V Cs. २ A has no kampa. $^{h}$B °मे. नस्या°. $^{m}$K °मेनस्या१°. $^{m}$D $^{m}$S Cs °मेनस्य२°. We with K R V Dc. ३ D K V °नीनशम्. A $^{m}$K R Dc °नीनशं. P अनीनशन्. $^{2}$P J Cr अनीनशम्. We with B $^{m}$S Cs. ४ $^{2}$P ता. We with P J Cr. ५ A $^{h}$B D K R $^{m}$S Cs प्रस्तृणतीः स्त°. We with V $^{m}$K Dc. ६ $^{h}$B D R K $^{m}$K Dc Cs विशाखाः ह्व. We with A $^{m}$S V.

यद् वः सहः सहमाना वीर्यं१ यच्च वो बलम् ।
तेनेममस्माद् यक्ष्मात् पुरुषं मुञ्चतौषधीरथो कृणोमि भेषजम् ॥ ५ ॥

यत् । वः । सहः । सहमानाः । वीर्यम् । यत् । च । वः । बलम् ।
तेन । इमम् । अस्मात् । यक्ष्मात् । पुरुषम् । मुञ्चत । ओषधीः । अथो इति । कृणोमि ।
भेषजम् ॥ ५ ॥

जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।
अरुन्धतीमुन्नयन्तीं पुष्यां मधुमतीमिह हुवेस्मा अरिष्टतातये ॥ ६ ॥

जीवलाम् । नघऽरिषाम् । जीवन्तीम् । ओषधीम् । अहम् ।
अरुन्धतीम् । उत्ऽनयन्तीम् । पुष्याम् । मधुऽमतीम् । इह । हुवे । अस्मै । अरिष्टऽतातये ॥ ६ ॥

इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीर्वचसो मम ।
यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ ७ ॥

इह । आ । यन्तु । प्रऽचेतसः । मेदिनीः । वचसः । मम ।
यथा । इमम् । पारयामसि । पुरुषम् । दुःऽइतात् । अधि ॥ ७ ॥

अग्नेर्घासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्णवाः ।
ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्भेषजीः सन्त्वाभृताः ॥ ८ ॥

अग्नेः । घासः । अपाम् । गर्भः । याः । रोहन्ति । पुनःऽनवाः ।
ध्रुवाः । सहस्रऽनाम्नीः । भेषजीः । सन्तु । आऽभृताः ॥ ८ ॥

अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः ।
व्यृषन्तु दुरितं तीक्ष्णशृङ्ग्यः ॥ ९ ॥

अवकाऽउल्बाः । उदकऽआत्मानः । ओषधयः ।
वि । ऋषन्तु । दुःऽइतम् । तीक्ष्णऽशृङ्ग्यः ॥ ९ ॥

---

१ **A B** $^{h}$**B D** $^{m}$**S** C$_{s}$ **वीर्यं** ३. We with **K** $^{m}$**K R V** D$_{e}$. २ So **A B** $^{h}$**B D K** $^{m}$**K R** $^{m}$**S V** D$_{e}$ C$_{s}$. But **P** $^{2}$**P J** **नघऽऋषाम्** ।. C$_{p}$ **नघऽरिषाम्** ।. See VIII. 2. 6 ३ So we with **A B** $^{h}$**B D K** $^{m}$**K R** $^{m}$**S V P** $^{2}$**P J** C$_{p}$. D$_{e}$ C$_{s}$ **पुष्यां**. ४ $^{m}$**S** **पुनर्णवः**. **P** **पुनःऽनवः** ।. We with **A B** $^{h}$**B D K** $^{m}$**K R V** D$_{e}$ C$_{s}$ $^{2}$**P J** C$_{p}$. ५ $^{2}$**P** **भेषजाः** ।. We with **P J** C$_{p}$. ६ **P** **°शृंग्याः** ।. We with $^{2}$**P J** C$_{p}$.

उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा उग्रा या विषदूषणीः।
अथो बलासनाशनीः कृत्यादूषणीश्च यास्ता इह यन्त्वोषधीः॥१०॥ (१७)

उत्ऽमुञ्चन्तीः। विऽवरुणाः। उग्राः। याः। विषऽदूषणीः।
अथो इति। बलासऽनाशनीः। कृत्याऽदूषणीः। च। याः। ताः। इह। आ। यन्तु।
ओषधीः॥ १०॥ (१७)

अपक्रीताः सहीयसीर्वीरुधो या अभिष्टुताः।
त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामश्वं पुरुषं पशुम्॥ ११॥

अपऽक्रीताः। सहीयसीः। वीरुधः। याः। अभिऽस्तुताः।
त्रायन्ताम्। अस्मिन्। ग्रामे। गाम्। अश्वम्। पुरुषम्। पशुम्॥ ११॥

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षो घृतमन्नं
दुहतां गोपुरोगवम्॥ १२॥

मधुऽमत्। मूलम्। मधुऽमत्। अग्रम्। आसाम्। मधुऽमत्। मध्यम्। वीरुधाम्। बभूव।
मधुऽमत्। पर्णम्। मधुऽमत्। पुष्पम्। आसाम्। मधोः। सम्ऽभक्ताः। अमृतस्य। भक्षः।
घृतम्। अन्नम्। दुहताम्। गोऽपुरोगवम्॥ १२॥

यावतीः कियतीश्चेमाः पृथिव्यामध्योषधीः।
ता मा सहस्रपर्ण्यो मृत्योर्मुञ्चन्त्वंहसः॥ १३॥

यावतीः। कियतीः। च। इमाः। पृथिव्याम्। अधि। ओषधीः।
ताः। मा। सहस्रऽपर्ण्यः। मृत्योः। मुञ्चन्तु। अंहसः॥ १३॥

वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोभिशस्तिपाः।
अमीवाः सर्वा रक्षांस्यप हन्त्वधि दूरमस्मत्॥ १४॥

---

१ K K उन्मुञ्चती°. De उन्मुंचंती° corrected to उन्मुंचती°. P °मुंचतीः।. We with B D R S V Cs P J CP. २ P °वरुणः।. ३ A B B D K K R S V Cs P J CP बभूव. We with P. De बभूव changed to बभूव. ४ A B B D K K R S V De Cs °ध्योषधीः। and P P J CP have ओषधीः।. ५ A B मुञ्चत्वंहसः. We with D K K R S De Cs. ६ P J °पर्ण्यः।. We with P CP.

वैयाघ्रः । मणिः । वीरुधाम् । त्रायमाणः । अभिशस्तिऽपाः ।

अमीवाः । सर्वाः । रक्षांसि । अप । हन्तु । अधि । दूरम् । अस्मत् ॥ १४ ॥

सिंहस्येव स्तनथोः सं विजन्तेऽग्नेरिव विजन्त आभृताभ्यः ।

गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्भिरतिनुत्तो नाव्या॑ एतु स्रोत्याः ॥ १५ ॥

सिंहस्यऽइव । स्तनथोः । सम् । विजन्ते । अग्नेःऽइव । विजन्ते । आऽभृताभ्यः ।

गवाम् । यक्ष्मः । पुरुषाणाम् । वीरुत्ऽभिः । अतिऽनुत्तः । नाव्याः । एतु । स्रोत्याः ॥ १५ ॥

मुमुचाना ओषधयोऽग्नेर्वैश्वानरादधि ।

भूमिं संतन्वतीरित यासां राजा वनस्पतिः ॥ १६ ॥

मुमुचानाः । ओषधयः । अग्नेः । वैश्वानरात् । अधि ।

भूमिम् । सम्ऽतन्वतीः । इत । यासाम् । राजा । वनस्पतिः ॥ १६ ॥

या रोहन्त्याङ्गिरसीः पर्वतेषु समेषु च ।

ता नः पयस्वतीः शिवा ओषधीः सन्तु शं हृदे ॥ १७ ॥

याः । रोहन्ति । आङ्गिरसीः । पर्वतेषु । समेषु । च ।

ताः । नः । पयस्वतीः । शिवाः । ओषधीः । सन्तु । शम् । हृदे ॥ १७ ॥

याश्चाहं वेद वीरुधो याश्च पश्यामि चक्षुषा ।

अज्ञाता जानीमश्च या यासु विघ्न च संभृतम् ॥ १८ ॥

याः । च । अहम् । वेद । वीरुधः । याः । च । पश्यामि । चक्षुषा ।

अज्ञाताः । जानीमः । च । याः । यासु । विघ्न । च । सम्ऽभृतम् ॥ १८ ॥

सर्वाः समग्रा ओषधीर्बोधन्तु वचसो मम ।

यथेमं पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ १९ ॥

सर्वाः । सम्ऽअग्राः । ओषधीः । बोधन्तु । वचसः । मम ।

यथा । इमम् । पारयामसि । पुरुषम् । दुःऽइतात् । अधि ॥ १९ ॥

अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः ।

---

१ S विजन्ते. We with A B D K K R V De Cs. २ R भूमिः. ३ B D Cs सर्वा for सर्वाः.

व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ ॥ २० ॥ (१८)

अश्वत्थः। दर्भः। वीरुधाम्। सोमः। राजा। अमृतम्। हविः।
व्रीहिः। यवः। च। भेषजौ। दिवः। पुत्रौ। अमर्त्यौ ॥ २० ॥ (१८)

उज्जिहीध्वे स्तनयत्यभिक्रन्दत्योषधीः।
यदा वः पृश्निमातरः पर्जन्यो रेतसावति ॥ २१ ॥

उत्। जिहीध्वे। स्तनयति। अभिऽक्रन्दति। ओषधीः।
यदा। वः। पृश्निऽमातरः। पर्जन्यः। रेतसा। अवति ॥ २१ ॥

तस्यामृतस्येमं बलं पुरुषं पाययामसि।
अथो कृणोमि भेषजं यथासच्छतहायनः ॥ २२ ॥

तस्य। अमृतस्य। इमम्। बलम्। पुरुषम्। पाययामसि।
अथो इति। कृणोमि। भेषजम्। यथा। असत्। शतऽहायनः ॥ २२ ॥

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम्।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥ २३ ॥

वराहः। वेद। वीरुधम्। नकुलः। वेद। भेषजीम्।
सर्पाः। गन्धर्वाः। याः। विदुः। ताः। अस्मै। अवसे। हुवे ॥ २३ ॥

याः सुपर्णा आङ्गिरसीर्दिव्या या रघटो विदुः।
वयांसि हंसा या विदुर्याश्च सर्वे पतत्रिणः।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥ २४ ॥

याः। सुऽपर्णाः। आङ्गिरसीः। दिव्याः। याः। रघटः। विदुः।
वयांसि। हंसाः। याः। विदुः। याः। च। सर्वे। पतत्रिणः।
मृगाः। याः। विदुः। ओषधीः। ताः। अस्मै। अवसे। हुवे ॥ २४ ॥

यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्या यावतीनामजावयः।
तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वाभृताः ॥ २५ ॥

---

१ P ओषधीः. We with P̊ J Ce. २ B वेद corrected from वेद. ३ B B̊ वेद. B had originally वेद.

यावतीनाम् । ओषधीनाम् । गावः । प्रऽअश्नन्ति । अघ्न्याः । यावतीनाम् । अजऽअवयः ।
तावतीः । तुभ्यम् । ओषधीः । शर्म । यच्छन्तु । आऽभृताः ॥ २५ ॥

**यावतीषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।**
**तावतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ॥ २६ ॥**

यावतीषु । मनुष्याः । भेषजम् । भिषजः । विदुः ।
तावतीः । विश्वऽभेषजीः । आ । भरामि । त्वाम् । अभि ॥ २६ ॥

**पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत ।**
**संमातर इव दुह्हामस्मा अरिष्टतातये ॥ २७ ॥**

पुष्पऽवतीः । प्रसूऽमतीः । फलिनीः । अफलाः । उत ।
संमातरःऽइव । दुह्हाम् । अस्मै । अरिष्टऽतातये ॥ २७ ॥

**उत त्वाहार्षं पञ्चशलादथो दशशलादुत ।**
**अथो यमस्य पड्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिषात् ॥ २८ ॥** (१९)

उत् । त्वा । अहार्षम् । पञ्चऽशलात् । अथो इति । दशऽशलात् । उत ।
अथो इति । यमस्य । पड्वीशात् । विश्वस्मात् । देवऽकिल्बिषात् ॥ २८ ॥ (१९)

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"इन्द्रो मन्यतु" इति सूक्तस्य शत्रुक्षयशत्रुभयनाशनशत्रुजयस्वकीयबलवर्धनकर्मसु विनियोगः । तानि कर्माणि सेनाकर्माणि नाम भवन्ति । तत्र सेनाभिसिद्ध्यर्थं "पृतिरज्जुः"[२] इत्यर्धर्चेन अग्निपातदेशे जीर्णां रज्जुम् अवधाय अश्वत्थ-बधकयोर्नाम पिप्पलकृमिमालकयोः काष्ठयोः "इन्द्रो मन्यतु" इति ऋचा अग्निं मन्थति । धूमं दृष्ट्वा अग्निपदरहितेनार्धर्चेन अनुमन्त्रयते । "अग्निं पराहरय"[२] इत्यादिनार्धर्चेन धूमपदरहितेन अग्निम् अनुमन्त्रयते । तादृशौ सेनाकर्माणि स्युः । तान्येवम् ।

"इन्द्रो मन्यतु" इति सूक्तेन प्रत्यृचम् अश्वत्थसमिध आदधाति । शत्रुक्षयो भवति ॥
तथा अनेन सूक्तेन प्रत्यृचं कृमिमालकसमिध आदधाति ॥
तथा अनेन सूक्तेन प्रत्यृचम् एरण्डसमिध आदधाति ॥
तथा अनेन सूक्तेन प्रत्यृचं पलाशसमिध आदधाति । तिणिसमिध इति केशवः ॥
तथा अनेन सूक्तेन प्रत्यृचं खदिरसमिध आदधाति ॥
तथा अनेन सूक्तेन प्रत्यृचं शरसमिध आदधाति ॥ शत्रुभयं न भवति । कर्मविकल्पः ॥ सपत्नक्षयणी समाप्ता ॥
तथा अभ्यातानान्तं कृत्वा अनेन सूक्तेन भाङ्गपाशान् संपात्याभिमन्त्र्य सेनाक्रमेषु वपन्ति । सर्वत्र क्रुद्धेनाभिमन्त्रणं पाशादिषु । तत उत्तरतन्त्रम् ॥

---

१ D R संमातर°. Cp सम् । मातर:° originally. २ So we with A B $\bar{B}$ D K $\bar{K}$ R S $\bar{S}$ Cs and J. Cp पड्वी°. V पड्वि°. Dc पड्वीं°. P $\bar{P}$ पड्विंशात् ।.

तथा तन्त्रं कृत्वा अनेन सूक्तेन मौञ्जान् पाशान् संपात्याभिमन्त्र्य सेनाक्रमेषु वपति । तन्त्रं च ॥

तथा अनेन सूक्तेन बाधकदण्डानि आश्वत्थानि कूटानि संपात्याभिमन्त्र्य सेनाक्रमेषु वपति ॥

तथा अनेन सूक्तेन बाधकदण्डानि भाङ्गानि जालानि संपात्याभिमन्त्र्य सेनाक्रमेषु वपति ॥ समाप्तानि जयकर्माणि ॥

उक्तेषु सर्वकर्मसु अङ्गभूतानि वक्ष्यमाणानि त्रीणि कर्माणि भवन्ति । "स्वाहेभ्यः" [२४] इति पदद्वयेन स्वमित्रबलवृद्ध्यर्थम् आज्यं जुहोति दक्षिणहस्तेन बाधककाष्ठप्रज्वालितेऽग्नौ । "दुराहामीभ्यः" [२४] इति पदद्वयेन परबलविनाशार्थं सव्येन हस्तेन इद्धिद्धं जुहोत्युक्ताग्नौ । कर्माग्नेरुत्तरस्मिन् देशे रक्तपिप्पलशाखां भूम्युदरे ऊर्ध्वां कृत्वा नीललोहितवर्णाभ्यां सूत्राभ्यां सर्वां वेष्टयित्वा "नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि" [२४] इत्यनेन दक्षिणा दूरे प्रकर्षेण त्याजयति ॥

सेनाकर्माणि अरण्ये कार्याणि न ग्रामे । युद्धप्रदेशे वा यथाप्रसङ्गम् ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । "इन्द्रो मन्थत्विति पूतिरज्जुमिति पूतिरज्जुम् अवधायाश्वत्थबधकयोरग्निं मन्थति । धूमम् "इति धूमम् अनुमन्त्रयते । अग्निम् इत्यग्निम् । तस्मिन्नरण्ये सपत्नक्षयणीगदधाति अश्वत्थबधकताजद्भङ्गाङ्कखदिरशराणाम् । "उक्ताः पाशाः । आश्वत्थानि कूटानि भाङ्गानि जालानि बाधकदण्डानि । स्वाहेभ्य इति मित्रेभ्यो जुहोति दुराहामीभ्य इति "सव्येनेद्धिद्धम् अमित्रेभ्यो बाधके । उत्तरतोऽग्नेर्लोहिताश्वत्थस्य शाखां निहत्य नीललोहिताभ्यां सूत्राभ्यां परितत्य नीललो- "हितेनामून् इति दक्षिणा प्रहावयति" इति [कौ० २. ७] ॥ ताजद्भङ्ग एरण्डः । कूटं निषादानां प्राणिबन्धनम् ॥ आङ्कः पलाश इति दारिलः । तिर्णिगिति केशवः । वृक्षविशेषपर्यायार्थं आङ्कपदं सूत्रेऽपपाठो न चेत् प्राक्तनेन प्रमादेन भवितव्यम् । परुष इत्येव नाम्ना भवितव्यम् सूक्ते परुषाङ्कपददर्शनात् । परुषाङ्कः परुष इति आङ्का यस्य स इति विग्रहः ॥

**इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।**
**यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥ १ ॥**

इन्द्रः । मन्थतु । मन्थिता । शक्रः । शूरः । पुरम्ऽदरः ।
यथा । हनाम । सेनाः । अमित्राणाम् । सहस्रऽशः ॥ १ ॥

**पूतिरज्जुरुपध्मानी पूतिं सेनां कृणोत्वमूम् ।**
**धूममग्निं परादृश्यामित्रा हृत्स्वा दधतां भयम् ॥ २ ॥**

पूतिऽरज्जुः । उपऽध्मानी । पूतिम् । सेनाम् । कृणोतु । अमूम् ।
धूमम् । अग्निम् । पराऽदृश्य । अमित्राः । हृत्ऽसु । आ । दधताम् । भयम् ॥ २ ॥

**अमूनश्वत्थ निः शृणीहि खादामून् खदिराजिरम् ।**
**ताजद्भङ्ग इव भज्यन्तां हन्वेनान् वधको वधैः ॥ ३ ॥**

---

१ K K मन्थन्तु. We with A B D R Ś V De Cs. २ P मन्थिता ।. We with P J CP. ३ K Ś °त्वमुं. We with A B D K R V De Cs. ४ K ददतां. ५ B has cancelled the visarga which D K K Cs already omit. We with A B R Ś V De. ६ So we with B K K. A B D R Ś V De Cs खदिराजिरं. P P J CP स्वदिरऽअजिरं. See also Rw. ७ So A B D K K R Ś V De Cs P P J CP ताजद्भंगःऽइव. Dârila ताजद्भङ्ग एरण्डः. Kes'ava too gives the same interpretation. Should the padas read ताजत् । भङ्गःऽइव । (=ताजतः । भङ्गःऽइव ।)?

अमून् । अश्वत्थ । निः । शृणीहि । खाद । अमून् । खदिर । अजिरम् ।
ताजद्भङ्गःऽइव । भज्यन्ताम् । हन्तु । एनान् । वधकः । वधैः ॥ ३ ॥

परुषानमून् परुषाह्नः कृणोतु हन्तेनान् वधको वधैः ।
क्षिप्रं शर इव भज्यन्तां बृहज्जालेन संदिताः ॥ ४ ॥

परुषान् । अमून् । परुषऽआह्नः । कृणोतु । हन्तु । एनान् । वधकः । वधैः ।
क्षिप्रम् । शरःऽइव । भज्यन्ताम् । बृहत्ऽजालेन । सम्ऽदिताः ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षं जालमासीज्जालदण्डा दिशो महीः ।
तेनाभिधाय दस्यूनां शक्रः सेनामपावपत् ॥ ५ ॥

अन्तरिक्षम् । जालम् । आसीत् । जालऽदण्डाः । दिशः । महीः ।
तेन । अभिऽधाय । दस्यूनाम् । शक्रः । सेनाम् । अप । अवपत् ॥ ५ ॥

बृहद्धि जालं बृहतः शक्रस्य वाजिनीवतः ।
तेन शत्रूनभि सर्वान् न्युब्ज यथा न मुच्यातै कतमश्चनैषाम् ॥ ६ ॥

बृहत् । हि । जालम् । बृहतः । शक्रस्य । वाजिनीऽवतः ।
तेन । शत्रून् । अभि । सर्वान् । नि । उब्ज । यथा । न । मुच्यातै । कतमः । चन । एषाम् ॥ ६ ॥

बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनामभिधाय सेनया ॥७॥

बृहत् । ते । जालम् । बृहतः । इन्द्र । शूर । सहस्रऽअर्घस्य । शतऽवीर्यस्य ।
तेन । शतम् । सहस्रम् । अयुतम् । निऽअर्बुदम् । जघान । शक्रः । दस्यूनाम् । अभिऽधाय । सेनया ॥ ७ ॥

अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्तमसाभि दधामि सर्वान् ॥ ८ ॥

अयम् । लोकः । जालम् । आसीत् । शक्रस्य । महतः । महान् ।
तेन । अहम् । इन्द्रऽजालेन । अमून् । तमसा । अभि । दधामि । सर्वान् ॥ ८ ॥

---

१ P एनाम् ।. २ $^{m}$K परु°. ३ P अभिऽधायं ।. We with $^{2}$P J Cr. ४ B सर्वान्युं°, corrected from सर्वाञ्युं°. A $^{h}$B D K $^{m}$R $^{m}$S De Cs सर्वान्युं°.

सेदिरुग्रा व्यृद्धिरार्तिश्चानपवाचना।
श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च तैरमूनभि दधामि सर्वान् ॥ ९ ॥

सेदिः। उग्रा। विऽऋद्धिः। आर्तिः। च। अनपऽवाचना।
श्रमः। तन्द्रीः। च। मोहः। च। तैः। अमून्। अभि। दधामि। सर्वान् ॥ ९ ॥

मृत्यवेमून् प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः।
मृत्योर्ये अघला दूतास्तेभ्य एनान् प्रति नयामि बद्ध्वा ॥ १० ॥ (२०)

मृत्यवे। अमून्। प्र। यच्छामि। मृत्युऽपाशैः। अमी इति। सिताः।
मृत्योः। ये। अघलाः। दूताः। तेभ्यः। एनान्। प्रति। नयामि। बद्ध्वा ॥ १० ॥ (२०)

नयतामून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत।
परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेद्वेनान् मत्यं भवस्य ॥ ११ ॥

नयत। अमून्। मृत्युऽदूताः। यमऽदूताः। अप। उम्भत।
परःऽसहस्राः। हन्यन्ताम्। तृणेदु। एनान्। मत्यम्। भवस्य ॥ ११ ॥

साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्य यन्त्योजसा।
रुद्रा एकं वसव एकमादित्यैरेक उद्यतः ॥ १२ ॥

साध्याः। एकम्। जालऽदण्डम्। उत्ऽयत्य। यन्ति। ओजसा।
रुद्राः। एकम्। वसवः। एकम्। आदित्यैः। एकः। उत्ऽयतः ॥ १२ ॥

विश्वे देवा उपरिष्टादुद्यन्तो यन्त्वोजसा।
मध्येन घ्नन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ॥ १३ ॥

विश्वे। देवाः। उपरिष्टात्। उद्यन्तः। यन्तु। ओजसा।
मध्येन। घ्नन्तः। यन्तु। सेनाम्। अङ्गिरसः। महीम् ॥ १३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः।
द्विपाच्चतुष्पादिणामि यथा सेनाममूं हनन् ॥ १४ ॥

वनस्पतीन्। वानस्पत्यान्। ओषधीः। उत। वीरुधः।

१ P °ऋद्धि। We with P J Cr. २ P P J बध्वा। We with Cr. ३ P रुद्रः। We with P J Cr. ४ K यन्त्योजसा. ५ P वीरुधा। We with P J Cr.

द्विऽपात्। चतुंःऽपात्। इष्णामि। यथा। सेनाम्। अमूम्। हनंन् ॥ १४ ॥

गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन्।
दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनंन् ॥ १५ ॥

गन्धर्वऽअप्सरसः। सर्पान्। देवान्। पुण्यऽजनान्। पितॄन्।
दृष्टान्। अदृष्टान्। इष्णामि। यथा। सेनाम्। अमूम्। हनंन् ॥ १५ ॥

इम उन्ना मृत्युपाशा यानाक्रम्य न मुच्यसे।
अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूटं सहस्रशः ॥ १६ ॥

इमे। उन्नाः। मृत्युऽपाशाः। यान्। आऽक्रम्य। न। मुच्यसे।
अमुष्याः। हन्तु। सेनायाः। इदम्। कूटम्। सहस्रऽशः ॥ १६ ॥

घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्रहः।
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्वं सेनाममूं हतम् ॥ १७ ॥

घर्मः। सम्ऽइद्धः। अग्निना। अयम्। होमः। सहस्रऽहः।
भवः। च। पृश्निऽबाहुः। च। शर्वं। सेनाम्। अमूम्। हतम् ॥ १७ ॥

मृत्योरोषमा पद्यन्तां क्षुधं सेदिं वधं भयम्।
इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्यां शर्वं सेनाममूं हतम् ॥ १८ ॥

मृत्योः। ओषम्। आ। पद्यन्ताम्। क्षुधम्। सेदिम्। वधम्। भयम्।
इन्द्रः। च। अक्षुऽजालाभ्याम्। शर्वं। सेनाम्। अमूम्। हतम् ॥ १८ ॥

पराजिताः प्र त्रसतामित्रा नुत्ता धावत ब्रह्मणा।
बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥

पराऽजिताः। प्र। त्रसत। अमित्राः। नुत्ताः। धावत। ब्रह्मणा।
बृहस्पतिऽप्रनुत्तानाम्। मा। अमीषाम्। मोचि। कः। चन ॥ १९ ॥

अव पद्यन्तामेषामायुधानि मा शकन् प्रतिधामिषुम्।

१ P अमून्। We with P² J Cp. २ P आऽक्रमस्य। We with P² J Cp. ३ A B D K K^m R S^m V De Cs P P² J Cp all read भवश्च. ४ A R सर्वं. P P² J सर्वं। ५ So we with A B B^h D K K^m R S^m V De Cs. P P² J Cp आषम्। ६ R De पद्यतां. ७ A शर्वं changed to सर्वं. B^h Cs सर्वं. P P² J सर्वं। ८ R S^m बृहस्पतिः. ९ P P² J Cp नुत्ता।

अथैषां बहु बिभ्यतामिषवो घ्नन्तु मर्मणि ॥ २० ॥

अर्व। पद्यन्ताम्। एषाम्। आयुधानि। मा। शकन्। प्रतिऽधाम्। इषुम्।
अथ। एषाम्। बहु। बिभ्यताम्। इषवः। घ्नन्तु। मर्मणि ॥ २० ॥

सं क्रोशतामेनान् द्यावापृथिवी समन्तरिक्षं सह देवताभिः।
मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ॥ २१ ॥

सम्। क्रोशताम्। एनान्। द्यावापृथिवी इति। सम्। अन्तरिक्षम्। सह। देवताभिः।
मा। ज्ञातारम्। मा। प्रतिऽस्थाम्। विदन्त। मिथः। विऽघ्नानाः। उप। यन्तु। मृत्युम् ॥ २१ ॥

दिशश्चतस्रोश्वतर्यो[1] देवरथस्य पुरोडाशाः[2] शफा अन्तरिक्षमुद्धिः।
द्यावापृथिवी[3] पक्षसी ऋतवोभीशवोन्तर्देशाः किंकरा[4] वाक् परिरथ्यम् ॥ २२ ॥

दिशः। चतस्रः। अश्वतर्यः। देवऽरथस्य। पुरोडाशाः। शफाः। अन्तरिक्षम्। उद्धिः।
द्यावापृथिवी इति। पक्षसी इति। ऋतवः। अभीशवः। अन्तःऽदेशाः। किम्ऽकराः।
वाक्। परिऽरथ्यम् ॥ २२ ॥

संवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्थो विराडीषाग्नी रथमुखम्।
इन्द्रः सव्यष्ठाश्चन्द्रमाः सारथिः ॥ २३ ॥

सम्ऽवत्सरः। रथः। परिऽवत्सरः। रथऽउपस्थः। विऽराट्। ईषा। अग्निः। रथऽमुखम्।
इन्द्रः। सव्यऽस्थाः। चन्द्रमाः। सारथिः ॥ २३ ॥

इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा।
इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहेभ्यो दुराहामीभ्यः।
नीललोहितेनामूनभ्यवतनोमि ॥ २४ ॥ (२१)

इतः। जय। इतः। वि। जय। सम्। जय। जय। स्वाहा।

---

१ A B D R Cs चतस्रो अश्वतर्यो. We with K K[m] S[m] V De. २ B पुरोडाशा शफा. ३ D S[m] V °पृथिवी. We with A B[h] K K[m] R De Cs. ४ P शफः।. ५ P[2] अभीशवः।. We with P J Cp. ६ P किम्ऽकरः।. We with P[2] J Cp.

इमे । जयन्तु । परा । अमी इति । जयन्ताम् । स्वाहा । एभ्यः । दुराहा । अमीभ्यः ।
नीलऽलोहितेन । अमून् । अभिऽअवतनोमि ॥ २४ ॥ (२१)

चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति चतुर्थोनुवाकः ॥

कुतस्त्याविति सूक्ते विराडादिविषयः संवादो विचारश्च ॥
"कुतस्त्यौ" "विराड् वै" इति सूक्ताभ्यां जपं करोति स्वर्गकाम इति विनियोगमाला ॥

**कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।**
**वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ १ ॥**

कुतः । तौ । जातौ । कतमः । सः । अर्धः । कस्मात् । लोकात् । कतमस्याः । पृथिव्याः ।
वत्सौ । विऽराजः । सलिलात् । उत् । ऐताम् । तौ । त्वा । पृच्छामि । कतरेण । दुग्धा ॥ १ ॥

**यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।**
**वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ॥ २ ॥**

यः । अक्रन्दयत् । सलिलम् । महिऽत्वा । योनिम् । कृत्वा । त्रिऽभुजम् । शयानः ।
वत्सः । कामऽदुघः । विऽराजः । सः । गुहा । चक्रे । तन्वः । पराचैः ॥ २ ॥

**यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् ।**
**ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं युज्यते यस्मिन्नेकम् ॥ ३ ॥**

यानि । त्रीणि । बृहन्ति । येषाम् । चतुर्थम् । विऽयुनक्ति । वाचम् ।
ब्रह्मा । एनत् । विद्यात् । तपसा । विपःऽचित् । यस्मिन् । एकम् । युज्यते । यस्मिन् ।
एकम् ॥ ३ ॥

**बृहतः परि सामानि षष्ठात् पञ्चाधि निर्मिता ।**
**बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतोधि बृहती मिता ॥ ४ ॥**

बृहतः । परि । सामानि । षष्ठात् । पञ्च । अधि । निःऽमिता ।
बृहत् । बृहत्याः । निःऽमितम् । कुतः । अधि । बृहती । मिता ॥ ४ ॥

**बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।**

१ P एभ्यः ।. We with P J Cr. २ B D K S Cs कस्माल्लो°. ३ P विराजः ।. We with P J Cr. ४ P विद्यात् ।. We with P J Cr.

माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥ ५ ॥

बृहती । परि । मात्रायाः । मातुः । मात्रा । अधि । निःऽमिता ।
माया । ह । जज्ञे । मायायाः । मायायाः । मातली । परि ॥ ५ ॥

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि षष्ठमहः ॥ ६ ॥

वैश्वानरस्य । प्रतिऽमा । उपरि । द्यौः । यावत् । रोदसी इति । विऽबबाधे । अग्निः ।
ततः । षष्ठात् । आ । अमुतः । यन्ति । स्तोमाः । उत् । इतः । यन्ति । अभि । षष्ठम् ।
अहः ॥ ६ ॥

षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च ।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः ॥ ७ ॥

षट् । त्वा । पृच्छाम । ऋषयः । कश्यप । इमे । त्वम् । हि । युक्तम् । युयुक्षे । योग्यम् । च ।
विऽराजम् । आहुः । ब्रह्मणः । पितरम् । ताम् । नः । वि । धेहि । यतिऽधा । सखिऽभ्यः ॥ ७ ॥

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।
यस्यां व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराडृषयः परमे व्योमन् ॥ ८ ॥

याम् । प्रऽच्युताम् । अनु । यज्ञाः । प्रऽच्यवन्ते । उपऽतिष्ठन्ते । उपऽतिष्ठमानाम् ।
यस्याः । व्रते । प्रऽसवे । यक्षम् । एजति । सा । विऽराट् । ऋषयः । परमे । विऽओमन् ॥ ८ ॥

अप्राणेति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।
विश्वं भृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम् ॥ ९ ॥

अप्राणा । एति । प्राणेन । प्राणतीनाम् । विऽराट् । स्वऽराजम् । अभि । एति । पश्चात् ।
विश्वम् । भृशन्तीम् । अभिऽरूपाम् । विऽराजम् । पश्यन्ति । त्वे इति । न । त्वे इति ।
पश्यन्ति । एनाम् ॥ ९ ॥

को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून् क उ कल्पमस्याः ।

---

१ P P̃ J C मायाः । २ F B K पड्वा. K̃ D पड्त्वा. ३ S प्रच्यवन्ते उ°. ४ B पक्ष°.
५ P P̃ ऋषयः । We with J C ६ B D S C विराट्त्स्वरा°. R D विराड् स्वराज°.
We with A K K̃ V.

क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः ॥ १० ॥ (२२)

कः । विऽराजः । मिथुनऽत्वम् । प्र । वेद । कः । ऋतून् । कः । ऊं इति । कल्पम् । अस्याः । क्रमान् । कः । अस्याः । कतिऽधा । विऽदुग्धान् । कः । अस्याः । धाम । कतिऽधा । विऽउष्टीः ॥ १० ॥ (२२)

इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।
महान्तो अस्यां महिमानो अन्तर्वधूर्जिगाय नवगज्जनित्री ॥ ११ ॥

इयम् । एव । सा । या । प्रथमा । विऽऔच्छत् । आसु । इतरासु । चरति । प्रऽविष्टा । महान्तः । अस्याम् । महिमानः । अन्तः । वधूः । जिगाय । नवऽगत् । जनित्री ॥ ११ ॥

छन्दःपक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते ।
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतुमती अजरे भूरिरेतसा ॥ १२ ॥

छन्दःपक्षे इति छन्दःऽपक्षे । उषसा । पेपिशाने इति । समानम् । योनिम् । अनु । सम् । चरेते इति । सूर्यपत्नी इति सूर्यऽपत्नी । सम् । चरतः । प्रजानती इति प्रऽजानती । केतुमती इति केतुऽमती । अजरे इति । भूरिऽरेतसा ॥ १२ ॥

ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्त्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ १३ ॥

ऋतस्य । पन्थाम् । अनु । तिस्रः । आ । अगुः । त्रयः । घर्माः । अनु । रेतः । आ । अगुः । प्रऽजाम् । एका । जिन्वति । ऊर्जम् । एका । राष्ट्रम् । एका । रक्षति । देवऽयूनाम् ॥ १३ ॥

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदुक्थीं यजमानाय स्वराभरन्तीम् ॥१४॥

अग्नीषोमौ । अदधुः । या । तुरीया । आसीत् । यज्ञस्य । पक्षौ । ऋषयः । कल्पयन्तः ।

---

१ P J विऽदुग्धात् । We with P̊ C P. २ P̊ J घर्मा । We with P C P. ३ P̊ प्रजाम् । We with P J C P. ४ P̊ ऊर्जात् । ५ B °द्यन्यस्य as often for °द्यज्ञस्य. ६ P आसीत् । We with P̊ J C P.

गायत्रीम्। त्रिऽस्तुभम्। जगतीम्। अनुऽस्तुभम्। बृहत्ऽअर्कीम्।'यजमानाय। स्वः। आऽभरन्तीम्॥ १४॥

पञ्च व्युष्टीरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतवोनु पञ्च।
पञ्च दिशः पञ्चदशेन कॢप्तास्ता एकमूर्जीरभि लोकमेकम्॥ १५॥

पञ्च। विऽउष्टीः। अनु। पञ्च। दोहाः। गाम्। पञ्चऽनाम्नीम्। ऋतवः। अनु। पञ्च। पञ्च। दिशः। पञ्चऽदशेन। कॢप्ताः। ताः। एकऽमूर्जीः। अभि। लोकम्। एकम्॥ १५॥

षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति।
षड्योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः॥ १६॥

षट्। जाता। भूता। प्रथमऽजा। ऋतस्य। षट्। ऊं इति। सामानि। षट्ऽअहम्। वहन्ति। षट्ऽयोगम्। सीरम्। अनु। सामऽसाम। षट्। आहुः। द्यावापृथिवीः। षट्। उर्वीः॥ १६॥

षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोतिरिक्तः।
सप्त सुपर्णाः कवयो नि षेदुः सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः॥ १७॥

षट्। आहुः। शीतान्। षट्। ऊं इति। मासः। उष्णान्। ऋतुम्। नः। ब्रूत। यतमः। अतिऽरिक्तः।
सप्त। सुऽपर्णाः। कवयः। नि। सेदुः। सप्त। छन्दांसि। अनु। सप्त। दीक्षाः॥ १७॥

सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः सप्तगृधा इति शुश्रुमा वयम्॥ १८॥

सप्त। होमाः। सम्ऽइधः। ह। सप्त। मधूनि। सप्त। ऋतवः। ह। सप्त।
सप्त। आज्यानि। परि। भूतम्। आयन्। ताः। सप्तऽगृधाः। इति। शुश्रुम। वयम्॥ १८॥

सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराण्यन्यो अन्यस्मिन्नध्यार्पितानि।
कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमार्पितानि॥ १९॥

---

१ K $\overset{m}{K}$ V दशः. २ B $\overset{h}{B}$ D °जरतस्य. ३ B $\overset{h}{B}$ R $\overset{m}{S}$ C सामानि. ४ P J षट्। अहम्। P $\overset{2}{P}$ षट्। अहम् (=षट् ऽअहम्). Cp षट्। अहम्। changed from षट्ऽअहम्। ५ B D$^c$ has corrected °तुं नो to °तं नो. K $\overset{m}{K}$ V °तं नो. We with A $\overset{h}{B}$ D R $\overset{m}{S}$ C. ६ P $\overset{2}{P}$ J आयम्। We with Cp.

सप्त । छन्दांसि[1] । चतुःऽउत्तराणि । अन्यः । अन्यस्मिन् । अधि । आर्पितानि ।
कथम् । स्तोमाः । प्रति । तिष्ठन्ति । तेषु । तानि । स्तोमेषु । कथम् । आर्पितानि ॥ १९ ॥

कथं गायत्री त्रिवृतं व्याप कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ।
त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमेकविंशः ॥ २० ॥ (२३)

कथम् । गायत्री । त्रिऽवृतम् । वि । आप । कथम् । त्रिऽस्तुप् । पञ्चऽदशेन । कल्पते ।
त्रयःऽत्रिंशेन । जगती । कथम् । अनुऽस्तुप् । कथम् । एकऽविंशः ॥ २० ॥ (२३)

अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्त्विजो दैव्या ये ।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥ २१ ॥

अष्ट । जाता । भूता । प्रथमऽजा । ऋतस्य । अष्ट । इन्द्र । ऋत्विजः । दैव्याः । ये ।
अष्टऽयोनिः । अदितिः । अष्टऽपुत्रा । अष्टमीम् । रात्रिम् । अभि । हव्यम् । एति ॥ २१ ॥

इत्थं श्रेयो मन्यमानेदमागमं युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा ।
समानजन्मा ऋतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रजानन् ॥ २२ ॥

इत्थम् । श्रेयः । मन्यमाना । इदम् । आ । अगमम् । युष्माकम् । सख्ये । अहम् । अस्मि । शेवा ।
समानऽजन्मा । ऋतुः । अस्ति । वः । शिवः । सः । वः । सर्वाः । सम् । चरति । प्रऽजानन् ॥ २२ ॥

अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।
अपो मनुष्या३ नोषधीस्ताँ उ पञ्चानु सेचिरे ॥ २३ ॥

अष्ट । इन्द्रस्य । षट् । यमस्य । ऋषीणाम् । सप्त । सप्तऽधा ।
अपः । मनुष्यान् । ओषधीः । तान् । ऊं इति । पञ्च । अनु । सेचिरे ॥ २३ ॥

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥

केवली । इन्द्राय । दुदुहे । हि । गृष्टिः । वशम् । पीयूषम् । प्रथमम् । दुहाना ।
अथ । अतर्पयत् । चतुरः । चतुःऽधा । देवान् । मनुष्यान् । असुरान् । उत । ऋषीन् ॥ २४ ॥

---

१ P P̊ J Cr आऽअर्पितानि ।. २ P̊ अ° ।. We with P J Cr. ३ K गायत्री.

को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः ॥ २५ ॥

कः । नु । गौः । कः । एकऽऋषिः । किम् । ऊं इति । धाम । काः । आऽशिषः ।
यक्षम् । पृथिव्याम् । एकऽवृत् । एकऽऋतुः । कतमः । नु । सः ॥ २५ ॥

एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः ।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते ॥ २६ ॥ (२४)

एकः । गौः । एकः । एकऽऋषिः । एकम् । धाम । एकऽधा । आऽशिषः ।
यक्षम् । पृथिव्याम् । एकऽवृत् । एकऽऋतुः । न । अति । रिच्यते ॥ २६ ॥ (२४)

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"विराड् वै" इति पदपर्यायात्मक सूक्तम् । तस्य विनियोगविचारादि पूर्वसूक्त उक्तम् ॥

विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥ १ ॥

विऽराट् । वै । इदम् । अग्रे । आसीत् । तस्याः । जातायाः । सर्वम् । अबिभेत् । इयम् ।
एव । इदम् । भविष्यति । इति ॥ १ ॥

सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥ २ ॥

सा । उत् । अक्रामत् । सा । गार्हऽपत्ये । नि । अक्रामत् ॥ २ ॥

गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

गृहऽमेधी । गृहऽपतिः । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ३ ॥

सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ॥ ४ ॥

०सा । आऽहवनीये । नि ।०॥ ४ ॥

यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

यन्ति । अस्य । देवाः । देवऽहूतिम् । प्रियः । देवानाम् । भवति ।०॥ ५ ॥

सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥ ६ ॥

०सा । दक्षिणऽअग्नौ । नि ।०॥ ६ ॥

१ So A B $\overset{1}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ R S V D C. See R. २ P गृहंऽमतिः ।.

यज्ञतौ दक्षिणीयो वासंतेयो भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥

यज्ञऽऋतः । दक्षिणीयः । वासंतेयः । भवति ।०॥ ७ ॥

सोदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत् ॥ ८ ॥

०सा । सभायाम् । नि ।०॥ ८ ॥

यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

यन्ति । अस्य । सभाम् । सभ्यः । भवति ।०॥ ९ ॥

सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १० ॥

०सा । सम्ऽइतौ । नि ।०॥ १० ॥

यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

०अस्य । सम्ऽइतिम् । साम्ऽइत्यः । भवति ।०॥ ११ ॥

सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ १२ ॥

०सा । आऽमन्त्रणे । नि । अक्रामत् ॥ १२ ॥

यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥ १३ ॥ (२५)

यन्ति । अस्य । आऽमन्त्रणम् । आऽमन्त्रणीयः । भवति । यः ।०॥ १३ ॥ (२५)

इति पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥ १ ॥

०सा । अन्तरिक्षे । चतुःऽधा । विऽक्रान्ता । अतिष्ठत् ॥ १ ॥

तां देवमनुष्याऽ अब्रुवन्नियमेव तद् वेद् यदुभयं उपजीवेमेमामुप ह्वया-
महा इति ॥ २ ॥

ताम् । देवऽमनुष्याः । अब्रुवन् । इयम् । एव । तत् । वेद् । यत् । उभयं । उपऽजीवेम । इमाम् । उप । ह्वयामहै । इति ॥ २ ॥

तामुपाह्वयन्त ॥ ३ ॥

ताम् । उप । अह्वयन्त ॥ ३ ॥

---

१ P C यज्ञऽऋतः ।. We with P J. २ P वासंतेयाः ।. ३ J सम्ऽइत्यः ।.

ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहीरावत्येहीति ॥ ४ ॥

ऊर्जे। आ। इहि। स्वधे। आ। इहि। सूनृते। आ। इहि। इरावति। आ। इहि। इति ॥ ४ ॥

तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥ ५ ॥

तस्याः। इन्द्रः। वत्सः। आसीत्। गायत्री। अभिऽधानी। अभ्रम्। ऊधः ॥ ५ ॥

बृहच्च रथंतरं च द्यौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्यौ ॥ ६ ॥

बृहत्। च। रथम्ऽतरम्। च। द्यौ। स्तनौ। आस्ताम्। यज्ञायज्ञियम्। च। वामऽदेव्यम्। च। द्यौ ॥ ६ ॥

ओषधीरेव रथंतरेण देवा अदुहन् व्यचो बृहता ॥ ७ ॥

ओषधीः। एव। रथम्ऽतरेण। देवाः। अदुहन्। व्यचः। बृहता ॥ ७ ॥

अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥ ८ ॥

अपः। वामऽदेव्येन। यज्ञम्। यज्ञायज्ञियेन ॥ ८ ॥

ओषधीरेवास्मै रथंतरं दुहे व्यचो बृहत् ॥ ९ ॥

ओषधीः। एव। अस्मै। रथम्ऽतरम्। दुहे। व्यचः। बृहत् ॥ ९ ॥

अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद ॥ १० ॥ (२६)

अपः। वामऽदेव्यम्। यज्ञम्। यज्ञायज्ञियम्। यः। एवं ॥ १० ॥ (२६)

इति पञ्चमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोऽग्रत सा संवत्सरे समभवत् ॥ १ ॥

०सा। वनस्पतीन्। आ। अगच्छत्। ताम्। वनस्पतयः। अग्रत। सा। सम्ऽवत्सरे। सम्। अभवत् ॥ १ ॥

तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्णमपि रोहति वृश्चतेस्याप्रियो भ्रातृव्यो य एवं वेद ॥ २ ॥

---

१ P इरावति। We with P J Cr. २ So A B $^{h}$B D K $^{m}$K R $^{m}$S V De Cs. P $^{2}$P J Cr आसीत्। We have perhaps to understand a यत् (= when) before आसीत्. ३ So A B $^{h}$B D K $^{m}$K R $^{m}$S V De Cs. P $^{2}$J Cr आस्ताम्। P once read आस्ताम्। Here too we have I think to understand a यत् before आस्ताम्।

तस्मात् । वनस्पतीनाम् । सम्ऽवत्सरे । वृक्णम् । अपि । रोहति । वृश्चते । अस्य । अप्रियः । भ्रातृव्यः । यः ।०॥ २ ॥

**सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितरोऽग्नत सा मासि समभवत् ॥ ३ ॥**

०सा । पितॄन् । आ । अगच्छत् । ताम् । पितरः । अग्नत । सा । मासि । सम् ।०॥ ३ ॥

**तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ४ ॥**

तस्मात् । पितृऽभ्यः । मासि । उपऽमास्यम् । ददति । प्र । पितृऽयानम् । पन्थाम् । जानाति । यः ।०॥ ४ ॥

**सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अग्नत सार्धमासे समभवत् ॥ ५ ॥**

०सा । देवान् । आ । अगच्छत् । ताम् । देवाः । अग्नत । सा । अर्धऽमासे । सम् ।०॥ ५ ॥

**तस्माद् देवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ६ ॥**

तस्मात् । देवेभ्यः । अर्धऽमासे । वषट् । कुर्वन्ति । प्र । देवऽयानम् । पन्थाम् । जानाति । यः ।०॥ ६ ॥

**सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या अग्नत सा सद्यः समभवत् ॥ ७ ॥**

सा । मनुष्यान् । आ । अगच्छत् । ताम् । मनुष्याः । अग्नत । सा । सद्यः । सम् । अभवत् ॥७॥

**तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युरुपहरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥** (२७)

तस्मात् । मनुष्येभ्यः । उभयऽद्युः । उपऽहरन्ति । उपऽअस्य । गृहे । हरन्ति । यः ।०॥८॥ (२७)

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

**सोदक्रामत् सासुरानागच्छत् तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥ १ ॥**

०सा । असुरान् । आ । अगच्छत् । ताम् । असुराः । उपऽअह्वयन्त । मायै । आ । इहि । इति ॥१॥

**तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् ॥ २ ॥**

तस्याः । विऽरोचनः । प्राह्लादिः[३] । वत्सः । आसीत् । अयःऽपात्रम् । पात्रम् ॥ २ ॥

---

१ P पथाम् ।. २ So A R B[h] K K[m] R S[m] V De Cs. D is the only MS. which reads आसी°. P P[2] J Cr आसीत् ।. ३ P[2] प्राह्लादि ।.

तां द्विमूर्धात्र्यौधोक् तां मायामेवाधोक् ॥ ३ ॥

ताम्। द्विऽमूर्धा। अर्व्यः। अधोक्। ताम्। मायाम्। एव। अधोक् ॥ ३ ॥

तां मायामसुरा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

ताम्। मायाम्। असुराः। उप। जीवन्ति। उपऽजीवनीयः। भवति। यः। एवं॥ ४ ॥

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥ ५ ॥

०सा। पितॄन्। आ। अगच्छत्। ताम्। पितरः। उप। अह्वयन्त। स्वधे। आ। इहि।०॥ ५ ॥

तस्या यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ॥ ६ ॥

तस्याः। यमः। राजा। वत्सः। आसीत्। रजतऽपात्रम्। पात्रम् ॥ ६ ॥

तामन्तको मार्त्यवोधोक् तां स्वधामेवाधोक् ॥ ७ ॥

ताम्। अन्तकः। मार्त्यवः। अधोक्। ताम्। स्वधाम्। एव। अधोक् ॥ ७ ॥

तां स्वधां पितर उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥

ताम्। स्वधाम्। पितरः। उप। जीवन्ति। उपऽजीवनीयः।०॥ ८ ॥

सोदक्रामत् सा मनुष्याꣳ नागच्छत् तां मनुष्याꣳ उपाह्वयन्तेरावत्येहीति ॥ ९ ॥

०सा। मनुष्यान्। आ। अगच्छत्। ताम्। मनुष्याः। उप। अह्वयन्त। इरावति। आ। इहि।०॥ ९ ॥

तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥ १० ॥

तस्याः। मनुः। वैवस्वतः। वत्सः। आसीत्। पृथिवी। पात्रम् ॥ १० ॥

तां पृथी वैन्योधोक् तां कृषिं च सस्यं चाधोक् ॥ ११ ॥

ताम्। पृथी। वैन्यः। अधोक्। ताम्। कृषिम्। च। सस्यम्। च। अधोक् ॥ ११ ॥

---

१ P अर्व्यः। Cr आर्व्यः। P अर्व्यः। J अर्व्यः। २ So A B $\overset{b}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ R S V De Cs. P $\overset{2}{P}$ J Cr आसीत्। ३ K seems uncertain between मार्त्यवो° and मार्त्यवो°. But I make out मार्त्यवो from his notation. $\overset{m}{K}$ मार्त्यो. $\overset{b}{B}$ C$^{s}$ मार्त्यवो. D V मान्त्यो. $\overset{m}{S}$ मार्न्यवो. We with A B R. $\overset{2}{P}$ मार्त्यवः. We with P J Cr. ४ De Cs R om. इति. ५ So A B D K $\overset{m}{K}$ R $\overset{m}{S}$ V De Cs. P $\overset{2}{P}$ J Cr आसीत्। ६ B $\overset{b}{B}$ K $\overset{m}{K}$ R पृथि. We with A D $\overset{m}{S}$ V De. P $\overset{2}{P}$ J Cr पृथी। ७ $\overset{2}{P}$ Cr वैन्यः। We with P J.

ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या३ उप जीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥

ते। कृषिम्। च। सस्यम्। च। मनुष्याः। उप। जीवन्ति। कृष्टऽराधिः। उपऽजीवनीयः।०॥१२॥

सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ॥ १३ ॥

०सा। सप्तऽऋषीन्। आ। अगच्छत्। ताम्। सप्तऽऋषयः। उप। अह्वयन्त। ब्रह्मण्ऽवति। आ। इहि।०॥ १३ ॥

तस्याः सोमो राजा वत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ॥ १४ ॥

तस्याः। सोमः। राजा। वत्सः। आसीत्। छन्दः। पात्रम् ॥ १४ ॥

तां बृहस्पतिराङ्गिरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तपश्चाधोक् ॥ १५ ॥

ताम्। बृहस्पतिः। आङ्गिरसः। अधोक्। ताम्। ब्रह्म। च। तपः। च। अधोक् ॥ १५ ॥

तद् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उप जीवन्ति ब्रह्मवर्चस्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १६ ॥ (२८)

तत्। ब्रह्म। च। तपः। च। सप्तऽऋषयः। उप। जीवन्ति। ब्रह्मऽवर्चसी। उपऽजीवनीयः।०॥ १६ ॥ (२८)

इति पञ्चमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ज एहीति ॥ १ ॥

०सा। देवान्। आ। अगच्छत्। ताम्। देवाः। उप। अह्वयन्त। ऊर्जे। आ। इहि।०॥ १ ॥

तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ॥ २ ॥

तस्याः। इन्द्रः। वत्सः। आसीत्। चमसः। पात्रम् ॥ २ ॥

तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ॥ ३ ॥

ताम्। देवः। सविता। अधोक्। ताम्। ऊर्जाम्। एव। अधोक् ॥ ३ ॥

---

१ K कृष्टि°. २ So A B D K K^m R S^m V De C^s. B^h आसी°. P P^2 J C^p आसीत्।. ३ A B B^h C^s °वर्चस्युप°. We with D K K^m R S^m V De. ४ So A B B^h D K K^m R S^m V De C^s. P P J C^p आसीत्।. ५ K K^m संविता°.

तामूर्जा देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

ताम्। ऊर्जाम्। देवाः। उप। जीवन्ति। उपऽजीवनीयः। ०॥ ४ ॥

सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ॥ ५ ॥

०सा। गन्धर्वऽअप्सरसः। आ। अगच्छत्। ताम्। गन्धर्वऽअप्सरसः। उप। अह्वयन्त। पुण्यऽगन्धे। आ। इहि ।०॥ ५ ॥

तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ॥ ६ ॥

तस्याः। चित्रऽरथः। सौर्यऽवर्चसः। वत्सः। आसीत्। पुष्करऽपर्णम्। पात्रम् ॥ ६ ॥

तां वसुरुचिः सौर्यवर्चसोधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥ ७ ॥

ताम्। वसुऽरुचिः। सौर्यऽवर्चसः। अधोक्। ताम्। पुण्यम्। एव। गन्धम्। अधोक् ॥ ७ ॥

तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥

तम्। पुण्यम्। गन्धम्। गन्धर्वऽअप्सरसः। उप। जीवन्ति। पुण्यऽगन्धिः। उपऽजीवनीयः ।०॥ ८ ॥

सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह्वयन्त निरोध एहीति ॥ ९ ॥

०सा। इतरऽजनान्। आ। अगच्छत्। ताम्। इतरऽजनाः। उप। अह्वयन्त। निरःऽध्वे। आ। इहि ।०॥ ९ ॥

तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ॥ १० ॥

तस्याः। कुबेरः। वैश्रवणः। वत्सः। आसीत्। आमऽपात्रम्। पात्रम् ॥ १० ॥

तां रजतनाभिः कावेरकोधोक् तां तिरोधामेवाधोक् ॥ ११ ॥

---

१ P ऊर्जम्। We with P J Cp. २ P अह्वयत। We with P J Cp. ३ So A B B D K K R S V De Cs. P P J Cp आसीत्। ४ A R °वर्चसोधो°. We with B D K K S V De Cs. ५ D जीवंति पुण्यगंधि°. ६ P इतरऽजनान्। We with P J Cp. ७ P इतरऽजनाः। We with P J C. ८ So A B B D K K R S V De Cs. P P J आसीत्। Cp आसीत् changed to आसीत्। ९ A D R कावेरकोधो°. We with B K K S V De Cs.

ताम् । रजतऽनाभिः । कावेरकः । अधोक् । ताम् । तिरःऽधाम् । एव । अधोक् ॥ ११ ॥

**तां तिरोधामितरजना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥**

ताम् । तिरःऽधाम् । इतरऽजनाः । उप । जीवन्ति । तिरः । धत्ते । सर्वम् । पाप्मानम् । उपऽजीवनीयः ।०॥ १२ ॥

**सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति ॥ १३ ॥**

सा । उत् । अक्रामत् । सा । सर्पान् । आ । अगच्छत् । ताम् । सर्पाः । उप । अह्वयन्त । विषऽवति । आ । इहि । इति ॥ १३ ॥

**तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥ १४ ॥**

तस्याः । तक्षकः । वैशालेयः । वत्सः । आसीत् । अलाबुऽपात्रम् । पात्रम् ॥ १४ ॥

**तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाधोक् ॥ १५ ॥**

ताम् । धृतऽराष्ट्रः । ऐराऽवतः । अधोक् । ताम् । विषम् । एव । अधोक् ॥ १५ ॥

**तद् विषं सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १६ ॥ (२९)**

तत् । विषम् । सर्पाः । उप । जीवन्ति । उपऽजीवनीयः । भवति । यः ।०॥ १६ ॥ (२९)

इति पञ्चमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

**तद् यस्मा एवं विदुषेलाबुनाभिषिञ्चेत् प्रत्याहन्यात् ॥ १ ॥**

तत् । यस्मै । एवम् । विदुषे । अलाबुना । अभिऽसिञ्चेत् । प्रतिऽआहन्यात् ॥ १ ॥

**न च प्रत्याहन्यान्मनसा त्वा प्रत्याहन्मीति प्रत्याहन्यात् ॥ २ ॥**

न । च । प्रतिऽआहन्यात् । मनसा । त्वा । प्रतिऽआहन्मि । इति । प्रतिऽआहन्यात् ॥ २ ॥

**यत् प्रत्याहन्ति विषमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥ ३ ॥**

यत् । प्रतिऽआहन्ति । विषम् । एव । तत् । प्रतिऽआहन्ति ॥ ३ ॥

**विषमेवास्याप्रियं भ्रातृव्यमनुविषिच्यते य एवं वेद ॥ ४ ॥ (३०)**

---

१ P इतरऽजनाः ।. We with P J Cr. २ So A B B D K K R S V De C-. P P J आसीत् ।. Cr आसीत् । changed to आसीत् ।. ३ A R ऐरावतोधो°. We with B D K K S V De C-. ४ So we with all our authorities. See Rw.

विषम् । एव । अस्य । अप्रियम् । भ्रातृव्यम् । अनुऽविसिच्यते । यः । एवम् । वेद ॥ ४ ॥ (३०)

पञ्चमेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

## पञ्चमोनुवाकः ॥

## इत्यष्टमं काण्डं समाप्तम् ॥

"दिवस्पृथिव्याः" इति चतुर्विंशत्यात्मकम् । तत्र प्रथमासु दशर्चु मधुकशाया गोरूपेण वर्णनम् । द्वितीये दशके वर्चस आशंसनम् अश्विभ्यां सकाशाद् इतरदेवेभ्यश्च । शिष्टास्वृक्षु कशायाः पुनरपि वर्णनम् ॥

सांप्रदायिकास्तु एवं विनियुञ्जन्ति । "दिवस्पृथिव्याः" इत्यर्थसूक्तस्य मेधाजननकर्मणि वर्चस्यकर्मणि च विनियोगः । एतद्विस्तरः "प्रातरग्निम्" इति सूक्ते [३. १६] द्रष्टव्यः ॥

उत्सर्जनकर्मणि "यथा सोमः प्रातःसवने" [९. १. ११-२४] इति सूक्तम् आज्यहोमे विनियुज्यते । तद् उक्तं कौशिकेन । "गिरावरगगटेषु [६. ६९] यथा सोमः प्रातःसवने" इति [कौ० १४. ३] ॥

तथा "दिवस्पृथिव्याः" इति सूक्तं सोमयागे सोमसेवने विनियुज्यते । तद् उक्तं वैतानें । "दिवस्पृथिव्या इति मधुसूक्तेन राजानं संश्रयति" इति [वै० ३. ६] ॥

**दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे ।**
**तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वीः ॥ १ ॥**

दिवः । पृथिव्याः । अन्तरिक्षात् । समुद्रात् । अग्नेः । वातात् । मधुऽकशा । हि । जज्ञे ।
ताम् । चायित्वा । अमृतम् । वसानाम् । हृत्ऽभिः । प्रऽजाः । प्रति । नन्दन्ति । सर्वीः ॥ १ ॥

**महत् पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।**
**यत ऐति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥ २ ॥**

महत् । पयः । विश्वऽरूपम् । अस्याः । समुद्रस्य । त्वा । उत । रेतः । आहुः ।
यतः । आऽएति । मधुऽकशा । रराणा । तत् । प्राणः । तत् । अमृतम् । निऽविष्टम् ॥ २ ॥

**पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्यां पृथङ्नरो बहुधा मीमांसमानाः ।**
**अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ ३ ॥**

पश्यन्ति । अस्याः । चरितम् । पृथिव्याम् । पृथक् । नरः । बहुऽधा । मीमांसमानाः ।
अग्नेः । वातात् । मधुऽकशा । हि । जज्ञे । मरुताम् । उग्रा । नप्तिः ॥ ३ ॥

**मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।**
**हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥**

---

१ P omits the avagraha. We with P J Cr. २ D पृथिव्याः. We with A B K R S V De Cs P P J Cr. ३ A R पृथग्नरो. We with B D K S V De Cs. ४ So we with A B D K R S V De Cs P P J Cr. See Rw.

माता । आदित्यानाम् । दुहिता । वसूनाम् । प्राणः । प्रऽजानाम् । अमृतस्य । नाभिः ।
हिरण्यऽवर्णा । मधुऽकशा । घृताची । महान् । भर्गः । चरति । मर्त्येषु ॥ ४ ॥

**मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।**
**तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवना वि चष्टे ॥ ५ ॥**

मधोः । कशाम् । अजनयन्त । देवाः । तस्याः । गर्भः । अभवत् । विश्वऽरूपः ।
तम् । जातम् । तरुणम् । पिपर्ति । माता । सः । जातः । विश्वा । भुवना । वि । चष्टे ॥ ५ ॥

**कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः ।**
**ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥ ६ ॥**

कः । तम् । प्र । वेद । कः । ऊं इति । तम् । चिकेत । यः । अस्याः । हृदः । कलशः ।
सोमऽधानः । अक्षितः ।
ब्रह्मा । सुऽमेधाः । सः । अस्मिन् । मदेत ॥ ६ ॥

**स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ ।**
**ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥**

सः । तौ । प्र । वेद । सः । ऊं इति । तौ । चिकेत । यौ । अस्याः । स्तनौ । सहस्रऽधारौ । अक्षितौ ।
ऊर्जम् । दुहाते इति । अनपऽस्फुरन्तौ ॥ ७ ॥

**हिङ्करिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम् ।**
**त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ८ ॥**

हिङ्ऽकरिक्रती । बृहती । वयःऽधाः । उच्चैःऽघोषा । अभिऽएति । या । व्रतम् ।
त्रीन् । घर्मान् । अभि । वावशाना । मिमाति । मायुम् । पयते । पयःऽभिः ॥ ८ ॥

**यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्करा वृषभा ये स्वराजः ।**
**ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः ॥ ९ ॥**

याम् । आऽपीनाम् । उपऽसीदन्ति । आपः । शाक्कराः । वृषभाः । ये । स्वऽराजः ।
ते । वर्षन्ति । ते । वर्षयन्ति । तत्ऽविदे । कामम् । ऊर्जम् । आपः ॥ ९ ॥

---

१ DS[m] यावस्यास्त°. We with A B B[k] K[m] R V D[c] C[s]. २ P °स्फरन्तौ ।. We with P[c] J C[p].

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नृम्णिः ॥ १० ॥(१)

स्तनयित्नुः । ते । वाक् । प्रजाऽपते । वृषा । शुष्मम् । क्षिपसि । भूम्याम् । अधि ।
अग्नेः । वातात् । मधुऽकशा । हि । जज्ञे । मरुताम् । उग्रा । नृम्णिः ॥ १० ॥ (१)

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ ११ ॥

यथा । सोमः । प्रातःऽसवने । अश्विनोः । भवति । प्रियः ।
एव । मे । अश्विना । वर्चः । आत्मनि । ध्रियताम् ॥ ११ ॥

यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः ।
एवा म इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १२ ॥

०सोमः । द्वितीये । सवने । इन्द्राग्न्योः । भवति ।०।
०मे । इन्द्राग्नी इति । वर्चः ।०॥ १२ ॥

यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः ।
एवा म ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १३ ॥

यथा । सोमः । तृतीये । सवने । ऋभूणाम् । भवति । प्रियः ।
एव । मे । ऋभवः । वर्चः । आत्मनि । ध्रियताम् ॥ १३ ॥

मधु जनिषीय मधु वंशिषीय ।
पर्यस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १४ ॥

मधु । जनिषीय । मधु । वंशिषीय ।
पर्यस्वान् । अग्ने । आ । अगमम् । तम् । मा । सम् । सृज । वर्चसा ॥ १४ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ १५ ॥

सम् । मा । अग्ने । वर्चसा । सृज । सम् । प्रऽजया । सम् । आयुषा ।

---

१ P यज्ञे ।. We with P J Cr. २ P भवति ।. We with P J Cr. ३ R वांशिषीय.
४ B B$^{m}$ S C$_{s}$ समाग्ने. We with A D K K$^{m}$ R V Dc.

विद्युः । मे । अस्य । देवाः । इन्द्रः । विद्यात् । सह । ऋषिऽभिः ॥ १५ ॥

यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १६ ॥

यथा । मधु । मधुऽकृतः । सम्ऽभरन्ति । मधौ । अधि ।
एव । मे । अश्विना । वर्चः । आत्मनि । ध्रियताम् ॥ १६ ॥

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥ १७ ॥

यथा । मक्षाः । इदम् । मधु । निऽअञ्जन्ति । मधौ । अधि ।
एवं । मे । अश्विना । वर्चः । तेजः । बलम् । ओजः । च । ध्रियताम् ॥ १७ ॥

यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु ।
सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि ॥ १८ ॥

यत् । गिरिषु । पर्वतेषु । गोषु । अश्वेषु । यत् । मधु ।
सुरायाम् । सिच्यमानायाम् । यत् । तत्र । मधु । तत् । मयि ॥ १८ ॥

अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्गं[1] शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ[2] अनु ॥ १९ ॥

अश्विना । सारघेण । मा । मधुना । अङ्गम् । शुभः । पती इति ।
यथा । वर्चस्वतीम् । वाचम् । आऽवदानि । जनान् । अनु ॥ १९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि ।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्जं पिपर्ति ॥ २० ॥

स्तनयित्नुः । ते । वाक् । प्रजाऽपते । वृषा । शुष्मम् । क्षिपसि । भूम्याम् । दिवि ।
ताम् । पशवः । उप । जीवन्ति । सर्वे । तेनो इति । सा । इषम् । ऊर्जम् । पिपर्ति ॥ २० ॥

पृथिवी दण्डोऽन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः[3] ॥ २१ ॥

---

१ The MSS. °ङ्गं, except J which has °कम्. २ A जनँ. We with $\overset{h}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ R $\overset{m}{S}$ V De Cs. ३ D K $\overset{m}{K}$ $\overset{m}{S}$ V दण्डो ऽन्तरिक्षं. We with A $\overset{h}{B}$ R De Cs.

पृथिवी। दण्डः। अन्तरिक्षम्। गर्भः। द्यौः। कशा। विऽद्युत्। प्रऽकशः। हिरण्ययः। बिन्दुः॥ २१॥

**यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति।**
**ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानड्वांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम्॥ २२॥**

यः। वै। कशायाः। सप्त। मधूनि। वेद। मधुऽमान्। भवति।
ब्राह्मणः। च। राजा। च। धेनुः। च। अनड्वान्। च। व्रीहिः। च। यवः। च। मधु। सप्तमम्॥ २२॥

**मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति।**
**मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद॥ २३॥**

मधुऽमान्। भवति। मधुऽमत्। अस्य। आऽहार्यम्। भवति।
मधुऽमतः। लोकान्। जयति। यः। एवम्। वेद॥ २३॥

**यद् वीध्रे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति।**
**तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठेत् प्रजापतेनु मा बुध्यस्वेति।**
**अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद॥ २४॥ (२)**

यत्। वीध्रे। स्तनयति। प्रजाऽपतिः। एव। तत्। प्रऽजाभ्यः। प्रादुः। भवति।
तस्मात्। प्राचीनऽउपवीतः। तिष्ठेत्। प्रजाऽपते। अनु। मा। बुध्यस्व। इति।
अनु। एनम्। प्रऽजाः। अनु। प्रजाऽपतिः। बुध्यते। यः। एवम्। वेद॥ २४॥ (२)

इति प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम्॥

"सपत्नहनम्" इति सूक्तं कामदेवताकम्। काम इच्छारूपो देवः। तं संबोध्य सपत्नक्षयं प्रार्थयते। तद् एवम्। "सपत्नहनम्" इत्यर्थसूक्तेन अभिचारकर्मणि ऋषभं संपातवन्तं कृत्वा द्वेष्याभिमुखं विसृजति। तथा तत्रैव कर्मणि आश्वत्थाः स्वयंपतिताः समिध आदधाति। तथा च सूत्रम्। "सपत्नहनम् इत्यृषभं संपातवन्तम् अभिसृजति। आश्वत्थीरवपन्नाः स्वयम्" इति [कौ० ६. ३]॥

तथा सोमयागे अनूबन्ध्यायाम् अपराजितायां तिष्ठन्त्यां कामदेवतानमस्कारे अस्य सूक्तस्य विनियोगः। तद् उक्तं वैताने। "अनूबन्ध्यायाम् अपराजितायां तिष्ठन्त्यां सपत्नहनम् इति कामं नमस्करोति" इति [वै० ३. १४]

**सपत्नहनमृषभं घृतेन कामं शिक्षामि हविषाज्येन।**
**नीचैः सपत्नान् मम पादय त्वमभिष्टुतो महता वीर्येण॥ १॥**

सपत्नऽहनम्। ऋषभम्। घृतेन। कामम्। शिक्षामि। हविषा। आज्येन।
नीचैः। सऽपत्नान्। मम। पादय। त्वम्। अभिऽस्तुतः। महता। वीर्येण॥ १॥

---

१ So we with A B $\overset{h}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ R $\overset{m}{S}$ V De C.

यन्मे मनसो न प्रियं न चक्षुषो यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति ।
तद् दुष्वप्न्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुवोदहं भिदेयम् ॥ २ ॥

यत् । मे । मनसः । न । प्रियम् । न । चक्षुषः । यत् । मे । बभस्ति । न । अभिऽनन्दति ।
तत् । दुःऽस्वप्न्यम् । प्रति । मुञ्चामि । सऽपत्ने । कामम् । स्तुत्वा । उत् । अहम् । भिदेयम् ॥ २ ॥

दुष्वप्न्यं काम दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम् ।
उग्र ईशानः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात् ॥ ३ ॥

दुःऽस्वप्न्यम् । काम । दुःऽइतम् । च । काम । अप्रजस्ताम् । अस्वगताम् । अवर्तिम् ।
उग्रः । ईशानः । प्रति । मुञ्च । तस्मिन् । यः । अस्मभ्यम् । अंहूरणा । चिकित्सात् ॥ ३ ॥

नुदस्व काम प्र णुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः ।
तेषां नुत्तानामधमा तमांस्यग्ने वास्तूनि निर्दह त्वम् ॥ ४ ॥

नुदस्व । काम । प्र । नुदस्व । काम । अवर्तिम् । यन्तु । मम । ये । सऽपत्नाः ।
तेषाम् । नुत्तानाम् । अधमा । तमांसि । अग्ने । वास्तूनि । निः । दह । त्वम् ॥ ४ ॥

सा ते काम दुहिता धेनुरुच्यते यामाहुर्वाचं कवयो विराजम् ।
तया सपत्नान् परि वृङ्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृणक्तु ॥ ५ ॥

सा । ते । काम । दुहिता । धेनुः । उच्यते । याम् । आहुः । वाचम् । कवयः । विऽराजम् ।
तया । सऽपत्नान् । परि । वृङ्धि । ये । मम । परि । एनान् । प्राणः । पशवः । जीवनम् ।
वृणक्तु ॥ ५

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन ।
अग्नेर्होत्रेण प्र णुदे सपत्नाञ्छम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥ ६ ॥

कामस्य । इन्द्रस्य । वरुणस्य । राज्ञः । विष्णोः । बलेन । सवितुः । सवेन ।
अग्नेः । होत्रेण । प्र । नुदे । सऽपत्नान् । शम्बीऽइव । नावम् । उदकेषु । धीरः ॥ ६ ॥

अध्यक्षो वाजी मम कामं उग्रः कृणोतु मह्यमसपत्नमेव ।

---

१ A B $B^h$ $S^m$ C$^s$ कामावर्ति. We with D K $K^m$ R V D$^c$ P $P^2$ J C$^p$. २ D $S^m$ छिम्बीव. We with A $B^h$ K $K^m$ R V D$^c$ C$^s$ P $P^2$ J C$^p$.

विश्वे देवा मम नाथं भवन्तु सर्वे देवा हवमा यन्तु म इमम् ॥ ७ ॥

अधिऽअक्षः । वाजी । मम । कामः । उग्रः । कृणोतु । महाम् । असपत्नम् । एव ।
विश्वे । देवाः । मम । नाथम् । भवन्तु । सर्वे । देवाः । हवम् । आ । यन्तु । मे । इमम् ॥ ७ ॥

इदमाज्यं घृतवज्जुषाणाः कामज्येष्ठा इह मादयध्वम् ।
कृण्वन्तो महामसपत्नमेव ॥ ८ ॥

इदम् । आज्यम् । घृतऽवत् । जुषाणाः । कामऽज्येष्ठाः । इह । मादयध्वम् ।
कृण्वन्तः । महाम् । असपत्नम् । एव ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी काम सरथं हि भूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादयाथः ।
तेषां पन्नानामधमा तमांस्यग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् ॥ ९ ॥

इन्द्राग्नी इति । काम । सऽरथम् । हि । भूत्वा । नीचैः । सऽपत्नान् । मम । पादयाथः ।
तेषाम् । पन्नानाम् । अधमा । तमांसि । अग्ने । वास्तूनि । अनुऽनिर्दह । त्वम् ॥ ९ ॥

जहि त्वं काम मम ये सपत्ना अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।
निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥१० ॥(३)

जहि । त्वम् । काम । मम । ये । सऽपत्नाः । अन्धा । तमांसि । अव । पादय । एनान् ।
निःऽइन्द्रियाः । अरसाः । सन्तु । सर्वे । मा । ते । जीविषुः । कतमत् । चन । अहः ॥ १० ॥ (३)

अवधीत् कामो मम ये सपत्ना उरुं लोकमकरन्महामेधतुम् ।
महां नमन्ता प्रदिशश्चतस्रो महां षड्वीर्घृतमा वहन्तु ॥ ११ ॥

अवधीत् । कामः । मम । ये । सऽपत्नाः । उरुम् । लोकम् । अकरत् । महाम् । एधतुम् ।
महाम् । नमन्ताम् । प्रऽदिशः । चतस्रः । महाम् । षट् । उर्वीः । घृतम् । आ । वहन्तु ॥ ११ ॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौरिव बन्धनात् ।
न सायकप्रणुत्तानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ १२ ॥

तेऽधराञ्चः । प्र । प्लवन्ताम् । छिन्ना । नौःऽइव । बन्धनात् ।
न । सायकऽप्रनुत्तानाम् । पुनः । अस्ति । निऽवर्तनम् ॥ १२ ॥

---

१ P कृणोति ।. २ P °पत्नान् ।. We with K P² J Cr. ३ P Cr ते ।. We with P² J.
४ A R ते for तेऽ. We with B D K Km Ks V De Cs. ५ P P² बन्धनात् ।. We with J Cr.

अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः ।
यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥ १३ ॥

अग्निः । यवः । इन्द्रः । यवः । सोमः । यवः ।
यवऽयावानः । देवाः । यवयन्तु । एनम् ॥ १३ ॥

असर्ववीरश्चरतु प्रणुत्तो द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वानाम् ।
उत पृथिव्यामव स्यन्ति विद्युत उग्रो वो देवः प्र मृणत् सपत्नान् ॥ १४ ॥

असर्वऽवीरः । चरतु । प्रऽनुत्तः । द्वेष्यः । मित्राणाम् । परिऽवर्ग्यः । स्वानाम् ।
उत । पृथिव्याम् । अव । स्यन्ति । विऽद्युतः । उग्रः । वः । देवः । प्र । मृणत् । सऽप-
त्नान् ॥ १४ ॥

च्युता चेयं बृहत्यच्युता च विद्युद् बिभर्ति स्तनयित्नूंश्च सर्वान् ।
उद्यन्नादित्यो द्रविणेन तेजसा नीचैः सपत्नान् नुदतां मे सहस्वान् ॥ १५ ॥

च्युता । च । इयम् । बृहती । अच्युता । च । विऽद्युत् । बिभर्ति । स्तनयित्नून् । च । सर्वान् ।
उत्ऽयन् । आदित्यः । द्रविणेन । तेजसा । नीचैः । सऽपत्नान् । नुदताम् । मे । सहस्वान् ॥ १५ ॥

यत् ते काम शर्म त्रिवरूथमुरु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम् ।
तेन सपत्नान् परि वृङ्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पशवो जीवनं वृ-
णक्तु ॥ १६ ॥

यत् । ते । काम । शर्म । त्रिऽवरूथम् । उत्ऽउ । ब्रह्म । वर्म । विऽततम् । अनतिऽव्या-
ध्यम् । कृतम् ।
तेन । सऽपत्नान् । परि । वृङ्धि । ये । मम । परि । एनान् । प्राणः । पशवः । जीवनम् ।
वृणक्तु ॥ १६ ॥

येन देवा असुरान् प्राणुदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनाय ।

१ K यवयन्त्वेनम्. We with A B D K R S V De Cs. २ P यावयन्तु । We with P J Cp. ३ B D S Cs परिवर्ग्यः. We with K K V De. ४ K K V °मृणन्. De °मृणंत्स°. We with A B B D R S Cs. ५ P मृणम् । K मृणन् । We with P J Cp. ६ K त्रिवरूथमुदु ब्रह्म. We with A B D K R S V De Cs P P J Cp. ७ P काम changed into काम । We with P J Cp.

तेन त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥ १७ ॥

येन। देवाः। असुरान्। प्रऽअनुदन्त। येन। इन्द्रः। दस्यून्। अधमम्। तमः। निनाय। तेन। त्वम्। काम। मम। ये। सऽपत्नाः। तान्। अस्मात्। लोकात्। प्र। नुदस्व। दूरम् ॥ १७ ॥

यथा देवा असुरान् प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्माल्लोकात् प्र णुदस्व दूरम् ॥ १८ ॥

यथा। देवाः। असुरान्। प्रऽअनुदन्त। यथा। इन्द्रः। दस्यून्। अधमम्। तमः। बबाधे। तथा। त्वम्। काम। मम। ये। सऽपत्नाः। तान्। अस्मात्। लोकात्। प्र। नुदस्व। दूरम् ॥ १८ ॥

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ १९ ॥

कामः। जज्ञे। प्रथमः। न। एनम्। देवाः। आपुः। पितरः। न। मर्त्याः। ततः। त्वम्। असि। ज्यायान्। विश्वहा। महान्। तस्मै। ते। काम। नमः। इत्। कृणोमि ॥ १९ ॥

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यदुर्यावदग्निः। ततस्त्वम० ॥ २० ॥ (४)

यावती इति। द्यावापृथिवी इति। वरिम्णा। यावत्। आपः। सिस्यदुः। यावत्। अग्निः। ०॥ २० ॥ (४)

यावतीर्दिशः प्रदिशो विषूचीर्यावतीराशा अभिचक्षणा दिवः। ततस्त्वम० ॥ २१ ॥

यावतीः। दिशः। प्रऽदिशः। विषूचीः। यावतीः। आशाः। अभिऽचक्षणाः। दिवः। ०॥ २१ ॥

यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवो यावतीर्वधा वृक्षसर्प्यो बभूवुः। ततस्त्वम० ॥ २२ ॥

यावतीः। भृङ्गाः। जत्वः। कुरूरवः। यावतीः। वधाः। वृक्षऽसर्प्यः। बभूवुः। ०॥ २२ ॥

---

१ S[m] बबाधे. २ P सिस्यदुः। ३ A K R °वधा. B[b] °यधा. ४ J जत्वः।

ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समुद्रादसि काम मन्यो ।
ततस्त्वम्० ॥ २३ ॥

ज्यायान् । निऽमिषतः । असि । तिष्ठतः । ज्यायान् । समुद्रात् । असि । काम । मन्यो इति ।०॥ २३ ॥

न वै वातश्चन कामंमाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि ॥ २४॥

न । वै । वातः । चन । कामम् । आप्नोति । न । अग्निः । सूर्यः । न । उत । चन्द्रमाः । ततः । त्वम् । असि । ज्यायान् । विश्वहा । महान् । तस्मै । ते । काम । नमः । इत् । कृणोमि ॥ २४ ॥

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे ।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः ॥ २५ ॥ (५)

याः । ते । शिवाः । तन्वः । काम । भद्राः । याभिः । सत्यम् । भवति । यत् । वृणीषे । ताभिः । त्वम् । अस्मान् । अभिऽसंविशस्व । अन्यत्र । पापीः । अप । वेशय । धियः ॥२५॥(५)

प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

"उपमिताम्" इति सूक्तेन शालामवं ददाति सवयज्ञविधानेन स्वर्गकामः इति विनियोगमाला । सूत्रमपि । "उपमिताम् इति यच्छालया सह दास्यन् भवति तदन्तर्भवत्यपिहितम्" इत्यादि [कौ० ८. ७] ॥

वंशसंदंशादिबद्धां शालां दाता प्रतिग्रहीत्रे उद्धाट्य प्रददाति । शाला नाम गृहम् ॥

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामुत ।
शालाया विश्ववाराया नद्धानि वि चृतामसि ॥ १ ॥

उपऽमिताम् । प्रतिऽमिताम् । अथो इति । परिऽमिताम् । उत ।
शालायाः । विश्वऽवारायाः । नद्धानि । वि । चृतामसि ॥ १ ॥

यत् ते नद्धं विश्ववारे पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः ।
बृहस्पतिरिवाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥ २ ॥

१ A R °मिषतो°. २ A B $\overset{h}{B}$ K नाग्निः. ३ R $\overset{m}{S}$ $\overset{p}{P}$ वृतामसि. We with A $\overset{h}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ V De $C_S$ P J $C_P$. ४ $\overset{p}{P}$ बद्धानि. We with P J $C_P$. ५ B $\overset{h}{B}$ $C_S$ $C_P$ स्रंशयामि. $\overset{m}{K}$ De श्रंसयामि. We with A D K R $\overset{m}{S}$ V P $\overset{p}{P}$ J.

यत्। ते। नद्धम्। विश्वऽवारे। पाशः। ग्रन्थिः। च। यः। कृतः।
बृहस्पतिःऽइव। अहम्। बलम्। वाचा। वि। स्रंसयामि। तत्॥ २॥

आ ययाम सं बबर्ह ग्रन्थींश्चकार ते दृढान्।
परूंषि विद्वांछस्तेवेन्द्रेण वि चृतामसि॥ ३॥

आ। ययाम। सम्। बबर्ह। ग्रन्थीन्। चकार। ते। दृढान्।
परूंषि। विद्वान्। शस्तांऽइव। इन्द्रेण। वि। चृतामसि॥ ३॥

वंशानां ते नर्हनानां प्राणाहस्य तृणस्य च।
पक्षाणां विश्ववारे ते नद्धानि वि चृतामसि॥ ४॥

वंशानाम्। ते। नर्हनानाम्। प्राणाहस्य। तृणस्य। च।
पक्षाणाम्। विश्वऽवारे। ते। नद्धानि। वि। चृतामसि॥ ४॥

संदंशानां पलदानां परिष्वञ्जल्यस्य च।
इदं मानस्य पल्यां नद्धानि वि चृतामसि॥ ५॥

सम्ऽदंशानाम्। पलदानाम्। परिऽस्वञ्जल्यस्य। च।
इदम्। मानस्य। पल्याः। नद्धानि। वि। चृतामसि॥ ५॥

यानि तेन्तः शिक्यान्याबेधू रण्यायि कम्।
प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नी न उद्धिता तन्वे भव॥ ६॥

यानि। ते। अन्तः। शिक्यानि। आऽबेधुः। रण्यायि। कम्।
प्र। ते। तानि। चृतामसि। शिवा। मानस्य। पत्नी। नः। उद्धिता। तन्वे। भव॥ ६॥

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः।
सदो देवानामसि देवि शाले॥ ७॥

हविःऽधानम्। अग्निऽशालम्। पत्नीनाम्। सदनम्। सदः।
सदः। देवानाम्। असि। देवि। शाले॥ ७॥

अक्षुमोपशं विततं सहस्राक्षं विषूवति।

---

१ D S^m विद्वान्छ°. R विद्वांन्छ°. २ A B^h K K^m Cs J °जल्पस्य. D R S^m P P^2 doubtful between ल्प and ल्य. We with V De Cr. ३ A B B^h D K K^m R S^m V De Cs P P^2 J Cr (as corrected) मानस्य पत्नि. We with Cr as originally. ४ P J शिक्यानि। We with P^v Cr. ५ K K^m V De अक्षमोपशं.

अवनद्धमभिहितं ब्रह्मणा वि चृतामसि ॥ ८ ॥

अक्षुम् । ओपशम् । विऽततम् । सहस्रऽअक्षम् । विपुऽवति ।

अवऽनद्धम् । अभिऽहितम् । ब्रह्मणा । वि । चृतामसि ॥ ८ ॥

यस्त्वा शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता त्वम् ।

उभौ मानस्य पत्नि तौ जीवतां जरदष्टी ॥ ९ ॥

यः । त्वा । शाले । प्रतिऽगृह्णाति । येन । च । असि । मिता । त्वम् ।

उभौ । मानस्य । पत्नि । तौ । जीवताम् । जरदष्टी इति जरत्ऽअष्टी ॥ ९ ॥

अमुत्रैनमा गच्छताद् दृढा नद्धा परिष्कृता ।

यस्यास्ते विचृतामस्यङ्गमङ्गं परुष्परुः ॥ १० ॥ (६)

अमुत्र । एनम् । आ । गच्छतात् । दृढा । नद्धा । परिष्कृता ।

यस्याः । ते । विऽचृतामसि । अङ्गम्ऽअङ्गम् । परुःऽपरुः ॥ १० ॥ (६)

यस्त्वा शाले निमिमाय संजभार वनस्पतीन् ।

प्रजायै चक्रे त्वा शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ११ ॥

यः । त्वा । शाले । निऽमिमाय । सम्ऽजभार । वनस्पतीन् ।

प्रऽजायै । चक्रे । त्वा । शाले । परमेऽस्थी । प्रजाऽपतिः ॥ ११ ॥

नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः ।

नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ॥ १२ ॥

नमः । तस्मै । नमः । दात्रे । शालाऽपतये । च । कृण्मः ।

नमः । अग्नये । प्रऽचरते । पुरुषाय । च । ते । नमः ॥ १२ ॥

गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।

विजावति प्रजावति वि ते पाशांश्चृतामसि ॥ १३ ॥

गोभ्यः । अश्वेभ्यः । नमः । यत् । शालायाम् । विऽजायते ।

विजाऽवति । प्रजाऽवति । वि । ते । पाशान् । चृतामसि ॥ १३ ॥

---

१ A B$^{h}$ B D K K$^{m}$ R S$^{m}$ V D$^{c}$ C$^{s}$ मानस्यं पत्नि. P P$^{j}$ J C$^{r}$ मानस्य । पत्नि । २ B$^{h}$ K C$^{s}$ अमुत्रैणमा. We with A D K$^{m}$ R S$^{m}$ V D$^{c}$. ३ S$^{m}$ विचृताम°. We with A B$^{h}$ D K K$^{m}$ R V D$^{c}$ C$^{s}$.

अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान् पशुभिः सह।
विजावति प्रजावति वि ते पाशाँश्चृतामसि ॥ १४ ॥

अग्निम्। अन्तः। छादयसि। पुरुषान्। पशुऽभिः। सह।
विजाऽवति। प्रजाऽवति। वि। ते। पाशान्। चृतामसि ॥ १४ ॥

अन्तरा द्यां च पृथिवीं च यद् व्यचस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम्।
यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत् कृण्वेहमुदरं शेवधिभ्यः।
तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै ॥ १५ ॥

अन्तरा। द्याम्। च। पृथिवीम्। च। यत्। व्यचः। तेन। शालाम्। प्रति। गृह्णामि।
ते। इमाम्।
यत्। अन्तरिक्षम्। रजसः। विऽमानम्। तत्। कृण्वे। अहम्। उदरम्। शेवधिऽभ्यः।
तेन। शालाम्। प्रति। गृह्णामि। तस्मै ॥ १५ ॥

ऊर्जस्वती पयस्वती पृथिव्यां निर्मिता मिता।
विश्वान्नं बिभ्रती शाले मा हिंसीः प्रतिगृह्णतः ॥ १६ ॥

ऊर्जस्वती। पयस्वती। पृथिव्याम्। निऽर्मिता। मिता।
विश्वऽअन्नम्। बिभ्रती। शाले। मा। हिंसीः। प्रतिऽगृह्णतः ॥ १६ ॥

तृणैरावृता पलदान् वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती ॥ १७ ॥

तृणैः। आऽवृता। पलदान्। वसाना। रात्री ऽइव। शाला। जगतः। निऽवेशनी।
मिता। पृथिव्याम्। तिष्ठसि। हस्तिनी ऽइव। पत्ऽवती ॥ १७ ॥

इष्टस्य ते वि चृतान्यपिनद्धमपोर्णुवन्।
वरुणेन समुक्षितां मित्रः प्रातर्व्युन्नतु ॥ १८ ॥

इष्टस्य। ते। वि। चृतामि। अपिऽनद्धम्। अप ऽऊर्णुवन्।
वरुणेन। सम्ऽउक्षिताम्। मित्रः। प्रातः। वि। उन्नतु ॥ १८ ॥

---

१ K Km P J परुषा°. Cr पूरुषा°. We with A Bh D R Ś V De Cs Ph. २ P छादयासि. We with Ph J Cr. ३ A B Bh D K Km R Ś V Cs गृह्णामि. Ph J ते. We with De P Cr. ४ A इडस्य. Km De इष्टस्य. We with Bh D K R Ś V Cs P Ph J Cr. ५ K J °मुपोर्णुवन्.

ब्रह्मणा शालां निमितां कविभिर्निमितां मिताम् ।
इन्द्राग्नी रक्षतां शालाममृतौ सोम्यं सदः ॥ १९ ॥

ब्रह्मणा । शालाम् । निऽमिताम् । कविऽभिः । निऽमिताम् । मिताम् ।
इन्द्राग्नी इति । रक्षताम् । शालाम् । अमृतौ । सोम्यम् । सदः ॥ १९ ॥

कुलायेधि कुलायं कोशे कोशः समुज्जितः ।
तत्र मर्तो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते ॥ २० ॥ (७)

कुलाये । अधि । कुलायम् । कोशे । कोशः । सम्ऽउज्जितः ।
तत्र । मर्तः । वि । जायते । यस्मात् । विश्वम् । प्रऽजायते ॥ २० ॥ (७)

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते ।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भं इवा शये ॥ २१ ॥

या । द्विऽपक्षा । चतुःऽपक्षा । षट्ऽपक्षा । या । निऽमीयते ।
अष्टाऽपक्षाम् । दशऽपक्षाम् । शालाम् । मानस्य । पत्नीम् । अग्निः । गर्भःऽइव । आ । शये ॥ २१ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः शाले प्रेम्यहिंसतीम् ।
अग्निर्ह्यन्तरापश्चर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥

प्रतीचीम् । त्वा । प्रतीचीनः । शाले । प्र । एमि । अहिंसतीम् ।
अग्निः । हि । अन्तः । आपः । च । ऋतस्य । प्रथमा । द्वाः ॥ २२ ॥

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः ।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना ॥ २३ ॥

इमाः । आपः । प्र । भरामि । अयक्ष्माः । यक्ष्मऽनाशनीः ।
गृहान् । उप । प्र । सीदामि । अमृतेन । सह । अग्निना ॥ २३ ॥

मा नः पाशं प्रति मुचो गुरुर्भारो लघुर्भव ।
वधूमिव त्वा शाले यत्रकामं भरामसि ॥ २४ ॥

---

१ R °क्षाश्च°. A °क्षाच°. K V Dc °क्षां च. We with B D K S Cs P P J Cr. २ So we with A B B D K K R S V Dc Cs. See Rw. ३ B Cs मुञ्चो. P P मुञ्चः. We with A D K K R S V Dc J Cr. ४ S शाले. We with A B D K K R V Dc Cs.

मा। नः। पाशम्। प्रति। मुचः। गुरुः। भारः। लघुः। भव।
वधूम्ऽइव। त्वा। शाले। यत्रऽकामम्। भरामसि ॥ २४ ॥

**प्राच्या दिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहेभ्यः ॥ २५ ॥**

प्राच्याः। दिशः। शालायाः। नमः। महिम्ने। स्वाहा। देवेभ्यः। स्वाहेभ्यः ॥ २५ ॥

**दक्षिणाया दिशः० ॥ २६ ॥**

दक्षिणायाः। दिशः।०॥ २६ ॥

**प्रतीच्या दिशः० ॥ २७ ॥**

प्रतीच्याः। दिशः।०॥ २७ ॥

**उदीच्या दिशः० ॥ २८ ॥**

उदीच्याः। दिशः।०॥ २८ ॥

**ध्रुवाया दिशः० ॥ २९ ॥**

ध्रुवायाः। दिशः।०॥ २९ ॥

**ऊर्ध्वाया दिशः० ॥ ३० ॥**

ऊर्ध्वायाः। दिशः। शालायाः।०॥ ३० ॥

**दिशोदिशः शालाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहेभ्यः ॥ ३१ ॥ (८)**

दिशःऽदिशः। शालायाः। नमः। महिम्ने। स्वाहा। देवेभ्यः। स्वाहेभ्यः ॥ ३१ ॥ (८)

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

ब्राह्मणो वृषभं हत्वा तन्मांसं भिन्नभिन्नदेवताभ्यो जुहोति। तत्र वृषभस्य प्रशंसा तदङ्गानां च कतमानि कतमदेवेभ्यः प्रियाणि भवन्ति तद्विवेचनम्। वृषभबलिहवनस्य महत्त्वं च वर्ण्यते। तदुत्पन्नं श्रेयश्च स्तूयते। सांप्रदायिकास्तु एवं विनियुञ्जन्ति सूक्तम्। तद्यथा। वृषोत्सर्गे "साहस्रः" इत्यर्धसूक्तेन ऋषभं संपात्य अभिमन्त्र्य विसृजेत्॥ "रेतोधायै" इत्येतैः षड्भिः सौत्रमन्त्रैः "एतं वो युवानम्" [९. ४. २४] इत्यृचा च वत्सस्याभिमन्त्रणं कृत्वा प्रोक्षणं कुर्यात्॥

तथा अनेन सूक्तेन पुष्टिकामो वशाविधानेन [कौ० ५. ८] ऋषभेण इन्द्रं यजते॥

तथा अनेन सूक्तेन संपत्कामः पौर्णमास्यां वशाविधानेन श्वेतेन ऋषभेण इन्द्रं यजते॥

तदुक्तं कौशिकेन। "इन्द्रस्य कुक्षिः [७. ११६] साहस्रः [९. ४] इत्यृषभं संपातवन्तम् अतिसृजति। रेतोधायै "त्वातिसृजामि वयोधायै त्वातिसृजामि यूथत्वायै त्वातिसृजामि गणत्वायै त्वातिसृजामि सहस्रपोषायै त्वातिसृजाम्यपरिमितपो-"षाय त्वातिसृजामि। एतं वो युवानम् इति पुराणं प्रचृत्य नवम् उत्सृजति संप्रोक्षति। उत्तरेण पुष्टिकाम ऋषभेणेन्द्रं यजते। "संपत्कामः श्वेतेन पौर्णमास्याम्" इति [कौ० ३. ७]॥

तथा ऋषभसवे अनेन सूक्तेन निरुप्तहविरभिमर्शनं संपातं [१]हुत्वाचनं दानं च कुर्यात्। तद् आह कौशिकः। "साहस्र इत्यृषभम्" इति [कौ० ८. ७]॥ अभिमर्शनादिषु सूत्रे तु "आशानाम्" [१. ३१] इति सूक्त उदाहृतम्॥

परिशिष्टेपि वृषोत्सर्गे अस्य सूक्तस्य विनियोगः कृतः। तथा चोक्तम्। "साहस्रमन्वेष इति ऋषभं संपातवन्तं कृत्वा" इति [प० १७]॥

**साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत्।**
**भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उक्षितस्तनूमातान् ॥ १ ॥**

१ B स्वाहेभ्यः.

साहस्रः । त्वेषः । ऋषभः । पयस्वान् । विश्वा । रूपाणि । वक्षणासु । बिभ्रत् ।
भद्रम् । दात्रे । यजमानाय । शिक्षन् । बार्हस्पत्यः । उस्रियः । तन्तुम् । आ । अतान् ॥ १ ॥

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥ २ ॥

अपाम् । यः । अग्रे । प्रतिऽमा । बभूव । प्रऽभूः । सर्वस्मै । पृथिवीऽइव । देवी ।
पिता । वत्सानाम् । पतिः । अघ्न्यानाम् । साहस्रे । पोषे । अपि । नः । कृणोतु ॥ २ ॥

पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

पुमान् । अन्तःऽवान् । स्थविरः । पयस्वान् । वसोः । कबन्धम् । ऋषभः । बिभर्ति ।
तम् । इन्द्राय । पथिऽभिः । देवऽयानैः । हुतम् । अग्निः । वहतु । जातऽवेदाः ॥ ३ ॥

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद् वस्य रेतः ॥ ४ ॥

पिता । वत्सानाम् । पतिः । अघ्न्यानाम् । अथो इति । पिता । महताम् । गर्गराणाम् ।
वत्सः । जरायु । प्रतिऽधुक् । पीयूषः । आमिक्षा । घृतम् । तत् । ऊं इति । अस्य । रेतः ॥ ४ ॥

देवानां भाग उपनाह एषोऽपां रस ओषधीनां घृतस्य ।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद् यच्छरीरम् ॥ ५ ॥

देवानाम् । भागः । उपऽनाहः । एषः । अपाम् । रसः । ओषधीनाम् । घृतस्य ।
सोमस्य । भक्षम् । अवृणीत । शक्रः । बृहन् । अद्रिः । अभवत् । यत् । शरीरम् ॥ ५ ॥

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम् ।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्वऽइह या इमा न्यस्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥ ६ ॥

सोमेन । पूर्णम् । कलशम् । बिभर्षि । त्वष्टा । रूपाणाम् । जनिता । पशूनाम् ।
शिवाः । ते । सन्तु । प्रऽजन्वः । इह । याः । इमाः । नि । अस्मभ्यम् । स्वऽधिते । यच्छ ।
याः । अमूः ॥ ६ ॥

---

१ P सहस्रः ।. We with P J Cr. २ K °घ्न्यानां. ३ P पोषे ।. ४ P कबंधम् ।. ५ P तत् ।. ६ B B R S Cs Cr जरायुः. We with A D K K V De P P J. ७ P J बृहन् ।. We with P Cr. ८ B B De Cs °न्य३. We with D K K S V. ९ J प्रऽजन्वः ।. We with P P Cr.

आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव एतु दत्तः ॥ ७ ॥

आज्यम्। बिभर्ति। घृतम्। अस्य। रेतः। साहस्रः। पोषः। तम्। ऊं इति। यज्ञम्। आहुः।
इन्द्रस्य। रूपम्। ऋषभः। वसानः। सः। अस्मान्। देवाः। शिवः। आ। एतु। दत्तः ॥ ७ ॥

इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत्।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य। ओजः। वरुणस्य। बाहू इति। अश्विनोः। अंसौ। मरुताम्। इयम्। ककुत्।
बृहस्पतिम्। सम्ऽभृतम्। एतम्। आहुः। ये। धीरासः। कवयः। ये। मनीषिणः ॥ ८ ॥

दैवीर्विशः पर्यस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ ९ ॥

दैवीः। विशः। पर्यस्वान्। आ। तनोषि। त्वाम्। इन्द्रम्। त्वाम्। सरस्वन्तम्। आहुः।
सहस्रम्। सः। एकऽमुखाः। ददाति। यः। ब्राह्मणे। ऋषभम्। आऽजुहोति ॥ ९ ॥

बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥१०॥ (९)

बृहस्पतिः। सविता। ते। वयः। दधौ। त्वष्टुः। वायोः। परि। आत्मा। ते। आऽभृतः।
अन्तरिक्षे। मनसा। त्वा। जुहोमि। बर्हिः। ते। द्यावापृथिवी इति। उभे इति। स्ताम् ॥१०॥(९)

य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत्।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥ ११ ॥

यः। इन्द्रःऽइव। देवेषु। गोषु। एति। विऽवावदत्।
तस्य। ऋषभस्य। अङ्गानि। ब्रह्मा। सम्। स्तौतु। भद्रया ॥ ११ ॥

पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥ १२ ॥

पार्श्वे इति। आस्ताम्। अनुऽमत्याः। भगस्य। आस्ताम्। अनुऽवृजौ।
अष्ठीवन्तौ। अब्रवीत्। मित्रः। मम। एतौ। केवलौ। इति ॥ १२ ॥

---

[a] P सम्ऽवृतम्। We with P J Ce. [२] K एकमेव्या. [३] K न. [४] B K K V De °मनुवृजौ. We with A D R S C.

भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ १३ ॥

भसत् । आसीत् । आदित्यानाम् । श्रोणी इति । आस्ताम् । बृहस्पतेः ।
पुच्छम् । वातस्य । देवस्य । तेन । धूनोति । ओषधीः ॥ १३ ॥

गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ १४ ॥

गुदाः । आसन् । सिनीवाल्याः । सूर्यायाः । त्वचम् । अब्रुवन् ।
उत्थातुः । अब्रुवन् । पदः । ऋषभम् । यत् । अकल्पयन् ॥ १४ ॥

क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्वे ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥

क्रोडः । आसीत् । जामिऽशंसस्य । सोमस्य । कलशः । धृतः ।
देवाः । सम्ऽगत्य । यत् । सर्वे । ऋषभम् । विऽअकल्पयन् ॥ १५ ॥

ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान् ।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्वावर्तेभ्यो अधारयन् ॥ १६ ॥

ते । कुष्ठिकाः । सरमायै । कूर्मेभ्यः । अदधुः । शफान् ।
ऊबध्यम् । अस्य । कीटेभ्यः । श्वाऽवर्तेभ्यः । अधारयन् ॥ १६ ॥

शृङ्गाभ्यां रक्षः ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा ।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥ १७ ॥

शृङ्गाभ्याम् । रक्षः । ऋषति । अवर्तिम् । हन्ति । चक्षुषा ।
शृणोति । भद्रम् । कर्णाभ्याम् । गवाम् । यः । पतिः । अघ्न्यः ॥ १७ ॥

शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः ।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ १८ ॥

१ B K K$^{m}$ D S$^{m}$ R De देवाः. B$^{h}$ Cs देवास्सं°. २ A B B$^{h}$ D K$^{m}$ Cs व्यकल्पयन्. K यदक-ल्पयन्. We with R S$^{m}$ V De P P$^{2}$ J Cp. ३ A B B$^{h}$ D Cs P J कुष्ठिकाः. We with K K$^{m}$ R S$^{m}$ V De P$^{2}$ Cp. ४ K$^{m}$ ऊबध्य°. ५ A B D K K$^{m}$ R V De Cs P P$^{2}$ J शवर्तेभ्यो. We with S$^{m}$ as corrected and Cp. ६ A B B$^{h}$ R Cs P J Cp °रघ्न्यः. We with D K K$^{m}$ S$^{m}$ V De P$^{2}$.

शतऽयाजम्। सः। यजते। न। एनम्। दुन्वन्ति। अग्नयः।
जिन्वन्ति। विश्वे। तम्। देवाः। यः। ब्राह्मणे। ऋषभम्। आऽजुहोति ॥ १८ ॥

ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः।
पुष्टिं सो अद्य्यानां स्वे गोष्ठेव पश्यते ॥ १९ ॥

ब्राह्मणेभ्यः। ऋषभम्। दत्त्वा। वरीयः। कृणुते। मनः।
पुष्टिम्। सः। अद्य्यानाम्। स्वे। गोऽस्थे। इव। पश्यते ॥ १९ ॥

गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम्।
तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥ २० ॥

गावः। सन्तु। प्रऽजाः। सन्तु। अथो इति। अस्तु। तनूऽबलम्।
तत्। सर्वम्। अनु। मन्यन्ताम्। देवाः। ऋषभऽदायिने ॥ २० ॥

अयं पिपान इन्द्र इद् रयिं दधातु चेतनीम्।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ २१ ॥

अयम्। पिपानः। इन्द्रः। इत्। रयिम्। दधातु। चेतनीम्।
अयम्। धेनुम्। सुऽदुघाम्। नित्यऽवत्साम्। वशम्। दुहाम्। विपःऽचितम्। परः।
दिवः ॥ २१ ॥

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन्।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ २२ ॥

पिशङ्गऽरूपः। नभसः। वयःऽधाः। ऐन्द्रः। शुष्मः। विश्वऽरूपः। नः। आ। अगन्।
आयुः। अस्मभ्यम्। दधत्। प्रऽजाम्। च। रायः। च। पोषैः। अभि। नः। सचताम् ॥ २२ ॥

उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः।
उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्ये ॥ २३ ॥

उप। इह। उपऽपर्चन। अस्मिन्। गोऽस्थे। उप। पृञ्च। नः।
उप। ऋषभस्य। यत्। रेतः। उप। इन्द्र। तव। वीर्ये ॥ २३ ॥

एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु।

१ B B ऋषभ°. २ So all other authorities. Probably वशादुहाम् is one pada. ३ B B C s क्रीडन्ति°. ४ A B C s वशं. We with D K K R S V Dc.

**मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥२४॥** (१०)

एतम् । वः । युवानम् । प्रति । दध्मः । अत्र । तेन । क्रीडन्तीः । चरत । वशान् । अनु ।
मा । नः । हासिष्ट । जनुषा । सुऽभागाः । रायः । च । पोषैः । अभि । नः । सचध्वम् ॥२४॥(१०)

द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति द्वितीयोनुवाकः ॥

अस्मिन् सूक्ते पशौदने नाम सवे हूयमानस्याजस्य जीवतो मारितस्य च प्रशंसा । अपराजिताया आनीयमानोजः प्रोक्षप्रकारेण हतः संस्कृतश्च इन्द्रं तर्पयित्वा तृतीयनाके नाम स्वर्गभागे यद्वा सुकृतां पुण्यलोके गच्छति । तत्र गतपूर्वस्य यजमानादेश्च तमोहन्ता भवतीत्यादि वर्णनम् ॥

सांप्रदायिका अप्येवमेव । पशौदनसवे "आ नयैतम्" इत्यर्थसूक्तस्य विनियोगः । एतत्सूक्तेन निरुप्तहविरभिमर्शनं संपात दातृयाचनं दानं च कुर्यात् । तथा च सूत्रम् । "आ नयैतम् इत्यपराजिताद् अजम् आनीयमानम् अनुमन्त्रयते" इत्यादि "आ नयैतम् इति सूक्तेन संपातवन्तम् आज्ञानान्तम्" इत्यन्तम् [ कौ० ८. ५ ] इति ॥

तथा पशौ अनेन सूक्तेन अपराजिताद् आनीयमानम् अजम् अनुमन्त्रयेत । तद् उक्तं वैतानें । "आ नयैतम् इत्याद्याज्ञानान्तम्" इति [ वै० २. ६ ] ॥

तथा अग्निचयने पुनश्चितौ "येना सहस्रम्" इत्यनया गार्हपत्ये चीयमाना इष्टका ब्रह्मा अनुमन्त्रयेत । तद् उक्तं वैतानें । "गार्हपत्या उक्तम् । अयम् अग्निः सत्पतिः [ ७. ६४ ] येना सहस्रम्" [ ९. ५. १७ ] इति [ वै० ५. २ ] ॥

तथा तत्रैव वैश्वकर्मणहोमानुमन्त्रणे तस्या एव विनियोगः । तद् उक्तं वैतानें । "ये भक्षयन्तः [ २. ३५ ] एतं मध्यस्थाः [ ६. १२३ ] इति द्वे येना सहस्रम् [ ९. ५. १७ ] इति वैश्वकर्मणहोमान्" इति [ वै० ५. २ ] ॥

**आ नयैतमा रभस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रजानन् ।**
**तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥**

आ । नय । एतम् । आ । रभस्व । सुऽकृताम् । लोकम् । अपि । गच्छतु । प्रऽजानन् ।
तीर्त्वा । तमांसि । बहुऽधा । महान्ति । अजः । नाकम् । आ । क्रमताम् । तृतीयम् ॥ १ ॥

**इन्द्राय भागं परि त्वा नयाम्यस्मिन् यज्ञे यजमानाय सूरिम् ।**
**ये नो द्विषन्त्यनु तान् रभस्वानागसो यजमानस्य वीराः ॥ २ ॥**

इन्द्राय । भागम् । परि । त्वा । नयामि । अस्मिन् । यज्ञे । यजमानाय । सूरिम् ।
ये । नः । द्विषन्ति । अनु । तान् । रभस्व । अनागसः । यजमानस्य । वीराः ॥ २ ॥

**प्र पदोर्व नेनिग्धि दुश्चरितं यच्चचार शुद्धैः शफैरा क्रमतां प्रजानन् ।**
**तीर्त्वा तमांसि बहुधा विपश्यन्नजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥**

प्र । पदः । अव । नेनिग्धि । दुःऽचरितम् । यत् । चचार । शुद्धैः । शफैः । आ । क्रमताम् । प्रऽजानन् ।

---

१ K K$^{m}$ V D$^{c}$ सुभगा. P P$^{i}$ J सुऽभगाः ।. We with A B$^{b}$ D R S$^{m}$ C$^{s}$ C$^{p}$.

तीर्त्वा। तमांसि। बहुऽधा। विऽपश्यन्। अजः। नाकम्। आ। क्रमताम्। तृतीयम्॥ ३॥

अनु च्छ्य श्यामेन त्वचमेतां विशस्तर्यथापर्वसिना माभि मंस्थाः।
माभि द्रुहः परुशः कल्पयैनं तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम्॥ ४॥

अनु। छ्य। श्यामेन। त्वचम्। एताम्। विऽशस्तः। यथाऽपरु। असिना। मा। अभि। मंस्थाः।
मा। अभि। द्रुहः। परुऽशः। कल्पय। एनम्। तृतीये। नाके। अधि। वि। श्रय। एनम्॥ ४॥

ऋचा कुम्भीमध्यग्नौ श्रयाम्या सिञ्चोदकमव धेह्येनम्।
पर्याधत्ताग्निना शमितारः शृतो गच्छतु सुकृतां यत्र लोकः॥ ५॥

ऋचा। कुम्भीम्। अधि। अग्नौ। श्रयामि। आ। सिञ्च। उदकम्। अव। धेहि। एनम्।
परिऽआधत्त। अग्निना। शमितारः। शृतः। गच्छतु। सुऽकृताम्। यत्र। लोकः॥ ५॥

उत्क्रामातः परि चेदतन्नस्तन्नाच्चरोरधि नाकं तृतीयम्।
अग्नेरग्निरधि संबभूविथ ज्योतिष्मन्तमभि लोकं जयैतम्॥ ६॥

उत्। क्राम। अतः। परि। च। इत्। अतन्। नः। तन्नात्। चरोः। अधि। नाकम्। तृतीयम्।
अग्नेः। अग्निः। अधि। सम्। बभूविथ। ज्योतिष्मन्तम्। अभि। लोकम्। जय। एतम्॥ ६॥

अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुरजं जीवता ब्रह्मणे देयमाहुः।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्धानेन दत्तः॥ ७॥

अजः। अग्निः। अजम्। ऊं इति। ज्योतिः। आहुः। अजम्। जीवता। ब्रह्मणे। देयम्। आहुः।
अजः। तमांसि। अप। हन्ति। दूरम्। अस्मिन्। लोके। श्रत्ऽदधानेन। दत्तः॥ ७॥

पञ्चौदनः पञ्चधा वि क्रमतामाकूस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व॥ ८॥

१ B B$^{h}$ D S$^{m}$ Cs °पर्व॑सिना. We with K K$^{m}$ V De. २ A B B$^{h}$ D K K$^{m}$ R S$^{m}$ V P P$^{2}$ J मांस्थाः. We with De Cs Cr ३ B$^{h}$ परुश्यः क°. B परुपः क°. A D R P J परुशः क°. K परशुः. Cs Cr परुश्यः. We with K$^{m}$ S$^{m}$ V De P$^{2}$. ४ P मा। We with P$^{2}$ J Cr. ५ D S$^{m}$ श्रिनो. ६ B °दंदत्ता°. A D K K$^{m}$ R S$^{m}$ V De Cs °दंनत्ता°. B$^{h}$ °दंतन्ना°. P P$^{2}$ J Cr अन्-न्नाः। ७ K °श्चरोरधि.

पञ्चऽओदनः । पञ्चऽधा । वि । क्रमताम् । आऽक्रंस्यमानः । त्रीणि । ज्योतींषि ।
ईजानानाम् । सुऽकृताम् । प्र । इहि । मध्यम् । तृतीये । नाके । अधि । वि । श्रयस्व ॥ ८ ॥

अजा रोह सुकृतां यत्र लोकः शरभो न चत्तोति दुर्गाण्येषः ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानः स दातारं तृप्त्या तर्पयाति ॥ ९ ॥

अज । आ । रोह । सुऽकृताम् । यत्र । लोकः । शरभः । न । चत्तः । अति । दुःऽगानि । एषः ।
पञ्चऽओदनः । ब्रह्मणे । दीयमानः । सः । दातारम् । तृप्त्या । तर्पयाति ॥ ९ ॥

अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांसं दधाति ।
पञ्चौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघास्येका ॥ १० ॥(११)

अजः । त्रिऽनाके । त्रिऽदिवे । त्रिऽपृष्ठे । नाकस्य । पृष्ठे । ददिऽवांसम् । दधाति ।
पञ्चऽओदनः । ब्रह्मणे । दीयमानः । विश्वऽरूपा । धेनुः । कामऽदुघा । असि । एका ॥ १० ॥(११)

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेजं ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्धानेन दत्तः ॥ ११ ॥

एतत् । वः । ज्योतिः । पितरः । तृतीयम् । पञ्चऽओदनम् । ब्रह्मणे । अजम् । ददाति ।
अजः । तमांसि । अप । हन्ति । दूरम् । अस्मिन् । लोके । श्रत्ऽदधानेन । दत्तः ॥ ११ ॥

ईजानानां सुकृतां लोकमीप्सन् पञ्चौदनं ब्रह्मणेजं ददाति ।
स व्याप्तिमभि लोकं जयैतं शिवो३ऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु ॥ १३ ॥

ईजानानाम् । सुऽकृताम् । लोकम् । ईप्सन् । पञ्चऽओदनम् । ब्रह्मणे । अजम् । ददाति ।
सः । विऽआप्तिम् । अभि । लोकम् । जय । एतम् । शिवः । अस्मभ्यम् । प्रतिऽगृहीतः ।
अस्तु ॥ १२ ॥

अजो ह्य१ग्नेरजनिष्ट शोकाद् विप्रो विप्रस्य सहसो विपश्चित् ।
इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद् देवा ऋतुशः कल्पयन्तु ॥ १३ ॥

अजः । हि । अग्नेः । अजनिष्ट । शोकात् । विप्रः । विप्रस्य । सहसः । विपःऽचित् ।
इष्टम् । पूर्तम् । अभिऽपूर्तम् । वषट्ऽकृतम् । तत् । देवाः । ऋतुऽशः । कल्पयन्तु ॥ १३ ॥

१ So we with A B D R Ś C$^{s}$ P C$^{p}$ R$^{w}$. De K K$^{m}$ V दुर्गाण्येषः. P J एषः. २ B K शिवो ३. We with B D K Ś$^{m}$ V De C$^{s}$. ३ A B$^{h}$ D R Ś$^{m}$ De C$^{s}$ ह्य ३. We with K K$^{m}$ V. ४ A B$^{h}$ D R P J C$^{s}$ ऋतुशः°. We with K Ś$^{m}$ V De P C$^{p}$.

अमोतं वासो दद्याद्धिरण्यमपि दक्षिणाम्।
तथा लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः ॥ १४ ॥

अमाऽउतम्। वासः। दद्यात्। हिरण्यम्। अपि। दक्षिणाम्।
तथा। लोकान्। सम्। आप्नोति। ये। दिव्याः। ये। च। पार्थिवाः ॥ १४ ॥

एतास्त्वाजोप यन्तु धाराः सोम्या देवीर्घृतपृष्ठा मधुश्चुतः।
स्तभान पृथिवीमुत द्यां नाकस्य पृष्ठेधि सप्तरश्मौ ॥ १५ ॥

एताः। त्वा। अज। उप। यन्तु। धाराः। सोम्याः। देवीः। घृतऽपृष्ठाः। मधुऽश्चुतः।
स्तभान। पृथिवीम्। उत। द्याम्। नाकस्य। पृष्ठे। अधि। सप्तऽरश्मौ ॥ १५ ॥

अजोऽस्यज स्वर्गोसि त्वया लोकमङ्गिरसः प्राजानन्।
तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेषम् ॥ १६ ॥

अजः। असि। अज। स्वःऽगः। असि। त्वया। लोकम्। अङ्गिरसः। प्र। अजानन्।
तम्। लोकम्। पुण्यम्। प्र। ज्ञेषम् ॥ १६ ॥

येना सहस्रं वहसि येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो वह स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ १७ ॥

येन। सहस्रम्। वहसि। येन। अग्ने। सर्वऽवेदसम्।
तेन। इमम्। यज्ञम्। नः। वह। स्वः। देवेषु। गन्तवे ॥ १७ ॥

अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः।
तेन लोकान्त्सूर्यवतो जयेम ॥ १८ ॥

अजः। पक्वः। स्वःऽगे। लोके। दधाति। पञ्चऽओदनः। निःऽऋतिम्। बाधमानः।
तेन। लोकान्। सूर्यऽवतः। जयेम ॥ १८ ॥

यं ब्राह्मणे निदधे यं च विक्षु या विप्रुष ओदनानामजस्य।
सर्वं तदग्ने सुकृतस्य लोके जानीतान्नः संगमने पथीनाम् ॥ १९ ॥

---

१ A B K K^m De Cs °स्वाजोप We with B^h D R S^m V. २ K^m सौम्या. ३ So we with all our MSS. See Rw. ४ P P^2 J Cp अज। ५ B K K^m V De प्रजानन्. We with A B^h D R S^m Cs. ६ P अज। P^2 J. अजः। We with Cp.

यम् । ब्राह्मणे । निऽदधे । यम् । च । विक्षु । याः । विऽप्रुषः । ओदनानाम् । अजस्य । सर्वम् । तत् । अग्ने । सुऽकृतस्य । लोके । जानीतात् । नः । सम्ऽगमने । पथीनाम् ॥१९॥

अजो वा इदमग्रे व्यक्रमत तस्योरइयमभवद्द्यौः पृष्ठम् ।
अन्तरिक्षं मध्यं दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥ (१२)

अजः । वै । इदम् । अग्रे । वि । अक्रमत । तस्य । उरः । इयम् । अभवत् । द्यौः । पृष्ठम् । अन्तरिक्षम् । मध्यम् । दिशः । पार्श्वे इति । समुद्रौ । कुक्षी इति ॥ २० ॥ (१२)

सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः ।
एष वा अपरिमितो यज्ञो यदजः पञ्चौदनः ॥ २१ ॥

सत्यम् । च । ऋतम् । च । चक्षुषी इति । विश्वम् । सत्यम् । श्रद्धा । प्राणः । विऽराट् । शिरः । एषः । वै । अपरिऽमितः । यज्ञः । यत् । अजः । पञ्चऽओदनः ॥ २१ ॥

अपरिमितमेव यज्ञमाप्नोत्यपरिमितं लोकमव रुन्द्धे ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २२ ॥

अपरिऽमितम् । एव । यज्ञम् । आप्नोति । अपरिऽमितम् । लोकम् । अव । रुन्द्धे ।
यः । अजम् । पञ्चऽओदनम् । दक्षिणाऽज्योतिषम् । ददाति ॥ २२ ॥

नास्यास्थीनि भिन्द्यान्न मज्ज्ञो निर्धयेत् ।
सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वेशयेत् ॥ २३ ॥

न । अस्य । अस्थीनि । भिन्द्यात् । न । मज्ज्ञः । निः । धयेत् ।
सर्वम् । एनम् । सम्ऽआदाय । इदम्ऽइदम् । प्र । वेशयेत् ॥ २३ ॥

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैनं सं गमयति ।
इषं मह ऊर्जमस्मै दुहे योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २४ ॥

इदम्ऽइदम् । एव । अस्य । रूपम् । भवति । तेन । एनम् । सम् । गमयति ।

---

१ P ब्रह्मणे ।. We with P J Cp. २ So we with all our MSS. See Rw. ३ P °मिताः ।. ४ B रुधे. ५ B V ½. We with B D K K^m R S^m Dc Cs. ६ B B^h D Cs J मन्यो. A K K^m R S^m V Dc P P^2 Cp मज्ञो. ७ J अस्य ।. ८ B P इषं. ९ B K V योऽजं. We with B^h D K^m R S^m Dc Cs.

इषम्। महः। ऊर्जम्। अस्मै। दुहे। यः। अजम्। पञ्चऽओदनम्। दक्षिणाऽज्योतिषम्। ददाति ॥ २४ ॥

पञ्च रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २५ ॥

पञ्च। रुक्माः। पञ्च। नवानि। वस्त्रा। पञ्च। अस्मै। धेनवः। कामऽदुघाः। भवन्ति। यः। अजम्।०॥ २५ ॥

पञ्च रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति।
स्वर्गं लोकमश्नुते योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥

पञ्च। रुक्माः। ज्योतिः। अस्मै। भवन्ति। वर्म। वासांसि। तन्वे। भवन्ति। स्वःऽगम्। लोकम्। अश्नुते। यः। अजम्। पञ्चऽओदनम्। दक्षिणाऽज्योतिषम्। ददाति ॥ २६ ॥

या पूर्वं पतिं वित्त्वाथान्यं विन्दतेऽपरम्।
पञ्चौदनं च तावजं ददातो न वि योषतः ॥ २७ ॥

या। पूर्वम्। पतिम्। वित्त्वा। अथ। अन्यम्। विन्दते। अपरम्। पञ्चऽओदनम्। च। तौ। अजम्। ददातः। न। वि। योषतः ॥ २७ ॥

समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ २८ ॥

समानऽलोकः। भवति। पुनःऽभुवा। अपरः। पतिः। यः। अजम्। पञ्चऽओदनम्। दक्षिणाऽज्योतिषम्। ददाति ॥ २८ ॥

अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपबर्हणम्।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥ २९ ॥

अनुपूर्वऽवत्साम्। धेनुम्। अनड्वाहम्। उपऽबर्हणम्।

---

१ B V योऽजं. We with $^{h}$B D K $^{m}$K R $^{m}$S De Cs. २ B K V योऽजं. We with $^{h}$B D $^{m}$K $^{m}$S De Cs. ३ A $^{h}$B D $^{m}$K $^{m}$S V Cs P J °थान्यं. We with De $^{2}$P Cr. ४ A °परापतिः. ५ $^{m}$K V P दिवमुत्तमम्. We with A $^{h}$B D K R $^{m}$S De Cs $^{2}$P J Cr. ६ P °ड्वाअहम्. We with $^{2}$P J Cr.

वासः । हिरण्यम् । दत्त्वा । ते । यन्ति । दिवम् । उत्ऽतमाम् ॥ २९ ॥

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।
जायां जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये ॥ ३० ॥ (१३)

आत्मानम् । पितरम् । पुत्रम् । पौत्रम् । पितामहम् ।
जायाम् । जनित्रीम् । मातरम् । ये । प्रियाः । तान् । उप । ह्वये ॥ ३० ॥ (१३)

यो वै नैदाघं नामर्तुं वेद ।
एष वै नैदाघो नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः ।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना ।
योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३१ ॥

यः । वै । नैदाघम् । नाम । ऋतुम् । वेद ।
एषः । वै । नैदाघः । नाम । ऋतुः । यत् । अजः । पञ्चऽओदनः ।
निः । एव । अप्रियस्य । भ्रातृव्यस्य । श्रियम् । दहति । भवति । आत्मना ।
यः । अजम् । पञ्चऽओदनम् । दक्षिणाऽज्योतिषम् । ददाति ॥ ३१ ॥

यो वै कुर्वन्नं नामर्तुं वेद ।
कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै कुर्वन्नामर्तुर्यदजः ०।०।० ॥ ३२ ॥

०। वै । कुर्वन्तम् । नाम ।०।
कुर्वतीम्ऽकुर्वतीम् । एव । अप्रियस्य । भ्रातृव्यस्य । श्रियम् । आ । दत्ते ।
०। वै । कुर्वन् । नाम ।०॥ ३२ ॥

यो वै संयन्नं नामर्तुं वेद ।
संयतींसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते ।
एष वै संयन्नाम ०।०।० ॥ ३३ ॥

०। वै । सम्ऽयन्तम् । नाम ।०।
संयतीम्ऽसंयतीम् । एव ।०।

१ All the corrections from नाम ऋतु° to नामर्तु° are based on A B B̂ D K K̂ R S V De Cs. See Rw.

०। वै। सम्ऽयन्। नाम। ०॥ ३३ ॥

यो वै पिन्वंन्तं नामर्तुं वेद।
पिन्वर्तींपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते।
एष वै पिन्वन्नाम ०। ०। ०॥ ३४ ॥

०। वै। पिन्वन्तम्। नाम। ०।
पिन्वतीम्ऽपिन्वतीम्। एव। ०।
०। वै। पिन्वन्। नाम। ०॥ ३४ ॥

यो वा उद्यन्तं नामर्तुं वेद।
उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते।
एष वा उद्यन्नाम ०। ०। ०॥ ३५ ॥

०। वै। उत्ऽयन्तम्। नाम। ०।
उद्यतीम्ऽउद्यतीम्। एव। ०।
०। वै। उत्ऽयन्। नाम। ०॥ ३५ ॥

यो वा अभिभुवं नामर्तुं वेद।
अभिभवन्तीमभिभवन्तीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते।
एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः।
निरेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियं दहति भवत्यात्मना।
योऽजं[1] पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति ॥ ३६ ॥

यः। वै। अभिऽभुवम्। नाम। ऋतुम्। वेद।
अभिभवन्तीम्ऽअभिभवन्तीम्। एव। अप्रियस्य। भ्रातृव्यस्य। श्रियम्। आ। दत्ते।
एषः। वै। अभिऽभूः। नाम। ऋतुः। यत्। अजः। पञ्चऽओदनः।
निः। एव। अप्रियस्य। भ्रातृव्यस्य। श्रियम्। दहति। भवति। आत्मना।
यः। अजम्। पञ्चऽओदनम्। दक्षिणाऽज्योतिषम्। ददाति ॥ ३६ ॥

अजं च पचत पञ्चौदनान्।

---

[1] B V योऽजं. We with A Bʰ D K Kᵐ R Sᵐ Dc Cs.

सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः सान्तर्देशाः प्रति गृह्णन्तु त एतम् ॥ ३७ ॥

अजम् । च । पचत । पञ्च । च । ओदनान् ।

सर्वाः । दिशः । सम्ऽमनसः । सध्रीचीः । सऽअन्तर्देशाः । प्रति । गृह्णन्तु । ते । एतम् ॥ ३७ ॥

तास्ते रक्षन्तु तव तुभ्यमेतं ताभ्य आज्यं हविरिदं जुहोमि ॥ ३८ ॥ (१४)

ताः । ते । रक्षन्तु । तव । तुभ्यम् । एतम् । ताभ्यः । आज्यम् । हविः । इदम् । जुहोमि ॥ ३८ ॥ (१४)

इति तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"यो विद्याद्" इति सूक्तेन जपं करोति स्वर्गकामः इति विनियोगमाला संप्रदायानुसारेण । वस्तुतस्तु यो विद्यादित्यारभ्य यत्क्षत्ताग्म् इत्यन्तेषु षट्सु पर्यायेषु अतिथेर्माहात्म्यं तथा तस्य सभाजनं तत्सभाजनस्य च यज्ञफलतुल्यं फलं चेति आतिथ्यस्य प्रशंसा वर्ण्यते ॥

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ॥ १ ॥

यः । विद्यात् । ब्रह्म । प्रतिऽअक्षम् । परूंषि । यस्य । सम्ऽभाराः । ऋचः । यस्य । अनूक्यम् ॥ १ ॥

सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ॥ २ ॥

सामानि । यस्य । लोमानि । यजुः । हृदयम् । उच्यते । परिऽस्तरणम् । इत् । हविः ॥ २ ॥

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेक्षते ॥ ३ ॥

यत् । वै । अतिथिऽपतिः । अतिथीन् । प्रतिऽपश्यति । देवऽयजनम् । प्र । ईक्षते ॥ ३ ॥

यदभिवदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्र णयति ॥ ४ ॥

यत् । अभिऽवदति । दीक्षाम् । उप । एति । यत् । उदकम् । याचति । अपः । प्र । नयति ॥ ४ ॥

या एवं यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः ॥ ५ ॥

याः । एव । यज्ञे । आपः । प्रऽनीयन्ते । ताः । एव । ताः ॥ ५ ॥

यत् तर्पणमाहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एव सः ॥ ६ ॥

यत् । तर्पणम् । आऽहरन्ति । यः । एव । अग्नीषोमीयः । पशुः । बध्यते । सः । एव । सः ॥ ६ ॥

यदावसथान् कल्पयन्ति सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति ॥ ७ ॥

---

१ A B D K R S V De Cs गृह्णन्तु. J Cr ते । We with P P. २ B ऋतो. ३ S प्रणयति. ४ R एवं.

यत्। आऽवसथान्। कल्पयन्ति। सदःऽहविर्धानानि। एव। तत्[1]। कल्पयन्ति ॥ ७ ॥

**यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत् ॥ ८ ॥**

यत्। उपऽस्तृणन्ति। बर्हिः। एव। तत् ॥ ८ ॥

**यदुपरिशयनमाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमव रुन्द्धे ॥ ९ ॥**

यत्। उपरिऽशयनम्। आऽहरन्ति। स्वःऽगम्। एव। तेन। लोकम्। अव। रुन्द्धे ॥ ९ ॥

**यत् कशिपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते ॥ १० ॥**

यत्। कशिपुऽउपबर्हणम्। आऽहरन्ति। परिऽधयः। एव। ते ॥ १० ॥

**यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्त्याज्यमेव तत् ॥ ११ ॥**

यत्। आञ्जनऽअभ्यञ्जनम्। आऽहरन्ति। आज्यम्। एव। तत् ॥ ११ ॥

**यत् पुरा परिवेषात् खादमाहरन्ति पुरोडाशावेव तौ ॥ १२ ॥**

यत्। पुरा। परिऽवेषात्। खादम्। आऽहरन्ति। पुरोडाशौ। एव। तौ ॥ १२ ॥

**यदशनकृतं ह्वयन्ति हविष्कृतमेव तद्ध्वयन्ति ॥ १३ ॥**

यत्। अशनऽकृतम्। ह्वयन्ति। हविःऽकृतम्। एव। तत्। ह्वयन्ति ॥ १३ ॥

**ये व्रीहयो यवा निरुप्यन्तेंशव एव ते ॥ १४ ॥**

ये। व्रीहयः। यवाः। निःऽउप्यन्ते। अंशवः। एव। ते ॥ १४ ॥

**यान्युलूखलमुसलानि ग्रावाण एव ते ॥ १५ ॥**

यानि। उलूखलऽमुसलानि। ग्रावाणः। एव। ते ॥ १५ ॥

**शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः ॥ १६ ॥**

शूर्पम्। पवित्रम्। तुषाः। ऋजीषा। अभिऽसवनीः। आपः ॥ १६ ॥

**स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनं द्रोणकलशाः कुम्भ्यो वायव्यानि पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम् ॥ १७ ॥** (१५)

स्रुक्। दर्विः। नेक्षणम्। आऽयवनम्। द्रोणऽकलशाः। कुम्भ्यः। वायव्यानि। पात्राणि। इयम्। एव। कृष्णऽअजिनम् ॥ १७ ॥ (१५)

इति तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

---

१ P ह्वयन्ति. We with P[2] J Cp. २ B B[h] C निरुप्य°. We with A D K[m] R S[m] V Dc P[2] J Cp. ३ B[h] स्रग्.

यजमानब्राह्मणं वा एतदतिथिपतिः कुरुते यदाहार्याणि प्रेक्षत इदं भूया३ इदा३मिति ॥ १ ॥

यजमानऽब्राह्मणम् । वै । एतत् । अतिथिऽपतिः । कुरुते । यत् । आऽहार्याणि । प्रऽईक्षते । इदम् । भूया३ः । इदा३म् । इति ॥ १ ॥

यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥ २ ॥

यत् । आह । भूयः । उत् । हर । इति । प्राणम् । एव । तेन । वर्षीयांसम् । कुरुते ॥ २ ॥

उपं हरति हवींष्या सादयति ॥ ३ ॥

उपं । हरति । हवींषि । आ । सादयति ॥ ३ ॥

तेषामासन्नानामतिथिरात्मन् जुहोति ॥ ४ ॥

तेषाम् । आऽसन्नानाम् । अतिथिः । आत्मन् । जुहोति ॥ ४ ॥

स्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥ ५ ॥

स्रुचा । हस्तेन । प्राणे । यूपे । स्रुक्ऽकारेण । वषट्ऽकारेण ॥ ५ ॥

एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥ ६ ॥

एते । वै । प्रियाः । च । अप्रियाः । च । ऋत्विजः । स्वःऽगम् । लोकम् । गमयन्ति । यत् । अतिथयः ॥ ६ ॥

स य एवं विद्वान् न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोन्नमश्नीयान्न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥ ७ ॥

सः । यः । एवम् । विद्वान् । न । द्विषन् । अश्नीयात् । न । द्विषतः । अन्नम् । अश्नीयात् । न । मीमांसितस्य । न । मीमांसमानस्य ॥ ७ ॥

सर्वो वा एष जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति ॥ ८ ॥

सर्वः । वै । एषः । जग्धऽपाप्मा । यस्य । अन्नम् । अश्नन्ति ॥ ८ ॥

सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति ॥ ९ ॥

सर्वः । वै । एषः । अजग्धऽपाप्मा । यस्य । अन्नम् । न । अश्नन्ति ॥ ९ ॥

---

१ K S V De भूया ३. P भूयाः ।. J Cr भूयाः । ३ ।. P भूयाः । ३. We with A B B D R Cs. २ B K Cs °रात्मं. R De °रात्मन्जु°. We A S V. ३ P गमयति ।. We with P J Cr.

सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्द्रपवित्रो विततोऽध्वर आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति ॥ १० ॥

सर्वदा । वै । एषः । युक्तऽग्रावा । आर्द्रऽपवित्रः । विततऽअध्वरः । आहृतऽयज्ञक्रतुः । यः । उपऽहरति ॥ १० ॥

प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति ॥ ११ ॥

प्राजाऽपत्यः । वै । एतस्य । यज्ञः । विऽततः । यः ।०॥ ११ ॥

प्रजापतेर्वा एष विक्रमानुविक्रमते य उपहरति ॥ १२ ॥

प्रजाऽपतेः । वै । एषः । विऽक्रमान् । अनुऽविक्रमते । यः । उपऽहरति ॥ १२ ॥

योतिथीनां स आहवनीयो यो वेश्मनि स गार्हपत्यो यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाग्निः ॥ १३ ॥ (१६)

यः । अतिथीनाम् । सः । आऽहवनीयः । यः । वेश्मनि । सः । गार्हऽपत्यः । यस्मिन् । पचन्ति । सः । दक्षिणऽअग्निः ॥ १३ ॥ (१६)

इति तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोतिथेरश्नाति ॥ १ ॥

इष्टम् । च । वै । एषः । पूर्तम् । च । गृहाणाम् । अश्नाति । यः । पूर्वः । अतिथेः । अश्नाति ॥ १ ॥

पयश्च वा एष रसं च०[1] ॥ २ ॥

पयः । च । वै । एषः । रसम् । च ।० ॥ २ ॥

ऊर्जां च वा एष स्फातिं च० ॥ ३ ॥

ऊर्जाम् । च । वै । एषः । स्फातिम् । च ।० ॥ ३ ॥

प्रजां च वा एष पशूंश्च० ॥ ४ ॥

प्रऽजाम् । च । वै । एषः । पशून् । च ।० ॥ ४ ॥

कीर्तिं च वा एष यशश्च० ॥ ५ ॥

कीर्तिम् । च । वै । एषः । यशः । च ।० ॥ ५ ॥

श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोतिथेरश्नाति ॥ ६ ॥

---

१ B °यज्ञःक्र°.

श्रियम् । च । वै । एषः । सम्ऽविदम् । च । गृहाणाम् । अश्नाति । यः । पूर्वैः । अतिथेः । अश्नाति ॥ ६ ॥

**एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात् ॥ ७ ॥**

एषः । वै । अतिथिः । यत् । श्रोत्रियः । तस्मात् । पूर्वैः । न । अश्नीयात् ॥ ७ ॥

**अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम् ॥ ८ ॥**

अशितऽवति । अतिथौ । अश्नीयात् । यज्ञस्य । सात्मऽत्वाय । यज्ञस्य । अविऽछेदाय । तत् । व्रतम् ॥ ८ ॥

**एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात् ॥ ९ ॥ (१७)**

एतत् । वै । ऊं इति । स्वादीयः । यत् । अधिऽगवम् । क्षीरम् । वा । मांसम् । वा । तत् । एव । न । अश्नीयात् ॥ ९ ॥ (१७)

इति तृतीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

**स य एवं विद्वान् क्षीरमुपसिच्योपहरति ॥ १ ॥**

सः । यः । एवम् । विद्वान् । क्षीरम् । उपऽसिच्य । उपऽहरति ॥ १ ॥

**यावदग्निष्टोमेनेष्ट्वा सुसंमृद्धेनावरुन्द्धे तावदेनेनावं रुन्द्धे ॥ २ ॥**

यावत् । अग्निऽस्तोमेन । इष्ट्वा । सुऽसंमृद्धेन । अवऽरुन्द्धे । तावत् । एनेन । अवं । रुन्द्धे ॥ २ ॥

**स य एवं विद्वान्त्सर्पिरुपसिच्योपहरति ॥ ३ ॥**

०। विद्वान् । सर्पिः । उपऽसिच्य ।०॥ ३ ॥

**यावदतिरात्रेणेष्ट्वा० ॥ ४ ॥**

यावत् । अतिऽरात्रेण । इष्ट्वा ।०॥ ४ ॥

**स य एवं विद्वान् मधूपसिच्योपहरति ॥ ५ ॥**

०। विद्वान् । मधु । उपऽसिच्य ।०॥ ५ ॥

**यावत् सत्त्रसद्येनेष्ट्वा० ॥ ६ ॥**

यावत् । सत्त्रऽसद्येन । इष्ट्वा ।०॥ ६ ॥

स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति ॥ ७ ॥

०। विद्वान्। मांसम्। उपऽसिच्य। उप। हरति ॥ ७ ॥

यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा सुसंमृष्टेनावरुन्द्धे तावदेनेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥

यावत्। द्वादशऽअहेन। इष्ट्वा। सुऽसंमृष्टेन। अवऽरुन्द्धे। तावत्। एनेन। अव। रुन्द्धे ॥ ८ ॥

स य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ ९ ॥

सः। यः। एवम्। विद्वान्। उदकम्। उपऽसिच्य। उपऽहरति ॥ ९ ॥

प्रजानां प्रजननाय गच्छति प्रतिष्ठां प्रियः प्रजानां भवति य एवं विद्वानुदकमुपसिच्योपहरति ॥ १० ॥ (१८)

प्रऽजानाम्। प्रऽजननाय। गच्छति। प्रतिऽस्थाम्। प्रियः। प्रऽजानाम्। भवति। यः। एवम्। विद्वान्। उदकम्। उपऽसिच्य। उपऽहरति ॥ १० ॥ (१८)

इति तृतीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

तस्मा उषा हिङ्कृणोति सविता प्र स्तौति ॥ १ ॥

तस्मै। उषाः। हिङ्। कृणोति। सविता। प्र। स्तौति ॥ १ ॥

बृहस्पतिरूर्जयोद्गायति त्वष्टा पुष्ट्या प्रति हरति विश्वे देवा निधनम् ॥२॥

बृहस्पतिः। ऊर्जया। उत्। गायति। त्वष्टा। पुष्ट्या। प्रति। हरति। विश्वे। देवाः। निऽधनम् ॥ २ ॥

निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

निऽधनम्। भूत्याः। प्रऽजायाः। पशूनाम्। भवति। यः। एवम्। वेद ॥ ३ ॥

तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ्कृणोति संगवः प्र स्तौति ॥ ४ ॥

तस्मै। उत्ऽयन्। सूर्यः। हिङ्। कृणोति। सम्ऽगवः। प्र।० ॥ ४ ॥

मध्यन्दिन उद्गायत्यपराह्णः प्रति हरत्यस्तंयन्निधनम्।
निधनं० ॥ ५ ॥

मध्यन्दिनः। उत्। गायति। अपरऽअह्णः। प्रति। हरति। अस्तम्ऽयन्। निऽधनम्। निऽधनम्।० ॥ ५ ॥

तस्मा अभ्रो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्तौति ॥ ६ ॥

तस्मै । अभ्रः । भवन् । हिङ् । कृणोति । स्तनयन् । प्र । स्तौति ॥ ६ ॥

**विद्योतमानः प्रति हरति वर्षन्नुद्गायत्युद्गृह्णन् निधनम् ॥ निधनं० ॥ ७ ॥**

विऽद्योतमानः । प्रति । हरति । वर्षन् । उत् । गायति । उत्ऽगृह्णन् ॥ निऽधनम् ।० ॥ ७ ॥

**अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यभि वदति प्र स्तौत्युदकं याचत्युद्गायति ॥ ८ ॥**

अतिथीन् । प्रति । पश्यति । हिङ् । कृणोति । अभि । वदति । प्र । स्तौति । उदकम् । याचति । उत् । गायति ॥ ८ ॥

**उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्टं निधनम् ॥ ९ ॥**

उप । हरति । प्रति । हरति । उत्ऽशिष्टम् । निऽधनम् ॥ ९ ॥

**निधनं भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद ॥ १० ॥ (१९)**

निऽधनम् । भूत्याः । प्रऽजायाः । पशूनाम् । भवति । यः ।० ॥ १० ॥ (१९)

इति तृतीयेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

**यत् क्षत्तारं ह्वयत्या श्रावयत्येव तत् ॥ १ ॥**

यत् । क्षत्तारम् । ह्वयति । आ । श्रावयति । एव । तत् ॥ १ ॥

**यत् प्रतिशृणोति प्रत्याश्रावयत्येव तत् ॥ २ ॥**

यत् । प्रतिऽशृणोति । प्रतिऽआश्रावयति । एव । तत् ॥ २ ॥

**यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः पूर्वे चापरे च प्रपद्यन्ते चमसाध्वर्यव एव ते ॥ ३ ॥**

यत् । परिऽवेष्टारः । पात्रऽहस्ताः । पूर्वे । च । अपरे । च । प्रऽपद्यन्ते । चमसऽअध्वर्यवः । एव । ते ॥ ३ ॥

**तेषां न कश्चनाहोता ॥ ४ ॥**

तेषाम् । न । कः । चन । अहोता ॥ ४ ॥

**यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् परिविष्य गृहानुपोदैत्यवभृथमेव तदुपावैति ॥ ५ ॥**

---

१ P P$^{2}$ वर्षम् ।. We with J C$^{p}$. २ B वदति. ३ B K K$^{m}$ R V D$^{c}$ याच°. We with A B$^{h}$ D S$^{m}$ C$^{s}$ P P$^{2}$ J C$^{p}$. ४ P J कः ।.

यत्। वै। अतिथिऽपतिः। अतिथीन्। परिऽविष्य। गृहान्। उपऽउदैति। अवऽभृथम्। एव। तत्। उपऽअवैति ॥ ५ ॥

**यत् सभागयति दक्षिणाः सभागयति यदनुतिष्ठत उदवस्यत्येव तत् ॥ ६ ॥**

यत्। सभागयति। दक्षिणाः। सभागयति। यत्। अनुऽतिष्ठते। उत्ऽअवस्यति। एव। तत् ॥ ६ ॥

**स उपहूतः पृथिव्यां भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यत् पृथिव्यां विश्वरूपम् ॥ ७ ॥**

सः। उपऽहूतः। पृथिव्याम्। भक्षयति। उपऽहूतः। तस्मिन्। यत्। पृथिव्याम्। विश्वऽरूपम् ॥ ७ ॥

**स उपहूतोन्तरिक्षे भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यदन्तरिक्षे विश्वरूपम् ॥ ८ ॥**

०। उपऽहूतः। अन्तरिक्षे। भक्षयति। उपऽहूतः। तस्मिन्। यत्। अन्तरिक्षे। विश्वऽरूपम् ॥ ८ ॥

**स उपहूतो दिवि भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् दिवि विश्वरूपम् ॥ ९ ॥**

०। उपऽहूतः। दिवि। भक्षयति। उपऽहूतः। तस्मिन्। यत्। दिवि। विश्वऽरूपम् ॥ ९ ॥

**स उपहूतो देवेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यद् देवेषु विश्वरूपम् ॥ १० ॥**

०। उपऽहूतः। देवेषु। भक्षयति। उपऽहूतः। तस्मिन्। यत्। देवेषु। विश्वऽरूपम् ॥ १० ॥

**स उपहूतो लोकेषु भक्षयत्युपहूतस्तस्मिन् यल्लोकेषु विश्वरूपम् ॥ ११ ॥**

०। उपऽहूतः। लोकेषु। भक्षयति। उपऽहूतः। तस्मिन्। यत्। लोकेषु। विश्वऽरूपम् ॥ ११ ॥

**स उपहूत उपहूतः ॥ १२ ॥**

सः। उपऽहूतः। उपऽहूतः ॥ १२ ॥

**आप्नोतीमं लोकमाप्नोत्यमुम् ॥ १३ ॥**

आप्नोति। इमम्। लोकम्। आप्नोति। अमुम् ॥ १३ ॥

**ज्योतिष्मतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥ १४ ॥ (२०)**

---

१ P P̂ °उदैति। We with J Cr. २ P P̂ J °तिष्ठति। We with Cr. ३ So we with all our MSS. See Rw.

ज्योतिष्मतः । लोकान् । जयति । यः ।० ॥ १४ ॥ (२०)

तृतीयेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

इति तृतीयोनुवाकः ॥

"प्रजापतिश्च" इति सूक्तस्य गोष्ठकर्मणि विनियोगः । "प्रजापतिरिति गोष्ठकर्माणि" इत्यादिसूत्रात् [कौ० ३. २] । विस्तरस्तु "एह यन्तु पशवः" इति सूक्ते [२. २६] द्रष्टव्यः ॥

तथा अनड्वत्सवे अनेन सूक्तेन निरुप्तहविरभिमर्शनं संपातं दात्रवाचनं दानं च कुर्यात् । "प्रजापतिश्चेत्यनड्वाहम्" इति [कौ० ८. ७] सूत्रात् ॥

वस्तुतस्तु मेध्यवृषभस्य यानि भिन्नभिन्नान्यङ्गानि तानि भिन्नभिन्नदेवतारूपाणि भवन्तीति तस्य प्रशंसा ॥

**प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥ १ ॥**

प्रजाऽपतिः । च । परमेऽस्थी । च । शृङ्गे इति । इन्द्रः । शिरः । अग्निः । ललाटम् । यमः । कृकाटम् ॥ १ ॥

**सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥**

सोमः । राजा । मस्तिष्कः । द्यौः । उत्तरऽहनुः । पृथिवी । अधरऽहनुः ॥ २ ॥

**विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥ ३ ॥**

विऽद्युत् । जिह्वा । मरुतः । दन्ताः । रेवतीः । ग्रीवाः । कृत्तिकाः । स्कन्धाः । घर्मः । वहः ॥ ३ ॥

**विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥ ४ ॥**

विश्वम् । वायुः । स्वःऽगः । लोकः । कृष्णऽद्रम् । विऽधरणी । निऽवेष्यः ॥ ४ ॥

**श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥५॥**

श्येनः । क्रोडः । अन्तरिक्षम् । पाजस्यम् । बृहस्पतिः । ककुत् । बृहतीः । कीकसाः ॥ ५ ॥

**देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पशवः ॥ ६ ॥**

देवानाम् । पत्नीः । पृष्टयः । उपऽसदः । पशवः ॥ ६ ॥

**मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवौ बाहू ॥ ७ ॥**

---

१ P ललाट°. We with P J Cr. २ A B B$^{h}$ K$^{m}$ R V De Cs कृत्तिकाः स्कन्धा. We with D S$^{m}$. ३ R and Rw alone have निवेष्यः. ४ D K K$^{m}$ S$^{m}$ क्रोडोऽन्त°. We with B$^{h}$ V De Cs. ५ D S$^{m}$ °स्यं ३. De °स्यं ३. We with B$^{h}$ K K$^{m}$ V Cs. ६ K P पृष्टयः ।.

मित्रः। च। वरुणः। च। अंसौ। त्वष्टा। च। अर्यमा। च। दोषणी इति। महाऽदेवः। बाहू इति ॥ ७ ॥

इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥ ८ ॥

इन्द्राणी। भसत्। वायुः। पुच्छम्। पवमानः। बालाः ॥ ८ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥

ब्रह्म। च। क्षत्रम्। च। श्रोणी इति। बलम्। ऊरू इति ॥ ९ ॥

धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥

धाता। च। सविता। च। अष्ठीवन्तौ। जङ्घाः। गन्धर्वाः। अप्सरसः। कुष्ठिकाः। अदितिः। शफाः ॥ १० ॥

चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥

चेतः। हृदयम्। यकृत्। मेधा। व्रतम्। पुरीऽतत् ॥ ११ ॥

क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥

क्षुत्। कुक्षिः। इरा। वनिष्ठुः। पर्वताः। प्लाशयः ॥ १२ ॥

क्रोधो वृक्को मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥

क्रोधः। वृक्कौ। मन्युः। आण्डौ। प्रऽजा। शेपः ॥ १३ ॥

नदी सूत्री वर्षस्य पतयः स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥ १४ ॥

नदी। सूत्री। वर्षस्य। पतयः। स्तनाः। स्तनयित्नुः। ऊधः ॥ १४ ॥

विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥

विश्वऽव्यचाः। चर्म। ओषधयः। लोमानि। नक्षत्राणि। रूपम् ॥ १५ ॥

देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥ १६ ॥

देवऽजनाः। गुदाः। मनुष्याः। आन्त्राणि। अत्राः। उदरम् ॥ १६ ॥

रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥ १७ ॥

---

१ R वालाः. २ P उरू इति. ३ K K$^{m}$ S$^{m}$ V De विधाता. ४ We with A B B$^{h}$ D R Cs P P$^{2}$ J Cp. ४ All our authorities have वनिष्टुः. (K$^{m}$ seems to read वनिषुः.) ५ A K$^{m}$ R S$^{m}$ P$^{2}$ J De वृक्कौ. We with B$^{h}$ D K V Cs P Cp. ६ K$^{n}$ °ण्डी. ७ K$^{m}$ °व°.

रक्षाँसि । लोहितम् । इतरऽजनाः । ऊर्वध्यम् ॥ १७ ॥

**अभ्रं पीवो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥**

अभ्रम् । पीवः । मज्जा । निऽधनम् ॥ १८ ॥

**अग्निरासीन् उत्थितोश्विना ॥ १९ ॥**

अग्निः । आसीनः । उत्थितः । अश्विना ॥ १९ ॥

**इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥**

इन्द्रः । प्राङ् । तिष्ठन् । दक्षिणा । तिष्ठन् । यमः ॥ २० ॥

**प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥ २१ ॥**

प्रत्यङ् । तिष्ठन् । धाता । उदङ् । तिष्ठन् । सविता ॥ २१ ॥

**तृणानि प्राग्नः सोमो राजा ॥ २२ ॥**

तृणानि । प्रऽआसंः । सोमः । राजा ॥ २२ ॥

**मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥**

मित्रः । ईक्षमाणः । आऽवृत्तः । आऽनन्दः ॥ २३ ॥

**युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥**

युज्यमानः । वैश्वऽदेवः । युक्तः । प्रजाऽपतिः । विऽमुक्तः । सर्वम् ॥ २४ ॥

**एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥**

एतत् । वै । विश्वऽरूपम् । सर्वऽरूपम् । गोऽरूपम् ॥ २५ ॥

**उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥ २६ ॥** (२१)

उप । एनम् । विश्वऽरूपाः । सर्वऽरूपाः । पशवः । तिष्ठन्ति । यः । एवम् । वेद ॥ २६ ॥ (२१)

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

शिरोरोगादिसर्वभैषज्ये कर्मणि "शीर्षक्तिम्" इत्यर्थसूक्तेन व्याधितशरीरम् अभिमृशति । ततः "पादाभ्यां ते" इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्याम् आदित्यम् उपतिष्ठते । तथा च सूत्रम् । "शीर्षक्तिम् इत्यभिमृशति । उत्तमाभ्याम् [२१, २२] आदित्यम् उपतिष्ठते" इति [कौ० ४. ८] ॥

---

१ D K $\overset{m}{K}$ P पीवो. We with A $\overset{h}{B}$ K R $\overset{m}{S}$ De Cs and $\overset{2}{P}$ J $C_P$. २ P दक्षिणा ।. We with $\overset{2}{P}$ J $C_P$. ३ $\overset{2}{P}$ तिष्ठम् ।. We with P J $C_P$. ४ P °आसाः ।. We with $\overset{2}{P}$ J $C_P$

तथा अस्य सूक्तस्य अंहोलिङ्गणे पाठात् तस्य गणस्य यत्रयत्र सर्वव्याधिभैषज्यादिषु विनियोग उक्तस्तत्र सर्वत्रास्य विनियोगोनुसंधेयः। विस्तरस्तु "अक्षीभ्याम्" इति सूक्ते [२. ३३] द्रष्टव्यः॥

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥ १॥

शीर्षक्तिम्। शीर्षऽआमयम्। कर्णऽशूलम्। विऽलोहितम्।
सर्वम्। शीर्षण्यम्। ते। रोगम्। बहिः। निः। मन्त्रयामहे॥ १॥

कर्णाभ्यां ते कङ्कषेभ्यः कर्णशूलं विसल्पकम्। सर्वं० ॥ २॥

कर्णाभ्याम्। ते। कङ्कषेभ्यः। कर्णऽशूलम्। विऽसल्पकम्।० ॥ २॥

यस्य हेतोः प्रच्यवते यक्ष्मः कर्णत आस्यतः। सर्वं० ॥ ३॥

यस्य। हेतोः। प्रऽच्यवते। यक्ष्मः। कर्णतः। आस्यतः।० ॥ ३॥

यः कृणोति प्रमोतमन्धं कृणोति पूरुषम्। सर्वं० ॥ ४॥

यः। कृणोति। प्रऽमोतम्। अन्धम्। कृणोति। पुरुषम्।० ॥ ४॥

अङ्गभेदमङ्गज्वरं विश्वाङ्ग्यं विसल्पकम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥ ५॥

अङ्गऽभेदम्। अङ्गऽज्वरम्। विश्वऽअङ्ग्यम्। विऽसल्पकम्।
सर्वम्। शीर्षण्यम्। ते। रोगम्। बहिः।० ॥ ५॥

यस्य भीमः प्रतीकाश उद्वेपयति पूरुषम्।
तक्मानं विश्वशारदं बहि० ॥ ६॥

यस्य। भीमः। प्रतिऽकाशः। उत्ऽवेपयति। पुरुषम्।
तक्मानम्। विश्वऽशारदम्। बहिः।० ॥ ६॥

य ऊरू अनुसर्पत्यधो एति गवीनिके।
यक्ष्मं ते अन्तरङ्गेभ्यो बहि० ॥ ७॥

यः। ऊरू इति। अनुऽसर्पति। अधो इति। एति। गवीनिके इति।
यक्ष्मम्। ते। अन्तः। अङ्गेभ्यः। बहिः।० ॥ ७॥

१ P विऽलोहितम्। We with P J Cp. २ So we with all our MSS. See Rw.
३ K K$^{m}$ V De P कृणोति. We with A B B$^{h}$ D R S$^{m}$ C$^{s}$ P$^{2}$ J Cp.

यदि कामादपकामाद्धृदयाज्जायते परि ।
हृदो बलासमङ्गेभ्यो बहि० ॥ ८ ॥

यदि । कामात् । अपऽकामात् । हृदयात् । जायते । परि ।
हृदः । बलासम् । अङ्गेभ्यः । बहिः ।० ॥ ८ ॥

हरिमाणं ते अङ्गेभ्योप्वामन्तरोदरात् ।
यक्ष्मोधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ९ ॥

हरिमाणम् । ते । अङ्गेभ्यः । अप्वाम् । अन्तरा । उदरात् ।
यक्ष्मःऽधाम् । अन्तः । आत्मनः । बहिः । निः । मन्त्रयामहे ॥ ॥ ९ ॥

आसो बलासो भवतु मूत्रं भवत्वामयत् ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १० ॥ (२२)

आसः । बलासः । भवतु । मूत्रम् । भवतु । आमयत् ।
यक्ष्माणाम् । सर्वेषाम् । विषम् । निः । अवोचम् । अहम् । त्वत् ॥ १० ॥ (२२)

बहिर्बिलं निर्द्रवतु काहाबाहं तवोदरात् । यक्ष्माणां० ॥ ११ ॥

बहिः । बिलम् । निः । द्रवतु । काहाबाहम् । तव । उदरात् ॥० ॥ ११ ॥

उदरात् ते क्लोम्नो नाभ्या हृदयादधि ।
यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १२ ॥

उदरात् । ते । क्लोम्नः । नाभ्याः । हृदयात् । अधि ।
यक्ष्माणाम् । सर्वेषाम् । विषम् । निः । अवोचम् । अहम् । त्वत् ॥ १२ ॥

याः सीमानं विरुजन्ति मूर्धानं प्रत्यर्षणीः ।
अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १३ ॥

याः । सीमानम् । विऽरुजन्ति । मूर्धानम् । प्रति । अर्षणीः ।
अहिंसन्तीः । अनामयाः । निः । द्रवन्तु । बहिः । बिलम् ॥ १३ ॥

या हृदयमुपर्षन्त्यनुतन्वन्ति कीकसाः । अहि० ॥ १४ ॥

१ B D $\overset{m}{K}$ यक्ष्मो°. २ P अर्षणी. ।. ३ A D R $\overset{m}{K}$ °मुपऋ्प° here and in the following two verses. We with $\overset{b}{B}$ K $\overset{m}{S}$ V De Cs.

याः। हृदयम्। उपऽऋषन्ति। अनुऽतन्वन्ति। कीकसाः।० ॥ १४ ॥

**याः पार्श्वे उपर्षन्त्यनुनिक्षन्ति पृष्टीः। अहिं० ॥ १५ ॥**

याः। पार्श्वे इति। उपऽऋषन्ति। अनुऽनिक्षन्ति। पृष्टीः।० ॥ १५ ॥

**यास्तिरश्चीरुपर्षन्त्यर्षणीर्वक्षणासु ते। अहिं० ॥ १६ ॥**

याः। तिरश्चीः। उपऽऋषन्ति। अर्षणीः। वक्षणासु। ते।० ॥ १६ ॥

**या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च। अहिं० ॥ १७ ॥**

याः। गुदाः। अनुऽसर्पन्ति। आन्त्राणि। मोहयन्ति। च।० ॥ १७ ॥

**या मज्ज्ञो निर्धयन्ति परूंषि विरुजन्ति च।**
**अहिंसन्तीरनामया निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम् ॥ १८ ॥**

याः। मज्ज्ञः। निःऽधयन्ति। परूंषि। विऽरुजन्ति। च।
अहिंसन्तीः। अनामयाः। निः। द्रवन्तु। बहिः। बिलम् ॥ १८ ॥

**ये अङ्गानि मदयन्ति यक्ष्मासो रोपणास्तव।**
**यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ १९ ॥**

ये। अङ्गानि। मदयन्ति। यक्ष्मासः। रोपणाः। तव।
यक्ष्माणाम्। सर्वेषाम्। विषम्। निः। अवोचम्। अहम्। त्वत् ॥ १९ ॥

**विसल्पस्य विद्रधस्य वातीकारस्य वालजेः।**
**यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ २० ॥**

विऽसल्पस्य। विऽद्रधस्य। वातीऽकारस्य। वा। अलजेः।
यक्ष्माणाम्। सर्वेषाम्। विषम्। निः। अवोचम्। अहम्। त्वत् ॥ २० ॥

**पादाभ्यां ते जानुभ्यां श्रोणिभ्यां परि भंससः।**
**अनूकादर्ष्णीरुष्णिहाभ्यः शीर्ष्णो रोगमनीनशम् ॥ २१ ॥**

पादाभ्याम्। ते। जानुऽभ्याम्। श्रोणिऽभ्याम्। परि। भंससः।
अनूकात्। अर्ष्णीः। उष्णिहाभ्यः। शीर्ष्णः। रोगम्। अनीनशम् ॥ २१ ॥

---

१ B D K $\overset{m}{K}$ V C$_s$ P C$_p$ पृष्टीः. $\overset{m}{S}$ D$_c$ पृष्टीः changed to पृष्टीः. We with A $\overset{b}{B}$ R $\overset{2}{P}$ J. २ A $\overset{b}{B}$ $\overset{b}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ R $\overset{m}{S}$ V D$_c$ C$_s$ P $\overset{2}{P}$ J C$_p$ मज्ञो. ३ P. वलम्. ४ B D $\overset{m}{S}$ येऽङ्गानि. ५ So we with all our authorities. See Rw.

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः ।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः ॥२२॥(२३)

सम् । ते । शीर्ष्णः । कपालानि । हृदयस्य । च । यः । विधुः ।
उत्ऽयन् । आदित्य । रश्मिऽभिः । शीर्णः । रोगम् । अनीनशः । अङ्गऽभेदम् । अशी-
शमः ॥ २२ ॥ (२३)

चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति चतुर्थोनुवाकः ॥

"अस्य वामस्य" इत्यनुवाकस्य सलिलगणमध्ये पाठः । अतः "°सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नाति । मन्थान्तानि" इति [कौ° ३. १] "सलिलैः सर्वकामः" [कौ° ३. ७] इत्यादावस्य विनियोगः ॥ सलिलगणश्च "आपो हि ष्ठा" इति सूक्ते [१. ५] द्रष्टव्यः ॥

अस्य वामस्येति सूक्तमन्त्रा ऋगन्तर्भूते तस्मिन्नेव सूक्ते [ऋ० १६४] दृष्टाः । तत्र तद्भाष्यं सायणीयं द्रष्टव्यम् ॥

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

अस्य । वामस्य । पलितस्य । होतुः । तस्य । भ्राता । मध्यमः । अस्ति । अश्नः ।
तृतीयः । भ्राता । घृतऽपृष्ठः । अस्य । अत्र । अपश्यम् । विश्पतिम् । सप्तऽपुत्रम् ॥ १ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

सप्त । युञ्जन्ति । रथम् । एकऽचक्रम् । एकः । अश्वः । वहति । सप्तऽनामा ।
त्रिऽनाभि । चक्रम् । अजरम् । अनर्वम् । यत्र । इमा । विश्वा । भुवना । अधि । तस्थुः ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्त यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

इमम् । रथम् । अधि । ये । सप्त । तस्थुः । सप्तऽचक्रम् । सप्त । वहन्ति । अश्वाः ।
सप्त । स्वसारः । अभि । सम् । नवन्त । यत्र । गवाम् । निऽहिता । सप्त । नाम ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।

---

१ P P² J विदुः । Cr विऽधुः । २ P अस्ति. We with P² J Cr. ३ B सप्तनामा. ४ P² J Cr नामा । We with P. ५ B h K m S C s P J बिभर्ति. De बिभ° changed to बिभ°. J बिभर्ति । changed to बिभर्ति । We with A B h D K V P² Cr.

भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥

कः। ददर्श। प्रथमम्। जायमानम्। अस्थन्वन्तम्। यत्। अनस्था। बिभर्ति। भूम्याः। असुः। असृक्। आत्मा। क्व। स्वित्। कः। विद्वांसम्। उप। गात्। प्रष्टुम्। एतत् ॥ ४ ॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ५ ॥

इह। ब्रवीतु। यः। ईम्। अङ्ग। वेद। अस्य। वामस्य। निऽहितम्। पदम्। वेः। शीर्ष्णः। क्षीरम्। दुह्रते। गावः। अस्य। वव्रिम्। वसानाः। उदकम्। पदा। अपुः ॥ ५ ॥

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि।
वत्से बष्कयेधि सन्न तन्नून् वि तस्थिरे कवय ओतवा उ ॥ ६ ॥

पाकः। पृच्छामि। मनसा। अविऽजानन्। देवानाम्। एना। निऽहिता। पदानि। वत्से। बष्कये। अधि। सन्न। तन्नून्। वि। तस्थिरे। कवयः। ओतवै। ऊं इति ॥ ६ ॥

अचिकित्वांश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मनो न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षडिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ७ ॥

अचिकित्वान्। चिकितुषः। चित्। अत्र। कवीन्। पृच्छामि। विद्मनः। न। विद्वान्। वि। यः। तस्तम्भ। षट्। इमा। रजांसि। अजस्य। रूपे। किम्। अपि। स्वित्। एकम् ॥ ७ ॥

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गभरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

माता। पितरम्। ऋते। आ। बभाज। धीति। अग्रे। मनसा। सम्। हि। जग्मे। सा। बीभत्सुः। गभरसा। निऽविद्धा। नमस्वन्तः। इत्। उपऽवाकम्। ईयुः ॥ ८ ॥

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

युक्ता। माता। आसीत्। धुरि। दक्षिणायाः। अतिष्ठत्। गर्भः। वृजनीषु। अन्तः।

१ K आपुः। J आपुः। changed to अपुः। P P$^{c}$ C$^{p}$ अपुः। २ B S$^{m}$ °विजानन्.

अमीमेत् । वत्सः । अनु । गाम् । अपश्यत् । विश्वऽरूप्यम् । त्रिषु । योजनेषु ॥ ९ ॥

तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदो वाचमविश्वविन्नाम् ॥ १० ॥(२४)

तिस्रः । मातॄः । त्रीन् । पितॄन् । बिभ्रत् । एकः । ऊर्ध्वः । तस्थौ । न । ईम् । अव । ग्लपयन्त ।
मन्त्रयन्ते । दिवः । अमुष्य । पृष्ठे । विश्वऽविदः । वाचम् । अविश्वऽविन्नाम् ॥ १० ॥ (२४)

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न छिद्यते सनाभिः ॥ ११ ॥

पञ्चऽअरे । चक्रे । परिऽवर्तमाने । यस्मिन् । आऽतस्थुः । भुवनानि । विश्वा ।
तस्य । न । अक्षः । तप्यते । भूरिऽभारः । सनात् । एव । न । छिद्यते । सऽनाभिः ॥ ११ ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणे सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

पञ्चऽपादम् । पितरम् । द्वादशऽआकृतिम् । दिवः । आहुः । परे । अर्धे । पुरीषिणम् ।
अथ । इमे । अन्ये । उपरे । विऽचक्षणे । सप्तऽचक्रे । षट्ऽअरे । आहुः । अर्पितम् ॥ १२ ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ १३ ॥

द्वादशऽअरम् । नहि । तत् । जराय । वर्वर्ति । चक्रम् । परि । द्याम् । ऋतस्य ।
आ । पुत्राः । अग्ने । मिथुनासः । अत्र । सप्त । शतानि । विंशतिः । च । तस्थुः ॥ १३ ॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

सऽनेमि । चक्रम् । अजरम् । वि । ववृते । उत्तानायाम् । दश । युक्ताः । वहन्ति ।
सूर्यस्य । चक्षुः । रजसा । एति । आऽवृतम् । यस्मिन् । आऽतस्थुः । भुवनानि । विश्वा ॥ १४ ॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥ १५ ॥

---

१ **A** alone has the *Rigveda* reading ग्लापयन्ति. २ **B** $B^h$ $B^m$ **K** चक्षु. De चक्षू changed to चक्षु. ३ **B** इमा.

स्त्रियः। सतीः। तान्। ऊं इति। मे। पुंसः। आहुः। पश्यत्। अक्षण्ऽवान्। न। वि। चेतत्। अन्धः।

कविः। यः। पुत्रः। सः। ईम्। आ। चिकेत। यः। ता। विऽजानात्। सः। पितुः। पिता। असत्॥ १५॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति।
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः॥१६॥

साकम्ऽजानाम्। सप्तथम्। आहुः। एकऽजम्। षट्। इत्। यमाः। ऋषयः। देवऽजाः। इति।

तेषाम्। इष्टानि। विऽहितानि। धामऽशः। स्थात्रे। रेजन्ते। विऽकृतानि। रूपऽशः॥ १६॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन्॥१७॥

अवः। परेण। परः। एना। अवरेण। पदा। वत्सम्। बिभ्रती। गौः। उत्। अस्थात्। सा। कद्रीची। कम्। स्वित्। अर्धम्। परा। अगात्। क्व। स्वित्। सूते। नहि। यूथे। अस्मिन्॥ १७॥

अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम्॥ १८॥

अवः। परेण। पितरम्। यः। अस्य। वेद। अवः। परेण। परः। एना। अवरेण।

कविऽयमानः। कः। इह। प्र। वोचत्। देवम्। मनः। कुतः। अधि। प्रऽजातम्॥ १८॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति॥ १९॥

ये। अर्वाञ्चः। तान्। ऊं इति। पराचः। आहुः। ये। पराञ्चः। तान्। ऊं इति। अर्वाचः। आहुः।

इन्द्रः। च। या। चक्रथुः। सोम। तानि। धुरा। न। युक्ताः। रजसः। वहन्ति॥ १९॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।

---

१ P आसन्। २ B K धामशः स्थात्रे.

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥

द्वा । सुऽपर्णा । सऽयुजा । सखाया । समानम् । वृक्षम् । परि । सस्वजाते इति ।
तयोः । अन्यः । पिप्पलम् । स्वादु । अत्ति । अनश्नन् । अन्यः । अभि । चाकशीति ॥ २० ॥

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २१ ॥

यस्मिन् । वृक्षे । मधुऽअदः । सुऽपर्णाः । निऽविशन्ते । सुवते । च । अधि । विश्वे ।
तस्य । यत् । आहुः । पिप्पलम् । स्वादु । अग्रे । तत् । न । उत् । नशत् । यः । पितरम् । न । वेद ॥ २१ ॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२२॥(२५)

यत्र । सुऽपर्णाः । अमृतस्य । भक्षम् । अनिऽमेषम् । विदथा । अभिऽस्वरन्ति ।
एना । विश्वस्य । भुवनस्य । गोपाः । सः । मा । धीरः । पाकम् । अत्र । आ । विवेश ॥ २२॥(२५)

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"यद् गायत्रे" इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ १ ॥

यत् । गायत्रे । अधि । गायत्रम् । आऽहितम् । त्रैस्तुभम् । वा । त्रैस्तुभात् । निःऽअतक्षत ।
यत् । वा । जगत् । जगति । आऽहितम् । पदम् । ये । इत् । तत् । विदुः । ते । अमृतऽत्वम् । आनशुः ॥ १ ॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २ ॥

गायत्रेण । प्रति । मिमीते । अर्कम् । अर्केण । साम । त्रैस्तुभेन । वाकम् ।
वाकेन । वाकम् । द्विऽपदा । चतुःऽपदा । अक्षरेण । मिमते । सप्त । वाणीः ॥ २ ॥

१ A $^{h}$B R $^{m}$S and J पिप्पलं. We with D K $^{m}$K V De Cs and P $^{2}$P Cp. २ A R J Cp पिप्पलं. We with $^{h}$B D K $^{m}$K $^{m}$S V De Cs P $^{2}$P. ३ P आहुः ।. ४ P आनशुः ।.

जगंता सिन्धुं दिव्यस्कभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत्।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ ३ ॥

जगंता। सिन्धुम्। दिवि। अस्कभायत्। रथम्ऽतरे। सूर्यम्। परि। अपश्यत्।
गायत्रस्य। सम्ऽइधः। तिस्रः। आहुः। ततः। मह्ना। प्र। रिरिचे। महिऽत्वा ॥ ३ ॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥ ४ ॥

उप। ह्वये। सुऽदुघाम्। धेनुम्। एताम्। सुऽहस्तः। गोऽधुक्। उत। दोहत्। एनाम्।
श्रेष्ठम्। सवम्। सविता। साविषत्। नः। अभिऽईद्धः। घर्मः। तत्। ऊं इति। सु।
प्र। वोचत् ॥ ४ ॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ५ ॥

हिङ्ऽकृण्वती। वसुऽपत्नी। वसूनाम्। वत्सम्। इच्छन्ती। मनसा। अभिऽआगात्।
दुहाम्। अश्विऽभ्याम्। पयः। अघ्या। इयम्। सा। वर्धताम्। महते। सौभगाय ॥ ५ ॥

गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्कृणोन्मातवा उ।
सृक्कांणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ६ ॥

गौः। अमीमेत्। अभि। वत्सम्। मिषन्तम्। मूर्धानम्। हिङ्। अकृणोत्। मातवै। ऊं इति।
सृक्कांणम्। घर्मम्। अभि। वावशाना। मिमाति। मायुम्। पयते। पयःऽभिः ॥ ६ ॥

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ ७ ॥

अयम्। सः। शिङ्क्ते। येन। गौः। अभिऽवृता। मिमाति। मायुम्। ध्वसनौ। अधि। श्रिता।
सा। चित्तिऽभिः। नि। हि। चकार। मर्त्यान्। विऽद्युत्। भवन्ती। प्रति। वव्रिम्।
औहत ॥ ७ ॥

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।

---

१ All our authorities have हिङ्क°. २ B D °मौहद्. R D° C$^{s}$ °हत् changed to °हत. We with A$^{h}$ B K K$^{m}$ S V P P$^{2}$ J C$^{p}$.

जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ८ ॥

अनत् । शये । तुरऽगातु । जीवम् । एजत् । ध्रुवम् । मध्ये । आ । पस्त्यानाम् ।
जीवः । मृतस्य । चरति । स्वधाभिः । अमर्त्यः । मर्त्येन । सऽयोनिः ॥ ८ ॥

विधुं दद्राणं समिलस्य पृष्ठे युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥ ९ ॥

विऽधुम् । दद्राणम् । समिलस्य । पृष्ठे । युवानम् । सन्तम् । पलितः । जगार ।
देवस्य । पश्य । काव्यम् । महिऽत्वा । अद्य । ममार । सः । ह्यः । सम् । आन ॥ ९ ॥

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश ॥ १० ॥ (२६)

यः । ईम् । चकार । न । सः । अस्य । वेद । यः । ईम् । ददर्श । हिरुक् । इत् ।
नु । तस्मात् ।
सः । मातुः । योनौ । परिऽवीतः । अन्तः । बहुऽप्रजाः । निःऽऋतिः । आ । विवेश ॥ १० ॥(२६)

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ११ ॥

अपश्यम् । गोपाम् । अनिऽपद्यमानम् । आ । च । परा । च । पथिऽभिः । चरन्तम् ।
सः । सध्रीचीः । सः । विषूचीः । वसानः । आ । वरीवर्ति । भुवनेषु । अन्तः ॥ ११ ॥

द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ १२ ॥

द्यौः । नः । पिता । जनिता । नाभिः । अत्र । बन्धुः । नः । माता । पृथिवी । मही । इयम् ।
उत्तानयोः । चम्वोः । योनिः । अन्तः । अत्र । पिता । दुहितुः । गर्भम् । आ । अधात् ॥ १२ ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।
पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥१३॥

पृच्छामि । त्वा । परम् । अन्तम् । पृथिव्याः । पृच्छामि । वृष्णः । अश्वस्य । रेतः ।
पृच्छामि । विश्वस्य । भुवनस्य । नाभिम् । पृच्छामि । वाचः । परमम् । विऽओम ॥१३॥

१ K $\overset{m}{K}$ °चम्वो°. We with $\overset{h}{B}$ D R $\overset{m}{S}$ V De Cs.

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः।
अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ १४ ॥

इयम्। वेदिः। परः। अन्तः। पृथिव्याः। अयम्। सोमः। वृष्णः। अश्वस्य। रेतः। अयम्। यज्ञः। विश्वस्य। भुवनस्य। नाभिः। ब्रह्मा। अयम्। वाचः। परमम्। विऽओम ॥ १४ ॥

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ १५ ॥

न। वि। जानामि। यत्ऽइव। इदम्। अस्मि। निण्यः। सम्ऽनद्धः। मनसा। चरामि। यदा। मा[3]। आऽअगन्। प्रथमऽजाः। ऋतस्य। आत्। इत्। वाचः। अश्नुवे। भागम्। अस्याः ॥ १५ ॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य[1]न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ १६ ॥

अपाङ्। प्राङ्। एति। स्वधया। गृभीतः। अमर्त्यः। मर्त्येन। सऽयोनिः। ता। शश्वन्ता। विषूचीना। विऽयन्ता। नि। अन्यम्। चिक्युः। न। नि। चिक्युः। अन्यम् ॥ १६ ॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ १७ ॥

सप्त। अर्धऽगर्भाः। भुवनस्य। रेतः। विष्णोः। तिष्ठन्ति। प्रऽदिशा। विऽधर्मणि। ते। धीतिऽभिः। मनसा। ते। विपःऽचितः। परिऽभुवः। परि। भवन्ति। विश्वतः ॥ १७ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते ॥ १८ ॥

ऋचः। अक्षरे। परमे। विऽओमन्। यस्मिन्। देवाः। अधि। विश्वे। निऽसेदुः।

---

१ Б B ऋतस्या°. २ P P C मा। We with J. ३ S °तो अमर्त्यो. ४ B B D S C न्य[1]न्यं. We with K K V Dc. ५ P चिक्युः। ६ K °र्गर्भास्तिष्ठन्ति. ७ P प्रऽदिशः। We with P J CP.

यः । तत् । न । वेद । किम् । ऋचा । करिष्यति । ये । इत् । तत् । विदुः । ते । अमी इति । सम् । आसते ॥ १८ ॥

ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोर्ध्वेन चाकॢपुर्विश्वमेजत् ।
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे[1] तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १९ ॥

ऋचः । पदम् । मात्रया । कल्पयन्तः । अर्धऽऋचेन । चक्लृपुः । विश्वम् । एजत् । त्रिऽपात् । ब्रह्म । पुरुऽरूपम् । वि । तस्थे । तेन । जीवन्ति । प्रऽदिशः । चतस्रः ॥ १९ ॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ २० ॥ (२७)

सुयवसऽअत् । भगऽवती । हि । भूयाः । अथ । वयम् । भगऽवन्तः । स्याम । अद्धि । तृणम् । अघ्ये । विश्वऽदानीम् । पिब । शुद्धम् । उदकम् । आऽचरन्ती ॥ २० ॥ (२७)

गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ २१ ॥

गौः । इत् । मिमाय । सलिलानि । तक्षती । एकऽपदी । द्विऽपदी । सा । चतुःऽपदी । अष्टाऽपदी । नवऽपदी । बभूवुषी । सहस्रऽअक्षरा । भुवनस्य । पङ्क्तिः । तस्याः । समुद्राः । अधि । वि । क्षरन्ति ॥ २१ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवीं व्युदुः ॥ २२ ॥

कृष्णम् । निऽयानम् । हरयः । सुऽपर्णाः । अपः । वसानाः । दिवम् । उत् । पतन्ति । ते । आ । अववृत्रन् । सदनात् । ऋतस्य । आत् । इत् । घृतेन । पृथिवीम् । वि । उदुः ॥ २२ ॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्या ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति ॥ २३ ॥

अपात् । एति । प्रथमा । पत्ऽवतीनाम् । कः । तत् । वाम् । मित्रावरुणा । आ । चिकेत । गर्भः । भारम् । भरति । आ । चित् । अस्याः । ऋतम् । पिपर्ति । अनृतम् । नि । पाति ॥ २३ ॥

विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः ।

---

१ B चष्टे. B D K K$^{m}$ S C$^{s}$ तष्टे. We with A R V D$^{c}$.

विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥ २४ ॥

विऽराट्। वाक्। विऽराट्। पृथिवी। विऽराट्। अन्तरिक्षम्। विऽराट्। प्रजाऽपतिः। विऽराट्। मृत्युः। साध्यानाम्। अधिऽराजः। बभूव। तस्य। भूतम्। भव्यम्। वशे। सः। मे। भूतम्। भव्यम्। वशे। कृणोतु ॥ २४ ॥

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ २५ ॥

शकऽमयम्। धूमम्। आरात्। अपश्यम्। विषुऽवता। परः। एना। अवरेण। उक्षाणम्। पृश्निम्। अपचन्त। वीराः। तानि। धर्माणि। प्रथमानि। आसन् ॥ २५ ॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ २६ ॥

त्रयः। केशिनः। ऋतुऽथा। वि। चक्षते। सम्ऽवत्सरे। वपते। एकः। एषाम्। विश्वम्। अन्यः। अभिऽचष्टे। शचीभिः। ध्राजिः। एकस्य। ददृशे। न। रूपम् ॥ २६ ॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ २७ ॥

चत्वारि। वाक्। परिऽमिता। पदानि। तानि। विदुः। ब्राह्मणाः। ये। मनीषिणः। गुहा। त्रीणि। निऽहिता। न। इङ्गयन्ति। तुरीयम्। वाचः। मनुष्याः। वदन्ति ॥ २७ ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ २८ ॥ (२८)

इन्द्रम्। मित्रम्। वरुणम्। अग्निम्। आहुः। अथो इति। दिव्यः। सः। सुऽपर्णः। गरुत्मान्।
एकम्। सत्। विप्राः। बहुऽधा। वदन्ति। अग्निम्। यमम्। मातरिश्वानम्। आहुः ॥ २८ ॥ (२८)

पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

पञ्चमोनुवाकः ॥

इति नवमं काण्डं समाप्तम् ॥

---

१ R विदुर्ब्राह्मणा. २ P विदुः।

* "यां कल्पयन्ति" इत्यर्थसूक्तस्य कृत्याप्रतिहरणगणे पाठात् कृत्यानिर्हरणार्थे शान्त्युदक एतत् सूक्तं विनियुज्यते। तद् उक्तं कौशिकेन। "यां कल्पयन्तीति महाशान्तिम् आवपते" इति [कौ°५. ३] ॥ कृत्याप्रतिहरणगणः "दूष्या दूषिरसि" इति सूक्ते[२. ११] द्रष्टव्यः। विनियोगान्तरं च तत्रैव द्रष्टव्यम् ॥

**यां कल्पयन्ति वहतौ वधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः।**
**सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥ १ ॥**

याम्। कल्पयन्ति। वहतौ। वधूम्ऽइव। विश्वऽरूपाम्। हस्तऽकृताम्। चिकित्सवः।
सा। आरात्। एतु। अप। नुदामः। एनाम् ॥ १ ॥

**शीर्षण्वती नस्वती कार्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।**
**सारादेत्वप नुदाम एनाम् ॥ २ ॥**

शीर्षण्ऽवती। नस्वती। कर्णिनी। कृत्याऽकृता। सम्ऽभृता। विश्वऽरूपा ॥
सा। आरात्। एतु। अप। नुदामः। एनाम् ॥ २ ॥

**शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।**
**जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥ ३ ॥**

शूद्रऽकृता। राजऽकृता। स्त्रीऽकृता। ब्रह्मऽभिः। कृता।
जाया। पत्या। नुत्ताऽइव। कर्तारम्। बन्धु। ऋच्छतु ॥ ३ ॥

**अनयाहमोषध्या सर्वीः कृत्या अदूदुषम्।**
**यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥**

अनया। अहम्। ओषध्या। सर्वीः। कृत्याः। अदूदुषम्।
याम्। क्षेत्रे। चक्रुः। याम्। गोषु। याम्। वा। ते। पुरुषेषु ॥ ४ ॥

**अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते।**
**प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ ५ ॥**

अघम्। अस्तु। अघऽकृते। शपथः। शपथिऽयते।

---

१ B̊ K̊ R C$_{\text{K}}$ J बन्धृच्छतु (J बधु). We with A D K S̊ V Dc and P P̊ C$_{\text{P}}$ (बन्धु।).

प्रत्यक् । प्रतिऽप्रहिण्मः । यथा । कृत्याऽकृतम् । हनत् ॥ ५

प्रतीचीनं आङ्गिरसोध्यक्षो नः पुरोहितः ।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥ ६ ॥

प्रतीचीनः । आङ्गिरसः । अधिऽअक्षः । नः । पुरःऽहितः ।
प्रतीचीः । कृत्याः । आऽकृत्य । अमून् । कृत्याऽकृतः । जहि ॥ ६ ॥

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥ ७ ॥

यः । त्वा । उवाच । परा । इहि । इति । प्रतिऽकूलम् । उत्ऽआय्यम् ।
तम् । कृत्ये । अभिऽनिवर्तस्व । मा । अस्मान् । इच्छः । अनागसः ॥ ७ ॥

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेयनमज्ञातस्तेयं जनः ॥ ८ ॥

यः । ते । परूंषि । सम्ऽदधौ । रथस्यऽइव । ऋभुः । धिया ।
तम् । गच्छ । तत्र । ते । अयनम् । अज्ञातः । ते । अयम् । जनः ॥ ८ ॥

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्वी३दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनःसरं तेन त्वा स्नपयामसि ॥ ९ ॥

ये । त्वा । कृत्वा । आऽलेभिरे । विद्वलाः । अभिऽचारिणः ।
शम्ऽभु । इदम् । कृत्याऽदूषणम् । प्रतिऽवर्त्म । पुनःऽसरम् । तेन । त्वा । स्नपयामसि ॥ ९ ॥

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥ १० ॥ (१)

यत् । दुःऽभगाम् । प्रऽस्नपिताम् । मृतऽवत्साम् । उपऽऐयिम ।
अप । एतु । सर्वम् । मत् । पापम् । द्रविणम् । मा । उप । तिष्ठतु ॥ १० ॥ (१)

यत् ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगृहुः ।

---

१ All our authorities have °मुदाय्यम् clearly. Rw read °मुदाप्यम् but apparently without any other passage to support the reading, which is probably an emendation. २ So we with all our authorities except De which has °व ऋभु°. ३ So P P J Cp.

संदेश्याꣳत् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वौषधीः ॥ ११ ॥

यत्। ते। पितृऽभ्यः। ददतः। यजे। वा। नाम। जगृहुः।

सम्ऽदेश्यात्। सर्वस्मात्। पापात्। इमाः। मुञ्चन्तु। त्वा। ओषधीः ॥ ११ ॥

देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात् संदेश्यादभिनिष्कृतात्।

मुञ्चन्तु त्वा वीरुधो वीर्येण ब्रह्मण ऋग्भिः पयसर्षीणाम् ॥ १२ ॥

देवऽएनसात्। पित्र्यात्। नामऽग्राहात्। सम्ऽदेश्यात्। अभिऽनिष्कृतात्।

मुञ्चन्तु। त्वा। वीरुधः। वीर्येण। ब्रह्मणा। ऋक्ऽभिः। पयसा। ऋषीणाम् ॥ १२ ॥

यथा वातश्चयावयति भूम्या रेणुमन्तरिक्षाच्चाभ्रम्।

एवा मत् सर्वं दुर्भूतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ १३ ॥

यथा। वातः। चयवयति। भूम्याः। रेणुम्। अन्तरिक्षात्। च। अभ्रम्।

एव। मत्। सर्वम्। दुःऽभूतम्। ब्रह्मऽनुत्तम्। अप। अयति ॥ १३ ॥

अप क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव।

कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ १४ ॥

अप। क्राम। नानदती। विऽनद्धा। गर्दभीऽइव।

कर्तॄन्। नक्षस्व। इतः। नुत्ता। ब्रह्मणा। वीर्यऽवता ॥ १४ ॥

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः।

तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥ १५ ॥

अयम्। पन्थाः। कृत्ये। इति। त्वा। नयामः। अभिऽप्रहिताम्। प्रति। त्वा। प्र। हिण्मः।

तेन। अभि। याहि। भञ्जती। अनस्वतीऽइव। वाहिनी। विश्वऽरूपा। कुरूटिनी ॥ १५ ॥

परांक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व।

---

१ B B K S Cs त्वोषधीः. We with A D K R V Dc. २ A K K R and P J Cp पित्र्या°. S पित्र्या°. We with B D V Dc Cs P. ३ B K °ग्रहात्सं°. ४ A B R S पयस. P J पयसा ।. P Cp पयसा ।. We with D K K V and P Cp. ५ A S मत्सर्वं. ६ A D R S C कर्त्रेन्न°. P P J कर्त्रेन् । न°. We with B K V Dc Cp. ७ P वीर्यऽव°।. We with P J Cp ८ So we with all our authorities. P P J Cp have कृत्ये । इति ।. ९ K भञ्जत्य°. १० K कुरीटिनी.

परेणेहि नवतिं नाव्या३ अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि ॥१६॥

परांक् । ते । ज्योतिः । अपथम् । ते । अर्वाक् । अन्यत्र । अस्मत् । अयना । कृणुष्व ।
परेण । इहि । नवतिम् । नाव्याः । अति । दुःऽगाः । स्रोत्याः । मा । क्षणिष्ठाः । परा ।
इहि ॥ १६ ॥

वातं इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्येप्रजास्त्वाय बोधय ॥ १७ ॥

वातःऽइव । वृक्षान् । नि । मृणीहि । पादय । मा । गाम् । अश्वम् । पुरुषम् । उत् ।
शिषः । एषाम् ।
कर्तॄन् । निऽवृत्य । इतः । कृत्ये । अप्रजाःऽत्वाय । बोधय ॥ १७ ॥

यां ते बर्हिषि यां श्मशाने क्षेत्रे कृत्यां वलगं वा निचख्नुः ।
अग्नौ वा त्वा गार्हपत्येभिचेरुः पाकं सन्तं धीरतरा अनागसम् ॥ १८ ॥

याम् । ते । बर्हिषि । याम् । श्मशाने । क्षेत्रे । कृत्याम् । वलगम् । वा । निऽचख्नुः ।
अग्नौ । वा । त्वा । गार्हऽपत्ये । अभिऽचेरुः । पाकम् । सन्तम् । धीरऽतराः । अनाग-
सम् ॥ १८ ॥

उपाहृतमनुबुद्धं निखातं वैरं त्सार्यन्वविदाम कर्त्रम् ।
तदेतु यत आभृतं तत्राश्व इव वि वर्ततां हन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥ १९ ॥

उपऽआहृतम् । अनुऽबुद्धम् । निऽखातम् । वैरम् । त्सारि । अनु । अविदाम । कर्त्रम् ।
तत् । एतु । यतः । आऽभृतम् । तत्र । अश्वःऽइव । वि । वर्तताम् । हन्तु । कृत्याऽकृतः ।
प्रऽजाम् ॥ १९ ॥

स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे विश्वा ते कृत्ये यतिधा परूंषि ।
उत्तिष्ठैव परेहीतोज्ञाते किमिहेच्छसि ॥ २० ॥ (२)

सुऽआयसाः । असयः । सन्ति । नः । गृहे । विश्व । ते । कृत्ये । यतिऽधा । परूंषि ।
उत् । तिष्ठ । एव । परा । इहि । इतः । अज्ञाते । किम् । इह । इच्छसि ॥ २० ॥ (२)

१ A B $\overset{h}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ R $\overset{m}{S}$ V Cs दुर्गा स्रो°. We with De and P $\overset{p}{P}$ J Cr. २ A D R $\overset{m}{S}$ Cs P $\overset{p}{P}$ J कर्त्रंषि°. We with $\overset{h}{B}$ K $\overset{m}{K}$ V De Cr. ३ R कर्तुं. ४ B वर्धतां. $\overset{m}{K}$ changes °र्धं° to °र्तं°. ५ P changes °म् to °न्. J °न्. We with $\overset{p}{P}$ Cr.

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥ २१ ॥

ग्रीवाः। ते। कृत्ये। पादौ। च। अपि। कर्त्स्यामि। निः। द्रव।
इन्द्राग्नी इति। अस्मान्। रक्षताम्। यौ। प्रऽजानाम्। प्रजावती इति प्रजाऽवती ॥ २१ ॥

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥ २२ ॥

सोमः। राजा। अधिऽपाः। मृडिता। च। भूतस्य। नः। पतयः। मृडयन्तु ॥ २२ ॥

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते।
दुष्कृते विद्युते देवहेतिम् ॥ २३ ॥

भवाशर्वौ। अस्यताम्। पापऽकृते। कृत्याऽकृते।
दुःऽकृते। विऽद्युतम्। देवऽहेतिम् ॥ २३ ॥

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥ २४ ॥

यदि। आऽइयथ। द्विऽपदी। चतुःऽपदी। कृत्याऽकृता। सम्ऽभृता। विश्वऽरूपा।
सा। इतः। अष्टाऽपदी। भूत्वा। पुनः। परा। इहि। दुच्छुने ॥ २४ ॥

अभ्यक्ता[1]क्ता स्वरंकृता सर्वं भरन्ती दुरितं परेहि।
जानीहि कृत्ये कर्तारं दुहितेव पितरं स्वम् ॥ २५ ॥

अभिऽअक्ता। आऽअक्ता। सुऽअरंकृता। सर्वम्। भरन्ती। दुःऽइतम्। परा। इहि।
जानीहि। कृत्ये। कर्तारम्। दुहिताऽइव। पितरम्। स्वम् ॥ २५ ॥

परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय।
मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निर्कर्तुमर्हति ॥ २६ ॥

परा। इहि। कृत्ये। मा। तिष्ठः। विद्धस्यऽइव। पदम्। नय।

---

१ All our authorities have प्रजावती. Prof. Whitney amends to प्रजापती, which does not appear necessary, as it is allowable to speak of a god as a mother. २ K De omit the stop after कृत्याकृते. We with A B D K R S V Cs P P J Cp. ३ D S दुःकृते. C-दुकृते. We with A K K R V De. ४ A D R S De Cs have no kampa, reading सेतो ष्टाप°. B K K V सेतोऽष्टाप°. ५ B B D K K S V De Cs अभ्यक्ता°.

मृगः । सः । मृगऽयुः । त्वम् । न । त्वा । निऽकर्तुम् । अर्हति ॥ २६ ॥

उत हन्ति पूर्वासिनं प्रत्यादायापरं इष्वा ।
उत पूर्वस्य निघ्नतो नि हन्त्यपरः प्रति ॥ २७ ॥

उत । हन्ति । पूर्वऽआसिनम् । प्रतिऽआदाय । अपरः । इष्वा ।
उत । पूर्वस्य । निऽघ्नतः । नि । हन्ति । अपरः । प्रति ॥ २७ ॥

एतद्धि शृणु मे वचोथेहि यत एयथ ।
यस्त्वा चकार तं प्रति ॥ २८ ॥

एतत् । हि । शृणु । मे । वचः । अथ । इहि । यतः । आऽइयथ ।
यः । त्वा । चकार । तम् । प्रति ॥ २८ ॥

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव ॥ २९ ॥

अनागःऽहत्या । वै । भीमा । कृत्ये । मा । नः । गाम् । अश्वम् । पुरुषम् । वधीः ।
यत्रऽयत्र । असि । निऽहिता । ततः । त्वा । उत् । स्थापयामसि । पर्णात् । लघीयसी ।
भव ॥ २९ ॥

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥ ३० ॥

यदि । स्थ । तमसा । आऽवृता । जालेन । अभिहिताःऽइव ।
सर्वाः । सम्ऽलुप्य । इतः । कृत्याः । पुनः । कर्त्रे । प्र । हिण्मसि ॥ ३० ॥

कृत्याकृतो वलगिनोभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोमून् कृत्याकृतो जहि ॥ ३१ ॥

कृत्याऽकृतः । वलगिनः । अभिऽनिष्कारिणः । प्रऽजाम् ।
मृणीहि । कृत्ये । मा । उत् । शिषः । अमून् । कृत्याऽकृतः । जहि ॥ ३१ ॥

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रे कृत्याकृतां कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि॥३२॥ (३)

यथा । सूर्यः । मुच्यते । तमसः । परि । रात्रिम् । जहाति । उषसः । च । केतून् ।

एव। अहम्। सर्वम्। दुःऽभूतम्। कर्त्रम्। कृत्याऽकृता। कृतम्। हस्तीऽइव। रजः। दुःऽइतम्। जहामि ॥ ३२ ॥ (३)

इति प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

• अस्मिन् सूक्ते पुरुषस्य अर्थात् मनुष्यस्य माहात्म्यं वर्ण्यते। तच्च तद्भिन्नभिन्नावयवान् को देवोकरोद् इत्यादिप्रश्नरूपेण तत्तत्प्रश्नानाम् उत्तररूपेण च ॥

यज्ञलम्पटाः सांप्रदायिकास्तु एतत् सूक्तं पुरुषमेधे विनियोजयन्ति। तद् यथा। पुरुषमेधे स्नातालंकृतम् उत्सृज्यमानं पुरुषपशुं "केन पार्ष्णी" इत्यर्धसूक्तेन अनुमन्त्रयते। तद् उक्तं वैताने। "तं ह स्नातम् अलंकृतम् उत्सृज्यमानं सहस्रषाहुः पुरुषः [१९. ६] केन पार्ष्णी [१०. २] इत्यनुमन्त्रयते" इति [वै० ७. २] ॥

तथा अस्य सूक्तस्य शनैश्चरग्रहदेवत्यहविराज्यहोमे समिदाधानोपस्थानयोश्च विनियोगः। "अथाज्यभागान्ते विषासहिम् [१७. १] इत्यादित्याय हविषो हुत्वाज्यं जुहुयात् समिध आधायोपतिष्ठते" इति प्रक्रम्य शान्तिकल्पे सूत्रितम्। "सहस्रषाहुः पुरुषः [१९. ६] केन पार्ष्णी [१०. २] प्राणाय नमः [११. ६] इति शनैश्चराय" इति [शा० क० १५] ॥

**केन पार्ष्णी आभृते पुरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ।**
**केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥१॥**

केन। पार्ष्णी इति। आभृते इत्याऽभृते। पुरुषस्य। केन। मांसम्। सम्ऽभृतम्। केन। गुल्फौ। केन। अङ्गुलीः। पेशनीः। केन। खानि। केन। उत्ऽशङ्खौ। मध्यतः। कः। प्रतिऽस्थाम् ॥ १ ॥

**कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य।**
**जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्व स्विज्जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत ॥ २ ॥**

कस्मात्। नु। गुल्फौ। अधरौ। अकृण्वन्। अष्ठीवन्तौ। उत्ऽतरौ। पुरुषस्य। जङ्घे इति। निःऽऋत्य। नि। अदधुः। क्व। स्वित्। जानुनोः। संधी इति सम्ऽधी। कः। ऊं इति। तत्। चिकेत ॥ २ ॥

**चतुष्टयं युज्यते संहितान्तं जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम्।**
**श्रोणी यदूरू क उ तज्जजान याभ्यां कुसिन्धं सुदृढं बभूव ॥ ३ ॥**

चतुष्टयम्। युज्यते। संहितऽअन्तम्। जानुऽभ्याम्। ऊर्ध्वम्। शिथिरम्। कबन्धम्। श्रोणी इति। यत्। ऊरू इति। कः। ऊं इति। तत्। जजान। याभ्याम्। कुसिन्धम्। सुऽदृढम्। बभूव ॥ ३ ॥

**कति देवाः कतम ते आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य।**

१ So we with all our authorities, except **K** who has °च्छङ्खौ. २ **A B B D K** **D**c **C**s निर्ऋत्यं. We with **R P P J C**p. ३ **P** कुसिधम्। We with **P J C**p.

कति॑ स्त॒नौ व्य॑दधुः क॒कुदौ॒ कति॑ स्क॒न्धान् कति॑ पृ॒ष्टीरचिन्वन् ॥ ४ ॥

कति॑ । दे॒वाः । कत॑मे । ते । आस॑न् । ये । उ॒रः । ग्रीवाः॑ । चि॒क्यु॒ः । पु॒रु॒ष॒स्य ।

कति॑ । स्त॒नौ॑ । वि । अ॒द॒धुः॒ । कः । क॒कुदौ॑ । कति॑ । स्क॒न्धान् । कति॑ । पृ॒ष्टीः । अ॒चि॒न्व॒न् ॥ ४ ॥

को अ॑स्य बा॒हू सम॑भरद् वी॒र्यं॑ करवा॒दिति॑ ।

अं॒सौ को अ॑स्य॒ तद् दे॒वः कु॒सिन्धे॒ अध्या द॑धौ ॥ ५ ॥

कः । अ॒स्य॒ । बा॒हू इति॑ । सम् । अ॒भ॒र॒त् । वी॒र्य॑म् । क॒र॒वा॒त् । इति॑ ।

अं॒सौ । कः । अ॒स्य॒ । तत् । दे॒वः । कु॒सिन्धे॑ । अधि॑ । आ । द॒धौ॒ ॥ ५ ॥

कः स॒प्त खानि॒ वि त॑तर्द॒ शी॒र्षणि॒ कर्णा॑वि॒मौ नासि॑के॒ चक्षणी॒ मुख॑म् ।

येषां॑ पुरु॒त्रा वि॒जय॑स्य म॒ह्मनि॒ चतु॑ष्पादो॒ द्विप॑दो यन्ति॒ याम॑म् ॥ ६ ॥

कः । स॒प्त । खानि॑ । वि । त॒त॒र्द॒ । शी॒र्षणि॑ । कर्णौ॑ । इ॒मौ । नासि॑के॒ इति॑ । चक्षणी॒ इति॑ । मुख॑म् ।

येषा॑म् । पु॒रु॒ऽत्रा । वि॒ऽज॒य॑स्य । म॒ह्मनि॑ । चतुः॑ऽपादः । द्वि॒ऽप॒दः॑ । यन्ति॑ । याम॑म् ॥ ६ ॥

हन्वो॑र्हि॒ जिह्वा॑मद॒धात् पु॑रू॒चीम॒धा म॒हीम॒धि शि॒श्राय॒ वाच॑म् ।

स आ व॑रीवर्ति॒ भुव॑नेष्व॒न्तर॒पो वसा॑नः॒ क उ॒ तच्चि॑केत ॥ ७ ॥

हन्वोः॑ । हि । जिह्वा॑म् । अ॒द॒धात् । पु॒रू॒चीम् । अध॑ । म॒हीम् । अधि॑ । शि॒श्राय॑ । वाच॑म् ।

सः । आ । व॒री॒व॒र्ति॒ । भुव॑नेषु । अ॒न्तरि॑ति॑ । अ॒पः । वसा॑नः । कः । ऊं॒ इति॑ । तत् । चि॒के॒त॒ ॥ ७ ॥

मस्ति॑ष्कमस्य यत॒मो ल॒लाटं॑ क॒काटि॑कां प्रथ॒मो यः क॒पाल॑म् ।

चि॒त्वा चि॒त्यं॑ हन्वोः॑ पुरु॒षस्य॑ दि॒वं रु॑रोह कत॒मः स दे॒वः ॥ ८ ॥

मस्ति॑ष्कम् । अ॒स्य॒ । य॒त॒मः । ल॒लाट॑म् । क॒काटि॑काम् । प्र॒थ॒मः । यः । क॒पाल॑म् ।

चि॒त्वा । चि॒त्य॑म् । हन्वोः॑ । पु॒रु॒ष॒स्य । दि॒वम् । रु॒रो॒ह॒ । क॒त॒मः । सः । दे॒वः ॥ ८ ॥

प्रि॒याप्रि॒याणि॑ बहु॒ला स्वप्ने॑ संबाधत॒न्द्र्यः॑ ।

---

१ So we with all our authorities. See Rw. २ D K K$^{m}$ V De Cs P J Cp पृष्टीर°. We with A B$^{h}$ R S$^{m}$ P$^{2}$. ३ P ते ।. ४ P चिक्युः ।. ५ K V °भव°. ६ K K$^{m}$ शीर्षाणि. ७ A R कृकाटिकां. We with B$^{h}$ D K K$^{m}$ S$^{m}$ V De Cs and P P$^{2}$ J Cp. ८ B$^{h}$ Cs पुरुषस्य. ९ P$^{2}$ चित्यम् ।.

आनन्दानुग्रो नन्दाँश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥ ९ ॥

प्रियऽअप्रियाणि । बहुला । स्वप्नम् । संबाधऽतन्द्र्यः ।

आऽनन्दान् । उग्रः । नन्दान् । च । कस्मात् । वहति । पुरुषः ॥ ९ ॥

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेमतिः ।

राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥ १० ॥ (४)

आर्तिः । अवर्तिः । निःऽऋतिः । कुतः । नु । पुरुषे । अमतिः ।

राद्धिः । सम्ऽऋद्धिः । अविऽऋद्धिः । मतिः । उत्ऽइतयः । कुतः ॥ १० ॥ (४)

को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः ।

तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ॥११॥

कः । अस्मिन् । आपः । वि । अदधात् । विषुऽवृतः । पुरुऽवृतः । सिन्धुऽसृत्याय । जाताः ।

तीव्राः । अरुणाः । लोहिनीः । ताम्रऽधूम्राः । ऊर्ध्वाः । अवाचीः । पुरुषे । तिरश्चीः ॥ ११ ॥

को अस्मिन् रूपमदधात् को महानं च नाम च ।

गातुं को अस्मिन् कः केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥ १२ ॥

०अस्मिन् । रूपम् । अदधात् । कः । महानम् । च । नाम । च ।

गातुम् । कः । अस्मिन् । कः । केतुम् । कः । चरित्राणि । पुरुषे ॥ १२ ॥

को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु ।

समानमस्मिन् को देवोधि शिश्राय पूरुषे ॥ १३ ॥

०अस्मिन् । प्राणम् । अवयत् । कः । अपानम् । विऽआनम् । ऊं इति ।

सम्ऽआनम् । अस्मिन् । कः । देवः । अधि । शिश्राय । पुरुषे ॥ १३ ॥

को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोधि पूरुषे ।

को अस्मिन्त्सत्यं कोनृतं कुतो मृत्युः कुतोमृतम् ॥ १४ ॥

कः । अस्मिन् । यज्ञम् । अदधात् । एकः । देवः । अधि । पुरुषे ।

कः । अस्मिन् । सत्यम् । कः । अनृतम् । कुतः । मृत्युः । कुतः । अमृतम् ॥ १४ ॥

---

१ A पुरुषेमतिः. २ K प्रवृद्धि°. ३ B K R V पुरुवृतः. We with A D K Ś De Cs. ४ K °भृत्याय.

को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५ ॥

कः । अस्मै । वासः । परि । अदधात् । कः । अस्य । आयुः । अकल्पयत् ।
बलम् । कः । अस्मै । प्र । अयच्छत् । कः । अस्य । अकल्पयत् । जवम् ॥ १५ ॥

केनापो अन्वततनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्र केनं सायंभवं ददे ॥ १६ ॥

केन । आपः । अनु । अततनुत । केन । अहः । अकरोत् । रुचे ।
उषसम् । केन । अनु । ऐन्द्र । केन । सायम्ऽभवम् । ददे ॥ १६ ॥

को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को बाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥

कः । अस्मिन् । रेतः । नि । अदधात् । तन्तुः । आ । तायताम् । इति ।
मेधाम् । कः । अस्मिन् । अधि । औहत् । कः । बाणम् । कः । नृतः । दधौ ॥ १७ ॥

केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥ १८ ॥

केन । इमाम् । भूमिम् । और्णोत् । केन । परि । अभवत् । दिवम् ।
केन । अभि । मह्ना । पर्वतान् । केन । कर्माणि । पुरुषः ॥ १८ ॥

केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।
केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन् निहितं मनः ॥ १९ ॥

केन । पर्जन्यम् । अनु । एति । केन । सोमम् । विऽचक्षणम् ।
केन । यज्ञम् । च । श्रद्धाम् । च । केन । अस्मिन् । निऽहितम् । मनः ॥ १९ ॥

केन श्रोत्रियमाप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम् ।
केनेममग्निं पूरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २० ॥ (५)

केन । श्रोत्रियम् । आप्नोति । केन । इमम् । परमेऽस्थिनम् ।
केन । इमम् । अग्निम् । पुरुषः । केन । सम्ऽवत्सरम् । ममे ॥ २० ॥ (५)

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ।

ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥ २१ ॥

ब्रह्म । श्रोत्रियम् । आप्नोति । ब्रह्म । इमम् । परमेऽस्थिनम् ।

ब्रह्म । इमम् । अग्निम् । पुरुषः । ब्रह्म । सम्ऽवत्सरम् । ममे ॥ २१ ॥

केन देवाँ अनु क्षियति केन दैवजनीर्विशः ।

केनेदमन्यन्नक्षत्रं केन सत् क्षत्रमुच्यते ॥ २२ ॥

केन । देवान् । अनु । क्षियति । केन । दैवऽजनीः । विशः ।

केन । इदम् । अन्यत् । नक्षत्रम् । केन । सत् । क्षत्रम् । उच्यते ॥ २२ ॥

ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।

ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते ॥ २३ ॥

ब्रह्म । देवान् । अनु । क्षियति । ब्रह्म । दैवऽजनीः । विशः ।

ब्रह्म । इदम् । अन्यत् । नक्षत्रम् । ब्रह्म । सत् । क्षत्रम् । उच्यते ॥ २३ ॥

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।

केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २४ ॥

केन । इयम् । भूमिः । विऽहिता । केन । द्यौः । उत्ऽतरा । हिता ।

केन । इदम् । ऊर्ध्वम् । तिर्यक् । च । अन्तरिक्षम् । व्यचः । हितम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।

ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मणा । भूमिः । विऽहिता । ब्रह्म । द्यौः । उत्ऽतरा । हिता ।

ब्रह्म । इदम् । ऊर्ध्वम् । तिर्यक् । च । अन्तरिक्षम् । व्यचः । हितम् ॥ २५ ॥

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।

मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोधि शीर्षतः ॥ २६ ॥

मूर्धानम् । अस्य । सम्ऽसीव्य । अथर्वा । हृदयम् । च । यत् ।

मस्तिष्कात् । ऊर्ध्वः । प्र । ऐरयत । पवमानः । अधि । शीर्षतः ॥ २६ ॥

---

१ A R देवँ. We with $^{h}$B D K $^{m}$K $^{m}$S V De C. २ K क्षियन्ति. ३ A R $^{m}$S देवँ. We with $^{h}$B D K $^{m}$K V De C. ४ K क्षयति.

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुञ्जितः ।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥ २७ ॥

तत् । वै । अथर्वणः । शिरः । देवऽकोशः । सम्ऽउञ्जितः ।
तत् । प्राणः । अभि । रक्षति । शिरः । अन्नम् । अथो इति । मनः ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३ ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वः । नु । सृष्टा३ः । तिर्यङ् । नु । सृष्टा३ः । सर्वाः । दिशः । पुरुषः । आ । बभूवाँ३ ।
पुरम् । यः । ब्रह्मणः । वेद । यस्याः । पुरुषः । उच्यते ॥ २८ ॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २९ ॥

यः । वै । ताम् । ब्रह्मणः । वेद । अमृतेन । आऽवृताम् । पुरम् ।
तस्मै । ब्रह्म । च । ब्राह्माः । च । चक्षुः । प्राणम् । प्रऽजाम् । ददुः ॥ २९ ॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥

न । वै । तम् । चक्षुः । जहाति । न । प्राणः । जरसः । पुरा ।
पुरम् । यः । ब्रह्मणः । वेद । यस्याः । पुरुषः । उच्यते ॥ ३० ॥

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१ ॥

अष्टाऽचक्रा । नवऽद्वारा । देवानाम् । पूः । अयोध्या ।
तस्याम् । हिरण्ययः । कोशः । स्वःऽगः । ज्योतिषा । आऽवृतः ॥ ३१ ॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥

तस्मिन् । हिरण्यये । कोशे । त्रिऽअरे । त्रिऽप्रतिस्थिते ।
तस्मिन् । यत् । यक्षम् । आत्मन्ऽवत् । तत् । वै । ब्रह्मऽविदः । विदुः ॥ ३२ ॥

---

१ P °ऊञ्जितः ।. २ Such is the accent and reading of all our authorities. ३ So P P. J °वांम् ॥ ४ ।. Cr °वाँ ४ ।. ५ P ब्रह्मा ।. We with P J Cr.

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥ (६)

प्रऽभ्राजमानाम्। हरिणीम्। यशसा। सम्ऽपरिवृताम्।
पुरम्। हिरण्ययीम्। ब्रह्मा। आ। विवेश। अपराऽजिताम् ॥ ३३ ॥ (६)

प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

अस्मिन् सूक्ते वरणस्य नाम मणेः प्रतापो वीर्यं शत्रुक्षयसामर्थ्यं धारयितुर्दुःखपरिहरणं च वर्ण्यते। तदनुमार्गेणैव सांप्रदायिकास्तद् विनियोजयन्ति। तद् यथा।

शत्रुक्षयादिकामः "अयं मे वरणः" इत्यर्धसूक्तेन दधि मधुनि च त्रिरात्रं वासितं वरणमणिं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात्। सूत्रितं हि। "अयं मे वरणः [१०. ३] अरातीयोः [१०. ६] इति मन्त्रोक्तान् वासितान् बध्नाति" इति [कौ० ३. २] ॥

तथा "अभयां भयार्तस्य" इति [न० क० १७] विहितायाम् अभयाख्यायां महाशान्तौ वरणमणिबन्धनेपि एतत् सूक्तम्। उक्तं नक्षत्रकल्पे। "अयं मे वरणो मणिरिति वारणम् अभयायाम्" इति [न० क० १९] ॥

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः ॥ १ ॥

अयम्। मे। वरणः। मणिः। सपत्नऽक्षयणः। वृषा।
तेन। आ। रभस्व। त्वम्। शत्रून्। प्र। मृणीहि। दुरस्यतः ॥ १ ॥

प्रैणान्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्।
अवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः ॥ २ ॥

प्र। एनान्। शृणीहि। प्र। मृण। आ। रभस्व। मणिः। ते। अस्तु। पुरःऽएता। पुरस्तात्।
अवारयन्त। वरणेन। देवाः। अभिऽआचारम्। असुराणाम्। श्वःऽश्वः ॥ २ ॥

अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दृंहि ये त्वा द्विषन्ति ॥ ३ ॥

अयम्। मणिः। वरणः। विश्वऽभेषजः। सहस्रऽअक्षः। हरितः। हिरण्ययः।
सः। ते। शत्रून्। अधरान्। पादयाति। पूर्वः। तान्। दृंहि। ये। त्वा। द्विषन्ति ॥ ३ ॥

---

१ K हिरण्मयीं. K हिरण्मयीं changed from हिरण्ययीं. We with A B D R S V Dc Cs P P J Cp. २ A K R Dc प्रणान्छृ°. D Cs प्रैणान्छृ°. We with B K S V. ३ R S मणिष्टे corrected from मणिस्ते. We with A B D K V Dc Cs. ४ A B B D K K R S V Cs. श्वश्वः. We with Dc and P P Cp.

अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात् ।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ४ ॥

अयम् । ते । कृत्याम् । विऽततताम् । पौरुषेयात् । अयम् । भयात् ।
अयम् । त्वा । सर्वस्मात् । पापात् । वरणः । वारयिष्यते ॥ ४ ॥

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः ।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥ ५ ॥

वरणः । वारयातै । अयम् । देवः । वनस्पतिः ।
यक्ष्मः । यः । अस्मिन् । आऽविष्टः । तम् । ऊं इति । देवाः । अवीवरन् ॥ ५ ॥

स्वप्नं सुष्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम् ।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥ ६ ॥

स्वप्नम् । सुस्वा । यदि । पश्यासि । पापम् । मृगः । सृतिम् । यति । धावात् । अजुष्टाम् ।
परिऽक्षवात् । शकुनेः । पापऽवादात् । अयम् । मणिः । वरणः । वारयिष्यते ॥ ६ ॥

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात् ।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ७ ॥

अरात्याः । त्वा । निःऽऋत्याः । अभिऽचारात् । अथो इति । भयात् ।
मृत्योः । ओजीयसः । वधात् । वरणः । वारयिष्यते ॥ ७ ॥

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम् ।
ततो नो वारयिष्यतेयं देवो वनस्पतिः ॥ ८ ॥

यत् । मे । माता । यत् । मे । पिता । भ्रातरः । यत् । च । मे । स्वाः । यत् । एनः ।
चकृम । वयम् ।
ततः । नः । वारयिष्यते । अयम् । देवः । वनस्पतिः ॥ ८ ॥

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥ ९ ॥

वरणेन । प्रऽव्यथिताः । भ्रातृव्याः । मे । सऽबन्धवः ।
असूर्तम् । रजः । अपि । अगुः । ते । यन्तु । अधमम् । तमः ॥ ९ ॥

---

१ S सबन्धवाः.

अरिष्टोहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः।
तं मायं वरुणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥ १० ॥ (७)

अरिष्टः। अहम्। अरिष्टऽगुः। आयुष्मान्। सर्वऽपुरुषः।
तम्। मा। अयम्। वरुणः। मणिः। परि। पातु। दिशःऽदिशः ॥ १० ॥ (७)

अयं मे वरुण उरसि राजा देवो वनस्पतिः।
स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥ ११ ॥

अयम्। मे। वरुणः। उरसि। राजा। देवः। वनस्पतिः।
सः। मे। शत्रून्। वि। बाधताम्। इन्द्रः। दस्यून्ऽइव। असुरान् ॥ ११ ॥

इमं बिभर्मि वरुणमायुष्मान्छतशारदः।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥ १२ ॥

इमम्। बिभर्मि। वरुणम्। आयुष्मान्। शतऽशारदः।
सः। मे। राष्ट्रम्। च। क्षत्रम्। च। पशून्। ओजः। च। मे। दधत् ॥ १२ ॥

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरुणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १३ ॥

यथा। वातः। वनस्पतीन्। वृक्षान्। भनक्ति। ओजसा।
एव। सऽपत्नान्। मे। भङ्ग्धि। पूर्वान्। जातान्। उत। अपरान्। वरुणः। त्वा। अभि। रक्षतु ॥ १३ ॥

यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्लातो वनस्पतीन्।
एवा सपत्नान् मे प्लाहि पूर्वान्० ॥ १४ ॥

यथा। वातः। च। अग्निः। च। वृक्षान्। प्लातः। वनस्पतीन्।
०। सऽपत्नान्। मे। प्लाहि। पूर्वान्।० ॥ १४ ॥

यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः

१ P वरुणः।. २ A K R Dc °युष्मांछत°. We with B L S V Cs. ३ K पूर्वा. ४ K °जातानु° for जाताँ उ°. ५ P प्लातः।. D इयेरे.

एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय
पूर्वान् जाताँ उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १५ ॥

यथा । वातेन । प्रऽक्षीणाः । वृक्षाः । शेरे । निऽअर्पिताः ।
एव । सऽपत्नान् । त्वम् । मम । प्र । क्षिणीहि । नि । अर्पय ।
पूर्वान् । जातान् । उत । अपरान् । वरणः । त्वा । अभि । रक्षतु ॥ १५ ॥

तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥ १६ ॥

तान् । त्वम् । प्र । छिन्द्धि । वरण । पुरा । दिष्टात् । पुरा । आयुषः ।
ये । एनम् । पशुषु । दिप्सन्ति । ये । च । अस्य । राष्ट्रऽदिप्सवः ॥ १६ ॥

यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १७ ॥

यथा । सूर्यः । अतिऽभाति । यथा । अस्मिन् । तेजः । आऽहितम् ।
एव । मे । वरणः । मणिः । कीर्तिम् । भूतिम् । नि । यच्छतु ।
तेजसा । मा । सम् । उक्षतु । यशसा । सम् । अनक्तु । मा ॥ १७ ॥

यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि । एवा मे० ॥ १८ ॥

यथा । यशः । चन्द्रमसि । आदित्ये । च । नृऽचक्षसि ॥०॥ १८ ॥

यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि । एवा० ॥ १९ ॥

०। यशः । पृथिव्याम् । यथा । अस्मिन् । जातऽवेदसि ॥०॥ १९ ॥

यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे । एवा० ॥ २० ॥ (८)

०। यशः । कन्यायाम् । यथा । अस्मिन् । सम्ऽभृते । रथे ॥०॥ २० ॥ (८)

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः । एवा० ॥ २१ ॥

०। यशः । सोमऽपीथे । मधुऽपर्के । यथा । यशः ॥०॥ २१ ॥

यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः । एवा० ॥ २२ ॥

---

१ D S C s सपत्नं°. We with A B K K R V De. २ A R जातँ. ३ B यथास्मिन्ते°.
४ K यथास्मिं°. ५ So we with all our authorities. Rw read यशो अग्नि°.

०। यशः। अग्निऽहोत्रे। वषट्ऽकारे। यथा। यशः ॥० ॥ २२ ॥[1]

**यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम्। एवा० ॥ २३ ॥**

०। यशः। यजमाने। यथा। अस्मिन्। यज्ञे। आऽहितम् ॥० ॥ २३ ॥

**यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि। एवा० ॥ २४ ॥**

यथा। यशः। प्रजाऽपतौ। यथा। अस्मिन्। परमेऽस्थिनि ॥० ॥ २४ ॥

**यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम्।**
**एवा मे वरुणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु**
**तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥ (९)**

यथा। देवेषु। अमृतम्। यथा। एषु। सत्यम्। आऽहितम्।
एव। मे। वरुणः। मणिः। कीर्तिम्। भूतिम्। नि। यच्छतु।
तेजसा। मा। सम्। उक्षतु। यशसा। सम्। अनक्तु। मा ॥ २५ ॥ (९)

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

अस्मिन् सूक्ते नानासर्पास्तेषां च विषाणि तत्तत्प्रतीकाराश्च कविवाग्विषयः। सर्पविषभैषज्ये च मन्त्राः। सर्पविषहारिकाश्च काश्चिदोषधयः ॥ सांप्रदायिका एवं विनियोजयन्ति। तद् यथा।

विषभैषज्ये कर्मणि "इन्द्रस्य प्रथमः" इत्यर्धसूक्तस्य "ब्राह्मणो जज्ञे" इति [४. ६] सूक्तवद् विनियोगोवगन्तव्यः ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन सूक्तेन पैद्गं पिष्ट्वा अभिमन्त्र्य दक्षिणेनाकृष्टेन दक्षिणनासापुटे नस्यं ददाति ॥ "पैद्गं कीटकम्। तल्लिर्णाति लोके प्रसिद्धा। तं पिष्ट्वा" इति केशवः "पैद्गः हिरण्यवर्णसदृशः कीटश्चित्रितो वा। स पैद्ग इत्युच्यते" इति च ॥

तथा "अहिभये अनेन सूक्तेन श्वेतवस्त्रवेष्टितं पैद्गम् अभिमन्त्र्य यत्राहिभयं तत्र निखनति" इति केशवः ॥ "सर्पाद्भये पैद्गं वस्त्रे बद्ध्वा स्थापयति तस्मिन् वेश्मनि" इति दारिलः ॥

शङ्खाविषभैषज्ये कर्मणि "अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय" इति ऋचा[२५] सर्पदष्टं शिरःप्रभृति आप्रपदान्तं हस्तेन मार्ष्टि।

तत्रैव कर्मणि "आरे अभूत्" इति ऋचा [२६] उल्मुकं प्रताप्य अभिमन्त्र्य ततो विषव्रणं दृष्ट्वा तत्संमुखं क्षिपति। सर्पादर्शने यतो दष्टस्ततो निरस्यति उल्मुकम् ॥

तद् उक्तं कौशिकेन। "इन्द्रस्य प्रथम इति तक्षकायेति [कौ० ४. ४] उक्तम् [४. ६]। पैद्गं प्रकर्ष्य दक्षिणेनाकृष्टेन दक्षिणस्यां नस्तः। अहिभये सिच्यवगूहयति। अङ्गादङ्गाद् इत्या प्रपदात्। दंशोत्तमया निताप्याहिम् अभि निरस्यति यतो दष्टः" इति [कौ० ४. ८] ॥

**इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत्।**
**अहीनामपमा रथं स्थाणुमारदथार्षत ॥ १ ॥**

इन्द्रस्य। प्रथमः। रथः। देवानाम्। अपरः। रथः। वरुणस्य। तृतीयः। इत्।
अहीनाम्। अपऽमा। रथः। स्थाणुम्। आरत्। अथ। अर्षत् ॥ १ ॥

---

१ So all our authorities. Should not we read अपमा? २ B B$^{h}$ D S$^{m}$ C ॰रथः स्थाणु॰. We with A K$^{m}$ R V Dc. ३ A D R S$^{m}$ ॰थारिषत, C ॰थारषत्. We with B K K$^{m}$ V Dc.

दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः पुरुषस्य वारः ।
रथस्य बन्धुरम् ॥ २ ॥

दर्भः । शोचिः । तरूणकम् । अश्वस्य । वारः । पुरुषस्य । वारः ।
रथस्य । बन्धुरम् ॥ २ ॥

अव श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।
उदस्मृतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ३ ॥

अव । श्वेत । पदा । जहि । पूर्वेण । च । अपरेण । च ।
उदस्मृतम्ऽइव । दारु । अहीनाम् । अरसम् । विषम् । वारः । उग्रम् ॥ ३ ॥

अरंघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत् ।
उदस्मृतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ४ ॥

अरम्ऽघुषः । निऽमज्य । उत्ऽमज्य । पुनः । अब्रवीत् ।
उदस्मृतम्ऽइव । दारु । अहीनाम् । अरसम् । विषम् । वारः । उग्रम् ॥ ४ ॥

पैङ्गो हन्ति कसर्णीलं पैङ्गः श्वित्रमुतासितम् ।
पैङ्गो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाकाः ॥ ५ ॥

पैङ्गः । हन्ति । कसर्णीलम् । पैङ्गः । श्वित्रम् । उत । असितम् ।
पैङ्गः । रथर्व्याः । शिरः । सम् । बिभेद । पृदाकाः ॥ ५ ॥

पैङ्ग प्रेहि प्रथमोनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥ ६ ॥

पैङ्ग । प्र । इहि । प्रथमः । अनु । त्वा । वयम् । आ । ईमसि ।
अहीन् । वि । अस्यतात् । पथः । येन । स्म । वयम् । आऽईमसि ॥ ६ ॥

इदं पैङ्गो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदाहिहिंसो बाजिनीवतः ॥ ७ ॥

---

१ K पुरुषस्य. K reads पु° in the *Saṁhitā* too. २ A D R C P J वारुग्रम्. We with B K K S V D P C. ३ A B K K R V D पैङ्गःश्वित्र°. J श्वित्रम्. P P श्वित्रम्. C चित्रम्. We with D S C P P. ४ R पदाअहिहिंसो. ५ A P J °हिहिंसो. We with B D K K R S V D C.

इदम्। पैद्वः। अजायत। इदम्। अस्य। पराऽअयनम्।
इमानि। अर्वतः। पदा। अहिऽइव्यः[1]। वाजिनीऽवतः॥ ७॥

संयतं न वि ष्यरद् व्यात्तं न सं यमत्।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा॥ ८॥

सम्ऽयतम्। न। वि। स्परत्। विऽआत्तम्। न। सम्। यमत्।
अस्मिन्। क्षेत्रे। द्वौ। अही इति। स्त्री। च। पुमान्। च। तौ। उभौ। अरसा॥ ८॥

अरसासः[2] इहाहयो ये अन्ति[3] ये च दूरके[4]।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम्॥ ९॥

अरसासः। इह। अहयः। ये। अन्ति[3]। ये। च। दूरके।
घनेन। हन्मि। वृश्चिकम्। अहिम्। दण्डेन। आऽगतम्॥ ९॥

अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च।
इन्द्रो मेहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत्॥ १०॥ (१०)

अघऽअश्वस्य। इदम्। भेषजम्। उभयोः। स्वजस्य। च।
इन्द्रः। मे। अहिम्। अघऽयन्तम्। अहिम्। पैद्वः। अरन्धयत्॥ १०॥ (१०)

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधान्नः।
इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीर्ध्यत आसते॥ ११॥

पैद्वस्य। मन्महे। वयम्। स्थिरस्य। स्थिरऽधान्नः।
इमे। पश्चा। पृदाकवः। प्रऽदीर्ध्यतः। आसते॥ ११॥

नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम्॥ १२॥

नष्टऽअसवः। नष्टऽविषाः। हताः। इन्द्रेण। वज्रिणा।
जघान। इन्द्रः। जघ्निम। वयम्॥ १२॥

---

१ P पादा। २ P J अहिऽइव्यः। P अहिऽइव्यः। We with Cp. ३ B has corrected this into अंती. A B D K R Cs अंति. P J अंति। We with S V De P Cp. ४ P दुरके। ५ R जघ्निमा.

हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥ १३ ॥

हताः । तिरश्चिऽराजयः । निऽपिष्टासः । पृदाकवः ।
दर्विम् । करिक्रतम् । श्वित्रम् । दर्भेषु । असितम् । जहि ॥ १३ ॥

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।
हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥ १४ ॥

कैरातिका । कुमारिका । सका । खनति । भेषजम् ।
हिरण्ययीभिः । अभ्रिऽभिः । गिरीणाम् । उप । सानुषु ॥ १४ ॥

आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥ १५ ॥

आ । अयम् । अगन् । युवा । भिषक् । पृश्निऽहा । अपराऽजितः ।
सः । वै । स्वजस्य । जम्भनः । उभयोः । वृश्चिकस्य । च ॥ १५ ॥

इन्द्रो मेहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च ।
वातापर्जन्योभा[३] ॥ १६ ॥

इन्द्रः । मे । अहिम् । अरन्धयत् । मित्रः । च । वरुणः । च ।
वातापर्जन्या । उभा ॥ १६ ॥

इन्द्रो मेहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाकम् ।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥ १७ ॥

इन्द्रः । मे । अहिम् । अरन्धयत् । पृदाकुम् । च । पृदाकम् ।
स्वजम् । तिरश्चिऽराजिम् । कसर्णीलम् । दशोनसिम् ॥ १७ ॥

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव ।
तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित् तेषामसद् रसः ॥ १८ ॥

इन्द्रः । जघान । प्रथमम् । जनितारम् । अहे । तव ।

१ A B K K[m] V De श्वित्रं. F P[2] J श्वित्रम्. We with B[b] D R S[m] C[s] C[p]. २ D °मुभयो°
३ D K °न्योभा. We with B[b] R S[m] V De C[s]

तेषाम्। ऊं इति। तृह्यमाणानाम्। कः। स्वित्। तेषाम्। असत्[1]। रसः॥ १८॥

सं हि शीर्षण्यग्रभं पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम्।
सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम्॥ १९॥

सम्। हि। शीर्षाणि। अग्रभम्। पौञ्जिष्ठःऽइव। कर्वरम्।
सिन्धोः। मध्यम्। पराऽइत्य। वि। अनिजम्। अहेः। विषम्॥ १९॥

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः॥ २०॥ (११)

अहीनाम्। सर्वेषाम्। विषम्। परा। वहन्तु। सिन्धवः।
हताः। तिरश्चिऽराजयः। निऽपिष्टासः। पृदाकवः॥ २०॥ (११)

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया।
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरेतु ते विषम्॥ २१॥

ओषधीनाम्। अहम्। वृणे। उर्वरीःऽइव। साधुऽया।
नयामि। अर्वतीःऽइव। अहे। निःऽएतु। ते। विषम्॥ २१॥

यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत्।
कान्दाविषं कनक्रकं निरैतवेतु ते विषम्॥ २२॥

यत्। अग्नौ। सूर्ये। विषम्। पृथिव्याम्। ओषधीषु। यत्।
कान्दाऽविषम्। कनक्रकम्। निःऽएतु। आ। एतु। ते। विषम्॥ २२॥

ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम॥ २३॥

ये। अग्निऽजाः। ओषधिऽजाः। अहीनाम्। ये। अप्सुऽजाः। विऽद्युतः। आऽबभूवुः।
येषाम्। जातानि। बहुऽधा। महान्ति। तेभ्यः। सर्पेभ्यः। नमसा। विधेम॥ २३॥

तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि।
अधस्पदेन ते पदमा दंदे विषदूषणम्॥ २४॥

१ A B D R Ś V De पौञ्जिष्ठ. P पौञ्जिष्ठः। We with K K[m] C P[2] J Cp. २ B कनिक्रकं. D Cs कनन्कंकं. K[m] कनत्कंकं. We with A R Ś V De P P[2] J Cp. ३ P बहुधा।.

नौदीं । नाम । असि । कन्या । घृताची । नाम । वै । असि ।
अधः5पदेन । ते । पदम् । आ । ददे । विष5दूषणम् ॥ २४ ॥

अङ्गादङ्गात् प्र च्यावय हृदयं परि वर्जय ।
अधो विषस्य यत् तेजोवाचीनं तदेतु ते ॥ २५ ॥

अङ्गात्5अङ्गात् । प्र । च्यवय । हृदयम् । परि । वर्जय ।
अधो । विषस्य । यत् । तेजः । अवाचीनम् । तत् । एतु । ते ॥ २५ ॥

आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ।
अग्निर्विषमहेर्निरधात् सोमो निरणयीत् ।
दंष्टारमन्वगाद् विषमहिरमृत ॥ २६ ॥ (१२)

आरे । अभूत् । विषम् । अरौत् । विषे । विषम् । अप्राक् । अपि ।
अग्निः । विषम् । अहेः । निः । अधात् । सोमः । निः । अनयीत् ।
दंष्टारम् । अनु । अगात् । विषम् । अहिः । अमृत ॥ २६ ॥ (१२)

द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति द्वितीयोनुवाकः ॥

अभिचारकर्मैतत् । शत्रुनाशनसमर्थबलम् उदके प्रवेश्य तदुदके वज्रत्वं कल्पयित्वा शत्रुम् अभिलक्ष्य तत् प्रक्षिपति । तद् एवम् । आदावपः संबोध्य यस्माद् यूयम् इन्द्रस्यौजो भवथ इन्द्रस्य सहआदि भवथ तस्माद् इन्द्रबलैर्युष्मान् युक्ताः करोमीत्याह । अनन्तरम् इन्द्रस्य भागः अर्थाद् अंशो भवथ सोमस्य भागः स्थ वरुणस्य भागः स्थ मित्रावरुणयोर्भागः स्थ यमस्य भागः स्थ पितॄणां सवितुश्च भागः स्थेत्याह । अनन्तरं योऽपां त्रैलोक्यस्थसकलजलानां भागः पूजनीयो युष्मासु अर्थात् पूर्वोक्तास्वप्सु भवति यश्च तादृश ऊर्मिः यश्च तादृशो वत्सः अर्थाद् अपां नपात्नाम वैद्युतोग्निः यश्च तादृशो वृषभः महाबलः कश्चित् पशुः यश्च अपां मध्य उदपद्यतेति वेदप्रसिद्धो हिरण्यगर्भ इति बलवान् आद्यो देवः यश्च अप्सु वर्तमानो नानावर्णोग्निप्रतीको मेघः ये च अपां मध्ये वर्तमाना अग्नयस्तान् सर्वान् प्रत्येकं शत्रुं प्रति क्षिपामि तं शत्रुम् अहं हन्यां तम् अनेन मन्त्रेण अनेन कर्मणा अनेन उदवज्रेण विदारयाणीत्याह । अनन्तरं स्वकृतात् त्रैहायणाद् अनृतनश्चनपापाद् रक्षणं याचते । अनन्तरं शत्रोरुपरि उदवज्रं प्रक्षेप्तुं प्रक्रामति यच्च प्रक्रामति स्वक्रमं संबोध्य तम् आह त्वं विष्णोः क्रमोसि अर्थाद् येन क्रमेण विष्णुस्त्रीन् लोकान् आक्रमत तादृशो बलवान् असि स्वयं पृथ्व्या च तीक्ष्णीकृतं शस्त्रम् असि तेन त्वया शत्रुं पृथिव्याः सकाशान्निर्णोदयामीति । तथैव त्वम् अन्तरिक्षतीक्ष्णीकृतोसि द्यौःसंशितोसि दिक्संशितोसि आशासंशितोसि ऋक्संशितोसि यज्ञसंशितोसि ओषधीसंशितोसि अप्संशितोसि कृपिसंशितोसि प्राणसंशितोसि तस्मात् तत्तदभिमानिप्रदेशात् तं शत्रुं निर्णोदयानीति । एतदुक्ता जितमस्माभिर्जिताः शत्रुसेना इत्याह । अनन्तरं दक्षिणां दिशं सरति किंचित्सृत्वा ताम् अभिमुखो भवतीत्यर्थः । तथैव इतरदिशश्च सप्तर्षिनाम नक्षत्रं ब्राह्मणांश्च अभिमुखो भवति प्रत्येकं च तेभ्यः सकाशाद् द्रविणं याचते । यं च शत्रुम् अन्विष्यामि तं हनानि इयं समित् तं हेतिर्भूत्वा भक्षतु इत्याह । अनन्तरं भुवस्पतिमन्नं याचते तथैव अग्निं वर्चः प्रजाम् आयुश्च याचते । अग्निं च यातुधानभेदनं याचते । अन्ते च

---

१ K अथा (अथ in the *padas*). २ Dc विषमप्रागपि subsequently changed to विषम-प्रागपि. A B $\overset{m}{B}$ D K $\overset{m}{K}$ R $\overset{m}{S}$ V Cs विषभप्रागपि. $\overset{2}{P}$ Cp अप्राक् ।. We with J P.

पूर्वोक्तानि यान्युदकानि तान्येव चतुर्भृष्टिं वज्रं कल्पयित्वा शत्रुशिरश्छेदाय प्रक्षिपति स च शत्रोरङ्गानि भिनत्तु देवाश्च तत् सर्वं मेऽनुजानन्त्वित्याशास्ते॥

सांप्रदायिकास्तु वक्ष्यमाणप्रकारेण तस्मिन्नेव कर्मणि विनियुञ्जन्ति सूक्तम्।

अभिचारकर्मणि उदवज्राणां विधानम् उच्यते। "इन्द्रस्यौजः" इति सूक्तस्य आद्यानां षण्णाम् ऋचाम् पूर्वार्धचैः कांस्यघटं प्रक्षालयति। "जिष्णवे योगाय" इति उत्तरार्धचैः षड्भिः कांस्यघटम् उदकसमीपे निदधाति। "इदम् अहं यो मा प्राच्या दिशः" इत्यृष्टर्चेन कल्पजेन सूक्तेन उदकमध्ये निदधाति घटम्। "इदम् अहम्" इति सूक्तेन उदकमध्ये घटस्य मुखं करोति। "इदमहं यो मा प्राच्या दिशः" इति सूक्तेन घटम् उदकपूर्णं कृत्वा अपक्रामति। "इदमहम्" इति सूक्तेन उदकपूर्णं घटं मण्डपे स्थापयति। एतद् अभिचारे उदकाहरणम्। तदनन्तरं वज्रप्रहरणविधिः। "इन्द्रस्यौजः" इति सर्वं कृत्वा "इदमहम्" इति स्थापनान्तं कृत्वा "अग्नेर्भागः" [७–१४] इत्याद्यष्टाभिर्ऋग्भिः आनीतोदकस्य द्विधाकरणम्। अर्धं घटे कृत्वा अर्धं भाजने करोति। तद्भाजनम् अग्नौ तापयति। घटम् अन्यस्मै पुरुषाय प्रदापयति। "अग्नेर्भागः" इत्यादयोष्टौ तापने मन्त्राः। ततो बहिर्दक्षिणामुख उपविश्य भाजनम् अग्रे कृत्वा "वातस्य रंहितस्य" इति सौत्रमन्त्रेण उदकं संगृह्य "शम् अग्नये" इति कल्पजेन सूक्तेन सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽभयं दद्यात्। "यो व आपोपाम्" [१५] इत्यृचा वज्रप्रक्षेपः॥ पुनरपि "वातस्य रंहितस्य" इत्यादि कृत्वा "यो व आपोपामूर्मिः" [१६] इति ऋचा वज्रप्रक्षेपः। एवम् उत्तराभिर्ऋग्भिः [१७–२१] वज्रप्रक्षेपः। "एनानधराचः पराचः" इति कल्पजया ऋचा भाजनस्थम् उदकं भूमौ निनयति। एवमेव "यं वयम्" [४२] इति सूक्तेन अन्वृचम् "अपामस्मै वज्रम्" [५०] इति ऋचा च वज्रप्रक्षेपः। "विष्णोः क्रमोसि" [२५–३६] इति द्वादशभिर्विष्णुक्रमान् क्रमते शत्रोरभिमुखम्। तद् उक्तं कौशिकेन। "इन्द्रस्यौज इति प्रक्षालयति। जिष्णवे योगायेत्यपो युनक्ति। "वातस्य रंहितस्यामृतस्य योनिरिति प्रतिगृह्णाति। उत्तमाः प्रताप्याधराः प्रदायैनमेनानधराचः परांचोवाक्स्तपसस्तमनयत "देवाः पितृभिः संविदानः प्रजापतिः प्रथमो देवतानाम् इत्यतिसृजति। इदम् अहं यो मा प्राच्या दिशोघायुरभिदासादपवा- "दीदिपुर्गृहः। तस्यैमां प्राणापानावपक्रामामि ब्रह्मणा। दक्षिणायाः प्रतीच्या उदीच्या ध्रुवाया व्यध्वाया ऊर्ध्वायाः। इदम् अहं "यो मा दिशाम् अन्तर्देशेभ्य इत्यपक्रामामीति। एवम् अभिष्टानापोहनविवेष्टनानि। सर्वाणि खलु शश्वद् भूतानि ब्राह्मणाद् "वज्रम् उद्यच्छमानाच्छङ्कन्ते मां हनिष्यसि मां हनिष्यसीति। तेभ्योभयं वदेच्छम् अग्नये शं पृथिव्यै शम् अन्तरिक्षाय शं वायवे "शं दिवे शं सूर्याय शं चन्द्राय शं नक्षत्रेभ्यः शं गन्धर्वाप्सरोभ्यः शं सर्पेतरजनेभ्यः शिवं मह्यम् इति। यो व आपोपां यं "वयम् अपाम् अस्मै वज्रम् इत्यन्वृचम् उदवज्रान्। विष्णोः क्रमोसीति विष्णुक्रमान्" इति [कौ॰ ६. ३]॥

"यदर्वाचीनम्" इति ऋचा [२२] आचामयति अनृतभाषणसंजातपापापनोदनकामम्॥

"समुद्रं वः प्र हिणोमि" इति ऋचा [२३] पत्न्यञ्जलावुदपात्रं निनयति सर्वेषु तन्त्रेषु। "बर्हिषि पत्न्यञ्जलौ निनयन्ति समुद्रं वः प्र हिणोमि" इति [कौ॰ १. ६] सूत्रात्॥

"सूर्यस्यावृतम्" इति पञ्चभिः [३७–४१] प्रदक्षिणम् आवर्तते सर्वेषु तन्त्रेषु। "सूर्यस्यावृतम् इत्यभिदक्षिणम् आवर्तते" इति [कौ॰ १. ६] सूत्रात्॥

**इन्द्रस्यौज स्येन्द्रस्य सह स्येन्द्रस्य बलं स्येन्द्रस्य वीर्य१ स्येन्द्रस्य नृम्णं स्य।**
**जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैवौ युनज्मि॥ १॥**

इन्द्रस्य। ओजः। स्थ। इन्द्रस्य। सहः। स्थ। इन्द्रस्य। बलम्। स्थ। इन्द्रस्य। वीर्यम्। स्थ। इन्द्रस्य। नृम्णम्। स्थ।

---

१ B वीर्य स्ये°.

1 So V₁ and V₂. 2 So V₁ and V₂. 3 V₁ °प्लगू°. We with V₂. 4 V₁ V₂ °ष्टाना°. 5 V₂ ब्राह्मणा. 6 V₁ V₂ °माना: शंकते.

जिष्णवे । योगाय । ब्रह्मऽयोगैः । वः । युनज्मि ॥ १ ॥

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैवौं युनज्मि ॥ २ ॥

०योगाय । क्षत्रऽयोगैः । वः ।० ॥ २ ॥

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैवौं युनज्मि ॥ ३ ॥

०योगाय । इन्द्रऽयोगैः । वः ।० ॥ ३ ॥

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगाय सोमयोगैवौं युनज्मि ॥ ४ ॥

०योगाय । सोमऽयोगैः । वः ।० ॥ ४ ॥

इन्द्रस्यौज० । जिष्णवे योगायाप्सुयोगैवौं युनज्मि ॥ ५ ॥

०योगाय । अप्सुऽयोगैः । वः । युनज्मि ॥ ५ ॥

इन्द्रस्यौज स्येन्द्रस्य सह स्येन्द्रस्य बलं स्येन्द्रस्य वीर्यं[1] स्येन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता मे आप स्थ ॥ ६ ॥

इन्द्रस्य । ओजः । स्थ । इन्द्रस्य । सहः । स्थ । इन्द्रस्य । बलम् । स्थ । इन्द्रस्य । वीर्यम् । स्थ । इन्द्रस्य । नृम्णम् । स्थ ।

जिष्णवे । योगाय । विश्वानि । मा । भूतानि । उप । तिष्ठन्तु । युक्ताः । मे । आपः । स्थ ॥ ६ ॥

अग्नेर्भाग स्थ ।
अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चौ अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ७ ॥

अग्नेः । भागः । स्थ ।

अपाम् । शुक्रम् । आपः । देवीः । वर्चः । अस्मासु । धत्त ।

प्रजाऽपतेः । वः । धाम्ना । अस्मै । लोकाय । सादये ॥ ७ ॥

इन्द्रस्य भाग स्थ ।०।०। ॥ ८ ॥

इन्द्रस्य । भागः ।० ॥ ८ ॥

सोमस्य भाग स्थ ।०।०। ॥ ९ ॥

सोमस्य । भागः ।० ॥ ९ ॥

---

१ B वीर्यं स्थे०.

वरुणस्य भागः स्थ ।०।० ॥ १० ॥ (१३)

वरुणस्य । भागः ।० ॥ १० ॥ (१३)

मित्रावरुणयोर्भागः स्थ ।०।० ॥ ११ ॥

मित्रावरुणयोः । भागः ।० ॥ ११ ॥

यमस्य भागः स्थ ।०।० ॥ १२ ॥

यमस्य । भागः ।० ॥ १२ ॥

पितॄणां भागः स्थ ।०।० ॥ १३ ॥

पितॄणाम् । भागः ।० ॥ १३ ॥

देवस्य सवितुर्भागः स्थ ।

अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।

प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १४ ॥

देवस्य । सवितुः । भागः । स्थ ।

अपाम् । शुक्रम् । आपः । देवीः । वर्चः । अस्मासु । धत्त ।

प्रजाऽपतेः । वः । धाम्ना । अस्मै । लोकाय । सादये ॥ १४ ॥

यो वः आपोपां भागो३ऽप्स्व१न्तर्यजुष्यो[1] देवयजनः ।

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि[2] ।

तेन तमभ्यतिसृजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि[3] यं वयं द्विष्मः ।

तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ १५ ॥

यः । वः । आपः । अपाम् । भागः । अप्-सु । अन्तः । यजुष्यः । देवऽयजनः ।

इदम् । तम् । अति । सृजामि । तम् । मा । अभिऽअवनिक्षि ।

तेन । तम् । अभिऽअतिसृजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ।

तम् । वधेयम् । तम् । स्तृषीय । अनेन । ब्रह्मणा । अनेन । कर्मणा । अनया । मेन्या ॥ १५ ॥

यो वः आपोपामूर्मिः-सु ०।०।०।० ॥ १६ ॥

---

१ K[m]K भागो१ऽप्स्व°. २ B माभ्यव°. P मा। अभि°. We with A[h]B D K[m]K[m]S V Dc Cs[2]P J Cp. ३ K[m]K V यो।स्मा°.

०अपाम् । ऊर्मिः । अप्ऽसु ।० ॥ १६ ॥

**यो वं आपोपां वत्सो३ऽप्सु ०।०।०।० ॥ १७ ॥**

०अपाम् । वत्सः । अप्ऽसु ।० ॥ १७ ॥

**यो वं आपोपां वृषभो३ऽप्सु ०।०।०।० ॥ १८ ॥**

०अपाम् । वृषभः । अप्ऽसु ।० ॥ १८ ॥

**यो वं आपोपां हिरण्यगर्भो३ऽप्सु ०।०।०।० ॥ १९ ॥**

०अपाम् । हिरण्यऽगर्भः । अप्ऽसु ।० ॥ १९ ॥

**यो वं आपोपामश्मा पृश्निर्दिव्यो३ऽप्सु ०।०।०।० ॥ २० ॥ (१४)**

यः । वः । आपः । अपाम् । अश्मा । पृश्निः । दिव्यः । अप्ऽसु । अन्तः । यजुष्याः । देवऽयजनः ।

इदम् । तम् । अति । सृजामि । तम् । मा ।० ॥ तेन । तम् ।० ॥ २० ॥ (१४)

**ये वं आपोपामग्नयोप्स्व१न्तर्यजुष्या देवयजनाः ।**
**इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।**
**तैस्तमभ्यतिसृजामो यो३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।**
**तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ २१ ॥**

ये । वः । आपः । अपाम् । अग्नयः । अप्ऽसु । अन्तः । यजुष्याः । देवऽयजनाः ।

इदम् । तान् । अति । सृजामि । तान् । मा । अभिऽअवनिक्षि ।

तैः । तम् । अभिऽअतिसृजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि । यम् । वयम् । द्विष्मः ।

तम् । वधेयम् । तम् । स्तृषीय । अनेन । ब्रह्मणा । अनेन । कर्मणा । अनया । मेन्या ॥ २१ ॥

**यदर्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम ।**
**आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥ २२ ॥**

यत् । अर्वाचीनम् । त्रैहायनात् । अनृतम् । किम् । च । ऊदिम ।

---

१ h B K K V Cs वत्सो१. We with Dc. २ h B K K S m वृषभो१. We with Dc. ३ K K V m °गर्भा१. We with h B Dc. ४ P मा ।. ५ K K V m यो३स्मा°. We with h B D S m Dc Cs. ६ B D K R Cr. °पात्वंहसः. We with A h B K S V Dc Cs P P2 J.

आपः। मा। तस्मात्। सर्वस्मात्। दुःऽइतात्। पान्तु। अंहसः ॥ २२ ॥

समुद्रं वः प्र हिणोमि स्वां योनिमपीतन।
अरिष्टाः सर्वहायसो मा च नः किं चनाममत् ॥ २३ ॥

समुद्रम्। वः। प्र। हिणोमि। स्वाम्। योनिम्। अपि। इतन।
अरिष्टाः। सर्वऽहायसः। मा। च। नः। किम्। चन। आममत् ॥ २३ ॥

अरिप्रा आपो अपरि प्रमस्मत्।
प्रास्मदेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्वप्न्यं प्र मलं वहन्तु ॥ २४ ॥

अरिप्राः। आपः। अप। रिप्रम्। अस्मत्।
प्र। अस्मत्। एनः। दुःऽइतम्। सुऽप्रतीकाः। प्र। दुःऽस्वप्न्यम्। प्र। मलम्। वहन्तु ॥२४॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोग्नितेजाः।
पृथिवीमनु वि क्रमेहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो यो३ऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ २५ ॥

विष्णोः। क्रमः। असि। सपत्नऽहा। पृथिवीऽसंशितः। अग्निऽतेजाः।
पृथिवीम्। अनु। वि। क्रमे। अहम्। पृथिव्याः। तम्। निः। भजामः। यः। अस्मान्।
द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः।
सः। मा। जीवीत्। तम्। प्राणः। जहातु ॥ २५ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो ०।० ॥ २६ ॥

०सपत्नऽहा। अन्तरिक्षऽसंशितः। वायुऽतेजाः।
अन्तरिक्षम्। अनु। वि। क्रमे। अहम्। अन्तरिक्षात्। तम्।० ॥ २६ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा द्यौसंशितः सूर्यतेजाः।
दिवमनु वि क्रमेहं दिवस्तं ०।० ॥ २७ ॥

०सपत्नऽहा। द्यौऽसंशितः। सूर्यऽतेजाः।
दिवम्। अनु। वि। क्रमे। अहम्। दिवः। तम्।० ॥ २७ ॥

---

१ K Ṁ V यो३ऽस्मा°. We with B D Ṁ S Dc Cs.

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोनु वि क्रमेहं द्विष्मस्तं ०।० ॥ २८ ॥

०सपत्नऽहा । दिक्ऽसंशितः । मनःऽतेजाः ।
दिशः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । द्विक्ऽभ्यः । तम् ।० ॥ २८ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहाशासंशितो वाततेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेहमाशाभ्यस्तं ०।० ॥ २९ ॥

०सपत्नऽहा । आशाऽसंशितः । वातऽतेजाः ।
आशाः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । आशाभ्यः । तम् ।० ॥ २९ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहर्क्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोनु वि क्रमेहमृग्भ्यस्तं ०।० ॥ ३० ॥ (१५)

०सपत्नऽहा । ऋक्ऽसंशितः । सामऽतेजाः ।
ऋचः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । ऋक्ऽभ्यः । तम् ।० ॥ ३० ॥ (१५

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रमेहं यज्ञात् तं ०।० ॥ ३१ ॥

०सपत्नऽहा । यज्ञऽसंशितः । ब्रह्मऽतेजाः ।
यज्ञम् । अनु । वि । क्रमे । अहम् । यज्ञात् । तम् ।० ॥ ३१ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः ।
ओषधीरनु वि क्रमेहमोषधीभ्यस्तं ०।० ॥ ३२ ॥

०सपत्नऽहा । ओषधीऽसंशितः । सोमऽतेजाः ।
ओषधीः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । ओषधीभ्यः । तम् ।० ॥ ३२ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः ।
अपोनु वि क्रमेहमद्भ्यस्तं ०।० ॥ ३३ ॥

०सपत्नऽहा । अप्सुऽसंशितः । वरुणऽतेजाः ।
अपः । अनु । वि । क्रमे । अहम् । अत्ऽभ्यः । तम् ।० ॥ ३३ ॥

---

१ R दिशो°. २ B K $K^m$ R V De सपत्नहा. We with A D R $S^m$ C. ३ J अपः ।. P अपः ।.

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा कृषिसंशितोन्नतेजाः।
कृषिमनु वि क्रमेहं कृष्यास्तं०।० ॥ ३४ ॥

०सपत्नऽहा। कृषिऽसंशितः। अन्नऽतेजाः।
कृषिम्। अनु। वि। क्रमे। अहम्। कृष्याः। तम्।० ॥ ३४ ॥

विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः।
प्राणमनु वि क्रमेहं प्राणात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ ३५ ॥

विष्णोः। क्रमः। असि। सपत्नऽहा। प्राणऽसंशितः। पुरुषऽतेजाः।
प्राणम्। अनु। वि। क्रमे। अहम्। प्राणात्। तम्। निः। भजामः। यः। अस्मान्।
द्वेष्टि। यम्। वयम्। द्विष्मः।
सः। मा। जीवीत्। तम्। प्राणः। जहातु ॥ ३५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः।
इदमहमामुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामी-
दमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३६ ॥

जितम्। अस्माकम्। उत्ऽभिन्नम्। अस्माकम्। अभि। अस्थाम्। विश्वाः। पृतनाः। अरातीः।
इदम्। अहम्। आमुष्यायणस्य। अमुष्याः। पुत्रस्य। वर्चः। तेजः। प्राणम्। आयुः।
नि। वेष्टयामि। इदम्। एनम्। अधराञ्चम्। पादयामि ॥ ३६ ॥

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम्।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्रह्मणवर्चसम् ॥ ३७ ॥

सूर्यस्य। आऽवृतम्। अनुऽआवर्ते। दक्षिणाम्। अनु। आऽवृतम्।
सा। मे। द्रविणम्। यच्छतु। सा। मे। ब्राह्मणऽवर्चसम् ॥ ३७ ॥

दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते।

---

१ K V कृष्यास्तं० (V कृष्यात् in the *padas*). २ A R °क्रमस्य०. We with $\mathrm{B^h}$ D $\mathrm{K^m}$ K V De Cs. ३ $\mathrm{B^h}$ B °स्यष्ठां.

ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३८ ॥

दिशः । ज्योतिष्मतीः । अभिऽआवर्ते ।

ताः । मे । द्रविणम् । यच्छन्तु । ताः । मे ।० ॥ ३८ ॥

सप्तऋषीनभ्यावर्ते ।

ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३९ ॥

सप्तऽऋषीन् । अभिऽआवर्ते ।

ते । मे । द्रविणम् । यच्छन्तु । ते । मे ।० ॥ ३९ ॥

ब्रह्माभ्यावर्ते ।

तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४० ॥ (१६)

ब्रह्म । अभिऽआवर्ते ।

तत् । मे । द्रविणम् । यच्छतु । तत् । मे ।० ॥ ४० ॥ (१६)

ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते ।

ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणान् । अभिऽआवर्ते ।

ते । मे । द्रविणम् । यच्छन्तु । ते । मे । ब्राह्मणऽवर्चसम् ॥ ४१ ॥

यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहै ।

व्यात्तं परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥ ४२ ॥

यम् । वयम् । मृगयामहे । तम् । वधैः । स्तृणवामहै ।

विऽआत्तं । परमेऽस्थिनः । ब्रह्मणा । आ । अपीपदाम । तम् ॥ ४२ ॥

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि ।

इयं तं प्सातावहुतिः समिद् देवी सहीयसी ॥ ४३ ॥

वैश्वानरस्य । दंष्ट्राभ्याम् । हेतिः । तम् । सम् । अधात् । अभि ।

इयम् । तम् । प्सातु । आऽहुतिः । सम्ऽइत् । देवी । सहीयसी ॥ ४३

१ D $S^m$ $C_s$ सप्तर्षी°. We with A $R^h$ $K^m$ R V $D_c$. २ A D R ब्राह्मणँ. We with $B^n$ $K^m$ $K^m$ S V $D_c$ $C_s$.

राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि।
सोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥ ४४ ॥

राज्ञः। वरुणस्य। बन्धः। असि।
सः। अमुम्। आमुष्यायणम्। अमुष्याः। पुत्रम्। अन्ने। प्राणे। बधान ॥ ४४ ॥

यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥ ४५ ॥

यत्। ते। अन्नम्। भुवः। पते। आऽक्षियति। पृथिवीम्। अनु।
तस्य। नः। त्वम्। भुवः। पते। सम्ऽप्रयच्छ। प्रजाऽपते ॥ ४५ ॥

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ४६ ॥

अपः। दिव्याः। अचायिषम्। रसेन। सम्। अपृक्ष्महि।
पयस्वान्। अग्ने। आ। अगमम्। तम्। मा। सम्। सृज। वर्चसा ॥ ४६ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ ४७ ॥

सम्। मा। अग्ने। वर्चसा। सृज। सम्। प्रऽजया। सम्। आयुषा।
विद्युः। मे। अस्य। देवाः। इन्द्रः। विद्यात्। सह। ऋषिऽभिः ॥ ४७ ॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥४८॥

यत्। अग्ने। अद्य। मिथुना। शपातः। यत्। वाचः। तृष्टम्। जनयन्त। रेभाः।
मन्योः। मनसः। शरव्या। जायते। या। तया। विध्य। हृदये। यातुऽधानान् ॥ ४८ ॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥ ४९ ॥

---

१ K K V सोऽ°. २ From here to verse 6 of next hymn P has no accents. ३ K भुवनस्पत. ४ B once had °यं°. K K आक्षियंति. We with A B D R S V Dc Cs P P J.

परा । शृणीहि । तर्पसा । यातुऽधानान् । परा । अग्ने । रक्षः । हरसा । शृणीहि ।
परा । अर्चिषा । मूरऽदेवान् । शृणीहि । परा । असुऽतृपः । शोशुचतः । शृणीहि ॥ ४९ ॥

अपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्भृष्टिं शीर्षभिद्याय विद्वान् ।
सो अस्याङ्गानि प्र शृणातु सर्वा तन्मे देवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ ५० ॥ (१७)

अपाम् । अस्मै । वज्रम् । प्र । हरामि । चतुःऽभृष्टिम् । शीर्षऽभिद्याय । विद्वान् ।
सः । अस्य । अङ्गानि । प्र । शृणातु । सर्वा । तत् । मे । देवाः । अनु । जानन्तु ।
विश्वे ॥ ५० ॥ (१७)

॥ इति तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

खदिरकाष्ठफालविकारं मणिं शत्रुनाशाय तथा सर्वकामाप्तये बध्नाति सूक्तेनानेन ॥ सांप्रदायिका हि वक्ष्यमाणप्रकारेण विनियुञ्जन्ति ॥

सर्वकाममिच्छंश्च खदिरफालमणिं त्रिवासितं कृत्वा हिरण्यवेष्टितं कृत्वा "एतमिध्मम्" [ ३५ ] इत्यृचा इध्मम् उपसमाधाय "तमिमं देवता" [ २९ ] इति वासितम् उद्धृत्य आसाद्य "अरातीयोः" इत्यर्धमृक्तेन संपात्याभिमन्त्र्य "ब्रह्मणा तेजसा" [ ३० ] इति ऋचा बध्नाति । यस्मात् सर्वे कामाः संपद्यन्तेनेन मणिना तस्माद् अयं मणिः सर्वकामः । तथा च सूत्रम् । "आयमगन् [ ३.५ ] अयं प्रतिसरः [ ८.५ ] अयं मे वरुणः [ १०.३ ] अरातीयोः [ १०.६ ] इति मन्त्रोक्तान् वासितान् "बध्नाति । उत्तमस्य चतुरो जातरूपशकलेनानुसूत्रं गमयित्वावभुज्य त्रैधं पर्यस्यति । एतमिध्मम् इत्युपसमाधाय तमिमं "देवता इति वासितम् उद्धृत्य ब्रह्मणा तेजसेति बध्नाति" इति [ कौ० ३.२ ] ॥ मन्त्रोक्तान् मन्त्रोक्तद्रव्यविकारान् । वासितान् त्रयोदश्यादयस्तिस्रो यास्तिथयस्तासु विधिवद् दधिमधुनि वासितान् । बन्धनस्थानं च मन्त्रस्थम् । उत्तमस्य अरातीयोरिति सूक्तस्य । अवभुज्य कुटिलां कृत्वा । त्रैधं पर्यस्यति त्रिरावेष्टयति । पार्श्वे सर्वतो वेष्टनम् आयमेन । शिरसि बन्धनकरणम् अधिरोहत्विति लिङ्गात् । इत्यादि दारिलः ॥

तथा पशौ वृश्यमानयूपानुमन्त्रणे इदं सूक्तं विनियुक्तम् । तद् उक्तं वैताने । "अरातीयोरिति यूपं वृश्यमानम् अनुमन्त्रयते" इति [ वै० २.६ ] ॥

तथा "पार्थिवीं भूमिकामस्य" इति [ न० क० १७ ] विहितायां पार्थिव्यां महाशान्तौ खदिरफालमणिबन्धनेपि एतत् सूक्तं विनियुज्यते । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । "अरातीयोरिति फालं पार्थिव्याम्" इति [ न० क० १९ ] ॥

अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य दुर्हार्दो द्विषतः शिरः ।
अपि वृश्चाम्योजसा ॥ १ ॥

अरातिऽयोः । भ्रातृव्यस्य । दुःऽहार्दः । द्विषतः । शिरः ।
अपि । वृश्चामि । ओजसा ॥ १ ॥

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २ ॥

---

१ B S मथेन.

वर्म। महाम्। अयम्। मणिः। फालात्। जातः। करिष्यति।
पूर्णः। मन्थेन। मा। आ। अगमत्। रसेन। सह। वर्चसा ॥ २ ॥

यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥ ३ ॥

यत्। त्वा। शिक्वः। पराऽवधीत्। तक्षा। हस्तेन। वास्या।
आपः। त्वा। तस्मात्। जीवलाः। पुनन्तु। शुचयः। शुचिम् ॥ ३ ॥

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत्।
गृहे वसतु नोतिथिः ॥ ४ ॥

हिरण्यऽस्रक्। अयम्। मणिः। श्रद्धाम्। यज्ञम्। महः। दधत्।
गृहे। वसतु। नः। अतिथिः ॥ ४ ॥

तस्मै घृतं सुरां मधवन्नमन्नं क्षदामहे।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयःश्रेयश्चिकित्सतु भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥ ५ ॥

तस्मै। घृतम्। सुराम्। मधु। अन्नम्ऽअन्नम्। क्षदामहे।
सः। नः। पिताऽइव। पुत्रेभ्यः। श्रेयःऽश्रेयः। चिकित्सतु। भूयःऽभूयः। श्वःऽश्वः।
देवेभ्यः। मणिः। आऽइत्य ॥ ५ ॥

यमबभ्राद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ६ ॥

यम्। अबभ्रात्। बृहस्पतिः। मणिम्। फालम्। घृतऽश्चुतम्। उग्रम्। खदिरम। ओजसे।
तम्। अग्निः। प्रति। अमुञ्चत। सः। अस्मै। दुहे। आज्यम्। भूयःऽभूयः। श्वःऽश्वः।
तेन। त्वम्। द्विषतः। जहि ॥ ६ ॥

यमबभ्राद् बृहस्पतिर्मणिं०।

---

१ P फलात्। २ B महो. ३ A D R Dc सुस्रं. ४ R J P °श्च्युत°. ५ All our authorities read श्वश्वो. ६ So far P has no accents. ७ P फलम्। ८ P आज्याम्।

तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम् ।
सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ ७ ॥

०तम् । इन्द्रः । प्रति । अमुञ्चत । ओजसे । वीर्याय । कम् ।
सः । अस्मै । बलम् । इत् । दुहे । भूयःऽभूयः ।० ॥ ७ ॥

यमब० । तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयोभूयः० ॥ ८ ॥

०तम् । सोमः । प्रति । अमुञ्चत । महे । श्रोत्राय । चक्षसे ।
०अस्मै । वर्चः । इत् ।० ॥ ८ ॥

यमब० । तं सूर्यः प्रत्यमुञ्चत तेनेमा अजयद् दिशः ।
सो अस्मै भूतिमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ ९ ॥

०तम् । सूर्यः । प्रति । अमुञ्चत । तेन । इमाः । अजयत् । दिशः ।
०अस्मै । भूतिम् । इत् ।० ॥ ९ ॥

यमबभ्राद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तं बिभ्रच्चन्द्रमा मणिमसुराणां पुरोजयद् दानवानां हिरण्ययीः ।
सो अस्मै श्रियमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ १० ॥ (१८)

०बृहस्पतिः । मणिम् । फालम् । घृतऽश्चुतम् । उग्रम् । खदिरम् । ओजसे ।
तम् । बिभ्रत् । चन्द्रमाः । मणिम् । असुराणाम् । पुरः । अजयत् । दानवानाम् । हिरण्ययीः ।
०अस्मै । श्रियम् । इत् । दुहे ।० ॥ १० ॥ (१८)

यगबभ्राद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयोभूयः० ॥ ११ ॥

०बृहस्पतिः । वाताय । मणिम् । आशवे ।
सः । अस्मै । वाजिनम् । दुहे ।० ॥ ११ ॥

यमब० । तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः ।

---

१ BSCs सूर्य प्र°. २ RPJCp °श्चुत°. ३ ARPJ अस्मै वाजिनं. We with BBD KKSVDcCs PCp.

स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयोभूयः० ॥ १२ ॥

०तेन। इमाम्। मणिना। कृषिम्। अश्विनौ। अभि। रक्षतः।

सः। भिषक्ऽभ्याम्। महः। दुहे।० ॥ १२ ॥

यमब्० । तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः ।

सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयोभूयः० ॥ १३ ॥

०तम्। बिभ्रत्। सविता। मणिम्। तेन। इदम्। अजयत्। स्वः।

सः। अस्मै। सूनृताम्। दुहे।० ॥ १३ ॥

यमब्० । तमापो बिभ्रतीर्मणिं सदा धावन्त्यक्षिताः ।

स आभ्योमृतमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ १४ ॥

०तम्। आपः। बिभ्रतीः। मणिम्। सदा। धावन्ति। अक्षिताः।

सः। आभ्यः। अमृतम्। इत्। दुहे।० ॥ १४ ॥

यमब्० । तं राजा वरुणो मणिं प्रत्यमुञ्चत शंभुवम् ।

सो अस्मै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ १५ ॥

०तम्। राजा। वरुणः। मणिम्। प्रति। अमुञ्चत। शम्ऽभुवम्।

सः। अस्मै। सत्यम्। इत्।० ॥ १५ ॥

यमब्० । तं देवा बिभ्रतो मणिं सर्वाँल्लोकान् युधाजयन् ।

स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः० ॥ १६ ॥

०तम्। देवाः। बिभ्रतः। मणिम्। सर्वान्। लोकान्। युधा। अजयन्।

सः। एभ्यः। जितिम्। इत्।० ॥ १६ ॥

यमब्भ्याद् बृहस्पतिर्वीर्याय मणिमाशवे।

तमिमं देवता मणिं प्रत्यमुञ्चन्त शंभुवम् ।

स आभ्यो विश्वमिद् दुहे भूयोभूयः स्वःस्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ १७ ॥

---

१ B K °जयन्त्स्वः. २ J P change this to अजयन्। C P अजयन्। We with P. ३ P जितिम्। We with P J C P. ४ B B K K R V De Cs P P C P प्रत्यमुंचत. We with A D S J. ५ A B B D K K R S V De Cs स्वःस्वस्तेन.

यम् । अबध्नात् । बृहस्पतिः । वाताय । मणिम् । आशवे ।
तम् । इमम् । देवताः । मणिम् । प्रति । अमुञ्चन्त । शम्ऽभुवम् ।
सः । आभ्यः । विश्वम् । इत् । दुहे । भूयःऽभूयः । श्वःऽश्वः । तेन । त्वम् । द्विषतः ।
जहि ॥ १७ ॥

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत ।
संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ १८ ॥

ऋतवः । तम् । अबध्नत । आर्तवाः । तम् । अबध्नत ।
सम्ऽवत्सरः । तम् । बद्ध्वा । सर्वम् । भूतम् । वि । रक्षति ॥ १८ ॥

अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत ।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेधराँ[1] अकः ॥ १९ ॥

अन्तःऽदेशाः । अबध्नत । प्रऽदिशः । तम् । अबध्नत ।
प्रजापतिऽसृष्टः । मणिः । द्विषतः । मे । अधरान् । अकः ॥ १९ ॥

अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत ।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥२०॥ (१९)

अथर्वाणः । अबध्नत । आथर्वणाः । अबध्नत ।
तैः । मेदिनः । अङ्गिरसः । दस्यूनाम् । बिभिदुः । पुरः । तेन । त्वम् । द्विषतः । जहि ॥ २० ॥ (१९)

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।
तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २१ ॥

तम् । धाता । प्रति । अमुञ्चत । सः । भूतम् । वि । अकल्पयत् ।
तेन । त्वम् । द्विषतः । जहि ॥ २१ ॥

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २२ ॥

यम् । अबध्नात् । बृहस्पतिः । देवेभ्यः । असुरऽक्षितिम् ।
सः । मा । अयम् । मणिः । आ । अगमत् । रसेन । सह । वर्चसा ॥ २२ ॥

---

१ P बध्ना । २ A R मेधरँ.

यमबं०। स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह॥२३॥

०अगमत्। सह। गोभिः। अजाविऽभिः। अन्नेन। प्रऽजया। सह॥ २३॥

यमबं०। स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह॥२४॥

०अगमत्। सह। व्रीहिऽयवाभ्याम्। महसा। भूत्या। सह॥ २४॥

यमबं०। स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया कीलालेन मणिः सह॥ २५॥

०अगमत्। मधोः। घृतस्य। धारया। कीलालेन। मणिः। सह॥ २५॥

यमबं०। स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह॥ २६॥

०अगमत्। ऊर्जया। पयसा। सह। द्रविणेन। श्रिया। सह॥ २६॥

यमबं०। स मायं मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या[1] सह॥२७॥

०अगमत्। तेजसा। त्विष्या। सह। यशसा। कीर्त्या[1]। सह॥ २७॥

यमबंभ्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह॥ २८॥

यम्। अबंभ्नात्। बृहस्पतिः। देवेभ्यः। असुरऽक्षितिम्।
सः। मा। अयम्। मणिः। आ। अगमत्। सर्वाभिः। भूतिऽभिः। सह॥ २८॥

तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम्॥ २९॥

तम्। इमम्। देवताः। मणिम्। मह्यम्। ददतु। पुष्टये।
अभिऽभुम्। क्षत्रऽवर्धनम्। सपत्नऽदम्भनम्। मणिम्॥ २९॥

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम्।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेधरां[2] अकः॥ ३०॥ (२०)

ब्रह्मणा। तेजसा। सह। प्रति। मुञ्चामि। मे। शिवम्।
असपत्नः[3]। सपत्नऽहा। सऽपत्नान्। मे। अधरान्। अकः॥ ३०॥ (२०)

---

. १ B K K S V De P Cp कीर्त्या. We with A D R C R J. २ A R °धरँ. ३ P असपत्नाः।.

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३१ ॥

उत्ऽतरम् । द्विषतः । माम् । अयम् । मणिः । कृणोतु । देवऽजाः ।
यस्य । लोकाः । इमे । त्रयः । पयः । दुग्धम् । उपऽआसते ।
सः । मा । अयम् । अधि । रोहतु । मणिः । श्रैष्ठ्याय । मूर्धतः ॥ ३१ ॥

यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३२ ॥

यम् । देवाः । पितरः । मनुष्याः । उपऽजीवन्ति । सर्वदा ।
सः । मा । अयम् । अधि । रोहतु । मणिः । श्रैष्ठ्याय । मूर्धतः ॥ ३२ ॥

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोन्नमन्नं वि रोहतु ॥ ३३ ॥

यथा । बीजम् । उर्वरायाम् । कृष्टे । फालेन । रोहति ।
एव । मयि । प्रऽजा । पशवः । अन्नम्ऽअन्नम् । वि । रोहतु ॥ ३३ ॥

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुंचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥ ३४ ॥

यस्मै । त्वा । यज्ञऽवर्धन । मणे । प्रतिऽअमुंचम् । शिवम् ।
तम् । त्वम् । शतऽदक्षिण । मणे । श्रैष्ठ्याय । जिन्वतात् ॥ ३४ ॥

एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥ (२१)

एतम् । इध्मम् । सम्ऽआहितम् । जुषाणः । अग्ने । प्रति । हर्य । होमैः ।

---

१ B S Cs मणिष्कृ°. २ P लोकः ।. ३ K K V Dc Cs P J Cp प्रत्यमुंचं. We with A B D R S P. ४ So we with A D R S K Cs P J Cp. B K Dc अग्ने. P अग्ने ।.

तस्मिन्। विदेम। सुऽमतिम्। स्वस्ति। प्रऽजाम्। चक्षुः। पशून्। सम्ऽईक्षे। जातऽवेदसि। ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥ (२१)

तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति तृतीयोनुवाकः ॥

"कस्मिन्नङ्गे" इति स्कम्भसूक्तम्। स्कम्भ इति सनातनतमो देवो ब्रह्मणोप्यायभूतः। अतो ज्येष्ठं ब्रह्मेति तस्य संज्ञा। तस्मिन् सर्वमेतत् तिष्ठति तत्सर्वम् एतेनाविष्टम्। विराडपि तस्मिन्नेव समाहितः। तस्मिन्नेव देवादयः सर्वे समाहिता इत्यादि वर्णनम् ॥

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे ऋतमस्याध्याहितम्।
क[ व्रतं क[ श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥

कस्मिन्। अङ्गे। तपः। अस्य। अधि। तिष्ठति। कस्मिन्। अङ्गे। ऋतम्। अस्य। अधि। आऽहितम्।

क[। व्रतम्। क[। श्रद्धा। अस्य। तिष्ठति। कस्मिन्। अङ्गे। सत्यम्। अस्य। प्रतिऽस्थितम् ॥ १ ॥

कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा।
कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेधि चन्द्रमा महः स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम् ॥२॥

कस्मात्। अङ्गात्। दीप्यते। अग्निः। अस्य। कस्मात्। अङ्गात्। पवते। मातरिश्वा।
कस्मात्। अङ्गात्। वि। मिमीते। अधि। चन्द्रमाः। महः। स्कम्भस्य। मिमानः। अङ्गम् ॥ २ ॥

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥ ३ ॥

कस्मिन्। अङ्गे। तिष्ठति। भूमिः। अस्य। कस्मिन्। अङ्गे। तिष्ठति। अन्तरिक्षम्।
कस्मिन्। अङ्गे। तिष्ठति। आऽहिता। द्यौः। कस्मिन्। अङ्गे। तिष्ठति। उत्ऽतरम्। दिवः ॥ ३ ॥

क्व[1] प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व[1] प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा।
यत्र प्रेप्सन्नीरभिषन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः[3] ॥ ४ ॥

---

१ A R क्व[३]प्रे°. २ A B R S[h] C[s] क्व[३]प्रे°. ३ A B[m] B K R S[m] P P[2] J C[r] स्विदेव. We with D[m] K V D[c] C[s].

क॑स्मै । प्रऽईप्सन् । दीप्यते । ऊर्ध्वः । अग्निः । क॑स्मै । प्रऽईप्सन् । पवते । मातरिश्वा ।
यत्र । प्रऽईप्सन्तीः । अभिऽयन्ति । आऽवृतः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् ।
एव । सः ॥ ४ ॥

**क्वार्धमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।**
**यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं० ॥ ५ ॥**

क॑स्मै । अर्धऽमासाः । क॑स्मै । यन्ति । मासाः । सम्ऽवत्सरेण । सह । सम्ऽविदानाः ।
यत्र । यन्ति । ऋतवः । यत्र । आर्तवाः । स्कम्भम् ।० ॥ ५ ॥

**क्व॑[1] प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।**
**यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः[2] स्कम्भं तं० ॥ ६ ॥**

क॑स्मै । प्रेप्सन्ती इति प्रऽईप्सन्ती । युवती इति । विरूपे इति विऽरूपे । अहोरात्रे इति ।
द्रवतः । संविदाने इति सम्ऽविदाने ।
यत्र । प्रऽईप्सन्तीः । अभिऽयन्ति । आपः । स्कम्भम् ।० ॥ ६ ॥

**यस्मिन्नस्तब्ध्वा[3] प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वाँ[4] अधारयत् ।**
**स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव[5] सः ॥ ७ ॥**

यस्मिन् । स्तब्ध्वा । प्रजाऽपतिः । लोकान् । सर्वान् । अधारयत् ।
स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ ७ ॥

**यत् परमं[6] भवमं यच्च मध्यमं प्राजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।**
**कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत् तद् बभूव ॥ ८ ॥**

यत् । परमम् । अवमम् । यत् । च । मध्यमम् । प्रजाऽपतिः । ससृजे । विश्वऽरूपम् ।
कियता । स्कम्भः । प्र । विवेश । तत्र । यत् । न[7] । प्रऽअविशत् । कियत् । तत् । बभूव ॥८॥

**कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदुन्वाशयेस्य[8] ।**

---

१ See note ३, on preceding page. २ **B** D **S** Cs °वा स्कं°. We with **A K K R V** De. ३ **A B R S** Cs ३ for १. We with **D K K V** De. ४ **A B B D K K R V** De Cs all read °पः स्कं°. ५ **P J** प्रऽईप्सं°. ६ **A B D K K R S V** De Cs **P P J** Cr all have °ब्धा. ७ **A R** लोकान्त्सर्वं°. ८ **K K** अधारयन्. ९ **A B B K K R S P J** Cr स्विदेव. We with **D V** De Cs **P**. १० **K V** °मं यदवमं. We with **A B D K R S** De Cs **P P J** Cr.

एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियंतां स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥ ९ ॥

कियंता । स्कम्भः । प्र । विवेश । भूतम् । कियत् । भविष्यत् । अनुऽआशये । अस्य ।

एकम् । यत् । अङ्गम् । अकृणोत् । सहस्रऽधा । कियंता । स्कम्भः । प्र । विवेश । तत्र ॥ ९ ॥

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।

असच्च यत्र सच्चान्तं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १० ॥ (२२)

यत्र । लोकान् । च । कोशान् । च । आपः । ब्रह्म । जनाः । विदुः ।

असत् । च । यत्र । सत् । च । अन्तः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् ।

एव । सः ॥ १० ॥ (२२)

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।

ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं० ॥ ११ ॥

यत्र । तपः । पराऽक्रम्य । व्रतम् । धारयति । उत्ऽतरम् ।

ऋतम् । च । यत्र । श्रद्धा । च । आपः । ब्रह्म । सम्ऽआहिताः । स्कम्भम् ।० ॥ ११ ॥

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।

यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं० ॥ १२ ॥

यस्मिन् । भूमिः । अन्तरिक्षम् । द्यौः । यस्मिन् । अधि । आऽहिता ।

यत्र । अग्निः । चन्द्रमाः । सूर्यः । वातः । तिष्ठन्ति । आर्पिताः । स्कम्भम् ।० ॥ १२ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः ।

स्कम्भं तं० ॥ १३ ॥

यस्य । त्रयःऽत्रिंशत् । देवाः । अङ्गे । सर्वे । सम्ऽआहिताः ।

स्कम्भम् । तम् ।० ॥ १३ ॥

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।

एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं० ॥ १४ ॥

१ K तद्°. २ K K R Dc °न्त स्कं°. We with A B D S V Cs. ३ A K R S P J Cp स्विदेव. We with B K V Dc Cs P. ४ V °ता स्कंभं. We with A B K K R S Dc Cs. ५ D R Cs P P J °हिताः. We with Dc S Cp. ६ D K S V °पित स्कं°. We with A B K R Dc Cs.

यत्र । ऋषयः । प्रथमजाः । ऋचः । साम । यजुः । मही ।
एकऽऋषिः । यस्मिन् । आर्पितः । स्कम्भम् ।० ॥ १४ ॥

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्य१ः पुरुषेधि समाहिताः स्कम्भं तं० ॥ १५ ॥

यत्र । अमृतम् । च । मृत्युः । च । पुरुषे । अधि । समाहिते इति सम्ऽआहिते ।
समुद्रः । यस्य । नाड्यः । पुरुषे । अधि । सम्ऽआहिताः । स्कम्भम् ।० ॥ १५ ॥

यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्य१स्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १६ ॥

यस्य । चतस्रः । प्रऽदिशः । नाड्यः । तिष्ठन्ति । प्रथमाः ।
यज्ञः । यत्र । पराऽक्रान्तः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ १६ ॥

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥ १७ ॥

ये । पुरुषे । ब्रह्म । विदुः । ते । विदुः । परमेऽस्थिनम् ।
यः । वेद । परमेऽस्थिनम् । यः । च । वेद । प्रजाऽपतिम् ।
ज्येष्ठम् । ये । ब्राह्मणम् । विदुः । ते । स्कम्भम् । अनुऽसंविदुः ॥ १७ ॥

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोभवन् ।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १८ ॥

यस्य । शिरः । वैश्वानरः । चक्षुः । अङ्गिरसः । अभवन् ।
अङ्गानि । यस्य । यातवः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ १८ ॥

---

१ BDŠCs ३ for १. We with KVDc. २ DŠV समाहिता स्कं°. We with ABBKKRDcCs. ३ ABBDKKRŠVDcCs all have प्रप्यसाः for प्रथमाः. PPJCr प्रऽप्यसाः ।. ४ DŠV पराक्रांत स्कंभं. We with ABKKRDcCs. ५ BDŠR स्विद्देव. We with AVDc. ६ PPJ स्वित् ।. Cr afterwards changed to स्वित् ।. ७ ADKKRŠV यातव स्कं°. We with BBDcCs. ८ ABRŠ स्विदेव. We with VDc. ९ PPJ स्वित् ।. Cr changes स्वित् to स्वित्.

यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।
विराजमूधो यस्याहुः स्कम्भं तं० ॥ १९ ॥

यस्य । ब्रह्म । मुखम् । आहुः । जिह्वाम् । मधुऽकशाम् । उत ।
विऽराजम् । ऊधः । यस्य । आहुः । स्कम्भम् । तं० ॥ १९ ॥

यस्माद्दचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २० ॥ (२३)

यस्मात् । ऋचः । अपऽअतक्षन् । यजुः । यस्मात् । अपऽअकषन् ।
सामानि । यस्य । लोमानि । अथर्वऽअङ्गिरसः । मुखम् । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ २० ॥ (२३)

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परमामिव जना विदुः ।
उतो सन्मन्यन्तेवरे ये ते शाखामुपासते ॥ २१ ॥

असत्ऽशाखाम् । प्रऽतिष्ठन्तीम् । परमम्ऽइव । जनाः । विदुः ।
उतो इति । सत् । मन्यन्ते । अवरे । ये । ते । शाखाम् । उपऽआसते ॥ २१ ॥

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २२ ॥

यत्र । आदित्याः । च । रुद्राः । च । वसवः । च । सम्ऽआहिताः ।
भूतम् । च । यत्र । भव्यम् । च । सर्वे । लोकाः । प्रतिऽस्थिताः । स्कम्भम् । तम् । ब्रूहि । कतमः । स्वित् । एव । सः ॥ २२ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ २३ ॥

---

२ D Ṣ V °ङ्गु स्कं°. We with A B Bh K R Dc Cs. ३ B R Ṣm V P J स्विदेव. ३ K Km R Ṣm V P विदुः. ४ K Km °मन्यते°. ५ Bh D Ṣm V Cs °ष्ठिता स्क°. We with A B K Km R Dc. ६ B R Ṣm स्विदेव. ७ P P2 J स्वित्. Cp स्रित् changed to स्वित्.

यस्य । त्रयःऽत्रिंशत् । देवाः । निऽधिम् । रक्षन्ति । सर्वदा ।
निऽधिम् । तम् । अद्य । कः । वेद । यम् । देवाः । अभिऽरक्षथ ॥ २३ ॥

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥ २४ ॥

यत्र । देवाः । ब्रह्मऽविदः । ब्रह्म । ज्येष्ठम् । उपऽआसते ।
यः । वै । तान् । विद्यात् । प्रतिऽअक्षम् । सः । ब्रह्मा । वेदिता । स्यात् ॥ २४ ॥

बृहन्तो नाम ते देवा येसतः परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥ २५ ॥

बृहन्तः । नाम । ते । देवाः । ये । असतः । परि । जज्ञिरे ।
एकम् । तत् । अङ्गम् । स्कम्भस्य । असत् । आहुः । परः । जनाः ॥ २५ ॥

यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत् ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥ २६ ॥

यत्र । स्कम्भः । प्रऽजनयन् । पुराणम् । विऽअवर्तयत् ।
एकम् । तत् । अङ्गम् । स्कम्भस्य । पुराणम् । अनुऽसंविदुः ॥ २६ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥

यस्य । त्रयःऽत्रिंशत् । देवाः । अङ्गे । गात्रा । विऽभेजिरे ।
तान् । वै । त्रयःऽत्रिंशत् । देवान् । एके । ब्रह्मऽविदः । विदुः ॥ २७ ॥

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः ।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥ २८ ॥

हिरण्यऽगर्भम् । परमम् । अनतिऽउद्यम् । जनाः । विदुः ।
स्कम्भः । तत् । अग्रे । प्र । असिञ्चत् । हिरण्यम् । लोके । अन्तरा ॥ २८ ॥

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेध्यृतमाहितम् ।

---

१ P Cp ते ।. २ B K व्यवर्तयत्. ३ R S P विदुः. ४ P J उद्यन् ।. We with P Cp. ५ B D S V Cs लोका स्कं°. We with A K R D c. ६ B D S V Cs तपं स्कं°. We with A K R D c.

स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥ २९ ॥

स्कम्भे। लोकाः। स्कम्भे। तपः। स्कम्भे। अधि। ऋतम्। आऽहितम्।

स्कम्भं। त्वा। वेद। प्रतिऽअक्षम्। इन्द्रे। सर्वम्। सम्ऽआहितम् ॥ २९ ॥

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेध्यृतमाहितम्।

इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३० ॥ (२४)

इन्द्रे। लोकाः। इन्द्रे। तपः। इन्द्रे। अधि। ऋतम्। आऽहितम्।

इन्द्रम्। त्वा। वेद। प्रतिऽअक्षम्। स्कम्भे। सर्वम्। प्रतिऽस्थितम् ॥ ३० ॥ (२४)

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः।

यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥ ३१ ॥

नाम। नाम्ना। जोहवीति। पुरा। सूर्यात्। पुरा। उषसः।

यत्। अजः। प्रथमम्। सम्ऽबभूव। सः। ह। तत्। स्वऽराज्यम्। इयाय। यस्मात्।

न। अन्यत्। परम्। अस्ति। भूतम् ॥ ३१ ॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३२ ॥

यस्य। भूमिः। प्रऽमा। अन्तरिक्षम्। उत। उदरम्।

दिवम्। यः। चक्रे। मूर्धानम्। तस्मै। ज्येष्ठाय। ब्रह्मणे। नमः ॥ ३२ ॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।

अग्निं यश्चक्र आस्यं[1] तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥

यस्य। सूर्यः। चक्षुः। चन्द्रमाः। च। पुनःऽनवः।

अग्निम्। यः। चक्रे। आस्यम्। तस्मै। ज्येष्ठाय। ब्रह्मणे। नमः ॥ ३३ ॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोभवन्।

दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥

---

[1] A B [h]B D K [m]K R S C[s] स्कंभं. P स्कंभम्। changed to स्कंभम्। [2]P स्कंभम्। J C[p] स्कंभम्। V D[c] स्कंभं. [2] K नाम्नां.

यस्य । वातः । प्राणापानौ । चक्षुः । अङ्गिरसः । अभवन् ।

दिशः । यः । चक्रे । प्रऽज्ञानीः । तस्मै । ज्येष्ठाय । ब्रह्मणे । नमः ॥ ३४ ॥

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश॥३५॥

स्कम्भः । दाधार । द्यावापृथिवी इति । उभे इति । इमे इति । स्कम्भः । दाधार । उरु ।
अन्तरिक्षम् ।

स्कम्भः । दाधार । प्रऽदिशः । षट् । उर्वीः । स्कम्भे । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । आ ।
विवेश ॥ ३५ ॥

यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३६ ॥

यः । श्रमात् । तपसः । जातः । लोकान् । सर्वान् । सम्ऽआनशे ।
सोमम् । यः । चक्रे । केवलम् । तस्मै । ज्येष्ठाय । ब्रह्मणे । नमः ॥ ३६ ॥

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥ ३७ ॥

कथम् । वातः । न । इलयति । कथम् । न । रमते । मनः ।
किम् । आपः । सत्यम् । प्रऽईप्सन्तीः । न । इलयन्ति । कदा । चन ॥ ३७ ॥

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परितं इव शाखाः ॥३८॥

महत् । यक्षम् । भुवनस्य । मध्ये । तपसि । क्रान्तम् । सलिलस्य । पृष्ठे ।
तस्मिन् । श्रयन्ते । ये । ऊं इति । के । च । देवाः । वृक्षस्य । स्कन्धः । परितःऽइव ।
शाखाः ॥ ३८ ॥

---

१ B B D S Cs ३ for १. We with K K V Dc. २ B D S V Cs षडुर्वी स्कं°. We with A B K K R Dc. ३ P J इलयति । We with P Cp. ४ So P P J Cp. ५ A B R S Cs P पृष्टे. ६ A K R Dc तस्मिच्छ्°. We with B D K S Cs. ७ D S पलितं.

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ३९ ॥

यस्मै। हस्ताभ्याम्। पादाभ्याम्। वाचा। श्रोत्रेण। चक्षुषा।
यस्मै। देवाः। सदा। बलिम्। प्रऽयच्छन्ति। विऽमिते। अमितम्। स्कम्भम्। तम्। ब्रूहि। कतमः। स्वित्। एव। सः ॥ ३९ ॥

अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना।
सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥ ४० ॥

अप। तस्य। हतम्। तमः। विऽआवृत्तः। सः। पाप्मना।
सर्वाणि। तस्मिन्। ज्योतींषि। यानि। त्रीणि। प्रजाऽपतौ ॥ ४० ॥

यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद।
स वै गुह्यः[3] प्रजापतिः ॥ ४१ ॥

यः। वेतसम्। हिरण्ययम्। तिष्ठन्तम्। सलिले। वेद।
सः। वै। गुह्यः। प्रजाऽपतिः ॥ ४१ ॥

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नापं वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥ ४२ ॥

तन्त्रम्। एके इति। युवती इति। विरूपे इति विऽरूपे। अभिऽआक्रामम्। वयतः। षट्ऽमयूखम्।
प्र। अन्या। तन्तून्। तिरते। धत्ते। अन्या। न। अप। वृञ्जाते इति। न। गमातः। अन्तम् ॥ ४२ ॥

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि वतरा परस्तात्।

---

१ A B K R Ś P P J स्विदेव. We with B D K V De Cs Cr. २ B D K K R Cs वृतः. We with Ś V De P P J Cr. ३ A B B D K K R Ś V De Cs गुह्यं प्रजापतिः. P P J गुह्यः. We with Cr. ४ A B D Ś V De Cs Cr °मयूख. We with K K R P P J. ५ D Cs प्राज्ञा. J प्र। अज्ञा।.

पुमानेनद् वयत्युद्गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ॥ ४३ ॥

तयोः । अहम् । परिनृत्यन्त्योःऽइव । न । वि । जानामि । यतरा । परस्तात् ।

पुमान् । एनत् । वयति । उत् । गृणत्ति । पुमान् । एनत् । वि । जभार । अधि । नाके ॥ ४३ ॥

इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥ ४४ ॥(२५)

इमे । मयूखाः । उप । तस्तभुः । दिवम् । सामानि । चक्रुः । तसराणि । वातवे ॥४४॥ (२५)

इति चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

"यो भूतम्" इति सूक्तमपि स्कम्भदेवताकम् ॥ अत्रापि स्कम्भस्य ज्येष्ठत्वं श्रेष्ठत्वं सर्वेषामाश्रयभूतत्वं च दृश्यते ॥

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

यः । भूतम् । च । भव्यम् । च । सर्वम् । यः । च । अधिऽतिष्ठति ।

स्वः । यस्य । च । केवलम् । तस्मै । ज्येष्ठाय । ब्रह्मणे । नमः ॥ १ ॥

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत् ॥ २ ॥

स्कम्भेन । इमे इति । विस्तभिते इति विऽस्तभिते । द्यौः । च । भूमिः । च । तिष्ठतः ।

स्कम्भे । इदम् । सर्वम् । आत्मन्ऽवत् । यत् । प्राणत् । निऽमिषत् । च । यत् ॥ २ ॥

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्यन्या अर्कमभितोविशन्त ।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥

तिस्रः । ह । प्रऽजाः । अतिऽआयम् । आयन् । नि । अन्याः । अर्कम् । अभितः । अविशन्त ।

बृहन् । ह । तस्थौ । रजसः । विऽमानः । हरितः । हरिणीः । आ । विवेश ॥ ३ ॥

द्वादशं प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अत्रिचाचला मे ॥ ४ ॥

---

१ Ŝ ᵐ °नह्यय°. २ K गृह्णन्ति. ३ R Ŝ ᵐ Cs Cr मयूषा. ४ P तस्थभुः ।. ५ P P̂ ² चक्रुः ।. We with J Cr. ६ B corrects १ into ३. B D Ŝ ᵐ Cs ३. We with K V Dc. ७ K °मि-
षयश्च (sic). ८ B B̂ ʰ D Ŝ ᵐ Cs ३ for १. We with K K̂ ᵐ V Dc. ९ A B̂ ʰ K Ŝ ᵐ Dc Cs P P̂ ²
षष्टिश्च.

द्वादश। प्रऽधर्यः। चक्रम्। एकम्। त्रीणि। नभ्यानि। कः। ऊँ इति। तत्। चिकेत।
तत्र। आऽहृताः। त्रीणि। शतानि। शङ्कवः। षष्टिः। च। खीलाः। अविऽचाचलाः। ये ॥ ४ ॥

इदं सवितर्वि जानीहि षड् यमा एक एकजः।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ॥ ५ ॥

इदम्। सवितः। वि। जानीहि। षट्। यमाः। एकः। एकऽजः।
तस्मिन्। ह। अपिऽत्वम्। इच्छन्ते। यः। एषाम्। एकः। एकऽजः ॥ ५ ॥

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम्।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥

आविः। सत्। निऽहितम्। गुहा। जरत्। नाम। महत्। पदम्।
तत्र। इदम्। सर्वम्। आर्पितम्। एजत्। प्राणत्। प्रतिऽस्थितम् ॥ ६ ॥

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व[1] तद् बभूव ॥ ७ ॥

एकऽचक्रम्। वर्तते। एकऽनेमि। सहस्रऽअक्षरम्। प्र। पुरः। नि। पश्चा।
अर्धेन। विश्वम्। भुवनम्। जजान। यत्। अस्य। अर्धम्। क्व। तत्। बभूव ॥ ७ ॥

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो[2] युक्ता अनुसंवहन्ति[3]।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोवरं दवीयः ॥ ८ ॥

पञ्चऽवाही। वहति। अग्रम्। एषाम्। प्रष्टयः। युक्ताः। अनुऽसंवहन्ति।
अयातम्। अस्य। ददृशे। न। यातम्। परम्। नेदीयः। अवरम्। दवीयः ॥ ८ ॥

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः ॥ ९ ॥

तिर्यक्ऽबिलः। चमसः। ऊर्ध्वऽबुध्नः। तस्मिन्। यशः। निऽहितम्। विश्वऽरूपम्।
तत्। आसते। ऋषयः। सप्त। साकम्। ये। अस्य। गोपाः। महतः। बभूवुः ॥ ९ ॥

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः।

---

१ P एकऽजाः। २ R ३. ३ K K[1] S D[c] पृष्टयो. V J C[r] पृष्टयः। P प्रष्टयः। P[2] प्रष्टयः। We with A B[b] D R C[s] P[2] प्रष्टयो. ४ R S[m] अनुसं°. ५ D K[m] P अस्य.

यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सचाम् ॥ १० ॥ (२६)

या । पुरस्तात् । युज्यते । या । च । पश्चात् । या । विश्वतः । युज्यते । या । च । सर्वतः ।
यया । यज्ञः । प्राङ् । तायते । ताम् । त्वा । पृच्छामि । कतमा । सा । ऋचाम् ॥१०॥ (२६)

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत् ।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥

यत् । एजति । पतति । यत् । च । तिष्ठति । प्राणत् । अप्राणत् । निऽमिषत् । च ।
यत् । भुवत् ।
तत् । दाधार । पृथिवीम् । विश्वऽरूपम् । तत् । सम्ऽभूय । भवति । एकम् । एव ॥ ११ ॥

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥ १२ ॥

अनन्तम् । विऽततम् । पुरुऽत्रा । अनन्तम् । अन्तऽवत् । च । समन्ते इति सम्ऽअन्ते ।
ते इति । नाकऽपालः । चरति । विऽचिन्वन् । विद्वान् । भूतम् । उत । भव्यम् । अस्य ॥ १२ ॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ १३ ॥

प्रजाऽपतिः । चरति । गर्भे । अन्तः । अदृश्यमानः । बहुऽधा । वि । जायते ।
अर्धेन । विश्वम् । भुवनम् । जजान । यत् । अस्य । अर्धम् । कतमः । सः । केतुः ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥

ऊर्ध्वम् । भरन्तम् । उदकम् । कुम्भेनऽइव । उदऽहार्यम् ।
पश्यन्ति । सर्वे । चक्षुषा । न । सर्वे । मनसा । विदुः ॥ १४ ॥

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥ १५ ॥

दूरे । पूर्णेन । वसति । दूरे । ऊनेन । हीयते ।

---

१ A सचा. B सचाम्. K सऋचाम्. We with $^{h}$B D K R $^{m}$S V De C. २ A पृथिवी. J पृथिवी ।.

महत्। यक्षम्। भुवनस्य। मध्ये। तस्मै। बलिम्। राष्ट्रऽभृतः। भरन्ति ॥ १५ ॥

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥ १६ ॥

यतः। सूर्यः। उत्ऽएति। अस्तम्। यत्र। च। गच्छति।
तत्। एव। मन्ये। अहम्। ज्येष्ठम्। तत्। ऊं इति। न। अति। एति। किम्। चन ॥ १६ ॥

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥

ये। अर्वाङ्। मध्ये। उत। वा। पुराणम्। वेदम्। विद्वांसम्। अभितः। वदन्ति।
आदित्यम्। एव। ते। परि। वदन्ति। सर्वे। अग्निम्। द्वितीयम्। त्रिऽवृतम्। च।
हंसम् ॥ १७ ॥

सहस्राक्ष्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ १८ ॥

सहस्रऽअक्ष्यम्। विऽयतौ। अस्य। पक्षौ। हरेः। हंसस्य। पततः। स्वःऽगम्।
सः। देवान्। सर्वान्। उरसि। उपऽदद्य। सम्ऽपश्यन्। याति। भुवनानि। विश्वा ॥ १८ ॥

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥ १९ ॥

सत्येन। ऊर्ध्वः। तपति। ब्रह्मणा। अर्वाङ्। वि। पश्यति।
प्राणेन। तिर्यङ्। प्र। अनति। यस्मिन्। ज्येष्ठम्। अधि। श्रितम् ॥ १९ ॥

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ २० ॥ (२१)

यः। वै। ते। ते इति। विद्यात्। अरणी इति। याभ्याम्। निःऽमथ्यते। वसु।
सः। विद्वान्। ज्येष्ठम्। मन्येत। सः। विद्यात्। ब्राह्मणम्। महत् ॥ २० ॥ (२१)

अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्वराभरत्।

---

१ B D Ṣ V Cs पतत स्वर्गम्. We with A K K R Dc. २ P J अनति. We with Cr. ३ B B D Ṣ Cs ३. We with K K V Dc.

चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥ २१ ॥

अपात् । अग्रे । सम् । अभवत् । सः । अग्रे । स्वः । आ । अभरत् ।

चतुःऽपात् । भूत्वा । भोग्यः । सर्वम् । आ । अदत्त । भोजनम् ॥ २१ ॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु ।

यो देवमुत्तरावन्तमुपासाते सनातनम् ॥ २२ ॥

भोग्यः । भवत् । अथो इति । अन्नम् । अदत् । बहु ।

यः । देवम् । उत्तरऽवन्तम् । उपऽआसाते । सनातनम् ॥ २२ ॥

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।

अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥ २३ ॥

सनातनम् । एनम् । आहुः । उत । अद्य । स्यात् । पुनःऽनवः ।

अहोरात्रे इति । प्र । जायेते इति । अन्यः । अन्यस्य । रूपयोः ॥ २३ ॥

शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम् ।

तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥ २४ ॥

शतम् । सहस्रम् । अयुतम् । निऽअर्बुदम् । असम्ऽख्येयम् । स्वम् । अस्मिन् । निऽविष्टम् ।

तत् । अस्य । घ्नन्ति । अभिऽपश्यतः । एव । तस्मात् । देवः । रोचते । एषः । एतत् ॥ २४ ॥

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते ।

ततः परिष्वजीयसी देवता सा ममं प्रिया ॥ २५ ॥

बालात् । एकम् । अणीयःऽकम् । उत । एकम् । नऽइव । दृश्यते ।

ततः । परिऽस्वजीयसी । देवता । सा । मम । प्रिया ॥ २५ ॥

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।

यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥

इयम् । कल्याणी । अजरा । मर्त्यस्य । अमृता । गृहे ।

यस्मै । कृता । शये । सः । यः । चकार । जजार । सः ॥ २६ ॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।

---

१ BKV मम. २ ABBDRSCs ३. We with KKVDc. ३ P अजराः । changed from अजरा । We with P J Cp. ४ P P Cp अमृताः । J अमृता । altered to अमृताः ।

त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ २७ ॥

त्वम्। स्त्री। त्वम्। पुमान्। असि। त्वम्। कुमारः। उत। वा। कुमारी।

त्वम्। जीर्णः। दण्डेन। वञ्चसि। त्वम्। जातः। भवसि। विश्वतःऽमुखः ॥ २७ ॥

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥ २८ ॥

उत। एषाम्। पिता। उत। वा। पुत्रः। एषाम्। उत। एषाम्। ज्येष्ठः। उत। वा। कनिष्ठः।

एकः। ह। देवः। मनसि। प्रऽविष्टः। प्रथमः। जातः। सः। ऊं इति। गर्भे। अन्तः ॥ २८ ॥

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ २९ ॥

पूर्णात्। पूर्णम्। उत्। अचति। पूर्णम्। पूर्णेन। सिच्यते।

उतो इति। तत्। अद्य। विद्याम। यतः। तत्। परिऽसिच्यते ॥ २९ ॥

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥ ३० ॥ (२८)

एषा। सनत्नी। सनम्। एव। जाता। एषा। पुराणी। परि। सर्वम्। बभूव।

मही। देवी। उषसः। विऽभाती। सा। एकेनऽएकेन। मिषता। वि। चष्टे ॥३०॥ (२८)

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥ ३१ ॥

अविः। वै। नाम। देवता। ऋतेन। आस्ते। परिऽवृता।

तस्याः। रूपेण। इमे। वृक्षाः। हरिताः। हरितऽस्रजः ॥ ३१ ॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥ ३२ ॥

अन्ति। सन्तम्। न। जहाति। अन्ति। सन्तम्। न। पश्यति।

देवस्य। पश्य। काव्यम्। न। ममार। न। जीर्यति ॥ ३२ ॥

१ K सपत्नी. २ B बभूव. ३ B D K S De C३ ४ K °केनि (sic). ५ So we with all our authorities. See Rw. ६ P देव्यस्य।.

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥ ३३ ॥

अपूर्वेण । इषिताः । वाचः । ताः । वदन्ति । यथाऽयथम् ।
वदन्तीः । यत्र । गच्छन्ति । तत् । आहुः । ब्राह्मणम् । महत् ॥ ३३ ॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः ।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥ ३४ ॥

यत्र । देवाः । च । मनुष्याः । च । अराः । नाभौऽइव । श्रिताः ।
अपाम् । त्वा । पुष्पम् । पृच्छामि । यत्र । तत् । मायया । हितम् ॥ ३४ ॥

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सप्रीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥ ३५ ॥

येभिः । वातः । इषितः । प्रऽवाति । ये । ददन्ते । पञ्च । दिशः । सप्रीचीः ।
ये । आऽहुतिम् । अतिऽअमन्यन्त । देवाः । अपाम् । नेतारः । कतमे । ते । आसन् ॥ ३५ ॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोन्तरिक्षं पर्येको बभूव ।
दिवमेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येकः ॥ ३६ ॥

इमाम् । एषाम् । पृथिवीम् । वस्ते । एकः । अन्तरिक्षम् । परि । एकः । बभूव ।
दिवम् । एषाम् । ददते । यः । विऽधर्ता । विश्वाः । आशाः । प्रति । रक्षन्ति । एकः ॥ ३६ ॥

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७ ॥

यः । विद्यात् । सूत्रम् । विऽततम् । यस्मिन् । आऽउताः । प्रऽजाः । इमाः ।
सूत्रम् । सूत्रस्य । यः । विद्यात् । सः । विद्यात् । ब्राह्मणम् । महत् ॥ ३७ ॥

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥

वेद । अहम् । सूत्रम् । विऽततम् । यस्मिन् । आऽउताः । प्रऽजाः । इमाः ।
सूत्रम् । सूत्रस्य । अहम् । वेद । अथो इति । यत् । ब्राह्मणम् । महत् ॥ ३८ ॥

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरेत् प्रदहन् विश्वदाव्यः ।

---

१ B अपूर्वे°. २ B m K V वेदाथो.

यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् कऽइवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥ ३९ ॥

यत्। अन्तरा। द्यावापृथिवी इति, अग्निः। ऐत्। प्रऽदहन्। विश्वऽदाव्यः।

यत्र। अतिष्ठन्। एकऽपत्नीः। परस्तात्। कऽइव। आसीत्। मातरिश्वा। तदानीम् ॥ ३९ ॥

अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्।

बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥ ४० ॥

अप्ऽसु। आसीत्। मातरिश्वा। प्रऽविष्टः। प्रऽविष्टाः। देवाः। सलिलानि। आसन्।

बृहन्। ह। तस्थौ। रजसः। विऽमानः। पवमानः। हरितः। आ। विवेश ॥ ४० ॥

उत्तरेणेव गायत्रीममृतेधि वि चक्रमे।

साम्ना ये सामं संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥ ४१ ॥

उत्तरेणऽइव। गायत्रीम्। अमृते। अधि। वि। चक्रमे।

साम्ना। ये। सामं। सम्ऽविदुः। अजः। तत्। ददृशे। क्व ॥ ४१ ॥

निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा।

इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥

निऽवेशनः। सम्ऽगमनः। वसूनाम्। देवःऽइव। सविता। सत्यऽधर्मा।

इन्द्रः। न। तस्थौ। सम्ऽअरे। धनानाम् ॥ ४२ ॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४३ ॥

पुण्डरीकम्। नवऽद्वारम्। त्रिऽभिः। गुणेभिः। आऽवृतम्।

तस्मिन्। यत्। यक्षम्। आत्मन्ऽवत्। तत्। वै। ब्रह्मऽविदः। विदुः ॥ ४३ ॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।

तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥४४॥(२९)

अकामः। धीरः। अमृतः। स्वयम्ऽभूः। रसेन। तृप्तः। न। कुतः। चन। ऊनः।

तम्। एव। विद्वान्। न। बि। भाय। मृत्योः। आत्मानम्। धीरं। अजरम्। युवानम्॥४४॥(९९)

चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

इति चतुर्थोनुवाकः ॥

---

१ P J कऽइव। २ A वसूनाम्. ३ P सऽगमनः।

"अघायताम्" इति सूक्तम् आशुत्यर्थगोवधे विनियुज्यते। सा च वन्ध्या गौः शतौदनेत्युच्यते। तस्या वधेन तस्या मांसाहुत्या च यद्यजनं तद् अग्निष्टोमादपि अतिरात्रादपि च श्रेष्ठम् इत्यादिरूपा प्रशंसा। यैवं हन्यते तां प्रति हन्तृभ्यो मा भैषीस्त्वं देवी भविष्यसि त्वां स्वर्गे देवा गोप्स्यन्तीत्यादि प्रोत्साहनम्। यस्त्वां हन्ति यो वा पचति यो वा जुहोति स उत्तमं स्वर्गं गच्छतीत्यादिका गोभिरवचनेन प्रशंसा च क्रियते गोमेधस्य ॥

सांप्रदायिकास्तु एवम्।

"अघायताम्" इत्यर्थसूक्तेन शतौदनसत्रे निरुप्तहविरभिमर्शनं संपातं दात्रवाचनं दानं च कुर्यात्। तथा च सूत्रम्। "अ-
"घायताम् इत्यत्र मुखम् अपिनह्यमानम् अनुमन्त्रयते। सपत्नेषु वज्रं प्राहा त्वैषः [२] इति निपतन्तम्। वेदिष्टे [२] इति
"मन्त्रोक्तम् आस्तृणाति। विंशत्योदनासु श्रयणीषु शतम् अवदानानि वध्रिसंनद्धानि पृथगोदनेषूपर्यादधति। मध्यमायाः प्रथमे
"गन्धिष्यामिक्षां दशमेभितः सप्तमसापूपान् परिश्रयति। पञ्चदशे पुरोडाशौ अग्ने हिरण्यम् अगो देवीः [२७] इत्यग्रत उदकु-
"म्भान्। बालास्ते [३] इति सूक्तेन संपातवर्ती प्रदक्षिणम् अग्निम् अनुपरिणीयोपवेशनप्रक्षालनाचमनम् उक्तम्। पाणावुदकम्
"आर्नीय अथामुष्यौदनस्यावदानानां च मध्यात् पूर्वार्धाच्च द्विरवदायोपरिष्टाद् उदकेनाभिघार्य जुहोति सोमेन पूतो जठरे सीद
"ब्रह्मणाम् आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वेत्यथ प्राश्नाति। अमेष्ट्रास्येन प्राश्नामि बृहस्पतेर्मुखेन इन्द्रस्य त्वा जठरे सादयामि वरुण-
"स्योदरे तयथाहुतम इष्टं प्रार्थायाद् देवो त्वा प्राश्नाम्यात्मास्यात्मन्नात्मानं मे मा हिंसीगिति प्राशितम् अनुमन्त्रयते योग्निर्नृम्णा
"नाम ब्राह्मणेषु प्रविष्टः। तस्मिन्म एष सुहुतोस्त्वोदनः स मा मा हिंसीत् परमे व्योमन्। सो अस्मभ्यम् अस्तु परमे व्यो-
"मन्निति दातारं वाचयति। वीक्षणान्तं शतौदनायाः प्रातर्जपेन व्याख्यातम्" इति कौ० ८. ६ ॥

**अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम्।**
**इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः ॥ १ ॥**

अघऽयताम्। अपि। नह्य। मुखानि। सऽपत्नेषु। वज्रम्। अर्पय। एतम्।
इन्द्रेण। दत्ता। प्रथमा। शतऽओदना। भ्रातृव्यऽघ्नी। यजमानस्य। गातुः ॥ १ ॥

**वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते।**
**एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोधि नृत्यतु ॥ २ ॥**

वेदिः। ते। चर्म। भवतु। बर्हिः। लोमानि। यानि। ते।
एषा। त्वा। रशना। अग्रभीत्। ग्रावा। त्वा। एषः। अधि। नृत्यतु ॥ २ ॥

**बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वग्नये।**
**शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥**

बालाः। ते। प्रऽउक्षणीः। सन्तु। जिह्वा। सम्। मार्ष्टु। अग्नये।
शुद्धा। त्वम्। यज्ञिया। भूत्वा। दिवम्। प्र। इहि। शतऽओदने ॥ ३ ॥

**यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते।**

१ R °येतम्. २ P एनम्। ३ B मार्ष्ट्वग्नये.

1 So V¹ V². 2 V² नृम्णा.

प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

यः। शतऽओदनाम्। पचति। कामऽप्रेण। सः। कल्पते।

प्रीताः। हि। अस्य। ऋत्विजः। सर्वे। यन्ति। यथाऽयथम् ॥ ४ ॥

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः।

अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

सः। स्वःऽगम्। आ। रोहति। यत्र। अदः। त्रिऽदिवम्। दिवः।

अपूपऽनाभिम्। कृत्वा। यः। ददाति। शतऽओदनाम् ॥ ५ ॥

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः।

हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

सः। तान्। लोकान्। सम्। आप्नोति। ये। दिव्याः। ये। च। पार्थिवाः।

हिरण्यऽज्योतिषम्। कृत्वा। यः। ददाति। शतऽओदनाम् ॥ ६ ॥

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः।

ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥

ये। ते। देवि। शमितारः। पक्तारः। ये। च। ते। जनाः।

ते। त्वा। सर्वे। गोप्स्यन्ति। मा। एभ्यः। भैषीः। शतऽओदने ॥ ७ ॥

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा।

आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥ ८ ॥

वसवः। त्वा। दक्षिणतः। उत्तरात्। मरुतः। त्वा।

आदित्याः। पश्चात्। गोप्स्यन्ति। सा। अग्निऽस्तोमम्। अति। द्रव ॥ ८ ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।

ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥ ९ ॥

देवाः। पितरः। मनुष्याः। गन्धर्वऽअप्सरसः। च। ये।

ते। त्वा। सर्वे। गोप्स्यन्ति। सा। अतिऽरात्रम्। अति। द्रव ॥ ९ ॥

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः।

१ So we with all our Mss. See Rw.

लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥ १० ॥ (३०)

अन्तरिक्षम् । दिवम् । भूमिम् । आदित्यान् । मरुतः । दिशः ।
लोकान् । सः । सर्वान् । आप्नोति । यः । ददाति । शतऽओदनाम् ॥ १० ॥ (३०)

घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्कारमह्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥

घृतम् । प्रऽउक्षन्ती । सुऽभगा । देवी । देवान् । गमिष्यति ।
पक्कारम् । अह्ये । मा । हिंसीः । दिवम् । प्र । इहि । शतऽओदने ॥ ११ ॥

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥

ये । देवाः । दिविऽसदः । अन्तरिक्षऽसदः । च । ये । ये । च । इमे । भूम्याम् । अधि ।
तेभ्यः । त्वम् । धुक्ष्व । सर्वदा । क्षीरम् । सर्पिः । अथो इति । मधु ॥ १२ ॥

यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥

यत् । ते । शिरः । यत् । ते । मुखम् । यौ । कर्णौ । ये इति । च । ते । हनू इति ।
आमिक्षाम् । दुहताम् । दात्रे । क्षीरम् ।० ॥ १३ ॥

यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेक्षिणी । आमिक्षां० ॥ १४ ॥

यौ । ते । ओष्ठौ । ये इति । नासिके इति । ये इति । शृङ्गे इति । ये इति । च । ते ।
अक्षिणी इति ॥० ॥ १४ ॥

यत् ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका । आमिक्षां० ॥ १५ ॥

यत् । ते । क्लोमा । यत् । हृदयम् । पुरीऽतत् । सहऽकण्ठिका ॥० ॥ १५ ॥

यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः । आमिक्षां० ॥ १६ ॥

यत् । ते । यकृत् । ये इति । मतस्ने इति । यत् । आन्त्रम् । याः । च । ते । गुदाः ॥० ॥ १६ ॥

---

१ $^{h}$B $^{m}$K V De ये ।. A D R $^{m}$S $^{m}$C$_{s}$ omit the virâma. २ K ध्युक्ष्व (!). $^{h}$B $^{m}$K $^{m}$S De C$_{s}$ C$_{P}$ धुक्ष. We with A D R V P $^{2}$P J. ३ B येन्ने (!). ४ So we with all our authorities. Rw read यस्ते. ५ K क्लोमा ( sic ). ६ A $^{3}$K R De मतस्ते. P $^{2}$P J मतस्ते इति ।. We with $^{h}$B D $^{m}$K $^{m}$S V C$_{s}$ C$_{P}$.

यस्ते प्लाशियों वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते। आमिक्षां० ॥ १७ ॥

यः। ते। प्लाशिः। यः। वनिष्ठुः। यौ। कुक्षी इति। यत्। च। चर्म। ते ॥० ॥ १७ ॥

यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम्। आमिक्षां० ॥ १८ ॥

यत्। ते। मज्जा। यत्। अस्थि। यत्। मांसम्। यत्। च। लोहितम् ॥० ॥ १८ ॥

यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत्। आमिक्षां० ॥ १९ ॥

यौ। ते। बाहू इति। ये इति। दोषणी इति। यौ। अंसौ। या। च। ते। ककुत् ॥० ॥१९॥

यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः। आमिक्षां० ॥२०॥(३१)

याः। ते। ग्रीवाः। ये। स्कन्धाः। याः। पृष्टीः। याः। च। पर्शवः ॥० ॥ २० ॥ (३१)

यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत्। आमिक्षां० ॥ २१ ॥

यौ। ते। ऊरू इति। अष्ठीवन्तौ। ये इति। श्रोणी इति। या। च। ते। भसत् ॥० ॥ २१ ॥

यत् ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः। आमिक्षां० ॥ २२ ॥

यत्। ते। पुच्छम्। ये। ते। बालाः। यत्। ऊधः। ये। च। ते। स्तनाः ॥० ॥ २२ ॥

यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः। आमिक्षां० ॥२३॥

याः। ते। जङ्घाः। याः। कुष्ठिकाः। ऋच्छराः। ये। च। ते। शफाः ॥० ॥ २३ ॥

यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यह्रये।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥

यत्। ते। चर्म। शतौदने। यानि। लोमानि। अह्रये।
आमिक्षाम्। दुहताम्। दात्रे। क्षीरम्। सर्पिः। अथो इति। मधु ॥ २४ ॥

क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥ २५ ॥

क्रोडौ। ते। स्ताम्। पुरोडाशौ। आज्येन। अभिघारितौ।

---

१ S प्लाशुर्यो changed from प्लाशियों. २ De °ष्टु° changed to °ष्टु°. A B D K R S V P P J वनिष्टुः। We with K C Cs Cr. ३ So we with all our authorities. See Rw. ४ A दोषणी. P J Cr दोषणी इति. We with B D K R S V P C P. ५ K K S De पृष्टी°. Cp पृष्टीः। P पृष्टीः। We with A B D R V C P J. ६ B B R P अष्टीवन्तौ. ७ P कुष्टिकाः।

नौ । पक्षौ । देवि । कृत्वा । सा । एकारम् । दिवम् । वह ॥ २५ ॥

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः ।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥२६॥

उलूखले । मुसले । यः । च । चर्मणि । यः । वा । शूर्पे । तण्डुलः । कणः ।
यम् । वा । वातः । मातरिश्वा । पवमानः । ममाथ । अग्निः । तत् । होता । सुऽहुतम् ।
कृणोतु ॥ २६ ॥

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो
रयीणाम् ॥ २७ ॥ (३२)

अपः । देवीः । मधुऽमतीः । घृतऽश्चुतः । ब्रह्मणाम् । हस्तेषु । प्रऽपृथक् । सादयामि ।
यत्ऽकामः । इदम् । अभिऽसिञ्चामि । वः । अहम् । तत् । मे । सर्वम् । सम् । पद्य-
ताम् । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥ २७ ॥ (३२)

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥.

"नमस्ते जायमानायै" इति सूक्ते पूर्वमूक्तोक्तवशा न केवलं मेध्यमांसात्मिका गौर्भवति अपि तु सा विशसनादनन्तरं महती काचिद् देवी भूत्वा देवेषु मध्ये सर्वात्मिका भवति यज्ञियेषु च यज्ञिया भवतीत्यादि तस्या माहात्म्यं प्रशंसा चोक्ता ॥

सांप्रदायिकास्तु एवम् । "नमस्ते जायमानायै" इत्यर्थसूक्तेन वशासवे निरुप्तहविरभिमर्शनसंपातदात्रवाचनदानानि कुर्यात् । तदुक्तं कौशिकेन । "नमस्ते जायमानायै [१०.१०] ददामि [१२.४] इति वशाम् उदपात्रेण संपातवता संप्रोक्ष्याभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद् दाता वाच्यमानो भूमिष्ठा [३.२९.८] इत्येनां प्रतिगृह्णाति" इति [कौ० ८.७] ॥

नमस्ते जायमानायै जातायां उत ते नमः ।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्ये ते नमः ॥ १ ॥

नमः । ते । जायमानायै । जातायै । उत । ते । नमः ।
बालेभ्यः । शफेभ्यः । रूपाय । अघ्ये । ते । नमः ॥ १ ॥

यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः ।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥ २ ॥

यः । विद्यात् । सप्त । प्रऽवतः । सप्त । विद्यात् । पराऽवतः ।
शिरः । यज्ञस्य । यः । विद्यात् । सः । वशाम् । प्रति । गृह्णीयात् ॥ २ ॥

१ P ब्राह्मणाम् ।. २ P° °सिचामि ।. ३ P विद्यात् ।. We with P J.

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥ ३ ॥

वेद। अहम्। सप्त। प्रऽवतः। सप्त। वेद। पराऽवतः।
शिरः। यज्ञस्य। अहम्। वेद। सोमम्। च। अस्याम्। विऽचक्षणम् ॥ ३ ॥

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥

यया। द्यौः। यया। पृथिवी। यया। आपः। गुपिताः। इमाः।
वशाम्। सहस्रऽधाराम्। ब्रह्मणा। अच्छऽआवदामसि ॥ ४ ॥

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ५ ॥

शतम्। कंसाः। शतम्। दोग्धारः। शतम्। गोप्तारः। अधि। पृष्ठे। अस्याः।
ये। देवाः। तस्याम्। प्राणन्ति। ते। वशाम्। विदुः। एकऽधा ॥ ५ ॥

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

यज्ञऽपदी। इराऽक्षीरा। स्वधाऽप्राणा। महीऽलुका।
वशा। पर्जन्यऽपत्नी। देवान्। अपि। एति। ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

अनु त्वाग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा।
ऊर्धस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ॥

अनु। त्वा। अग्निः। प्र। अविशत्। अनु। सोमः। वशे। त्वा।
ऊर्धः। ते। भद्रे। पर्जन्यः। विऽद्युतः। ते। स्तनाः। वशे ॥ ७ ॥

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥

अपः। त्वम्। धुक्षे। प्रथमाः। उर्वराः। अपराः। वशे।
तृतीयम्। राष्ट्रम्। धुक्षे। अन्नम्। क्षीरम्। वशे। त्वम् ॥ ८ ॥

---

१ P विदुः। २ B R C °क्षीरा. ३ K ध्युक्षे. ४ K ध्युक्षे। P J C² धुक्षे। We with P.

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ॥ ९ ॥

यत् । आदित्यैः । हूयमाना । उपऽअतिष्ठः । ऋतऽवरि ।
इन्द्रः । सहस्रम् । पात्रान् । सोमम् । त्वा । अपाययत् । वशे ॥ ९ ॥

यदनूचीन्द्रमैरात् त्वा ऋषभोऽहियत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं कुद्धोऽहरद् वशे ॥ १० ॥ (३३)

यत् । अनूची । इन्द्रम् । एः । आत् । त्वा । ऋषभः । अहियत् ।
तस्मात् । ते । वृत्रऽहा । पयः । क्षीरम् । कुद्धः । अहरत् । वशे । ॥ १० ॥ (३३)

यत् ते कुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

यत् । ते । कुद्धः । धनऽपतिः । आ । क्षीरम् । अहरत् । वशे ।
इदम् । तत् । अद्य । नाकः । त्रिषु । पात्रेषु । रक्षति ॥ ११ ॥

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२ ॥

त्रिषु । पात्रेषु । तम् । सोमम् । आ । देवी । अहरत् । वशा ।
अथर्वा । यत्र । दीक्षितः । बर्हिषि । आस्त । हिरण्यये ॥ १२ ॥

सं हि सोमेनागत समु सवेंण पत्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥

सम् । हि । सोमेन । अगत । सम् । ऊं इति । सवेंण । पत्ऽवता ।
वशा । समुद्रम् । अधि । अस्थात् । गन्धर्वैः । कलिऽभिः । सह ॥ १३ ॥

सं हि वातेनागत समु सवैः पतत्रिभिः ।

१ K °यातिष्ठ. २ A B K R V De °त्वर्ष°. Cs °त्ववृषभो°. We with D K S. ३ A B B D K K R S V De Cs °भोह°. P अह्वयत्. We with P J Cp. ४ A B D K R De Cs कुद्धोह°. We with K S V P P J Cp. ५ K S क्षीरमहर°. ६ B देव्यहरद्वशा. ७ K °ध्यष्ठाद्गन्धर्वैः. ८ P अरातः. P had आगत but has changed it to अगत. We with J Cp.

वशा समुद्रे प्रानृत्यद्दचः सामानि बिभ्रती ॥ १४ ॥

सम्। हि। वातेन। अगत। सम्। ऊं इति। सर्वैः। पतत्रिऽभिः।
वशा। समुद्रे। प्र। अनृत्यत्। ऋचः। सामानि। बिभ्रती ॥ १४ ॥

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा।
वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥ १५ ॥

सम्। हि। सूर्येण। अगत। सम्। ऊं इति। सर्वेण। चक्षुषा।
वशा। समुद्रम्। अति। अख्यत्। भद्रा। ज्योतींषि। बिभ्रती ॥ १५ ॥

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद् वशे त्वा ॥ १६ ॥

अभिऽवृता। हिरण्येन। यत्। अतिष्ठः। ऋतऽवरि।
अश्वः। समुद्रः। भूत्वा। अधि। अस्कन्दत्। वशे। त्वा ॥ १६ ॥

तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १७ ॥

तत्। भद्राः। सम्। अगच्छन्त। वशा। देष्ट्री। अथो इति। स्वधा।
अथर्वा। यत्र। दीक्षितः। बर्हिषि। आस्त। हिरण्यये ॥ १७ ॥

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥ १८ ॥

वशा। माता। राजन्यस्य। वशा। माता। स्वधे। तव।
वशायाः। यज्ञे। आयुधम्। ततः। चित्तम्। अजायत ॥ १८ ॥

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वः। बिन्दुः। उत्। अचरत्। ब्रह्मणः। ककुदात्। अधि।
ततः। त्वम्। जज्ञिषे। वशे। ततः। होता। अजायत ॥ १९ ॥

आस्रस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं[3] वशे।

---

१ P here has simply and distinctly °अ° not °आ°. २ K अभवदुष्णि°. ३ K K बलं वशे.

पाजस्याज्जिज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥ (३४

आक्षः । ते । गाथाः । अभवन् । उष्णिहाभ्यः । बलम् । वशे ।

पाजस्यात् । जज्ञे । यज्ञः । स्तनेभ्यः । रश्मयः । तव ॥ २० ॥ (३४)

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।

आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥ २१ ॥

ईर्माभ्याम् । अयनम् । जातम् । सक्थिऽभ्याम् । च । वशे । तव ।

आन्त्रेभ्यः । जज्ञिरे । अत्राः । उदरात् । अधि । वीरुधः ॥ २१ ॥

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।

ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥ २२ ॥

यत् । उदरम् । वरुणस्य । अनुऽप्राविशथाः । वशे ।

ततः । त्वा । ब्रह्मा । उत् । अह्वयत् । सः । हि । नेत्रम् । अवेत् । तव ॥ २२ ॥

सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।

ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥ २३ ॥

सर्वे । गर्भात् । अवेपन्त । जायमानात् । असुस्वः ।

ससूव । हि । ताम् । आहुः । वशा । इति । ब्रह्मऽभिः । क्लृप्तः । सः । हि । अस्याः ।

बन्धुः ॥ २३ ॥

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।

तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद् वशा ॥ २४ ॥

युधः । एकः । सम् । सृजति । यः । अस्याः । एकः । इत् । वशी ।

तरांसि । यज्ञाः । अभवन् । तरसाम् । चक्षुः । अभवत् । वशा ॥ २४ ॥

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।

वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥

वशा । यज्ञम् । प्रति । अगृह्णात् । वशा । सूर्यम् । अधारयत् ।

वशायाम् । अन्तः । अविशत् । ओदनः । ब्रह्मणा । सह ॥ २५ ॥

---

१ P °म् । २ A B D S V अभवत्तर°. ३ P सृजाति । ४ K °विशदो°.

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्याऽ असुराः पितर ऋषयः ॥ २६ ॥

वशाम्। एव। अमृतम्। आहुः। वशाम्। मृत्युम्। उप। आसते।
वशा। इदम्। सर्वम्। अभवत्। देवाः। मनुष्याः। असुराः। पितरः। ऋषयः ॥२६॥

य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात्।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेनपस्फुरन् ॥ २७ ॥

यः। एवम्। विद्यात्। सः। वशाम्। प्रति। गृह्णीयात्।
तथा। हि। यज्ञः। सर्वऽपात्। दुहे। दात्रे। अनपऽस्फुरन् ॥ २७ ॥

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ २८ ॥

तिस्रः। जिह्वाः। वरुणस्य। अन्तः। दीद्यति। आसनि।
तासाम्। या। मध्ये। राजति। सा। वशा। दुःऽप्रतिग्रहा ॥ २८ ॥

चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥ २९ ॥

चतुःऽधा। रेतः। अभवत्। वशायाः।
आपः। तुरीयम्। अमृतम्। तुरीयम्। यज्ञः। तुरीयम्। पशवः। तुरीयम् ॥ २९

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः।
वशायां दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥

वशा। द्यौः। वशा। पृथिवी। वशा। विष्णुः। प्रजाऽपतिः।
वशायाः। दुग्धम्। अपिबन्। साध्याः। वसवः। च। ये ॥ ३० ॥

वशायां दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये।
ते वै ब्रह्मस्व विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥ ३१ ॥

वशायाः। दुग्धम्। पीत्वा। साध्याः। वसवः। च। ये।
ते। वै। ब्रह्मस्व। विष्टपि। पयः। अस्याः। उप। आसते ॥ ३१ ॥

---

१ A B D K K R S C s दुःप्रतिग्रहा. We with V De. २ P ब्रह्मस्व। We with P J C1

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ ३२ ॥

सोमम् । एनाम् । एके । दुह्रे । घृतम् । एके । उप । आसते ।
ये । एवम् । विदुषे । वशाम् । ददुः । ते । गताः । त्रिऽदिवम् । दिवः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वाँल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणेभ्यः । वशाम् । दत्त्वा । सर्वान् । लोकान् । सम् । अश्नुते ।
ऋतम् । हि । अस्याम् । आर्पितम् । अपि । ब्रह्म । अथो इति । तपः ॥ ३३ ॥

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥ (३५)

वशाम् । देवाः । उप । जीवन्ति । वशाम् । मनुष्याः । उत ।
वशा । इदम् । सर्वम् । अभवत् । यावत् । सूर्यः । विऽपश्यति ॥ ३४ ॥ (३५)

पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

पञ्चमोनुवाकः ॥

इति दशमं काण्डं समाप्तम् ॥

१ P P̍ J V C$^{P}$ यः ।.